# भारत की प्रस्तर युगीन संस्कृतियाँ

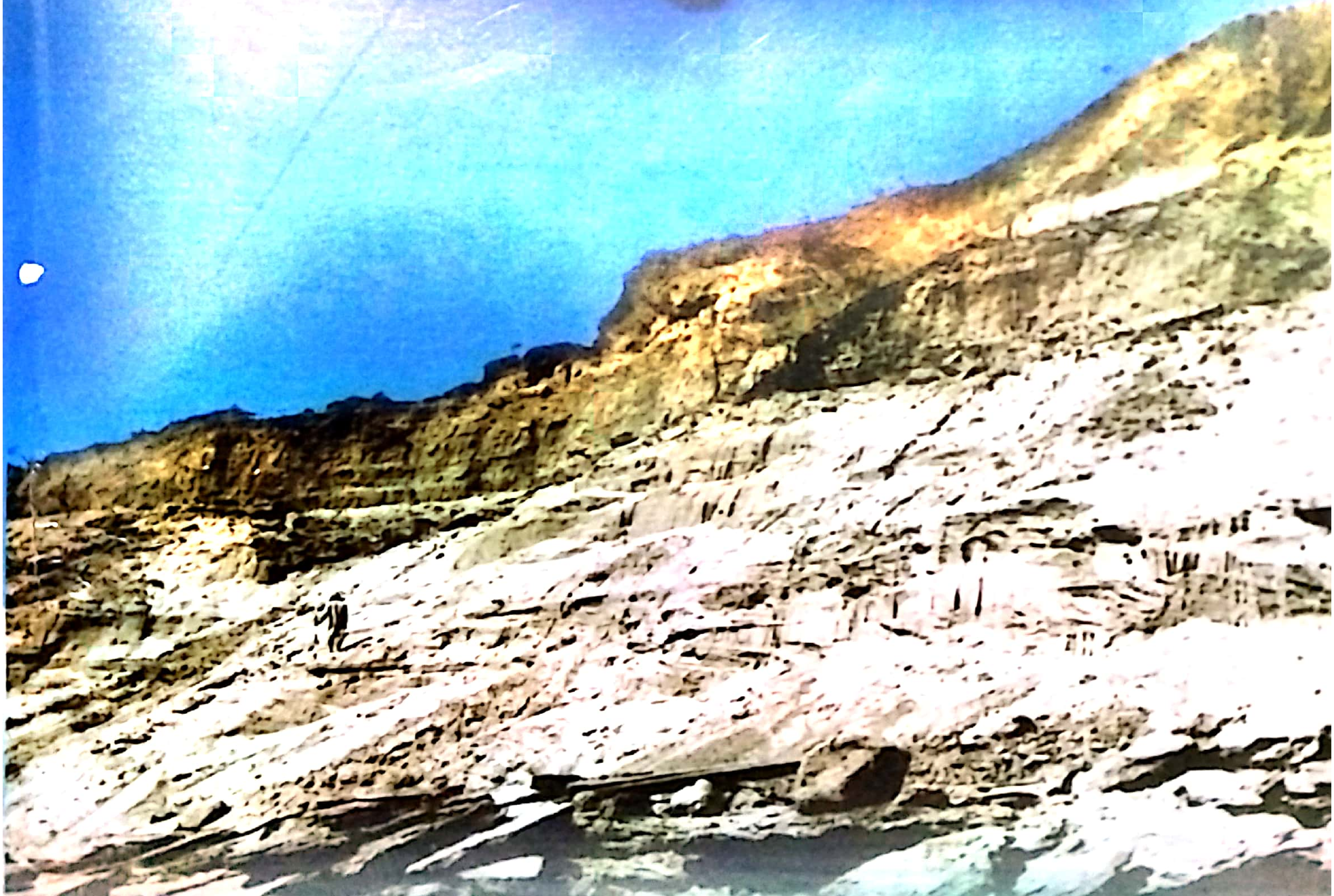

डॉ. राधा कान्त वर्मा

Scanned with OKEN Scanner

# भारत की प्रस्तर युगीन संस्कृतियाँ



Scanned with OKEN Scanner

# भारत की प्रस्तर युगीन संस्कृतियाँ


**डा. राधा कान्त वर्मा**

प्रोफेसर एवं (अ. प्रा.) विभागाध्यक्ष
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग
एवं भू.पू. कुलपति
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)



परमज्योति प्रकाशन
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण : 2016

मूल्य : ₹ 375/–

प्रकाशक
**डॉ. नीरा वर्मा**
परमज्योति प्रकाशन,
18सी, हेस्टिंग रोड, इलाहाबाद
फोन 09335153730

**सर्वाधिकार सुरक्षित**
डॉ. राधा कान्त वर्मा

मुद्रक :
**प्रभा कम्प्युटर्स एण्ड प्रिन्टर्स**
यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद
**फोन : 9793923555**

# आमुख

भारत में प्रागितिहास विषय का अध्ययन एवं अध्यापन अब शैशवावस्था की दहलीज पारकर प्रौढ़ावस्था में प्रवेश करचुका है। किन्तु खेद का विषय है कि आज भी अखिल भारतीय संदर्भ में हिन्दी भाषा में प्रस्तर युगीन संस्कृतियों पर एक भी पुस्तक उपलब्ध नहीं है । समय–समय पर जो भी शोध पत्र प्रकाशित हो रहे हैं वे भी अंग्रेजी तक सीमित रह जाते हैं, फलतःहिन्दी में पढने वाले पाठक उच्चस्तरीय शोध से वंचित रह जाते हैं।

गत शताब्दी के सातवें दशक में मैंने भारतीय प्रागितिहास पर हिन्दी में दो पुस्तकों की रचना की थी और मानक शब्दावली का निर्माण भी किया था। किन्तु छिटपुट प्रयासों के अतिरिक्त किसी ने आगे कोई विशेष पुस्तक प्रकाशित नही की। इसे हिन्दी का दुर्भाग्य ही कहेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक के माध्यम से मैंने पुनः हिन्दी में प्रागितिहास विषय पर अखिल भारतीय संदर्भ में उच्चस्तरीय पुस्तक लिखने का प्रयास किया है जिसका लाभ भारतीय प्रागितिहास के सभी वर्गों के पाठक उठा सकेंगे। गत कुछेक दशकों मे पुरातत्व विषय ने स्नातक तथा स्नातकोत्तर कक्षाओं में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है किन्तु खेद का विषय है कि अभी भी हिन्दी में पुरातत्व की मानक पुस्तकों का नितान्त अभाव है। फलतः, पुरातत्व के क्षेत्र में जो अनुसंधान हो रहे हैं अथवा हाल में हुए हैं, उनसे हिन्दी भाषी क्षेत्र के लोग मूलतः छात्र–छात्रायें अनभिज्ञ रह जाते हैं। जर्नल तथा शोध पत्रिकायें प्रायः सुलभ नहीं होती हैं, अतः हिन्दी में इस प्रकार की पुस्तकों की आवश्यकता है जो महत्वपूर्ण शोधों को शिक्षकों तथा छात्रों तक पहुँचा सकें तथा उनमें और पढ़ने की जिज्ञासा
सकें।

प्र के विस्तार को देखते हुए प्रस्तुत पुस्तक का कलेवर थोड़ा बड़ा अवश्य है किन्तु अभी
। शोध सामग्री का उपयोग किया गया है। शोध छात्र–छात्राओं की सुविधा के लिए मूल
ए गए हैं।

पुस्तक के प्रणयन में मेरे शिष्यों डा0 जगन्नाथ पाल, डा0 मानिक चन्द, डा0 जेबा इस्लाम तथा डॉ. कन्हैया लाल यादव की विशेष भूमिका रही है । इन लोगों ने हमें केवल प्रेरित ही नही किया, अपितु विविध प्रकार से अपना महत्वपूर्ण सहयोग भी प्रदान किया है, जिसके अभाव में पुस्तक का प्रणयन सम्भव नहीं था। डा0 पाल ने न केवल पाण्डुलिपि को पढ़कर सुझाव ही दिया अपितु सुधार भी किया। डा0 जेबा इस्लाम ने केवल अपने महत्वपूर्ण सुझाव ही नहीं दिये अपितु टंकण कराने में विशेष भूमिका भी निभाई है जिसके अभाव में पुस्तक को प्रस्तुत स्वरूप देना सम्भव नही था। मैं उन सबका आभारी हूँ।

अपने निकट परिवार के सदस्यों– नीरा वर्मा, विनय–शुभला, विवेक–रूचिका, के प्रति आभार ज्ञापन सहज नहीं है जिन्होंने सुचारू रूप से हमारी सुविधाओं का ध्यान रखा तथा दिन प्रतिदिन की जिम्मेदारियों से मुक्त रखा जिससे मैं अधिक से अधिक समय लेखन में लगा सका । मैं विशेष रूप से चैतन्य, अपर्णा, सौम्या, तुषार एंव शिवांश को नजर अन्दाज नहीं कर सकता, जिन्होंने हमारे अवकाश के क्षणों को मधुर बनाया है तथा हमें सदैव स्फूर्ति भी प्रदान की है।

अन्त में मै अपने दिवंगत गुरूजनों प्रो0 हंसमुख धीरज लाल सांकलिया तथा प्रो0 जी0 आर0 शर्मा जी के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करना चाहूँगा, जिन्होने मुझे इस योग्य बनाया कि मै इस पुस्तक की रचना कर सका।

मैं प्रभा कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिंटर्स के श्री राजेश शर्मा जी तथा उनके सहयोगियों एवं प्रेस–कर्मियों का भी अनुगृहीत हूँ जिनके सहयोग के बिना पुस्तक का प्रकाशन सम्भव नहीं था।

विजया दशमी

**राधा कान्त वर्मा**

संलग्नक – 1

उच्चपुरापाषाणिक C 14 तिथियाँ (शीला मिश्र मैन एण्ड इनवायरेनमेण xx (2) 1995

**Table 1 : Radiocarbon dates for Upper Palaeolithic sites**

| *Site Name* | *Lab. No.* | *Date* | *Material Dated* |
|---|---|---|---|
| Bagor | Beta 4793 | 11,870±120 | freshwater shells |
| Bhedaghat | A 6619 | 25,160±550 | freshwater bivalve shells |
| Belan Valley Deoghat | TF1245 | 19,715±330 | freshwater shells |
| Belan Valley Deoghat | Beta 4789 | 18,055±105 | freshwater shells |
| Belan Valley Deoghat | PRL 86 | 25,790+830-730 | freshwater shells |
| Belan Valley Koldiwal | Beta 4877 | 25,430±350 | freshwater shells |
| Chandrasal | GRN 10638 | 36,550±600 | ostrich eggshell |
| Chandrasal | GRN 10639 | 38,900±750 | ostrich eggshell |
| Dharangaon | BS 662 | 29,210±980 | freshwater shells |
| Dharampuri | BS 286 | 25,890±850 | freshwater shells |
| Gargaon | TF 1111 | 10,310±155 | wood |
| Inamgaon | TF 1003 | 21,725+630-570 | freshwater shells |
| Inamgaon | TF 1177 | 19,290±360 | freshwater shells |
| Inamgaon | BS 146 | 12,040±150 | freshwater shells |
| Kurnool | TL date | 17,390±10% | burnt caves |
| Mahagara | PRL 603 | 14,140+410-390 | freshwater shells |
| Mahagara | PRL 602 | 11,300±130 | freshwater shells |
| Mahagara | SUA 1421 | 10,320±115 | freshwater shells |
| Mehtakheri | A 6518 | 30,680+1040-920 | freshwater shells |
| Mehtakheri | AA 8463 | >41,900 | ostrich eggshell |
| Nagda | PRL 1196 | > 31,000 | ostrich eggshell |
| Nandur-Madhemeshwar | BS 163 | 27,410±425 | freshwater shells |
| Nandipalle | PRL 293 | 24,300+660 | freshwater gastropod shells |
| Nevasa | BS 576 | 13,220±190 | freshwater shells |
| Nevasa | BS 575 | 16,890±200 | freshwater shells |
| Paithan | TF891 | 17,075±660 | freshwater shells |
| Patne | GRN 7200 | 25000±200 | ostrich eggshell |
| Rampur | Beta 4752 | 11,870±120 | freshwater shells |
| Rampur | Beta 4793 | 26,250±420 | freshwater shells |
| Sangamner | PRL 470 | 12,890±350 | freshwater shells |
| Sangamner | BS 78 | 25,390±710 | freshwater shells |

The BS dates have been converted from 14C halflife of 5570 years to halflife of 5730 year.



Scanned with OKEN Scanner

## संलग्नक – 2

**Table 2 : Radiocarbon Dates for the South Asian Upper Paleolithic**

गोरी एल. पाशेल तथा पॉल सी. रिसमैन 1992 के अनुसार

| | Half-life | |
|---|---|---|
| *Site* | *5568 b.p.* | *5730 B.C.* |
| Asla. Maharashtra | | |
| TF-1178 | 9750±120 | 8090 |
| Baghor Formation, Madhya Pradesh | | |
| Beta-4792 | 11525 ± 120 | 9920 |
| PRL-711 | 12450 + 220 - 210 | 10875 |
| SUA-1420 | 10415 ± 140 | 8775 |
| Beta-4793 | 25485 ± 420 | 24300 |
| Baghor III, Madhya Pradesh | | |
| PRL-714 | 6460 ± 180 | 4705 |
| Ghargaon, Maharashtra | | |
| TF-1111 | 10020 ± 150 | 8370 |
| Mahagara Gravels III, Madhya Pradesh (Upper Paleolithic) | | |
| TF-1245 | 19160 ± 330 | 17785 |
| PRL-86 | 25070+810-730 | 23870 |
| Mahagara Gravels IV, Madhya Pradesh (Upper Paleolithic/ Microlithic) | | |
| Sua-1421 | 9740 ± 115 | 8080 |
| BS-131 | 9830 ± 160 | 8175 |
| PRL-602 | 10980±190 | 9360 |
| BS-130 | 11550 ± 180 | 9945 |
| PRL-603 | 13740 + 400 – 380 | 12200 |
| Patne | | |
| GRN-7200 | 24270 ± 195 | 23050 |
| angamner, Maharashtra | | |
| PRL-470 | 14400 + 340 – 320 | 12880 |
| BS – 78 | 24670 ± 710 | 23460 |

(Chronolotics in del wall Archers) Third Edition -



Scanned with OKEN Scanner

# अनुक्रमणिका


| | | |
|---|---|---|
| 1 | मानव का उद्भव एवं विकास | 1 |
| 2 | प्रागितिहास के विकास का इतिहास | 17 |
| | • भारत में प्रागितिहास का विकास | 27 |
| | • भारतीय विद्वानों का आगमन | 35 |
| 3 | पारिभाषिक शब्दावली का विकास | 42 |
| 4 | भारतीय शैल चित्रों के अध्ययन का इतिहास | 49 |
| 5 | भारत की भौगोलिक पृष्ठ भूमि | 58 |
| 6 | भारत की प्रस्तर युगीन संस्कृतियाँ | 71 |
| | • भारत की निम्न पूर्वपाषाण कालीन संस्कृतियाँ : तथा नवीन परिदृश्य | 75 |
| 7 | उत्तर–पश्चिम भारत की निम्नपूर्वपाषाण युगीन संस्कृतियाँ | 81 |
| | • सेहन संस्कृति | 81 |
| | • नवीन परिदृश्य | 85 |
| 8 | पूर्वी पंजाब | 88 |
| | • व्यास बानगंगा घाटी | 88 |
| | • गुलेर, देहरा, घलियारा ,कागड़ा | 90 |
| 9 | उत्तर प्रदेश | 91 |
| | • मिर्जापुर तथा सोनभद्र | 91 |
| | • सिगरौली बेसिन | 93 |
| | • बेलन घाटी | 95 |
| 10 | बिहार तथा झारखण्ड | 104 |
| | • पैसरा | 106 |
| | • भीमबंध | 110 |
| 11 | पश्चिमी बंगाल प्रदेश | 113 |
| | • बाकुड़ा, हाथी खेड़ा आदि | 113 |
| 12 | मेघालय | 117 |
| 13 | गारो हिल | 118 |
| 14 | ओडिसा प्रदेश | 120 |
| 15 | आंध्र प्रदेश | 126 |




Scanned with OKEN Scanner

| | | |
|---|---|---|
| | • गिद्दलूर | |
| | • कांचिपल्ले | |
| | • गुण्टूर | |
| | • करेमपुदी | 131 |
| | • चित्तूर | 132 |
| | • रल्लकलावा | 133 |
| | • ज्वालापुरम–उत्खनन | 135 |
| 16 | तमिलनाडु प्रदेश | 138 |
| | • अत्तिरमपक्कम–उत्खनन | 142 |
| 17 | केरल प्रदेश | 145 |
| 18 | कर्नाटक प्रदेश | 146 |
| | • इसमपुर | 146 |
| | • हुण्सगी | 149 |
| | • मालप्रमा घाटी | 152 |
| | • तुंगभद्रा घाटी | 154 |
| 19 | महाराष्ट्र प्रदेश | 155 |
| | • गोदावरी तथा प्रवराघाटी | 155 |
| | • नेवासा | 156 |
| | • चिरकी नेवासा | 158 |
| | • भीमा घाटी–बोरी पुरास्थल | 160 |
| | • मुम्बई क्षेत्र | 160 |
| 20 | गुजरात प्रदेश | 162 |
| 21 | सौराष्ट्र प्रदेश | 166 |
| 22 | मध्य–प्रदेश | 168 |
| | • नर्मदा घाटी | 168 |
| | • सूरजकुण्ड संरचना, हथनोरा | 175 |
| | • शिविना एवं सोन घाटी | 177 |
| | • मध्य सोनघाटी | 178 |

- मैहर पुरास्थल 186
- दमोह क्षेत्र 189
- सोनार घाटी 189
- ग्वालियर क्षेत्र 190
- भीम बैठका 192

23 राजस्थान प्रदेश 195
- बेराच घाटी 197
- दिदवाना थार रेगिस्तान 200
- बंगर केनाल 16R 202

24 मध्यपूर्व पाषाण काल 207
- सामान्य परिचय 207

25 उत्तर पश्चिम भारत–हिमालयी क्षेत्र 213

26 उत्तर प्रदेश 214
- बेलन घाटी 214
- अदवा घाटी 216

27 बिहार तथा छत्तीस गढ 217

28 ओडिसा 218

29 आंध्र प्रदेश 220

30 कर्नाटक 223
- कृष्णा घाटी 224

31 महाराष्ट्र प्रदेश 225
- अहमद नगर 225

32 मध्य प्रदेश 229
- धसान तथा बेतवा घाटी 229
- मध्य सोन घाटी 230
- पटपरा 232
- मैहर 233
- भीम बैठका 234
- आदमगढ़ शैलाश्रय 234

| | | |
|---|---|---|
| | • समनापुर | 234 |
| 33 | राजस्थान प्रदेश | 236 |
| | • लूनी घाटी | 236 |
| 34 | उच्चपूर्वपाषाण काल | 244 |
| | • भारत में उच्चपूर्वपाषाण काल | 245 |
| | • उत्तर प्रदेश बेलन घाटी | 247 |
| 35 | आंध्र प्रदेश | 252 |
| | • रेनीगुण्टा | 253 |
| | • मुच्छतलाचिन्तामनुगावी | 254 |
| | • शोरापुर दोआब | 257 |
| 36 | महाराष्ट्र | 260 |
| | • पटने | 260 |
| 37 | गुजरात | 263 |
| 38 | मध्य प्रदेश | 264 |
| | • बघोर–1 | 265 |
| | • भीम बैठका | 268 |
| | • भारत में उच्चपूर्वपाषाण काल की तिथि | 269 |
| 39 | मध्य पाषाण काल | 274 |
| 40 | उत्खनित स्थल | 282 |
| | • बेलन घाटी के साक्ष्य | 282 |
| | • चोपनी माण्डो | 283 |
| 41 | विंध्य क्षेत्र | 287 |
| | • मोरहना पहाड़ | 287 |
| | • बघही खोर | 290 |
| | • लेखहिया | 292 |
| 42 | गंगा घाटी की मध्य पाषाणिक संस्कृति | 296 |
| | • सरायनहर राय | 297 |
| | • महदहा | 300 |
| | • दमदमा | 303 |




Scanned with OKEN Scanner

| | | |
|---|---|---|
| 43 | बीरभानपुर | 308 |
| 44 | टेरी पुरास्थल | 311 |
| 45 | लंघनाज | 313 |
| 46 | आदमगढ | 317 |
| 47 | राजस्थान | 319 |
| | • बागोर | 319 |
| 48 | नवपाषाण काल | 325 |
| | • उत्तर भारत–बुर्जहोम | 329 |
| 49 | पश्चिमोत्तर भारत | 335 |
| 50 | विंध्य क्षेत्र | 336 |
| | • कोलडिहवा | 336 |
| | • महगड़ा | 337 |
| 51 | मध्य पूर्वी गंगाघाटी | 343 |
| 52 | पूर्वी भारत–सुआबेरी | 345 |
| 53 | उत्तर पूर्वी भारत | 347 |
| 54 | दक्षिण भारत | 350 |
| 55 | संक्षिप्त ग्रन्थ–सूची | 354 |



Scanned with OKEN Scanner

# रेखा चित्र


| चित्र संख्या | | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|
| 1. | भारत का मान चित्र | 57 |
| 2. | निम्न पुरापाषाण युगीन पुरास्थल | 74 |
| 3. | पुठवल क्षेत्र में डी टेरा तथा पेटरसन द्वारा चिन्हित पुरास्थल | 81 |
| 4. | सोहन का समेकित अनुभाग | 82 |
| 5. | प्राक् सोहन तथा आदि सोहन उपकरण | 83 |
| 6. | रेवात से प्राप्त उपकरण लगभग 1.9m.वर्ष प्राचीन | 85 |
| 7. | पब्बी पर्वतीय क्षेत्र से प्राप्त उपकरण 1.2 से 2.6 लाख वर्ष के अन्तर्गत | 86 |
| 8. | पहलगाँव से प्राप्त हैण्डैक्स | 87 |
| 9. | बेलन नदी का प्रमुख अनुभाग | 95 |
| 10. | बीलनघाटी के पेबुलउपकरण | 99 |
| 11. | बेलनघाटी के अबेवीलियाँ, पेबुलसमन्तान्त, शिलापट्टों पर निर्मित उपकरण | 100 |
| 12. | क्लीवर उपकरण | 101 |
| 13. | मूठ के प्रमाण | 102 |
| 14. | हाथी का 6.4" लम्बा दाँत | 102 |
| 15. | हाथी के खाने के दाँत | 103 |
| 16. | मुंगेर से प्राप्त निम्नपूर्वपाषाण कालीन उपकरण | 105 |
| 17. | हैण्डैक्स–पैसरा | 106 |
| 18. | क्लीवर–पैसरा | 107 |
| 19. | पैसरा के आवासों का अनुमानित स्वरूप | 108 |
| 20. | अ,ब निम्नपूर्वपाषाणिक उपकरण गारोहिल | 118 |
| 21. | अ चित्तूर–के पूर्वपाषाणिक उपकरण: | 131 |
| | ब आंध्र प्रदेश के पुरापाषाणिक उपकरण: | 130 |
| 22. | रल्लकलावा विकसित आशूलियाँ उपकरण | 134 |
| 23. | अत्तिरमपक्कम निम्न पूर्वपाषाणिक उपकरण: | 142 |
| 24. | इसमपुर मध्यपुरापाषाणिक उपकरण | 146 |
| 25. | इसमपुर– हैण्डैक्स | 147 |
| 26. | इसमपुर– क्लीवर | 148 |
| 27. | इसमपुर– हैमर स्टोन | 148 |
| 28. | हुण्सगी : संस्थिति V के उपकरण | 150 |
| 29. | क्लीवर | 151 |
| 30. | संस्थिति 1 (नेवासा) प्रवरा के दक्षिणी तट का उ0मुखी अनुभाग | 156 |
| 31. | निम्नपूर्व पाषाणिक उपकरण–नेवासा | 157 |
| 32. | हैण्डैक्स नेवासा | 157 |
| 33. | चिरकी प्रारम्भिक आशूलियाँ उपकरण | 158 |
| 34. | मानव कपाल | 175 |




Scanned with OKEN Scanner

| | | |
|---|---|---|
| 35. | हथनोरा से प्राप्त कपाल के निकट नर्मदा घाटी का अनुभाग | 175 |
| 36. | मध्य सोन घाटी–नकझर खुर्द | 178 |
| 37. | सिहावल जमाव | 180 |
| 38. | घोघर के निकट ज्वालामुखी की राख | 180 |
| 39. | पटपरा जमावःटुफा तथा पत्ती के फासिल | 181 |
| 40. | पत्ती के फासिल | 181 |
| 41. | 6फी06इ0 चौड़ा श्रृंग युक्त गौर का शिर | 182 |
| 42. | गौर का शिर | 182 |
| 43. | गैण्डे का जबड़ा सोन घाटी | 182 |
| 44. | कछुआ | 182 |
| 45. | अ सोन घाटी के निम्न पूर्वपाषाणिक उपकरण, | 184 |
| 45 | ब निम्नपूर्व पाषाणिक उपकरण | 185 |
| 46. | घवियालिस (Ghavialis) | 186 |
| 47. | भीम बैठका III F-23 के उत्खनन का अनुभाग | 192 |
| 47 | अ भीम बैठका अन्त आशूलियाँ उपकरण | 193 |
| 48. | बेराच, गम्भीरी घाटियों निम्न पूर्वपाषाणिक उपकरण | 198 |
| 49. | निम्न–पूर्वपाषाणिक उपकरण 16R लिथोयूनिट–III | 202 |
| 50. | निम्न–पूर्वपाषाणिक उपकरण 16R लिथोयूनिट–III | 203 |
| 51. | मध्य पुरापाषाणिक उपकरण | 207 |
| 52. | बेलन अनुभाग मे द्वितीय ग्रैवेल | 214 |
| 53. | अ बेलनघाटी के मध्यपूर्व पाषाणिक उपकरण | 215 |
| | ब बेलनघाटी के मध्यपूर्व पाषाणिक उपकरण | 216 |
| 54. | नागार्जुनकोण्ड C संस्थिति का अनुभाग | 220 |
| 55. | संस्थिति–1 नेवासा | 226 |
| 56. | नेवासा के निकट हाथीवेल के पास प्रवरा नदी का अनुभाग | 226 |
| 57. | मध्य पूर्वपाषाणिक उपकरण | 227 |
| 58. | सोन घाटी के मध्य पूर्वपाषाणिक उपकरण | 231 |
| 59. | अ पटपरा उत्खनन से प्राप्त मध्य पूर्वपाषाणिक उपकरण | 232 |
| | ब. पटपरा उत्खनन से प्राप्त मध्य पूर्वपाषाणिक उपकरण | 233 |
| 60. | भीमबेठका मध्यपूर्वपाषाकालीन उपकरण एफ23 | 234 |
| 61. | मध्य पूर्वपाषाणिक उपकरण लूनी घाटी | 237 |
| 62. | भारत के उच्च पूर्वपाषाण कालीन पुरास्थल | 243 |
| 63. | अ उच्च पूर्वपाषाण कालीन उपकरण – विंध्य क्षेत्र | 249 |
| 65ब | उच्च पूर्वपाषाण कालीन उपकरण | 249 |
| 65स | उच्च पूर्वपाषाण कालीन उपकरण | 250 |
| 64. | मातृ देवी की प्रतिमा | 251 |
| 65. | अ उच्च पूर्वपाषाणिक उपकरण रल्लकलावा | 252 |
| 66. | ब उच्च पूर्वपाषाणिक उपकरण रल्लकलावा | 253 |




Scanned with OKEN Scanner

| | | |
|---|---|---|
| 67. | हड्डी के उपकरण मुच्छतला चिन्तामनुगावी | 255 |
| 68. | अ शोरापुर दोआब उच्च पूर्वपाषाणकालीन उपकरण | 257 |
| | ब विविध प्रकार के ब्लेड | 258 |
| | स विविध उपकरण | 258 |
| 69. | उच्च पुरा पाषाण कालीन उपकरण बघोर जमाव | 264 |
| 70. | उत्खनन से प्राप्त विविध प्रकार के ब्लेड उपकरण | 265 |
| 71. | उत्खनन से प्राप्त विविध प्रकार के स्क्रेपर आदि उपकरण | 266 |
| 72. | उत्खनन से प्राप्त नालीमत कोर | 266 |
| 73. | पूजास्थल का चबूतरा | 266 |
| 74. | प्राकृतिक त्रिकोणात्मक स्वरूप का पत्थर–अग्र भाग तथा पृष्ठ भाग | 267 |
| 75. | आधुनिक पूजास्थल केराई–की–देवी | 267 |
| 76. | हरे रंग के चित्र | 268 |
| 77. | भीम बैठका शिलाश्रय नं0 III F-23 से प्राप्त उच्चपूर्व पाषाणिक उपकरण | 269 |
| 78. | भारत के मध्यपाषाण कालीन पुरास्थल | 273 |
| 79. | चोपनीमाण्डो अनुपुरापाषाणिक उपकरण | 283 |
| 80. | अ प्रारम्भिक मध्यपाषाण कालीन उपकरण | 284 |
| 81. | ब प्रारम्भिक मध्यपाषाण कालीन उपकरण | 284 |
| 82. | विकसित मध्यपाषाण कालीन अथवा आद्य नवपाषाण कालीन उपकरण | 285 |
| 83. | चोपनीमाण्डो गोलाकार/अण्डाकार झोपड़ियाँ तथा चूल्हे | 285 |
| 84. | धान की फली गुथी मिट्टी में धान की भूसी | 286 |
| 85. | शिलाश्रय के बाहर उत्खनन (मोरहना पहाड़) खनती का अनुभाग | 288 |
| 86. | मोरहना पहाड के शिलाश्रय नं0 4 | 289 |
| 87. | बघही खोर शिलाश्रय न0–1 | 290 |
| 88. | विस्तीर्ण मानव शवाधान | 291 |
| 89. | लेखहिया उत्खनन–एपीपेलियोलिथिक उपकरण: | 292 |
| 90. | लेखहिया शिलाश्रय 1 | 293 |
| 91. | लेखहिया शवाधान | 294 |
| 92. | गंगा घाटी की मध्य पाषाणिक पुरास्थल | 295 |
| 93. | अज्यामितिक प्राक् पॉटरी अवस्था उपकरण | 296 |
| 94. | ज्यामितिक प्राक् पॉटरी उपकरण | 297 |
| 95. | सराय नहर राय का प्लान | 297 |
| 96. | सराय नहर राय के शवाधान का प्लान | 298 |
| 97. | सराय नहर राय के शवाधान– क्रास अनुभाग | 298 |
| 98. | दो स्तरों में चार स्त्री पुरूष सयुक्त कंकाल | 298 |
| 99. | महदहा का प्लान | 300 |
| 100. | महदहा के चार कालखण्ड | 300 |
| 101. | महदहा के दो विस्तीर्ण शवाधान | 300 |
| 102. | युग्मित शवाधान | 301 |

103. अ आभूषण पहने पुरूष ,ब आभूषण पहने पुरूष 301
104. अ श्रृंग के अर्ध निर्मित आभूषण 302
ब श्रृंग के अर्ध निर्मित आभूषण 302
105. हड्डी के उपकरण 303
106. दमदमा का समेकित अनुभाग 303
107. विभिन्नकालों के शवाधानों का विहंगम दृष्य 304
108. विभिन्न कालों के फ्लोर 304
109. युग्मित शवाधान–उत्तर–पश्चिम दिशा 305
110. दमदमा का आवासीय जमाव 305
111. छिछला गर्त चूल्हा 306
112. दमदमा के लघुपाषाणोपकरण 306
113. छमदमा के सिल 306
114. बीरभानपुर के लघुपाषाणोपकरण 310
115. टेरी के लघुपाषाणोपकरण 311
116. लंघनाज का अनुभाग 313
117. लंघनाज के लघुपाषाणोपकरण 314
118. लंघनाज मानव शवाधान 315
119. आदमगढ के लघुपाषाणोपकरण 318
120. बगोर के लघु पाषाणोपकरण 320
121. तीन त्रिकोणात्मक शर,मध्य कटक युक्त ब्लेड,तकुआ 321
122. विस्तीर्ण शवाधान कंकाल 321
123. अगेट तथा कार्नेलिन का हार 322
124. नव पाषाण युगीन पुरास्थल 326
125. बुर्जहोम का समेकित अनुभाग 329
126. गोलाकार अथवा अण्डाकार गर्त 330
127. पाषाण उपकरण 330
128. हड्डी के उपकरण 332
129. कोलडिहवा, महगड़ा पुरास्थल विहंगम दृश्य 337
130. महगड़ा नवपाषाणिक उपकरण 338
131. महगड़ा नवपाषाणिक लघुपाषाणोपकरण 338
132. महगड़ा के धान की भूसी का माइक्रो फोटो 339
133. मिट्टी के सालन में धान की भूसी 339
134. खुर का चित्र 339
135. पशुबाड़ा 340
136. विन्ध्य के डोरीछाप पात्र 341
137. कोलडिहवा से प्राप्त डोरीछाप कटोरा 342
138. चिरांद के हड्डियों के उपकरण 343
139. चिंराद के साधारण तथा चित्रित पाटरी 344
140. सुआबेरी का अनुभाग 345

141. सुआबेरी की हस्तनिर्मित पाटरी 346
142. सुआबेरी के जले हुए अन्न 346
143. सुआबेरी का नवपाषाणिक सेल्ट 346
144. असम क्षेत्र से प्राप्त प्रस्तर कुल्हाड़ियाँ 347
145. कर्नाटक बेल्लरी से प्राप्त घर्षित प्रस्तर उपकरण 351



Scanned with OKEN Scanner

# तालिका

तलिका संख्या


| | | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|
| 1 | शिवालिक स्तरों का सह सम्बंधीकरण | 67 |
| 2 | सिंगरौली बेसिन के विभिन्न प्रकार के उपकरणों का प्रतिशत | 98 |
| 3 | कुलियाना आदि से प्राप्त उपकरणों की तालिका | 122 |
| 4 | चित्तूर क्षेत्र का सम्पूर्ण जमाव क्रम तालिका न0 4 | 133 |
| 5 | डी टेरा तथा पेटरसन के अनुसार नर्मदा के जमावों का क्रम | 169 |
| 6 | राजस्थान कीविभिन्न नदियों में उपकरणों का प्रतिशत | 200 |
| 7 | पटने के 10 मी0 जमाव का क्रम | 260 |
| 8 | बेलन घाटी में तृतीय ग्रैवेल के ऊपर का भू–वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक क्रम | 282 |




Scanned with OKEN Scanner

# आभार

हम निम्न संस्थाओ एवं व्यक्तियों के प्रति आभारी है जिनसे पुस्तक में उद्धृत चित्र प्राप्त हुए हैं :

**अलचिन,बी0 तथा आर0** – चित्र संख्या– 6,7,20,128,129,141,42

**अरविन न्यूमेयर** *चित्र संख्या– 77*

**भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण,** दिल्ली चित्र संख्या– 115,116,126,127,139,140

**फ्रण्ट लाइन सितम्बर 30,2016, टी0एस0 सब्रमनियन** चित्र संख्या– 141,142,143,144

**प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग विश्वविद्यालय इलाहाबाद** चित्र संख्या– 9,10,11,12,13,15,36,37,389,10,11,12,13,15,36,37,38,42,43,44,45,46,54,55,59,60,61,65,66,70,71,72,73 ,74,75,76,80,81,82,83,84,85,86,87,88,89,90,91,92,93,94,95,96,97,98,99,100,101,102,103,104,105,106 ,107,108,109,110,111,112,113,114,130,131,132,133,134,135,136,137,138

**पी0सी0पन्त तथा विदुला जायसवाल** चित्र संख्या–16,17,18,19

**दलीप चक्रवर्ती तथा मक्खन लाल** चित्र संख्या– 25,26,27,28,29,34,35,49,50,51,5253,121,122,123,124

**मूर्ति,एम0,एल0के0** चित्र संख्या– 21,67,68,69

**मिश्र,वी0,एन0** चित्र संख्या– 47,48,62,63,78

**डी टेरा पेटरसन** चित्र संख्या– 3,4,5

**सॉकलिया एच0डी0** चित्र संख्या– 7,8,22,23,30,31,32,33,56,57,58,117,118,119,120

# 1

# मानव का उद्भव एवं विकास

उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर यह कहना कठिन है कि आधुनिक मानव का विकास कब, कैसे तथा कहाँ हुआ। प्राप्त जीवाश्मित अवशेषों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि आदिनूतन काल (Oligocene) में सर्व प्रथम पारापिथिकस (Parapithecus) नामक जीव का विकास हुआ जिसे प्रोसीमियनों (Prosimeans) तथा मानव सम प्राणी (Homonids ) का मध्यस्थ कहा जा सकता है। सर्वप्रथम उत्तरी भारत के शिवालिक पर्वत माला में एक मानव सदृष बानर के जीवाश्मित अवशेष 1932 में प्राप्त हुए थे जिसे जी0 ई0 लूईस (G.E. Louis) ने रामापिथिकस (Ramapithecus) की संज्ञा प्रदान की। कालान्तर में अन्यत्र चीन, केनिया आदि से भी इसी प्रकार के जीवाश्मित अवशेष मिले, जिन्हें विभिन्न नामों यथा शिवपिथिकस, रूद्रपिथिकस, ड्रायोपिथिकस (Shivapithecus, Rudrapithecus, Driopithecus) आदि नामों से अभिहित किया गया। ये सभी अग्र बाहुओं का प्रयोग हाथ के रूप में करते थे, घासयुक्त खुले मैदान में रहते थे तथा सर्वहारी थे। इन जीवों को मानव विकास का प्रथम चरण कह सकते हैं। भौतात्विक स्तरों के आधार पर भूतत्ववेत्ता इसका जीवन काल एक करोड़ चालीस लाख से 10 लाख वर्षों के मध्य निर्धारित करते हैं।

आदिनूतन काल (Oligocene) के बाद अतिनूतन काल (Pliocene) के मध्य तक किसी भी मानव वंशी के जीवाश्म उपलब्ध नहीं हैं। अतिनूतन काल मानव के उद्भव एवं विकास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि इस समय से हमें मानव सम प्राणी के निश्चित प्रमाण मिलने लगते हैं। मानव विकास के दीर्घकाल में जिस शारीरिक परिवर्तन ने सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई वह द्विपादी विचरण क्षमता का विकास (Development of bipedal locomation ) था। उसके उपरान्त मस्तिष्क का विकास (Expansion of the brain), मादा के श्रोणीय क्षेत्र का स्वरूप परिवर्तन (Modification of female pelvis), मुंह, दॉत तथा जबड़ा (face, teeth,And jaw) के आकार का छोटा होना था। द्विपादी विचरण क्षमता का विकास सर्वप्रथम हुआ था। बाद में अन्य परिवर्तन हुए।

शारीरिक परिवर्तनों के अतिरक्त, मानव शिशु का दीर्घकाल तक अपने माता पिता पर पूर्ण अवलम्बन ने भी मानव की सांस्कृतिक निरन्तरता तथा विकास में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया है। दीर्घ बाल्यकाल ही वह काल है, जब शिशुओं में सामाजिकता (Socialisation) तथा सीखने की प्रक्रिया (Learning process) का न केवल प्रारम्भ होता है अपितु इसी समय वह भाषा तथा संस्कार के मूल तत्वों को भी ग्रहण करता है, जिसके परिणाम स्वरूप संस्कृति का हस्तान्तरण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्वतः होता रहता है।

प्रोसीमियनो तथा मेधावी मानव के मध्य में मानव–सम प्राणी की अनेक शाखाएँ मिली हैं जिन्हे **आस्ट्रेलोपिथिकस जीनस** के अन्तर्गत रखते हैं। इनके जीवाश्मित अवशेष अधिकांशतया —पूर्वी, मध्य, दक्षिणी, पश्चिमी—, अफ्रीका से ही प्राप्त हुए हैं। इन्हें प्रायः हम 40 लाख से 5,00000 वर्षों के

Scanned with OKEN Scanner

मध्य रख सकते हैं। इनमें से किसी को भी मेधावी मानव की विकासधरा से सम्बंधित नही किया जासकता।

आस्ट्रैलोपिथिसीन से अधिक कर्परीय क्षमता वाले एक मानव सम प्राणी का उद्भव लगभग 20 लाख वर्षो पूर्व होता है, जिन्हे मेधावी मानव की सीधी धारा में रखते हैं। इन्हें होमो हैबिलिस (Homo habilis) की संज्ञा से सम्बोधित किया गया है। 1960–61 में ओल्डुवाई गॉर्ज –तन्जानिया– में कुछ जीवाश्मित अवशेष लीके ने प्राप्त किए थे जिसमें से कुछ एक शिशु तथा कुछ एक वयस्को के थे। ये उन जीवाश्मों से भिन्न थे जिन्हें उसने 1959 में जीनजैनथ्रोपस कहा था। लुई लीकी (Louis Leakey), फिलिप टोबियाज तथा जान नैपियार (Philip Tobias – John Napier) ने इन्हें होमो हैबिलिस (Homo habilis) कहा। इनकी कर्परीय क्षमता 600 से 800 cc के मध्य थी। ये होमोपिथिसिन से थोड़े बड़े थे तथा उनका ब्रेनकेस (Brain case) अधिक गोलाकार था (Noel T. Boaz : 1979)। इनके खड़े होने का ढंग सीधा था तथा उनके हाथ उपकरण पकड़ने और बनाने योग्य थे। लीकी इसे मेधावी मानव की प्रारम्भिक प्रजाति भी कहते हैं। होमो हैबिलिस मानव वंशियों का प्रथम पूर्वज था जिसे उपकरणो के प्रयोग से सम्बधित किया जाता है।

## आस्ट्रेलोपिथिकस

प्रोसीमियनो तथा मेधावी मानव के मध्य में मानव–सम प्राणी की एक श्रृंखला मिलती है जिन्हें हम 40 लाख से 5,00000 वर्षो के मध्य रख सकते हैं। ये सभी **आस्ट्रेलोपिथिकस जीनस** के अन्तर्गत आते हैं तथा इन्हें **आस्ट्रेलोपिथिसीन अस्ट्रेलोपिथ** अथवा **आस्ट्रेलोपिथिकस** की संज्ञाओं से अभिहित किया जाता है। यह संयुक्ताक्षर 'आस्ट्रेलिस' तथा 'पिथिकस' शब्दों से निर्मित है जिसका शाब्दिक अर्थ दक्षिणी बानर है। इस मानव सम प्राणी के जीवाश्मित अवशेष अफ्रीका—पूर्वी, मध्य, दक्षिणी, पश्चिमी—–, से ही प्राप्त हुए हैं। अभी तक प्राप्त सभी जीवाश्मित अवषेषों को चार वर्गों में विभाजित करते हैं :–

1. आस्ट्रैलोपिथिकस अफरेन्सिस (AustralopithecusAfarensis)
2. आस्ट्रैलोपिथिकस एफ्रिकेनस (AustralopithecusAfricanus)
3. आस्ट्रैलोपिथिकस रोबस्टस (Australopithecus Robustus)
4. आस्ट्रैलोपिथिकस बोसी (Australopithecus Boisei)

इनके अतिरिक्त–**होमोहैबिलिस** (Homo Habilis) को भी प्रायः इसी वर्ग के अन्तर्गत रखते हैं।

## आस्ट्रैलोपिथिकस अफरेनसिस (AustralopithecusAfarensis)

हडर तथा लीटोलील, तन्जानिया (HadarAnd Laetoli ,Tanzania) से प्राप्त जीवाश्मित अवशेषों को आस्ट्रैलोपिथिकस अफरेनसिस की संज्ञा से अभिहित किया गया है। कुछ विद्वानों की धारणा है कि अफ्रीकेनस तथा अफरेनसिस में तिथिक्रम तथा शारीरिक संरचना में अन्तर है। प्रारम्भ में इन्हें 40 लाख से 30 लाख वर्ष पूर्व के काल कोष्ठक में रखा गया था किन्तु हडर से प्राप्त जीवाश्मों की आधुनिक निर्धारित तिथि 32 लाख वर्ष पूर्व मानी गई है। लूसी लगभग 29 लाख वर्षो

Scanned with OKEN Scanner

पूर्व हुई थी (Roger Lewin: 1983, pp. 43-44 )। डोनाल्ड जानसन (Donald Johnson ) तथा टिम ह्वाइट (Donald JohnsonAnd Tim White) के अनुसार इन जीवाष्मों के कपाल, दांत तथा जबड़े अफ्रेनसिस की अपेक्षा बानर (Ape) के अधिक निकट प्रतीत होते हैं यद्यपि उनका आकार अफ्रीकेनस के ही अनुरूप है। लूसी की लम्बाई 3.5 फीट तथा सबसें लम्बे जीवाश्म की लम्बाई 5 फीट है। इनकी कपालीय धारिता 415 cc है जो अफ्रीकेनस की कपालीय धारिता से थोड़ा ही कम है।

## आस्ट्रैलोपिथिकस एफ्रिकेनस (AustralopithecusAfricanus)

इनकी प्रथम खोज 23 दिसम्बर 1924 तथा पहचान 1925 में हुई थी जिसका श्रेय रेमण्ड डार्ट (Raymond Dart) को है (Carol R.EmberAnd Melvin Ember: 1993 , p.73)। उन्हे दक्षिण आफ्रीका के ट्वाना (Taung,SouthAfrica) नामक स्थल से 5– 7 वर्षो की एक बालिका के जीवाश्मित अवशेष : अधोहनु , चेहरे की अस्थि, कपाल के आन्तरिक भाग – प्राप्त हुए थे। डार्ट पूर्णतया आश्वस्त थे कि यह कपाल द्विपादीय पशु का है जिसका शिर मेरूदण्ड के ठीक ऊपर था। उन्होनें इसे आस्ट्रैलोपिथिकस अफ्रिकेनस– अफ्रीका का दक्षिणी बानर की संज्ञा प्रदान की। उनकी धारणा थी कि यह बानर (Ape) से अधिक मानव के निकट है। चूँकि यह अपने प्रकार का एक मात्र जीवाश्मित अवशेष था और वह भी एक अल्प वयस्क का, अतः उस पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। किन्तु बीसवीं च्चताब्दी के तृतीय दशक से परिस्थिति में परिवर्तन हुआ। तृतीय दशक में राबर्ट ब्रूम (Robert Broom) को दक्षिणी अफ्रीका के स्टाक्रफौनटीन (Sterkfontein) से प्रथम वयस्क जीवाश्म प्राप्त हुआ जिसने डार्ट के निष्कर्षो की पुष्टि की। किन्तु इनको मान्यता उस समय तक प्राप्त नहीं हुई जब तक कि ली ग्रास क्लाक्र (Le Gross Clark) का विवरण प्रकाशित नही हुआ (EldredgeAnd Tattersal : pp.80-90)।

आस्ट्रैलोपिथिकस एफ्रीकेनस को प्लीसियनथ्रोपस, प्रीमीथिएस, टिलैनथ्रोपस कैपेन्सिस के नामों से भी अभिहित किया गया है। अद्यावधि तक इनके इतने जीवाश्म प्राप्त हो चुके हैं कि इनके शारीरिक स्वरूप एवं संरचना के विषय में बहुत कुछ ज्ञात हो चुका है। ये आकार में छोटे तथा छरहरे बदन के थे। वयस्क की लम्बाई 3.3 से 4.5 फीट के अन्तर्गत होती थी तथा इनका वजन 45 से 90 पाउण्ड के अन्तर्गत था (Frederick S. zalayAnd Erick Delson : 1979, p.504)। उनका ठुड्डी विहीन जबड़ा बानर के समान था किन्तु दॉत आधुनिक मानव के समान तथा माथा चौड़ा और भौहें साधारण उभरी हुई। उनका श्रोणी क्षेत्र कटोरेनुमा था (Pelvis broad,bowl shaped), जो उनके द्विपादी होने का भी परिचायक है। उनके रीढ का आकार इस बात का प्रमाण है कि वे सीधे चलते थे। कटि का घुमाव तथा 'S' आकार की रीढ़ यष्टि (Lumber curveAnd the 'S' shaped spinal column ) केवल मानव सम प्राणी में ही होते हैं।

## आस्ट्रैलोपिथिकस रोबस्टस तथा बोसी (Australopithecus RobustusAnd Boisei)

इन्हें पैरोनथ्रोपस रोबस्टस तथा पैरोनथ्रोपस कैसिडेन्स भी कहा गया है। प्रारम्भ में जो

जीवाश्मित अवशेष दक्षिण अफ्रीका से प्राप्त हुए थे उन्हें आस्ट्रैलोपिथिकस रोबस्टस (A. Robustus) कहा गया था तथा कालान्तर में जो पूर्वी अफ्रीका से प्राप्त हुए उन्हें आस्ट्रैलोपिथेकस बोसी (A. Boisei) कहा गया था। इनकी तिथि 20 लाख से 10 लाख के बीच आंकी गई है। इनका यह नामकरण उनकी शारीरिक गठन को ध्यान में रखकर किया गया था। अफ्रीकेनस की तुलना में इनके चर्वणक तथा प्रचर्वणक (MolarsAnd premolars) बड़े थे, रदनक तथा कृन्तक (IncisorsAnd canine) छोटे। इनके करोटि तथा भौं कटक (Cranial crestsAnd ridges) अधिक विकसित थे। उनके कपाल की हड्डियाँ अधिक मोटी तथा उनके हाथ का ऊपरी भाग और कंधे भी अधिक पुष्ट थे। इनका वजन 80 से 120 पाउण्ड था तथा औसत लम्बाई 4.5 फीट से 5+ थी। इनकी कर्परीय धारिता 530 cc मानी गई है।

प्रारम्भ में धारणा थी कि अफ्रीकेनस मांसाहारी तथा रोबस्टस शाकाहारी थे किन्तु दांतों के परीक्षण के आधार पर इस प्रकार के निष्कर्षों की पुष्टि करना सम्भव नहीं है। सम्भवतः दोनों ही मूलतः शाकाहारी थे।

यहाँ यह स्पष्ट करना अनुचित नहीं होगा कि प्रत्येक वर्ग —अफ्रेनसिस तथा अफ्रीकेनस —के सभी प्राप्त जीवाश्मित अवशेष समरूप नही हैं। उनमें परस्पर थोड़ा बहुत अन्तर मिलता है। इन समूहों में भी एक से अधिक प्रजातियाँ हो सकती हैं, इस सम्भावना को नकारा नहीं जा सकता। अभी भी निरन्तर नवीन सामग्री प्रकाश में आ रही हैं।

कुछ विद्वानों ने चीन तथा जावा से प्राप्त जीवाश्मित अवशेषों के भी आस्ट्रेलोपिथिसीन कहा है किन्तु यह अभी विवादास्पद है।

## मानव विकास की धारा

अब तक हुए अनुसंधानों से यह स्पष्ट है कि आधुनिक मानव अथवा मेधावी मानव के विकास का इतिहास अति प्राचीन है तथा उसकी धारा भी एकदम सीधी नहीं है। प्रारम्भिक विकास के सम्बन्ध में दो प्रमुख मत हैं : एक मत के अनुसार अफ्रिकेनस तथा अफरेनसिस परस्पर भिन्न हैं तथा दूसरे के अनुसार वे एक हैं। जो विद्वान इन्हें भिन्न मानते हैं उनके अनुसार अफ्रीकेनस मानव मेधावी मानव का पूर्ववर्ती है। यह एक मूल प्रश्न है कि मेधावी मानव शाखा का विलगाव कब हुआ तथा आस्ट्रेलोपिथिकस की कौन सी स्पेसी (Species) उस शाखा की पूर्ववर्ती थी ?

प्रायः विद्वानों की धारणा है कि 30 लाख से 10 लाख वर्षों के मध्य मानव सम प्राणियों की दो शाखायें विद्यमान थीं :ए० रोबस्टस तथा होमो हैबिलिस। आ० रोबस्टस के जीवाश्मित अवशेष लगभग 10 लाख वर्षो तक मिलते हैं। उसके बाद वह पूर्णतया विलुप्त हो जाता है। इसी काल कोष्ठक में एक और मानव सम प्राणी जिसे होमो हैबिलिस कहा गया है के अवशेष प्राप्त होते हैं जो आगे भी चलता है। प्रायः इसे आधुनिक मानव की सीधी शाखा में मानते हैं। इस प्रकार मानव विकास का निम्न क्रम माना जा सकता है :

Scanned with OKEN Scanner

| | | |
|---|---|---|
| 1m | | Homo Sapiens |
| 2m | A. Robustus | Homo Erectus |
| 3m | A. Africanus | |
| 4m | A.Afarensis | |

## होमो हैबिलिस :

आस्ट्रैलोपिथिसीन से अधिक कर्परीय क्षमता वाले एक मानव सम प्राणी का उद्भव लगभग 20 लाख वर्षो पूर्व होता है, जिन्हे मेधावी मानव की सीधी धारा में रखते हैं। इन्हें होमो हैबिलिस (Homo habilis) की संज्ञा से सम्बोधित किया गया है। 1960–61 में ओल्डुवाई गॉर्ज –तन्जानिया– में कुछ जीवाश्मित अवशेष लीके ने प्राप्त किए थे जिसमें से कुछ एक शिशु तथा कुछ एक वयस्क के थे। ये उन जीवाश्मों से भिन्न थे जिन्हें उसने 1959 में जीनजैनथ्रोपस कहा था। लुई लीकी (Louis Leakey), फिलिप टोबियाज तथा जान नैपियार (Philip Tobias & John Napier) ने इन्हें होमो हैबिलिस (Homo habilis) कहा। इनकी कर्परीय क्षमता 600 से 800 cc के मध्य थी। ये होमोपिथिसिन से थोड़े बड़े थे तथा उनका ब्रेनकेस (Brain case) अधिक गोलाकार था (Noel T. Boaz: 1979)। इनके खड़े होने का ढंग सीधा था तथा उनके हाथ उपकरण पकड़ने और बनाने योग्य थे। यहाँ पर स्पष्ट कर देना अनुचित नहीं होगा कि इनमें से किसी के साथ उपकरण इस प्रकार से प्राप्त नहीं हुए थे जिन्हें जीवाश्मित अवशेषों से सम्बंधित किया जा सकता है।

लीकी का विचार है कि हैबिलिस समूह की मानववंशी शाखा ही आगे विकसित होती गई तथा अन्य इससे आगे नहीं बढ़ पाए। इसे मेधावी मानव की प्रारम्भिक प्रजाति भी कहते हैं।

## आस्ट्रैलोपिथिसिन मानव : पारिस्थितिकी एवं संस्कृति

आस्ट्रैलोपिथिसिन वर्ग में पाँच विभिन्न समूह के मानव सम प्राणियो को रखते है। वे होमों अफरेनसिस, आ0 अफ्रिकेनस, आ0 रौबस्टस, आ0 व्यासी तथा होमों हैबिलिस हैं। इन सभी की शारीरिक संरचना एक समान नहीं थी तथा उनकी कर्परीय क्षमता में भी यत्किंचित अन्तर था। इनमें से कुछ इकहरे प्रकार के तथा छोटे कद के 3.5 से 4.5 फीट तथा 45 से 90 पाउण्ड वजन के थे, कुछ अधिक लम्बे 4.5 से 5+फीट के तथा 80 से 120 पाउण्ड वजन के थे। कुछ विद्वानों की धारणा है कि इन दोनो मानव प्रकार की भोज्य सामग्री भी भिन्न रहीं होगी। तगड़े प्रकार वालों का भोजन मूलतःशाकाहारी रहा होगा क्योंकि उनके दांतो की बनावट, बड़ा चावर्णक की उपस्थिति, चबाने वाली पेशियों का अस्थि पर चिन्ह आदि इसी का संकेत करते हैं। दूसरे प्रकार वाले सर्वभोजी थे। वे छोटे–बड़े जन्तुओ के मांस के साथ वनस्पति पदार्थ भी खाते थे। कपालीय धारिता के आधार पर प्रायः यह अनुमान किया जाता है कि इनमें बोलने की क्षमता नही थी किन्तु संकेतो तथा विविध प्रकार की आवाजों के आधार पर परस्पर प्रतिक्रियायें करते रहे होंगे।

इनकी शारीरिक संरचना के आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि ये अपने पुष्ट पैरों पर

Scanned with OKEN Scanner

चल तथा दौड़ सकते थे और हाथों का उपयोग भी कर सकते थे।

उपकरणों की परम्परा का विकास 24 लाख से 15 लाख वर्षो पूर्व से प्रारम्भ मान सकते हैं। इसके प्रमाण हडर ईथोपिया से प्राप्त हुए हैं। ओमो यूथोपिया (Omo Ethiopia) में उनकी तिथि 20 लाख वर्ष पूर्व मानी गई है (Isaac : pp.7-8)। इन स्थलों से प्राप्त उपकरणों के आधार पर तत्कालीन मानव की जीवन पद्धति आदि के विषय में कुछ कहना कठिन है, क्योंकि उनके साथ कुछ और नहीं मिलता। ये उपकरण अत्यन्त प्रारम्भिक अवस्था के प्रतीत होते हैं। ओल्डुवाई के बी1 (B1) जिसकी तिथि निम्न प्रातिनूतन काल निर्धारित की गई है से काफी संख्या में एकपक्षीय तथा द्विपक्षीय कोर उपकरण तथा फलक (UnifacialAnd bifacial core toolsAnd flakes) आदि प्राप्त हुए हैं। निकोलस टौथ तथा पीटर जोन्स (Nicholas TothAnd Peter Jones) ने इन उपकरणों का विविध प्रकार से प्रयोग करके उनके उपयोगों को जानने का प्रयास किया है किन्तु प्रयोग के आधार पर केवल यही जाना जा सकता है कि उनका कितने प्रकार से उपयोग हो सकता था। यह जानना कठिन है कि उनका क्या उपयोग था। लारेंस कीले (Lawrence Keeley) ने उपकरणों में कार्यांग पर मिलने वाली पालिश का अध्ययन करके यह निश्कर्ष निकाला है कि इस प्रकार की पालिश मांस को काटने, लकड़ी को काटने, छीलने तथा पौधों के तनों को काटने से आती है। ओल्डवुाई बेड I (Bed I) से प्राप्त हड्डियों के काटने के निशान (Cut marks) के आधार पर पैट शिपमैन (Pat Shipman) की धारणा है कि 2 से 1.7 मिलियन वर्षो पूर्व मानव सम प्राणी के मांस प्राप्त करने का प्रमुख साधन दूसरे के शिकार को लेना (Scavenging) था। इसके अतिरिक्त स्वयं आखेट भी करते रहे होगें। बेड 1 तथा बेड 2 से प्राप्त पशुओं की हड्डियों के आधार पर कहा जा सकता है कि वे विचरणशील प्राणी थे क्योंकि केवल सूखे मौसम में ही इन स्थलों का उपयोग किया गया है। अधिकांश हड्डियाँ हिरन तथा सुअर की थी, किन्तु कुछ हाँथी और जेराफ की भी थी (Glynn Isaac: 1971, p.289)। यह कहना कठिन है कि जहां उपकरण तथा हड्डियाँ मिले हैं वे निवास स्थल (Home bases) थे, जहाँ मानव सम प्राणी भोजन लाते थे तथा नवजात शिशुओं, मां तथा बच्चों के साथ काट कर खाते थे। लिंग के आधार पर काम का बटवारा हो सकता है और नही भी। वस्तुस्थिति क्या थी कहना कठिन है।

इनके परिवेश को समग्र रूप से देखने से प्रतीत होता है कि सीखने की क्रिया ने इनके जीवन में विशेष स्थान बना लिया था। इनके बच्चे अपनी माँ पर बानरो के बच्चों की अपेक्षा अधिक निर्भर थे, क्यों कि उनका शिशु काल अधिक प्रलम्बित था।

## होमो इरेक्टस

होमो इरेक्टस मेधावी मानव का पूर्ववर्ती है। होमो इरेक्टस का शाब्दिक अर्थ है सीधा खड़ा होने वाला मानव वंशी। इसके अन्तर्गत निम्न तथा मध्य अतिनूतन काल (Pliocene pd.) के उन मानववंशी जीवाश्मों को सम्मिलित करते हैं जो एशिया, अफ्रीका तथा यूरोप के विभिन्न स्थलों से समय–समय पर प्रतिवेदित होते रहे हैं। इन्हे साधारणतया दस लाख साठ हजार से दो लाख वर्षों

Scanned with OKEN Scanner

के अन्तर्गत रखते हैं। इस वर्ग के अन्तर्गत पिथकैन्थ्रोपस, साइनेन्थ्रोपस, यूरोपीय इरेक्टस आदि सभी की गणना करते हैं।

## जावा पिथकैन्थ्रोपस (Java Pithcanthropus)

होमोइरेक्टस के जीवाश्मित अवशेष सर्वप्रथम युजिन ड्युबाय (Eugene Dubois) को जावा में सोलो नदी के किनारे ट्रिनिल ग्राम के पास उत्खनन में दो बार में प्राप्त हुए थे। सर्वप्रथम एक कपालीय गुम्बज (Skull cap) मिला था जो निश्चित रूप से बानर (Ape) से बड़ा था तथा आधुनिक मानव से छोटा था। उसकी कर्परीय क्षमता मात्र 900 cc थी जब कि आधुनिक मानव की कर्परीय धारिता 1300+ cc होती है। दूसरे वर्ष वहीं से उन्हें एक जाँघ की हड्डी (Thigh bone) मिली जो आधुनिक मानव के समान प्रतीत होती थी। फ्लोरीन परीक्षण से यह निश्चित किया जा सका कि ये वास्तव में समकालीन तथा एक ही व्यक्ति के हैं। यूजिन ने इसे पिथकैन्थ्रोपस इरेक्टस (ErectApe man) अर्थात बिना बोलने वाला मानव–बानर की संज्ञा प्रदान की जिसे अब होमों इरेक्टस के नाम से भी अभिहित करते हैं। उस समय तक किसी को भी इसकी निश्चित जानकारी नही थी कि ये अवशेष मानव के हैं अथवा बानर (Ape) के हैं।

बीसवीं सदी के तीसरे दशक में पुनः जावा में युजिन ड्युबाय के पूर्ववर्ती कार्यों को बॉन कोनिग्सवाल्ड ने बढ़ाया। उन्हें जावा के ट्रिनिल ग्राम से 80 किलोमीटर दूर संगारिन ग्राम से 1936–39 में महत्वपूर्ण जीवाश्मित अवशेष प्राप्त हुए थे। जिन्हें Pith. II, III, IV कहा गया। Pith. II की कर्परीय क्षमता 750 cc थी। कोनिग्सवाल्ड (Koenigswald) की धारणा थी कि वह एक स्त्री का कपाल होगा तथा ड्यूवाय ने जिसे खोजा था वह पुरूष का होगा। Pith. IV की कर्परीय धारिता 950 – 1000 cc थी। इन्होंने पूर्व में किये गए अनुसंधानों तथा निष्कर्षो की पुष्टि की। वान कोनिग्सवाल्ड ने 1936 में सुरवय नगर के निकट मोडजोकर्टो से एक अन्य विकसित शिशुकपाल के कुछ जीवाश्म प्राप्त किए थे। इसे पूर्व में पिथिकेनथ्रोपस मोडजोकरटेनिसिस कहा था। अब यह पिथिकैनथ्रेपस इरेक्टस के नाम से ही जाना जाता है। यह लगभग 7 लाख वर्ष पुराना बताया गया। यह कपाल 133 मि0मी0 लम्बा था तथा इसकी कर्परीय क्षमता 650 cc थी।

ड्युवाय को, यह उल्लेखनीय है कि, जीवाश्मों के साथ कोई भी उपकरण नही प्राप्त हुए थे। किन्तु कोनिग्सवाल्ड को 1939 में उन्हीं स्थलों से Pith. II, III तथा IV के जीवाश्मित अवशेष तथा कुछ रूक्ष प्रस्तर उपकरण भी प्राप्त हुए।

## जावा पिथकैन्थ्रोपस (Java Pithcanthropus)

जावा में हुए अनुसंधानों को चीन में प्राप्त जीवश्मों ने न केवल पूरी तरह पुष्ट किया अपितु और भी महत्वपूर्ण जानकारी दी। पिथकेनथ्रोपस के समान सिनेन्थ्रोपस को भी चतुर्थक के प्रथम चरण में रखते थे। पेकिंग से 54 कि0मी0 दक्षिण पश्चिम में चौकोतियाँ ग्राम के पास चूने पत्थर की एक पहाड़ी में स्थित गुफायें बहुत प्राचीन काल से 'ड्रैगन बोन' (Dragon bones) के लिए विख्यात थी जिनका उपयोग दवा के रूप में किया जाता था। वहीं से 1927 में वर्गर वोहलिन को एक बच्चे

Scanned with OKEN Scanner

का चर्वण दाँत ( Molar tooth) प्राप्त हुआ। डेविडसन ब्लैक ने इसका अध्ययन किया तथा उसकी संरचना के आधार पर घोषित किया कि वह एक अभी तक अज्ञात मानव–सम प्राणी का है। उसने इसका नामकरण सिनैन्थ्रोपस पेकिनेनसिस (Sinanthropus Pekinensis) किया। इस अनुसंधान ने पुराप्राणिशास्त्र वेत्ताओं में एक नवीन धूम मचा दी, और अत्यन्त जोर शोर के साथ खोज होने लगी। फलतः कोटजेतंग (Kotzetang) की गुफा से बहुत से जीवाश्मित अवशेष प्राप्त हुए। पिथकेन्थ्रोपस के साथ तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात हुआ कि उनमें पारस्परिक समानता है। अभी तक चीन से प्राप्त जीवाश्मित अवशेष लगभग 50 व्यक्तियों के हैं। प्रथम कर्पर (Cranial vault) 23मी0 की गहराई से एक गैण्डे (Rhinoceros skull) के कपाल के साथ मिला था। यह एक बालक का था तथा इसकी खोज पी वेन चिंग (Pei Wen-Ching) ने 1929 में की थी। 1930 में पुनः उन्हें 30–35 वर्ष की एक महिला का कर्पर (Cranial vault) मिला। इसकी कर्परीय क्षमता 1,025 cc थी।

सिनेन्थ्रोपस के कपाल का आकार पिथकेन्थ्रोपस के ही समान है किन्तु सिनेन्थ्रोपस कपाल (Sinanthropus skull) का कर्पर (Vault) थोड़ा ऊँचा तथा भौंकटक (Supraorbital ridge) अधिक मोटा है। इसके आधार पर उसे नियण्डर्थल मानव (Neanderthal Man) के निकट कहा गया है। ये सम्भवतः दाहिने हाथ का प्रयोग करते थे।

होमोइरेक्टस परिवार का सबसे प्राचीन एवं पूर्ण जीवाश्मित अवशेष अफ्रीका में तुर्काना झील के पश्चिमी किनारे नारियोकोटोम (Nariokotome) से प्राप्त हुआ है। यह अगस्त 1984 में कमोया कीमेन ( Kamoya Kimen) को रिचर्ड लीके तथा एलन वाकर (Alan Waker) के एक्सपेडीशन में प्राप्त हुआ था। अभी तक प्राप्त सभी होमो इरेक्टस के जीवाश्मित अवशेषों में यह सबसे पूर्ण, सुरक्षित तथा प्राचीन है। उसके दाँत, श्रोणी क्षेत्र (Pelvis), हाँथ तथा पैरों की हड्डियों के परीक्षण से स्पष्ट है कि वह जीवाश्म लगभग 12 वर्ष के बालक का था। इसकी प्राचीनता 1,60,000 वर्ष आंकी गई है।

यह स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं है कि होमोइरेक्टस अपने मूल निवास अफ्रीका से कब और क्यों अन्य स्थलों में वितरित हुए। मिलफोर्ड वालपौफ (Milford Wolpoff) ने इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया 'They left when they did because they wanted to, because they had to,And especially because they could"( National Geography: Nov.1985, p 609).

उसकी शारीरिक संरचना में प्रमुख परिवर्तन मस्तिष्क में हुआ जो अब लगभग 1,000 cc हो गया। आधुनिक मानव में यह 1,350 cc है इससे उसमें बोलने की क्षमता में अधिक विकास हुआ होगा। चौंकोतियॉ के साक्ष्यों के आधार पर कह सकते हैं कि वह अग्नि को प्रज्वलित करने तथा भोजन को पकाने की विद्या से परिचित हो गया था। उसके उपकरण भी अब अधिक सुन्दर एवं सुडौल बनने लगे थे। इरेक्टस में विकसित बौद्धिक क्षमता के कारण अधिक बौद्धिक जिज्ञासा (Intellectual curiosity) रही होगी। सम्भवतः अफ्रीका में जनसंख्या का दबाव भी पड़ा होगा। उसमें

Scanned with OKEN Scanner

वातावरण का दोहन करने की अधिक क्षमता थी। आखेट के लिए वह पहले से अधिक सक्षम था। इसका प्रभाव क्षेत्र के संसाधनो पर भी पड़ा होगा। संसाधनों की दिन प्रतिदिन बढ़ती हुई कमी ने भी उसे स्थान परिवर्तन के लिए बाध्य किया होगा। अतःवह नवीन स्थलों में गया। हिन्द महासागर (Indian Ocean) को पार कर ओल्डुवाई से जावा का लगभग 8000 मील की दूरी तय की होगी। इस सफर में उसने विविध प्रकार के मौसमों ——शुष्क, आर्द्र शीतल——को झेला होगा। उसके अस्थि अवशेष अफ्रीका (पूर्वी, उत्तरी तथा दक्षिणी) से अधिक एशिया में मिले हैं। नर्मदा घाटी से प्राप्त अस्थि अवशेष भी सम्भवतःइसी मानव वंशी के हैं। शारीरिक बनावट की दृष्टि से वह अन्य मानव वंशियों से चलने में अधिक सक्षम था। इसका कपालीय समावेष 775—1300 cc है। अनुमानतः उसमें बोलने तथा सोचने आदि की क्षमता पहले से अधिक विकसित थी। बानर (Ape) के मस्तिष्क में वे केन्द्र विकसित नही मिलते हैं, जिनसे बोलने की क्षमता का विकास होता है। यह उल्लेखनीय है कि एशिया से प्राप्त मानव प्रकारों के कपाल सभी मानव वंशियों से अधिक मोटे है (नैशनल ज्याग्रेफिक पृ0 609 वाल्यूम 168 न0 5 नवम्बर 1985)। यहाँ यह भी विशेष उल्लेख्य है कि अधिकांशं प्राप्त कपालों में अनेक छेद है, ऐसा क्यों है, कहना कठिन है। इस सम्भावना को नकारा नहीं जा सकता है कि इनका सम्बन्ध जादू टोने आदि से रहा हो अथवा ये कपाल भक्षी रहे हों।

### ब : यूरोपीय हेमोइरेक्टस (European Homoerectus)

भारत, चीन तथा दक्षिण पूर्वी एशिया के अतिरिक्त होमो इरेक्टस यूरोप में भी अन्तर्हिम कालों में जब हिम शीत की विभीषिका अपेक्षाकृत कम रही होगी पहुँचा होगा। यूरोप से उसके जीवाश्मित अवशेष कम मिले हैं। फ्रांन्स के पायरेनीस पहाड़ी में हेनरी तथा मेरी को प्राप्त अरागो (Arago) अवशेष, जर्मनी का हाइडेलवर्ग (Heidelberg) जबड़ा (Jaw) तथा हंगरी के वर्तेजोल्लोस (Vertesszollos) से प्राप्त कपाल का पृष्ट भाग प्रायः इरेक्टस से सम्बन्धित किए जाते हैं। किन्तु इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। अनेक विद्वान इन्हें होमो सैपियन्स (Homo Sapiens) का प्राचीन (Archaic) स्वरूप मानते है (*National Geographic:* Ibid.p.610)। ये सभी 2.75 लाख वर्ष से तीन चार लाख वर्ष प्राचीन बताए जाते हैं।

फ्रान्स में सोलिलहेक (Soleilhac) तथा स्पेन (Spain) में अम्बरोना (Ambrona) तथा टोराल्बा (Torralba) में निश्चित रुप से मानव वंशी के आवास के प्रमाण प्राप्त हए हैं किन्तु उसका कोई भी जीवाश्मित अवशेष नहीं मिला है।

## संस्कृति

मानव विकास के परिप्रेक्ष्य में होमोइरेकटस एक महत्वपूर्ण आयाम है। इनके साथ ही मानव संस्कृति का विकास वास्तविक रूप से प्रारम्भ होता है। ये प्रस्तर उपकरणों का निर्माण करने लगे थे तथा उनका उपयोग भी करते थे। साधारण रूप से विश्व के विभिन्न भागों में ये 300,000 से 100,000 वर्षों तक प्रमुख रूप से विद्यमान थे। विश्व के विभिन्न स्थलों से प्राप्त होमो इरेक्टकल्स प्रकार के मानव में एकरूपता नहीं है। उनके कर्परीय धारिता, अधोहनु, चिबुक, कपालगुहा, नेत्र गुहा

Scanned with OKEN Scanner

आदि में अन्तर है। इनकी औसत लम्बाई 5.5 से 6.0 फीट थी तथा कर्परीय धारिता 1054 cc (साइनेन्थ्रोपस) – 900 cc (जावा) के लगभग थी।

ये उपकरणों का निर्माण करते थे तथा उसके उपयोग से इनके जीवन शैली में गुणात्मक विकास हुआ होगा। ये चीन में चौकोतियाँ अथवा सिनेन्थ्रोपस, जावा में पतजीतेनियन संस्कृति तथा अफ्रीका में आश्यूल परम्परा के कर्णधार थे। पूर्वी अफ्रीका में लेवालेवा संस्कृति के विकास का श्रेय भी इन्हीं लोगों को है।

ये लोग अग्नि से मात्र परिचित ही नहीं थे, अपितु उसका उपयोग भोजन को पकाने के लिए तथा ठण्ड से बचने के लिए भी करते थे। चौकोतियाँ तथा पूर्वी अफ्रीका में कीनिया (Kenya) से इसके अकाट्य प्रमाण मिले हैं। ये अग्नि को प्रज्वलित करना ही नही अपितु प्रज्वलित रखना भी जानते थे। अग्नि पर नियंन्त्रण मानव विकास की प्रथम सशक्त उपलब्धि थी। इसने मानव विकास तथा जीवन शैली दोनों को ही विशेष रूप से प्रभावित किया। शारीरिक संरचना तथा दांतों की बनावट की दृष्टि से मानव शरीर कच्चे मांस भक्षण के उपयुक्त नही है किन्तु मांस को पकाने के बाद वह मानव भोजन के लिए अधिक पच्य होने के कारण उपयोगी हो गया। भोजन में हुए परिवर्तनों का प्रभाव मानव के विभिन्न अंगों पर पड़ा। छोटी आँत कुछ और छोटी तथा चर्वण कमजोर तथा छोटा हो गया। अग्नि का उपयोग, ये पशुओं को डराने तथा भगाने में भी करते थे। स्पेन में तोराल्बा तथा अम्ब्रोना (TorralbaAndAmbrona) में क्लाक्र हौवेल (Clerk Hawell) के उत्खनन से ज्ञात होता है कि अग्नि का प्रयोग हाथियों को डराकर दलदली क्षेत्र में फंसाने के लिए किया गया था ( नैश्नल ज्याग्रेफी वही.)।

ये लोग सामाजिक प्राणी थे तथा परस्पर सहयोग के लिए समूह में रहते थे। विशालकाय पशु जैसे हाथी का शिकार ये पारस्परिक सहयोग से ही करते रहे होगे। शिकार के लिए ये बड़े विशालकाय पशुओं हाथी, गैंडा, भैंसे आदि के बच्चों को अधिक पसन्द करते थे। इसके अतिरिक्त हिरन, सुअर आदि अन्य प्रिय पशुवर्ग थे। स्पेन में तौराल्बा तथा अम्ब्रेना और तन्जानिया (Tanzania) मे ऐसे स्थलों को पहचाना गया है जिसका उपयोग क्रमशः हाथी तथा गैंडो को काटने के लिए किया जाता था।

उपर्युक्त पशुवर्गों के अतिरिक्त ये पानी के जीवों जैसे झींगा, मछली आदि का भी उपयोग करते थे। अनेक स्थलों पर छिद्रयुक्त कपाल मिले है जिसके आधार पर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या ये कपालभक्षी एवं स्वजातिभक्षी थे ? स्पष्ट कहना कठिन है।

निवास के लिए ये प्रायः ऐसे स्थलों को चुनते थे जो पानी के निकट होता था, जहाँ हरियाली होती थी तथा वनस्पति आहार वाले पशु बहुतायत से रहते थे। गुफाओं में भी इनके आवास मिले हैं। आनुमानतः अत्यान्तिक जलवायु से बचाव के लिए ये गुफाओं का प्रयोग करते रहे होगे। इसके भी प्रमाण मिले हैं कि खुले स्थलों में वायु से बचाव करने के लिए ये पत्थरों को एकत्रित करके आड़ के लिए उसकी दीवाल सी बना देते थे। इस प्रकार के प्रमाण भारत तथा अफ्रीका में आवास स्थलों से प्राप्त हुए हैं।

नाइस (Nice) के निकट टेरा अमाटा (TerraAmata) में हुए उत्खननों से ज्ञात होता है कि ये

Scanned with OKEN Scanner

रहने के लिए झोपड़ी का निर्माण करते थे। वहाँ पर 30x15 फीट के आकार के झोपड़ी के प्रमाण मिले हैं। इसके अतिरिक्त वहाँ के आवास स्थल पर चूल्हों के प्रमाण भी मिले हैं, जिनका उपयोग भोज्य सामाग्री को पकाने के लिए किया जाता था।

## नियण्डर्थल मानव (Neanderthal Man)

अधिकांश भूतत्वशास्त्रियों की धारणा है कि होमोइरेक्टस (Homoerectus) कालान्तर में मेधावी मानव (Homo Sapiens) में विकसित हुआ। किन्तु यह विवाद का प्रश्न है कि परिवर्तन सर्वप्रथम कब, कहाँ हुआ ? इसमें भी मतभेद है कि ऐसे जीवाश्मित अवशेष जो 500,000 से 200,000 वर्षों पूर्व के मध्य मिलते हैं तथा जिनमें होमोइरेक्टस (Homoerectus) तथा आधुनिक मेधावी मानव ;भ्वउव ैंचपमदेद्ध के तत्व मिश्रित रूप से मिलते हैं, उनका वर्गीकरण कैसे किया जाय। क्यों कि कुछ जीवाश्मों को जिन्हें कुछ प्राणिशास्त्र वेत्ता होमोइरेक्टस (Homoerectus) कहते हैं उन्हें अन्य 'पुरातन मेधावी मानव' ("Archaic" Homo Sapiens) की संज्ञा प्रदान करते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ की धारणा है कि इस प्रकार के वर्गीकरण की आवश्यकता नहीं है क्योंकि ये दोनों वर्ग विकास की दो अवस्थाओं का द्योतन करते हैं। प्रायः विद्वानों ने इन्हें तीन वर्गो में विभाजित किया है:

1. पुरातन मेधावी मानव (Archaic " Homo Sapiens")
2. होमो सैपियन नियण्डर्थेलेनसिस (Homo Sapien Neanderthelensis)
3. होमो सैपयिन्स सैपयिन्स (Homo Sapiens Sapiens)

## पुरातन मेधावी–मानव (Archaic " Homo Sapiens")

मिश्रित लक्षणों वाले जीवाश्मित अवशेष अफ्रीका, यूरोप तथा एशिया में अनेक स्थलों से मिले हैं। उदाहरणार्थ जाम्बिया में ब्रोकेनहिल तथा दक्षिण अफ्रीका गणराज्य के सल्डान्हा खाड़ी के एलनड्स फौनटीन स्थल से जीवाश्मित अवशेष प्राप्त हुए हैं। इन्हें 200,000 वर्षों पूर्व का माना गया है। ब्रोकेनहिल जीवाश्म के मानव कपाल की कर्परीय क्षमता 1200 cc है जो होमोसैपियन्स की सीमा में आती है। किन्तु उसके कपाल के अन्य स्वरूप होमों इरेक्टस के समान हैं। सल्डान्हा कपाल उसी भू–वैज्ञानिक स्तर का माना गया है जो रोडेशियन मानव, का बताया जाता है। इसी प्रकार से मिश्रित लक्षणों वाले जीवाश्म बोडो (Bodo), होपफील्ड ( Hopefield), एलैण्ड्सफौनटीन (Elandsfontein) तथा रबट (Rabat) अफ्रीका में , Dali तथा solo एशिया में, स्वान्स कौम्बे (Swans combe) दक्षिणी ग्लैण्ड में, स्टीनहीम (जर्मनी), अरागो (Arago) द0 फ्रांस, फोन्टशवादे फ्रांस, तोषिक–ताष तथा क्रीमिया (द0 उजबेकिस्तान) में प्राप्त हुए।

## होमोसैपियन्स नियण्डर्थेलेनसिस (Homo Sapien Neanderthelensis)

उपर्युक्त के सन्दर्भ में तो विवाद अवश्य है किन्तु जिनकी तिथि 200,000 वर्षों के अन्दर है उन्हें होमोसैपियन ही मानते हैं। यहाँ यह स्पष्ट कर देना अनुचित नहीं होगा कि ये सभी पूर्ण रूपेण आधुनिक मानव के समान नहीं लगते रहे होगें और न ही उनसे अधिक भिन्न। संकुचित अर्थो में

नियण्डर्थल शब्दावली का प्रयोग पश्चिमी यूरोप के उन जीवाश्मों के लिए करते हैं जो वुर्म हिमायनयुग के आरम्भ से और वर्तमान से 70 हजार वर्ष पूर्व के बीच के काल के प्राप्त हुए थे। इन्हें पुरातन (क्लासिक) नियण्डर्थल भी कहा जाता है। यूरोप के शेष भाग तथा अफ्रीका, एशिया आदि क्षेत्रों के मानव वंशी जीवाश्मों के लिए प्रगामी (प्रोग्रेसिव) नियण्डर्थल कहा गया है।

नियण्डर्थल नाम से अभिहित प्रथम जीवाश्म 1856 में नियण्डर घाटी (थल) में डुसेलडार्फ (Dusseldorf) नामक स्थान पर चूना पत्थर खदान में काम करने वालों को एक गुफा से प्राप्त हुआ था। उस समय तक पृथ्वी की प्राचीनता तथा मानव के विकास के लम्बे इतिहास के सम्बन्ध में किसी को भी कोई जानकारी नहीं थी। अतः जिन लोगों ने इन जीवाश्मित अवशेषों का परीक्षण किया वे यह नहीं समझ सके कि मानव का जो स्वरूप आज परिलक्षित हो रहा है वह वैसा पहले नहीं था। अत :उसके प्राचीन स्वरूप को देखकर उसे – 'Some poor idiotic hermit' की संज्ञा प्रदान की। 1908 में La Chapelle-aux- Saints में एक लगभग पूरा नियण्डर्थल कंकाल मिला जिसका अध्ययन बूले (Marcellin Boule) ने किया, किन्तु उन्होने भी इसको गलत रूप में प्रदर्शित किया। इसकी आयु 50 वर्षो के लगभग थी तथा कपालीय समावेश 1,600 cc था।

नियण्डर्थल मानव के अब तक सौ से भी अधिक स्थानों से जीवाश्मित अवशेष प्राप्त हो चुके हैं जिनके अध्ययन से स्पष्ट है कि यह आधुनिक मानव से बहुत भिन्न नहीं था। केवल थोड़ा अधिक तगड़ा था। उसकी हड्डियॉं अधिक मोटी तथा मांसपेशियां अधिक मजबूत रही होंगीं। आधुनिक एस्किमों (Lapps Eskimos) के समान उसके शरीर का निचला भाग थोड़ा छोटा था किन्तु शिर अपेक्षाकृत बड़ा। उनका औसत मस्तिष्क आधुनिक मानव से थोड़ा बड़ा लगभग उतना ही विकसित था (*National Geographic*, p. 614)। नियण्डर्थल प्रथम मानव वशी थे जो यूरोप की भंयकर ठण्डक को बर्दाश्त कर सके। सम्भवतःउनके मस्तिष्क का ही योग दान था कि वे अति तीव्र जलवायु से सामंजस्य स्थापित कर सके। ये पश्चिमी यूरोप में 35,000 वर्ष ईसा पूर्व तक थे किन्तु उसके बाद एकदम से विलुप्त हो गए। उनका स्थान आधुनिक मानव एकाएक ले लेता है। कुछ समय तक दोनों ही प्रजातियाँ एक साथ चलती रही होंगीं।

क्लासिक नियण्डर्थल के अतिरिक्त नियण्डर्थलों के और भी प्रकार थे जो पूर्वी यूरोप में मेडीटरेनियन के किनारे, एशिया माइनर तथा उत्तरी अफ्रीका में थे। ये शारीरिक संरचना में अपेक्षाकृत कम हृष्ट–पुष्ट तथा लम्बे थे। उनके कपाल कम ऊँचे तथा मुँह छोटा था। इस प्रकार का नियण्डर्थल मानव 1932 में पैलेस्टीन में माउण्ट कार्मेल (Mount Carmel, Palestine) में प्राप्त हुआ था। यह एक स्त्री का जीवाश्म था जो ताबुन–स्त्री (Tabun woman) के नाम से विख्यात है।

थोड़ी ही दूर पर स्खूल (Skhul) में एक पूरा कब्रिस्तान मिला। इनमें कुछ कंकालो में बहुत अधिक विविधता है। कुछ 'क्लासिक नियण्डर्थल' के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं तथा कुछ नियण्डरथल श्रेणी से अलग प्रतीत होते हैं, ताबून स्त्री से नितान्त भिन्न।

1957 में उत्तरी ईराक में शानीडार (Shanidar) से लगभग पूर्ण कंकाल (44,000 वर्ष ) प्राप्त

Scanned with OKEN Scanner

हुआ था जिसकी उम्र लगभग 40 वर्षों की तथा लम्बाई 5 फी0 3 इंच थी। वह अपने पश्चिमी प्रजाति वर्ग के समान थी तथा ताबून स्त्री से भी मिलती जुलती थी। इनके अतिरिक्त पाँच वयस्कों के साथ एक शिशु के अवशेष भी प्राप्त हुए थे जो आधुनिक मानव के निकट थे।

शानीडार तथा ताबुन अपनी भिन्नताओं के साथ भी एक ही वर्ग में रखे जा सकते हैं। ये नियण्डर्थल मानव के परिवर्तन (Transition) का द्योतन करते हैं। स्खूल (Skhul) कब्रगाह पुनःपरिवर्तन (Transition) का परिचायक है। ये नियण्डर्थल से अधिक क्रो–मैगनन के निकट हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि उनके जीन–पूल ('Gene pool') मे अत्यधिक विविधता थी, जिसके फलस्वरूप विविध प्रकार के व्यक्तित्वों का विकास हुआ। कुछ विद्वानों की धारणा है कि इनमें से ही एक 'Gene pool' आधुनिक मानव की दिशा में विकसित हुआ और इस प्रकार से पश्चिमी यूरोप का मानव अकेला छूट गया। किन्तु अभी हाल के हुए शोध कार्य इसकी पुष्टि नहीं करते।

नियण्डर्थल मानव सुन्दर, सुडौल एवं उपयोगी उपकरणों का निर्माण करते थे। इनके उपकरणों में काफी विविधता मिलती है। मध्यपूर्व–पाषाण काल के उपकरण जिनमें ब्लेड–स्क्रेपर प्रकार के उपकरणों का बाहुल्य है, के ये ही निर्माता थे। यूरोप के मुस्तेरियन (Mousterian) प्रकार के उपकरणों का निर्माण इन्हीं लोगों ने किया था। इन उपकरणों में विविधता के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। उनका एक सम्भावित कारण प्रायः स्थानीय आवश्यकता एवं प्रभाव में माना जाता है किन्तु फिर भी उनकी विविधता में भी अन्तर्निहित एकरूपता है। उपकरणों में स्क्रेपर (Screper), छिद्रक (Borer) खात–युक्त (Notched) उपकरणों की प्रधानता है। ये सभी उपकरण लकडी तथा चमड़े ( पशु की खाल) आदि पर प्रयोग करने के लिए अधिक उपयोगी माने जाते हैं।

अग्नि के प्रयोग से ये लोग पूर्णतया परिचित थे तथा उसका उपयोग भोजन को पकाने, तथा ठण्ड से बचने के लिए तो करते ही थे साथ ही साथ पेबुल को गर्म करके फलकीकरण करने की तकनीक से भी अवगत हो गए थे। गढ्ढ़े खोद कर ये चूल्हे (Pit-hearths) बनाते थे। रूस में चूल्हों की एक श्रृंखला मिली है तथा उसके बाहर हाथी की हड्डियाँ और दाँत भी मिले थे।

भोजन के रूप में वे विशालकाय पशुओं यथा वाइसन, मैमथ, गैंड़ा तथा हिरन, पक्षियाँ, बतख, मछलियॉ, आदि का उपयोग करते थे। इनके आवासों पर इनकी हड्डियाँ बहुतायत से मिलती हैं ।

ये बल्लियों तथा घास के द्वारा रहने के लिए आवासों का भी निर्माण करने लगे थे। आवश्यकतानुसार ये खुले में अथवा गुफाओं में अपना निवास बनाते थे तथा ठण्डक से बचने के लिए चमड़े के वस्त्रों का उपयोग करते थे।

ये प्रथम मानववंशी थे जो अपने मृतकों को दफनाते थे। सम्भवतः वे इस जीवन से परे जीवन के सम्बन्ध में भी कुछ विचारधारायें रखते थे। मृतको के साथ उपकरण तथा वस्तुयें इस प्रकार से मिली हैं जिनसे प्रतीत होता है कि वे विशेष रूप से रखी गई हैं।

उजबेकिस्तान में तेषिक–ताष (Teshik-Tash) स्थल पर एक बच्चे के शिर को घेरते हुए एक बकरी की सींग, फ्रांस में रिगोर्दू (Regourdon) में एक शवाधान में विशाल गुहा–भाल् (Cave bear)

Scanned with OKEN Scanner

के शिर, इटली में माण्टे शिरक्यों (Mante Circeo) में एक कपाल पत्थरों के घेरे में रखा हुआ मिला है जिससे लगता है कि उन्हें विशेष रूप से पत्थरों के घेरे में रखा गया था। नियण्डर्थल मानव के कुछ अवशेष लाल गेरू से रंगे हुए मिले हैं। सम्भवतः लाल रंग जीवन दायिनी शक्ति से सम्बन्धित माना जाता होगा। *ला मुस्तेयर* ( National Geographic,614-615 ) में 15 –16 वर्ष के एक बालक के कब्र में उसके हाँथ के पास एक हैन्डऐक्स मिला है। उसके निकट ही 5 बच्चे तथा दो वयस्क एक साथ दफनाये गए थे। लामुस्तेयर में ही एक कब्र में एक 18 वर्षीय युवक करवट लेटा हुआ तथा पैर मुड़े हुए मिला है तथा उसके सिर के नीचे पत्थर की चिप्पियों का कुशन भी बनाया गया था। दक्षिण फ्रांस में ला फेरासी (La Farrassie) में दो वयस्क तथा चार बच्चे पूर्व पश्चिम दिशा में दफनाये हुए मिले थे। शानीडार गुहा (Shanidar cave (Iran) मे एक कंकाल के ऊपर तथा नीचे पुष्प पराग (Pollen) रखे हुए थे (John E. Pfeiffer,1978 p. 155)। जौन फीफर ( John Pfeiffer) की धारणा है कि यह कोई विशिष्ट संस्कार (Special ceremony) होगा।

अनुमानतः नियण्डर्थल मानव का सामाजिक जीवन भी अधिक पुष्ट एवं विकसित था। ला शेपेल (La Chapelle-aux-saints) में एक कंकाल मिला है जिसकी एक पसली (Rib Bone) टूटी थी तथा उसे विकट कूल्हे की आर्थराइटिस (HipArthritis) थी। रीढ़ की हड्डी भी रोगग्रस्त थी तथा उसके सभी दाँत, मसूड़ों के रोग के कारण, टूट गए थे। न तो वह स्वयं शिकार कर सकता था और न ही कुछ चबा सकता था किन्तु फिर भी वह लगभग 40 वर्षो तक जीवित रहा। निस्सन्देह उसका जीवन उसके साथियों पर निर्भर रहा होगा। यह कहना कठिन है कि इस समय तक परिवार की कल्पना साकार होने लगी थी किन्तु ऊपर उल्लेख कर चुके हैं कि एक कब्र में दो वयस्क तथा चार बच्चों के कंकाल एक साथ मिले थे। निस्सन्देह चूँकि बच्चे अधिक समय तक माँ पर निर्भर रहते थे, अतः सामाजिक व्यवस्था का विकसित होना आवश्यक सा प्रतीत होता है।

आधुनिक मानव के समान सौन्दर्य के प्रति ये सचेत थे। हंगरी (Hungary) में टाटा (Tata) से उत्खनन में कुछ हड्डियाँ प्राप्त हुई हैं जिन पर खरोंच करके डिजाइन बनाई गई है। एक मैमथ (Mammoth) के दांत को अण्डाकार बनाकर घिसा गया तथा चमकाया गया था। एक नुमुलाइट जीवाश्म (Nummulite (a marine invertebrate fossil) का लटकन (Amult) बनाया गया था। ये सभी उनके सौन्दर्य के प्रति अभिरूचि का द्योतन करते है।

यूरोप में नियण्डर्थलों का आगमन सम्भवतः1,25,000 वर्षों पूर्व होता है तथा वे 30,000 से 40,000 वर्षो पूर्व विलुप्त हो गए। 1979 में सेंट सेजेर (St. Cesaere Franex, S.W. France) में बर्नार्ड वाण्डरमीर्श (Bernard Vandermeersch ) ने एक नियण्डर्थल कंकाल का उत्खनन तथा अध्ययन किया था, जिसकी तिथि 32,000 वर्ष ईसा पूर्व निर्धारित की गई थी। वह उच्चपुरा पाषाण कालीन अवशेषों से सम्बन्धित था।

ऐसा प्रतीत होता है कि काफी समय तक नियण्डर्थल तथा आधुनिक मानव साथ–साथ रहे हैं। अभी हाल (*Pioneer* 30.3. 2000, पृष्ठ 5.) के हुए अनुसंधनों से ज्ञात होता है कि नियण्डर्थल तथा

Scanned with OKEN Scanner

आधुनिक मानव में कोई भी उत्पत्ति जनक सम्बन्ध नहीं था। एक 29,000 वर्ष प्राचीन नियण्डर्थल शिशु ( रूस की एक कन्दरा से प्राप्त ) के पसली की हड्डी से DNA लेकर उसका परीक्षण किया गया जिससे ज्ञात हुआ कि वह इतना अधिक भिन्न है कि उसका आधुनिक मेधावी मानव से सम्बन्धित होना सम्भावित प्रतीत नही होता। विलियम गुडविन (Willam -Goodwin) का स्पष्ट मत है कि यद्यपि दोनों एक कालाविधि में थे किन्तु नियण्डर्थलों से कोई भी ***genetic material*** आधुनिक मानव को नहीं मिला। नेचर शोध पत्रिका (*Nature*,Journal) में प्रकाशित रिपोर्ट में इसका भी उल्लेख है कि आधुनिक मानव के मौलिक पूर्वजों का विकास अफ्रीका में हुआ था तथा एक लाख वर्षो पूर्व वे संसार के विभिन्न भागों में फैल गए थे।

जर्मनी के फेल्डोफर गुफा (Feldhofer Cave ) से 1856 में प्राप्त नियण्डर्थल के DNA तथा रूस से प्राप्त शिशु के DNA में समानता के आधार पर दोनों को एक मूल का माना गया है। यदि दोनों में भिन्नता होती तो निश्चय ही दूसरा निश्कर्ष होता। चूँकि दोनों में जितनी समानता है आधुनिक मानव से उतनी ही भिन्नता है। उसकी भिन्नता के दायरे में आधुनिक मानव को स्थान नही मिल सकता। Swiss Institute for Expermental Resarch के मैथियस ह्रास (Mathias Hoss) ने अपनी टिप्पणी में उल्लेख किया है कि प्राचीन DNA की अध्ययन श्रृंखला में यह शोध अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं विश्वसनीय है। ये इस धारणा को निर्मूल कर देते हैं कि संकरण जनक (Interbreeding) सम्बन्ध था। 9.1.2016 तथा 12.1.16 की Times of India में प्रकाशित शोध आधारित खबरों के अनुसार (Sex with Neanderthals may be the cause of modern Allergies, studies suggest. Doug Bolton | The Independent | **Jan 12, 2016, 11.15AM** ISTNeanderthal genes gave humans immunity boost, allergies: Study PTI | **Jan 9, 2016, 12.43PM IST)** नियण्डर्थल तथा आधुनिक मानव मे inter breeding के फलस्वरूप आधुनिक मानव में DNA प्रभावित हुआ है। नियण्डर्थल तथा डेनीसोवन (NeanderthalsAnd Denisovans) आधुनिक मानव के आने के बहुत पहले से EuropeAnd westernAsia में रह रहे थे इससे वे स्थानीय रोग जनकों से सामंजस्य (adapted to the local pathogens ) बना चुके थे उनके DNA से प्रभावित होने की वजह से आधुनिक मानव संसार के विविध क्षेत्रों में स्वस्थ रह कर जासका। जर्मनी के Max Planck Institute for EvolutionaryAnthropology के जेनेट केल्सो के अनुसार interbreeding withArchaic humans -the Neanderthals and Denisovans -has influenced the genetic diversity in present-day genomesAt three innate immunity genes belonging to the human Toll-like-receptor family.'

TheAmerican Journal of Human Genetics मे लीपजिग जर्मनी ( Leipzig, Germany) के The Max Planck Institute for EvolutionaryAnthropology के एक रिपोर्ट के अनुसार आधुनिक मानव ने बहुत सी एलर्जी (Allergy) नियण्डर्थल तथा डेनीसोवन से ग्रहण की है।

पूर्वी नियण्डर्थल प्रकार जिसके जीवाश्मित अवशेष तबुन तथा आमुद ( TabunAndAmud)

Scanned with OKEN Scanner

इजराइल से प्राप्त हुए हैं वे यूरोप के क्लासिक नियडर्थलों से थोड़ा भिन्न हैं। किन्तु इनका विकास अधिक तीव्रता से हुआ होगा। बृटिश संग्रहालय के क्रिस स्ट्रिंगर की धारणा है कि ये मध्य–पूर्व (Middle East) में यूरोप से कुछ हजार वर्षों पूर्व आए होगें। *QafzehAnd Skhul* स्थलों में ऐसे लोगों के जीवाश्मित अवशेष मिले हैं जो मुस्तेरियन (Mousterian) प्रकार के उपकरणों का प्रयोग करते थे। किन्तु वे निश्चित रूप से आधुनिक प्रतीत होते हैं। वे कहाँ से आए तथा नियण्डर्थलों से कैसे सम्बन्धित थे? यह विवाद का प्रश्न है। क्या वे होमोइरेक्टस शाखा में नियण्डर्थलों से विकसित हुए अथवा पुरातन (Archaic) प्रकार से विकसित हुए तथा नियण्डर्थल को विस्थापित किया अथवा वे 50,000 वर्षों पूर्व से 100,000 वर्षो पूर्व के लगभग विकसित हुए और धीरे–धीरे दक्षिण–पश्चिम एशिया और यूरोप में 30,000 वर्षों पूर्व के लगभग आए ? आधुनिक मानव के समान प्राणी के जो जीवाश्मित अवशेष दक्षिण अफ्रीका में हिन्द महासागर के तट पर *Klesies river mouth* से प्राप्त हुए हैं, जिनकी तिथि 50,000 वर्ष पूर्व मानी गई है, उपर्युक्त धारणा की पुष्टि करते हैं।

यह कहना कठिन है कि आधुनिक मानव ने उन्हे विस्थापित कर दिया अथवा आत्मसात कर लिया। 35,000 वर्षों पूर्व के बाद वे नही मिलते।

# 2

# प्रागितिहास के विकास का इतिहास

मानव स्वाभावतः जिज्ञासु है। चिरकाल से ही उसे अपने तथा अपने वातावरण के प्रति कौतूहल रहा है। मानव का विकास अथवा उत्पत्ति कैसे हुई? जानवरों की उत्पत्ति कब हुई? पृथ्वी का निर्माण किस प्रकार हुआ आदि कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिन्होंने उसे आदिकाल से व्यथित कर रखा है। इन प्रश्नों के समाधान के लिए वह बहुत समय से प्रयत्नशील है।

प्राचीन ग्रीक विद्वान् जिस प्रकार सभी वस्तुओं के प्रति जागरूक थे उसी प्रकार से मानव की उत्पत्ति एवं विकास की समस्या के प्रति भी चिन्तनशील थे। अन्य विचारकों की अपेक्षा, इस सम्बन्ध में ल्यक्रैटस (Lucretus) जिसे प्रायः प्रागितिहास तथा नृतत्वशास्त्रों का जनक माना जाता है, की कल्पना विशेष उल्लेखनीय है। वह केवल दार्शनिक चिन्तन के द्वारा ही आधुनिक विचारधारा के निकटतम पहुँच पकिया। उसके बाद तॉबे का फिर लोहे का प्रयोग किया। ल्यूक्रेटस के मत का आधार केवल चिन्तन मात्र था।

मध्यकाल में तक्र का स्थान आस्था ने ले लिया। फलतः धार्मांधता का ही अधिक विकास हुआ और ताक्रिक शक्ति का सार्वभौमिक रूप से ह्रास हुआ। ग्रीक तथा रोमन विचारकों के दार्शनिक विचारों को महत्व नहीं दिया गया। धर्मग्रंथों में व्यक्त मतों की ताक्रिक समीक्षा उस समय अचिन्तनीय थी। मध्यकालीन विद्वान पृथ्वी तथा जीवों की उत्पत्ति दैवी विधान द्वारा मानते हैं। उनके अनुसार ईश्वर ने सभी जीवों की उत्पत्ति एक ही समय किन्तु पृथक्–पृथक् विकसित रूपों में की थी ( डिजाइन ऐण्ड परपजए 1942 पृ0 41)। मानव का पृथ्वी पर आविर्भाव भी बहुत प्राचीन नहीं माना जाता था। विलियम पेले (William Paley) ने 1805 में कहा कि मनुष्य का इतिहास केवल 6,000 वर्ष प्राचीन है। 1833 में अर्ल ऑफ ब्रिजवाटर (Earl of Bridgewater) ने पेले (Paley) की पुस्तक 'नेचुरल' थियॉलजी (Natural theology) में वर्णित मतों के स्पष्टीकरण के लिए कुछ विद्धानों की नियुक्ति की जिन्होंने ब्रिजवाटर ट्रीटाइजेज (Bridgewater Treatises) की रचना की। इसके अनुसार सृष्टि का निर्माण 5,000 ई.पू. से पहले नहीं हुआ था। अधिकांश लोग आक्रविशेष उशर (Archbishop Ussher) द्वारा प्रस्तावित तिथि 4,004 ई.पू. को ही स्वीकार करते थे। विशप लाइटफुट (Bishop Lightfoot) की धारणा थी कि सृष्टि का निर्माण 23 अक्टूबर 4,004 ई.पू. में 9 बजे दिन में हुआ था। सम्पूर्ण निर्माण में 6 दिन लगे थे। एडम (Adam) जो प्रथम मानव था उसका निर्माण छठे दिन हुआ था। ऐसा विश्वास था कि कालान्तर में सम्पूर्ण विश्व में जलप्लावन हुआ जिसके फलस्वरूप कुछ मनुष्यों तथा थोड़े से पशुओं को छोड़कर सभी नष्ट हो गये।

जिस प्रकार मानव की उत्पत्ति तथा विकास की समस्याएँ अंधकारमय थीं, उसी प्रकार पृथ्वी की उत्पत्ति तथां विकास सम्बन्धी धारणाएँ भी स्पष्ट नहीं थीं। नदी, नाले, पहाड़ आदि सभी की ईश्वरीय उत्पत्ति मानी जाती थी। किन्तु इस प्रकार की धारणाओं में क्रमशः परिवर्तन होने लगा। अठारहवीं शती के अन्त में भू–विज्ञान का विकास होने लगा। इसके विकास के फलस्वरूप वे लोग जो इसकी ईश्वरीय उत्पत्ति मानते थे तथा वे जो इसका निर्माण दिन–प्रतिदिन होने वाले प्राकृतिक कारणों को मानते थे, उनके बीच वैचारिक अन्तर क्रमशः बढ़ने लगा। पृथ्वी के इतिहास को बहुत अधिक प्राचीन न मानते हुए भी कुछ विद्धानों ने पृथ्वी के निर्माणक्रम को दिन–प्रतिदिन होने वाले

Scanned with OKEN Scanner

परिवर्तनों से सम्बन्धित करने का प्रयास किया। 6,000 वर्षों में ही प्रकृति के सम्पूर्ण निर्माण की समस्या को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने आपात (Catestrophes) के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। जौर्जेस कुवीर (Georges Cuvier) ने बताया कि पृथ्वी के इतिहास में एक से अधिक आपातकाल हुए थे तथा उनमें से नोवाशियन फ्लड (Noachian glood) केवल एक था। कुवीर (Cuvier) ने यह भी कहा कि मानवाश्म कल्पनातीत है। आपात कल्पों में आस्था रखने वाले विद्वान भू वैज्ञानिक क्रान्तिओं में आस्था रखते थे तथा विभिन्न स्तरों के निर्माण में भी विश्वास करते थे। विलियम स्मिथ (William Smith), जो 'स्ट्रेटा स्मिथ' (Strata Smith) के नाम से विख्यात थे, ने बत्तीस विभिन्न स्तरों की सूची का निर्माण किया था तथा प्रत्येक में उन्हें जीवाश्म मिले थे। कुवीर की विभिन्न स्तरों की स्थिमि मानते थे, किन्तु उनकी धारणा थी कि स्तरों में अन्तर आपात कल्पों के फलस्वरूप ही हुआ था। आपात कल्पों (Catestrophes) के ही फलस्वरूप पहले के जीवों का अन्त हो गया तथा नवीन जीवों की उत्पत्ति हुई।

क्रमशः आपात कल्पों में लोगों की आस्था कम होने लगी। जेम्स हटन (James Hutton) ने अपनी सुविख्यात पुस्तक **'थ्योरी ऑफ दि अर्थः ऑर ऐन इनवेस्टीगेशन ऑफ दि लॉज, ऑब्रजरबेबुल इन दि कम्पोजीशन, डिजोल्यूशन ऐण्ड रेस्टोरेशन ऑफ लैण्ड अपान दि ग्लोब'** (Theory of the Earth : orAn Investigation of the Laws observable in the Composition, DissolutionAnd Restoration of Land upon the Globe) के द्वारा विद्वत्समाज को यह स्पष्ट करने का प्रयास किया कि पृथ्वी का निर्माण कुछ आपातों का परिणाम नहीं था, अपितु पृथ्वी के सभी स्तरों का जमाव क्रमिक अवसादन (Sedimentation) के फलस्वरूप हुआ है। इस प्रकार का अवसादन अभी भी हो रहा हैं। पृथ्वी का अधिकांश भाग प्राचीन काल में जल तथा समुद्र के नीचे था। उसका निर्माण क्रमिक अवसादन के फलस्वरूप ही हुआ था। उसने यह भी कहा कि किसी भी ऐसी बात को नहीं मानना चाहिए जिसके सिद्धान्त को तार्क्रिक रूप से नहीं समझा जा सकता है। यहाँ से ही भू–विज्ञान ने एकरूपतावाद (Uniformitarianism) के सिद्धान्त का श्रीगणेश होता है। इस सम्बन्ध में चार्ल्स लायल (Charles Lyell) का नाम विशेष उल्लेखनीय है जिसने विज्ञान के अध्ययन को वास्तविक दिया दिया। उसकी पुस्तक 'प्रिन्सिपल्स ऑफ जियॉलजी, बीइंग ऐन अटेम्पट टु एक्सप्लेन दि फॉरमर चेजेंज ऑफ दि अर्थ्स सर्फेस बाइ रिफरेंश टु कॉलेज नाऊ इन ऐक्शन' (Principles of Geology, beingAnAttempt to explain the former changes of the Earth's surface by reference to causes now inAction) का प्रकाशन 1830 ई. में हुआ। अपनी इस पुस्तक के माध्यम से विद्वत्समाज के सामने उसने स्पष्ट शब्दों में यह विचार प्रस्तुत किया कि पृथ्वी के धरातल एवं स्वरूप के निर्माण के लिए वे ही प्राकृतिक क्रियाएँ उत्तरदायी थीं, जो आज भी सक्रिय हैं। कालान्तर में लायल ने केवल इतना संशोधन किया कि अवसादन का दर सभी स्थानों तथा कालों में एक–सा नहीं था। उसमें समय तथा स्थान के अनुसार परिवर्तन होता रहा है। लायल का यह मत कोई नया नहीं था। इसका महत्व मात्र इतना ही है कि उसने अपने मत को बहुत स्पष्ट शब्दों में प्रस्तुत किया था। लायल की इस पुस्तक के बाद से क्रमशः एकरूपतावाद का सिद्धान्त मान्यता प्राप्त करता गया।

एकरूपतावाद के सिद्धान्त की मान्यता ने तत्कालीन चिन्तनधारा में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये। एक बार इस सिद्धान्त को मान लेने के बाद यह आवश्यक नहीं रह गया कि यह भी माना जाये कि पृथ्वी के विकास का इतिहास मात्र, 6,000 वर्षों में ही सीमित है। दूसरे शब्दों में इस काल की परिधि के बहुत पहले से पृथ्वी के धरातल पर जीवों की उत्पत्ति हो गई होगी जिनके जीवाश्मित

अवशेष पृथ्वी के विभिन्न स्तरों में मिलते हैं। स्तरीकरण तथा एकरूपतावाद के सिद्धान्तों की मान्यता ने पुरातत्व के अध्ययन एवं विकास का मार्ग भी प्रशस्त किया। यथार्थ तो यह है कि इस सिद्धान्त को स्वीकार किये बिना कोई भी पुरातात्विक अध्ययन संभव नहीं था।

चार्ल्स लायल (Charles Lyell) की पुस्तक 'प्रिन्सिपल्स ऑफ जियॉलजी' (Principles of Geology) के प्रकाशन के बहुत पहले से ही बहुत से विद्वानों ने उपकरणों की उपस्थिति विलुप्त जानवरों (ExtinctAnimals) की हड्डियों के साथ अथवा स्वतंत्र रूप से प्रतिवेदित किया था। किन्तु दुर्भाग्यवश उन उपकरणों की वास्तविकता से कोई भी परिचित नहीं था। विद्वानों का ध्यान इस ओर गया ही नहीं कि मानवे का जीवन प्रकृति में सहज प्राप्त होने वाले पत्थरों पर ही आधारित होगा। किन्तु इन पत्थरों के विशिष्ट स्वरूप ने निश्चय ही जागरूक विद्वानों का ध्यान आकर्षिक किया था। उन्होंने इन्हें अपने अनुसार समझाने का प्रयास किया। किसी ने इन्हें वज्र कहा तो अन्य ने परियों का गोला। सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में ऐल्ड्रोवान्दी (Aldrovandis) नामक विद्वान् ने इनके सम्बन्ध में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए – मुख्यतया कुन्तल मेघों में होने वाले कुलिश एवं वज्रपात के निश्चित उच्छ्वसन के धात्विक पदार्थ के साथ सम्मिश्रण के कारण उत्पन्न परिवृत आर्द्रता के द्वारा जमकर ये पुंजीभूत हो जाते हैं (जैसे पानी से गुथकर आटा) और बाद में ऊष्मा के कारण ईंट की भाँति दृढ़ीभूत हो जाते हैं (Due toAnAdmixture toA certain exhalation of thunderAnd lightening with metallc matter, chiefly in dark clouds, which is coagulated by th circumfused moistureAnd conglutinated intoA mass(likeA flour with water)And subsequently indurated by heat, likeA brick'- Hundred YearsofArchaeology by Glyn Daniel, p.25-26)A इसी प्रकार अथवा इससे मिलती हुई व्याख्या अन्य लोगों ने भी की। लगभग उसी समय टोलियस (Tollius) ने कहा कि फ्लिण्ट के टुकड़े बादल में परिप्लुत तरल पदार्थ के द्वारा आकाशीय उच्छ्वसन की संगोलित कौंध से इनकी उत्पत्ति हुई।

कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि सभी विद्वान् ऐल्ड्रोवान्दी (Aldrovandi) तथा टोलियस (Tollius) की विचारधारा के सहमत थे। कुछ विद्वानों ने उस समय भी चिन्तन द्वारा सत्य के निकट पहुँचने का प्रयास किया था। 16वीं शताब्दी के अन्त में मरकाटी (Mercati) ने बहुत स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा की थी कि तथाकथित ये कुलिश (Thunderbolts) उन आदिम लोगों के उपकरण है जिन्हें धातु का ज्ञान नहीं था।

मरकाटी (Mercati) के अतिरिक्त सर विलियम डगडेल (Sir William Dugdale 1650) डॉ. प्लॉट (Dr. Plot 1686) आदि विद्वानों ने भी इन्हें आदिम लोगों के उपकरण ही माना था। डि ला पेरी (De la Payrere) ने कहा कि तथाकथित ये कुलिश प्रारम्भिक आदिम लोगों के उपकरण थे। यद्यपि बहुत से विद्वान इन विशिष्ट पत्थरों को आदिमानव के उपकरण मानने लगे थे, किन्तु उनको अभी भी सार्वजनिक मान्यता प्राप्त नहीं हो सकी। मान्यता प्राप्त करने में इसे बहुत समय लगा। 1976 ई. में चारलिसले (Charlislei) के विशप (Bishop) चार्ल्स लिटिलटन (Charles Lyttelton) ने लन्दन की सोसायटी ऑफ एण्टीक्वेरीज (Society ofAntiquaries) के समक्ष एक वक्तव्य पढ़ा जो कालान्तर 1773 ई. की आर्केलॉजिया (Archaeologia) नामक पत्रिका में प्रकाशित हुआ। इस वक्तव्य में उन्होंने प्रस्तर उपकरणों के सम्बन्ध में लिखा कि इसमें कोई संदेह नहीं कि ये प्रस्तर उपकरण प्राचीनतम काल में बर्बर जनों द्वारा उस समय बनाये गये थे जब उन्हें लोहे अथवा अन्य धातुओं के प्रयोग का ज्ञान नहीं था। लिटिलटन (Lyttelton) ने इन उपकरणों को फ्रांस (France) तथा मैक्सिकों (Mexico) से प्राप्त इसी प्रकार के उपकरणों के समान माना थ।

Scanned with OKEN Scanner

विशप लिटिलटन (Bishop Lyttelton) ने यद्यपि सुस्पष्ट शब्दों में अपने मत को व्यक्त किया था, किन्तु बहुत से विद्वानों के लिए यह सोचना तथा समझना कठिन था कि किस प्रकार के उपकरणों का प्रयोग होता रहा होगा। इनकी इतनी अधिक प्राचीनता को मानना भी उनके लिये सहज नहीं था किन्तु जैसे–जैसे भू विज्ञान के ज्ञान में वृद्धि हो रही थी विद्वानों की विचारधारा में भी परिवर्तन होने लगा। इस काल के बहुत पहले ही प्रस्तर उपकरण, भू वैज्ञानिक स्तरों में विलुप्त जानवरों की हड्डियों आदि के साथ प्राप्त हो चुके थे किन्तु उसके महत्व को उस समय तक किसी ने नहीं समझा था। सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में लन्दन के ग्रेज इन लेन में पुरावशेष संग्रहक कोनियर्स (Conyers) को एक प्रस्तर ऐक्स (StoneAxe) तथा कुछ हड्डियाँ प्राचीन जमाव में मिलीं। कोनियर्स (Conyers) ने घोषणा की कि ये पुरानिधियाँ उस काल की है जब लोगों को धातु का ज्ञान नहीं था और पत्थर के ही उपकरणों का प्रयोग किया जाता था। अठारहवीं शताब्दी के अन्त में जान फ्रे नामक विद्वान को भी इन्हीं परिस्थितियों में इस प्रकार के उपकरण प्राप्त हुये थे। 1797 ई. में ही उन्होंने इनके सम्बन्ध में अपने विचार सोसायटी ऑफ ऐण्टीक्वेरी (Society ofAntiquary) के सचिव के पास भेज दिये थे। किन्तु उन पर किसी का ध्यान नहीं गया, क्योंकि वह समय ही ऐसा था, जबकि विद्वत्समाज इस प्रकार की नवीन विचारधारा को सुनने के लिए तत्पर नहीं था। वे बाइबिल तथा धर्म–ग्रन्थों में वर्णित मतों को ही सत्य मानते थे तथा इन विषयों पर किसी भी प्रकार का विचार–विमर्श करना भी अनुचित समझते थे। इसका महत्व उस समय समझा गया जब सोम ग्रैवेल (Somme Gravel) तथा साउथ डेवन (South Devon) की उपलब्धियों को मान्यता प्राप्त हुई और विलुप्त जानवरों तथा मानव की सम सामयिकता को भी मान लिया गया। जॉन फ्रे (John Frere) को ये उपकरण धरातल के बारह फीट नीचे निम्नतम स्तर से विलुप्त जानवरों की हड्डियों के साथ प्राप्त हुये थे। फ्रे (Frere) ने भी इनके सम्बन्ध में कहा कि स्पष्ट रूप से ये युद्ध के उपकरण प्रतीत होते हैं तथा इनका निर्माण उन लोगों ने किया था जिन्हें धातु के प्रयोग का ज्ञान नहीं था। फ्रे (Frere) ने यह भी कहा कि जिस परिस्थिति में ये प्राप्त हुए हैं, यह इस बात का निर्देश करता है कि वे अत्यन्त प्राचीन होंगे – आधुनिक संसार के भी और पहले के ( Glyn Daniel p,41)। फ्रे की प्रमुख विशेषता इस बात में सन्निहित थी कि उसने इन उपकरणों को उनके वास्तविक स्वरूप में देखने का प्रयास किया था। इसके पहले भी लगभग इन्हीं परिस्थितियों में उपकरण तथा विस्तृत जानवरों की हड्डियाँ मिली थीं। 1771 ई. में जॉन फ्रेडरिक एस्पर (Johann Friedrich Esper) नामक पादरी को जर्मन जुरा बैम्बर्ग (German Jura Bamberg) के निकट गैलेनस्यूथ (Gaylenreuth) नामक गुहा में उत्खनन करते समय गुहावासी भालू (Cave Bear) तथा अन्य विलुप्त जानवरों की हड्डियों के साथ मनुष्य की भी हड्डियाँ प्राप्त हुई थीं। इन हड्डियों की सम सामयिकता के सम्बन्ध में उनके विचार स्पष्ट नहीं थे। बहुत विचार–विमर्श के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यथेष्ठ प्रमाणों के अभाव में मनुष्य तथा अन्य हड्डियों की परस्पर सम सामयिक मानना उचित नहीं होगा। मनुष्य की हड्डियाँ संयोगवश अन्य हड्डियों के साथ मिल गई होंगी। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक इस सम्बन्ध में अधिक सामग्री का संकलन किया जाने लगा। फ्रांस के अनेक भू–वैज्ञानिकों को जैसे क्रिस्टल, ड्युमा, पेट्री (Christal, Dumas, Petre) आदि को भी ऐसी अवस्थाओं में इसी प्रकार की वस्तुएँ प्राप्त हुई। इस सम्बन्ध में श्मरलिंग (Schmerling) के वृतान्त सबसे उल्लेखनीय हैं। उसने लीग (Liege) के निकट इंगिहौल (Engihoul) की गुफाओं में उल्लेखनीय कार्य किया। उसे एक गुफा में सात मानव–कंकाल तथा बहुत से उपकरण जिनमें से कुछ गैण्डे तथा मैमथ के कंकालों से सम्बन्धित थे, प्राप्त हुए।

Scanned with OKEN Scanner

श्मरलिंग (Schmerling) ने अपनी खोजों के आधार पर स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा की कि जिन परिस्थितियों तथा कारणों के वशीभूत होकर मनुष्य की हड्डियाँ तथा उपकरण दबे थे उन्हीं के फलस्वरूप अन्य विलुप्त जानवरों की हड्डियाँ भी दबी थीं।

श्मरलिंग (Schmerling) की इस महत्वपूर्ण घोषणा पर तत्कालीन विद्वत्समाज ने कोई भी ध्यान नहीं दिया। फादर मैक एनरी (Max Enery) की उपलब्धियों की भी बहुत कुछ यही दशा रही। मैक एनरी ने केण्ट्स कैवर्न (Kents Cavern) में टार्क्वे (Torquay) नामक स्थल पर 1824 ई0 से 1829 ई0 तक उत्खनन किया था। यहाँ पर गुफा में उन्हें विलुप्त जानवरों की हड्डियों के साथ फ्लिंट के उपकरण स्टैलेगमाइट (Stalagmite) के स्तरित जमावों के नीचे मिले थे। अपनी इस प्राप्ति के सम्बन्ध में उन्होंने बकलैण्ड (Buckland) तथा अन्य भू–वैज्ञानिकों से परामर्श किया। बकलैण्ड (Buckland) आदि भू–वैज्ञानिकों का दृष्टिकोण इतना अधिक संकुचित था कि वे मैक एनरी की उपलब्धियों की यथार्थता पर विश्वास करने के लिए तत्पर नहीं थे। उनका विचार था कि उक्त उपकरण स्टैलेगमाइट (Stalagmite) के स्तर के नीचे किसी छिद्र आदि के द्वारा निकल कर हड्डी वाले स्तर में चले गये होंगे। मैक एनरी इस सम्बन्ध में आश्वस्त थे, क्योंकि उन्हें इस प्रकार के कोई भी छिद्र आदि नहीं मिले थे। बकलैण्ड (Buckland) के विचार का प्रतिवाद भी उन्होंने किया, किन्तु अपने मत का प्रकाशन नहीं किया। प्रायः उसी समय संयोगवश बकलैण्ड (Buckland) को भी ऐसी ही परिस्थिति का सामना करना पड़ा। पावीलैण्ड गोट होल केव (Paviland Goat's Hole Cave) में उन्हें संयोगवश एक नवयुवक के कंकाल के साथ फ्लिण्ट के उपकरण प्राप्त हुये। दोनों के सम सामयिक होने में किसी संदेह की गुँजायश नहीं थी, किन्तु वे अपने मानसिक आग्रह (Mental obsession) को नहीं बदल सके और अन्त में वे अपने पूर्व निष्कर्ष पर दृढ़ रहे कि मानव कंकाल निश्चित रूप से विलुप्त जानवरों की हड्डियों के समकालीन नहीं हो सकते।

मानव की प्राचीनता तथा विलुप्त जानवरों के साथ उसकी सम सामयिकता को मान्यता प्रदान करने की दिशा में फाकनर (Falconer) पेंगली (Pengelly), द्वारा ब्रिक्सम गुफा (Brixham Cave) में किये गये कार्य तथा बूशे–द–पर्थ (Boucher de Perthes) के सौम्म–घाटी के सर्वेक्षण विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। वास्तव में इन्हीं के प्रयासों ने तत्काल विद्वत्समाज को नयी रोशनी प्रदान की। 1840 ई. में गौडबिन ओस्टेन (GodwinAusten) ने केण्ट्स कैवर्न (Kents Cavern) में मैंक एनरी (Mac Enery) के कार्यो को पुनः आरम्भ किया ( Glyn Daniel, 1950 p.58)। अपने अनुभवों के आधार पर उन्होंने घोषणा की कि मैमथ तथा मानव के उपकरण गुफा में स्टैलेगमाइट–स्तर (Stalagmite) के जमाव के पूर्व ही आ गए होंगे। 1846 ई. में टार्क्वे नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी (Torquay Natural History Society) ने केण्ट्स कैवर्न (Kents Cavern) के सूक्ष्म सर्वेक्षण के लिए एक समिति की नियुक्ति की। उत्खनन के निर्देशन का दायित्व विलियम पेंगली (William Pengelly) को दिया गया। पेंगली समिति ने यह घोषणा की कि मैक एनरी (Mac Enery) तथा गौडबिन (Godwin) के निष्कर्ष सही थे। किन्तु इतने पर भी इसे सार्वजनिक मान्यता ब्रिक्सम गुफा के उत्खनन तक नहीं मिल सकी। 1858–59 ई. में विंडमिल हिल ब्रिक्सम (Windmill hill, Brixham) में उत्खनन हुआ। यहाँ पर उत्खनन के लिए एक समिति का चयन किया गया जिसके सदस्य फाकनर, रैमजे, प्रेस्टविच, लायल, गौडविन ओस्टेन तथा पेंगली (Falconer, Ramsay, Prestwich, Lyell, GodwinAustenAnd Pengelly) थे। इस बार भी उत्खनन के निर्देशन का कार्य–भार विलियम पेंगली (William Pengelly) को मिला था। उत्खनन के फलस्वरूप फ्लिण्ट के

Scanned with OKEN Scanner

उपकरण विलुप्त जानवरों की हड्डियों के साथ गुफा की सतह पर प्राप्त हुए थे। उनके ऊपर 3" से लेकर 8" तक मोटी स्टैलेगमाइट (Stalagmite) की पर्त पड़ी थी जिसके अन्दर तथा ऊपर सिंह (Lion), भेड़िया (Hayena), भालू (Bear), मैमथ ( Mammoth), गैण्डे (Rhinoceros) तथा वल्गाहिरण (Reindeer) के अवशेष थे। ब्रिक्सम गुफा (Brixham Cave) के साक्ष्यों ने अनेक विद्वानों को प्रभावित किया। अब उनकी प्राचीन धारणाओं में परिवर्तन होने लगा। ब्रिक्सम (Brixham) के उत्खनन की समाप्ति के उपरान्त पेंगली कैवर्न (Kents Cavern) वापस लौट गया और वहाँ पर उसने लगभग बीस वर्षो तक उत्खनन किया। इसके फलस्वरूप इन्होंने फिर से यह प्रदर्शित किया कि मैक एनरी (Mac Enery) के निष्कर्ष सही थे।

प्रायः इसी समय 1837 ई. में जैक बूशे द क्रेवकूर दि पर्थ (Jacques Boucher de Crevecoeur de Perthes), जो एबेविल (Abbeville) में एक कस्टम अधिकारी (Customs officer) था, पुरातत्व के प्रति आकर्षित हुआ। उसने सौम्म–घाटी क जल–घर्षित प्रस्तर जमावों (Gravels) से उपकरणों तथा उनसे सम्बन्धित विलुप्त जानवरों की हड्डियों को एकत्रित किया। ये उपकरण उसी प्रकार के थे जिन्हें अब प्रायः अबेवीलियाँ की संज्ञा प्रदान की जाती है। बूशे (Boucher) ने इन्हें "haches diluviennes" की संज्ञा प्रदान की तथा 1938 ई. में कई स्थानों पर इनका प्रदर्शन भी किया। इन्होंने इनका प्रकाशन भी अपनी पाँच भागों की पुस्तक "De la Creation : essai sur porigine et la progression des etres" में किया। विद्वानों ने पुस्तक का कोई स्वागत नहीं किया, अपितु उसकी आलोचना ही की गई। 1847 ई. में बूशे की दूसरी पुस्तक "Antiquities Celtiques etAntediluviennes" का प्रकाशन हुआ। यह पुस्तक तीन भागों में थी। इस सम्बन्ध में यह विशेष उल्लेखनीय है कि प्रथम तथा दूसरी पुस्तक के प्रकाशन के अंतराल में बूशे (Boucher) की विचारधारा में आमूल परिवर्तन हो चुका था। प्रथम पुस्तक में उसने diluvlennes अथवा आपात–प्लावनिक मत का प्रतिपादन किया था, किन्तु बाद में दूसरी पुस्तक में प्रति आपात–प्लावनिक (Antetliluviennes) मत का प्रतिपादन किया। बूशे की यद्यपि विद्वत्समाज से सहयोग के स्थान पर अवहेलना ही मिली, किन्तु फिर भी वह अपने कार्य में पूर्ण मनोयोग से लगा रहा। अन्त में विद्वत्समाज की विचारधारा को उचित दिशा में मोड़ देने का श्रेय भी बूशे को ही प्राप्त हुआ।

रिगलौट (Rigollot) ने बूशे (Boucher) के मतों को मिथ्या सिद्ध करने के लिए सेण्ट–आश्यूल (Saint-Acheul) के ग्रैवेल गर्तो (Gravel Pits) में उत्खनन किया। रिगलौट के उत्खनन का परिणाम बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ, क्योंकि इसके फलस्वरूप वह स्वयं बूशे के मतों का समर्थक हो गया। उसने अपनी पुस्तक Memories sur Ics Instruments on Silex trouveesA SaintAcheul में आदि मानव तथा विलुप्त मैमथ को समकालीन घोषित किया। एलबर्ट गौद्री (Albert Goudry) नामक एक जीवाश्म–शास्त्री (Palaeontologist) ने एमेन्स (Amiens) तथा सेण्ट आश्यूल (SaintAcheul) में उत्खनन किया। उत्खनन के पश्चात वह भी बूशे की विचारधारा का अनुगामी हो गया। 1858 ई. में एक अंग्रेज विद्वान फाकनर (Falconer) अबेविल (Abbeville) गए। उन्होंने वहाँ पर सौम्म–घाटी के ग्रैवेल और उसमें प्राप्त होने वाले उपकरणों तथा उनसे सम्बन्धित विलुप्त जानवरों की हड्डियों का स्वयं परीक्षण किया। वह भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि बुशे का मत तर्क्रसंगत एवं उचित था। उसने अपने सहयोगियों प्रेस्टविच (Prestwich) तथा जान इवान्स (John Evans) को भी सौम्म ग्रैवेल (Somme Gravels) के परीक्षण के लिए प्रेरित किया। प्रेस्टविच

Scanned with OKEN Scanner

(Prestwich) भी सौम्म–ग्रैवेल की उपलब्धियों से बहुत प्रभावित हुआ। प्रेस्टविच (Prestwich) ने अपने अनुभवों पर आधारित लेख लिखा जिसका शीर्षक था–ऑन दि अकरेन्स ऑफ फ्लिण्ट इम्पलीमेंट्स, ऐसोशिएटेड विध दि रिमेन्स ऑफ एनीमल्स ऑफ एक्सटिक्ट स्पेसीज इन बेड्स ऑफ ए लेट जियोलाजिकल पीरियड ऐट एमेन्स एण्ड एबेविल ऐण्ड इन इंगलैण्ड ऐट ओक्सने (On the occurrence of Flint Implements, Associated with the Remains of animals of Extinct Species in bed of a Jate Geological period at amiens and abbeville and in England at Hoxne)।

इनके इस लेख का सारांश था कि वे मानव की अत्यन्त प्राचीनता में विश्वास रखते हैं। जौन इवान्स (John Evans) ने भी अपने एक लेख में कहा कि यह असंदिग्ध रूप से निश्चित प्रतीत होता है कि बहुत प्राचीन काल में पृथ्वी के इस भाग में मनुष्य रहते थे, जिसके प्रमाण अभी तक नहीं मिले थे। इन लेखों का सर्वत्र सार्वजनिक रूप से स्वागत हुआ। इस प्रकार मानव की प्राचीनता के सम्बन्ध में अब अधिक विवाद नहीं रह गया।

प्रेस्टविच (Prestwich) का विख्यात लेख जिसे उन्होंने 1859 ई. में रायल सोसायटी (Royal Society) के समक्ष पढ़ा थ, उसके दो वर्ष पहले अर्थात् 1857 ई. में एक मानव–सम प्राणी की प्रलम्ब हड्डियाँ (Long bones) तथा कपाल (Skull) प्रशा में डुस्सेल (Dussel) नदी पर स्थित नियनडरथल (Neanderthal) की तंगघाटी में प्राप्त हुये थे। शेफौसेन (Schefhausen) जिसने बॉन में (Bonn) में इसका प्रथम विवरण देते हुए इसे बृहत् आकार, नीचे माथे तथा विशाल भृकुटियों का प्राणी कहा। उनके अनुसार नियनडरथल मानव (Neanderthal) 'बर्बर जंगली प्रजाति' (Barbarous and Savage race) का तथा यूरोप का प्राचीनतम निवासी था। कुछ लोगों ने इसके सम्बन्ध में शंकाएँ भी व्यक्त कीं। वरशाउ (Virchow) ने इसे एक 'रोगात्मक मूर्ख' (Pathelogical idiot) का कंकाल रहा। किन्तु अधिकांश विद्वानों ने इस प्रकार की धारणाओं पर विशेष ध्यान नहीं दिया। फुलरौट (Fullrott) ने इसे बन्दर का निकटतम मानवीय प्रतिरूप बताया।

19वीं शताब्दी के मध्य तक विद्वानों की विचारधारा में बहुत परिवर्तन हो चुका था। अब सभी वस्तुओं को वैज्ञानिक ढंग से समझने का प्रयास किया जाने लगा। इस समय विद्वत्समाज के सामने दो बहुचर्चित विचारधाराएँ – एकरूपतावाद तथा विकासवाद – प्रचलित थीं। विकासवाद के सिद्धान्त के प्रतिपादन ने मानव की प्राचीनता की धारणा को अधिक सजीव बना दिया था। इसने प्रस्तर उपकरणों को भी अधिक बोधगम्य बनाने में सहायता दी। यदि मानव का विकास मानव–सम प्राणी से हुआ है, तो निश्चय ही उसकी प्रारम्भिक विकासात्मक हड्डियाँ भी मिलनी चाहिये। उसकी प्राचीनतम संस्कृत के अवशेषों का मिलना भी आवश्यक है। क्रमशः भू–वैज्ञानिकों तथा पुरातत्ववेत्ताओं के प्रयासों से प्राचीन मानव की संस्कृति की विकासात्मक कड़ियाँ प्रकाश में आने लगीं। यहीं से आधुनिक प्रागितिहास का प्रारम्भ होता है। इसमें सबसे महत्वपूर्ण योगदान भू–विज्ञान का ही था, क्योंकि इस विज्ञान के स्तरीकरण के सिद्धान्त ने मानव को उसकी प्राचीनता प्रदान की थी। भू–विज्ञान के साक्ष्यों को मानने के उपरान्त विकासवादी विचारधारा को भी ठोस आधार प्राप्त हो सका।

विद्वानों की यह धारणा भी समाप्त हो गयी कि मानव की प्राचीनता 4004 ई0.पू0 से 6000 वर्षो तक ही सीमित है। अब एक नवीन प्रश्न उठा कि मानव कितना प्राचीन है? पृथ्वी के विकास के इतिहास में उसकी क्या स्थिति है? मार्लो (Morlot) ने जिनेवा (Geneva) के जमाव की मोटाई के

Scanned with OKEN Scanner

आधार पर कहा कि पाषाण युग का प्रारम्भ 7000 वर्ष पूर्व हुआ होगा। गिलीरौन (Gillieron) भी स्विटजरलैण्ड में एक अन्य स्थल के जमाव के आधार पर लगभग इसी निष्कर्ष पर पहुँचे। उल्लेखनीय है कि पाषाणयुग से इन विद्वानों का तात्पर्य नव पाषाणयुग (NeolithicAge) से था। लगभग इसी समय हॉर्नर (Horner) ने कहा कि मिस्त्र (Egypt) में नव पाषाणयुग 13,000 वर्ष प्राचीन है। अगर नव पाषाणयुग इतना अधिक प्राचीन है तो निश्चय ही पूर्वपाषाणकाल की प्राचीनता और अधिक होगी। सर चार्ल्स लायल (Sir Charles Lyell) के विचारों में सौम्म–जमावों से प्राप्त उपकरण तथा मैमथ आदि की हड्डियाँ 100,000 वर्षों से कम प्राचीन नहीं होंगी। इसी प्रकार चतुर्थक (Quaternery) के हिमयुग भी 220,000 वर्षों पहले हुए होंगे। सर जोसेफ (Sir Joseph) ने इनकी प्राचीनता का अनुमान केवल 20,000 वर्ष तक किया, जबकि गैब्रियल द मौर्टिलेट (Gabriel de Mortillet) की धारणा थी कि पुरा पाषाण काल का प्रारम्भ 230,000 से 240,000 वर्षों पूर्व होगा। इन सभी मत–मतान्तरों से केवल इतना स्पष्ट था कि अब सभी विद्वान् मानव की प्राचीनता में विश्वास करने लगे थे।

मानव की प्राचीनता को एक बार मान लेने के उपरान्त मानव इतिहास की सीमाएँ बढ़ गयीं। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में प्रारूप विज्ञान (Typology) तथा तुलनात्मक मानव–जाति विज्ञान (Comparative Ethnology) के माध्यम से सांस्कृतिक विकास में क्रमबद्धता (System) का समावेश करने का उल्लेखनीय प्रयास डेनमार्क के पुरातत्ववेत्ताओं ने किया। डेनिश विद्वान् थौमसेन (Thomsen) ने प्रागैतिहासिक संस्कृतियों के वर्गीकरण के लिए त्रिकाल पद्धति (ThreeAge System) का सूत्रपात किया। इसके अनुसार मानव सभ्यता के सम्पूर्ण इतिहास को तीन युगों, यथा – पाषाणकाल, कॉस्यकाल तथा लौहकाल में विभाजित किया गया। इसी त्रिकाल पद्धति का उपयोग विद्वानों ने विभिन्न देशों की संस्कृतियों के वर्गीकरण के लिए किया। स्थानीय विशेषताओं को ध्यान में रख कर इसमें यत्र–तत्र आवश्यक परिवर्तन अवश्य किए गए।

फ्रांसीसी पुरातत्ववेत्ताओं ने सर्वप्रथम पाषाणयुग में केवल दो अवस्थाओं यथा – पूर्व पाषाणकाल (Palaeolithic) तथा नव पाषाणकाल (Neolithic) को माना था। दूसरे काल के उपकरण पालिशदार होते थे। इस काल में सोने को छोड़ कर किसी धातु का ज्ञान नहीं था। साधारण रूप से फ्रॉसीसी विद्वानों ने पूर्व पाषाण तथा नव पाषाणकालों को भू–वैज्ञानिक संदर्भ में क्रमशः प्रातिनूतन (Pleistocene) तथा नूतन (Holocene) कल्पों में रखा। प्रागितिहास शब्द का प्रयोग 1851 ई. में सर्वप्रथम डेनियल विलसन ने किया था। 1871 ई. में टेलर (Taylor) ने इसका प्रयोग अपनी पुस्तक Primitive Culture में किया। उसके बाद उत्तरोत्तर इसका प्रयोग व्यापक हो गया। विभिन्न विद्वानों की दृष्टि में प्रागितिहास की विषय वस्तु का क्षेत्र एक–सा नहीं था। मौर्टिलेट (Mortillet) ने इसका प्रयोग प्रस्तर तथा कॉस्य कालों के लिए, जबकि बॉयड डाकिंस (Boyd Dawkins) ने नव पाषाणकाल (NeolithicAge), कॉस्यकाल तथा प्रारम्भिक लौहयुग के लिए किया। इससे केवल इतना स्पष्ट है कि सभी विद्वान् प्रागितिहास का प्रयोग मानव के प्राचीनतम इतिहास के लिए करते थे।

पाषाणकाल के विभिन्न विभाजनों के सम्बन्ध में भी विद्वान स्पष्ट तथा एकमत नहीं थे। क्रिस्टी (Christy) ने इन्हें प्राप्ति–स्थान (Find-spots) के आधार पर तीन भागों में विभाजित किया था। लारटेट (Lartet) ने इनका वर्गीकरण जीवाश्म विज्ञान (Palaeontology) के आधार पर चार भागों में किया। लारटेट तथा क्रिस्टी के कार्यों का विशेष महत्व इस कारण है कि इन्होंने सर्वप्रथम पूर्व

Scanned with OKEN Scanner

पाषाणकाल (Palaeolithic Period) के विभाजनों का सापेक्ष्य तिथि–क्रम निर्धारित करने का प्रयास किया। पूर्व पाषाणकाल के वर्गीकरण में डेनमाक्र के विद्वान् का प्रयास सबसे अधिक उल्लेखनीय है। लारटेट (Lartet) ने पूर्व पाषाणकाल (Palaeolithic Period) को सर्वप्रथम तीन भागों, यथा – निम्न (Lower), मध्य (Middle) तथा उच्च (Upper) में विभाजित किया। इन्हें ही जीवाश्मों के नामों के आधार पर क्रमशः हिप्पोपोटेमस (Hippopotamus), केव बीयर (Cave bear), मैमथ (Mammoth) और रेनडीयर (Reindeer) का काल कहा गया। लारटेट (Lartet) का यह वर्गीकरण बहुत क्रान्तिकारी प्रयोग था। इसके द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से उसने जीवाश्म विज्ञान के माध्यम से निरपेक्ष तिथि–क्रम निर्धारित करने का प्रयास किया। किन्तु लारटेट का यह वर्गीकरण प्रचलित नहीं हो सका। गैब्रियल दि मार्टिलेट (Gabriel de Mortillet) जो लारटेट का शिष्य एवं प्रशंसक था, इस सम्बन्ध में उसका सबसे प्रमुख आलोचक सिद्ध हुआ। उसने कहा कि प्रागैतिहासिक कालों का वर्गीकरण पुरातात्विक सामग्री पर आधारित होना चाहिए। मौर्टिलेट ने लारटेट के जीवाश्मित नामों के स्थान पर पुरातात्विक नाम दिए। लारटेट के हिप्पोपोटेमस काल को शेल्स (Chelles) नामक स्थान के नाम पर शेलियन (Chellian) तथा ग्रेट बियर (Great Bear) और मैमथ एज (MamothAge) को मौस्तेरियन (Mousterian) कहा। इसी प्रकार से अन्य पुरातात्विक सामग्री को प्रमुख स्थान के नाम पर विभिन्न वर्गो में विभाजित किया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उसके शेल्स ल मौस्तियर (Chelles Le Moustier), सोल्यूत्र तथा मेडेलीन (SolutreAnd Medeleine) संस्कृतियों का द्योतन नहीं करते थे, अपितु ये काल–क्रम के द्योतक थे। लारटेट तथा मौर्टिलेट के वर्गीकरण को बॉयड डाकिन्स (Boyad Dawkins) ने अनुचित कहा। उनका मत था कि प्रारूप के आधार पर वर्गीकरण उचित नहीं है। किन्तु मौर्टिलेट के वर्गीकरण को ही अधिकांश विद्वानों ने माना।

मौर्टिलेट द्वारा प्रस्तावित पूर्व पाषाणयुग का काल–विभाजन शेलियन (Chellean), मौस्तेरियन (Mousterian), सौल्यूत्रियन (Solutrean) तथा मैगदलेनियन (Magdelenian) का ही प्रयोग उन्नीसवीं शताब्दी में विशेषतः प्रचलित रहा। कालान्तर में शेलियन तथा मौस्तेरियन के बीच में उपकरणों के लिए आशूलियॉ (Acheulian) का प्रयोग भी प्रचलित हुआ। मौर्टिलेट की पुस्तक प्रीहिस्तारीक (le Prehistorique) में, जिसका तृतीय संस्करण 1903 ई० में निकला था पूर्व पाषाणकाल (Palaeolithic) का विभाजन निम्न (Lower), मध्य (Middle) तथा उच्च (Upper) में किया गया। निम्न पूर्व पाषाणकाल (Lower Palaeolithic Period) में शेलियॉ तथा आशूलियॉ (ChelleanAndAcheulian) मध्य पूर्वपाषाण काल (Middle Palaeolithic Period) में मौस्तेरियन (Mousterian) तथा उच्च पूर्वपाषाणकाल (Palaeolithic Period) में सौल्यूत्रियॉ (Solutrean) तथा मैगडलेनियॉ (Magdalenian) रखे गये।

मौर्टिलेट के इस वर्गीकरण के अतिरिक्त विभिन्न देशों के विद्वानों ने अपनी आवश्यकतानुसार नवीन शब्दों का चयन किया। विभिन्न विद्वानों के कार्यो ने यह स्पष्ट कर दिया कि बॉयड डाकिन्स (Boyd Dawkins) ने जो आलोचना मौर्टिलेट के विभाजनों कि की थी, वह बहुत अंशों में उचित थी। डाकिन्स ने स्पष्ट रूप से कहा था कि मौर्टिलेट का वर्गीकरण केवल उदग्र (Vertical) है। वह केवल काल–क्रम का द्योतन करता है। इससे क्षैतिज परिवर्तनों (Horizontal Changes) का द्योतन नहीं होता। यूरोप के विभिन्न स्थानों में हुए अनुसंधानों से यह भी स्पष्ट हुआ है कि संस्कृति में हुए क्षैतिज परिवर्तनों को मानना आवश्यक होगा। इसमें संदेह नहीं कि मौर्टिलेट ने जब वर्गीकरण किया था, उस समय उसके मस्तिष्क में काल–क्रम ही सर्वोपरि था। उसने Times, PeriodsAnd Epochs

Scanned with OKEN Scanner

में भी विभेद किया। उसके अनुसार Times से भू–वैज्ञानिक कल्पों जैसे तृतीयक (Tertiary), चतुर्थक (Quaternery) आदि का; Periods से Palaeolithic, Neolithic आदि का; Epochs से Chellean, Acheulian आदि का तात्पर्य था। सारांश में सभी काल–क्रम की विभिन्न स्थितियों का ही निरूपण करते थे।

मौर्टिलेट ने सेण्ट जरमेन संग्रहालय (Saint Germain Museum) की पुरानिधियों को अपने काल–क्रम के अनुसार व्यवस्थित किया था। किन्तु वहाँ के संग्रहक एलेक्जेण्डर बरट्रेण्ड (Alexander Bertrend) ने युग (Epoch) के स्थान पर प्रकार (Type) का प्रयोग अधिक समीचीन माना। बरट्रेण्ड ने जिस समय यह परिवर्तन किया, वह स्वयं इसके महत्व से परिचित नहीं था। वास्तव में यह प्रयोग क्रान्तिकारी महत्व का सिद्ध हुआ, क्योंकि मौर्टिलेट के युग (Epoch) का प्रयोग कालान्तर में प्रकार (Type) के द्योतन के लिए किया जाने लगा। फलतः इनसे क्षैतिज प्रसार (Horizontal Expansion) पर भी समुचित प्रकाश पड़ा।

अभी तक पाषाणयुग में केवल दो विभाजनों – पूर्व पाषाणकाल (Palaeolithic) तथा नव–पाषाण (Neolithic) के सम्बन्ध में ही ज्ञात था। उसके मध्य की कड़ी के सम्बन्ध में कुछ पता नहीं था। फ्रांस की कुछ गुफाओं में पूर्व पाषाणकालीन तथा नव पाषाणकालीन स्तरों के बीच के स्तरों में संस्कृति के अवशेष नहीं मिले थे। इस आधार पर यह कहा गया कि दोनों के मध्य में अन्तराल (Hiatus) है, किन्तु इस सम्बन्ध में 1875 से 1900 ई. के मध्य हुए अनुसंधान उल्लेखनीय है। एडूअर्ड पिएटे (Edouard Piette) ने माज दाजिल (Mas d'Azil) की दो गुफाओं में उत्खनन किया। उन्हें मैगदलेनियन (Magdalenian) जमावों के ऊपर के जमाव से हिरन के सींग (Stag's Horn) के हारपून (Harpoon) तथा लाल गेरू (Red Ochre) से चित्रित पेबुल मिले। इसे उसने आजीलियाँ (Axilian) की संज्ञा प्रदान की थी। 1891 ई. में शमैशन (Chamaison) तथा डरबस (Darbas) ने सेण्ट मॉर्टरी (Saint Martory) में उत्खनन किया था। वहाँ पर भी उन्हें आजीलियाँ उद्योग (Azilian Industry) के अवशेष मिले। मौर्टिलेट (Martilet) ने इसे टूरेशियाँ (Tourassian) कहा।

1879 ई. में जज एडमण्ड विल (Judge Edmond Vielle) ने छाटो द फेर (Chateau de Fere) के फेर एन टार्डेनोवा (Fere-en-Tardenois) में उत्खनन किया। वहाँ उन्हें छोटे ज्यामितिक उपकरण मिले। ग्रैब्रियल द मौर्टिलेट (Gabriel de Mortrlet) ने विभिन्न स्थानों पर प्राप्त इस प्रकार के उपकरणों का विवरण 1896 ई. में दिया था। इन्हें ज्यामितिक लघुपाषाण उपकरण कहा गया, इन्हें टार्डेनोशियाँ (Tardenoisian) का ही अंग बताया गया।

1886 ई. में कैम्पिनी (Campigny) में उत्खनन के फलस्वरूप जो उद्योग प्रकाश में आया उसमें नीचे के स्तर से कैम्पिनियन ऐक्स पिक, ट्रान्सवर्स ऐरोहेड, रुक्ष, छिद्रक, तथा स्क्रेपर (CampignianAxe, Pick, TransverseArrowheads, RoughAwls तथा Scraper) मिले। इनके ऊपर ह्यमूस लेयर (Humas layer) से, पालिशदार प्रस्तर–उपकरण मिले। विद्वानों के सम्मुख अब यह प्रश्न था कि आजीलियाँ, टारडेनोशियाँ तथा कैम्पेनियाँ (Azilian, Tardenoision तथा Campignian) को प्रागितिहास में कहाँ रखे। 1892 ई. में ऐलेन ब्राउन (Allen Brown) ने कहा कि पूर्व पाषाणकाल (Palaeolithic Period) तथा नव पाषाणकाल (Neolithic Period) के मध्य में इसकी स्थिति होनी चाहिए। उसने इसे मेसोलिथिक (Mesolithic) की संज्ञा प्रदान की। किन्तु सभी विद्वान् इससे सहमत नहीं थे।

Scanned with OKEN Scanner

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मौर्टिलेट के विभाजनों का क्रमशः और विकास हुआ। ऐबे ब्रायल (Abbe Breuil), ने शेलियॉ (Chellean) के स्थान पर एबेवीलियॉ (Abbevillean) शब्द का प्रयोग किया। इसी प्रकार ब्रायल (Breuil) ने उच्च पूर्वपाषाणकाल (Upper Palaeolithic) को भी अनेक भागों में विभाजित किया। मैसोलिथिक (Mesolithic) का स्पष्टीकरण पहले हो चुका था। किन्तु विद्वानों में इसके काल–विस्तार, उद्योग एवं जाति के सम्बन्ध में मतभेद था। मेनघिन (Menghin), मेसोलिथिक उद्योगों (Mesolithic industries) का वर्गीकरण उच्च पूर्वपाषाणकालीन (Upper Palaeolithic) उद्योगों के साथ–साथ करना चाहते थे। दोनों के लिए उन्होंने मायोलिथिक (Miolithic) शब्द का प्रयोग किया। ओवरमेयर (Obermaier) ने दो शब्दों – एपी–पेलियोलिथिक (epi-Palaeolithic) तथा प्रोटोनियोलिथिक (Proto-Neolithic) का प्रयोग किया। प्रथम में, उसने आजीलियॉ (Azilian) तथा टारडेनोशियॉ (Tardenoisean) को रखा। प्रोटोनियोलिथिक (Proto-Neolithic) के अन्तर्गत कैम्पिनियन (Campignian), किचेन मिडेन (Kitchen Midden) एवं अस्तूरियॉ (Asturian) को रखा। मेसोलिथिक (Mesolithic) की वास्तविक रूपरेखा का निर्धारण ग्रहेम क्लर्क (Grahame Clerk) की विख्यात पुस्तकों 'दि मेसोलिथिक एज इन ब्रिटेन' (1932) तथा 'दि मेसोलिथिक कल्चर्स ऑफ नार्दर्न यूरोप' (1936), (The MesolithicAge in Britain तथा The Mesolithic Cultures of Northern Europe से हुआ।

उन्नीसवीं शताब्दी तक प्रागितिहास का दृष्टिकोण प्रमुख रूप से भू–वैज्ञानिक था। मानव के अतीत का विभाजन उपकरणों के आधार पर विभिन्न कालों में किया गया था। मानव के विकास के प्रति वे अपेक्षाकृत उदासीन थे। कहने का तात्पर्य है कि काल–क्रम को ही अधिक महत्व दिया जाता था। उन्नीसवीं शती के अन्त तथा बीसवीं के प्रारम्भ में लोगों की विचारधारा में परिवर्तन होने लगा। अब विद्वान् विकास तथा विसरण (Diffusion) के संदर्भ में भी सोचने लगे। संसारव्यापी मानव–संस्कृति के विकास तथा प्रसार की समस्याएँ अब सर्वोपरि हो गई। मानव की संस्कृति का विकास तथा परिवर्तन क्यों और कैसे हुआ आवश्यक प्रश्न माने जाने लगे। साथ–ही–साथ मौर्टिलेट के युग (Epoch) का अन्त हो गया और उसका स्थान सांस्कृतिक उद्योगों ने ग्रहण कर लिया। भू–विज्ञान का महत्व अब भी कम नहीं हुआ, किन्तु उसका प्रयोग केवल काल–क्रम के द्योतन के लिए ही किया जाने लगा। दूसरे शब्दों में भू–वैज्ञानिक कल्पों का प्रयोग सांस्कृतिक अवस्थाओं के सापेक्ष अथवा निर्पेक्ष तिथि निर्धारण के लिए किया जाने लगा।

## भारत में प्रागितिहास का विकास

यूरोप में अठारहवीं शताब्दी से ही तथाकथित प्रस्तर उपकरणों के प्रति विद्वानों का ध्यान आकर्षित होने लगा था, किन्तु उनको मान्यता 1847 ई0 के बाद उस समय मिली जब बूशे द पर्थ (Boucher de Perthes) ने सौम्म–घाटी के ग्रैवेल से प्राप्त उपकरणों की घोषणा की। उपकरणों की मान्यता तथा मानव की प्राचीनता की भावना की स्थापना ने विद्वत्समाज की विचारधारा में क्रांतिकारी परिवर्तन किए। विश्व के प्रत्येक भाग में अपने प्राचीनतम पूर्वजों के सम्बन्ध में जिज्ञासा की पूर्ति के लिए उसके अशारीरिक उपांगों की खोज प्रारम्भ हुई। भारत में सर्वप्रथम 1842 ई. में मीडोज टेलर (Meadows Taylor) को लिंग सुगर (Ling Sugar) में नवपाषाण उपकरण प्राप्त हुआ था। 1860 ई0 में पुनः एक पालिशदार प्रस्तरोपकरण ला मेसूरिया (Le Mesurier) को प्राप्त हुआ, किन्तु पाषाण उपकरणों की खोज के संबंध में सबसे उल्लेखनीय तथा पुरोगामी कार्य राबर्ट ब्रूस फूट (Robert Bruce Foote: 1866,1901,1914,1916 ) का था। ये भारतीय भू–वैज्ञानिक सर्वेक्षण विभाग

Scanned with OKEN Scanner

(Geological Survey of India) में भू–तत्ववेत्ता थे। इन्होंने तमिलनाडु में पल्लवरम नामक स्थान के लैटराइट ग्रैवेल से पहला वास्तविक पूर्व पाषाणकालीन उपकरण 13 मई, 1863 ई0 को उठाया था। इस प्रकार ब्रूस फूट ने भारत में न केवल प्रस्तर युगीन उपकरणों के संकलन का ही श्रीगणेश किया, अपितु प्रागितिहास के अध्ययन की दिशा में प्रथम ठोस चरण उठाया। इसके पूर्व भारत में, इन उपकरणों की ओर किसी का भी ध्यान आकर्षित नहीं हुआ था। इसीलिए ब्रूस फूट को ही प्रायः भारतीय प्रागितिहास का जनक कहा जाता है। अपने भारत निवास के दौरान में देश के विभिन्न भागों से उन्होंने बहुत अधिक संख्या में प्रस्तरोपकरणों का संकलन मात्र ही नहीं किया, अपितु उनके प्राप्ति–स्थान (Find-spot) आदि के सम्बन्ध में भी विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया। ब्रूस फूट के इन पुरोगामी कार्यो के लिए भारतीय प्रागितिहास का विद्यार्थी उनका सदैव आभारी रहेगा। ब्रूस फूट का लगभग चालीस वर्षो का संकलन मद्रास संग्रहालय में संग्रहीत है। इन्होंने जिस चक्र का प्रचलन 1863 ई0 में किया था वह नित्य वर्द्धमान गति से गतिमान है।

ब्रूस फूट ने अपने सहयोगी विलियम किंग के साथ अत्तिरमपक्कम (Attirampakkam) में कोर्तलयार (Kortalayar) के ग्रैवेल–स्तर से तथा मद्रास के निकट नारणावरम (Naranavaram) से भी उपकरणों का संकलन किया था। 1865 ई0 में विन (Wynne) को हैदराबाद में पैठन के निकट गोदावरी के किनारे जीवाश्मों से सम्बन्धित एक अगेट–फलक (Agate Flake) प्राप्त हुआ था। 1873 ई. में नर्मदा नदी के किनारे भुथ्रा (Bhuthra) में हैकेट (Hacket) को जीवाश्मित मैमल से सम्बन्धित क्वार्टजाइट (Quartzite) का हैण्डैक्स (Handaxe) मिला था। विन तथा हैकेट की उपर्युक्त उपलब्धियाँ छिट–पुट ही थीं, किन्तु प्रागितिहास में अध्ययन के दृष्टिकोण से इनका महत्व कम नहीं था। उपकरणों से सम्बन्धित जीवाश्मित अवशेषों ने उपकरणों की भू–वैज्ञानिक स्थिति निर्धारित करने में सहायता प्रदान की। उस समय तक अतिनूतनकाल (Pliocene) तथा प्रातिनूतनकाल (Pleistocene Period) के मध्य किसी स्पष्ट विभाजक रेखा का ज्ञान नहीं था। फाकनर (Falconer) ने जीवाश्मित अवशेषों के आधार पर गोदावरी के ग्रैवेल को अतिनूतन (Pliocene) कालीन कहा। इस आधार पर एच.एफ.ब्लैण्डफोर्ड (H.F. Blandford) ने 1867 ई0 में यह प्रतिपादित किया कि भारत में इन उपकरणों की तिथि यूरोप से बहुत प्राचीन है।

ब्रूस फूट के इन कार्यो का अनुसरण, भारतीय भू–वैज्ञानिक सर्वेक्षण विभाग के उनके सहयोगियों ने भी किया। सम्मिलित रूप से एकत्रित किए हुए उपकरणों की एक सूची (Catalogue) कौगिन ब्राउन (Coggin Brown) ने प्रकाशित की। जिस समय ब्रूस फूट मद्रास, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक तथा गुजरात में तथा बॉल (Ball) उड़ीसा में उपकरणों के संकलन में व्यस्त थे, लगभग उसी समय कॉकबर्न (Cockburn) दक्षिणी उत्तर प्रदेश में पूर्व पाषाणकालीन उपकरणों के संकलन में संलग्न थे। उन्होंने दक्षिण मिर्जापुर क्षेत्र के सिंगरौली बेसिन, (1888) कोन प्रखण्ड (1893) तथा असम में खासी पहाड़ियों एवं बॉदा (1879) आदि के क्षेत्रों में उल्लेखनीय कार्य किया। सिंगरौली बेसिन के आदर्श–स्थल की खोज का श्रेय कॉकबर्न को ही है। कॉकबर्न को तालचिर शिलाओं (Talchir Rocks) के ऊपर स्थित ग्रैवेल–स्तर से प्रस्तरोपकरण प्राप्त हुये थे। इन उपकरणों को कॉकबर्न ने ऐक्स हेड (Axe head), सेल्ट अथवा रूड फ्लेक (Celts or Rude flake) की संज्ञा प्रदान की थी। इनसे कॉकबर्न का तात्पर्य उन्हीं उपकरणों से था जिन्हें हम आज हैण्डैक्स (Handaxe) की संज्ञा प्रदान करते हैं। सी.एच. रीड (C.H.Reed) ने उनको यूरोप तथा अन्य स्थानों से प्राप्त उपकरणों के ही समान कहा था। कॉकबर्न को गहरवाड़ गॉव (सिंगरौली बेसिन) के निकट

Scanned with OKEN Scanner

से जीवाश्म भी प्राप्त हुए थे।

कॉकबर्न के कार्य केवल पूर्व पाषाणकालीन उपकरणों के संकलन के दृष्टिकोण से ही महत्वपूर्ण नहीं है, अपितु उन्होंने भारतीय प्रागैतिहासिक शिलाचित्रों के खोज के क्षेत्र में कारलायल के सहयोग से पुरोगामी महत्व का कार्य किया (1883,1899)। कारलायल ने चित्रित शिलाश्रयों के अतिरिक्त लघुपाषाणीयकरणों पर भी समुचित ध्यान दिया। उनके लिखे विवरणों का प्रयोग विन्सेण्ट स्मिथ ने अपने सुप्रसिद्ध लेख में किया है। उनका लघुपाषाणोपकरण के सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण लेखों में है।

राबर्ट ब्रूस फूट तथा उनके सहयोगी विद्वानों ने प्रागैतिहासिक उपकरणों का वर्गीकरण तत्कालीन यूरोपीय विद्वानों के आधार पर ही किया था। उन्होंने यूरोपीय अनुसंधानों का अनुसरण करते हुए भारतीय पाषाण काल को दो प्रमुख भागों, यथा – पूर्व पाषाणकाल (Palaeolithic) तथा नव पाषाणकाल (Neolithic) में विभाजित किया। पाषाणकालों के अतिरिक्त उनके दो और वर्ग प्रारम्भिक लौह युग (The Early IronAge) तथा उत्तर लौह युग (The Later IronAge) थे। फूट ने अपने पूरा पाषाणकालीन (Palaeolithic) उपकरण को 'मद्रास' प्रकार का कहा। तत्कालीन यूरोपीय विचारधारा के अनुसार फूट ने भारत में भी पूर्व पाषाणकाल तथा नव पाषाणकाल (Palaeolithic तथा Neolithic) के मध्य में एक अन्तराल (Hiatus) की कल्पना की। सर जॉन इवान्स (Sir John Evans) के समान ब्रूस फूट ने भी यह घोषणा की कि पूर्व पाषाणकाल के अंत तथा नव पाषाणकाल के उद्‌भव में बहुत विस्तृत अन्तराल था। इन दोनों कालों के अन्तराल को उन्होंने साबरमती नदी पर सदौलिया के प्रतिमुख किनारों के भू–वैज्ञानिक अनुभाग के आधार पर समझाने का प्रयास किया। वहाँ पर पास्परिक पुरा पाषाणकालीन उपकरण शिगिल के स्तर में मिले थे। नदी ने उसके ऊपर 50 फीट मोटा जमाव निक्षिप्त कर दिया था। और उसके भी ऊपर 200 फीट मोटा जमाव वायु के माध्यम से हुआ था। इनके ऊपर नदी से हटकर एकाकी लोयस – पहाड़ियों के ऊपर नव पाषाणयुगीन लोगों के अवशेष प्राप्त हुए थे। चूँकि पुरा पाषाणकालीन उपकरणों के स्तर तथा नव पाषाणयुगीन उपकरणों के स्तर में बहुत अन्तर था, अतः फूट ने अपने अन्तराल के मत की घोषणा की थी। फूट को नवपाषाण उपकरणों के साथ उपरत्नों के लघुपाषाण फलक आदि भी अनेक स्थानों से प्राप्त हुए थे, किन्तु वह उनके महत्व को नहीं समझ सका था। उसके विवरणों को पढ़ने से स्पष्ट है कि इस प्रकार के लघुपाषाण फ्लेक (Pygmy Flakes) बहुत स्थानों से बहुसंख्या में मिले थे।

इस प्रकार के लघु पाषाणोपकरण दक्षिणी मिर्जापुर तथा उत्तरी रीवा में कारलायल को विंध्य पहाड़ियों के ऊपर खुले में तथा शिलाश्रयों में (जिनमें कुछ चित्रित थे) उपलब्ध हुए थे।

ब्रूस फूट तथा काकबर्न आदि विद्वानों ने यद्यपि भारतीय प्रस्तरयुगीन उपकरणों तथा संस्कृति के संकलन एवं अध्ययन का शुभारम्भ कर दिया था और उसे एक निश्चित दिशा भी प्रदान की थी, किन्तु उनके बाद एक लम्बे समय तक किसी भी विद्वान् ने इस ओर ध्यान्न नहीं दिया। भारतीय विद्वान् भी इसके प्रति उदासीन रहे। कनिंघम (Cunningham) तथा जेम्स बर्गेस (James Burgess) आदि विद्वानों ने जहाँ पुरातत्व की अन्य विधाओं को समृद्ध किया, प्रागितिहास के प्रति वे उदासीन रहे। कर्जन (Curzon) के काल में भी इस सम्बन्ध में कोई कार्य नहीं हुआ। मार्शल (Marshall) के आगमन से भारतीय पुरातत्व में विशेष प्रगति हुई। इसका काल अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण था। भारत के प्रमुख नगरों, यथा – आगरा, दिल्ली, लाहौर आदि में संग्रहालय खोले गये तथा अनेक

Scanned with OKEN Scanner

महत्वपूर्ण प्रकाशन भी हुए जो आज भी पहले की भाँति उपयोगी है। तक्षशिला (Taxila), हड़प्पा (Harappa) तथा मोहनजोदड़ो (Mohenjo-daro) आदि स्थलों पर कार्य करने का श्रेय मार्शल को ही प्राप्त है। उनके अथक प्रयासों से तथा विद्वत्तापूर्ण प्रकाशनों से भारतीय संस्कृति का एक सुस्पष्ट स्वरूप विद्वत्समाज के सामने प्रस्तुत किया जा सका। किन्तु मार्शल भी प्रागितिहास के प्रति उदासीन ही रहे। प्रागितिहास के अध्ययन के दृष्टिकोण से मार्शल तक के काल को अंधकार–युग कहना अनुचित नहीं होगा।

ब्रूस फूट तथा उनके समकालीन विद्वानों के बाद सबसे महत्वपूर्ण नाम कामियाडे (Cammiade) तथा रिचर्ड्स (Richards) का है। वास्तव में भारतीय प्रागितिहास को पुनः जीवित करने का श्रेय इन्हीं दोनों विद्वानों को है। इन्होंने प्रागितिहास के अनुसंधान तथा अध्ययन को नवीन ज्योति प्रदान की। इन दोनों विद्वानों ने अपने अन्य शासकीय कार्यों के साथ–साथ आंध्र तथा तमिलनाडु प्रदेशों से बहुत अधिक संख्या में प्रस्तरोपकरणों का संग्रह किया। इनके सम्पूर्ण संकलन का अध्ययन प्रसिद्ध विद्वान् एम.सी. बर्किट (M.C. Burkitt) ने किया। बर्किट ने कामियाडे के सहयोग से इस सम्बन्ध में एक विद्वतापूर्ण लेख भी प्रकाशित किया। यह लेख अनेक दृष्टिकोण से बहुत महत्त्वपूर्ण था। ब्रूस फूट आदि विद्वानों ने उपकरणों को यूरोपीय परम्परा के अनुसार वर्गीकृत किया था। उन विद्वानों का कार्य–क्षेत्र यद्यपि बहुत विस्तृत था, तथापि उन्होंने उपकरणों का सूक्ष्म निरीक्षण और उनका विभिन्न भू–वैज्ञानिक स्तरों से सम्बंधीकरण नहीं किया था। बर्किट तथा कामियाडे ने विभिन्न स्तरों से प्राप्त सभी उपकरणों को चार श्रेणियों में विभाजित किया। उन्होंने प्रथम श्रेणी में हैण्डैक्स, क्लीवर आदि, द्वितीय में फलक उपकरणों के साथ विकसित हैण्डैक्स, तृतीय में ब्लेड तथा भुथड़े पार्श्व ब्लेड, ब्यूरिन, स्क्रेपर आदि एवं चतुर्थ में लघुपाषाणोपकरण को रखा। प्रत्येक श्रेणी के उपकरण विशिष्ट स्तरों से सम्बन्धित थे। अफ्रीका के प्रस्तरयुगीन उद्योगों के समान भारतीय उद्योगों का सम्बन्धीकरण भी प्रमुख जलवायु सम्बन्धी परिवर्तनों, वर्षाकालों तथा अन्तर्वर्षा कालों से किया। उपकरणों को भू–वैज्ञानिक कल्पों से सम्बन्धित करने का, भारत में, यह महत्वपूर्ण प्रयास था। कामियाडे तथा बर्किट के निष्कर्षों का परीक्षण करने के लिए कामियाडे तथा रिचर्ड्स ने मद्रास क्षेत्र में उपकरणों का पुनः संकलन किया। नए संकलन के विषय में 1932 ई. में उन्होंने पुनः एक लेख प्रकाशित किया जिसमें प्रथम लेख के निष्कर्षों की पुष्टि की गई थी।

भारतीय प्रागितिहास के अध्ययन में 1930 ई० का वर्ष एक निश्चित स्थिति का निर्देश करता है। इस वर्ष से प्राचीन गत्यवरोध का मात्र अन्त ही नहीं होता, अपितु नई स्फूर्ति से कार्यारम्भ भी होता है। दक्षिण भारत में कामियाडे, रिचर्डस तथा बर्किट ने उल्लेखनीय कार्य किया। उसी वर्ष टॉड (Todd) ने सोहन–घाटी में पिण्डी घेव नामक स्थान से पूर्व पाषाणकालीन प्रस्तरोपकरण का संकलन किया। उसी स्थान से उनके दो वर्ष पहले भारतीय भू–वैज्ञानिक सर्वेक्षण (Geological Survey of India) विभाग के वाडिया (Wadia) ने भी प्रस्तरोपकरणों का संकलन किया था। 1932 ई० में डि टेरा (De Terra) को भी हिमालय में प्रस्तरोपकरण मिले थे। टॉड तथा वाडिया के संकलन का भी निरीक्षण उन्होंने किया था। सभी वस्तुओं के सूक्ष्म निरीक्षण के उपरान्त उन्होंने व्यक्त किया कि दक्षिण भारत के अतिवर्षाकालों (वृष्टयावर्तनों) तथा अन्तर्वर्षाकालों (वृष्टिप्रत्यावर्तन) का सम्बन्धीकरण उत्तरी भारत के हिमकालों (हिमावर्तन) तथा अन्तर्हिमकालों (हिमप्रत्यावर्तन) से किया जा सकता है। उन्होंने अपनी इस संभावना के परीक्षण एवं पुष्टि के लिए एक पूर्णविकसित अभियान की योजना बनाई। यह अभियान 1936 ई. में डी टेरा की अध्यक्षता में येल–कैम्ब्रिज एक्सपेडीशन (Yale-

Scanned with OKEN Scanner

Cambridge Expedition) के नाम से आया। इसके अन्य सदस्य टीलहार्ड डि चार्डिन (Teilhard de Chardin) तथा टी.टी. पेटरसन थे। इन तीनों विद्वानों ने विज्ञान, जीवाश्म विज्ञान तथा प्रागितिहास के माध्यम से प्रातिनूतन काल का सूक्ष्म अध्ययन करने के लिए काश्मीर घाटी तथा पूँछ से लेकर सिंध तथा झेलम के मध्य स्थित नमक की पहाड़ियों तक के क्षेत्रों का सर्वेक्षण किया। प्रागितिहास की प्रगति के दृष्टिकोण से यह सबसे महत्वपूर्ण घटना थी। येल–कैम्ब्रिज अभियान ने जिस चक्र का प्रारम्भ किया वह अब भी गतिमान है। डी टेरा इस सम्पूर्ण क्षेत्र से पहले से ही परिचित थे। उनका तथा अनेक विद्वानों का अनुमान था कि आदि मानव के उद्भव की अनेक गुत्थियाँ इस क्षेत्र के सर्वेक्षण से सुलझाई जा सकती हैं क्यों कि हिमालय के उद्विकास ने मानव के उद्भव के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न की होंगी। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में हुए विश्वव्यापी जलवायु परिवर्तनों –हिम कालों अन्तर्हिम कालों – से मानव उद्योगों से सम्बन्धित करके उनका कालानुक्रम भी निर्धारित किया जासकता है जैसा कि यूरोप में किया गया है।

इस क्षेत्र के अतिरिक्त येलकैम्ब्रिज एक्सपेडीशन ने नर्मदा की घाटी में भी सर्वेक्षण किया तथा उस क्षेत्र में हुए वर्षाकालों तथा अन्तर्वर्षाकालों में निर्मित जमावों से सम्बन्धित करके उत्तरी भारत के जलवायु सम्बन्धी परिवर्तनों से सम्बन्धित करने का प्रयास किया। ;डीटेरा तथा पेटरसन टी0 टी0 1939।[21]

डी टेरा तथा उनके सहयोगियों ने प्रातिनूतनकालीन सम्पूर्ण जमावों के विभिन्न स्तरों का सूक्ष्म अध्ययन इस दृष्टिकोण से किया कि हिमकालीन तथा अन्तर्हिमकालीन जमावों को निकटवर्ती पहाड़ियों तथा उनके निचले मैदानों के परवर्ती (Late) तथा उत्तर शिवालिक (Post-Siwalik) जमावों के साथ सम्बंधित किया जा सके। उनको इस प्रकार से सम्बन्धित करके ही उन जमावों में प्राप्त होने वाले उपकरणों की तिथि निर्धारित की जा सकती थी।

विभिन्न हिमायनों ने हिमालय तथा निकटवर्ती क्षेत्रों को समुचित रूप से प्रभावित किया था। उन स्थानों पर भी जहाँ हिमायन नहीं हुआ था, नदियों की वेदिका के रूप में उनके प्रभावों का अध्ययन किया जा सकता है। ये वेदिकाएँ ही प्राचीन मानव के आवास–स्थल थीं। अतः मानव के अध्ययन के लिए इन वेदिकाओं का निरीक्षण सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।

प्रातिनूतनकालीन जमावों के अध्ययन के लिए डी टेरा तथा उनके सहयोगियों ने शिवालिक श्रृंखलाओं को चुना। इसके चुनाव का प्रमुख कारण यह था कि इसी क्षेत्र से पहले प्रागैतिहासिक प्रस्तरोपकरण उपलब्ध हुये थे। इसके अतिरिक्त प्रातिनूतनकालीन भू–वैज्ञानिक जमाव यहाँ पर सबसे अधिक स्पष्ट थे। 1935 ई. के अपने अभियान में डी टेरा तथा उनके सहयोगियों ने सिंधु तथा उसकी सहायक सोहन तथा झेलम की घाटियों का सूक्ष्म पर्यवेक्षण किया। यह अभियान भारतीय प्रागितिहास में केवल इस क्षेत्र के भू–वैज्ञानिक अध्ययन के लिए ही विख्यात नहीं है, अपितु, भारत की प्राचीनतम पूर्व पाषाणकालीन संस्कृति को भी प्रकाश में लाने का श्रेय इसे ही प्राप्त है।

इन विद्वानों के अनुसार सम्पूर्ण शिवालिक–जमाव को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है – उच्च शिवालिक, मध्य शिवालिक तथा निम्न शिवालिक। निम्न तथा मध्य शिवालिक तृतीयक काल के मध्य तथा अतिनूतन काल के अन्तर्गत आते हैं तथा उच्च शिवालिक मात्र प्रातिनूतन काल के अन्तर्गत हैं। उच्च–शिवालिक को पुनः तीन भागों में विभाजित किया गया – टैट्राट जोन, पिज्जोर जोन तथा बोल्डर कांग्लोमरेट जोन। इनमें प्रथम दो निम्न प्रातिनूतन काल के तथा अन्तिम मध्य प्रातिनूतन के प्रारम्भिक हुआकाल में रखे जाते हैं। टैट्राट जमाव को पुरावनस्पतिशास्त्र,

Scanned with OKEN Scanner

भू–वैज्ञानिक साक्ष्यों एवं मिट्टी के रासायनिक परीक्षण के आधार पर प्रथम हिमायन से तथा पिज्जौर स्तर की अश्मविज्ञान (Lithology) के आधार पर अन्तर्हिमकाल से सम्बन्धित किया जाता है।

डी टेरा तथा पेटरसन के अनुसार द्वितीय हिमकाल में बोल्डर कांग्लोमरेट का निर्माण हुआ, क्योंकि द्वितीय हिमकाल के मोरेन बोल्डर कांग्लोमरेट से मिल जाते हैं। यह साक्ष्य बहुत महत्वपूर्ण था। इसी के आधार पर उच्च शिवालिक जोन तथा काश्मीर के हिमायन चक्रों (Glacial Cycles) का पारस्परिक सम्बन्धीकरण हुआ है। इसी साक्ष्य पर सोहन घाटी तथा मैदानी प्रदेशों का भी सम्बन्धीकरण आधारित है। डी टेरा तथा पेटरसन आदि विद्वानों ने सोहन घाटी की पाँचों वेदिकाओं का सूक्ष्म सर्वेक्षण ही नहीं किया, अपितु हिमालय में प्रातिनूतन कालीन विभिन्न हिमायनों से उनका सम्बंधित भी किया। इनके अनुसार द्वितीय अन्तर्हिमकाल में प्रथम वेदिका (T1), तृतीय हिमकाल में द्वतीय वेदिका (T2), तृतीय अन्तर्हिमकाल में तृतीय वेदिका (T3) तथा चतुर्थ हिमकाल में चतुर्थ वेदिका (T4) का क्रमशः निर्माण हुआ। पाचवी वेदिका (T5) का निर्माण हिमायनों के बाद हुआ।

विभिन्न वेदिकाओं से सम्बंधित उपकरणों के मिलने से इनका कार्य और महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। टैरेस डिपाजिट जिसका निर्माण द्वितीय हिमकाल में हुआ था, से जो उपकरण प्राप्त हुए वे प्राक्सोहन उद्योग के नाम से अभिहित किए गए। प्रथम वेदिका से आदि सोहन (Early Sohan), द्वतीय वेदिका से अन्त सोहन (Late Sohan) तथा चतुर्थ वदिका से विकसित सोहन (Evolved Sohan) कहे गए। पॉचवी वेदिका तिसका निर्माण नूतन कल्प (Holocene) में हुआ था से लघुपाषाणोपकरण तथा नव पाषाणोपकरण उपलब्ध हुए थे।

उंत्तर–पश्चिम भारत के हिमालय क्षेत्र में किए गए इन कार्यों के फलस्वरूप भारत की प्रथम पाषाणयुगीन संस्कृति प्रकाश में आई जिसका सम्बंध विश्वव्यापी जलवायु परिवर्तनों से किया गया और उसी के आधार पर उसका कालानुक्रम स्थापित हुआ। इस प्रकर भारतीय पाषाणयुगीन संस्कृति को प्रथम बार सुदृढ भूवैज्ञानिक आधार मिला।

प्रातिनूतन काल में जहाँ हिमालय के निकटवर्ती क्षेत्र में हिमायन हुए थे वहाँ दक्षिण भारत में अतिवर्षा काल हुऐ। येल कैम्ब्रिज अभियान ने उत्तरी भारत के प्रातिनूतन कालीन जमाओ का अध्ययन तो कर लिया था, किन्तु अखिल भारतीय संदर्भ में दक्षिण भारत के अतिवर्षा कालों तथा अन्तर्वर्षा कालों के ज्ञान के बिना उनका अध्ययन अधूरा ही था। साथ ही उंत्तर तथा दक्षिण भारत के प्रातिनूतन कालीन जमावों का पारस्परिक सम्बंध स्थापित करना भी उतना ही आवश्यक था। अतः येल कैम्ब्रिज अभियान ने मध्य भारत में नर्मदा घाटी के जमावों का भी अध्ययन किया। यहॉ पहले भी जीवाश्म तथा उपकरण मिल चुके थे।

डी टेरा को नर्मदा की सहायक नदियों की घाटियों मे चार वेदिकायें मिली और प्रायः सभी स्थानों पर जमाव के तीन चक्रों (Three cycles of sedimentation) के प्रमाण मिले। इनमें प्रत्येक चक्र का निर्माण जल–घर्षित पत्थर, बालू तथा गाद मिट्टी से हुआ था। इनको क्रमशः निम्न वर्ग (Lower group) उच्च वर्ग (Upper group) तथा काली मिट्टी (cotton Soil) या रिगर वर्ग (Regur Group) कहा गया। इन तीनों वर्गों के नीचे लैटेराइट का जमाव है। इस प्रकार से कुल चारकालों के जमाव मिले। इनके बीच में तीन असादृश्यतायें (Disconfirmity) हैं जो तीन विस्तृत अपरदनित कालों (Erosional Periods) का संकेत करती हैं।

डी टेरा तथा पेटरसन को नर्मदा की घाटी के तीनों जमावों से उपकरण प्राप्त हुए थे। निम्न

Scanned with OKEN Scanner

वर्ग के आधारिक ग्रैवेल (Besal gravel) से प्राक्सोहन के समान बड़े फलक तथा एबेवीलिया और आशूलियाँ हैण्डैक्स, क्लीवर, कोर और फलक प्राप्त हुए थे। उपकरणों के साक्ष्यों के आधार पर ही डी टेरा तथा पेटरसन ने निम्न वर्ग के आधारिक ग्रैवेल को प्रथम वेदिका से, और उसके ऊपर की गुलाबी संग्रथित मिट्टी (Pink concretionary clay) जमाव को द्वितीय वेदिका से सम्बधित किया है। इसी प्रकार उच्च वर्ग के ग्रैवेल को त्रितीय वेदिका से तथा ऊपर की मिट्टी के जमाव को चतुर्थ वदिका से सम्बधित किया गया है क्यों कि इसमें प्राप्त उपकरण तकनीकी दृष्टिकोण से उन सोहन उपकरणों के समान थे जो द्वितीय तथा त्रितीय वेदिकाओं से प्राप्त हुए थे।

उच्च वर्ग के ऊपर प्रातिनूतन कालीन जमाओ के ऊपर एक नवीन प्रकार का जमाव मिलने लगता है जिसे रीगर कहा गया है। डी टेरा ने इसे पंजाब की पंचम वेदिका से सम्बधित किया है। इस जमाव के आधारवर्ती ग्रैवेल तथा बालू के जमाव से डी टेरा तथा टीलहार्ड को किसी लघुपाषाण उद्योग के उपकरण जिसमें छोटे ब्लेड तथा स्क्रेपरों का बहुल्य था, उपलब्ध हुए थे।

दक्षिण में इन विद्वानों ने मद्रास के उत्तर में कोर्तलयार की घाटी में भी कार्य किया। वहाँ पर उन्हें तीन वेदिकाओं पर एबेवीलियाँ (Abbevillian) से लेकर विकसित आशूलियाँ उपकरण प्राप्त हुए थे।

1935 ई0 के येल कैम्ब्रिज एक्सपेडिशन का कार्य तत्कालीन सन्दर्भ में महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। लगभग सभी विद्वानों ने डी टेरा के द्वारा प्रस्तावित कालक्रम को अपनाया।

संक्षेप में उनके अनुसंधानों ने निम्न बिन्दुओं को प्रस्तुत किया (राधा कान्त वर्मा ,2011), Changing Patterns of Lower Palaeolithic in SouthAsiaAnd Recent Researches in Belan Valley (U.PAnd Mid Son Valley ( MP) ME No,41 pp49&70)

1. येल कैम्ब्रिज एक्सपेडिश्न ने कश्मीरघाटी में चार हिमायनों को चिन्हित किया तथा उनका पुठवल प्रदेश में प्राप्त वेदिकाओं से सम्बंध स्थापित किया। इस प्रकार से उन्होंने जलवायु जनित जमाओं के साक्ष्यों को प्रकाशित किया।

2. उन्होंने 'बोल्डर कांग्लोमरेट को द्वितीय हिमकाल से सम्बधित करके शिवालिक अनुक्रम मे जलवायु जनित जमाव की स्थापना की। मध्य सोहन घाटी में बोल्डर कांग्लोमरेट के बाद (तथा कथित) निर्मित चार वदिकाओं की पहचान की।।ये वदिकायें क्रमशः प्रथम वेदिका (T1) द्वितीय अन्तर्हिमकाल, (T2) तृतीय हिमकाल, (T3) तृतीय अन्तर्हिमकाल, (T4) चतुर्थ हिमकाल से सम्बन्धित की गई।

3. उन्होंने भारतीय निम्न पुरापाषाण काल में दो समानान्तर प्रस्तर उद्योगों (1) सोहन पेबुल चापर चापिग तथा फलक उद्योग तथा (2) मद्रासीय हैण्ड ऐक्स परम्परा के विकास की घोषणा की।

पेबुल चापर चापिग उपकरण सोहन की वेदिकाओं से प्राप्त हुए थे। इनको पाच वर्गों में विभाजित किया गया। इसमें प्रारम्भिक सोहन (Early Sohan) पुरा पाषाण युगीन था। सोहन उद्योगों में उन्होने एक विकास क्रम अथवा उत्पत्ति जनित (Genetic relationship) सम्बधं की परिकल्पना की। उनके अनुसार प्रारम्भ में सोहन सेस्कृति उत्तर पश्चिम भारत में सीमित रही किन्तु बाद में यह दक्षिण की ओर विसरित होती गई।

4. डी टेरा तथा पेटरसन की इस परिकल्पना को आगे बढ़ाते हुए मोवियस (1944:24) ने उद्घोषणा की कि पेबुल चापर चापिग संस्कृति 'Great Eastern Culture Complex' का ही एक अंग है जिसके अन्तर्गत पंजाब की सोहन. जावा की पतजीतीनियन तथा मलाया की कोटा

Scanned with OKEN Scanner

टेम्पानियन (Kota Tempanian) आते हैं।

5 मद्रासीय हैण्ड ऐक्स परम्परा उद्योग को तृतीय वेदिका (T3) के आधारिक ग्रैवेल में चिन्हित किया गया। यह उद्योग यूरोप अथवा अफ्रीका के कू–द–पो (coup de poing) उद्योग से सम्बन्धित बताया गया।

6. इन विद्वानो की धारणा में पेबुल चापर चापिग तथा मद्रासीय हैण्ड ऐक्स परम्परा का विकास स्वतंत्र एवं समानान्तर रूप से क्रमशः उत्तर–पश्चिम तथा दक्षिण भारत में हुआ। कालान्तर में इनका प्रसरण क्रमशः दक्षिण एवं उत्तर दिशा में हुआ। ये दोनो उद्योग मध्यभारत तथा गुजरात अथवा नर्मदा–साबरमती धुरी पर परस्पर एक दूसरे के सम्पक्र में आए (de Terra and Paterson 1939)। यह उल्लेख्य है कि डी टेरा तथा पेटरसन प्रातिनूतन काल के विश्वव्यापी जलवायु परिवर्तनो यथा हिमावर्तनों एवं वर्षा कालों को यूरोपीय अवधारणा के समान समसामयिक मानते थे। *उन्होंने बेल्डर फैन्स (Boulder fans) तथा काश्मीर के मोरेनों को सोहन के बोल्डर कांग्लोमरेट से सह सम्बन्धित करके दोनो को यूरोप के द्वितीय हिमकाल अथवा मिण्डेल के समकालीन कर दिया।* मध्य सोहन घाटी के कालानुक्रम का निर्धारण बोल्डर कांग्लोमरेट की उत्तरवर्ती चार वेदिकाओं पर निर्धारित की गई। कालान्तर में रेण्डेल आदि ने स्पष्ट किया कि डी टेरा तथा पेटरसन की वेदिकायें थी ही नहीं वे मात्र अनुमानित थी। डी टेरा तथा पेटरसन ने भी अपनी रिपोर्ट (1939:283) में इसका उल्लेख किया है कि उन्हें रावलपिण्डी के दक्षिण–पूर्व में सोहन घाटी के मूल क्षेत्र में कोई वेदिका नहीं मिली थी। डी टेरा तथा पेटरसन ने छौन्तरा के ऊपर वेदिकाओं का जो अनुभाग (1939:fig177) दिया है वह संकल्पित है। इसी प्रकार से जो दो प्रस्तर उद्योगों के सिद्धान्तो का प्रतिपादन डी टेरा तथा पेटरसन ने किया था वह भी पेटरसन के दक्षिण इंगलैण्ड में किए गए कार्यो का आक्षेपण मात्र है। सेण्ट ग्रिगोरी इंगलैण्ड में पेटरसन ने अबेवीलियाँ तथा आशूलियाँ में जिस विकास क्रम की परिकल्पना की थी उसी विकास क्रम की परिकल्पना उन्होंने सोहन उद्योग में भी कर डाली। उनकी यह विवेचना पुरातात्विक सिद्धान्तों के अनुरूप नहीं थी। इंगलैण्ड में किए गए उनके कार्यों की कमजोरी पर ओकले तथा मेरी लीके ने विद्वत् जगत का ध्यान आकर्षित किया था। एक ही लेयर से प्राप्त उपकरणों को उनके आकार, पैटीनेशन अथवा घर्षण के आधार पर विभिन्न कालानुक्रमों में बाटना अनुचित है।

यह दुर्भाग्य है कि डी टेरा तथा पेटरसन की अवधारणायें लगभग छह दशकों तक बिना किसी परिवर्तन के भारतीय पुरातत्व पर पूर्ण वर्चस्व बनाए रहीं। क्यों कि विषम राजनीतिक परिस्थितियों के कारण उत्तर–पश्चिम भारत में उस क्षेत्र में किसी ने कार्य नहीं किया। फलतः उनकी जलवायु तथा उद्योग सम्बंधी अवधारणायें चलती रहीं। यूरोपीय सन्दर्भ में ये पहिले ही अमान्य हो चुकी थी। 1954 में ही पावलो ग्रैजिओसी (Paolo Graziosi) ने उत्तर पश्चिमी पंजाब में झेलम तथा सिंधु नदियों के पूर्व तथा पश्चिम में और सोहन तथा हैरोई (Haroy) नदियों के दक्षिण तथा उत्तर में सर्वेक्षण के उपरान्त ही घोषणा की थी कि डी टेरा तथा पेटरसन के द्वारा किए गए Chronological Chart तथा पंजाब के नदियों की वेदिकाओं को हिमकालों से सम्बधित करना बोधगम्य नही है। (खत्री ए0 पी0 1978: से उद्धरित)। अलचिन तथा अलचिन ने अपनी पुस्तक राइज आफ सिविलाईजेशन इन इण्डिया ऐण्ड पाकिस्तान (Rise of Civilisation in India and Pakistan) के 1983 के एडीशन में पहली बार उल्लेख किया कि " The Geological and theArchaeological sequences constructed by de Terra and Paterson must be set aside and other means found for working out sequential relationship and dating individual sites and cultural phases" डी

टेरा तथा पेटरसन के द्वारा निर्मित भौतात्विक तथा पुरातात्विक अनुक्रमों को अमान्य करते हुए एकाकी पुरास्थ्लों के पारस्परिक अनुक्रम तथा तिथि निर्धारण एवं सांस्कृतिक काल निर्धारण के लिए बृटिश आर्क्येलाजिकल मिशन के अनुसार कोई अन्य विकल्प ढूढना चाहिए। इस प्रकार गत शताब्दी के आठवे दशक में बृटिश आर्क्येलाजिकल मिशन ने लगभग आठ वर्षो के सर्वेक्षण के बाद न केवल डी टेरा तथा पेटरसन के मिथक को प्रभावित किया अपितु एकदम नवीन तथ्यों को उजागर भी किया।

खेद का विषय है कि अभी भी बहुत से विद्वानों का डी टेरा तथा पेटरसन से मोह भंग नहीं हुआ है और उनका राग ही अलापते जा रहे हैं। डी टेरा तथा पेटरसन की अवधारणाओं ने किस प्रकार से हानि पहुचायी तथा विश्व के प्रागितिहास के इतिहास में भारत को अलग थलग कर दिया इसकी चर्चा आगे करेगे।

इसमें दो मत नहीं है कि येल कैम्ब्रिज एक्सपेडिशन ने भारतीय प्रागितिहास के अध्ययन को स्फूर्ति प्रदान की। जिस स्थानपर इन्हों ने अपने कार्य को छोड़ा था वहॉ से ही अन्य विद्वानों ने उनके सूत्रों को ग्रहण किया। वी0 डी0 कृष्णास्वामी ने मद्रास के निकटवर्ती क्षेत्रों का सर्वेक्षण किया (Journal Madras Geographical Association:58-90)। 1939 में टॉड ने एक लेख पेलियोलिथिक इण्डस्ट्रीज आफ बाम्बे (JAE LXIX,257-72) प्रकाशित किया। टॉड को भारत के पश्चिमी तट पर बम्बई के निकट खाण्डिवली में प्रस्तर संस्कृतियों का एक विकासात्मक क्रम मिला जो नीचे से इस प्रकार था:–सबसे नीचे एबेवीलियाँ–आशूलियाँ प्रकार के उपकरण थे उसके ऊपर फलक–ब्लेड–स्क्रेपर तथा ब्लेड और ब्यूरिन उद्योग तथा लघुपाषाण उपकरण क्रमशः प्राप्त हुए थे। टाड के पहले सम्पूर्ण पाषाण काल का इस प्रकार का क्रम पूर्वीतट पर कामियाडे तथा बक्रिट को भी प्राप्त हुआ था (टाड के0आर0यू0 1939 जे0ए0आई LXIX,257&72).

## भारतीय विद्वानों का आगमन

1940 के पूर्व तक लगभग सभी विद्वान जो प्रागितिहास के क्षेत्र में काम कर रहे थे वे सभी यूरोपीय थे। 1940 से भारतीय विद्वानों के आगमन के साथ एक नवीन युग का प्रारम्भ होता है। 1940–41 के लगभग प्रो0 हॅसमुख धीरजलाल सॉकलिया के रूप में एक ऐसी विभूति का पदार्पण होता है जिसकी निष्ठा तथा अथक प्रयासों ने भारत में प्रागितिहास के अध्ययन को जो प्रगति एवं प्रौढ़ता प्रदान की वह अविस्मरणीय रहेगी। उन्हांने केवल डेकन कालेज ही नहीं अपितु इलाहाबाद तथा वाराणसी आदि विश्वविद्यालयों के युवा अध्यापकों को भी शिक्षित किया। फलतः कालान्तर में इलाहाबाद तथा बनारस विश्वविद्यालय भी प्रागितिहास के प्रमुख केन्द्रों के रूप में विकसित हुए।

1941 ई0 में प्रो0 सॉकलिया ने गुजरात तथा काठियावाड़ के सर्वेक्षणों से अपनाकार्य प्रारम्भ किया। गोदावरी के किनारे नान्देड माधवेश्वर नामक स्थान पर ग्रैवल से उन्हे लघुफलकोपकरण प्राप्त हुए। इसके अतिरिक्त ब्रूसफूट के मद्रास संग्रहालय के संग्रह का अध्ययन करके उसपर अपनी रिपोर्ट लिखी जो 1944 में प्रकाषित हुई। साकलिया के अनुसार इस अध्ययन ने ही उनको प्रागितिहासकार बना दिया। उन्हों ने इसके शीघ्र ही बाद ब्रूसफूट का अनुसरण करते हुए नर्मदा, गोदावरी तथा मालप्रभा आदि घाटियों का सर्वेक्षण किया।

लगभग इसी समय कोलकाता विश्वविद्याालय के निर्मल कुमार बोस तथा धरणी सेन ने भी प्रागितिहास के क्षेत्र में प्रवेश किया। उन्हों ने अपना अध्ययन बूढबलंग नदी के सर्वेक्षण से प्रारम्भ किया। उन्होंने कुलियाना में उत्खनन भी किया।

Scanned with OKEN Scanner

20वी शताब्दी के मध्य तक सॉकलिया, उनके शिष्यों तथा अन्य विद्वानों ने बहुत से पुरा स्थलों को खोज लिया था। गुजरात प्रदेश में उन्हों ने अनेक अभियानों का नेतृत्व किया फलतः विविध प्रकार के उपकरणों का विशाल संग्रह होगया था किन्तु अभी भी हमारा ज्ञान भू–काल–क्रमिकी (Geochronology) तथा वतावरण सम्बधी क्षेत्र में शून्य था क्यों कि यहाँ पर पुरातत्व तथा प्रकृति वैज्ञानिकों में परस्परिक सहयोग नहीं थां। इस कमी की पूर्ति के लिए भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग (Archaeological Survey of India) तथा डेक्कन कालेज ने भू–काल–क्रमिकी तथा वतावरणीय पुरातत्व (GeochronologyAnd EnvironmentalArchaeology) के प्रकाण्ड पण्डित प्रोफेसर ज्वायनर (Prof Zeuner) को आमंत्रित किया। ये लन्दन विश्वविद्यालय में भू–काल–क्रमिकी के प्रोफेसर थे।

प्रोफेसर ज्वायनर ने भारत में अपने प्रवास काल में विभिन्न पुरास्थलों का सर्वेक्षण मात्र ही नही किया अपितु अनेक भारतीय विद्वानों को विषय की गूढ़ता से भी परिचित कराया। उन्होने गुजरात में साबरमती, माही, आरसंग नदियों तथा महाराष्ट्र में गोदावरी की घाटी, दक्षिण उत्तर प्रदेश में बलिया नदी, उड़ीसा में मयूरभंज, कर्नाटक में मालप्रभा की घाटी, कुरनूल में गिद्दलूर तथा दक्षिण तमिलनाडू में टेरी पुरास्थलों का अवलोकन किया। इन सभी स्थलों पर ज्वायनर ने भू–वैज्ञानिक स्तरों के जमाव तथा उनके विश्लेषण पर अधिक ध्यान दिया। ज्वायनर की अध्यक्षता में हुए सर्वेक्षण के फलस्वरूप अनेक महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुए।

उत्तरी गुजरात में प्रातिनूतन काल से नूतन काल तक के जलवायुगत परिवर्तनों का सूक्ष्म अध्ययन (ज्वायनर,एफ0ई0 1950,1952) लंघनाज आदि स्थानों पर किया गया।

मिर्जापुर में सिगरौली बेसिन में बलिया नदी के सर्वेक्षण में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रो0 शर्मा तथा सर्वे के कृष्णास्वामी ने भी भाग लिया था। इस अभियान ने मिर्जापुर मे काकबर्न (1880 पृ057–65) के प्राचीन स्थल को पुनः खोजा और वहाँ से उपकरणों का संग्रह किया। वहाँ पर उन्हें दोनो प्रकार के उपकरण– सोहन तथा मद्रास शैली के– और लघुपाषाणोपकरण प्राप्त हुए। इस क्षेत्र में हुए कार्यो की विस्त्रित विवेचना कृष्णास्वामी तथा सौन्दर राजन ने अपने लेख (1951 पृ0 40–65) में की है।

गिद्दलूर में सर्वप्रथम बक्रिट तथा कामियाडे ने प्रागैतिहासिक प्रस्तरोपकरणों का अध्ययन किया था तथा वहाँ के भू–वैज्ञानिक स्तरों का सम्बंधीकरण वर्षा तथा अन्तर्वर्षा कालों से किया था। ज्वायनर ने इस क्षेत्र का भी सर्वेक्षण कृष्णास्वामी के सहयोग से किया। ज्वायनर ने बक्रिट तथा कामियाडे के निष्कर्षो की पुष्टि की। गिद्दलूर–1 से उन्हें कामियाडे आदि के I तथा II श्रेणी के उपकरण मिले। उनके संकलन में एबेबीलियो–आशूलियाँ उभयपक्षीय उद्योग (Abbevillio&Acheulian&bifacial Industry) के साथ–साथ पेबुल (Pebble) उपकरण और क्लैक्टोनियन फलक (Clactonian flakes) थे। गिद्दलूर–2 में भी यद्यपि एबेबीलियो–आशूलियाँ उपकरण विद्यमान थे, किन्तु उनका आकार अपेक्षाकृत छोटा था। उपकरणों पर लेवालेवा प्रभाव मिलने लगता है। अन्य उपकरणों के साथ ब्यूरीनेट उपकरण (Burinate Flake) तथा ब्लेड उपकरण भी मिले हैं। सम्पूर्ण संकलन को देखने से वे उच्चपुरापाषाण कालीन (Upper Palaeolithic) लगते हैं। यह संकलन बक्रिट तथा कामियाडे के II तथा III श्रेणी (Series) के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। गिद्दलूर–2 से इन्हे बहुत संख्या में लघुपाषाणोपकरण भी प्राप्त हुए जिन्हें इन्हों ने 'एपीपेलियोलिथक – माइक्रोलिथिक उद्योग (Epipalaeolithic & microlithic Industry) की संज्ञा प्रदान की।

Scanned with OKEN Scanner

वास्तव में गिद्दलूर भी प्रस्तर युगीन संस्कृतियों के विकास के अध्ययन के लिए महत्व पूर्ण स्थानों में से एक है। यहाँ पर भी प्रस्तर युग की सभी संस्कृतियाँ विद्यमान थी।

ज्वायनर का कार्य (ज्वायनर एण्ड अलचिन बी0 1956 पृ04–20) टेरी में विशेष उल्लेखनीय था। उन्हों ने तूतिकोरिन' (Tuticorin) तथा तिरुचेन्दूर (Tiruchendur) नामक तालुकों में ग्यारह लघुपाषाण उद्योगस्थलों का सूक्ष्म अध्ययन किया। इन उद्योगस्थलों के भू–वैज्ञानिक स्वरूप को समझने के लिए उन्होने समुद्रतट पर आधुनिक भू–वैज्ञानिक परिवर्तनों का अध्ययन किया तथा इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि लघुपाषाणोपकरण उद्योगस्थल पुरातन अपक्षयण (Ancient Weathering) के काल से अधिक प्राचीन हैं तथा आधुनिक समुद्रतल से उच्चतर तल से सम्बधित थे। 20 से 30 फीट तक ऊचे समुद्रतल का सम्बंधीकरण अन्त मोनेस्टीरियन एपी–मोनेस्टीरियन अथवा उत्तर हिमायन कालों (Late- Monestirian, Epi- Monestirian) अथवा हिमायनोत्तरकाल (Post glacial) से किया जासकता था। ज्वायनर के अनुसार इस का सम्बंधीकरण हिमायनोत्तरकाल से करना अधिक उचित होगा। हिमायनोत्तरकाल के परवर्ती ऐटलाण्टिक काल ( LateAtlantic Times) में अथवा 4000 ई0 पूर्व के लगभग अधिकतम सुस्थितिक (Eustatic) प्रभाव हुआ होगा। टेरी उद्योग के लिए ज्वायनर महोदय ने इस तिथि का इस सम्भावना के साथ निर्देश किया कि भू–वैज्ञानिक अनुसंधान के द्वारा इसकी तिथि प्रातिनूतनकाल के अन्तर्गत लेजाई जा सकती है।

समुद्र के प्राचीन जलतल से उद्योगस्थलों को सम्बधित करके उनकी तिथि का आकलन करना एक नवीन तथा सराहनीय प्रयास था। बाद में प्रायः सभी भारतीय विद्वानों ने अपने लघुपाषाणोपकरण उद्योगों की तिथि टेरी उद्योगों के तुलनात्मक अध्ययन से की।

बीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध से भारतीय प्रागितिहास का एक प्रमुख रचनात्मक काल का प्रारम्भ होता है। डा0 सॉकलिया ने स्वयं तथा उनके निर्देशन में अनेक शोध छात्रों ने प्रस्तर युगीन संस्कृतियों का क्षेत्रीय अध्ययन (Regional studies) किया। इस प्रकार के अध्ययन का प्रारम्भ 1948 ई0 में सुब्बाराव ने किया। उन्होंने सॅाकलिया के निर्देशन में बेल्लरी के प्रस्तरयुगीन संस्कृतियों से किया। बेल्लरी के समान मालप्रभा घाटी (जोशी,वी0,आर1953), मलवा (खत्री ए0आर0 1958), उडीसा (मोहापात्र जी0सी0 1960, कर्नूल (आइजक,एन0 1960), राजस्थान (मिश्र,वी0एन01961), उत्तरी बुन्देलखण्ड (सिह आर0 1965), सोन (अहमद एन0 1966), कृष्णा (पप्पू अर0एस0 1966), नालगोण्डा (राव एस0एन0 1966), चित्तूर (मूर्ति एम0एल0के0 1966), कुडुप्पा जिला (रेड्डी के0टी0 1968), मध्य नर्मदाघाटी (सुपेकर एस0जी0 1968) मूलामूठा (राजगुरू एस0एन0 1969) आदि नदियों का अध्ययन किया गया। इसके अतिरिक्त गुजरात के पश्चिमी समुद्रतट तथा भदर की घाटी, डांग, मध्य ताप्ती घाटी, पूर्णिया घाटी आदि क्षेत्रों में भी सर्वेक्षण हुआ। साकलिया ने स्वयं गोदावरी (1952) एवं प्रवरा (1956) नदियों की घाटी में सर्वेक्षण किया।

बाद में स्तातिरा गजदर ने 1975 में कोनकन क्षेत्र (Quaternary EnvironmentsAnd StoneAge Cultures of the Konkan coastal Maharashtra) 1978 में चक्रबर्ती ( S. Chakrabarti 1978: The Prehistory of Bhavanagar, District Saurashtra.Gujarat) तथा 1980 में मध्य भारत के निमार जिले में दुरकादी नदी के किनारे अरमाण्ड ने उत्खनन किया (Armand 1980 ExcavationAt Durkadi:A PreAcheulian occupational Site on theAncient Banks in the Narmada River, West Nimar District, Central India.).

1955–56 ई0 के लगभग सांकलिया तथा उनके सहयोगियों का सबसे महत्वपूर्ण कार्य प्रवरा की घाटी में स्थित नेवासा में हुआ। यहॉ पर हैण्डैक्स–क्लीवर–स्क्रेपर उद्योगों के अतिरिक्त एक

और उद्योग जिसमें स्पष्टतः लेवालेवा तकनीक का प्रभाव था, प्रकाश में आरहा था। इस उद्योग के उपकरण बक्रिट तथा कामियाडे को कर्नूल में, टाड को बम्बई तथा खाण्डिबली में, डी टेरा तथा पेटरसन को पंजाब और नर्मदा की घाटी में मिले थे। यह उद्योग प्रमुख रूप से फलकों पर निर्मित था। इसके मुख्य उपकरण स्क्रेपर,शर तथा ब्लेड आदि थे। उपकरणों के निर्माण के लिए प्रमुख रूप से अच्छे प्रकार के पत्थरों का उपयोग किया गया था। विद्वानों ने सुविधानुसार इसे विभिन्न नामों से अभिहित किया था किन्तु इसकी वास्तविक स्थिति के सम्बंध में कुछ भी निश्चित नहीं था। इस उद्योग की स्थिति तथा स्तर का ज्ञान सॉकलिया (1956) के अनुसंधान के बाद हुआ। उन्हें प्रवरा नदी के स्तरित जमावों में क्रमशः तीन प्रस्तर उद्योग मिले थे जिन्हें क्रमशः प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी में विभाजित किया गया था। प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत हैण्डैक्स–क्लीवर–स्क्रेपर उद्योग जो नदी के प्रथम उच्चयन काल से सम्बधित थे। द्वितीय श्रेणी में नदी के द्वितीय उच्चयन काल से सम्बधित तथा प्रथम जमाव पर आधारित लघुपाषाण उद्योग के स्तर के नीचे था जिसमें ब्लेड–फलक–स्क्रेपर प्रकार के उपकरण प्राप्त हुए थे रखे गए। इसी आधार पर सॉकलिया ने इसे मध्यपुरापाषाण कालीन (Middle Palaeolithic) , बैनर्जी (1957) ने नेवासियन सुब्बाराव ने मध्य पाषाण युगीन (1958) तथा मलिक ने ब्लेड–फलक–स्क्रेपर (1959) कहा।

नेवासा की इस संस्कृति के प्रकाश में आने से अब भारत की दूसरी प्रस्तर युगीन संस्कृति को भी एक निश्चित आधार प्राप्त हुआ। इस प्रकार सॉकलिया ,उनके सहयोगियों तथा अन्य विद्वानों के प्रयास से भारत के अधिकांश भागों से विपुल सामग्री संग्रहीत होचुकी थी किन्तु उनके कालानुक्रम का आधार उपकरणों के प्ररूप (Typology) पर ही आधारित था।

डेक्कन कालेज के बाहर अनेक विद्वानों ने कार्य किया। लाल (लाल बी0बी0 1956) ने पश्चिमी बंगाल में बर्दमान जिले के बीरभानपुर गाव में एक लघुपाषाण उद्योगस्थल का सर्वेक्षण तथा उत्खनन किया। साथ ही पंजाब में व्यास तथा बानगंगा की घाटियों का सर्वेक्षण किया। बीरभानपुर में उन्हे प्राक्पाटरी अज्यामितिक लघुपाषाण उपकरण उद्योग (Pre-pottery Non geometric Microlithic Industry) मिली। लघुपाषाण उपकरणों का इस प्रकार का स्वतंत्र उद्योग स्थल भारत में और कहीं नही मिला था। स्तरों के रासायनिक परीक्षण के आधार पर लाल का विचार है कि इस उद्योग को नूतन काल के प्रारम्भ में रखा जासकता है। ब्यास तथा बानगंगा घाटी में उन्हे सोहन शैली के पेबुल उपकरण उपलब्ध हुए थे। दो हैण्डैक्स भी मिले थे किन्तु स्वयं लाल निश्चित नही थे कि वे वास्तव में हैण्डैक्स ही थे। लाल का सर्वेक्षण इस दृष्टि से महत्वपूर्ण था कि सोहन घाटी के प्रागैतिहासिक स्थलों के पाकिस्तान में चले जाने से भारत में उस प्रकार के प्रस्तर उद्योग का वह प्रथम स्थल था।

1955–56 के लगभग इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग के प्रो0 शर्मा का भी ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। उन्होने 1955–56 में मिर्जापुर में अनेक शैलाश्रयों तथा लघुपाषाणेपकरण उद्योगस्थलों को खोजा (इण्डियन आर्क्यालजी ए रिव्यू 1956) इसके अमिरिक्त कुछ पुरापाषाण कालीन उद्योगस्थलों का भी सर्वेक्षण किया। प्रो0 शर्मा के प्रयासो से शीघ्र इलाहाबाद विश्वविद्यालय का प्राचीन इतिहास विभाग पुरातत्व तथा प्रागैतिहासिक अध्ययन का एक विशेष केन्द्र बन गया। उनके निर्देशन में राधा कान्त वर्मा ने मिर्जापुर की प्रस्तरयुगीन संस्कृतियों का अध्ययन किया तथा उसपर एक शोध प्रबंध (The StoneAge Cultures of Mirzapur: 1964, Allahabad University) भी प्रस्तुत किया। उत्तर प्रदेश में ये प्रागितिहास में काम करने वाले प्रथम शोधार्थी थे। उनके सर्वेक्षण के फलस्वरूप अनेक पुरास्थल तथा चित्रित शैलाश्रय

Scanned with OKEN Scanner

प्रकाश में आए। इस प्रकार से एक नये सिरे से चित्रित शैलाश्रयें पर भी काम शरू हुआ। लघुपाषाण उपकरण उद्योग के विकास क्रम तथा शैलचित्रों की समस्याओं के निदान के लिए इन्होने मोरहना पहाण तथा वी0 डी0 मिश्र ने लेखहिया के शैलाश्रयों और खुले में उत्खनन भी किया। उनके उत्खननों के बहुत महत्वपूर्ण परिणाम हुए। लघुपाषाण उपकरण उद्योग का विकास क्रम पहले नहीं मिला था। उत्खनन के फलस्वरूप बघही खोर तथा लेखहिया के शैलाश्रयों में दफनाए गए कंकाल भी प्रकाश में आए।( इनका विस्त्रित विवरण आगे यथा स्थान पर दिया गया है)।

प्रो0 शर्मा तथा उनके सहयोगियों ने मध्य प्रदेश के रीवा एवं सीधी जिलों में तथा उत्तर प्रदेश के बादा, इलाहाबाद, मिर्जापुर तथा वाराणसी जिलों में अनेक प्रस्तर युगीन उद्योगस्थलों को खोज निकाला। 1965–1970 के बीच तथा उसके बाद 21वी शताब्दी के प्रथम दशक तक इनका सवसे महत्वपूर्ण कार्य इलाहाबाद के दक्षिणी अंचल में बेलनघाटी का सर्वेक्षण तथा मध्य सोन घाटी में सर्वेक्षण तथा उत्खनन था। बेलनघाटी में सम्पूर्ण प्रस्तर युगीन संस्कृतियों का भारत में पहली बार स्तरित जमाव प्रकाश में आया जिसने भारतीय प्रागितिहास की अनेक समस्याओं का निराकरण किया। बेलनघाटी के सर्वेक्षण के पूर्व तक उच्चपुरा पाषाण काल की स्थिति के सम्बंध में बड़ी अनिश्चितता थी। कुछ विद्वानों की धारणा थी कि भारत में अफ्रीका के समान इसका विकास हुआ तथा लेवालेवा उद्योग से ही मध्यपाषाण युगीन लघुपाषाण उद्योगों का विकास हुआ। इसी धारणा के आधार पर 1961 ई0 में नई दिल्ली में आयोजित एशिया के पुरातत्व विषय की प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन ( First International Conference onAsianArchaeology) में यह निर्णय लिया गया कि भारत में भी प्रस्तरयुगीन संस्कृतियों का विकास अफ्रीका के समान हुआ था अतः यहाँ पर भी हमें उन्ही के समान शब्दावली – प्रारम्भिक पाषाण काल (Early StoneAge), मध्य पाषाण काल (Middle StoneAge), तथा उत्तर पाषाण काल (Late StoneAge) का प्रयोग करना चाहिए। यद्यपि उच्चपुरा पाषाण कालीन ब्लेड–ब्यूरिन परम्परा के उपकरण अनेक स्थलों –(सौन्दरराजन:1958 ए0इ014 पृ59। सेन डी0 ऐण्ड घोष ए0 के0 1963। मूर्ति एम0एल0 1966। पद्दैया 1968 आदि) से प्रतिवेदित थे किन्तु उनके स्तर का ज्ञान नही था। बेलन घाटी के स्तरित जमाव जिस संदर्भ में प्राप्त हुए थे उसके बाद कोई सन्देह नहीं रह गया कि भारतीय प्रस्तरयुगीन संस्कृतियों के विकास क्रम में मध्य पुरा पाषाण काल के बाद तथा मेसोलिथिक के पूर्व उच्च पुरा पाषाण काल हुआ था तथा उच्च पुरा पाषाण कालीन उद्यागों से ही मेसोलिथिक के लघुपाषाण उपकरण उद्योगों का विकास हुआं। 1961 ई0 में टाटा इन्सटीट्यूट आफ फण्डामेंण्टल रिसर्च, मुम्बई (Tata Institute of Fundamental Research, Bombay) में आयोजित रेडियो कार्बन तथा इडियन आर्क्यालजी अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनार (Radio Carbon and IndianArchaeology, Internationa Seminar) में सर्व सम्मति से बेलन घाटी के साक्ष्यों को मान लिया गया तथा 1961 ई0 में नई दिल्ली में आयोजित एशिया की प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन में लिए गए प्रागैतिहासिक शब्दावली के निर्णय को अस्वीकार कर दिया गया।

मध्य सोन घाटी के जमाओं ने भी बेलनघाटी के साक्ष्यों की पुष्टि की। दोनो ही नदी घाटियो में लगभग सभी जमावों से प्रभूत संख्या में उपकरणों के साथ जीवाश्म भी प्राप्त हुए हैं तथा अब निश्चित तिथियाँ भी उपलब्ध हैं।

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि 1950 –1970 तक का काल भारतीय प्रागितिहास में शोध की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण था। इस बीच क्षेत्रीय सर्वेक्षण पर विशेष बल दिया गया था। भारत की लगभग सभी प्रमुख नदियों तथा उनकी सहायक नदी नालों का भी सर्वेक्षण किया गया जिसके

Scanned with OKEN Scanner

फलस्वरूपं भारत के लगभग सभी क्षेत्रों में प्रागैतिहासिक पुरास्थल चिन्हित हुए। इस प्रकार से प्रागितिहास के गहन अध्ययन की पृष्ठ भूमि बन सकी। इसमें डेकन कालेज के प्रोफेसर सॉकलिया उनके शिष्यों तथा इलाहाबाद एवं बनारस विश्वद्यिालयों की विशेष भूमिका थी। यह सम्पूर्ण शोध/सर्वेक्षण शोध छात्रों के सहयोग से हुआ था। शोध छात्र अपने सीमित संसाधनों में जो कार्य कर सके वह सराहनीय था। किन्तु इसमें कोई मतान्तर नही हो सकता कि इस प्रकार के सर्वेक्षण प्रायः सतही रह जाते हैं।

शोध छात्र समय तथा संसाधन के अभाव में एक पुरास्थल अथवा नदी घाटी में अधिक समय नहीं दे पाता इस लिए उसके अध्ययन में बहुत सी कमियाँ रह जाती हैं। मेरा स्वयं का अनुभव है कि एक नदी घाटी के अध्ययन के लिए कई बार जाना आवश्यक होता है अन्यथा समस्याओं का सम्मधान नही होता। प्रागैतिहासिक प्रस्तर युगीन संस्कृतियों के सर्वेक्षण में इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने भिन्न नीति का अनुसरण किया। वहाँ पर राधाकान्त वर्मा ने प्रथम शोध छात्र के रूप में (अविभाजित) मिर्जापुर की प्रस्तरयुगीन संस्कृतियों पर शोध (1959-64) किया। उनके द्वारा सर्वेक्षित दो नदियों को गहन सर्वेक्षण के लिए दक्षिण इलाहाबाद में बेलन नदी का वह भाग जहाँ से वह मेजा तहसील के कोराव में प्रवेश करती है से देवघाट तक तथा मध्य प्रदेश के सिधी जिले में मध्य सोन घाटी में सिहावल क्षेत्र को चुना गया। 1964–65 में बेलन घाटी में सर्वेक्षण प्रारम्भ किया गया जो अबाध रूप से इक्कीसवी शताब्दी के प्रथम दशक तक तथा उसके बाद भी चलता रहा। इस सर्वेक्षण कार्य में देश तथा विदेश के अनेक पुरातत्वविदों तथा संस्थाओं ने समय–समय पर भाग लिया और अभी भी ले रहे हैं। फलतः भारतीय प्रागितिहास की अनेक समस्याओं का समाधान हो सका। इन घाटियों में निम्नपुरापाषाण काल से नवपाषाण काल तक की सभी संस्कृतियों के क्रमिक विकास के प्रमाण स्तरित जमाओं में जीवाश्मित अवशेषों के साथ मिले। यह भी उल्लेख्य है कि अभी भी नवीन सामग्री निरन्तर प्रकाश में आरही है। गत वर्षों में लगभग 76000 वर्ष पूर्व की तोबा ऐश (TobaAsh) का जमाव सोन घाटी में मिला है जिसने विश्व स्तर पर विद्वानों को आकर्षित किया है। इससे पहले पटपरा में पत्ती के जीवाश्म (Leaf fossils) मिले थे। किन्तु खेद है कि अभी तक आदि मानव के जीवाश्मित अवशेष नहीं मिले हैं जिनके मिलने की अभी भी सम्भावना है।

1970 से 1980 के बीच तथा उसके बाद जिन लोगो ने कार्य किए उनमें विशेष उल्लेखनीयः राजस्थान में अलचिन (1973R and B) अलचिन तथा गूडी 1974 ; अलचिन आदि 1972; 1978, गुजरात में अलचिन तथा गूडी 1971, उत्तर प्रदेश में शर्मा (1973;1980) पी० सी० पन्त (1982) क्लार्क्स तथा विलियम्स (1986) शर्मा तथा क्लार्क 1983, पाल 1981, मध्य–प्रदेश में वाकणकर एवं ब्रूक्स 1976; मठपाल 1976; 1978 ; मिश्रा 1989; मिश्रा तथा मठपाल 1979; मिश्रा आदि 1977; महाराष्ट्र में साली 1974; 1980; कजाले आदि 1976; जोशी तथा पप्पू 1979; कर्नाटक IAR 1971–72; आंध्र प्रदेश में मधुसूदन राव 1979 ; मूर्ति 1974; 1975;1979 ;मूर्ति तथा थिम्मा रेड्डी 1976 ; थिम्मा रेड्डी तथा सुदरसेन 1978; थिम्मा रेड्डी 1980; संथालपरगना में चक्रवर्ती 1986; गुजरात में थामस 1990; पंचमहल में सोनवाने 1984; उच्च महानदी घाटी में पाण्डे 1982; उड़ीसा की इन्द्रावतीघाटी में नन्दा 1983; उत्तरी कर्नाटक में हुण्सगी बैचावल घाटी में पट्टैया 1987; कर्नाटक जिले में सदाक्षरैयाह 1984; जलगाव में तापी घाटी तथा पटने में साली 1974; 1980; 1985;1989;1990 महाराष्ट्र के नागपुर जिले में पाण्डे 1981;1985; कर्नूल की गुफाओं में नम्बी तथा मूर्ति 1983 के कार्य महत्वपूर्ण थे। इसी प्रकार गुंजनघाटी तथा कुदुप्पा जिले में कल्लातिवागू (Kallativagu) तथा पूर्वीघाट में राजू तथा उनके सहयोगियों ने (1977) तथा थिम्मा रेड्डी आदि

Scanned with OKEN Scanner

1990 गहन सर्वेक्षण किया। तिरूपतिघाटी में चित्तूरजिले में जयराज (1983) ने विशाखापटनम में कृष्णा राव (1985) ; गोदावरीघाटी में कस्तूरी बाई 1985 मूर्ति 1986; मूर्ति और राजू 1986 तथा 1985 में उत्तर पूर्व भारत में शर्मा के कार्य विशेष उल्लेखनीय हैं।

इसके अतिरिक्त गत शताब्दी के अन्तिम चरणों में पुरा पर्यावरण, पुरापरिस्थितिकी तथा निर्पेक्षतिथि निर्धारण के लिए TL तिथिक्रम प्रणाली C14 का बहुतायत से प्रयोग किया गया (Singhvi etal 1982; Wasson etAl 1983; Misra and Rajguru 1986; Bhaskaran etAl 1986; Rajguru and Korisettar 1987; आदि। इस काल में हुए भूआकृति परिवर्तनों तथा तत्कालीन पर्यावरण का भी अध्ययन किया गया जिससे तत्कालीन मानव की जीवन पद्धति पर प्रकाश पड़ा।

इस काल खण्ड में कुछ महत्वपूर्ण Ethnoarchaeological Studies भी की गई (राजू 1988; मूर्ति 1981; नागर 1983: 1985: नागर तथा मिश्रा 1989; 1990 1993; मिश्रा 1990; कूपर 1990;1992 आदि)

गत पृष्ठों में हम देख चुके हैं कि पिछली शताब्दी के सातवें–आठवें दशक तक भारत की लगभग सभी प्रमुख नदियों का प्रागैतिहासिक सर्वेक्षण सम्पन्न होचुका था लगभग सभी केन्द्रों पर उपकरणों का विशाल संग्रह भी था जो क्षेत्र तथा नदी घाटियाँ अछूती रह गयी थी वहाँ पर छिट पुट कार्य अभी भी हो रहा है।

सम्पूर्ण भारत में सभी क्षेत्रों में प्रागैतिहासिक पुरास्थल प्रतिवेदित हैं किन्तु भारतीय प्रागितिहास विश्व प्रागितिहास में अलग थलग पड़ा रहा। क्यों कि डी टेरा तथा पेटरसन ने जो तिथि की सीमायें रेखांकित कर दी थी वे वैसी ही बनी रहीं और मानव के विकास के इतिहास में भारत का कोई स्थान नहीं बन सका। इसके अतिरिक्त यह स्पष्ट हो गया था कि उनसे अब अधिक जानकारी प्राप्त नहीं हो सकेगी। भारत में प्रागैतिहासिक मानव की प्राचीनता, उसकी जीवन पद्धति, तत्कासीन वतावरण, परिस्थितिकी आदि की सम्यक जानकारी के लिए प्राइमरी साइट्स (Primary Sites) अथवा तत्कालीन मानव के आवासीय स्थलों की खोज तथा वहॉ पर उत्खनन आवश्यक है। नई वैज्ञानिक पद्धतियों के सहयोग से इस प्रकार की जानकारी प्राप्तकरना सुलभ होगया। पूर्व पाषाण युगीन मानव के उद्‌भव एवं विकास की समस्याओं एवं प्राचीनता की तथा निर्पेक्ष तिथियों की समस्याओं का निदान भी उत्खनन के माध्यम से प्राप्त अवासीय जमाओं के परीक्षण से सम्भव होसका था क्योंकि इस प्रकार के पुरास्थल अधिक सुरक्षित होते है। अतः अब अवासीय पुरास्थलों की खोज तथा उत्खनन पर अधिक बल दिया गया। साथ ही साथ विविध विधाओं के विद्वानो तथा विज्ञानों के सहयोग को प्रधानता दी गई।

1970 के बाद जिन स्थलों पर सघन सर्वेक्षण/उत्खनन किया गया उनमें विशेष उल्लेखनीय–महाराष्ट्र में चरकी नेवासा (कार्विनस 1981,1983), शोरापुर दोआब कर्नाटक में हुण्सगी तथा बैछवलघाटी (Hunsgi and Baichbaal Valley) (Padddyya 1977a,b; 1979,a,1982,1985, 1987a,b, 1989, 1991); बिहार में पैसरा (Paisara Pant and Jayaswal 1991), अनगावाडी (Anaggawadi Pappu 1974,1985A, b; Pappu and Deo 1994, Deo 1991, कर्नाटक में ख्याद (Khyad, Pappu 1981); महाराष्ट्र में गंगापुर (Arunkumar 1985,1989), बोरी (Kale etal 1986, Korisettar etAl 1989), गुजरात में समधियाला (Samdhiala); Chakrabarti 1983,1995, उत्तरप्रदेश में बेलन घाटी (Sharma 1973), मध्यप्रदेश में मध्यसोन घाटी (Sharma and Clark 1982;1983), राजस्थान में दिदवाना (Didwana) (Misra 1989b.1995; Misra and Rajguru 1989; Misra et.al. 1982; 1988 (Gailard etal 1983;1985;1986); मध्यप्रदेश में आदमगढ (Joshi 1978) भीमबैठका (Misra 1978;1985) आदि।

Scanned with OKEN Scanner

# 3

# पारिभाषिक शब्दावली का विकास

भारतीय प्रागितिहास के अध्ययन में यद्यपि अभूतपूर्व प्रगति हुई है, तथापि सर्वमान्य पारिभाषिक शब्दावली का, विशेषतः हिन्दी में अभी भी अभाव है। विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने वाले पूर्व विद्वान अपनी इच्छानुसार नवीन प्रकार के शब्दों का प्रयोग करते रहे हैं, जो अभी भी चला आ रहा है। अतः उसके सम्यक् ज्ञान के लिए पारिभाषिक शब्दावली के विकास का इतिहास जानना नितान्त आवश्यक है। प्रायः एक ही स्थिति के लिए अनेक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग मिलता है। जिससे भारतीय प्रागितिहास का अध्ययन और भी जटिल हो गया है। अधिकांश विद्वानों ने प्रायः तीन प्रकार के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है। प्रथम शब्दावली यूरोपीय प्रागितिहास की शब्दावली पर आधारित है। तदनुसार सम्पूर्ण पाषाण युग तीन भागों—पुरा पाषाण काल (Palaeolithic) मध्य पाषाण काल (Mesolithic) तथा नव पाषाण काल (Neolithic) में विभाजित किया जाता है। पुरा पाषाण काल का पुनर्विभाजन तीन भागों में करते हैं— निम्न (Lower), मध्य (Middle) तथा उच्च (Upper)A पुरा पाषाण काल के लिए पुरापाषाण काल का भी प्रयोग प्रायःकरते हैं।

दूसरी शब्दावली अफ्रीका के प्रागितिहास से प्रभावित है। इसके अनुसार भारतीय पाषाण युग को प्रारम्भिक पाषाण काल (Early StoneAge), मध्य पाषाण काल (Middle StoneAge) तथा उत्तर पाषाण काल (Late StoneAge) में विभाजित करते हैं। उत्तर पाषाण काल में नूतन युग (Holocene) की सभी पाषाणकालीन संस्कृतियाँ जैसे, लघुपाषाण उपकरणों से चिन्हित तथा ओपदार पाषाण उपकरणों (Polished Stone Tools) से युक्त संस्कृतियों की भी गणना करते हैं।

उपर्युक्त शब्दावलियों के अतिरिक्त एक तीसरी शब्दावली का भी प्रयोग किया गया है। इसके अनुसार पाषाण युग के विभिन्न विभाजनो कों क्रमशः I, II, III, तथा IV श्रेणी (Series) में विभाजित करते हैं।

यह कहना अनुपयुक्त नहीं होगा कि तीनों प्रकार की शब्दावलियों के एक साथ प्रयोग से भ्रम की सम्भावना अधिक है। अतः आवश्यक है कि एक सर्वमान्य शब्दावली का ही उपयोग किया जाय। किन्तु किसी एक शब्दावली को अपनाने के पूर्व विभिन्न शब्दावलियों के शब्दार्थ तथा गुणार्थ को समझना आवश्यक है।

राबर्ट ब्रूसफूट (Robert Brucec Foote: 1914) ने, जिन्हे भारतीय पाषाण युग के अध्ययन का प्रवर्तक माना जाता है, तत्कालीन साक्ष्यों के आधार पर भारतीय पाषाण युग को दो भागो— पूर्वपाषाण काल (Palaeolithic Age) तथा नव पाषाण काल (NeolithicAge) में विभाजित किया था।

ब्रूसफूट के पश्चात् कामियाडे तथा बक्रिट के समय तक कोई विशेष कार्य नहीं हुआ। सन् 1930 में दक्षिण भारत के कर्नूल प्रदेश में उन्हें विभिन्न पाषाण–उपकरण उद्योगों की एक श्रृंखला मिली। इन उपकरणों को उन्होनें चार श्रेणियों मे विभाजित किया (बक्रिट,एम0सी0 तथा कामियाडे, एल0 ए0; 1930)। उन्होंने प्रथम श्रेणी में हैण्डैक्स, क्लीवर आदि उपकरण, द्वितीय श्रेणी में फलक

Scanned with OKEN Scanner

उपकरणों के साथ विकसित हैण्डैक्स, तृतीय श्रेणी में ब्लेड तथा भुथड़े पार्श्व ब्लेड, ब्यूरिन, स्क्रेपर आदि एवं चतुर्थ श्रेणी में लघुपाषाण उपकरणों को क्रमानुसार श्रेणियों में विभाजित किया था। प्रत्येक श्रेणी के उपकरण विशिष्ट स्तरों से सम्बद्ध थे। कामियाडे तथा बक्रिट ने इन विभिन्न उद्योगों को वहाँ के वर्षाकालों (Pluvials) तथा अन्तर्वर्षाकालों (Inter-pluvials) से भी सम्बन्धित किया। उपकरणों को भूवैज्ञानिक कल्पों से सम्बन्धित करने का, भारत में यह प्रथम महत्वपूर्ण प्रयास था।

इसके बाद भारतीय प्रागितिहास के विकास में दूसरा चरण सन् 1935.36 में 'येल कैम्ब्रिज एक्सपेडीशन' (Yale Cambridge Expedition) के आगमन से प्रारम्भ होता है। इसने कश्मीर की घाटी में, रावलपिंडी के निकट दक्षिण–पश्चिमी हिमालय की निचली पहाड़ियों तथा नर्मदा की घाटी में अनुसंधान–कार्य किए। इन स्थानों पर प्राप्त प्रस्तर–उपकरणों को विभिन्न स्तरों से सम्बन्धित किया तथा मध्य भारत एवं उत्तर–पश्चिम भारत के उपकरणों और स्तरों को सह–सम्बन्धित किया। उन्होनें स्तरीकरण तथा जीवाश्म विज्ञान के आधार पर सोहन तथा मद्रासीय उद्योगों को मध्यप्रातिनूतन–काल के अन्तर्गत रखा। कालान्तर में सोहन तथा मद्रासीय उद्योगों के लिए निम्न पुरा पाषाण शब्द का प्रयोग किया गया (सेन, डी0: 1956)।

उस समय तक भारत के केवल निम्न पुरापाषाणकालीन संस्कृति के सम्बन्ध में ही ज्ञात था, किन्तु समय–समय पर विभिन्न स्थानों से एक विशिष्ट प्रकार का उद्योग, जिसमें स्पष्ट लेवालेवा (Levalloisian) प्रभाव था, प्रकाश में आ रहा था, बक्रिट तथा कामियाडे ने कर्नूल में (बक्रिट,एम0सी0 तथा कामियाडे,एल0 ए0 1930), टॉड ने बम्बई और खाण्डिवली में (टॉड के0 आर0 यू0 1939), डी टेरा एंव पेटरसन ;डी टेरा एंव पेटरसन, टी0 टी0 : 1939) ने पंजाब में जिसे अन्त सोहन (Late Soan) और नर्मदा की काली मिट्टी में प्राप्त उद्योग को आद्य–नवपाषाणयुगीन (Proto-neolithic) कहा है (डी टेरा एंव पेटरसन, टी0 टी0 :पृ 319–20, 1939), वे इसी उद्योग के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। इस उद्योग की स्थिति तथा स्तर का वास्तविक ज्ञान सॉकलिया के नेवासा के अनुसंधान के बाद हुआ (साँकलिया,एच0 डी0:1956,पृ0 35.52)A नेवासा में उन्हें प्रवरा नदी के स्तरित जमावों में क्रमशः तीन प्रस्तर–उद्योग मिले। इन उद्योगों को उन्होंने तीन श्रेणियों––––क्रमशः प्रथम द्वितीय एवं तृतीय––– में विभाजित किया। प्रथम श्रेणी के उपकरणों में हैण्डैक्स–क्लीवर परिवार के उपकरणों की गणना की गई। ये मध्य–प्राति नूतन काल में (Middle pleistocene period) अर्थात् हैण्डैएक्स एंव बॉस नमाडिकस (Bos namadicus) के जीवाश्मों के साथ प्राप्त हुए थे। ये प्रवरा नदी के प्रथम उच्चयन काल (FirstAggradational phase) से संबन्धित थे। नदी के द्वितीय उच्चयन काल के स्तर से, जो प्रथम जमाव पर आधारित था तथा लघुपाषाण उद्योग के स्तर के नीचे था, एक बिल्कुल ही नवीन उद्योग, जिसमें फलक–उद्योग के स्क्रेपर, (Points) आदि थे, प्रकाश में आया। साँकलिया ने इस उद्योग को द्वितीय श्रेणी में रखा। इसकी मध्यस्थिति के कारण इसे मध्य–पूर्वपाषाणकालीन (Middle Palaeolithic) कहा गया (साँकलिया,एच0.डी0, देव,एस0,बी0 आदि 1960)। बैनर्जी ने इसी उद्योग को नेवासियन (Nevasian) की संज्ञा प्रदान की (बैनर्जी,के0 डी0:1957) उस समय से इस प्रकार के प्रस्तर– उपकरणों को मध्य–पूर्वपाषाणकालीन (सॉकलिया, एच0 डी0: पार्श्वोद्धरित1960)। आइजक, एन0: 1960 ; मिश्रा, वी0 एन0: 1961)।, अथवा मध्य पाषणयुगीन (सुब्बाराव,वी0: 1958 ; अलचिन बी0 :वी0 एल0 यू0 आई0 ,न0 11,1959 पृ0 1.36 ; मोहापात्रा, जी0 सी0: पार्श्वोद्धरित, 1960) अथवा ब्लेड–फलक–स्क्रेपर उद्योग (मलिक, एस0 सी0:1959) की संज्ञा प्रदान की गई। तृतीय श्रेणी में उन्होंने लद्युपाषाण

उपकरणों को रखा।

नेवासा अथवा अन्य किसी भी स्थान पर उस समय तक उच्च–पुरापाषाणकालीन उद्योग (Upper palaeolithic) के साक्ष्य नहीं मिले थे। अतः विद्वानों की धारणा हुई कि भारत में पाषणकालीन संस्कृति का विकास यूरोप से भिन्न हुआ होगा। चूँकि अफ्रीका में भी यूरोप के समान उच्च–पुरापाषाण उद्योग का विकास नही हुआ था, अतएव अनुमान किया गया कि भारत में भी विकास अफ्रीका के ही समान हुआ होगा। इसको ध्यान में रखकर सुब्बाराव ने सुझाव दिया कि भारत में पाषाण युग का विभाजन यूरोप के समान न कर के अफ्रीका के अनुसार करना चाहिए। अपने कथन की पुष्टि में उन्होंने यह तक्र भी प्रस्तुत किया कि यूरोप में पूर्वपाषाण काल के उपविभागों––निम्न, मध्य तथा उच्च–पुरापाषाण कालों–– का विभाजन विभिन्न स्तरों में प्राप्त जीवाश्मों के साक्ष्यों पर आधारित है ( डेनियल, जी0 ई0: 1950,पृ0 101)। दूसरे शब्दों में प्रत्येक विभाजन, उद्योग के साथ ही साथ भूवैज्ञानिक कल्पों का भी द्योतन करता है। किन्तु, भारत में स्थिति इससे नितान्त भिन्न थी। यहाँ इस प्रकार के विभाजन के लिए प्रमाणों का सर्वथा अभाव था। अपने प्रथम तक्र की पुष्टि में उन्होंने इस सम्भावना की भी कल्पना की, कि यहाँ भी अफ्रीका के समान लघुपाषाण उद्योग (Microlithic industry) का विकास लेवालेवा (Lavalloisian) फलक उद्योगों से ही हुआ होगा, क्योंकि मध्यपाषाणकालीन उद्योग तथा लघुपाषाण उद्योग के मध्यवर्ती उच्च –पूर्व–पाषाणकालीन उद्योगों का विकास यहाँ नहीं मिलता। उन्हें भारत तथा अफ्रीका के मध्यपाषाणकालीन उद्योगों में भी बहुत समता प्रतीत हुई। इन सभी को दृष्टि में रख कर उन्होंने सुझाव दिया कि निम्न–पूर्वपाषाण काल (Lower Palaeolithic Period) के लिए प्रारम्भिक पाषाण काल (Early StoneAge), मध्य पुरा पाषाण काल (Middle Palaeolithic Period) के लिए मध्यपाषाण काल (Middle StoneAge) तथा मेसोलिथिक (Mesolithic) के लिये उत्तरपाषाण काल (Late StoneAge) का प्रयोग करना चाहिए (सुब्बाराव, बी0: पार्श्वोद्धरित 1959, पृ0 39)A

दिसम्बर, 1961 में दिल्ली में हुई आर्क्यालजी की प्रथम एशियन कांग्रेस में सुब्बाराव द्वारा प्रतिपादित शब्दावली को अपनाने का सुझाव मान लिया गया। फलतः अनेक कठिनाइयों के होने के बावजूद भी इसका प्रयोग सामान्यतः होने लगा। यद्यपि यह शब्दावली प्रयोग में आने लगीं किन्तु आज भी इसका गुणार्थ तथा वस्त्वर्थ निश्चित नहीं है। यह आज भी स्पष्ट नहीं है कि मध्यपाषाण काल तथा उत्तर पाषाण काल के अन्तर्गत कौन–कौन से उद्योग हैं। इधर गत वर्षो में बहुत से इस प्रकार के उद्योग (Industries) प्रकाश में आए जिनके सम्बन्ध में इससे पूर्व बहुत कम ज्ञात था। तकनीकी दृष्टिकोण से एवं स्तर विन्यास के आधार पर इन उद्योगों को मध्यपाषाण काल (Middle StoneAge) तथा उत्तरपाषाण काल (Late StoneAge) के बीच में रखा जा सकता था। इन सभी उद्योगों में ब्लेड–तत्व की प्रधानता थी। सुब्बाराव द्वारा प्रतिपादित शब्दावली में इसके लिए कोई स्थान नहीं था। प्रश्न यह उठता है कि इनको कहाँ रखना चाहिए। इसके अतिरिक्त उपर्युक्त शब्दावली में नवपाषाण युग के लिए भी कोई स्थान नहीं था। इस दृष्टिकोण से शब्दावली की समस्या का निराकरण करना आवश्यक हो जाता है।

इस स्थान पर, उपलब्ध साक्ष्यों को ध्यान में रख कर, उन सभी तर्को पर पुनर्विचार करना आवश्यक हो जाता है, जो यूरोपीय शब्दावली के विरूद्ध प्रस्तुत किए गए थे तथा जिनके कारण नवीन शब्दावली के प्रयोग की आवश्यकता समझी गई थी। सारांश में, तीन प्रमुख कठिनाइयाँ प्रस्तुत की गई थीं। प्रथम, यूरोपियन शब्दावली के निम्न, मध्य तथा उच्च–पूर्वपाषाण कालों का

विभाजन जीवाश्मों के साक्ष्यों पर आधारित है और वे भूवैज्ञानिक कल्पों के भी द्योतक हैं। दूसरा, उच्च–पूर्वपाषाण काल भारत में नहीं हुआ। तीसरा, मध्यपाषाणकालीन लेवालेवा उद्योग ही क्रमशः लघुपाषाण उद्योग में परिवर्तित हो गया, जैसा कि अफ्रीका में हुआ है। वास्तव में, तीसरा तक्र दूसरे पर ही आधारित था।

मिश्र, (मिश्रा, वी0 एन0 : 1962, पृ0 118) ने प्रथम कठिनाई के समाधान के लिए सुझाव दिया कि यदि इन शब्दों का प्रयोग 'केवल सांस्कृतिक तथा तकनीकी अर्थ में किया जाए, तो तिथि सम्बन्धी कठिनाई का समाधान स्वतः हो जायेगा।' गोर्डन, ओकले तथा मोवियस आदि विद्वान इन शब्दों का प्रयोग सांस्कृतिक तथा तकनीकी अर्थों में ही करते रहे हैं। भारत मे अबेवीलियन, आशूलियन, क्लेक्टोनियन तथा लेवालेवा का प्रयोग सांस्कृतिक एवं तकनीकी अर्थो में ही किया जाता है। किन्तु यूरोप में इनका प्रयोग तिथि के सन्दर्भ में भी होता है। यदि इन्हीं शब्दों के समान निम्न, मध्य तथा उच्च–पूर्वपाषाण उद्योग आदि शब्दों का भी प्रयोग किया जाये तो क्या हानि है ?

दूसरी कठिनाई के लिए भी मिश्रा का सुझाव (मिश्रा, वी0 एन0: वही, पृ0, 120) विचारणीय था कि 'उच्च–पूर्वपाषाण काल की स्थिति के सम्बध में कोई भी निष्कर्ष निकालना (उस समय) अपरिपक्व है।' बाद में हुए अनुसन्धानों ने इस बात की पुष्टि की है। अभी हाल में ब्लेड–ब्यूरिन उपकरण अनेक स्थानों से मिले हैं। ब्लेड की स्तरीय स्थिति पूर्ववर्ती तथा परवर्ती उद्योगों के सन्दर्भ में एकदम वैसी ही है जैसी की यूरोप के उच्च–पाषाणकालीन स्तरों की। अन्तर मात्र इतना है कि यूरोप में पूर्व–पाषाणकालीन सभी संस्कृतियाँ प्रातिनूतन काल (Pleistocene) के अन्तर्गत आती हैं। भारत में इसकी तिथि प्रातिनूतन काल का अन्तिम चरण तथा नूतन काल का प्रारम्भ होना चाहिए। अहमदनगर में मूला नदी के तट पर बड़े गॉव से उपलब्ध सामग्री इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है। वहाँ पर बालू तथा गाद मिट्टी (Silt) के एक जमाव से दो जीवाश्म, एक बॉस नमाडिकस फाल्क (Bos namadicus falc) तथा दूसरा ब्यबूेलस ब्यूबेलिस (Bubalus bubalis) के प्राप्त हुए थे। इस जमाव के ऊपर के भाग से मध्य–पूर्वपाषाण काल के उपकरण मिले। इन पशुओं के जीवाश्मों से सम्बन्धित अधजले टर्मिनेलिया अर्जुना (Semi- carbonised TermineliaArjuna) के टुकड़े प्राप्त हुए थे। कार्बन 14 (C-14) तिथि विधि के अनुसार उनकी तिथि 33,000 वर्ष निर्धारित की गई है। इसके अनुसार मध्य–पूर्वपाषाणयुग का विस्तार उच्च–प्रातिनूतन काल (Upper pleistocene Period) तक था, अतः यहाँ पर उच्च–पूर्वपाषाणकालीन ब्लेड तथा ब्यूरिन के समान उपकरण चित्तूर जिले से रल्लकलावा (Rallakalava) नदी तथा मदनपल्ले (Madanpalle) से प्राप्त हुए हैं। वहाँ पर यह उद्योग नदी के प्रथम उच्चयन वेदिका ( FirstAggradational terrace) से सम्बन्धित है तथा बालू के साथ मिला है। बालू का जमाव संभवतः तृतीय आर्द्रकाल (Third humid phase) के बाद उप–आर्द्रकाल (Sub-humid) में हुआ था। तृतीय आर्द्रकाल में द्वितीय ग्रैवेल का जमाव हुआ, जिसके साथ मध्य पूर्वपाषाणकालीन उद्योग सम्बन्धित किया जाता है। तृतीय आर्द्रकाल उच्च–प्रातिनूतन काल के अन्तर्गत हुआ तथा इनका उप आर्द्रकाल (Sub-humid phase), जो अल्पकालिक था उच्च–प्रातिनूतन काल के बाद हुआ। इसे प्रातिनूतन काल के अन्त अथवा प्रारम्भिक नूतन काल के अन्तर्गत रखा जा सकता है (मूर्ति एम0 एल0 के0 :1966, पृ0 170)।

इसी प्रकार का ब्लेड तथा ब्यूरिन उद्योग मैसूर–प्रदेश के गुलबर्गा जिले के शोरापुर दोआब से भी तत्सदृश स्तर से मिला। वहाँ यह उद्योग काली–भूरी मिट्टी (Black-brown silt) से सम्बन्धित है। चूँकि यह जमाव मध्य– पूर्वपाषाणयुगीन स्तर के ग्रैवेल के ऊपर है अथवा उस पर आधारित है,

Scanned with OKEN Scanner

अतः इसका निर्माण निश्चित रूप से प्रातिनूतन काल के बाद (Post-pleistocene) अर्थात् नूतन काल में हुआ होगा, क्योंकि मध्य–पूर्वपाषाण युग प्रातिनूतन काल के अन्त तक माना जाता है। इस आधार पर ब्लेड उद्योग को नूतन काल के अन्तर्गत तथा उत्तरपाषाण उद्योग (Late StoneAge industry or Mesolithic) को उसके और बाद रखेगें (पद्दैया, के0 : 1968, पृ0 39)।

सेन तथा घोष ने भी इसी प्रकार के ब्लेड उद्योग की प्राप्ति की घोषणा नर्मदा की सहायक नदी बामेर से की है (सेन, डी0 एण्ड घोष, एं0 के0 :1963)। यहाँ पर भी यह उद्योग मध्य–पूर्वपाषाण युग के बाद का एवं लघुपाषाण उद्योग से पूर्व–कालिक घोषित किया गया है। ब्लेड–ब्यूरिन उपकरण ऐसे जमाव में मिले हैं, जिसके अधोभाग से मध्य–पूर्वपाषाणकालीन तथा ऊपर के भाग से लघुपाषाण उपकरण मिलते है। इस ग्रैवेल जमाव के ऊपर पीली मिटटी का जमाव है। इन दोनों जमावों को डी टेरा तथा पेटरसन के काटन स्वायल ग्रुप (Cotton soil group) से सह–सम्बन्धित किया है।

उच्च–पुरापाषाणकालीन उद्योग के सम्बन्ध में इसी प्रकार के प्रमाण इलाहाबाद जिले के मेजा तहसील में, बेलन नदी के किनारे, खुजरी ग्राम के निकटवर्ती प्रदेश के, स्तरित जमावों से प्राप्त हुए है (एक्सप्लोरेशन इन डिस्ट्रिक्ट इलाहाबाद, मिर्जापुर एण्ड शाहजहाँपुर–– इण्डियन आर्क्यालजी –– ए रिव्यू, 1966.67)। यहाँ भी ब्लेड उद्योग मध्य–पुरापाषाणयुगीन उद्योग के बाद तथा लघुपाषाण उद्योग के पहले के जमाव से प्राप्त हुए है। जिस स्तर से मध्य–पुरापाषाणयुगीन उपकरण प्राप्त हुए है उसके अथवा द्वितीय ग्रैवेल को उच्च–प्रातिनूतन काल (Upper-pleistocene period) में रखा जा सकता है। ऐसी स्थिति में उच्च–पुरापाषाणकालीन (Upper-palaeolithic) ब्लेड उपकरणों को उच्च–प्रातिनूतन काल के अन्त अथवा नूतन काल के प्रारम्भ में रखा जा सकता है।

उपर्युक्त स्थानों के अतिरिक्त भी अनेक स्थानों से इस प्रकार के उद्योग की प्राप्ति की घोषणा हो चुकी है। अब इस साक्ष्य को ध्यान में रखकर यह कहना कठिन है कि भारत में यूरोप के समान, उच्च–पुरापाषाणकालीन उद्योग का विकास नहीं हुआ था। यह भिन्न बात है कि स्थानीय प्रभावों के कारण इनमें स्थानीय विशेषताओं का समावेष हो गया है। कुछ भी हो, इस उद्योग की प्राप्ति से सुब्बाराव के कथन की सार्थकता अप्रमाणित हो जाती है। अब, उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर उच्चपूर्वपाषाण काल की स्थिति में कोई सन्देह नहीं है।

सुब्बाराव का तीसरा तर्क द्वितीय तर्क पर ही विशेषतः आधारित था। यह सम्भावना कि भारत में लघुपाषाण उद्योग का विकास मध्य–पुरापाषाणकालीन लेवालेवा फलक उद्योग से हुआ है, इस तर्क पर आधारित था कि भारत में उच्च–पूर्वपाषाणकालीन उद्योग का विकास नहीं हुआ। किन्तु इस सम्बन्ध में हम देख चुके हैं कि इस मत के लिए अब कोई भी प्रमाण नहीं है। इस विषय में यह विशेष उल्लेखनीय है कि इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग के अनुसन्धानों के द्वारा अनेक ऐसे स्थान प्रकाश में आये हैं, जहाँ से ऐसे उद्योगों के उपकरण प्राप्त हुए हैं, जिन्हें तकनीक तथा प्रकारात्मक (Typology) आधार पर मध्य–पुरापाषाण काल के उपकरणों के बाद तथा लघुपाषाण उपकरणों के पहले रखा जा सकता है ;ऐसे स्थानों में एक स्थान मिर्जापुर में लेखहिया शिलाश्रय के निकट तथा बनारस की चकिया तहसील में बैरा दो–मुहवा, रीवा में कोरिया आदि की गणना की जा सकती है। इस उद्योग के उपकरणों में अनगढ़ित अथवा पुनर्गठित ब्लेड तथा विभिन्न प्रकार के स्क्रेपरों की गणना की जाती है। इसके ब्लेड लघुपाषाण उद्योग के ब्लेड से अधिक मोटे तथा बड़े है। उन्हें किसी भी दशा में लघुपाषाण उद्योगों के साथ नहीं रखा जा सकता है। साथ ही

Scanned with OKEN Scanner

साथ उनको उच्च–पूर्वपाषाणकालीन ब्लेड परम्परा के साथ भी नहीं रख सकते है। उनको देखने मात्र से स्पष्ट हो जाता है कि वे उच्च–पूर्वपाषाणकालीन ब्लेड परम्परा से प्रभावित हैं। इसी प्रकार के ब्लेड, बेलन के स्तरित जमाव से, लघुपाषाण उद्योग के पूर्ववर्ती स्तर से भी प्राप्त हुए है। इससे सिद्ध होता है कि भारत के लघुपाषाण उद्योग का विकास उच्च पूर्वपाषाणिक उद्योग से हुआ है। भारत में अब अनेक ऐसे स्थल हैं जो उपयुक्रत तथ्यों की पुष्टि करते हैं।

उच्च पूर्वपाषाणकालीन प्रस्तर उद्योग के बाद जो लघुपाषाण उद्योग के उपकरण मिलते हैं वे भी प्रकारात्मक दृष्टिकोण से यूरोप के मध्य पाषाणकालीन (मेसोलिथिक) लघुपाषाण उपकरणों के बहुत समीप है। मिर्जापुर के मोरहना पहाड़ तथा बघहीखोर में हुए उत्खनन इस दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण हैं (वर्मा, आर0 के0: पार्श्वोद्धरित, 1965 पृ0 329.450)A यहाँ के उत्खनन में लघुपाषाण उद्योग में एक विकासात्मक क्रम मिला है। स्तर तथा प्रकारात्मक आधार पर यहाँ के लघुपाषाणिक उपकरणो को दो प्रमुख भागों में विभाजित कर सकते है :–

1. अज्यामितिक उपकरण।
2. ज्यामितिक उपकरण।

यहाँ के उत्खनन से प्राप्त तथ्यों को लेखहिया शिलाश्रय एवं निकटवर्ती स्थानों पर हुए उत्खननों ने भी सभी प्रकार से पुष्ट किया (मिश्रा वी0 एन0, आदि: 1965 में वर्मा, आर0 के0 : पृ0 73.75)A वहाँ पर भी लगभग वही विकासात्मक क्रम मिला है, जो पहले मोरहना पहाड़ तथा लेखहिया में प्राप्त हुआ था। भारत में हुए उत्खननों के आधार पर यहाँ के लघुपाषाण उद्योग को नूतन काल के प्रारम्भ में रख सकते हैं। यूरोप में भी लघुपाषाण उपकरणों का विकास इसी प्रकार से हुआ है और दोनों में बहुत साम्य भी है। चूँकि भारत के लघु पाषाण उद्योगों का विकास भी यूरोप के ही समान हुआ है, अतः यदि इन्हें हम यहाँ भी मेसोलिथिक अथवा मध्य पाषाण काल के अन्तर्गत रखें, तो अनुचित नहीं होगा।

भारतीय प्रागितिहास के विकास के लिए यह आवश्यक है कि प्रागितिहास की शब्दावली पर प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर पुनर्विचार करके उपयुक्त परिवर्तन किया जाए। चूँकि भारत में प्रागैतिहासिक उद्योगों का विकास भी मूलतः यूरोप के ही समान हुआ है, अतः यूरोपियन पारिभाषिक शब्दावली–––पूर्व अथवा पुरापाषाण काल, मध्य पाषाण काल तथा नव पाषाण काल––– को अपनाया गया। सुविधा के दृष्टिकोण से प्रस्तुत पुस्तक में स्थान–स्थान पर दोनों ही प्रकार की शब्दावलियों का प्रयोग किया गया है।

टाटा इन्स्टीट्यूट आफ फण्डामेन्टल रिसर्च बाम्बे में कार्बन 14 तथा भारतीय पुरातत्व पर आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सिम्पोजियम में भारतीय प्रागितिहास में उच्च पूर्व पाषाणिक उद्योगों की समस्या पर पुनः विचार किया गया था। वहाँ पर उपस्थित विद्वत् मण्डली सभी स्थितियों पर पुनर्विचार के उपरान्त इस निष्कर्ष पर पहुँची की भारत में उच्च पूर्व पाषाणिक उद्योगों की स्थिति को न मानने के लिए कोई आधार नहीं है। क्योंकि इस प्रकार के उद्योग निश्चित स्तर से अनेक स्थानों से प्रतिवेदित हो रहें हैं। बेलन घाटी के साक्ष्यों के प्रतिवेदन के उपरान्त किसी भी शंका की सम्भावना नहीं रह गई। ऐसी स्थिति में भारतीय प्रागितिहास में यूरोपीय प्रागितिहास पर आधारित शब्दावली का उपयोग ही अधिक समीचीन होगा। सम्प्रति निम्न पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग सर्व मान्य है: पूर्वपाषाण काल अथवा पुरापाषाण काल उसके निम्न तीन विभाजन हैं :–

Scanned with OKEN Scanner

1. पुरा पाषाण काल अथवा पूर्व पाषाण काल (Palaeolithic Period)
   निम्न पुरा पाषाण काल (Lower Palaeolithic)
   मध्य पुरा पाषाण काल (Middle Palaeolithic)
   उच्च पुरा पाषाण काल (Upper Palaeolithic)
2. मध्य पाषाण काल (Mesolithic Period)
3. नव पाषाण काल (Neolithic Period)

सामान्यतः पुरापाषाणकाल की समाप्ति प्रातिनूतन काल के साथ मानी जाती है। तथा मध्यपाषाण काल एवं नव पाषाण काल का विकास नूतन काल (Holocene) के अन्तर्गत मानते हैं। यहाँ इस बात का पुनः उल्लेख करना अनावश्यक नही होगा कि हिन्दी का **मध्य पाषाण काल** अत्यन्त भ्रामक है क्योंकि अंग्रेजी का Middle StoneAge (मध्य पाषाण काल) अफ्रीका की शब्दावली में यूरोप के मध्य पुरा पाषाण काल (Middle Palaeolithic) तथा यूरोपियन शब्दावली के मेसोलिथिक (Mesolithic = मध्य पाषाण काल) दोनों के लिए प्रयोग में आता है अतः इसपर विचार करते समय संदर्भ पर ध्यान देना आवश्यक है।

# 4

# भारतीय शैल चित्रों के अध्ययन का इतिहास

भारतीय प्रागितिहास में शैल चित्रों का अध्ययन उपेक्षित रहा है, किन्तु प्रागितिहास के विकास का इतिहास शिलचित्रों की खोज एवं अध्ययन के इतिहास के बिना अधूरा ही रहेगा। भारत में शैल चित्रों के खोज एवं अध्ययन का इतिहास लगभग उतना ही प्राचीन है जितना कि प्रागैतिहासिक प्रस्तर उपकरणों का। भारत में शैल चित्रों को सर्व प्रथम प्रकाश में लाने का श्रेय कार्लायल को है जो तत्कालीन पुरातात्विक सर्वेक्षण में प्रथम सहायक (FirstAssistant) थे। उन्होंने भारत में चित्रित शैलाश्रयों को, अल्टामिरा चित्रित शैलाश्रयों की खोज के लगभग एक दशक पूर्व 1867-68 में देखा था। खेद का विषय है कि उनकी यह महत्वपूर्ण खोज अंघकार के गर्त में विलीन रही क्यों कि उनके द्वारा लिखित विवरण प्रकाशित नहीं होसके। उन्होंने अपनी इस उपलब्धि की सूचना बंगाल की एशियाटिक सोसायटी को दी थी जो प्रकाशित नहीं हो सकी। उल्लेख्य है कि कार्लायल की इस खोज का एक संदर्भ 1883 की एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल की पत्रिका में प्राप्त हुआ। कार्लायल के लेख की मूल प्रति रेवरेण्ड रेजीनाल्ड गैटी (Reverend Reginald Gatty) ने विनसेण्ट स्मिथ (Vincent Smith) को दे दी थी जिन्होंने 1906 के IndianAntiquary में अपने लेख Pygmy Flints में अक्षरक्षः प्रकाशित किया। कार्लायल लिखते हैं 'In the cold season of 1867-68 , I found some small flakes, etc.,ofAgate, Jasper and Chert, near Sohagi Ghat on the northern scarp of the Vindhyas, to the south ofAllahabad District (About 30 miles s.s.west from Allahabad).-----I had even then also ,And in the same locality near Sohagi Ghat, alredy noticed some faded paintings in red colour in a recess of a low cliff under some over hanging rocks'. He further writes , 'that in the years 1880 and 1881 my own principal and special discoveries were made------ in caves and under rock shelters in the Vindhyan hills and rock shelters in Baghel Khand to the south of Mirzapur District, and in the northerly parts of Rewa'. उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि कार्लायल ने विंघ्य के कैमूर क्षेत्र का सधन सर्वेक्षण किया था तथा उन्हे ही चित्रित शैलाश्रयों की प्रथम खोज का श्रेय मिलना चाहिये। उन्हों ने मात्र खोज ही नहीं की अपितु शैल चित्रों को उचित संदर्भ में भी रखा। वे सम्भवतः प्रथम विद्वान थे जिन्होंने इन चित्रों को प्रागैतिहासिक प्रस्तर युगीन मानव से सम्बंधित होने की सम्भावना व्यक्त की। उन्हों ने स्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया कि ^ Some of these paintings appeared to illustrate in a very stiff and Archaic manner scenes in the life of theAncient stone chippers, other represent animals or hunts ofAnimals by bows and arrows, spears and hatchets.' उन्होंने यह भी उल्लेख किया है कि उनको किसी भी शैलाश्रय में कोई बाद की वस्तु नहीं मिली। कुछ शैलाश्रयों में उन्हें प्राचीन भंगुर मृदभाण्ड भी मिले थे। उन्नीसवीं शताब्दी के छठवे दशक में कैमूर की कतिपय चित्रित शैलाश्रयों में किये गए उत्खननों ने कार्लायल की सम्भावनाओं तथा कथन की पुष्टि की।

जिस समय कार्लायल विंघ्य की कैमूर उपत्यकाओं के सर्वेक्षण में व्यस्त थे लगभग उसी कालावधि में एक अन्य विद्वान कॉकबर्न (Cockburn) बुन्देलखण्ड तथा मिर्जापुर क्षेत्र में अपनी खोजो

में संलग्न थे। कार्लायल के विवरणों से प्रतीत होता है वे एकदूसरे से मिले थे तथा उन्होंने अपनी खोजो को साझा भी किया था, किन्तु कॉकबर्न उल्लेख करते हैं कि उनका परस्पर कभी सम्पर्क नही हुआ था। वे लिखते हैं कि 'Mr. Carlylle imparted no information on either the nature or the location of the discoveries, and his knowledge had died with him. (J.Cockburn 1899, p.89). यह उल्लेख्य है कि कॉकबर्न ने सम्पूर्ण क्षेत्र का सर्वेक्षण किया तथा उनपर महत्व पूर्ण लेख लिखे। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि वास्तविक रूप से उन्होने ही शैल चित्रकला के अध्ययन की नीव डाली। उन्हों ने अपनी खोजों का विस्त्रित विवरण एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल तथा जर्नल आफ दि ऐंथ्रोपोलाजिकल इन्सटीटयूट आदि में चित्रों एवं अनुरेखणों के साथ प्रकाशित की। कॉकबर्न का प्रथम लेख 1883 में प्रकाशित हुआ जिसमें वे मिर्जापुर के चित्रित शैलाश्रयों में चित्रित गैंडों (Rhinoceros) का उल्लेख करते हैं। इसी लेख में बिजयगढ़ किले के निकट घोड़मंगर शैलाश्रय में चित्रित गैंडे, तथा बिजयगढ़ शैलाश्रय में चित्रित गैंडे के शिकार (Rhinoceros Hunt) तथा रौंप शैलाश्रय में चित्रित गैंडे आदि का विवरण प्रस्तुत किया है। *वे उल्लेख करते हैं कि यद्यपि ये अधिक प्राचीन नहीं प्रतीत होते किन्तु इनके चित्रकार निश्चित रूप से प्रस्तर युगीन अर्थव्यवस्था में रहे होगें।* कार्लायल के अनुसार उन्हें भी किसी शैलाश्रय में बाद की सामग्री यथा ओपदार उपकरण (Polished Stone tools) आदि नहीं मिले थे। वे पूर्णतया आश्वस्त थे कि भाले तथा तीर आदि जो चित्रित थे निश्चित रूप से कड़ी लकड़ी (Hardened Wood), तथा पत्थर आदि से निर्मित थे।

कॉकबर्न के अनुसार सबसे सुन्दर चित्र, सोन घाटी को ऊपर से देखती हुई, कैमूर की दक्षिणी उपत्यका मे अवस्थित शैलाश्रयों में हैं (कॉकबर्न 1889 )। वे आगे लिखते हैं कि चित्रण लम्बवत खडी चट्टानों कन्दराओं तथा शैलाश्रयों में चित्रित हैं। चित्रण अत्यन्त सुन्दरता से विविध रंगों यथा श्वेत, काले, गेंरुए तथा लाल आदि रंगों में मिलते हैं। इनका निर्माण मखरला (Laterite: red oxide of iron) से किया गया था (कॉकबर्न,जे 1883अ,56–64,1883ब: 123,1883स125–6,1888:57–65, 1894:21–37,1899:89–97)। कॉकबर्न के प्रयासों से भारतीय शैल चित्र कला ने विद्वत् जगत् को आकर्षित किया तथा शैल चित्रों के अध्ययन का मार्ग प्रशस्त किया। पुनः 1911 में डी० एल० ड्रेक ने मिर्जापुर के गजेटियर का सम्पादन करते समय कार्लायल तथा कॉकबर्न के मिर्जापुर के कार्यो का उल्लेख किया। 1910 ई० में सी० डब्लू० एण्डरसन ने सिंघन पुर (Singhanpur rockshelters) की खोज की। ये शैलाश्रय रायपुर स्टेट में नाहेरपाली स्टेशन से तीन मील उत्तर पश्चिम में स्थित हैं। सिंघन पुर शैलाश्रय की खोज इस दृष्टि से महत्वपूर्ण सिद्ध हुई कि उसके द्वारा भारतीय शैल चित्रों का भरपूर प्रचार प्रसार हुआ। एण्डरसन ने सभी संग्रहालयों के क्यूरेटरों को आमंत्रित किया। विख्यात कलाविद पर्सीब्राउन ने वहाँ जाकर स्वयं चित्रों का अध्ययन किया। L.Anthropology जर्नल में प्रकाशित एक सूचना के अनुसार उन्हों ने Isiatic Society of Bengal में सिंघन पुर के शैलचित्रों पर एक वक्तव्य भी दिया जिसमें उन्हों ने Spain de Cogul के चित्रों तथा इजिप्ट की पाटरी के रेखा चित्रो से इनकी तुलना की थी। 1917 में Heritage of India Series के अन्तर्गत उनकी पुस्तक Indian Paintings का प्रकाशन हुआ जिसमे उन्हों ने प्रारम्भ में शैल चित्रों का उल्लेख करके उनको महत्व प्रदान किया।

एण्डरसन के प्रचार तथा पर्सीब्राउन की पुस्तक से तत्कालीन विद्वत्जगत की रुचि भारतीय शैल चित्रों के प्रति बढ़ी फलतः अनेक भारतीय विद्वान भी आकर्षित हुए। ऐसे विद्वानों में अमरनाथ दत्त तथा मनोरंजन घोष तथा पंचानन मित्र का नाम विशेष उल्लेखनीय है। 1917 के बाद अमरनाथ

Scanned with OKEN Scanner

दत्त कई बार सिंघन पुर शैलाश्रयों को देखने गए तथा **हितवाद** नामक पत्रिका में अनेक लेख छपवाए। 1931 में उनकी एक पुस्तक।। Few Prehistoric Relics and the Rock Paintings of Singhanpur state (C.P.) India प्रकाशित हुइ। इस पुस्तक में उन्होंने चित्रों के विस्त्रित विवरण के साथ उनकी निर्माण पद्धति, रंगों एवं उद्देश्यों के सम्बंधों आदि पर भी विचार किया। उनका यह निश्कर्ष कि सभी चित्रों का निर्माण न तो एक समय में हुआ न ही उसके प्रणेता एक ही चित्रकार थे, सही था। अनेक स्थलों पर उनके विचार भ्रामक तथा अतिशयोक्ति पूर्ण लगते हैं क्यों कि इन्हों ने परम्परा तथा इतिहास में विभेद नहीं किया। Encyclopaedia Britannica के तेरहवे एडिशन के परिशिष्ट में Prehistoic Indian Relics के नाम से सिंघन पुर के शैलचित्रों का उल्लेख किया गया। पंचानन मित्र भी सिंघन पुर के शैलचित्रों तथा एण्डरसन के विवरण से बहुत प्रभावित हुए। पंचानन मित्र ने अपनी पुस्तक 'प्री हिस्टारिक इण्डिया'( पृ0 149) में उन सम्भावनाओ पर भी विचार किया जिसके कारण इन चित्रों का निर्माण किया गया था। अपने विवरण में उन्होंने ब्रायल (Breul) कैपिटान (Capitan) तथा दरखीम (Durkheim) आदि के कार्यो का भी उल्लेख किया।

इसी बीच 1921–22 में होशंगाबाद के शैलाश्रय प्रकाश में आए। इन शैलाश्रयों को सर्वप्रथम विद्ववत्समाज के सम्मुख लाने का श्रेय मनोरंजनघोष को ही दिया जाता है। बीसवी शती के मध्य तक भारत के विभिन्न क्षेत्रों में बहुत अधिक संख्या में चित्रित शैलाश्रय प्रकाश में आचुके थे किन्तु अभी तक किसी ने समग्र रूप से उनका अध्ययन नही किया था। इस कमी की पूर्ति भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के मनोरंजनघोष ने की। उन्हो ने उस समय तक की चिन्हित अधिकाशं शैलाश्रयों —तत्कालीन मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ, मिर्जापुर, सोनधाटी, आदमगढ़ आदि मे जाकर चित्रों का अध्ययन किया तथा उनका चित्रों और रेखा चित्रों के साथ प्रामाणिक विवरण प्रबध Memoires of the Archaeological Survey of India Vol.24 में Rock paintings and otherAntiquities in the Prehistoric and Later times शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित किया किन्तु उल्लेख्य है कि वे राबर्टगंज के निकटवर्ती लेखहिया शैलाश्रयों में नहीं जासके।

धोष प्रथम विद्वान थे जिन्होंने विधिवत शैलचित्रों का विवरण प्रस्तुत किया। इस प्रकाशन ने शैल चित्र कला के अध्ययन को न केवल सही दिशा निर्देश दिया अपितु सभी बिखरी सामग्री को एकत्रित भी किया।

1932 ई0 के लगभग पचमढ़ी में शैलचित्रों का एक विशाल समूह प्रकाश में आया। इनको प्रकाश में लाने का श्रेय डा0 जी0 आर0 हण्टर को है। इन्होंने वहाँ पर उत्खनन भी करवाया था जिसका विवरण नागपुर विश्वविद्यालय से प्रकाशित हुआ था (हण्टर जी0आर0 ,1936 ' फाइनल रिपोर्ट आन दी एक्सकवेशन इन दी महादेव हिल्स' न02)। 1935 के लगभग डी0 एच0 गार्डन का ध्यान इस ओर आकर्शित हुआ। भारतीय शैलचित्रों पर उन्होने अनेक लेख प्रकाशित किए। डी0 एच0 गार्डन (D.H. Gordon) का महत्व मात्र इतना ही था कि उनके लेखों तथा पुस्तक से भारतीय शैलचित्रों का प्रसार हुआ, पुरातत्व में उसे स्थान मिला, किन्तु उनके नकारात्मक दृष्टि कोण से हानि अधिक हुई। वे एक कट्टर उपनिवेशवादी थे तथा पूर्वाग्रहों से ग्रस्त थे। उन्होंने अपने सारे निष्कर्ष पचमढी शैलाश्रयों के साक्ष्यों से ग्रहण किये थे जिनकी प्राचीनता वे 10वी शती से अधिक नहीं मानते थे। उनके अनुसार अन्य स्थानों के चित्र भी 2000 वर्षो से अधिक प्राचीन नहीं हैं। अर्विन न्यूमेयर (1983 पृ0 30 ) के अनुसार जिन निष्कर्षों पर वे पहुँचे उससे भारत में शैल चित्रों के अध्ययन को बहुत क्षति हुई। अर्विन न्यूमेयर (1983) आगे लिखते हैं : Gordon's work was

Scanned with OKEN Scanner

mainly based on the rock pictures from the Mahadeo Hills. ----It was on these pictures that he developed his five series, which devided the rock pictures according to stylistic criteria. Gordon tried to bind all the then known rock pictures in India into these five series, not realizing at that time that the historic rock pictures in the Mahadeo hills a local 'stylistic group with stylistic peculiarities observable only in the Mahadeo hills.' Gordon's pre conceived ideas about the overwhelming influence of westAsian Cultures in the making of the protohistoric and historic India barred his horizon to wider understanding of the development of rockArt in India. He could not imagine a long autochthonous development of Indian rockart in its original setting.'

खेद का विषय है कि गार्डेन ने मिर्जापुर की लेखहिया, कण्डाकोट, रौंप आदि महत्वपूर्ण शैलाश्रयों को कभी देखा ही नहीं।

बीसवी सदी के पॅाचवें दशक के प्रारम्भ से शैल चित्रकला की गवेषणा का नया अध्याय प्रारम्भ होता है। क्यों कि इस समय से प्रागैतिहासिक सर्वेक्षण की कमान युवा भारतीय विद्वानों के हाथों में आती है। इन विद्वानों ने 19वी शताब्दी में प्रकाश में आए चित्रित शिलाश्रयों को फिर से खोजा तथा नए सिरे से अध्ययन भी किया और उनका सांस्कृतिक परिवेश भी जानने का प्रयास किया। इसी समय के लगभग भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण ने विश्वविद्यालयों को पुरातात्विक उत्खनन तथा सर्वेक्षण की अनुमति भी प्रदान की थी। इसी समय से विश्वविद्यालयों में प्रागितिहास को विषय के रूप में भी मान्यता प्राप्त हुइ। प्राचीन इतिहास, संस्कृति तथा पुरातत्व एवं नृतत्व शास्त्र के विभागों में सर्वेक्षण तथा उत्खनन पाठ्यक्रमों के अभिन्न अंग बन गए। शीघ्र ही इलाहाबाद, सागर तथा उज्जैन शैल चित्रकला के प्रमुख केन्द्रों के रूप में विकसित हुए। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में 1955 में प्रो0 जी0 आर0 शर्मा ने प्रथम सर्वेक्षण का आयोजन किया जिसमें उन्होंने मिर्जापुर के ज्ञात चित्रित शैलाश्रयों का विधिवत अध्ययन किया, कतिपय नवीन शैलाश्रयों तथा पुरास्थलों की खोज की (IAR 1956-57). 1958 से डा0 राधा कान्त वर्मा ने, जो उस समय इलाहाबाद विश्वविद्यालय में कार्यरत थे, चित्रित शैलाश्रयों तथा पुरास्थलों की खोज का कार्य प्रारम्भ किया। 1958 से 1964 में किए गए कार्यो का विवरण उनके शोध प्रबंध (Stone age Cultures of Mirzapur) के रूप में प्रस्तुत किया गया। इस प्रबंध में चित्रित शैलाश्रयों एवं शैल चित्रों पर विस्तार से विचार किया गया है। इस अध्ययन की प्रमुख विशेषता यह थी कि इसमें *प्रत्येक चित्र–फलक पर अंकित चित्रों के स्तरी करण को समझने का प्रयास किया गया है।* शीघ्र ही विभाग के अन्य अध्यापकों एवं छात्रों ने भी इसमें सहयोग देना प्रारम्भ किया। फलतः इलाहाबाद विश्वविद्यालय का प्राचीन इतिहास, संस्कृति तथा पुरातत्व विभाग देश में पुरातत्व अध्ययन का प्रमुख केन्द्र बना और कालान्तर में U.G.C ने इसे Advance Centre की मान्यता प्रदान की। 1963–64 के लगभग इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के जाने माने कवि, चित्रकार प्रो0 जगदीश गुप्त भी शैलत्रिकला के अध्ययन तथा सर्वेक्षण में रुचि ले रहे थे। उन्हों ने हिन्दी में एक पुस्तक 'प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला' (1967) प्रकाशित की। इस पुस्तक में उस समय तक की भारतीय शैलत्रिकला का सम्पूर्ण विवरण है।

उत्तर–मध्यभारत में 1955 के लगभग उज्जैन विश्वविद्यालय के वी0 एस0 वाकणकर का प्रवेश इस क्षेत्र में होता है।

वाकणकर ने 1955 में सर्वप्रथम सीताखर्दी शैलाश्रयों की खोज की। तत्पश्चात् चम्बलघाटी जो

Scanned with OKEN Scanner

गांधीसागर डैम के अन्दर डूबनेवाली थी उसके शैलाश्रयों को चिन्हित एवं अध्ययन किया। 1957 में उन्होने भीम बैठका शैलाश्रयों की पहॅचान की। भीम बैठका शैलाश्रय श्रृखला विश्व की सबसे लम्बी चित्रित शैलाश्रय श्रृखलाओं में से एक है। उसकी गणना विश्व धरोहरों (World Heritage) में की जाती है। इस समय यह भारत की सबसे अधिक विवेचित (Studied) पुरास्थलों में है। वाकण्कर के अतिरिक्त यहाँ पर सागर विश्वविद्यालय के श्यामकुमार पाण्डे, डेकन कालेज पुणे के वी0एन0मिश्र आदि ने भी महत्वपूर्ण सर्वेक्षण तथा उत्खनन किया। इन विद्वानों के उत्खननों ने शैल चित्रों पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला। मध्यभारत विशेष रूप से रायसेन तथा निकटवर्ती क्षेत्र के चित्रित शैलाश्रयों को प्रकाश में लाने तथा शैल चित्रों के अध्ययन में श्यामकुमार पाण्डे तथा उनके शिष्यों ने विशेष भूमिका निभाई है। 1970 में उन्हों ने अपना शोध प्रबंध 'Painted Rockshelters in Madhya Pradesh' सागर विश्वविद्यालय में जमा किया। 1970 में उन्होंने 'Indian Rockart नामक पुस्तक प्रकाशित की। बीसवी शताब्दी के मध्य से जिन अग्रणी विद्वानों ने शैलचित्र कला के अध्ययन तथा प्रसार में विशेष भूमिका निभायी उनमें वी0 एस0 वाकणकर, डा0 राधा कान्त वर्मा, प्रो0 जगदीश गुप्त तथा श्यामकुमार पाण्डे का नाम उल्लेखनीय है।

दक्षिण भारत में अधिकाशंतया ग्रेनाइट की चट्टानें हैं जो चित्रों के लिए चित्र फलक (Canvas) के रूप में बहुत उपयोगी नहीं थी अतः वहाँ पर पेटिंग्स कम मिलती हैं। तथा उत्कीर्णन एवं ब्रूइजिंग (Bruisings) ही प्रायः मिलते है। उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चरण में कर्नाटक में बेल्लरी के निकट कुप्पगल (Kuppagal). भिल्ल्मरायनगुडडा (लिंगसागर तालुका जिला रायचूर) से शैल ब्रूइजिंग मिले थे। शैल चित्र सर्व प्रथम सम्भवतः लियोनार्ड मन्न (Leonard Munn) को 1935 के लगभग हिरे बेनकल ( Hire Benakal) गंगावती तालुका रायचूर जिले में मिले थे। कालान्तर में 1941 में तत्कालीन हैदराबाद स्टेट के भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण ने गुलबर्गा जिले के यादगीर तालुके के बालचक्र में शैल चित्रों के मिलने की सूचना दी थी। कुछ वर्षों के बाद तत्कालीन हैदराबाद स्टेट के पुरातात्विक सर्वेक्षण ने रायचूर जिले के तोगलगुद्दा (Togalgudda Raichur Distt) के चित्र को प्रकाशित किया था। बादामी से लगभग 5 कि0मी0 पर सिदलापहाडी नामक भव्य एवं विशाल शैलाश्रय में विभिन्न कालों के चित्रों के सम्बधं में कम से कम 1950 से जानकारी थी। 1974 में वाकणकर ने बादामी–सिदलापहाडी तथा बादामी–महाकूट मार्गों पर सबसे ऊची तथा भव्य चित्रितं शैलाश्रयों को खोजा था। 1951 में अलचिन ने भी मुदगल पिखलिहल क्षेत्र में कुछ चित्रो तथा ब्रूइजिंग की घाषणा की थी। 1955 में अलचिन तथा गार्डन नें रायचूर जिले के शैल चित्रों पर एक संयुक्त लेख 'Rock paintings and Engravings, Hyderabad' प्रकाशित किया। बाद में अलचिन नें रायचूर जिले के शैल चित्रों को अपनी पुस्तक Development of Early Cultures in Raichur District में भी सम्मिलित किया। डा0 रामचन्द्र दीक्षितार ने 1955 में अपनी पुस्तक Prehistoric South India प्रकाशित किया। इस पुस्तक में शैल चित्रों की अनेक समस्याओं का उल्लेख है और उनपर अत्यन्त सूक्ष्म रूप से विचार किया गया है। 1961 में धारवाड़ विश्वविद्यालय के सुन्दरा ने चार चित्रित शैलाश्रयों–अनेगोण्डी (Anegondi) में एक, वेंकटपुरा (Venkatapura) चिक में एक तथा रामपुरा (Chik-Rampura ) में दो की घोशणा की थी। 1964–65 में नागराज राव ने टेक्कलकोट्टा (Tekkalkotta) तथा संगनकल्लू (Sangankallu) में चित्रित शैलाश्रयों को खोजा था। 1968 में वाई0 डी0 शर्मा तथा सुन्दरा ने मन्न (Munn) की प्रतिवेदित चित्रित शैलाश्रयों की पुनः खोज की इसके साथ ही सुन्दरा ने सात और शैलाश्रयों को ढूढा। हीरे बनकल के शैल चित्रों पर एक लेख

Scanned with OKEN Scanner

भी प्रकाशित किया। 1973–1975 के लगभग सुन्दरा ने यू0 जी0 सी0 के शोध प्रोजेक्ट के तहत काम करते हुए उत्तरी कर्नाटक में 23 स्थलों से 66 शैल चित्रों को चिन्हित किया इनमें से अधिकांश हिरे बनकल–हम्पी क्षेत्र में हैं।

1955 से 1980 के मध्य जो महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुए उनमें इलाहाबाद विश्वविद्यालय के डा0 राधाकान्त वर्मा का नाम उल्लेखनीय है। इन्हों ने अपने शोध प्रबंध (StoneAge Cultures of Mirzapur (1964) मे शैल चित्रकला के एक अध्याय में तत्कालीन मिर्जापुर के सभी प्रतिवेदित तथा नव अन्वेशित शैल चित्रों पर विस्तार से चर्चा की है इस अध्ययन का महत्व इस दृष्टिकोण से अधिक है कि इसमें पुरातात्विक मानकों को ध्यान में रखते हुए लेखक ने चित्र फलकों (Painted Canvas) पर चित्रित चित्रों के स्तर विन्यास का अध्ययन किया है। चित्रों के अध्यारोपण तथा तकनीक के आधार पर उनको चार वर्गो में विभाजित किया। उनके अनुसार चित्रों के चित्रण में एक विकास क्रम मिलता है। चित्रों के तिथि निर्धारण तथा चितेरों के सांस्कृतिक परिवेश को समझने के लिए कतिपय शैलाश्रयों तथा उनके बाहर डत्खनन भी किया जिससे महत्वपूर्ण सामग्री प्रकाश में आई (इसका विस्त्रित विवरण यथा स्थान दिया गया है)

वी0एन0 मिश्र तथा यशोधर मठपाल ने 1976 में Bhimbetka Excavations नामक प्रबंध (Monograph) प्रकाशित किया। 1976 में ही वाकणकर तथा अर0 आर0 ब्रूक्स ने StoneAge Painting in India का प्रकाशन किया। 1978 में मठपाल ने वी0एन0 मिश्र के निर्देशन में अपना शोध प्रबंध Prehistoric Rock Paintings of Bhimbetaka, Central India डेकन कालेज में जमा किया जिसको 1985 में अभिनव प्रकाशन नई दिल्ली ने प्रकाशित किया। यह उल्लेख्य है कि मठपाल ने भीमबेठका के लगभग सभी चित्रों की वाटर कलर में अनुकृति भी बनाई थी। 1995 में उन्होंने Rockart of Kumaon Himalayas का प्रकाशन किया।

मुल्क राज आनन्द ने 1981 में मार्ग पत्रिका के न0 4 अंक में Rockart of India पर वाकणकर तथा श्याम कृष्ण पाण्डे के लेखों का सम्पादन किया।

1981 में एम0 डी0 खरे ने मध्य प्रदेश शासन के पुरातत्व एवं संग्रहालय विभाग की ओर से कई महत्वपूर्ण लेखों का सम्पादन किया। एक प्रबंध Painted Rockshelters of Bhopal प्रकाशित किया।

1980 तक शैल चित्रकला को एक स्वतंत्र विषय के रूप में मान्यता प्राप्त हो चुकी थी। 1980 में मध्य प्रदेश शासन के पुरातत्व एवं संग्रहालय विभाग ने भूपाल में भारतीय शैल चित्रकला पर स्वतंत्र रूप से एक संगोष्ठी का आयोजन किया जिसमें शैल चित्रकला पर काम करने वाले लगभग सभी विद्वानों ने भाग लिया। इसके कार्य वृत्त का सम्पादन के0 के0 चक्रवर्ती ने किया जो 1984 में प्रकाशित हुई।

भोपाल सेमिनार के दौरान यह महसूस किया गया कि शैल चित्रकला के अध्ययन का क्षेत्र इतना विस्त्रित हो गया है कि शैल चित्रकला के अध्ययन के विकास के लिए दिशा तथा मार्ग निर्देशन के लिए एक सोसायटी की नितान्त आवश्यकता है अतः RockArtAssociation के गठन के लिए मसौदा तैयार किया गया। किन्तु यह प्रयास सफल नही हुआ।

गत शताब्दी के आठवें दशक के अन्त तक शैल चित्र कला के प्रमाण विभिन्न देशों से प्रतिवेदित होने लगे थे तथा औस्ट्रेलिया में अधिक संख्या में शैलचित्र चिन्हित किए गए थे अतः वहाँ परAustralian RockArt ResearchAssociation (AURA) का गठन किया गया जिसकी प्रथम

बैठक अगस्त/सितम्बर में हुई। इसके फलस्वरूप International Federation of RockArt Organisation (IFRAO) का गठन 3 सितम्बर 1988 को हुआ। प्रथम बैठक डारविन में आहूत की गयी इसमें पैतीस देशों ने शिरकत की थी। इस संगठन से अपेक्षा थी कि उससे अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग तथा आम नीतियों के विकास में सहायता मिलेगी। इसके शीघ्र ही बाद भारत में 3, दिसम्बर 1988 को Indian RockArtAssociation of India (IRA) का गठन शान्तिनिकेतन में IndianArchaeological Society (IAS) तथा ISPQS के अधिवेशन के समय पर किया गया। बाद में फरवरी 1990 में RockArt Society of India (RASI) का गठन हुआ। डा० जगदीश गुप्त अध्यक्ष तथा गिरिराजकुमार सेक्रेटरी चुने गए। इसका मुख्यालय आगरे में रखा गया। यह संस्था The International Federation of Rockart Organization (IFRAO) से सम्बन्धित है। जुलाई 1990 से यह 'पुरा कला' नामक शोध पत्रिका भी निकाल रही है। यह निश्चित रूप से सराहनीय है। इसके वार्षिक अधिवेशन में शैल चित्रकला पर कार्यरत विद्वान काफी संख्या में भाग लेते हैं। उत्तर प्रदेश राज्य पुरातत्व संगठन की शोध पत्रिका में भी प्रस्तर चित्रकला के लिए एक सेक्शन निर्धारित है जिसमें शोध पत्र छापे जाते हैं। इनके अतिरिक्त 'पुरातत्व' पत्रिका तथा मैन ऐण्ड इनवायरनमेण्ट (ManAnd Environment) में भी प्रस्तर चित्रकला पर लेख छापते हैं।

1980 तथा उसके बाद से भारतीय विद्वानों में प्रस्तर चित्रकला में अधिक जागरूकता के फल स्वरूप युवा विद्वानों में रुचि बढ़ी तथा अनेक प्रकाशन हुए। ऐसे विद्वानों में गिरिराजकुमार, राकेश तिवारी, जी०एस०त्यागी, सोम नाथ चैटर्जी, राकेश पान्चोली, नारायण व्यास, दलजीत खरे, सुरेन्द्र आर्य, भटनागर, आबिद चौधरी, एस० प्रधान, एन० चन्द्र मौली, मुरारी लाल शर्मा, जीवन खड़क वाल, के० राजन, बी०एल०मल्ल, मीनाक्षी पाठक, सुधा मल्लैया, एस० के० तिवारी, आदि की गणना की जासकती है। आठवें दशक में रीवा विश्वविद्यालय भी शैल चित्र कला के एक केन्द्र के रूप में विकसित हुआ। यहाँ राधा कान्त वर्मा तथा उनके सहयोगियों तथा शिष्यों –महेश श्रीवास्तव, अजय सिह, शीतला प्रसाद सिह, प्रकाश चन्द्र तिवारी, योगेन्द्, पुश्पेन्द्र नन्दन तथा अनेक अन्य विद्वानों ने, जिनकी सूची काफी लम्बी है, बघेल खण्ड में बहुत से स्थलों को चिन्हित किया तथा शोध प्रबंध एवं शोध–पत्र लिखे।

आठवें दशक के बाद के काल में एक अन्य विशेषता यह भी थी कि बहुत से ऐसे लोगों ने भी चित्रित शैलाश्रयों के सर्वेक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी जिनका किसी विश्वविद्यालय अथवा पुरातत्व विभाग से कोई सीधा सम्बंध नहीं था। एंसे लोगों में श्री विजय कुमार का नाम उल्लेखनीय है। श्री विजय कुमार उत्तर प्रदेश शासन में पुलीस विभाग के वरिष्ठ अधिकारी हैं। इन्होंने बॅादा तथा बुन्देलखण्ड के बीहण तथा डाकुओं से ग्रसित क्षेत्र में सर्वेक्षण किया तथा सैकणों शैलाश्रयों को चिन्हित किया। इसी प्रकार भारतीय सेना में तैनात कर्नल ए० के० प्रसाद ने बिहार तथा उत्तर प्रदेश के नक्सली इलाकों में महत्वपूर्ण कार्य किया।

विगत शताब्दी का नवॉ दशक भी महत्वपूर्ण रहा क्योंकि इस काल में अनेक विदेशी विद्वानों नें अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रकाशन किए। इसके पूर्व आ० आर० ब्रूक्स (R.R. Brooks) के सहयोग से वाकणकर ने 1972 में एक पुस्तक Stone age Painting in India निकाली थी जिसका देश विदेश में स्वागत हुआ था। विदेशी विद्वानों में सबसे महत्वपूर्ण योगदान औस्ट्रियि के अर्विन न्यूमेयर का है इन्हों ने लगभग सभी क्षेत्रों का मात्र सर्वेक्षण ही नही किया अपितु नेत्रों से देखकर चित्रों की कापी बनाई और उनपर नोट भी लिखे तथा उसे प्रकाशित किया (Prehistoric Indian Rock Painting

Scanned with OKEN Scanner

(1983) तथा Lines on Stone:The Prehistoric RockArt Of India (1993) यह एक अत्यन्त सराहनीय कार्य था। यह अन्य बात है कि अनेक स्थानों पर उनके द्वारा बनाए गए चित्र मूल प्रति से मेल नहीं खाते किन्तु इससे पुस्तक का महत्व कम नहीं होता। दूसरे विद्वान आर० जी० बेडनारिक ने भी अनेक महत्वपूर्ण लेख देश विदेश की महत्वपूर्ण शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित किए तथा उनमें से कुछ को विश्व की प्राचीनतम कला कृति घोषित किया। के० के० चक्रवर्ती के साथ एक पुस्तक Indian RockArtAnd its Global Context (1997) में प्रकाशित की। गिरिराज कुमार तथा बेडनारिक आदि ICHR and ASI के वित्तीय सहयोग से बहुअनुशासनिक परियोजना (Multidisciplinary project) में कार्यरत हैं। 1993 में इन्दिरा गाधी सेंटर फार दी आर्ट ;प्दकपतं ळंदकीप ब्मदजमत थ्वत जीम ।तजे द्ध ने एक अन्तर्राश्ट्रीय सेमिनार का आयोजन किया जिसके कार्यवृत्त (Rockart in the Old World) का सम्पादन माईकेल लारब्लांचेट ने किया। 2003 में एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल ने एक राष्ट्रीय सेमिनार का आयोजन किया किन्तु उसका कार्य वृत्त अभी भी अप्रकाशित है। इसी प्रकार 2004 में आगरे में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनार, तथा आई० सी० एच० आर० द्वारा भोपाल में आयोजित इण्डो फ्रेंच संयुक्त सेमिनार का कार्य वृत्त भी अभी अप्रकाशित है।

इलाहाबाद संग्रहालय में डा० राधा कान्त वर्मा के निर्देशन में मध्य भारत के उत्तरी विंध्य क्षेत्र के शैल चित्रों की एक वीथिका का निर्माण महत्वपूर्ण है। 2012 में डा० वर्मा की बहु प्रतीक्षित पुस्तक RockArt Of Central India का प्रकाशन Aryan Books International, Delhi से हुआ। यह प्रथम पुस्तक है जिसमें उत्तरी विंध्य क्षेत्र के सभी शैल चित्रों का विवरण विधिवत किया गया है।

इन्दिरा गाधी सेंटर फार दी आर्ट (Indira Gandhi Center For The Arts ) के डा० बी० एल० मल्ल तथा उनके सहयोगी योजना बद्धरूप से चित्रित शैलाश्रयों का प्रलेखन, प्रचार, प्रसार कर रहे हैं। अनेक स्थलों पर प्रदर्शनी तथा भाषणों का आयोजन भी किया है।

शैलचित्र कला अब एक स्वतंत्र विषय – शैलचित्र कला विज्ञान – के रूप में विकसित हो चुकी है। उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व है।

Scanned with OKEN Scanner

## भारत का मानचित्र–प्राकृतिक

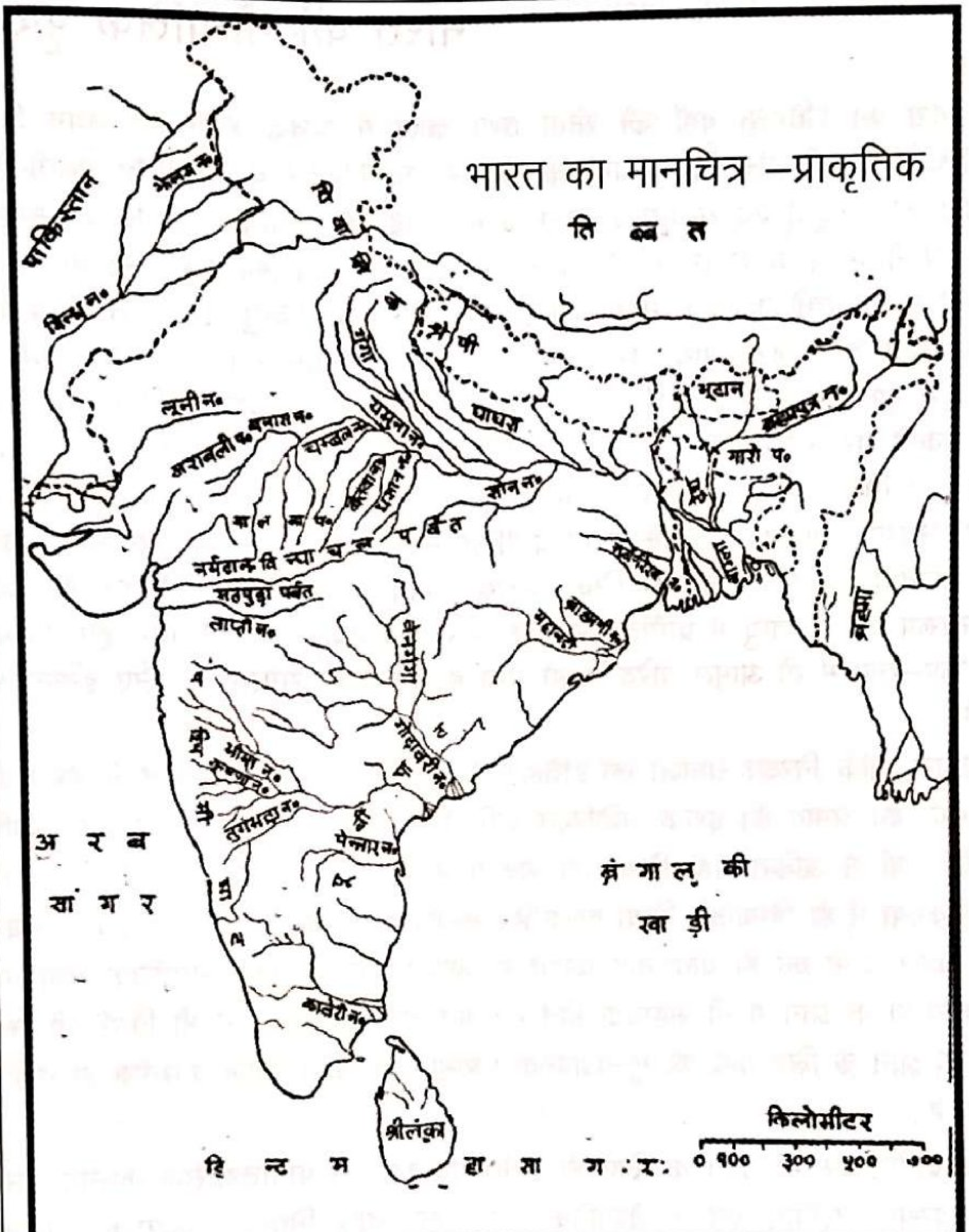


रेखा चित्र – 1

# 5

# भारत की भौगोलिक पृष्ठ भूमि

प्रत्येक देश का इतिहास वहाँ की सीमा तथा काल में आबद्ध होता है। स्थान–विशेष की भौगोलिक स्थिति उसकी संस्कृति, सभ्यता के विकास एवं विस्तार को निर्धारित करती है। अतः किसी भी देश की संस्कृति एवं सभ्यता के ज्ञान के लिए वहाँ की भौगोलिक स्थिति का सम्यक ज्ञान आपेक्षित है। प्रागितिहास के सन्दर्भ में तो इसका महत्व और अधिक बढ़ जाता है। यों तो जलवायु ने सभी स्थनों में एवं सभी कालों में मानव को प्रभावित किया था, किन्तु जैसे–जैसे मानव प्राकृतिक शक्तियों पर विजय प्राप्त करता गया उसकी प्रकृति पर निर्भरता कम होती गई। किन्तु कभी भी वह इस निर्भरता से पूर्णतः मुक्त हो सकेगा यह सम्भव प्रतीत नहीं होता। प्रागैतिहासिक कालों में मानव पूर्णरूप से प्रकृति पर आश्रित था। प्रकृति की अस्थिरता ने उसके जीवन का, उसके विकास की प्रत्येक कड़ी का निर्धारण किया है। प्राकृतिक परिवर्तनों के साथ–ही–साथ उसका जीवन बदलता, बिगड़ता एवं संवरता गया है। अतः किसी भी प्रागैतिहासिक अध्ययन के लिए उस स्थान–विषेष की तत्कालीन जलवायु, वातारण एवं भौगालिक अवस्था आदि का अध्ययन समीचीन है। अधिकांश स्थानों के स्वरूप एवं जलवायु में प्रागैतिहासिक काल से अब तक अनेक परिवर्तन हुए हैं। बहुत से स्थानों की रूप–रेखा में तो आमूल परिवर्तन हो गया है उनको भी समझने के लिए इनका अध्ययन आवश्यक है।

प्रागितिहास, चूंकि निरक्षर समाजों का इतिहास है, अतः उसके काल–क्रम के निर्धारण के लिए लिखित सामग्री का अभाव है। इसके अतिरिक्त प्रागितिहास के काल का विस्तार इतना अधिक है कि उसे सौर वर्षों में अंकित नहीं किया जा सकता है। इसीलिए सुविधा के दृष्टिकोण से उन्हें भू–वैज्ञानिक कल्पों में ही विभाजित किया जाता है। भू–वैज्ञानिक कल्पों का ज्ञान केवल सभ्यता एवं संस्कृति के काल–क्रमों का ही बोध नहीं कराते हैं, अपितु अन्य वस्तुओं–भौगोलिक तथा जलवायु सम्बन्धी अवस्थाओं के ज्ञान में भी सहायक होते हैं। अतः इस दृष्टिकोण से भी किसी भी स्थान के प्रागितिहास के ज्ञान के लिए वहॉ की भू–वैज्ञानिक पृष्ठभूमि का ज्ञान केवल वांछनीय ही नहीं अपितु आवश्यक भी है।

भारतीय प्रागितिहास के ज्ञान के लिए भी इसी दृष्टिकोण से प्रागैतिहासिक कालीन भारत की भौगोलिक अवस्था, जलवायु एवं भू–वैज्ञानिक स्तरों का ज्ञान नितान्त आवश्यक है। भारतीय प्रागितिहास को भी वहॉ की जलवायु तथा भौगोलिक अवस्था ने अन्य स्थानों के समान ही प्रभावित किया था। चूंकि भारत एक विशाल देश है, अतः उसके सभी क्षेत्रों की जलवायु एक सी नहीं थी। उसके कुछ क्षेत्रों में यदि विस्तृत हिमायन था तो अन्य क्षेत्रों में हिमायन का नाम भी नहीं था। उनके स्थान पर वहॉ पर अति वर्षा काल हुए। हिमायनों के फलसरूप निर्मित भू–वैज्ञानिक स्तर, अतिवर्षा

Scanned with OKEN Scanner

तथा अन्तर्वर्षा कालों में निर्मित भू–वैज्ञानिक स्तरों से नितान्त भिन्न है। प्रागैतिहासिक काल में हुए इन भू–वैज्ञानिक जमावों के ज्ञान के बिना प्रागितिहास का ज्ञान असम्भव है। निम्न पंक्तियों में भारतीय प्रायद्वीप की भौगोलिक पृष्ठभूमि पर विहंगम दृष्टिपात किया गया है।

## भौतिक विभाग

भारत 80 तथा 370 उत्तरी अक्षांस तथा 610 और 970 पूर्वी देशान्तर के मध्य में स्थित है। इसके उत्तर में गगनचुम्बी हिमालय, दक्षिण में हिन्द महासागर, पश्चिम में अरब सागर तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी है। उत्तर में काश्मीर से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक इसका विस्तार लगभग 2,000 मील है। इस विस्तृत क्षेत्र में भारत के भौतिक स्वरूप तथा जलवायु में बहुत अधिक विविधता मिलती है। भौतिक स्वरूप (Physical feature), स्तर – विन्यास ( Stratigraphy) तथा संरचना (Structure) के आधार पर सम्पूर्ण भारत को तीन स्पष्ट भागों में, सुविधा के दृष्टिकोण से, विभाजित कर सकते हैं –

1. प्रायद्वीपीय भारत (Peninsular India)
2. सिंधु–गंगा का मैदान (Indo-gangetic plain)
3. अतिरिक्त प्रायद्वीपीय भारत (Extra-peninsular India)

## प्रायद्वीपीय भारत (Peninsular India)

### पर्वतमालायें

भारत का यह प्राचीनतम भूमि–खण्ड है। उत्तर में यह विन्ध्य श्रृंखलाओं तथा दक्षिण, पूर्व तथा पश्चिम में हिन्द महासागर, बंगाल की खाड़ी तथा अरब सागरों से आवेष्ठित है। तटीय क्षेत्रों को छोड़कर इस प्रदेश की भी पहाड़ियाँ अवशिष्ट प्रकार के पर्वतों (Relict Mountains) से निर्मित हैं, फलतः वे बहुत सख्त और स्थायी (Hard and Stable) है। इस सम्पूर्ण क्षेत्र में प्राक् प्राथमिक काल (Archaean) से पर्वत–निर्माण सम्बन्धी कोई भी महत्वपूर्ण क्रिया नहीं हुई है। प्राक् प्राथमिक काल के बाद जो कुछ भी परिवर्तन हुए हैं वे साधारण प्रकार के ही हैं

इस प्रदेश की प्रमुख पर्वत श्रृंखलाएं पूर्वी तथा पश्चिमी घाट (EasternAnd Western ghats), सतपुड़ा (Satpura), और विंध्य (Vindhyas) पर्वतमालाएँ हैं।

## पश्चिमी घाट

पश्चिमी घाट की पर्वत मालायें प्रायद्वीपीय भारत के पश्चिमी तट पर कन्याकुमारी से ताप्ती घाटी तक विस्तृत है। विभिन्न स्थानों पर इनकी ऊँचाई 2,000 से 6,000 फीट तक है। मैसूर के दक्षिण में पश्चिमी घाट तथा पूर्वी घाट की पर्वतमालाएँ एक दूसरे से मिलती हैं। यहाँ पर इन्हें नीलगिरि कहते हैं। प्रायद्वीपीय पर्वत श्रृंखलाओं में नीलगिरि सबसे अधिक ऊँचे हैं। उनका उच्चतम शिखर दोद्दबेंट्ट (Doddabett) 8,640 फीट है। ये ग्रेनिटायड (Granitoid), आग्नेय (Igneous) तथा

Scanned with OKEN Scanner

परिवर्तित (Metamorphic) चट्टानों के हैं। अतः पर्वत घाटियाँ ढालदार हैं। मैसूर तथा दक्षिण बम्बई के घाटों को सहयाद्रि (Sahayadris) कहते हैं। इसके और उत्तर में बेलगाँव (Belgaum) से गुजरात (Gujarat) तक ये पठार में परिवर्तित हो जाते हैं।

## पूर्वी घाट

पश्चिमी घाट की पर्वत श्रृंखलाओं से पूर्वी घाट की पर्वत मालाएँ भिन्न हैं। क्योंकि ये श्रेणियाँ अलग–अलग मालाओं के रूप में बालासोर से नेलोर (Nellore) फिर आरकॉट (Arcot) तथा सलेम (Salem) से नीलगिरि तक फैले हैं। इन पर्वतों की औसत ऊँचाई 2,000 फीट है।

## सतपुड़ा पर्वत मालाएँ

सतपुड़ा पर्वत मालाएँ नर्मदा तथा ताप्ती नदियों के बीच में अनेक समानान्तर पर्वत मालाओं के रूप में स्थित है। ये बम्बई के राजपीपला, मध्य भारत ओर उत्तरी मध्य प्रदेश से होते हुए गंगा के दक्षिण में बिहार तक फैली है। इसकी प्रमुख पर्वत मालाएँ महादेव अथवा पछमढी–गोण्डवाना की, मेकल पहाड़ियाँ डेकनट्रैप की अमरकण्टक क्षेत्र की तथा सरगुजा, राँची, हजारीबाग तथा मुंगेर आदि आर्कयन की है। इन पर्वत मालाओं की ऊँचाईयाँ भिन्न–भिन्न है। इनमें सबसे अधिक ऊँचाई महादेव पर्वत के शिखरों की है जो 4,000 फीट तक ऊँचे हैं। इस पर्वत के उत्तर में नर्मदा तथा सोन और दक्षिण में महानदी एवं ताप्ती प्रमुख नदियाँ प्रवाहित हैं।

## विन्ध्य पर्वत मालाएँ

विंध्य पर्वत मालाएँ नर्मदा के उत्तर में, मध्य प्रदेश में इन्दौर, भूपाल, सतना आदि उत्तर प्रदेश के बाँदा, इलाहाबाद, मिर्जापुर, बनारस तथा बिहार के दक्षिण–पूर्वी भाग तक फैली हुई है। विंध्य पर्वत का वह भाग जो बघेलखण्ड के अन्तर्गत आता है कैमूर श्रृंखला के नाम से विख्यात है। विंध्य की औसत ऊँचाई 2,000 से 4,000 फीट के अन्तर्गत है।

## अरावली पर्वत मालाएँ

अरावली पर्वत मालाएँ गुजरात के मैदानों से उत्तर–पूर्व दिशा में दिल्ली तक राजपूताने के आरपार फैली हुई है। प्राक् प्राथमिक काल के अंतिम समय में सम्भवतः ये हिमालय के समान ऊँचे थे, किन्तु भू–गर्भीय उथल–पुथल के फलस्वरूप उनका आधुनिक स्वरूप उभरा है। इनका उच्चतम शिखर लगभग 4,000 फीट ऊँचा है।

## जल–प्रवाह

प्रायद्वीपीय भारत की प्रमुख नदियाँ महानदी, गोदावरी, कृष्णा, पेन्नेर, कावेरी, नर्मदा तथा ताप्ती है। प्रायद्वीप के उत्तरी भाग में चम्बल, बेतवा तथा सोन प्रमुख नदियाँ हैं। अत्यन्त प्राचीन काल से निरन्तर बहने के कारण इन्होंने अपनी घाटी को पूर्ण रूप से बना लिया है। अधिकांश नदियों की घाटियाँ चौड़ी तथा छिछली है। नर्मदा तथा ताप्ती का रूख पूर्व से पश्चिम की ओर है। अन्य सभी

Scanned with OKEN Scanner

नदियाँ पश्चिम से पूर्व की ओर बहती है। नर्मदा प्रातिनूतन काल के पथरीले बेसिन तथा नूतन काल के जलोढ़क जमाव (Alluvium) से होकर बहती है। पहले यह खानदेश में दक्षिण–पश्चिम दिशा में बहती थी तथा ताप्ती से मिलती थी। किन्तु, बाद में ये दोनो अलग हो गई। प्रायद्वीप की उत्तरवर्ती नदियाँ चम्बल, बेतवा तथा सोन का रूख उत्तरवर्ती है। चम्बल तथा बेतवा दोनों ही यमुना की सहायक नदियाँ हैं। सोन अमरकण्टक के पठार से निकल कर कैमूर पर्वत श्रृंखला के दक्षिण से होकर पटना के निकट गंगा से मिलती है।

## सिन्धु–गंगा का मैदान (Indo-Gangetic Plain)

प्रायद्वीपीय भारत के उत्तर में गंगा–यमुना का मैदान स्थित है। भारत के अन्य भागों से भिन्न यह प्रदेश समतल तथा चौड़ा है। इस सम्पूर्ण भूमि–खण्ड का निर्माण नदियों के अलूवियम के द्वारा हुआ है जिनमें बालू, चिकनी मिट्टी (Clay) तथा जैव–मलवे (Organic debris) के अनेक स्तर हैं। भू–वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ये प्रातिनूतन (Pleistocene) तथा नूतन काल (Holocene) के हैं।

गंगा की घाटी का निर्माण, अनुमान है, हिमालय के उठने के कारण हुआ था। हिमालय के उठाव के कारण विंध्य तथा हिमालय के बीच में गहरी खाड़ी बन गई थी। गंगा तथा अन्य नदियाँ जो हिमालय से निकलती थीं उन्होंने क्रमशः अपने मलवे से इस खाड़ी को भरकर उसका आधुनिक स्वरूप प्रदान किया है।

इस प्रदेश की प्रमुख नदियाँ यमुना, गंगा, ब्रह्मपुत्र तथा सिंधु है। अन्य सभी नदियाँ प्रायः इन्हीं की सहायक है।

## अतिरिक्त प्रायद्वीपी भारत (Extra-Peninsular India)

यह सिंधु–गंगा मैदान का उत्तरवर्ती प्रदेश है। इस प्रदेश का आधुनिक स्वरूप भू–गर्भीय उथल–पुथल के कारण निकट भू–वैज्ञानिक कल्प में ही हुआ है। यद्यपि इस प्रदेश में भी बहुत प्राचीन पत्थर मिलते हैं। त्रिखण्डकाल (Cambrian) से लेकर प्रारम्भिक तृतीयक (Early Tertiary) तक के निर्मित सभी पर्वत विवर्तनिक कारणों के फलस्वरूप वलित (Folded) तथा भ्रंशित (Faulted) दशा में मिलते हैं। प्रारम्भिक तथा मध्य तृतीयक काल के बाद स्तरित चट्टानों का निर्माण हुआ। ये बहुत अधिक मोटाई में मिलते हैं। इस प्रदेश का दक्षिणवर्ती क्षेत्र अलवरण जल (Fresh Water), अतिनूतन (Estuarine) जमावों से बना है। इसका निर्माण मध्यनूतन (Miocene), अतिनूतन (Pliocene) कालों में हुआ प्रतीत होता है।

## पर्वतमाला

अतिरिक्त प्रायद्वीपीय भारत–भूमि–खण्ड अभी भी स्थिर नहीं है। विवर्तनिक उथल–पुथल अभी भी निरन्तर हो रहे हैं। इन विवर्तनिक कारणों के फलस्वरूप निर्मित पर्वत श्रेणियों का उत्थान एक साथ नहीं हुआ है। किन्तु इन सभी में एक समानता विशेष उल्लेखनीय है। सिंधु–गंगा–मैदान की

Scanned with OKEN Scanner

उत्तरवर्ती सभी पर्वत श्रृंखलाएं अर्धवृत्ताकार–सी हैं जिनमें वृत्तांश का उन्नतोदर अथवा पृष्ठ भाग मूल–भारत की ओर है। जैसे–जैसे इन पर्वत श्रृंखलाओं की ओर उत्तर में बढ़ते हैं उनका वृत्ताकार कम होता जाता है। ये सभी श्रेणियाँ विभिन्न ऊँचाईयों की हैं।

हिमालय की विभिन्न पर्वत श्रृंखलाओं को चार प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता है। जो निम्नलिखित हैं :–

1. पार हिमालय (Trans-Himalayas)
2. वृहत् हिमालय (Great Himalayas)
3. मध्य हिमालय (Middle Himalayas)
5. शिवालिक श्रृंखला (Siwalik Ranges)

### 1. पार हिमालय

ये हिमालय की उत्तरवर्ती पर्वत श्रेणियाँ हैं। ये लगभग 25 मील चौड़ी हैं निजमें हिमालय के उत्तर से निकलने वाली नदियों की घाटियाँ भी हैं।

### 2. वृहत् हिमालय

ये मूल हिमालय की पर्वत श्रृंखलाएँ हैं जो सदैव हिमाच्छादित रहती है। सिंधु–गंगा के मैदान से यह लगभग 80–90 मील उत्तर में हैं। इस पर्वत श्रेणी के मूल भाग का निर्माण अत्यन्त प्राचीन काल में हुआ था, अतः उनमें किसी भी जीव के अवशेष नहीं मिलते हैं। किन्तु उनके ऊपर का भाग स्तरित चट्टानों का है।

### 3. मध्य हिमालय

मध्यनूतन (Miocene) काल में हिमालय का दूसरा उत्थान हुआ। इसके फलस्वरूप वृहत् हिमालय और अधिक ऊँचा उठा तथा मध्य हिमालय का उत्थान हुआ। इस श्रेणी को लघु हिमालय की संज्ञा प्रदान की गई। इनकी चौड़ाई लगभग 40–50 मील है तथा ये समुद्र तल से औसतन लगभग 10,000 फीट ऊँचे हैं। वर्ष के कुछ माह में ये हिमाच्छादित रहते हैं, किन्तु अधिकांश भागों में इन पर वर्फ नहीं रहती।

इस पर्वत श्रृंखला में विभिन्न प्रकार तथा विभिन्न कालों के पत्थर मिलते हैं। श्रृंखला का कोर (Core) अथवा मूल भाग प्रायद्वीपीय भारत के पत्थरों के ही समान हैं। इसके अतिरिक्त अजीवी स्लेट (Slates), क्वार्टजाइट (Quartizite), गोण्डवाना (Gondwan), आदि भी मिलते हैं।

द्वितीय उत्थान तथा लघु हिमालय के निर्माण के फलस्वरूप इसके तथा प्रायद्वीपीय भारत के मध्य में एक सकरी खाड़ी रह गई है। लघु हिमालय के ऊपर से दक्षिण की ओर बहने वाली कई जलधाराओं से मिलकर एक महानदी का स्वरूप धारण कर लिया। यह आसाम से नैनीताल और शिमला होती हुई पंजाब के उत्तर–पश्चिमी छोर तक जाकर सिंधु की घाटी में गिरती थी। इस नदी

ने कालान्तर में सिंधु, ब्रह्मपुत्र तथा गंगा आदि नदियों को जन्म दिया। पिल्ग्रिम ने इसी को 'शिवालिक नदी' की संज्ञा प्रदान की थी।

## 4. शिवालिक श्रृंखला

लघु हिमालय के दक्षिण तथा सिंधु–गंगा के उत्तर की पर्वत श्रृंखलाओं को, जो पश्चिम में बन्नू के मैदान से लेकर पूर्व में ब्रह्मपुत्र की घाटी तक विस्तृत हैं उन्हें शिवालिक श्रृंखला कहते हैं। यह बहिर्हिमालय के नाम से भी विख्यात है। यह 5–30 मील तक चौड़ा है तथा इसकी औसत ऊँचाई 3,000 फीट है। इनके ऊपर हिमाच्छादन कभी नहीं होता है। ये घने जंगलों से आवेष्ठित हैं। ये वलित (Folded), भ्रंशित (Faulted) तथा अधिक्षेपित (Overthrust), हैं। ये श्रृंखलाएँ जल–मल, बालु–चट्टानों, मिट्टियों और पत्थर के विशालकाय ढोकों से निर्मित हैं। इनके निचले भागों में अबरक तथा ऊपर के भागों में चिकनी मिट्टी के स्तर मिलते हैं। अनुमानतः इनका निर्माण शिवालिक नदी द्वारा स्थापित सामग्री से हुआ है।

हिमालय की विभिन्न श्रृंखलाओं को उनका आधुनिक स्वरूप आरम्भिक मध्य प्रातिनूतन काल (Early Middle Pleistocene) से पहले प्राप्त हुआ था। इसके पूर्व में ये इतने ऊँचे नहीं थे। ये घने जंगलों से घिरे हुए थे तथा शिवालिक की घाटी जानवरों से भरी हुई थी। इनमें जीवाश्म प्रायः बहुलता से मिलते हैं। आरम्भिक मध्य प्रातिनूतन काल (Early Middle Pleistocene) में हिमालय का तृतीय उत्थान हुआ। इसके फलस्वरूप शिवालिक घाटी लुप्त हो गई। शिवालिक नदी तीन भागों में बंट गई। आधुनिक ब्रह्मपुत्र, गंगा तथा सिंधु आदि नदियों का आविर्भाव हुआ। साथ–ही–साथ इन सभी को उनका आधुनिक स्वरूप भी प्राप्त हुआ।

शिवालिक पर्वत श्रृंखलाएँ सिंधु–गंगा की घाटी के उत्तर में अखण्ड भारत की पश्चिमोत्तर सीमा से लेकर ब्रह्मपुत्र घाटी तक फैली हुई हैं। रावलपिण्डी के नीचे तथा झेलम नदी के बीच की पहाड़ियों को नमक की पहाड़ियाँ (Salt Range) कहते हैं। ये पुठवल पठार (Potwar Plateau) की दक्षिण–सीमा बनाती हैं। इनका रूख पूर्व–पश्चिम है, किन्तु पश्चिम की ओर इनका रूख अधिक उत्तर–पश्चिम हो जाता है। दक्षिण में झेलम घाटी के ऊपर यह कगार (Scarpment) के रूप में दीखता है। यह विभिन्न कालों के विभिन्न प्रकार के पत्थरों से निर्मित है। इसका उच्चतम शिखर 5,010 फीट है। नमक की पहाड़ियों के ऊपर मध्य भाग में अनेक खारे जल की झीलें हैं। इस सम्पूर्ण पहाड़ी का जल निकास (Drainage) प्रमुख रूप से वाही (Wahi) नदी द्वारा होता है जो इसके आर पार बहती है। इस प्रदेश के शेष जल का निकास सोहन नदी में होता है, जो कालाबाघ के थोड़ा ऊपर सिंधु से मिलती है। सिंधु कालाबाघ (Kalabagh) के निकट नमक की पहाड़ियों को काटते हुए बहती हैं।

पुठवल पठार हाजरा पर्वत श्रृंखलाओं (Hazara Mountains) तथा नमक की पहाड़ियों (Salt Range) के मध्य में स्थित है। यह पठार लगभग 150 मील लम्बा तथा 60 मील चौड़ा है। इसकी

Scanned with OKEN Scanner

औसत ऊँचाई लगभग 1,500 फीट है। यह पठार वलित (Folded) शिवालिक जमाव से निर्मित है। इस क्षेत्र का जल–निकास सिंधु तथा इसकी सहायक सोहन तथा झेलम नदियाँ करती हैं। कोहट (Kohat) क्षेत्र में पुठवल का प्रदेश संकीर्ण हो जाता है। बन्नू के मैदानों में इसके ऊपर जलोढ़क (Alluvium) जमाव मिलता है। पुठवल बन्नू क्षेत्र वास्तव में हिमालय की बाह्य–चौकी है तथा प्रायद्वीपीय शैल–समूहों से दबी हुई है। शिवालिक का असमवर्ती भाग भी वास्तव में पुठवल तथा पंजाब प्रदेश के सदृश ही है। यहाँ भी प्रायद्वीपीय शैलसमूहों ने पुठवल पंजाब क्षेत्र के समान ही कार्य किया है।

## संरचनात्मक आधार

प्रागितिहास का मूल सम्बन्ध मानव के उद्भव एवं विकास से है। उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर मानव का उद्भव तृतीयक काल के पूर्व नहीं निर्धारित किया जा सकता है। प्रागैतिहासिक अध्ययन के दृष्टिकोण से तृतीयक तथा उसके बाद के भू–वैज्ञानिक स्तर विशेष महत्वपूर्ण हैं। अतः केवल उन्हीं क्षेत्रों का वर्णन विशेष रूप से किया गया है जहाँ तृतीयक तथा उसके बाद के स्तर मिलते हैं। ऐसे क्षेत्रों में शिवालिक विशेष महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि प्रारम्भ में डी टेरा (De Terra), टीलहार्ड डी चार्डिन (Teilhard De Chardin) तथा टी0टी0 पेटरसन (T.T. Paterson) आदि ने काश्मीर घाटी से सिन्धु तथा झेलम के बीच नमक की पहाड़ियों तक के सम्पूर्ण शिवालिक जमावों तथा उससे सम्बन्धित पुरातात्विक सामग्री का विशेष अध्ययन किया है।

## शिवालिक

हिमालय की दक्षिणवर्ती बाह्य पहाड़ियाँ जो ब्रह्मपुत्र की घाटी से लेकर बन्नू के मैदान तक विस्तृत है, शिवालिक के नाम से प्रख्यात है। इनका नामकरण हरिद्वार के निकट शिवालिक नामक पहाड़ो के आधार पर हुआ है। शिवालिक का निर्माण बालू पत्थर (Sand stone), ग्रिट (Grit), प्रस्तर पिण्ड, छद्म प्रस्तरपिण्ड, चिकनी मिट्टी तथा गाद मिट्टी (Silt) से हुआ है, जो नदियों द्वारा बहाकर लायी और निक्षेपित की गई थी। बालू पत्थरों के जमाव में स्तर–रचना अच्छी नहीं हैं तथा निक्षेपित सामग्री इस प्रकार से मिली हुई है कि उससे यह अनुमान किया जाता है कि सम्पूर्ण जमाव बहुत शीघ्रता से एवं अल्पकाल में हुआ था। नदियों ने यह जमाव प्रायः गहरी बेसिन अथवा दलदली स्थानों में किया था। मोटी (Coarse) तथा महीन (Fine) सामग्री का एकान्तरित जमाव इस बात का द्योतक है कि ये मौसमी (Seasonal) जमाव थे। ये जमाव 15,000 से 17,000 फीट मोटे हैं। अनुमानतः जैसे–जैसे ऊपर जमाव हो रहा था, वैसे वैसे पहले के जमाव नीचे घंसते जा रहे थे। भू–गर्भीय उथल–पुथल तथा हिमालय के क्रमिक उत्थान ने भी शिवालिक जमावों को बहुत प्रभावित किया। इन विवर्तनिक परिर्वतनों (Tectonic Changes) के कारण शिवालिक जमावों में बहुत अधिक वलन (Folding) तथा भ्रंश (Fault) मिलता है। पहले कुछ विद्वानों की धारणा थी कि शिवालिक का जमाव अलग–अलग बेसिनों में हुआ था। किन्तु पासको (E.H.Pascoe) तथा पिल्ग्रिम (Dr. G.E.

Scanned with OKEN Scanner

Pilgrim) ने यह स्पष्ट कर दिया है कि सम्पूर्ण जमाव एक विशाल नदी– शिवालिक, जो आसाम से निकल कर शिवालिक पहाड़ियों की दिशा में बहती थी– के ही द्वारा हुआ था। अन्य विद्वानों की भी यहीं धारणा है, क्योंकि जमाव में विभिन्न स्थानों पर एक ही प्रकार के पत्थर मिलते हैं जिनका उद्गम–स्थान एक ही रहा होगा। ऐसी स्थिति में एक स्थान से विभिन्न स्थानों पर पत्थरों का स्थानान्तरण नदी द्वारा ही हुआ होगा।

शिवालिक जमावों के अध्ययन से तत्कालीन जलवायु का अनुमान किा जा सकता है। मोटे कणों का जमाव आर्द्र काल में नदियों द्वारा तथा सूक्ष्म कणों का जमाव शुष्क काल में वायु द्वारा होता है। इसके अनुसार निम्न शिवालिक तथा मध्य शिवालिक के निम्न स्तर का जमाव आर्द काल में हुआ था। धोक पाठन का जमाव अपेक्षाकृत शुष्क काल में हुआ था, किन्तु पुनः उच्च शिवालिक का जमाव आर्द्र काल में हुआ। अन्तिम काल में जलवायु ठण्डी होने लगी थी अथवा हिमायन सन्निकट था, क्योंकि इसके बाद के जमावों में हिमायन के प्रभाव परिलक्षित होते हैं।

शिवालिक जमावों में वानस्पतिक तथा जीवाश्मित अवशेष बहुत अधिक संख्या में मिले हैं। नमक की पहाड़ियाँ तथा पुठवल प्रदेश इस दृष्टिकोण से अधिक उल्लेखनीय है। उनको देखने से स्पष्ट है कि जिस काल में ये जमाव हुए थे उस काल में वहाँ पर आज से बहुत अधिक संख्या में तथा विविध प्रकारों के जानवर विचरण करते थे। जीवाश्मों के सूक्ष्म अध्ययन से उनकी उत्पत्ति, विकास तथा प्रव्रजन (Migration) आदि पर समुचित प्रकाश पड़ता है। वहां से उस काल के केवल हाथियों के ही तीस प्रकार मिले हैं, जबकि अब केवल एक प्रकार का हाथी शेष है।

जीवाश्मों के साक्ष्यों पर सम्पूर्ण शिवालिक–जमाव को अनेक भागों एवं उपविभागों में विभाजित किया गया है। प्रायः प्रत्येक भाग के जमावों की, काल तथा जीवाश्मों के दृष्टिकोण से अपनी विशेषताएँ हैं। सम्पूर्ण शिवालिक को तीन प्रमुख भागों में विभाजित करते हैं :–

1. उच्च शिवालिक (Upper Siwalik)
2. मध्य शिवालिक (Middle Siwalik)
3. निम्न शिवालिक (Lower Siwalik)

**1. उच्च शिवालिक**

यह जमाव 6,000 से 8,000 फीट मोटा है। इसे पुनः उपविभागों में विभाजित करते हैं :–

क. विषाल प्रस्तर–पिण्ड (Boulder Conglomerate)

ख. पिंजौर अवस्था (Pinjor Stage)

ग. टैट्राट अवस्था (Tatrot Stage)

**क. विशाल प्रस्तर–पिण्ड (Boulder Conglomerate)**

ये शिवालिक में सबसे ऊपर मिलते हैं। जैसा कि नाम से स्पष्ट है, ये विशाल प्रस्तर खण्डों से

Scanned with OKEN Scanner

निर्मित हैं। इस पिण्ड (Conglomerate) का निर्माण किस समय हुआ, यह एक समस्या है। डी टेरा तथा पेटरसन इसे प्रारम्भिक मध्य प्रातिनूतन काल में रखते हैं। उनके अनुसार इसका निर्माण द्वितीय हिमकाल (IInd Glacial Period) में हुआ था, किन्तु प्रायः अन्य सभी विद्वानों ने इसे निम्न प्रातिनूतन काल में रखा है। (देखिये तालिका 1)।

## ख. पिंजौर अवस्था (Pinjor Stage)

इसका नामकरण कालका के निकट पिंजौर नामक स्थान के आधार पर हुआ है। यह मोटे कणों के पेबुल तथा बालू–पत्थरों से निर्मित है। इस स्तर से बहुत से जीवाश्म उपलब्ध हुए हैं, जिन्हें आधुनिक पशुओं का निकटतम पूर्वज कहा जा सकता है। इनमें इक्वस तथा बॉस (EquusAnd Bos) आदि के ऐसे जीवाश्म भी प्राप्त हुए हैं, जिन्हें यूरोप में विलाफ्रेशिया (Villafranchian) जन्तु–वर्ग के अन्तर्गत रखते हैं। पिल्ग्रिम तथा कृष्णन इसे उच्च–अतिनूतनकाल (Upper Pliocene) में रखते हैं, किन्तु डी टेरा तथा पेटरसन ने इसे निम्न–प्रातिनूतन काल (Lower Pleistocene) के अन्तर्गत रखा है।

## ग. ट्रैटाट अवस्था (Tatrot Stage)

इसका नाम ट्रैटाट पर आधारित है। यह प्रस्तर–पिण्ड मुलायम बालू पत्थर तथा छोटे–छोटे जल–घर्षित पत्थरों से बना है। इस स्तर से भी विलाफ्रेंषिया (Villafranchian) प्रकार के जीवाष्म उपलब्ध हुए हैं। डी टेरा तथा पेटरसन इस स्तर को भी निम्न–प्रातिनूतन काल के अन्तर्गत रखते हैं। किन्तु कृष्णन एवं पिल्ग्रिम के अनुसार यह मध्य–प्रातिनूतन काल का है।

## 2. मध्य शिवालिक

यह जमाव भी 6,000 से 8,000 फीट मोटा है। इसे भी दो प्रमुख वर्गों में विभाजित करते हैं :

क. धोक पाठन अवस्था (Dhok Pathan Stage)

ख. नागरी अवस्था (Nagri Stage)

## क. धोक पाठन अवस्था (Dhok Pathan Stage)

इस अवस्था का नामकरण सोहन नदी पर स्थित धोक पाठन के आधार पर हुआ है यह स्तर मटमैले बालू–पत्थर, नारंगी रंग की मिट्टी तथा जल–घर्षित पत्थरों से निर्मित है। इस स्तर से सबसे अधिक जीवाष्म उपलब्ध हुए हैं। इसे डी टेरा उच्च अतिनूतन (Upper Pliocene), पिल्ग्रिम निम्न अतिनूतन (Lower Pliocene) और कालवर्ट मध्य अतिनूतन (Middle Pliocene) काल में रखते हैं।

## ख. नागरी अवस्था (Nagri Stage)

यह स्तर कड़े मटमैले बालू–पत्थर, मिट्टी के पत्थर तथा मिट्टी से निर्मित है। इस स्तर से

बहुत से प्राइमेट (Primates), ब्रह्मपिथेकस (Brahmapithecus), शिवपिथेकस (Sivapithecus) तथा सुग्रीवपिथेकसके जीवाश्मित अवशेष प्राप्त हुए हैं।

डी टेरा तथा पेटरसन इसे मध्य अतिनूतन (Middle Pliocene) कालीन मानते हैं। किन्तु पिल्ग्रिम तथा कृष्णन के अनुसार यह उच्च मध्यनूतन (Upper Miocene) काल का है।

### 3. निम्न शिवालिक (Lower Siwalik)

इसे कृष्णन ने दो भागों में विभाजित किया है : क. चिंजी क्षेत्र (Chinji Zone) ख. कमलियाल क्षेत्र (Kamlial Zone) किन्तु डी टेरा के अनुसार इसका एक और विभाजन भी है, जिसे उन्होंने मूरी–माला (Muree Series) कहा है।

### क. चिंजी क्षेत्र (Chinji Zone)

यह जमाव लगभग 3,000 फीट मोटा है तथा मुलायम हल्के भूरे बालू–पत्थर एवं लाल मिट्टी के पत्थरों के एकान्तरित जमावों से निर्मित है। इस स्तर से भी बहुत से प्राइमेट यथा – ड्रायोपिथेकस, शिवपिथेकस तथा ब्रह्मपिथेकस के जीवाश्म मिले हैं। डी टेरा तथा पेटरसन इसे निम्न अतिनूतन काल (Lower Pliocene) के अन्तर्गत रखते हैं, किन्तु पिल्ग्रिम तथा कृष्णन के अनुसार यह स्तर मध्यनूतन (Middle Miocene) काल का है।

### ख. कम्लियाल क्षेत्र (Kamlial Stage)

यह स्तर मिट्टी–नोड्यूल मिश्रित कड़े लाल बालू–पत्थर तथा बैंजनी शेल से बना है। अनेक स्थानों पर विशेषतः जम्मू–क्षेत्र में कम्लियाल तथा मूरी जमाव परस्पर इस प्रकार से मिल गए हैं कि उनको अलग करना सरल नहीं है।

डी टेरा इसे उच्च–मध्यनूतन के अन्तर्गत रखते हैं, किन्तु पिल्ग्रिम तथा कृष्णन के अनुसार यह मध्य–मध्यनूतन (Middle Miocene) काल का है।

## शिवालिक स्तरों का सह सम्बंधीकरण

| | | डी टेरा आदि | पिल्ग्रिम | कृष्णन | वाडिया | यूरोप |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्रातिनूतन (Pleistocene) | उच्च मध्य | विशाल प्रस्तर पिण्ड स्तर (B.C Zone) | | | | |
| | निम्न | पिन्जौर (Pinjor) टैट्राट (Tatrot) | विशाल प्रस्तर पिण्ड स्तर (B.C Zone) | विशाल प्रस्तर पिण्ड स्तर (B.C Zone) | विशाल प्रस्तर पिण्ड स्तर (B.C Zone) | क्रोमेरियन (Cromerian) |
| अतिनूतन (Pliocene) | उच्च | धोक पाठन (Dhok Pathan) | पिन्जौर (Pinjor) | पिन्जौर (Pinjor) | पिन्जौर (Pinjor) | विलोफ्रेंषिया (Villafranchian) |
| | मध्य | नगरी स्तर (Nagri Zone) | टैट्राट (Tatrot) | टैट्राट (Tatrot) | टैट्राट (Tatrot) | आस्टियन (Astrian) |
| | निम्न | चिन्जी स्तर (Chinji Zone) | धोक पाठन (Dhok Pathan) | धोक पाठन (Dhok Pathan) | | पोनटियन (Pontian) |
| | उच्च | कम्यिाल स्तर (Kamlial Zone) मूरी माला (Muree Series) | नागरी (Nagri) | नागरी (Nagri) | धोक पाठन (Dhok Pathan) | सरमेटियन (Sarmatian) |
| मध्यनूनत (Miocene) | मध्य | | चिन्जी (Chinji) | चिन्जी (Chinji) | नागरी (Nagri) चिन्जी (Chinji) कम्यिाल (Kamlial) | टारओनियन (Tortonian) / हेलवेटियन (Helevetian) |
| | निम्न | | | | मूरी (Muree) | बर्दिगेलियन एक्विटेनियन (Burdigalion Aquitanian) |

तालिका – 1

# निम्न पुरापाषाण काल

Scanned with OKEN Scanner

# 6

# भारत की प्रस्तर युगीन संस्कृतियाँ

प्रस्तर युगीन संस्कृतियों को सांस्कृतिक अवस्था (Cultural Stages) एवं स्तरीकरण (Stratification) के आधार पर तीन वर्गों में विभाजित करते हैं :

1. पूर्व पाषाण काल अथवा पुरापाषाण काल ( Palaeolithic Period)
2. मध्यपाषाण काल ( Mesolithic Period)
3. नव पाषाण काल ( Neolithic Period)

पुरापाषाण काल को पुनः तीन वर्गों में विभाजित करते हैं :

निम्न पुरा पाषाण काल ( Lower Palaeolithic Period)
मध्य पुरा पाषाण काल ( Middle Palaeolithic Period)
उच्च पुरा पाषाण काल ( Upper Palaeolithic Period)

## निम्न पुरा पाषाण कालीन संस्कृति का संक्षिप्त परिचय

**निम्न पुरा पाषाण काल** मानव के उद्भव एवं विकास का उषः काल है जब वह उपकरणों का प्रयोग करने लगता है। यहीं से उपकरण बनाने वाले मानव (Man the Tool-maker) के विकास की गाथा प्रारम्भ होती है। यह मानव आधुनिक मानव (Homo-sapien sapien) से भिन्न था। इसकी बौद्धिक क्षमता आधुनिक मानव की बौद्धिक क्षमता से क्षीण थी। इसीलिए इसे मानवसमप्राणी (Homonid) की संज्ञा से अभिहित करते हैं। यह भी आधुनिक मानव के समान द्विपायी था तथा अपनी शारीरिक क्षमता की वृद्धि के लिए उपकरणों का प्रयोग करता था।

मानव के उद्भव एवं विकास के प्रारम्भ के प्रमाण पृथ्वी के विकास के अन्तिम परिच्छेद से मिलने लगता है, जिसे हम प्रातिनूतन काल (Pleistocene Period) की संज्ञा से अभिहित करते हैं। इसे मानव का युग भी कहते हैं।

प्रातिनूतन काल को तीन भागों में विभाजित करते हैं :

1. निम्न प्रातिनूतन काल ( Lower Pleistocene Period)
2. मध्य प्रातिनूतन काल ( Middle Pleistocene Period)
3. उच्च प्रातिनूतन काल ( Upper Pleistocene Period)

मानव के विकास के इतिहास में पुरापाषाण काल अथवा पूर्वपाषाणकाल सबसे विस्तृत काल था। पुरापाषाण काल का विकास प्रायः निम्नप्रातिनूतन काल से माना जाता है तथा प्रातिनूतन काल के अन्त के साथ इसका अन्त होने लगता है। विभिन्न स्थलों पर इसके विकास की तिथि थोड़ा पहले अथवा बाद में है। इसी प्रकार से इसका समापन भी प्रातिनूतन काल के बाद नूतन काल (Holocene) में भी चला जाता है।

Scanned with OKEN Scanner

निम्न पुरा पाषाण काल के प्रमुख उपकरण पेबुल से बने चापर–चापिंग उपकरण तथा हैण्डऐक्स, स्क्रेपर तथा क्लीवर थे। ये सभी बहुआयामी उपकरण थे जिनका उपयोग विविध प्रकार – हाथ में पकड़ कर अथवा मूठ लगाकर–करते होगे। मूठ के लगाने की विधि में थोड़ा परिवर्तन करके एक ही उपकरण का उपयोग भिन्न–भिन्न प्रकार से कर सकते हैं। मूठ से उपकरण की उपयोगिता/मारक शक्ति में भी वृद्धि होती है। भारत में यह उपकरण–उद्योग नदियों के प्रथम उच्चयन काल से सम्बन्धित है। इनके अतिरिक्त निम्न पुरापाषाण कालीन मानव के उपकरण भारत में लगभग उन सभी स्थलों से प्रतिवेदित हैं जहॉ पानी, उपकरण बनाने के लिए पत्थर तथा भोजन के लिए पशु–पादप सुलभ थे। कुछ ऐसे स्थलों पर आदि मानव की उपस्थिति के प्रमाण भी मिले हैं जहॉ पत्थर सुलभ नहीं थे। ऐसे जगहों पर पत्थरों को आयातित किया गया होगा।

इनकी अर्थ व्यवस्था आखेट तथा संग्रह पर आधारित थी। ये भोज्य सामग्री के लिए यायावर जीवन व्यतीत करते थे। ये अग्नि का प्रयोग करने लगे थे, किन्तु निश्चित रूप से कहना कठिन है कि वे अग्नि प्रज्वलित करना भी सीख गए थे।

कुछ स्थलों पर – भीम बेठका, चिरकी नेवासा, पैसरा, हुण्सगी आदि– से निवास के प्रमाण भी मिले हैं। भीम बेठका के एक शैलाश्रय में उत्खनन करते समय एक दीवाल का प्रमाण मिला था जिसका निर्माण शैलाश्रय के अन्दर के भाग को विभाजित करने के लिए किया गया था (मिश्रा,वी0एन0 1978;1985)। चिरकी–नेवासा में बोल्डरों से निर्मित एक लम्बी दीवाल के प्रमाण मिले हैं, जिसका उपयोग तेज हवा को रोकने के लिए किया गया होगा। इसी प्रकार का निर्माण हुण्सगी से भी प्रप्त हुआ है। वहॉ आश्यूल आवास के सम्बन्ध में अधिक जानकारी मिली है। वहॉ पत्थरों की जो संरचनायें मिली हैं वे वक्र (Curve) रेखा, आयताकार अथवा वर्गों के समान हैं। प्रस्तर पिण्ड प्रायः 30 से 60 से0मी0 की दूरी पर रखे जाते थे। E क्षेत्र में पत्थर बिना अन्तराल के रखे मिले। खन्ती नं0 2 में इस प्रकार की 4 मीटर लम्बी तथा लगभग 1 मीटर चौडी संरचना मिली थी। इसी प्रकार से 20 से0मी0 मोटी तथा 90 से0मी0 लम्बी बालू मिट्टी से बनी संरचनायें भी मिली हैं। इस प्रकार की संरचनायें किसी प्रकार के तम्बू (Tent Cover) अथवा हवा रोकने के लिए अथवा पशुओं से रक्षा के लिए निर्मित की जाती थी। कुछ स्थलों पर जैसे पैसरा में E तथा G में इन संरचनाओं के साथ स्तम्भ गर्त भी मिले हैं जो आयताकार, अर्धवृत्ताकार स्वरूप बनाते हैं। ये 15 से0मी0 से 30 से0मी0 गहरे मिलते हैं। D क्षेत्र में एक ही स्थान पर सात गर्त मिले हैं। अन्यत्र, दो ऐसे गर्त भी मिले हैं, जिनसे आवास की संरचना की जा सकती है: स्तम्भगर्तों के आधार पर तीन प्रकार की संरचनायें हो सकती हैं एक स्तम्भगर्त वाले, दो स्तम्भगर्त वाले तथा पत्थर की संरचना के साथ, एक, दो, या अधिक गर्त वाले। इनके द्वारा विविध प्रकार के झोपड़ियों का निर्माण किया जा सकता था (पन्त तथा जायसवाल 1991)।

इस प्रकार की संरचनायें पद्दैया को हुण्सगी (Hunsgi) में भी मिली थी। वहॉ पर अण्डाकार निवास फर्श (Living Floor) प्रस्तर पिण्डों से घिरा हुआ मिला है जिसके उपर झोपड़ी बनाई जा सकती है (पद्दैया 1982)

भाषा का विकास हुआ था अथवा नहीं, कहना कठिन है किन्तु विचारों का आदान प्रदान इशारों (Body language) से सम्भवतः होता था। वेडनारिक आदि विद्वानों की धारणा है कि उसमें

कलात्मक अभिव्यक्ति की भी क्षमता थी जिससे वह अपने को अभिव्यक्त कर सकता था।

## भारत में निम्न पुरापाषाण काल की प्राचीनता

अभी कुछ समय पूर्व तक भारत में निम्नपुरापाषाण काल के प्रारम्भ की तिथि मध्य प्राति नूतनकाल के पूर्व नहीं ले जाते थे। डी टेरा तथा पेटरसन ने 'बोल्डर कांग्लोमरेट को द्वितीय हिमकाल से सम्बधित करके दक्षिण एशिया में निम्नपुरा पाषाण काल को विश्व के सन्दर्भ में बहुत बाद का कर दिया था। किन्तु गत शताब्दी के आठवे दशक में *बृटिश आर्क्यलाजिकल मिशन* के सर्वेक्षणों ने सम्पूर्ण परिदृष्य ही बदल दिया। उनके कार्यों के अधार पर तथा रेवात (Rewat) से प्राप्त तिथि के आधार पर अब निश्चित रूप से कह सकते हैं कि भारत में आदि मानव 20 लाख वर्षों के लगभग प्रवेश कर गए होंगे। रेवात में डेन्नल को 2 मिलियन पूर्व के एक ग्रैवेल जमाव में एक उपकरण मिला था (Dennel etal. 1989 a,b)। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य स्थलों से भी प्राचीन तिथियाँ मिली हैं जैसे :– बोरी (Bori) पुरास्थल में टेफ्रा (Tephra) की तिथि 1.4 मि0 वर्ष (Koristtar etal-1988a and b) मुरगाव (Murgoan (Kale et al-1993) की भी लगभग वही तिथि है जो बोरी टेफ्रा की है। चार प्रारम्भिक आशूलिया पुरास्थल– सिंगीतलाव (Singi Talav Raghavan et al.1989), येदुरवादी (Yedervadu), नेवासा (Nevasa (Atkinson et al- 1989: Kale 1990) तथा टेगीहल्ली (Teggihalli) (Szabo et al_ 1(1) का तिथि निर्धारण Th/U विधि से किया गया है जो 350 kyr (Misra 1992) से अधिक है। बोरी टेफ्रा (Bori Tefra) के तिथि >400 kyr Th/U विधि से किया गया है (IAR 88 & 89:63)A 1985 मे रेण्डेल तथा डेन्नेल को (Rendell and Dennell 1985) पुठवल क्षेत्र में एक आशूलियाँ उपकरण ब्रून्सं मतुयमा (Bruhnes & Matuyama) सीमा (Boundry) के ठीक ऊपर मिला था। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत में भी मानव की प्राचीनता लगभग उतनी ही थी जितनी अन्यत्र है।

Scanned with OKEN Scanner

निम्न पुरापाषाण युगीन पुरास्थल

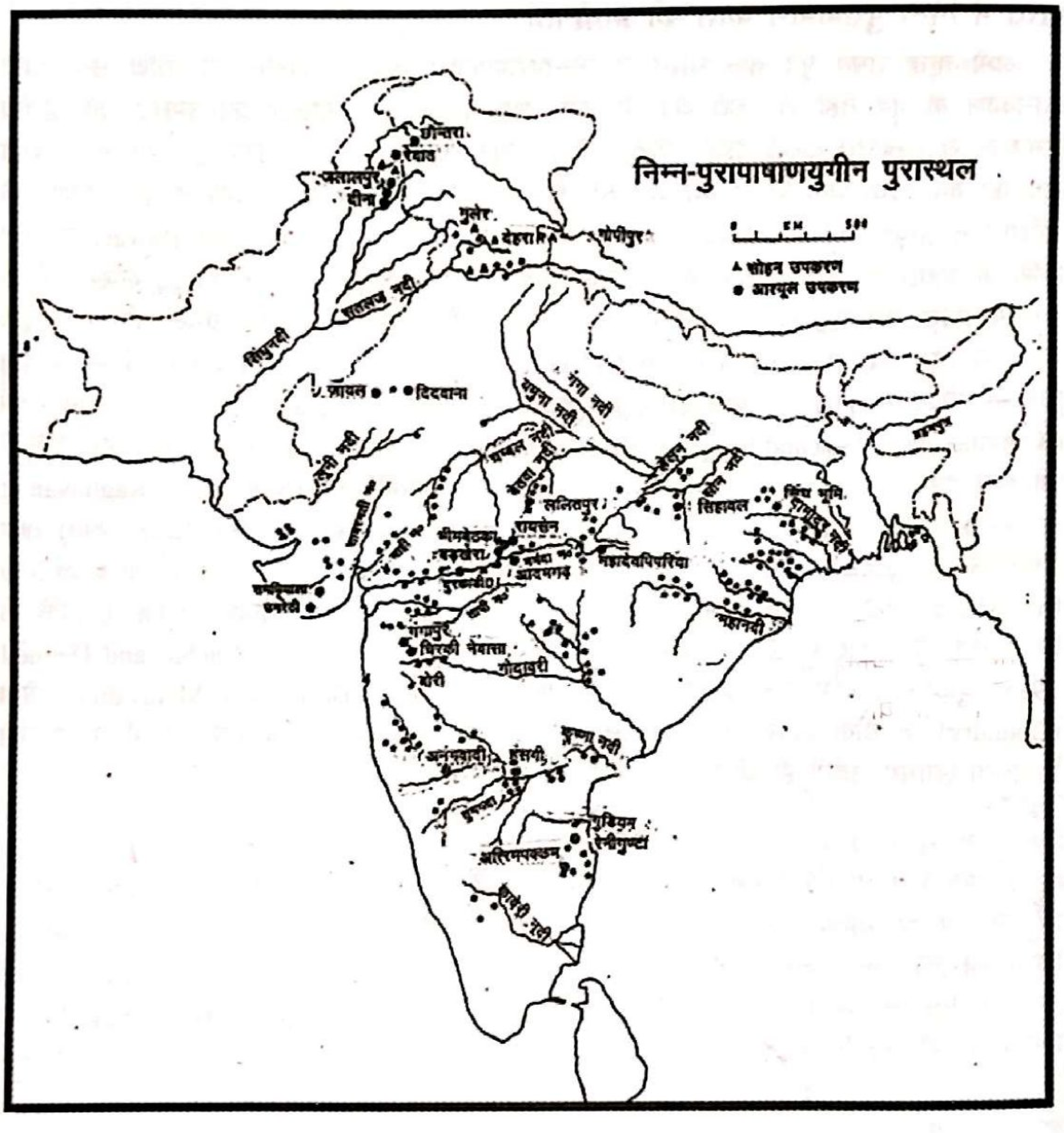


चित्र सं. – 2

# भारत की निम्न पुरापाषाण कालीन संस्कृतियाँ : पृष्ठभूमि तथा नवीन परिदृश्य

## निम्न पुरापाषाण काल

हम पहले उल्लेख कर चुके हैं कि बीसवी शताब्दी के तीसरे दशक तक विभिन्न स्थलों से प्राप्त उपकरणों को निश्चित भूतात्विक स्तरों से सम्बन्धित करने के लिए तथा उन्हें अखिल विश्व के जलवायु सम्बन्धी परिवर्तनों से सम्बन्धित करने के लिए कोई आधार नहीं था। 1935 में डी टेरा की अध्यक्षता में येल–कैम्ब्रिज अभियान (Yale-Cambridge Expedition) भारत में आया। इनके अन्य सदस्य टी0 टी0 पेटरसन तथा टीलहार्ड डि चार्डिन (T.T.PatersonAnd Tielhard de chardin) थे। इन तीनों विद्वानों ने काश्मीर की घाटी, सिन्धु की सहायक सोहन नदी की घाटी, नर्मदा की घाटी तथा तमिलनाडु में कोर्टलयार की घाटी में कार्य किया तथा यहाँ की· पुरातात्विक सामग्री को भूतात्विक जमावों से सम्बन्धित कर उन्हें भूतात्विक कल्पों एवं अखिल विश्व में हुए प्रातिनूतन कालीन परिवर्तनों से सम्बन्धित करने का प्रयास किया।

1. येल कैम्ब्रिज एक्सपेडिशन ने कश्मीरघाटी में चार हिमायनों को चिन्हित किया तथा उनका पुठवल प्रदेश में प्राप्त वेदिकाओं से सम्बंध स्थापित किया। इस प्रकार से उन्होंने जलवायु जनित जमाओं के साक्ष्यों को प्रकाशित किया।

2. उन्होंने 'बोल्डर कांग्लोमरेट को द्वितीय हिमकाल से सम्बधित करके शिवालिक अनुक्रम मे जलवायु जनित जमाव की स्थापना की। मध्य सोहन घाटी में बोल्डर कांग्लोमरेट के बाद (तथा कथित) निर्मित चार वदिकाओं की पहचान की।।ये वदिकायें क्रमशः प्रथम वेदिका (T1) द्वितीय अन्तर्हिमकाल, (T2) तृतीय हिमकाल, (T3) तृतीय अन्तर्हिमकाल, (T4) चतुर्थ हिमकाल से सम्बन्धित की गईं।

3. उन्होंने भारतीय निम्न पुरापाषाण काल में दो समानान्तर प्रस्तर उद्योगों (1) सोहन पेबुल चापर चापिंग तथा फलक उद्योग तथा (2) मद्रासीय हैण्ड ऐक्स परम्परा के विकास की घोषणा की।

पेबुल चापर चापिंग उपकरण सोहन की वेदिकाओं से प्राप्त हुए थे। इनको पाच वर्गों में विभाजित किया गया। इसमें प्रारम्भिक सोहन (Early Sohan) पुरा पाषाण युगीन था। सोहन उद्योगों में उन्होने एक विकास क्रम अथवा उत्पत्ति जनक (Genetic relationship) सम्बधं की परिकल्पना की। उनके अनुसार प्रारम्भ में सोहन संस्कृति उत्तर पश्चिम भारत में सीमित रही किन्तु बाद में यह दक्षिण की ओर विसरित होती गई।

4. डी टेरा तथा पेटरसन की इस परिकल्पना को आगे बढ़ाते हुए मोवियस (1944:24) ने उद्घोषणा की कि पेबुल चापर चापिग संस्कृति 'Great Eastern Culture Complex' का ही एक अंग है जिसके अन्तर्गत पंजाब की सोहन, जावा की पतजीतीनियन तथा मलाया की कोटा टम्पानियन (Kota Tempanian) आते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

5. मद्रासीय हैण्ड ऐक्स परम्परा उद्योग को तृतीय वेदिका (T3) के आधारिक ग्रैवेल में चिन्हित किया गया। यह उद्योग यूरोप अथवा अफ्रीका के कू–द–पो (coup de poing) उद्योग से सम्बन्धित बताया गया।

6. इन विद्वानो की धारणा में पेबुल चापर चापिग तथा मद्रासीय हैण्ड ऐक्स परम्परा का विकास स्वतंत्र एवं समानान्तर रूप से क्रमशः उत्तर–पश्चिम तथा दक्षिण भारत में हुआ। कालान्तर में इनका प्रसरण क्रमशः दक्षिण एवं उत्तर दिशा में हुआ। ये दोनो उद्योग मध्यभारत तथा गुजरात अथवा नर्मदा–साबरमती धुरी पर परस्पर एक दूसरे के सम्पक्र में आए (de TerraAnd Paterson 1939)। यह उल्लेख्य है कि डी टेरा तथा पेटरसन प्रातिनूतन काल के विश्वव्यापी जलवायु परिवर्तनो यथा हिमावर्तनों एवं वर्षा कालों को यूरोपीय अवधारणा के समान समसामयिक मानते थे। उन्होंने बेल्डर फैन्स (Bouldrr fans) तथा काश्मीर के मोरेनों को सोहन के बोल्डर कांग्लोमरेट से सह सम्बन्धित करके दोनो को यूरोप के द्वितीय हिमकाल अथवा मिण्डेल के समकालीन कर दिया। मध्य सोहन घाटी के कालानुक्रम का निर्धारण बोल्डर कांग्लोमरेट की उत्तरवर्ती चार वेदिकाओं पर निर्धारित की गई। यह खेद का विषय है कि अन्य विद्वानों के कार्यों को अनदेखा कर दिया गया।

यह दुर्भाग्य है कि डी टेरा तथा पेटरसन की अवधारणायें लगभग छह दशकों तक बिना किसी परिवर्तन के भारतीय पुरातत्व पर पूर्ण वर्चस्व बनाए रहीं। क्यों कि विषम राजनीतिक परिस्थितियों के कारण उत्तर–पश्चिम भारत में उस क्षेत्र में किसी ने कार्य नहीं किया। फलतः उनकी जलवायु तथा उद्योग सम्बंधी अवधारणायें चलती रहीं। यूरोपीय सन्दर्भ में ये पहिले ही अमान्य हो चुकी थीं। 1954 में ही पावलो ग्रैजिओसी (Paolo Graziosi) ने उत्तर पश्चिमी पंजाब में झेलम तथा सिंधु नदियों के पूर्व तथा पश्चिम में और सोहन तथा हैरोई (Haroy) नदियों के दक्षिण तथा उत्तर में सर्वेक्षण के उपरान्त ही घोषणा की थी कि डी टेरा तथा पेटरसन के द्वारा किए गए Chronological Chart तथा पंजाब के नदियों की वेदिकाओं को हिमकालों से सम्बधित करना बोधगम्य नही है (खत्री ए० पी० 1978:6 से उद्धरित)।

कालान्तर में रेण्डेल आदि ने स्पष्ट किया कि डी टेरा तथा पेटरसन की वेदिकायें थीं ही नहीं वे मात्र अनुमानित थी। डी टेरा तथा पेटरसन ने अपनी रिपोर्ट (1939: 283) में भी इसका उल्लेख किया है कि उन्हें रावलपिण्डी के दक्षिण–पूर्व में सोहन घाटी के मूल क्षेत्र में कोई वेदिका नहीं मिली थी। डी टेरा तथा पेटरसन ने छौन्तरा के ऊपर वेदिकाओं का जो अनुभाग (1939: fig177) दिया है वह संकल्पित है। इसी प्रकार से जो दो प्रस्तर उद्योगों के सिद्धान्तो का प्रतिपादन डी टेरा तथा पेटरसन ने किया था वह भी पेटरसन के दक्षिण इंगलैण्ड में किए गए कार्यो का आक्षेपण मात्र है। सेण्ट ग्रिगोरी इंगलैण्ड में पेटरसन ने अबेवीलियॉ तथा आशूलियॉ में जिस विकास क्रम की परिकल्पना की थी उसी विकास क्रम की परिकल्पना उन्होंने सोहन उद्योग में भी कर डाली। उनकी यह विवेचना पुरातात्विक सिद्धान्तों के अनुरूप नहीं थी। इंगलैण्ड में किएगए उनके कार्यों की कमजोरी पर ओकले तथा मेरी लीके ने विद्वत् जगत का ध्यान आकर्षित किया था। एक ही लेयर से प्राप्त उपकरणों को उनके आकार, पैटीनेशन अथवा घर्षण के आधार पर विभिन्न कालानुक्रमों में

बाटना अनुचित है।

*अलचिन तथा अलचिन ने अपनी पुस्तक 'राइज आफ सिविलाईजेशन इन इण्डिया ऐण्ड पाकिस्तान' (Rise of Civilisation in India and Pakistan) के 1983 के एडीशन में पहली बार उल्लेख किया कि " The Geological and theArchaeological sequences constructed by de Terra and Paterson must be set aside and other means found for working out sequential relation ship and dating individual sites and cultural phases" डी टेरा तथा पेटरसन के द्वारा निर्मित भौतात्विक तथा पुरातात्विक अनुक्रमों को अमान्य करते हुए एकाकी पुरास्थ्लों के पारस्परिक अनुक्रम तथा तिथि निर्धारण एवं सांस्कृतिक काल निर्धारण बृटिश आर्क्येलाजिकल मिशन के आधार पर कोई अन्य विकल्प ढूढना चाहिए। गत शताब्दी के आठवे दशक में बृटिश आर्क्येलाजिकल मिशन ने लगभग आठ वर्षों के सर्वेक्षण के बाद न केवल डी टेरा तथा पेटरसन के मिथक को प्रभावित किया अपितु एकदम नवीन तथ्यों को उजागर भी किया।*

डी टेरा तथा पेटरसन की अवधारणाओं के आधार पर अभी कुछ समय पूर्व तक भारत के पुरापाषाण उद्योगों को भौगोलिक तथा सास्कृतिक दृष्टिकोणों से दो विभिन्न्न वर्गों में विभाजित करते थे। प्रथम वर्ग के अन्तर्गत उत्तर–पश्चिम भारत की सोहन अथवा पेबुल–चापर चापिंग संस्कृति जिसका प्रमुख केन्द्र पंजाब में सोहन नदी की वेदिकायें हैं, की गणना की जाती थी। द्वितीय वर्ग के अन्तर्गत दक्षिण भारत की हैण्डैएक्स क्लीवर परम्परा के उपकरण थे जिसके प्रमुख केन्द्र प्रायद्वीपीय भारत में हैं, तथा जो सर्वप्रथम चेन्नई के निकट बदमदुराई, अत्तिरमपक्कम आदि स्थलों से प्राप्त हुए थे, की गणना की गई है। इस उद्योग के प्रमुख उपादानों में हैण्डऐक्स, क्लीवर, स्क्रेपर, कोर तथा फलकों की गणना की जाती है। इसे आश्यूल (Acheul) संस्कृति के नाम से भी अभिहित करते हैं। मोवियस ने **सोहन संस्कृति को 'पूर्वी संस्कृति समूह' का** अंग कहा जिसके अन्तर्गत उत्तरी भारत, दक्षिण पूर्वी एशिया और चीन आते हैं। उनके अनुसार हैण्डऐक्स परम्परा अपने विस्तार में पश्चिमवर्ती है तथा अफ्रीका, यूरोप, और दक्षिण एशिया की संस्कृति का अंग है (मोवियस, 1944 पृ0 24)। डीटेरा तथा पेटरसन ने 'बोल्डर कांग्लोमरेट को द्वितीय हिमकाल से सम्बधित करके विश्व के सन्दर्भ में भारत में सास्कृतिक विकास को सबसे बाद का बना दिया और ये दोनें ही संस्कृतियॉ आयातित माने जानी लगीं।

भारत में प्रायः सभी स्थानों से पेबुलोपकरण निम्नतर स्तरों से मिले हैं। कृष्णस्वामी (कृष्णस्वामी, वी0डी0, 1955, पार्श्वोद्धरित, पृ0 62) का विचार है कि पंजाब तथा दक्षिण भारत के पेबुलोपकरण एक दूसरे से नितान्त भिन्न हैं, क्योंकि दक्षिण में पेबुलोपकरण तथा उभयपक्षीय उपकरण (Bifacial Tools) प्रारम्भिक स्तरों में सदैव साथ मिलते हैं तथा उनके निर्माण की तकनीक में कुछ समानताएँ मिलती हैं, जो इंगित करती हैं कि वे दोनों एक ही परम्परा से सम्बन्धित होगें। उत्तर भारत के पेबुलोपकरण पूर्णतः भिन्न परम्परा के हैं, क्योंकि उनमें उभयपक्षीय उपकरण नहीं हैं और वे क्लैक्टो–लेवालेवा तकनीक (Clacto-Levalloisian Technique) से सम्बन्धित हैं (वही)। कृष्णस्वामी का उपर्युक्त मत प्रमुखतः दो तर्कों पर आधारित है; प्रथम यह कि उत्तर भारत के पेबुलोपरकणों के अंतर्गत उभयपक्षीय उपकरण नहीं है; दूसरे, उत्तर भारत के उपकरण क्लैक्टो–लेवालेवा परम्परा

Scanned with OKEN Scanner

(Clacto-Levalloisian Tradition) के अन्तर्गत हैं। उपलब्ध साक्ष्यों के सूक्ष्म निरीक्षण से स्पष्ट है कि कृष्णस्वामी के मत का आधार ही निरालम्ब है। डी टेरा तथा पेटरसन ने जिन्हें गोलाकार पेबुल पर बने उपकरण तथा मोवियस ने जिन्हें चॉपिंगोकरण कहा है, तकनीक के दृष्टिकोण से उभयपक्षीय कहे जा सकते हैं। पेटरसन तथा ड्रमण्ड के 'सोअन टूल टाइप, संख्या 7, 8 (Soan Tool-Type No. 7 and 8) अथवा पेरीफेरल न्यूक्लियेट (Peripheral Nucleate) और टर्टिलबैक उपरकण (Turtle back Tools) इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं (पेटरसन, टी0टी0 तथा ड्रमण्ड, एच0जे0एच0, 1962, पार्श्वोद्धरित, पृ0 54–58)। सांकलिया (सांकलिया, एच0डी0, 1962, पार्श्वोद्धरित, पृ0 8 तथाए रिवाइज्ड स्टडी ऑफ दी सोअन कल्चर' , पृ0 12)की भी यही धारणा है। इन दृष्टान्तों से स्पष्ट है कि तथाकथित सोहन परम्परा के उपकरणों में उभयपक्षीय उपकरण नहीं है यह कहना उचित नहीं प्रतीत होता है।

इसके अतिरिक्त आदि सोहन के विशिष्ट एकपक्षीय पेबुलोपकरण (Unifacial Pebble Tool) उत्तर भारत में ही नहीं, अपितु प्रायद्वीपीय भारत में भी अनेक स्थानों से उपलब्ध हुए हैं। गिद्दलूर में एकपक्षीय तथा उभयपक्षीय दोनों ही प्रकार के पेबुलोपकरण विद्यमान हैं। सौनदरराजन उनकी स्थानीय उत्पत्ति मानते हुए उन्हें दक्षिण के कोरोपकरण परम्परा से सम्बन्धित मानते हैं (सौन्दरराजन, के0वी0, पार्श्वोद्धरित, पृ0 60)। नागार्जुनि कोण्ड (सौन्दरराजन, के0वी0, 1958, पार्श्वोद्धरित, पृ0 58 तथा पृ0 62–63, फिग0 5) से भी सोहन जैसे एकपक्षीय तथा उभयपक्षीय पेबुलोपकरण मिले हैं। सोहन तथा मद्रास के इन उपकरणों में 'अतिशय पारस्परिक समानता' (Great mutual likeness) को स्वीकार करते हुए भी सौन्दरराजन दोनों को परस्पर भिन्न मानते हैं (वही )। यह मानने के लिए उनके पास कौन से कारण हैं, क्या आधार है, स्पष्ट नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि कृष्णस्वामी तथा सौन्दरराजन दोनों ही यह मानकर चलते हैं कि प्रथम क्लैक्टो–लेवालेवा परम्परा की तथा दूसरी अबेबीलियाँ–आशूलियाँ परम्परा की हैं। तथाकथित सोहन तथा मद्रासीय परम्पराओं को इस प्रकार के वर्गों में विभाजित करना नितान्त अनुचित प्रतीत होता है। हम यह देख चुके हैं कि प्राक्सोहन तथा आदि सोहन उद्योगों का प्रमुख अंग पेबुल पर बने उपकरण हैं। फलक, कम–से–कम आदि सोहन में, नगण्य हैं। जो फलक मिले हैं, वे सब उपकरण के रूप में प्रयुक्त हुए थे अथवा नहीं यह भी संदिग्ध है। इसी प्रकार मद्रासीय हैण्डैक्स परम्परा में प्रारम्भिक अवस्था में अधिकांश उपकरण यद्यपि कोर पर ही बने मिलते हैं, किन्तु विकसित प्रकार के उपकरण फलक पर भी मिलते हैं। क्लीवर, जो हैण्डैक्स परम्परा का एक प्रमुख उपकरण है, अधिकांशतया फलक पर ही बना मिलता है। कहने का केवल इतना ही तात्पर्य है कि उपकरण–परम्पराओं को इस प्रकार के वर्गों में विभाजित करना अनुचित है। कोर तथा फलक दोनों का निर्माण अन्योन्याश्रित है। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व अचिन्त्य है। अतः किसी भी उद्योग–स्थल (Factory Site) पर इन दोनों का मिलना स्वाभाविक है। यह भिन्न बात है कि स्थान–स्थान पर उपकरण बनाने के लिए एक या दूसरे का प्रयोग कम अथवा अधिक संख्या में हुआ हो। अतः इन्हें आवश्यकता से अधिक महत्व नहीं देना चाहिए। जहाँ तक आदि सोहन का प्रश्न है, उसे क्लैक्टो–लेवालेवा परम्परा के अन्तर्गत रखकर अलग करना अनुचित है। इसी प्रकार दोनों में समान तत्वों के होते हुए एक को देशज (दक्षिण भारतीय हैण्डैक्स परम्परा को सेन तथा सौन्दरराजन स्थानीय मानते हैं। कहना तथा दूसरे को विदेषी मानना भी तक्रसंगत नहीं प्रतीत होता है।

Scanned with OKEN Scanner

संसार में प्रायः सभी स्थानों पर निम्नतर स्तरों से पेबुलोपरकण प्राप्त हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन विश्व में उनका वह स्तर आधारभूत स्तर था (मोवियस, एच0एल0, 1944, पार्श्वोद्धरित, पृ0 104)। पेबुलोपरकणों का प्रीचनतम स्तरों से मिलना नितान्त स्वाभाविक प्रतीत होता है। नदियों की घाटियों में विचरण करते हुए आदि मानव को ये सबसे अधिक सुलभ रहे होगें। प्रारम्भ में मानव ने प्राकृतिक संघातों से टूटे हुए पेबुल तथा फलकों को ही उपकरण के रूप में प्रयोग किया होगा। कालान्तर में फलकों को निकालकर पेबुल को वांछित आकार का बनाना उसने सीखा होगा। अपने आदिरूप में विश्व के विभिन्न भागों से प्राप्त पेबुलोपकरणों में समानता का होना स्वाभाविक है। केवल इसी आधार पर यह कल्पना करना कि उपकरण परम्परा किसी स्थान विशेष से आई होगी, न तो आवश्यक है और न ही उचित। यदि हैण्डैक्सों की उत्पत्ति अफ्रीका तथा जावा (मोवियस, एच0एल0, 1944, पार्श्वोद्धरित, पृ0 113) में बाह्य प्रभाव के बिना स्वतः हो सकती है, तो कोई कारण नहीं कि तथा कथित सोहन प्रकार के उपकरणों की उत्पत्ति उत्तर पश्चिम भारत में तथा दक्षिण भारत में नहीं हो सकती हैं?

अफ्रीका के ओल्डुवाई गार्ज (Olduai Gorge) के उत्खननों से हैण्डैक्स के उद्‌भव तथा विकास पर समुचित प्रकाश पड़ा है। वहाँ के साक्ष्यों से स्पष्ट है कि हैण्डैक्स का विकास आदिम पेबुलोपकरणों से ही हुआ है। ओल्डुवाई के आधारिक स्तर के प्रथम तल (Basal level, bed I) से पिंगपांग गेद के आकार से लेकर क्रॉक्वेट गेंद के आकार तक के चॉपर मिले थे। इनमें एकपक्षीय तथा उभयपक्षीय दोनों ही प्रकार के उपकरण सम्मिलित थे। हैण्डैक्स सर्वप्रथम द्वितीय तल (Bed II) में मिले थे (क्लाक्र, ग्रेहम 1961, पार्श्वोद्धरित, पृ0 35)। उत्तर भारत में प्राक्सोहन तथा आदि सोहन स्तरों से तथा दक्षिण भारत में प्राक्हैण्डैक्स स्तर से, जो सोहन के वोल्डर कांग्लोमरेट स्तर के समकालीन है, भी ओल्डुवाई के आधारिक प्रथम तल (Bed I) के समान पेबुल उपकरण प्राप्त हुए हैं। साथ ही पेबुल पर बने ऐसे उपकरण प्राप्त हुए हैं जिनसे क्रमशः हैण्डैक्स के विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं की कल्पना की जा सकती है। इस सन्दर्भ में पन्ना के निकट केन नदी के किनारे वरियारपुर ('इण्डियन आर्क्यालजी – ए रिव्यू', 1957–58, पृ0 25–26 ) के सर्वेक्षण उल्लेखनीय है। वहाँ साधारण पेबुल उपकरणों से हैण्डैक्स के विकास तक की अवस्था के उपकरण प्राप्त हुए हैं। यहाँ यह उल्लेखनयी है कि सौन्दरराजन ने एकपक्षीय पेबुलोपकरणों से हैण्डैक्स की उत्पत्ति दिखाई है (सौन्दरराजन, के0 वी0, 1961, 'क्वाटर्नरी पेबुल, कोर ऐण्ड फ्लेक कल्चर्स ऑफ इण्डिया – ऐन अपरेजल ऑफ दि डाटा', एपेंडिक्स I तथा II , पृ0 81 – 84)। स्पष्टतया ये प्रमाण इन उपकरणों की स्वदेशी उत्पत्ति की ओर संकेत करते हैं।

ग्राहम क्लाक्र (1961) की धारणा है कि हैण्डैक्स परम्परा उत्तर–पश्चिम अफ्रीका से दक्षिण–पश्चिम यूरोप में फैली। एशिया में यह परम्परा मिस्र होकर आई तथा फारस की खाड़ी से होती हुई अरब सागर के उत्तरी तटवर्ती क्षेत्रों से भारत में इसका प्रवेश हुआ जहाँ उसका प्रसार प्रमुख रूप से नर्मदा के दक्षिण में हुआ। इनकी धारणा है कि सोहन क्षेत्र में पहले से वर्तमान चॉपर–चॉपिंग परम्परा को प्रभावित नहीं कर सकी (क्लाक्र, ग्राहम, 1961, पार्श्वोद्धरित, पृ0 37)। क्लाक्र महोदय की उपर्युक्त धारणाएँ तथ्यसंगत नहीं हैं। क्योंकि एक तो आदि सोहन और दक्षिण भारत के प्राचीनतम उपकरण समकालीन हैं, दूसरे यदि यह परम्परा मूल रूप से अफ्रीका में विकसित होकर भारत में आई, तो निश्चय ही इसको भारत तक पहुँचने में पर्याप्त समय लगा होगा। ऐसी स्थिति में दक्षिण भारत तथा अन्यत्र प्राक्हैण्डैक्स स्तर से जो आदिम उपकरण, मिलते हैं,

Scanned with OKEN Scanner

उन्हें सामान्यता नहीं मिलना चाहिए। सभी स्थानों पर निम्नतर स्तर से विकसित प्रस्तर–उपकरण मिलने चाहिए, किन्तु स्थिति इससे भिन्न है। प्रायः सभी स्थानों पर निम्नतर स्तर से आदिम पेबुलोपकरण कम अथवा अधिक संख्या में मिले हैं।

सभी तथ्यों तथा साक्ष्यों पर विचार करके इस निष्कर्ष पर पहुँचना अनुचित नहीं होगा कि उत्तर भारत की तथाकथित सोहन परम्परा तथा दक्षिण भारत की मद्रास हैण्डैक्स परम्परा दोनों ही के उत्पत्ति का मूलस्रोत एक ही है तथा दोनों ही देशज हैं। यह अन्य बात है कि कालान्तर में इनके विकास को विभिन्न परिस्थितियों ने प्रभावित किया। भारत के संदर्भ में यह अवश्य विचारणीय है कि यदि दोनों का ही विकास एक ही प्रकार के पेबुलोपकरणों से हुआ, तो वे कौन से कारण थे जिनके फलस्वरूप उत्तर–पश्चिम भारत में तथाकथित सोहन प्रकार के उपरकणों का विकास हुआ तथा दक्षिण भारत में हैण्डैक्सों का। प्रारम्भ में कुछ विद्वानों की धारणा थी कि पारिस्थितिकीय (Ecological) कारणों से दोनों क्षेत्रों में भिन्न प्रकार के उद्योगों का विकास हुआ था। किन्तु यह कारण बहुत तर्क्रपूर्ण नहीं प्रतीत होता है। आदि सोहन प्रकार के उपकरणों को किसी भी दृष्टि से विशिष्ट उपकरण (Specialized Tools) नहीं कहा जा सकता है। प्रारम्भिक हैण्डैक्सों के समान वे भी बहुउद्‌देशीय उपकरण थे। उपयोगिता के दृष्टिकोण से तथाकथित चॉपर–चॉपिंगोपकरण दोनों से ही खोदने, आत्मरक्षा एवं जानवरों के शरीर को आहत करने का कार्य समान रूप से लिया जा सकता है।

- प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि निम्न प्रातिनूतन काल के अन्त, अथवा मध्य प्रातिनूतन काल के प्रारम्भ में भारत में स्वतन्त्र रूप से उपकरण के निर्माण की परम्परा का विकास हुआ होगा। रेवात से प्राप्त तिथि इस सम्भावना को बल प्रदान करता है। सर्वप्रथम सभी स्थानों पर पेबुलोपकरणों–एकपक्षीय तथा उभयपक्षीय–का विकास हुआ। कालान्तर में अबेवीलियॉ तथा आशूलियॉ प्रकार के उपकरणों का विकास हुआ। गत् कुछेक दशकों में हुए अनुसंधानों ने भारतीय निम्नपुरापाषाण संस्कृति के स्वरूप में यथेष्ट परिवर्तन कर दिया है। डी टेरा तथा पेटरसन की *सभी अवधारणायें अमान्य होने के बाद निम्नपूर्वपाषाण काल की तथा कथित उत्तर–पश्चिम भारत की सोहन अथवा पेबुल–चापर चापिंग संस्कृति तथा दक्षिण भारत की हैण्डेएक्स क्लीवर परम्परा दोनों के लिए आश्यूल संस्कृति शब्द का ही प्रयोग करते हैं।*

# 7

# उत्तर–पश्चिम भारत की निम्नपूर्वपाषाण युगीन संस्कृतियाँ

कुछ समय पूर्व तक उत्तर–पश्चिम भारत में स्थित सिंधु तथा झेलम का मध्यवर्ती पुठवल क्षेत्र प्रस्तर युगीन संस्कृतियों की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण माना जाता था। येल–कैम्ब्रिज अभियान दल, जब 1935 में भारत आया तो उसने काश्मीर घाटी के हिमायनों तथा पुठवल क्षेत्र में प्रातिनूतन कालीन जमावों का अध्ययन किया तथा उनसे प्रतिवेदित पुरातात्विक सामग्री को परस्पर सम्बन्धित भी किया।

सोहन नदी की घाटी में उन्हें एक सांस्कृतिक अनुक्रम मिला, जिसका उल्लेख नीचे किया गया है :

## सोहन संस्कृति

(डीटेरा तथा पेटरसन के अनुसार)

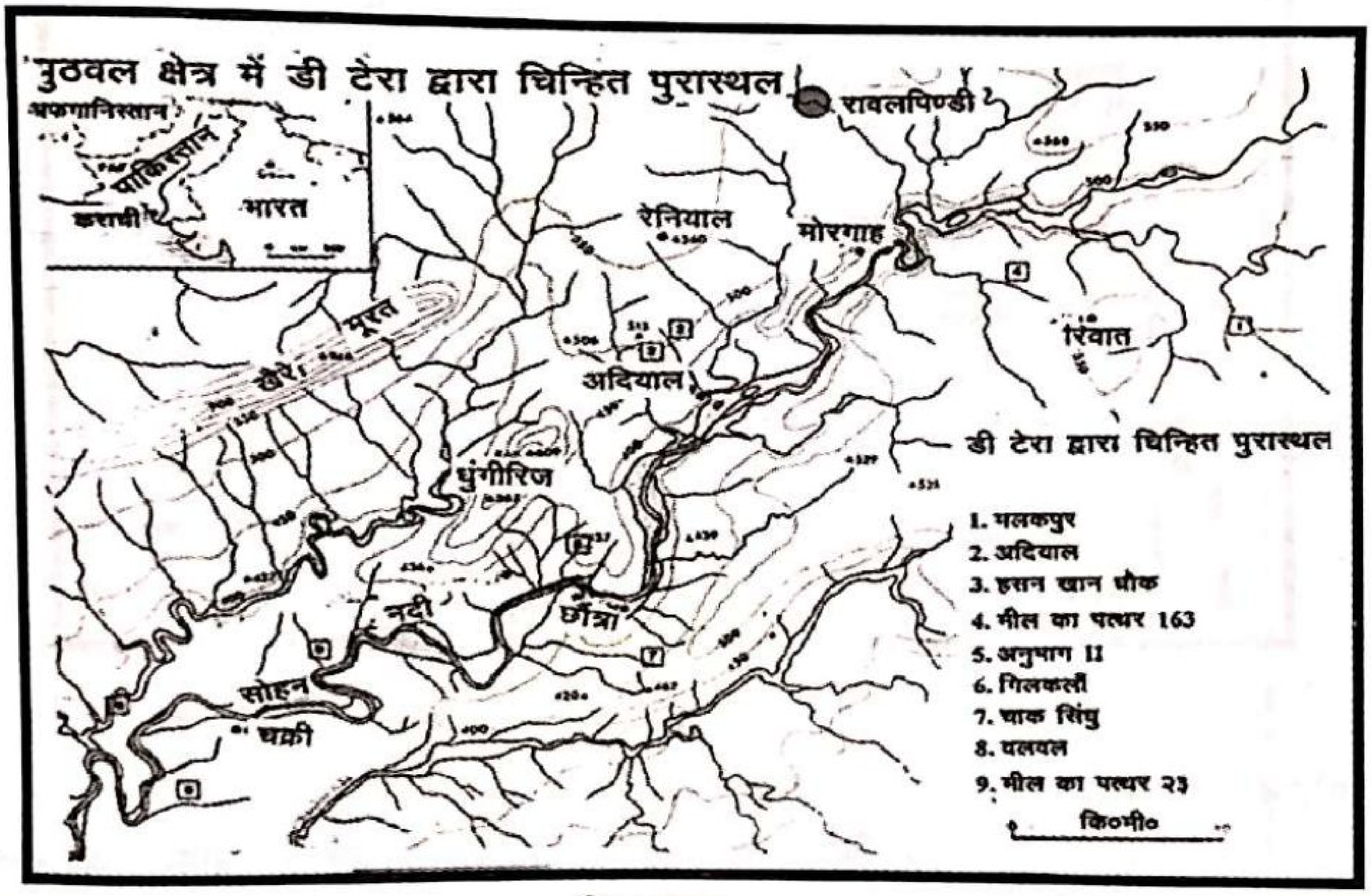


चित्र संख्या–3

सिंधु तथा झेलम का मध्यवर्ती क्षेत्र पुठवल क्षेत्र के नाम से जाना जाता है। इस क्षेत्र में सिंधु की सहायक नदी की वेदिकायें प्रस्तर युगीन संस्कृतियों की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इस क्षेत्र में ही सर्वप्रथम येल–कैम्ब्रिज अभियान (Yale-Cambridge Expedition) ने भू वैज्ञानिक स्तरों का पुरातात्विक सम्बन्ध स्थापित किया तथा सार्वभौमिक जलवायु सम्बन्धी परिवर्तनों से उन्हें सम्बन्धित भी किया।

Scanned with OKEN Scanner

सोहन नदी की घाटी में बोल्डर कांग्लोमरेट के अतिरिक्त डी टेरा तथा पेटरसन ने पाँच वेदिकाओं की पहचान की, जिससे प्राप्त उद्योगों को सोहन उद्योग की संज्ञा प्रदान की गई है। वे क्रमशः इस प्रकार है :

| | |
|---|---|
| प्राक् सोहन | (Pre Sohan) |
| आदि सोहन | (Early Sohan) |
| अन्तसोहन ब | (Late Sohan 'B') |
| अन्तसोहन अ | (Late Sohan'A') |
| विकसित सोहन | (Evolved Sohan) |

## प्राक् सोहन उद्योग

प्राक् सोहन उद्योग तथा सिंधु उद्योग बोल्डर कांग्लोमरेट स्तर से लगभग ग्यारह स्थलों से प्राप्त हुए थे। इस स्तर का निर्माण द्वितीय हिमकाल में हुआ था। उपकरण बेढंगे तथा घिसे हुए थे। उनके ऊपर कार्टेक्स मिलता है। फलकों पर आघात का अर्धशंकु सपाट है। पुनर्गठन के प्रमाण नहीं मिलते।

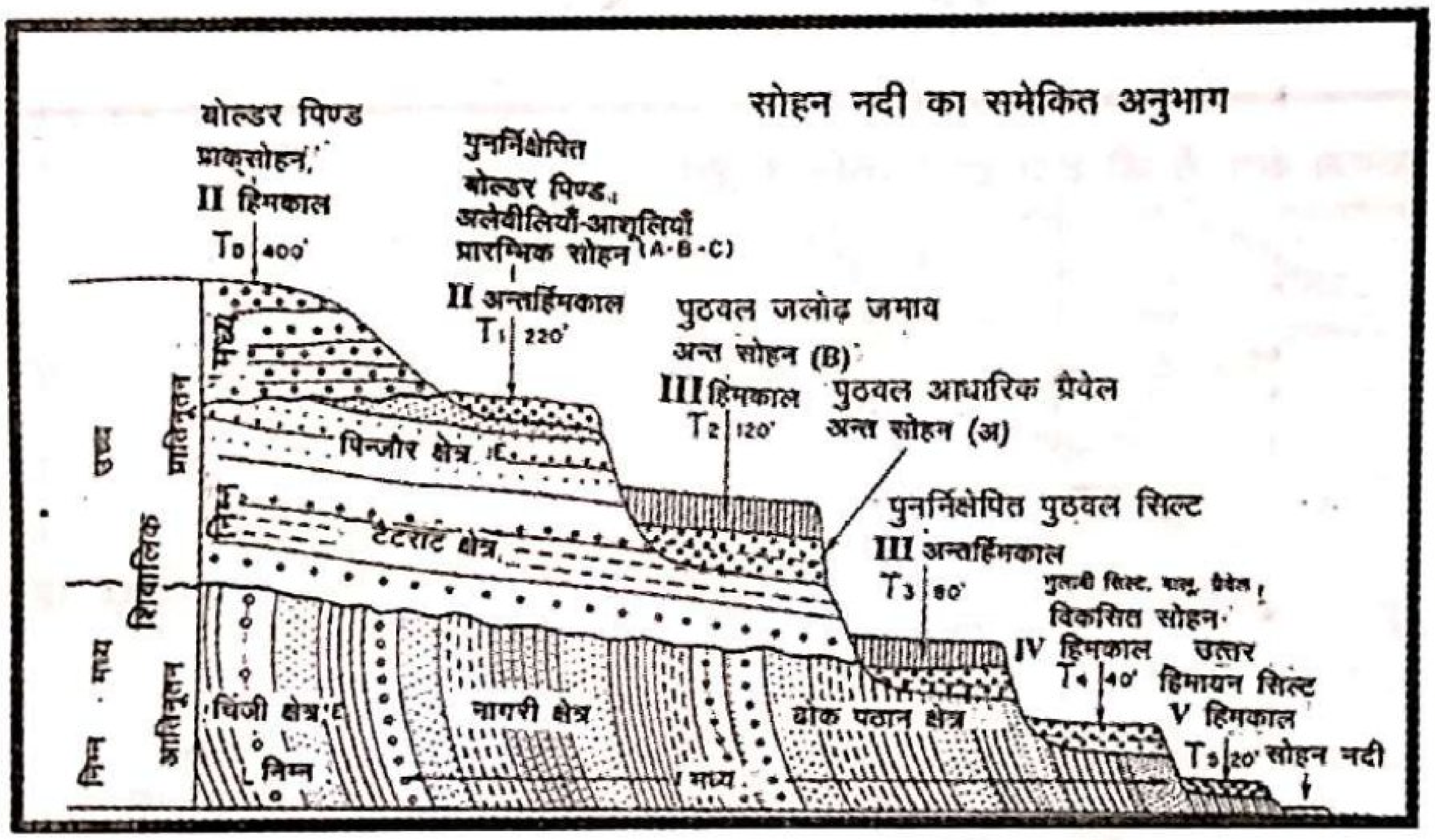


चित्र संख्या 4

## आदि सोहन उद्योग

आदि सोहन उद्योग सोहन तथा सिंधु नदियों की घाटियों में बोल्डर कांग्लोमरेट की सतह तथा प्रथम वेदिका से मिले थे। इनका निर्माण द्वितीय अन्तर्हिमकाल में हुआ था। इस उद्योग के अधिकांश उपकरण खण्डित क्वार्टजाइट पेबुल पर बने हैं।

आदि सोहन उपकरणों को तीन वर्गों 'अ', 'ब', 'स' में घिसावट तथा रासायनिक रंगाई – के आधार पर विभाजित किया गया है। 'अ' वर्ग के उपकरण अधिक घिसे तथा रासायनिक रंगयुक्त हैं। 'ब' तथा 'स' वर्ग के उपकरण क्रमशः क्रम घिसे हैं। इसके अतिरिक्त उपकरण उत्तरोत्तर आकार में छोटे तथा सुगढ होते जाते हैं। तीनों ही वर्गों में पेबुलोपकरण – चापर चापिंगोपरकण, कोर, प्रोटो

हैण्डऐक्स समान रूप से मिलते हैं।

सभी उपकरणों को पुनः दो वर्गों में विभाजित किया जाता है :

1. पेबुलोपकरण
2. फलक उपकरण

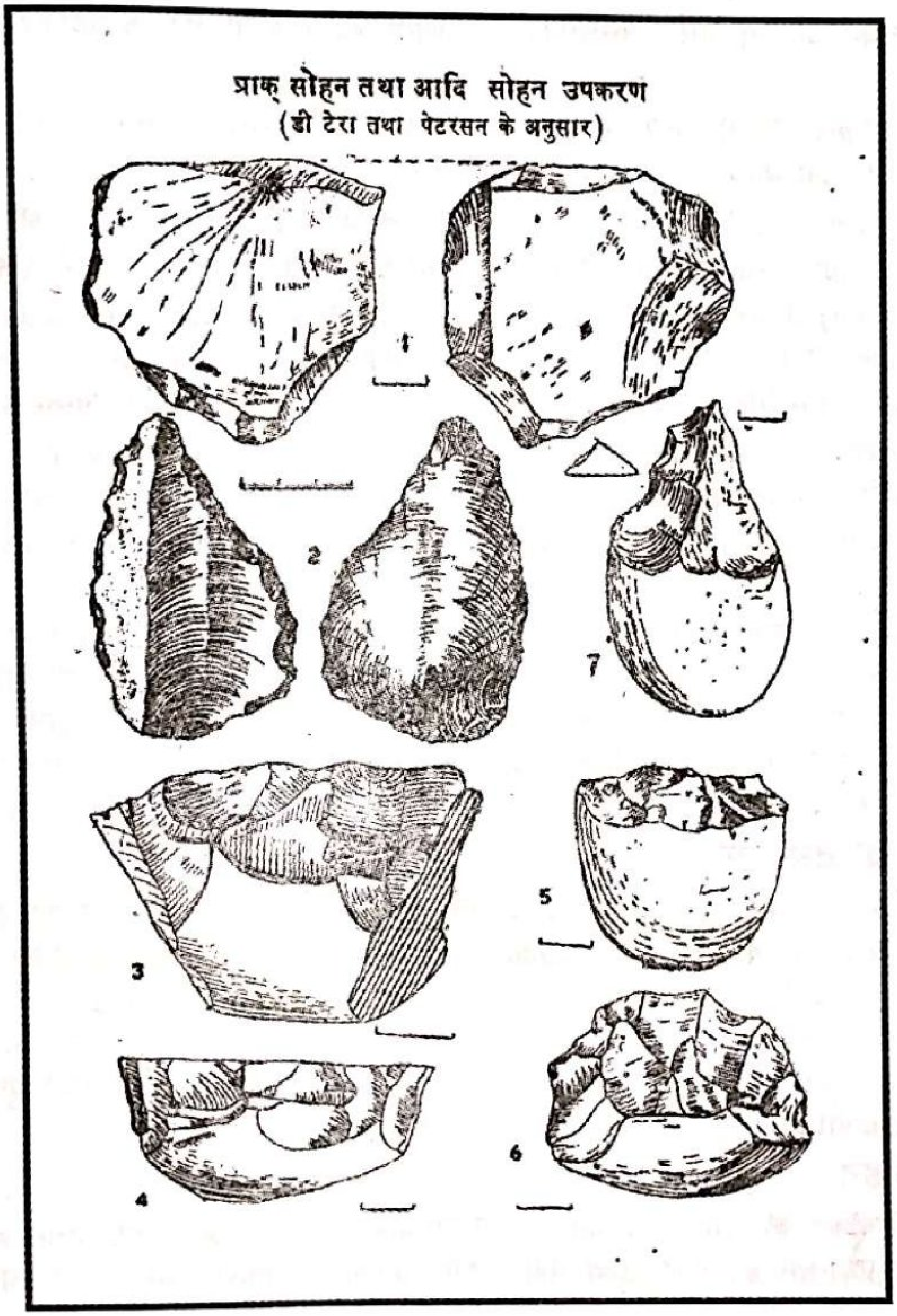


चित्र संख्या – 5

Scanned with OKEN Scanner

## पेबुलोपकरण :

इन्हें पुनः दो वर्गों में विभाजित करते हैं :

1. चिपटे आधार वाले पेबुलोपकरण
2. गोलाकार पेबुलोपकरण।

1. चिपटे आधार वाले उपकरणों में केवल चिपटे आधार से ऊपर की कोर फलक निकाले जाते हैं। उनका कार्यांग प्रायः उन्नतोदर – अथवा सीधा होता है। फलकीकरण एक ही पक्ष से होता है।

2. गोलाकार पेबुलोपकरण में फलक सतह से ही अधिकांशतया निकाले जाते हैं। इसमें नतोदर तथा नुकीला कार्यांग के उपकरण भी मिलते हैं।

उपर्युक्त दोनों वर्गों के उपकरणों को मोवियस ने चापर (Chopper) की संज्ञा प्रदान की है।

गोलाकार पेबुल उपकरणों में जिनमें फलकीकरण दोनों पक्षों से होता है उन्हें 'चापिंगोपकरण (Chopping Tool) कहते हैं। 'अ' तथा 'ब' वर्गों में फलक प्रायः क्लैक्टन (Clacton) परम्परा के हैं। अन्तरमात्रा इतना है कि 'ब' वर्ग के फलक तुलनात्मक दृष्टि से छोटे तथा सुडौल है। 'स' वर्ग में कुछ विकसित फलक मिलते हैं जिन्हें लेवा लेवा फलकों की कोटि में रखा जाता है।

डीटेरा तथा पेटरसन को इसी क्षेत्र से आदि सोहन परम्परा के समकालीन प्रथम वेदिका से हैण्डैक्स उपकरण रावलपिंडी के निकट कांग्लोमरेट से, जो Ti काल का है तथा छौन्तरा से तृतीय हिमकाल के जमाव से प्राप्त हुए थे। इनमें अबेवीलियाँ तथा आशूलियाँ हैण्डऐक्स मिश्रित रूप से मिले।

डीटेरा तथा पेटरसन प्राक् सोहन तथा आदि सोहन को परस्पर एक दूसरे से भिन्न मानते हैं। दोनों को अलग करने के लिए एक का नाम प्राक् सोहन तथा दूसरे का आदि सोहन रखा गया। कालान्तर में ड्रमण्ड तथा पेटरसन ने पुनः सोहन क्षेत्र में कार्य किया। उन्होंने दोनों में उत्पत्ति जनक सम्बन्ध बताया। इसीलिए उन्होंने प्राक् सोहन को निम्न सोहन 'अ' तथा आदि सोहन को निम्न सोहन ' ब' कहा।

## अन्तसोहन 'ब' तथा 'अ'

तृतीय हिमायन काल की द्वितीय वेदिका के आधारित ग्रैवेल से जो उपकरण डी टेरा को प्राप्त हुए थे उन्हें अन्त सोहन 'A' (Late Sohan 'A') कहा गया तथा लोएस के निचले बीस फीट के जमाव से जो उपकरण प्राप्त हुए थे उन्हें अन्त सोहन 'B' (Late Sohan'B') की संज्ञा प्रदान की गई। ये आदि सोहन ष्ब के उपकरणों से छोटे तथा सुडौल हैं और उन्हीं से विकसित हुए प्रतीत होते हैं। इनमें कच्छप कोर तथा लेवालेवा फलक भी हैं। इन्हें साधारणतया मध्य पुरापाषाण कालीन (Middle Palaeolithic) उपकरण परम्परा के अन्तर्गत रख सकते हैं।

## विकसित सोहन

चतुर्थ हिमकाल की चतुर्थ वेदिका से जो उपकरण समुदाय प्राप्त हुए उनमें ब्लेड पर निर्मित उपकरणों की प्रधानता है। इन्हें उच्च पुरा पाषाण कालीन उपकरण समुदाय के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

चतुर्थ वेदिका के निर्माण के साथ ही साथ प्रातिनूतन काल का अन्त हो जाता है।

Scanned with OKEN Scanner

## नवीन परिदृश्य : अन्य विद्वानों के कार्य

कालान्तर में इस क्षेत्र में अनेक विद्वानों यथा सेन (1955), मोहापात्रा (1975, 1980, 81), ग्रैजियोशी, डेविस (1986), तथा अनेक अन्य विद्वानों ने कार्य किया। इन विद्वानों के कार्यों के फलस्वरूप यह स्पष्ट हो गया कि इस क्षेत्र में आश्यूल परम्परा भी विकसित थी। यह कहना उचित नहीं है कि यहाँ पर केवल पेबुल–चापर– चापिंगोपकरण का विकास हुआ था। डेन्नेल तथा रेनडल (Dennel and Rendel) को झेलम की घाटी में जलालपुर तथा दीना (Jalalpur and Dina) से हैण्डैक्स मिले थे। यह कहना कठिन है कि क्यों कुछ स्थलों पर मात्र एक ही प्रकार के उपकरण मिले।

बींसवीं शती के आठवें दशक में ब्रिटिश पुरातात्विक मिशन ने शिवालिक क्षेत्र में कार्य किया तथा पूर्व मे किए गए कार्यों का भी मूल्यांकन किया। उनके अनुसार डीटेरा तथा पेटरसन के निष्कर्ष अब मान्य नहीं हो सकते। वे उनकी सोहनघाटी की वेदिका निर्माण प्रक्रिया से भी सहमत नहीं थे। उनके अनुसार इनके निर्माण में हिमालय के उद्विकास क्रिया का भी योगदान था। ब्रिटिश पुरातात्विक मिशन ने दक्षिण एशिया के निम्नपुरापाषाण युगीन संस्कृति के सम्बंध में विशेष योगदान दिया है। उन्होंने शिवालिक क्षेत्र में अनेक पुरास्थलों की पहचान की तथा वहाँ से प्राप्त उपकरणों की तिथि भी निर्धारित की, जिन्हें 700,000 से 4,00,000 वर्षों के मध्य रखा गया। रेवात से एक उपकरण जिस सन्दर्भ से प्राप्त हुआ था उसकी तिथि 19,0000 लाख (1.9m.yrs) निर्धारित की गई (डेन्नेल आदि, 1988 (A), (B)। इसके अतिरिक्त पब्बी पर्वतीय क्षेत्र (Pabbi Hills) से जीवाश्मों का संग्रह मिला था जिसे 1.2 से 2.6 लाख वर्ष के अन्तर्गत रख सकते हैं। इसी स्तर से प्राक् आश्यूलियन उपकरण उद्योग डेन्नेल को 1989 में प्राप्त हुए थे। ये पूर्वी अफ्रीका में ओमो नदी (Omo River) के सुंगारा जमाव से प्राप्त उपकरणों के अनुरूप है।

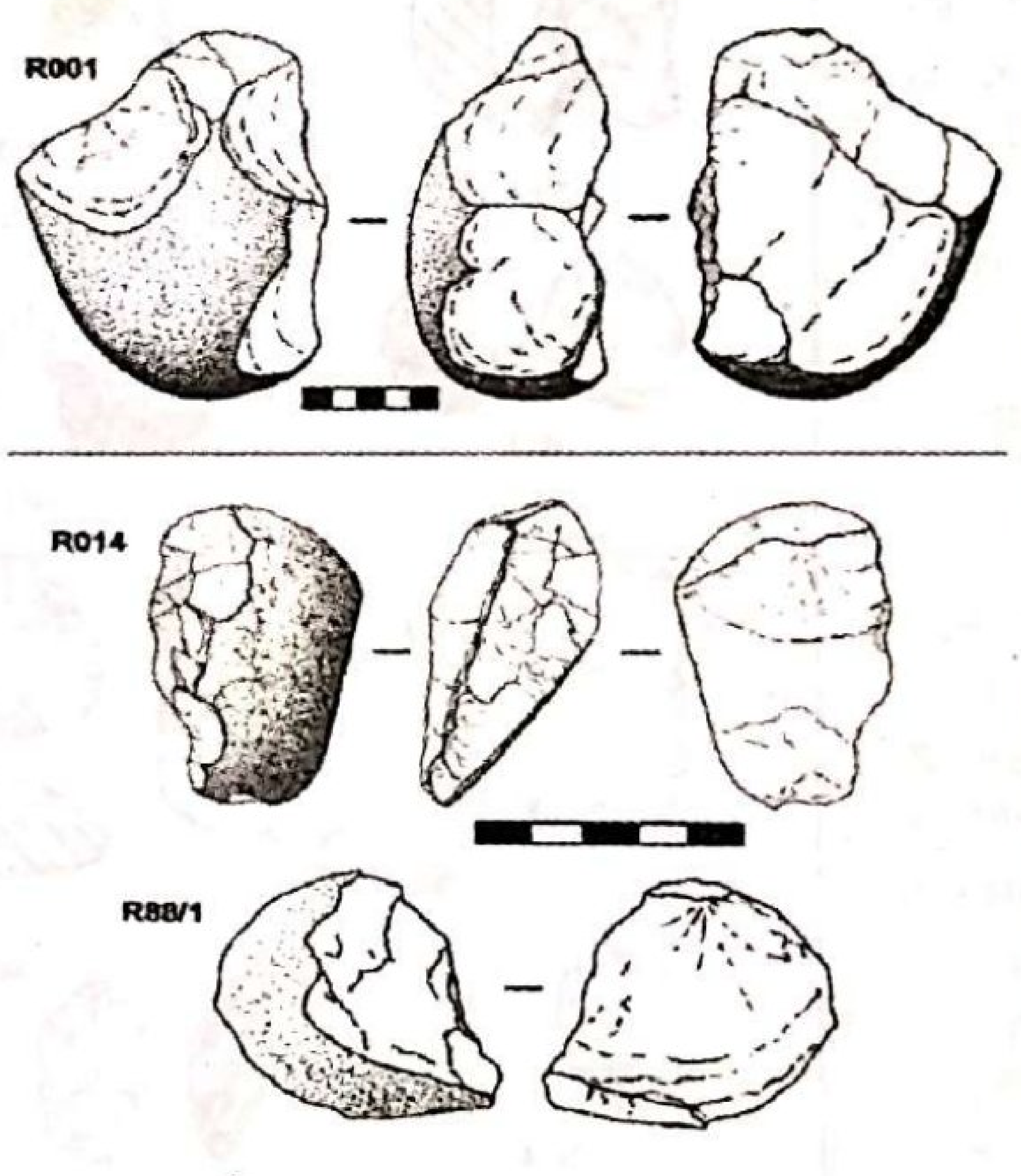


रेवातब्र से प्राप्त उपकरण लगभग 1.9m.वर्ष प्राचीन

चित्र सं0–6

इसकी भौगोलिक स्थिति भी लगभग उसी के अनुरूप है। सुंगारा जमाव (Sungara Deposit) से प्राप्त उपकरण चूँकि कूबीफोरा (Koobi Fora) के निकट है, अतः उन्हें संदिग्धता की श्रेणी में नहीं रखा गया है। अतः रेवात उपकरणों को भी संदिग्धता की श्रेणी से ऊपर रखना उचित होगा। मर्दान

Scanned with OKEN Scanner

के निकट संघावों (Sanghao) में एक पुरापाषाणयुगीन कन्दरा में उत्खनन किया गया था जिसमें बारहवे लेयर (12) से छठे लेयर (6) तक पुरा पाषाण युगीन उपकरण प्राप्त हुए थे। इसी प्रकार सिंधु घाटी में अलचिन ने पूर्वी पंजाब, हिमाँचल प्रदेश में ब्यास, बानगंगा तथा सिरसा घाटियों में बी0 बी0 लाल ने अनेक पुरापाषाण युगीन स्थलों की पहचान की थी। हिमाचल प्रदेश में नन्दुल (Nandul), कोफला (Kofla) आदि स्थलों से हैण्डऐक्स तथा क्लीवर मिले हैं।

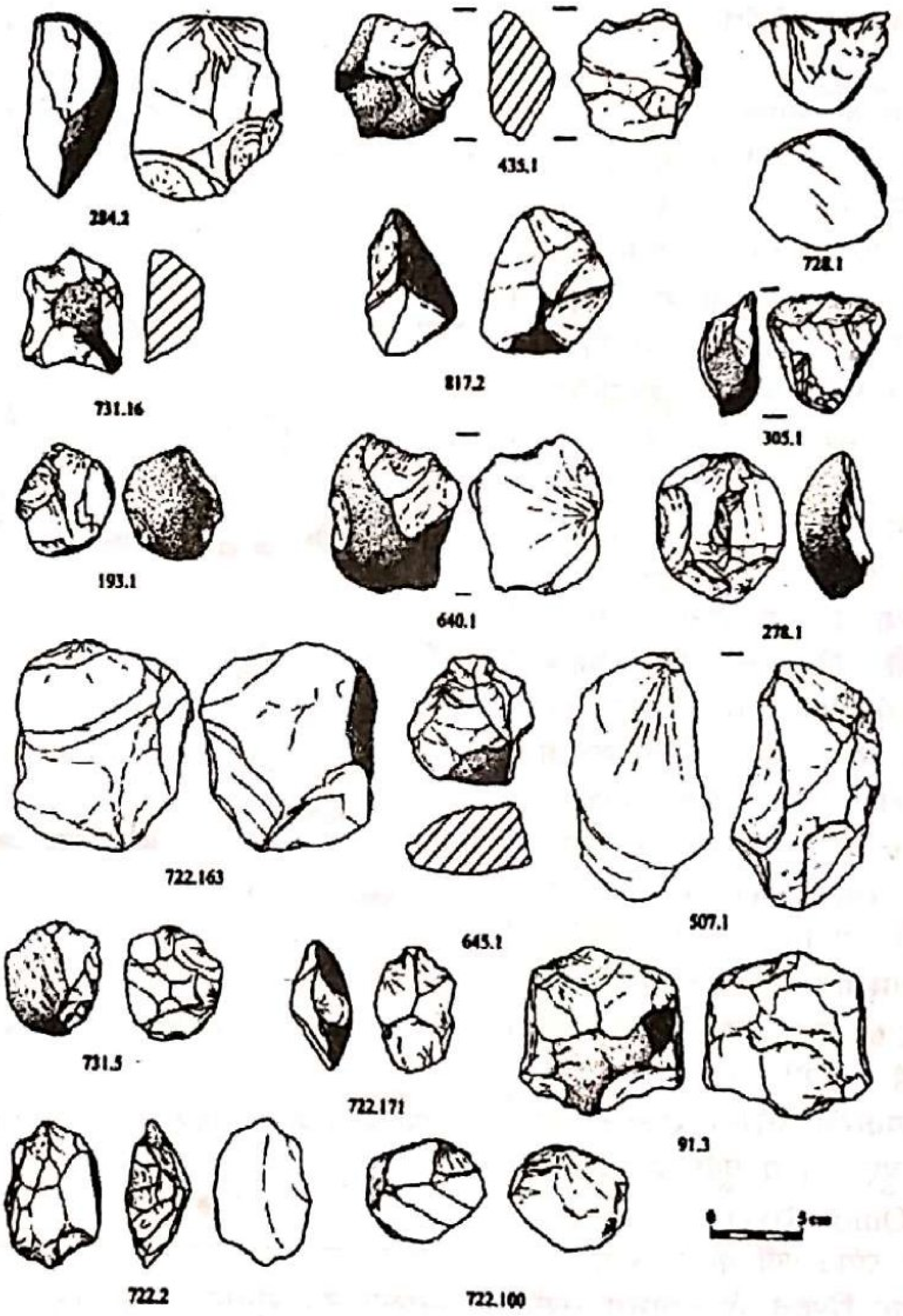


पब्बी पर्वतीय क्षेत्र से प्राप्त उपकरण 1.2 से 2.6 लाख वर्ष के अन्तर्गत

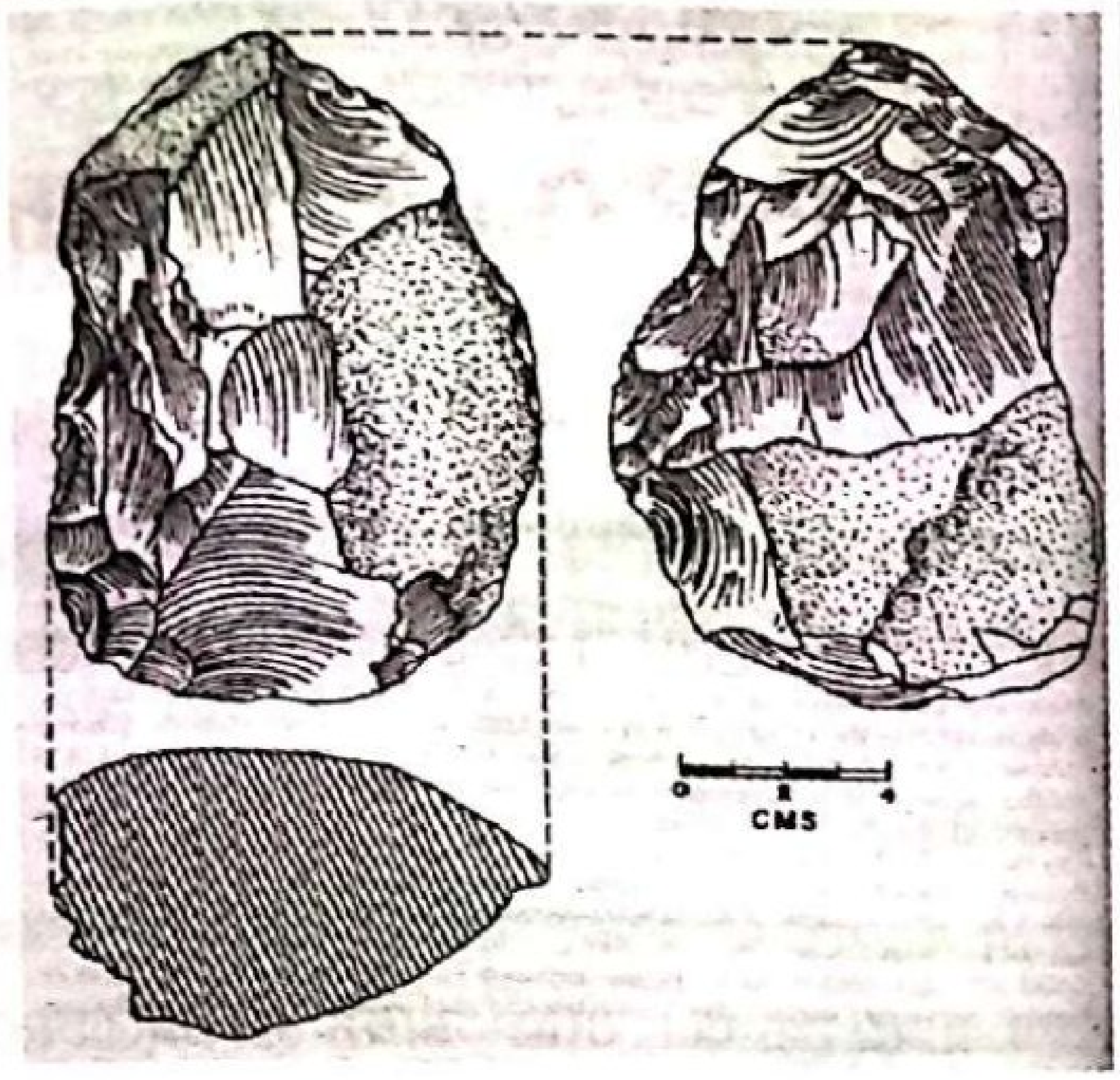


पहलगाव से प्राप्त हैण्डैक्स चित्र सं0–8

इस प्रकार से इसकी तिथि निम्न प्रातिनूतन काल की होगी। कालान्तर में सांकलिया तथा उनके सहयोगियों को पहलगाँव के निकट लिद्दार नदी के विभिन्न जमावों से लगभग 10 और उपकरण मिले थे।

उपर्युक्त क्षेत्रों के अतिरिक्त उत्तरवर्ती अन्य क्षेत्रों से भी पुरापाषाण युगीन उपकरण प्राप्त हुए हैं। 1969 में सांकलिया को पहलगांव (काश्मीर) में गोल मैदान के नीचे एक फलक तथा अनगढ़ हैण्डऐक्स मिले थे। ये लिद्दार नदी के वोल्डर कांग्लोमरेट जमाव से सम्बन्धित थे। इसे प्रायः द्वितीय हिमकाल का मानते हैं , किन्तु सांकलिया इसे प्रथम अन्तर्हिमकाल (Ist interglacial pd.) में रखते हैं। इस प्रकार से इसकी तिथि निम्न प्रातिनूतन काल की होगी। कालान्तर में सांकलिया तथा उनके सहयोगियों को पहलगाँव के निकट लिद्दार नदी के विभिन्न जमावों से लगभग 10 और उपकरण मिले थे।

अब साधारणतया उत्तर–पश्चिम भारत के पुरापाषाण युगीन संस्कृतियों को निम्नप्रातिनूतन काल में रख सकते हैं। उपर्युक्त साक्ष्यों के आधारपर हम अब स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि डीटेरा तथा पेटरसन ने जो तिथि बोल्डर काग्लोमरेट की दी थी वह सही नहीं थी।

यहाँ पर प्रकारान्तर से यह उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा कि सर्वप्रथम भारत में ही शिवालिक जमावों में एक मानव सदृश बानर के अवशेष प्राप्त हुए थे, जिसे रामापिथिकस की संज्ञा प्रदान की गई थी। कालान्तर में चीन, केनिया आदि से भी इसी प्रकार के जीवाश्मित अवशेष मिले। इनको मानव विकास का प्रथम चरण कह सकते हैं। खेद का विषय है कि इसके बाद मानव वंशियों की कोई भी श्रृंखला भारत में नहीं मिली। 1982 में मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले में हथनोरा नामक स्थान से होमोएरेक्टस मानव की एक खोपड़ी सोनकिया को मिली है (इसका उल्लेख आगे किया गया है)। रेवात क्षेत्र मे ओल्डोवन प्रकार के प्राक् आश्यूल सांस्कृतिक अवशेषों के आधार पर अब इस बात की सम्भावना को निर्मूल नहीं कहा जा सकता कि दक्षिण आफ्रीका के समान दक्षिण एशिया भी मानव–जन्मस्थली का एक केन्द्र रहा होगा। भारत की विशिष्ट स्थिति इस सम्भावना को बलवती बनाती है। सघन सर्वेक्षण से इस सम्बन्ध में और प्रकाश पड़ने की सम्भावना है।

Scanned with OKEN Scanner

# 8

# पूर्वी पंजाब (East Punjab)

## व्यास बानगंगा घाटी (Beas- Banganga Valley)

सोहन क्षेत्र के अतिरिक्त पंजाब में सिरसा (सेन, डी0 1955, 'नलगढ़ पेलियो लिथिक कल्चर' मैन इन इण्डिया, वाल्यू0 35,पृष्ठ 177–84) तथा व्यास–बानगंगा (लाल, बी0 बी0, 1956, पेलियोलिथ्स फॉम दि व्यास ऐण्ड बानगंगा वैली, पंजाब, ए0 इ0 नं0 12, पृष्ठ 59–92) की घाटियों में निम्न पुरापाषाणकालीन संस्कृतियों के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं।

ओलफ प्रुफर (Olaf Prufer) को सिरसा की घाटी में नलगढ़ के निकट नदी के दाहिने तट पर सोहन शैली के निम्न पुरापाषाणकालीन प्रस्तर उपकरण प्राप्त हुए थे। उनके आग्रह पर कलकत्ता विश्वविद्यालय के धरणी सेन ने भी उन उद्योग–स्थलों का सर्वेक्षण किया।

सिरसा की घाटी में सेन के अनुसार तीन वेदिकाएँ (Terraces) स्पष्ट रूप से देखी जा सकती हैं, जो पानी की सतह से क्रमशः 70, 40 तथा 10 फीट की ऊँचाई पर स्थित हैं। इनमें से प्रथम दो विदिकाओं से उन्हें उपकरण भी प्राप्त हुए। प्रथम वेदिका पर सीमेण्टेड ग्रैवेल (Cemented Gravel) विद्यमान हैं। प्रथम तथा द्वितीय वेदिका से संकलित उपकरणों में कोई प्रारूपात्मक (Typological) परिवर्तन नहीं दृष्टिगोचर होता है। उपकरण हल्के रंग के क्वार्टजाइट के बने हैं। उनमें पेबुल उपकरण तथा फलक उपकरण दोनों ही सम्मिलित हैं। पेबुलोपकरण गोलाकार पेबुल पर बने हैं जिनमें चॉपर (Chopper) तथा स्क्रेपर (Scraper) सम्मिलित हैं। सोहन उपकरणों के समान, फलक पेबुल के गोलाकार सतह से निकाले गए हैं। यहाँ से प्राप्त चॉपर विशेष उल्लेखनीय हैं, क्योंकि उन पर दो तरफा एकान्तर फलकीकरण (Two directional alternate flaking) के प्रमाण मिलते हैं। सोहन घाटी के आदि सोहन परम्परा के उपरकरणों में इस प्रकार का फलकीकरण नगण्य है। स्क्रेपरों पर अवश्य एक ही तरफ से फलकीकरण मिलता है।

नलगढ़ के उपकरणों की तिथि के संबंध में कुछ भी स्पष्ट रूप से कहना सम्भव नहीं है। प्ररूपात्मक आधारों पर उसे आदि सोहन के समकालीन रखा जाना चाहिए। व्यास–बाणगंगा की घाटी में पंजाब के कांगड़ा जिले में लाल के सर्वेक्षणों के फलस्वरूप 1955 में तथाकथित सोहन परम्परा के चार उद्योग स्थल गुलेर, देहरा, धलियारा तथा कॉगड़ा–प्रकाश में आए।

## गुलेर (Guler)

गुलेर कॉगड़ा–पाठनकोट मार्ग पर कॉगड़ा से लगभग 14 मील की दूरी पर बाणगंगा के दाहिने तट पर स्थित है। गुलेर के निकट बाणगंगा पर पॉच वेदिकॉए हैं, जो क्रमशः 566 फीट (T1), 375 फीट (T2), 150 फीट (T3), 90 फीट (T4) तथा 30 फीट (T5) पर स्थित हैं।

उन्हें प्रथम वेदिका से छः, द्वितीय से अठारह तथा तृतीय से दस उपकरण प्राप्त हुए थे।

Scanned with OKEN Scanner

तकनीक के दृष्टिकोण से T2 के उपकरण T1 के उपकरणो से अधिक सुघड़ हैं। प्रारूपात्मक दृष्टि से इस वेदिका के उपरकणों में पेबुल–हैण्डैक्स तथा आद्य–लेवालेवा (Proto-Levalloisian) प्रकार के फलक भी मिलते हैं। गुलेर से संकलित प्रायः सभी उपकरण क्वार्टजाईट के विविध आकारों के पेबुल अथवा पेबुल–फलकों के बने थे। चिपटे आधार के पेबुल प्रायः उपकरण के लिए चुने गये थे। इस प्रकार के पेबुल सम्भवतः एकपक्षीय फलकीकरण (Unifacial flaking) के लिए अधिक उपयुक्त थे। उभयपक्षीय चॉपिंगोपकरण (Bifacial Chopping Tool) यहाँ पर अपेक्षाकृत कम हैं।

सभी उपकरणों तथा फलकों को छः भागों में बॉटा गया है:–

(अ) एकपक्षीय चॉपर (Unifacial Chopper)

(ब) उभयपक्षीय चॉपिंगोपकरण (Bifacial Chopping Tool)

(स) पेबुल हैण्डैक्स (Pebble- Handaxe)

(द) हैण्डैक्स ( Handaxe )

(इ) कोर (Core)

(फ) फलक (Flake)

'अ– वर्ग के अन्तर्गत अण्डाकार चिपटे आधार के पेबुल पर निर्मित एकपक्षीय उपकरणों की गणना की गयी है। पेबुल के आकार तथा कार्यांग के विस्तार के आधार पर इसे लाल ने चार उपवर्गो में विभाजित किया है।

'ब' वर्ग के उपकरण प्रायः गोलाकार पेबुल पर बने हैं। इस प्रकार के पेबुलों पर तीक्ष्ण कार्यांग बनाने के लिए उभयपक्षीय फलकीकरण आवश्यक था। इसके लिए प्रायः एकान्तर फलकीकरण प्रविधि का उपयोग किया गया है। कार्यांग के आधार पर इसे भी दो उपवर्गो में विभाजित किया गया है।

'स' वर्ग के उपकरण प्रायः चिपटे आधार के अंडाकार पेबुल पर बने हैं। फलकीकरण प्रायः दो पार्श्वो से इस प्रकार किया जाता है कि एक नुकीला कार्यांग बन जाता है। दोनो पार्श्वो से फलकीकरण के कारण बीच में एक मध्यवर्ती कटक (Medial Ridge) बन जाता है। देखने में यह उपकरण हैण्डैक्स के समान लगता है।

'द; वर्ग के अनतर्गत उभयपक्षीय हैण्डैक्स (Bifacial Handaxe) आते हैं। इसमें अबेवीलियॉ तथा आशूलियॉ दोनो ही प्रकार सम्मिलित हैं। इस वर्ग के केवल दो संदिग्ध उपकरण प्राप्त हुए थे।

'ई' वर्ग में अधिकांशतया वृत्ताकार कोर हैं। जिनमें फलक प्रायः दोनो ही पक्षों से पूरी परिधि से निकाले गए हैं। बहुतों में एक ही पक्ष पर फलकीकरण हुआ हैं कुछ पर कॉर्टेक्स (Cortex) है। कुछ के किनारों पर प्रयोग के चिन्ह भी मिलते हैं जिससे अनुमान किया जाता है कि उनका प्रयोग उपकरण के रूप में हुआ है।

'फ' वर्ग में फलकों का वर्गीकरण चार उपवर्गो में किया गया है। प्रथम तथा द्वितीय उपवर्गो के फलक क्लैक्टोनियन (Clactonian) प्रकार के हैं जिनमें से केवल एक पर पुनर्गढ़न (Retouching) अथवा प्रयोग के चिन्ह (Use mark) मिलते हैं। तीसरे तथा चौथे वर्ग में आद्य–लेवालेवा (Proto-Levalloisian) प्रकार के फलक हैं जिनमें उनके स्वरूप के आधार पर अन्तर किया गया है।

Scanned with OKEN Scanner

**देहरा (Dehra)**

कॉंगड़ा से दक्षिण–पूर्व में कॉंगड़ा–होशियारपुर सड़क जहॉं व्यास नदी को पार करती हैं, देहरा की बस्ती है। लाल के अनुसार यहॉं पर कम से कम चार वेदिकायें है। यहॉं से चौदह उपकरण प्राप्त हुए थे जिनमें से दस चॉपर (Chopper) हैं तथा क्लैक्टोनियन फलक (Clactonian Flake) की श्रेणी के है। कोई हैण्डैक्स अथवा पेबुल–हैण्डैक्स यहॉं से नहीं प्राप्त हुआ था।

**धलियारा (Dhaliar)**

देहरा से धलियारा होशियारपुर की दिशा में लगभग चार मील की दूरी पर स्थित है। यहॉं से चार चॉपर तथा एक पेबुल–हैण्डैक्स प्राप्त हुआ था।

**कॉंगड़ा (Kangra)**

यह कॉंगड़ा जिले में इसी नाम की बस्ती हैं। यहॉं पर पाताल गंगा तथा बाणगंगा का संगम है। बाणगंगा की घाटी में, लाल को एक पेबुल हैण्डैक्स प्राप्त हुआ था।

सारांश में व्यास–बाणगंगा की पूर्व पाषाणकालीन प्रस्तर–संस्कृति में चॉपर चॉपिंगोपोकरणो का बाहुल्य है। इनके अतिरिक्त उनसे संबन्धित कोर तथा फलक भी मिले हैं।

Scanned with OKEN Scanner

# 9

# उत्तर प्रदेश ( Uttar Pradesh )

उत्तर प्रदेश भारत के विशालतम प्रान्तों में से एक था। 8, नवम्बर 2002 में इसके उत्तरी भाग से 53483 वर्ग किलो० मी० काटकर उत्तराखण्ड प्रान्त बना दिया गया। इसके उत्तर–पश्चिम में हिमांचल प्रदेश, पश्चिम में हरियाणा, राजस्थान, दक्षिण में मध्य प्रदेश तथा छत्तीसगढ़ और दक्षिण–पूर्व में झार खण्ड तथा पूर्व में बिहार प्रदेश स्थित हैं। भौगोलिक दृष्टि से सम्पूर्ण प्रदेश को चार प्राकृतिक भागों – 1, उत्तर का पर्वतीय प्रदेश, 2. तराई का प्रदेश, 3. गंगा यमुना से सिंचित मैदानी इलाका तथा 4. विंध्य का पठारी प्रदेश– में विभाजित किया जा सकता है।

निम्न पुरापाषाणकाल के अध्ययन की दृष्टि से उत्तर प्रदेश में गंगा तथा यमुना के दक्षिण का प्रदेश विशेषतः जो दक्षिण इलाहाबाद तथा मिर्जापुर जिलों के अन्तर्गत है, विशेष उल्लेखनीय है। भारत में प्रागैतिहासिक अध्ययन के उषःकाल से ही मिर्जापुर ने विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया है। मिर्जापुर की सिंगरौली बेसिन से सर्वप्रथम कॉकर्बन ( काँकबर्न, जे0, 1888, ऑन पेलियोलिथिक एम्पलीमेण्ट्स फ्रॉम दि ड्रिफट ग्रैवेल्स ऑव दि सिंगरौली बेसिन, साउथ मिर्जापुर, ज0 रा0ए0 ई0 वाल्यू0 **XVII,** पृ0 57–65) को प्रस्तर–उपकरण प्राप्त हुए थे। कालान्तर (1935) में डी टेरा ने भी मिर्जापुर की विशिष्ट स्थिति के प्रति संकेत किया था। उत्तर भारत के हिमायित तथा दक्षिण भारत के अतिवर्षा वाले प्रदेशों के बीच में स्थित होने के कारण यह आशा की जाती थी कि यहां पर प्राप्त साक्ष्यों से उत्तरी तथा दक्षिणी भारत के उद्योगों तथा भू–वैज्ञानिक स्तरों के सम्बंधीकरण में सहायता मिलेगी।

1949 ई0 में ज्वाएनर महोदय की अध्यक्षता में अखिल भारतीय प्रागैतिहासिक सर्वेक्षण अभियान ( Pan- Indian Prehistoric Exploratory Expedition) ने मिर्जापुर के सिंगरौली क्षेत्र को भी विशेष अध्ययन के लिए चुना। इस अभियान (इसमें इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रो0 जी0आर0शर्मा तथा भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण के वी0डी0 कृष्णस्वामी ने भी भाग लिया था। बाद में कृष्णस्वामी तथा सौन्दरराजन ने उसकी रिपोर्ट लिखी) मे काकँबर्न द्वारा अन्वेषित प्राचीन उद्योग–स्थल (सिंगरौली बेसिन) को बलिया नदी पर हिनौती के दूसरी ओर पुनः खोज निकाला।

प्रस्तुत लेखक ने अपने शोध–प्रबन्ध (वर्मा, आर0के0, 1964, 'दि स्टीन एज कल्चर्स ऑव मिर्जापुर', थीसिस, इलाहाबाद विश्वविद्यालय ) के सन्दर्भ में मिर्जापुर के सभी क्षेत्रों का पुनः सर्वेक्षण किया।

## मिर्जापुर तथा सोनभद्र

मिर्जापुर उत्तर प्रदेश के दक्षिणवर्ती जिलों में से एक है। इसमें से राबर्टसंगज घोरावल तथा दुद्धी को मिलाकर एक नया जिला **सोनभद्र** बना दिया गया है। यह विंध्य तथा कैमूर की

Scanned with OKEN Scanner

पहाणियों के मध्य स्थित है। अपनी विशेष स्थिति के कारण यह चार प्रान्तों –मध्य प्रदेश, छत्तीस गढ़, झारखण्ड तथा बिहार से घिरा है।

सोन नदी पश्चिम से पूर्व बहती है तथा रिहण्ड उत्तर में।

**लेखुनिया तथा पंचमुखी चित्रित शैलाश्रय अब सोनभद्र में आते हैं। आगे सोनभद को अविभाजित मिर्जापुर में ही रखा गया है।**

मिर्जापुर के उत्तर–पूर्व में वाराणसी, दक्षिण में **सोनभद्र** तथा उत्तर–पश्चिम में इलाहाबाद है। यहाँ पर गंगा विंध्य् पर्वतमाला से मिलती है।

भू आकृति विज्ञान के आधार पर इसे तीन प्रमुख भागों में विभाजित किया गया है –1, गंगा घाटी, 2 विध्य पठार तथा सोन घाटी, 3, सोनपार, यह भाग अब **सोनभद्र में आता हैं**।

निम्न पुरापाषाणकालीन उद्योगों के दृष्टिकोण से मिर्जापुर का मध्य तथा दक्षिणवर्ती प्रदेश सबसे महत्वपूर्ण है। मध्यवर्ती क्षेत्र की प्रमुख नदी, बेलन है, यह राबर्ट्संगज के पूर्व में विजयगढ़ से निकलकर इलाहाबाद में बहती हुई टोंस नदी से मिलती है, जो स्वयं गंगा की सहायक है। सोनपार तीन भागों में विभाजित है – कोन घाटी, दुद्धी घाटी तथा सिंगरौली बेसिन। इस क्षेत्र की सबसे प्रमुख नदियाँ सोन तथा रिहन्द है। इनके अतिरिक्त अन्य उल्लेखनीय नदियां दुद्धी क्षेत्र में कनहर तथा मलिया, कोन में पाण्डु तथा सिंगरौली में बलिया नदी है।

कांकबर्न के प्राचीन उद्योग – स्थल के अतिरिक्त निम्न पुरापाषाणकाल के अन्य महत्वपूर्ण उद्योग – स्थल सिंगरौली बेसिन में गहरवार गांव के निकट रिहन्द नदी पर, दुद्धी में थेमा तथा मलिया नदी पर, चोपन के निकट सोन नदी के किनारे स्थित हैं। यहां की प्रायः सभी नदियों के जमावों में दो अथवा तीन ग्रेवेल मिलते हैं, जिनमें प्रथम ग्रैवेल में जिसे नदियों के प्रथम उच्चयन काल (FirstAggradational Phase) से सम्बन्धित किया जाता है, निम्न पुरापाषाण काल के उपकरण मिले हैं। प्रायः सभी नदियों में निम्न अथवा प्रथम ग्रैवेल बड़े पेबुल, मोटी बालू तथा पत्थरों से निर्मित है, जो सिमेण्टेड ( Cemented) अथवा बिना सिमेण्टेड स्थितियों में मिलते हैं। जहां पर ग्रैवेल सिमेण्टेड नहीं है, वहां उपकरण नदी की घाटी में बिखरे हुए भी मिलते हैं। स्थान–स्थान पर इनकी मोटाई चार–पांच फीट तक है। इस ग्रैवेल के ऊपर की सिल्ट से प्रायः कुछ नहीं मिला है। दूसरा ग्रेवेल अपेक्षाकृत छोटे पत्थरों तथा महीन बालू का बना है तथा उसमें प्रथम ग्रैवेल से भिन्न प्रकार के उपकरण मिलते है।

मिर्जापुर के निम्न पुरापाषाणकालीन प्रस्तर उद्योग को मिश्रित उद्योग कहा जा सकता है। यहां पर तथाकथित सोहन परम्परा के पेबुलोपकरण तथा मद्रासीय परम्परा के हैण्डैक्स दोनों ही मिलते हैं। हैण्डैक्स–क्लीवर की अपेक्षा सोहन पेबुलोपकरणों की संख्या नगण्य कहीं जा सकती है। अन्य

स्थानों के समान अविकसित तथा विकसित दोनों ही प्रकार के उपकरण मिश्रित रूप से मिलते हैं। उपकरणों को बनाने के लिए क्वार्टजाइट का प्रयोग बहुतायत से किया गया है, किन्तु, इनके अतिरिक्त अच्छे प्रकार के सैण्ड स्टोन ( Sand Stone), डोलेराइट ( Dolerite), चर्ट (Chert) आदि का भी प्रयोग प्रायः किया गया है। ये सब पत्थर मिर्जापुर के विभिन्न क्षेत्रों में सुलभ है।

उपकरणों के निर्माण के लिए कोर तथा फलक दोनों का ही प्रयोग मिलता है। किन्तु फलक पर बने उपकरणों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक है। फलक विभिन्नाकारों के हैं। उनमें से अधिकांश फलकों के आधार–स्थल तथा फलक–तल के कोण विषम है, जो $100^0$ से $125^0$ के बीच घटते–बढते रहते है। आघात का अंर्धशंकु उभरा हुआ (Prominent) प्रतीत होता है। इन्हें क्लैक्टोनिया प्रकार के फलकों की कोटि में रखा जा सकता है। निम्न पूर्वपाषाणकाल में ये लोग सम्भवतः लेबालेवा तकनीक से अपरिचित थे, क्योंकि इस प्रकार का कोई भी फलक अथवा कोर प्राप्त नहीं हुआ है।

आशूलियाँ प्रकार के हैण्डैक्स पर, जो फलक चिन्ह मिलते है, उनसे अनुमान किया जाता है कि ये कोमल हथैड़ा पद्धति ( Soft Hammer technique ) से भी परिचित थे। उपकरणों के ऊपर प्रायः पुनर्गढ़न नहीं मिलता है।

## सिंगरौली बेसिन ( Singrauli Basin)

सिंगरौली बेसिन का अधिकांश भाग रिहन्द डैम के निर्माण के बाद जलमग्न हो गया है। हिनौती के निकट बलिया नदी के दक्षिण तट पर कॉकबर्न का निम्न पुरापाषाणकालीन उद्योग–स्थल स्थित है। यह नदी मिर्जापुर तथा रींवा के मध्य सीमा निर्धारित करती है। हिनौती के निकट कृष्णस्वामी आदि को बलिया नदी पर जमावों का निम्नलिखित क्रम मिला था।

सतही खाद–मिटटी ( Surface humus) के नीचे पीले रंग की गाद मिटटी तथा कंकड का लगभग पांच फिट मोटा जमाव था। इसके नीचे 3 फिट मोटा पेबुल का जमाव, जिसमें कंकड़ भी मिश्रित थे, मिलता है। इस जमाव से उपकरण भी प्राप्त हुए थे। इसके नीचे उन्हें बालू तथा कंकड़ का लगभग तीन फीट मोटा स्तर मिला, जो टालचीर ( Talchir) पर आश्रित था। कुछ उपकरण नदी अनुभाग ( Section) के पेबुल–जमाव से 'In-situ' निकाले गए थे, किन्तु अधिकांश उपकरणों का संग्रह बिखरे हुए ग्रैवेल से रींवा की सीमा से किया गया था। केवल तीन उपकरणों को छोडकर जो दूधिया वेन क्वार्ट्ज (Vein Quartz) पर बने हैं शेष सभी क्वार्टजाइट ( Quartizite) के हैं। संग्रहीत उपकरणों में अधिकांश ( 42-7%) हैण्डैक्स तथा क्लीवर तथा थोड़े से ( 15.5%) उपकरण तथाकथित सोहन प्रकार के है। इनके अतिरिक्त काफी संख्या में कोर, फलक आदि भी हैं। फलकों में आद्य लेवालेवा (Proto-levallosian) प्रकार के फलक भी हैं, जो सम्पूर्ण संग्रह के 18% है। इनके अतिरिक्त फलकित आघात–स्थल ( Faceted Platform) के लेवालेवा फलक लगभग 7% है।

**विभिन्न प्रकार के उपकरणों का प्रतिशत निम्न तालिका सं0 2 में दिया गया है**

| | |
|---|---|
| चापर–चापिंगोपकरण | 15.5 % |
| आद्य–हैण्डैक्स | 0.9% |
| हैण्डैक्स | 34.5% |
| क्लीवर | 8.2% |
| कोर तथा कोर–स्क्रेपर | 7.3% |
| लेवालेवा फलक | 7.2% |
| आद्य–लेवालेवा फलक | 18.2% |
| अन्य क्लैक्टन फलक | 8.2% |

कृष्णस्वामी आदि (कृष्णस्वामी, वी0डी0 तथा सौन्दरराजन, के0वी0, 105, पार्श्वोद्धरित, पृ0 48) की धारणा है कि सिंगरौली बेसिन का यह उद्योग, यद्यपि सोहन परम्परा से प्रभावित है, किन्तु प्रमुख रूप से इसे मद्रासीय परम्परा के उभयपक्षीय उपकरण परम्परा का मानना चाहिए।

सिंगरौली बेसिन तथा निकटवर्ती क्षेत्रों के साक्ष्यों से स्पष्ट है कि डी टेरा आदि की यह धारणा कि मिर्जापुर, सोहन तथा मद्रासीय परम्पराओं का संधि – स्थल रहा होगा, पुष्ट नहीं किया जा सकता। प्रायः सभी उपकरण–पेबुल तथा अन्य–मिश्रित रूप से प्राप्त हुए है। स्तरीकरण के आधार पर भी उन्हें अलग नहीं किया जा सकता है। साथ ही, यह भी कहना कठिना है कि इनमें से कौन अधिक प्राचीन है। किन्तु, उपकरणों की अवस्था तथा पैटीनेशन की अधिकता अथवा न्यूनता के दृष्टिकोण से पेबुलोपकरण अधिक प्राचीन प्रतीत होते हैं। इस आधार पर कृष्णस्वामी तथा सौन्दर राजन की धारणा है कि पेबुलोपकरण उभयपक्षीय उपकरणों से प्राचीन हो सकते हैं।

फलकों के सूक्ष्म परीक्षण से ज्ञात होता है कि लगभग 70: फलकों का कोण $90^0$ से $105^0$ के बीच है। कुछ फलकित भी प्रतीत होते हैं। इस प्रकार के फलकों को आद्य लेवालेवा फलकों की श्रेणी के अन्तर्गत रखा जाता है। लगभग 8% फलक ऐसे भी हैं, जो लेवालेवा फलकों की श्रेणी में रखे जा सकते हैं।

कृष्णस्वामी (1951 पार्श्वोद्धरित, पृ0 48–50) आदि के विचार में सिंगरौली प्रस्तर–उद्योग प्रमुख रूप से अवेवीलियां आशूलियां उभयपक्षीय (Abbevillio-Acheulian bifacial) परम्परा का प्रतिनिधित्वि करता है तथा वह सोहन (लेवालेवा) फलकीकरण तकनीक से प्रभावित है। इस उद्योग को मध्य प्रातिनूतन काल के अन्तर्गत रखा जा सकता है, क्योंकि इसी प्रकार के सांस्कृतिक उपादानों को जीवाश्मिकी आधार (Palaeontological ground) पर नर्मदा की घाटी में डी टेरा ने मध्य प्रातिनूतन काल में रखा था। नर्मदा कक्र रेखा (Tropic of Cancer) के लगभग उतने ही दक्षिण में है जितना सिंगरौली बेसिन उसके उत्तर में। कृष्णस्वामी की धारणा में सिंगरौली के उपकरण निर्माताओं को मयूरभंज के उभयपक्षीय उपकरण उद्योग ने प्रभावित किया था, किन्तु सिंगरौली में उद्योग का विकास मयूरभंज की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से हुआ, क्योंकि इसे सोहन की फलकीकरण तकनीक ने भी प्रभावित किया था।

Scanned with OKEN Scanner

## बेलन घाटी (Belan Valley)

बेलन नदी का प्रमुख अनुभाग चित्र सं.–9

प्रस्तरयुगीन उद्योगों की दृष्टि से दक्षिण इलाहाबाद तथा पश्चिम मिर्जापुर में, बेलन घाटी में किए सर्वेक्षण अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इनसे प्रस्तर युगीन संस्कृतियों के क्रमिक विकास पर समुचित्र काश पड़ा है। बेलन नदी कोरांव तहसील के कोराँव के निकट इलाहाबाद में प्रवेश करती है। इलाहाबाद में चालीस कि0मी0 तक बहती हुई टोंस में मिलती है। टोंस गंगा की ही एक सहायक नदी है। मिर्जापुर का, गंगा तथा कैमूर के मध्य का, पठारी प्रदेश दक्षिण इलाहाबाद के कोराँव तक फैला है। इलाहाबाद क्षेत्र में पठार तथा कैमूर का मध्यवर्ती प्रदेश 16 किलोमीटर से लेकर 24 कि0मी तक चौड़ा है। कोराँव से थोड़ा उत्तर में यह पठारी प्रदेश धीरे–धीरे गंगा के मैदान से मिल जाता है। मिर्जापुर के ही समान इलाहाबाद के पठारी प्रदेश के पानी का निकास बेलन नदी द्वारा होता है। इस भाग में पठार तथा कैमूर की पहाड़ियों के मध्य के क्षेत्र की संरचना एक छिछली कठौती के समान है। इसी घाटी में बेलन नदी बहती है। इसमें बहुत विस्तृत क्षेत्र में सिमेण्टेड ग्रैवेल के जमाव मिलते हैं, जिन्हें बेलन नदी, उसकी सहायक सेवती नदी तथा अन्य नालों ने, जो अधिकांशतया पूर्व तथा दक्षिण दिशाओं से बेलन में आकर मिलते हैं, अनावृत किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये सभी जमाव प्रातिनूतनकाल में किसी अन्य नदी द्वारा किए गए थे। खजुरी ग्राम से लगभग 6 कि0मी0 पर डैया नामक स्थान से लेकर देवघाट तक अभी भी लगभग 18 मीटर ऊँचे नदी के अनुभाग विद्यमान हैं (Sharma G.R. 1973). जिनमें निम्न पुरापाषाण काल से लेकर

नवपाषाण काल तक के प्रस्तरयुगीन संस्कृतियों का विकासात्मक क्रम स्पष्ट परिलक्षित है। यह उल्लेख्य है कि डैया से लेकर देवघाट तक जमाव क्रम में कोई अन्तर नही है। यही स्थिति बेलन की सहायक नदियों की भी है। इस प्रकार लगभग 5400 वर्ग कि0 मी0 में यही क्रम मिलता है 'जो इसे भारत के अन्य नदी घाटियों से अलग करता है (मिश्रा 1997, पाल 2005, वर्मा 2011)।

बेलन नदी के दक्षिण में क्रमशः विंध्य की पहाड़ियाॅ मिलने लगती हैं, जो पहले कम ऊँची हैं और बाद में कैमूर से मिल जाती हैं। बेलन के दक्षिण तट की ये सभी पहाड़ियाँ प्रातिनूतनकाल में प्रागैतिहासिक कालीन मानव के आवास स्थल थे। लगभग सभी पहाड़ियाँ – मुरली, महुगढ़, चाँदातरी, रामगढ़, बेलरही, करौंदहिया आदि पर अनेक उद्योग–स्थल प्रायः मुख्य पहाड़ियों से बाहर निकली हुई छोटी पहाड़ियों के ऊपर समतल भागों तथा उनके ऊपर ढाल पर हैं, मध्य पुरापाषाणकालीन उद्योग–स्थल अधिकांशतया इन पहाड़ियों के ढाल तथा जहाँ नीचे की भूमि मिलती है अथवा नीची पहाड़ियों पर हैं। उपकरण भूमि की सतह अथवा पानी के बहने से जहाँ थोड़ी–सी मिट्‌टी कट गई है, वहाँ मिलते हैं।

इस क्षेत्र के प्रायः सभी उद्योग–स्थलों पर निम्न पुरापाषाण कालीन मानव ने क्वार्टजाइट प्रकार के पत्थरों का प्रयोग उपकरण निर्माण के लिए किया है। जहाँ पर अच्छे प्रकार की क्वार्टजाइट उपलब्ध नहीं थे वहाॅपर बालुकाश्म (Sand Stone) का भी प्रयोग हुआ है। अभी तक कम से कम 40 उद्योग–स्थल चिन्हित किए जा चुके है।

इन स्थलों से प्राप्त अधिकांश उपकरण अर्धनिर्मित (Unfinished) अवस्था में ही मिलते हैं। उनमें भी फलकों तथा कोरों की संख्या अधिक है। उपकरणों की श्रेणी में हैण्डैक्स, प्रायः अबेवीलीयाॅ प्रकार के, क्लीवर तथा स्क्रेपरों की गणना की जा सकती है। पेबुलोपकरण इन स्थलों पर नहीं मिलते।

बेलन नदी का इस क्षेत्र के निर्माण में क्या योगदान है ? इस सम्बंध में अधिक कहना कठिन है। इतना अवश्य सत्य है कि बेलन नदी के अपरदन से इस क्षेत्र के प्रातिनूतनकाल से लेकर आधुनिक काल तक के सभी जमाव स्पष्ट परिलक्षित हैं। स्थान–स्थान पर नदी ने आधारशिला तक के सभी जमावों को काट दिया है और अब स्वयं आधारशिला पर बह रही है। बेलन घाटी में परिलक्षित अनुभागों की यह विशेषता है उसके विभिन्न जमावों में उपकरणों के साथ जीवाश्म भी मिलते हैं, अब लगभग सभी की तिथि भी निर्धारित की जा चुकी है,उसका उल्लेख नीचे किया जारहा है।

यहाॅ के भूतात्विक जमाव को अध्ययन के आधार पर 10 इकाइयों में नीचे से ऊपर क्रमशः इस प्रकार विभक्त किया गया है :

(1) सबसे निम्नतम स्तर पर आधारशिला के ऊपर अपघटित (Decomposed) शिला की एक लेयर है। अपघठित शिला के ऊपर प्रथम ग्रैवेल का जमाव है जिसकी औसत मोटाई 1.52 मीटर है। यह विभिन्नाकारों के पत्थरों, कंकड़ तथा लैटेराइट की छोटी–बड़ी गोलियों से निर्मित है। कोणयुक्त शिला पट्‌टों की अधिकता है। इस जमाव से निम्न पूर्वपाषाण काल के उपकरण मिलते हैं। इस सम्पूर्ण जमाव से प्राप्त उपकरणों के स्तरों के परीक्षण से ज्ञात हुआ कि निम्नतम स्तरों से प्राप्त उपकरणों में पेबुल उपकरण 10 प्रति शत तथा रूक्ष हैण्डैक्स 53 प्रति शत थे अन्य हैण्डैक्स विकसित प्रकार के थे।

Scanned with OKEN Scanner

निम्न पूर्वपाषाणकाल के बाद मध्य पूर्वपाषाणकाल का स्तरित जमाव है। बेलन घाटी में मध्य पुरापाषाणकाल के उपकरण 3,4 तथा 5 लेयरों से प्राप्त हुए हैं। इनके उपकरणों में क्रमिक विकास मिलता है।

(2) प्रथम ग्रैवेल के जमाव के ऊपर गाद मिट्टी (Silt) का 3.5 मी0 का जमाव है। इसे प्रथम सिल्ट कहा गया है। कंकड़ का निर्माण सम्भवतः कैलशियम के निक्षालन (Leaching) से हुआ है। इस जमाव में किसी प्रकार का कोई भी उपकरण अथवा पत्थर प्राप्त नहीं हुआ है। इस जमाव से लिए गए दो नमूनों की तिथि 91 kyrs B.P. (Pal et al. 2004) है।

(3) प्रथम गाद मिट्टी के जमाव के ऊपर एक ग्रैवेल जमाव पुनः मिलता है जिसे द्वितीय ग्रैवेल कहा गया है। इस ग्रैवेल की औसत मोटाई 5 मीटर है। यह जमाव प्रथम ग्रैवेल से भिन्न है। इसमें शिलापट्ट नहीं हैं, ग्रैवेल अपेक्षाकृत बहुत छोटे आकार के हैं तथा लैटेराइट की मात्रा भी अधिक है।

अनेक स्थानों पर इस जमाव के तीन विभाजन स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। कभी–कभी प्रत्येक के बीच में एक पतला मिट्टी का जमाव भी मिलता है।

इनको नीचे से क्रमशः 'अ', 'ब' और 'स' कहा गया है।

'अ' उपविभाग में निम्न पूर्वपाषाणकालीन उपकरण अधिकांशतया फलक पर बने हैं। इसमें हैण्डैक्स नहीं हैं। स्क्रेपर की बहुलता है, क्लीवर मात्र 10 प्रतिशत हैं। साथ में काफी संख्या में जीवाश्म भी मिले हैं।

'ब' उपविभाग में निम्न पूर्वपाषाणकालीन उपकरणों का सर्वथा अभाव है। इस स्तर से केवल मध्य पूर्वपाषाणकालीन उपकरण ही प्राप्त हुए हैं, जिनमें स्क्रेपर 73 प्रतिशत हैं। उपकरण बनाने के लिए 57 प्रतिशत क्वार्टजाइट पत्थर का प्रयोग किया गया है। 43 प्रतिशत उपकरण चर्ट आदि अच्छे पत्थरों पर बने है।

'स' उपविभाग में उपकरण 'ब' की अपेक्षा अधिक छोटे तथा सुडौल हैं तथा क्वार्टजाइट का प्रयोग और भी कम हो जाता है। उसके स्थान पर चर्ट आदि महीन कणों के पत्थरों जैसे जैस्पर, चाल्सेडनी का प्रयोग किया गया है। लगभग 80 प्रतिशत उपकरण ब्लेड–फलक–स्क्रेपर परम्परा के हैं।

(4) द्वितीय सिमेण्टेड ग्रैवेल के ऊपर पुनः गाद मिट्टी का जमाव है। इसे चार उप–विभागों में विभाजित किया गया है : रक्ताभ बालू (Reddish sand). बलुई सीमेंट की चादरें, ग्रैवेल युक्त रक्ताभ बालू तथा पेबुल है। इसमें लाइम कार्बोनेट, लैटेराइट की गोलियाँ तथा पत्थर की चिप्पियाँ भी हैं। इसकी औसत मोटाई 1.26 मीटर है। इस जमाव से भी मध्य पूर्वपाषाण काल के उपकरण मिले हैं। इस जमाव के एक नमूने की तिथि 55kyr B.P.आई है।

Scanned with OKEN Scanner

(5) इस रक्ताभ मिट्टी के जमाव के ऊपर पीली गाद मिट्टी का जमाव है। इस जमाव की औसत मोटाई 1.52 मीटर है। इस जमाव से विभिन्न प्रकार के स्क्रेपर तथा उच्च पूर्वपाषाणकाल के ब्लेड उपकरण प्राप्त हुए हैं। यह जमाव मध्य पूर्वपाषाण काल से उच्च पूर्वपाषाण काल के परिवर्तन (Transition) का निर्देश करता है।

(6) पीली गाद मिट्टी के जमाव के ऊपर एक और सिमेण्टेड ग्रैवेल का जमाव मिलता है जिसे तृतीय ग्रैवेल (Third Gravel) भी कहा गया है। इसकी औसत मोटाई 1.21 मीटर है। द्वितीय सिमेण्टेड ग्रैवेल की अपेक्षा इसमें बालू की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक है तथा यह उतना मजबूत भी नहीं है जितना कि द्वितीय ग्रैवेल। प्रायः सभी स्थानों पर यह सिमेण्टेड भी नहीं है। इस ग्रैवेल में प्राप्त पत्थर के टुकड़े अपेक्षाकृत काफी छोटे, घिसे हुए तथा गोलाकार हैं। इस जमाव से प्रमुखतया ब्लेडोपकरण ही प्राप्त हुए है, जिन्हें उच्च पुरापाषाणकालीन कहा गया है। लगभग सभी उपकरण चर्ट पत्थर के हैं, अथवा उसी के समान पत्थरों से बने हैं। इस जमाव के एक नमूने से 20 kyr. तिथि आई है। इसके अतिरिक्त चार सी 14 तिथियाँ इस प्रकार हैं 25430±350; 25790+830,-760; 26270±660 BP and 19755±340 BP.

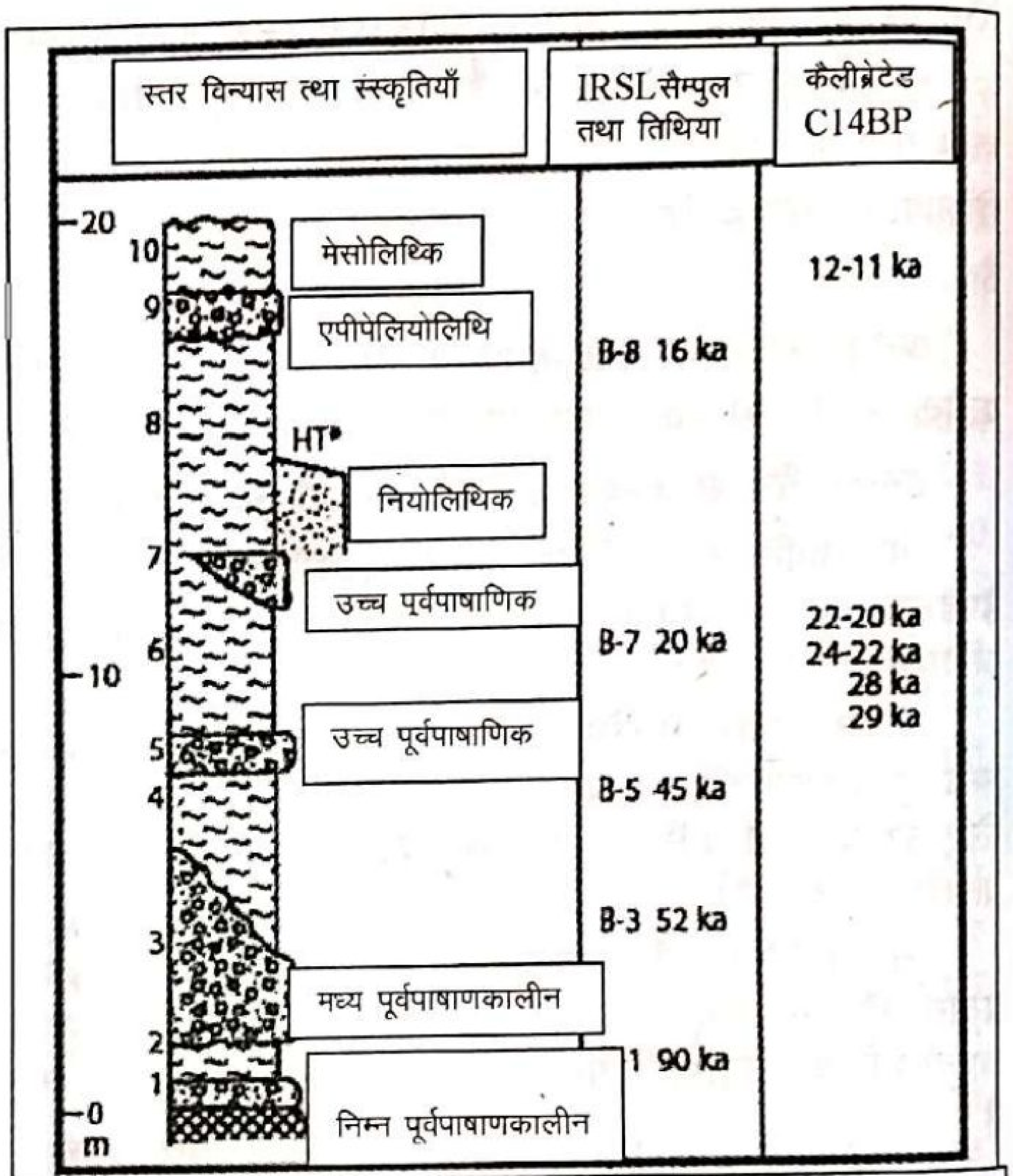


बेलन नदी का समेकित अनुभाग, प्रमुख निक्षेपित स्तर, IRSL तथा C14 तिथियाँ HT नूतन कालीन वेदिका 4–3 ka
तलिका सं0–3

(7) यह पीले दूमट मिट्टी का जमाव है। इससे भी पूर्व वर्ती जमाव के समान उच्च पुरापाषाण कालीन उपकरण मिले हैं।

(8) यह भी एक ग्रैवेल जमाव है जिसे चतुर्थ ग्रैवेल कहा गया है। यह ग्रैवेल, कंकड़, लैटेराइट तथा मोटी बालू से निर्मित है। यह उच्च पुरापाषाणकाल से मध्य पाषाणकाल के संक्रमणकाल का है। इसमें अज्यामितिक प्रकार के लघुपाषाणोपकरण मिले हैं। इस जमाव के नीचे के स्तर से एक तिथि 16 kyr प्राप्त है। इसके अतिरिक्त तीन सी 14 तिथियाँ इस प्रकार हैं 14140+410 -390 BP;

11300±130 BP and 10030±115 BP.

(9) यह पुरानिखात (Palaeosol deposit) काली मिट्टी का जमाव **है। इसमें अन्त** उच्च पुरापाषाणकाल के तथा अज्यामितिक लघुपाषाणोकरण प्राप्त हुए हैं।

(10) काली मिट्टी के ऊपर भूरी मिट्टी का वायु निर्मित सबसे उपरवर्ती जमाव है इसमें लैटेराइट की गोलियाँ, कैलशियम कार्बोनेट तथा पत्थर की चिप्पियाँ मिलती हैं। इसमें भी अज्यामितिक प्रकार के लघुपाषाणोकरण मिले हैं।

नवपाषाणिक सांस्कृतिक जमाव इसके ऊपर मिलता हैं।

उपयुक्त विवरण से स्पष्ट है कि यहाँ पर निम्न पूर्वपाषाणकाल से लेकर मध्य पाषाणकाल तक के मानव के विकास की सभी अवस्थाओं के उपकरण उपलब्ध हैं। इस दृष्टि से भारत के सभी उद्योग–स्थलों में इसका अपना विशिष्ट स्थान है। इन्हीं कारणों से डॉ0 सांकलिया ने यहाँ के अनुभाग को अपनी पुस्तक में *'Text Book Section'* कहा है। यहाँ से उपकरणों के साथ बहुत अधिक संख्या में जीवाश्म भी उपलब्ध हुए हैं।

## उपकरण उद्योग

बेलन तथा उसकी सहायक नदियों एवं नालों द्वारा अनावृत जमावों के अध्ययन से स्पष्ट है कि निम्न पुरापाषाणकालीन उपकरण वहाँ के प्रथम ग्रैवेल से सम्बन्धित हैं। इस जमाव से पेबुलोपकरण तथा हैण्डेक्स–स्क्रेपर परम्परा के विकसित तथा अविकसित उपकरण उपलब्ध हुए हैं। इन उपकरणों में कोई विकास क्रम भी है अथवा नहीं, यह स्पष्ट रूप से कहना कठिन है। इस समस्या के समाधान की दृष्टि से प्रथम ग्रैवेल–जमाव के विभिन्न स्तरों से मिलने वाले उपकरणों का भी सूक्ष्म अध्ययन किया गया। इस अध्ययन के फलस्वरूप यह ज्ञात हुआ कि ग्रैवेल के निम्नस्तर से मिलने वाले उपकरणों में पेबुलोपकरणों की संख्या अन्य की अपेक्षा अधिक है। हैण्डैक्स अधिकांशतया बड़े आकार के हैं तथा उन्हें अबेवीलियॉ उपकरणों की श्रेणी में रखा जा सकता है। प्रारम्भिक स्तरों में स्क्रेपरों का नितान्त अभाव है। पेबुल उपकरण 10% से अधिक नहीं है। इनमें एकपक्षीय तथा उभयपक्षीय दोनों प्रकार के उपकरण हैं। पेबुल विविध आकार के हैं तथा उनके ऊपर फलकीकरण केवल उपयोगिता की दृष्टि से ही किया गया है। अधिकांश उपकरण बहुत पैटीनेटेड है। सभी क्वार्टजाइट के बने हैं।

पेबुल उपकरण चित्र सं0–10

उनके ऊपर फलकीकरण केवल उपयोगिता की दृष्टि से ही किया गया है।

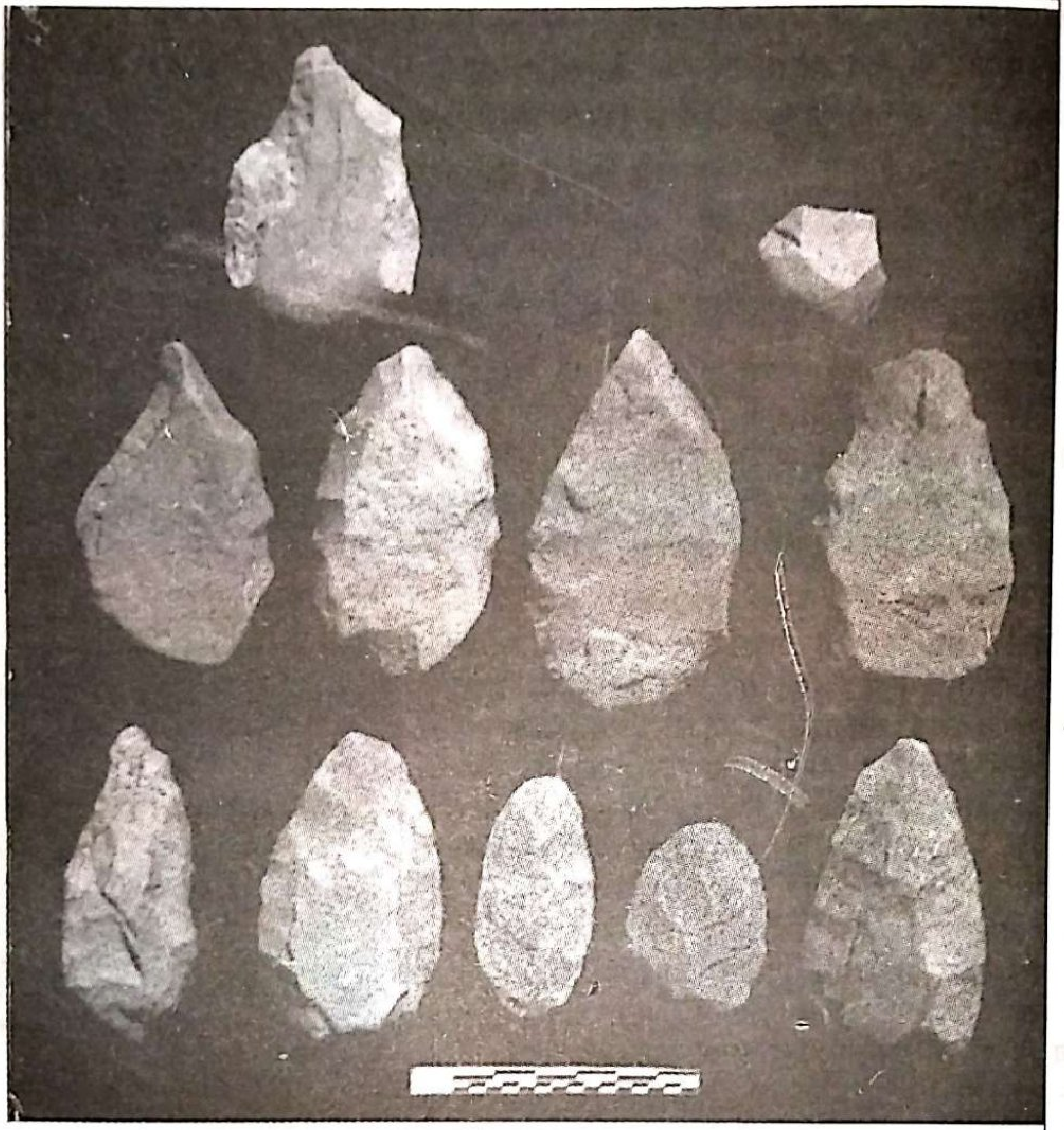

अबेवीलियॉ,पेबुल–समन्तान्त शिलापट्टों पर निर्मित एवं आशूलियॉ हैण्डैक्स चित्र सं0–11

हैण्डैक्सों की संख्या सबसे अधिक हैं। वे सभी उपकरणों के लगभग 53% है। इनमें रूक्ष अबेवीलियॉ से लेकर पूर्णविकसित आशूलियॉ प्रकार के उपकरण हैं। विकसित आशूलियॉ प्रकार के उपकरण छोटे आकार के तथा सुडौल हैं। उनकी वाह्य रेखा क्रमिक तथा फलक चिन्ह बहुत छिछले हैं। अबेवीलियॉ प्रकार के पेबुल–समन्तान्त (Pebble butt end) रूक्ष हैण्डैक्सों से लेकर सभी ज्ञात आकारों के हैण्डैक्स यहाँ पर मिल चुके हैं। यहाँ से प्राप्त विशालतम हैण्डैक्स 38.5 से0 मी0 तथा सबसे छोटा 9 से0 मी0 है।

निर्माण–पद्धति के दृष्टिकोण से एक विशिष्ट प्रकार के हैण्डैक्स जो शिलापट्ट (Chunk) पर

निर्मित हैं विशेष उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार के उपकरण बेलन तथा सेवती नदियों के संगम से प्राप्त हुए थे। इनके निर्माण के लिए चिपटे शिलापटटों का उपयोग किया गया है। शिलापट्टों पर एकान्तर फलकीकरण के द्वारा उनके कार्यांग तथा स्वरूप का निर्माण किया गया है।

क्लीवर तथा स्क्रेपर सम्मिलित रूप से लगभग 30% हैं। हैण्डैक्सों के समान ये भी रूक्ष तथा विकसित दोनों ही प्रकारों के हैं। इन्हें **''U', 'V'** और सीधे पार्श्व (Straight Sided) तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। यह उल्लेखनीय हैं कि अधिकांश क्लीवर फलकों पर निर्मित हैं। क्लीवर 17.5 से0मी0 से 11.5 से0मी0 लम्बे हैं।

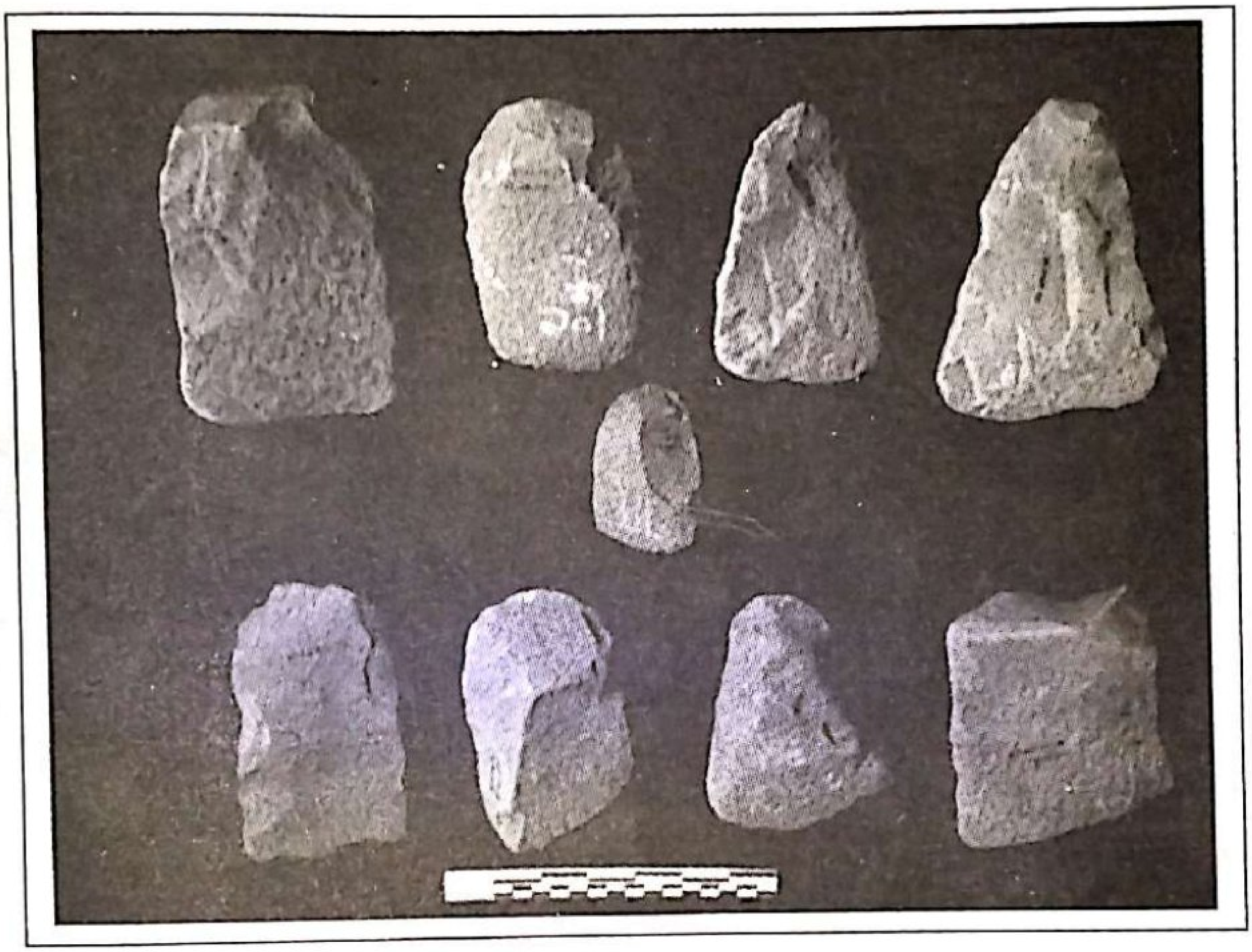

क्लीवर चित्र सं0 112

हैण्डैक्स तथा क्लीवर के समान स्क्रेपर भी विविध आकारों के विकसित तथा अविकसित दोनों ही प्रकारों के हैं। इनमें से अधिकांश कोर पर बने हैं।

## मिश्रित उपकरण

यहाँ से प्राप्त कुछ उपकरणों को मिश्रित उपकरणों की कोटि में रखा जा सकता है, जिन्हें हैण्डैक्स–स्क्रेपर (Handaxe-Scraper) तथा क्लीवर–स्क्रेपर (Cleaver-Scraper) कहा जा सकता है। प्रथम वर्ग के उपकरण प्रायः पार्श्व–फलक पर बने हैं। उनका एक अन्त हैण्डैक्स के समान है तथा आघात के अर्धशंकु के विपक्ष की भुजा पर पुनर्गठन के द्वारा स्क्रेपर–कार्यांग बनाया गया है। इस प्रकार के उपकरणों में दोनों कार्यांगों के विपक्ष में दो समन्तान्त पकड़ने के दृष्टिकोण से होते हैं। क्लीवर–स्क्रेपर की बनावट भी बहुत कुछ इसी प्रकार की होती है, इसमें हैण्डैक्स कार्यांग के

Scanned with OKEN Scanner

स्थान पर क्लीवर–कार्यांग होता है। स्क्रेपर–कार्यांग दोनों में समान होता है।

## मूठ के प्रमाण

बेलन घाटी से प्राप्त निम्न पुरापाषाणकालीन उपकरण इस दृष्टि से भी विशेष उल्लेखनीय हैं कि यहाँ पर उपकरणों में मूठ लगाने (Hafting) के स्पष्ट प्रमाण मिले हैं।

उपकरणों में मूठ लगाने (Hafting) के स्पष्ट प्रमाण चित्र सं0–13

इस प्रकार के प्रमाण अन्य स्थानों से दुर्लभ हैं। इस प्रकार के प्रमाण अन्य स्थानों से दुर्लभ हैं। उपकरणों के निर्माण में प्रमुखतः क्वार्टजाइट पत्थर का प्रयोग किया गया है, किन्तु इसके अतिरिक्त विकसित आशूलियॉ के उपकरण चर्टी–फ्लिंट, फ्लिंटी–चर्ट, जैस्पर आदि के भी मिले हैं।ये सभी पत्थर वहाँ पर सुलभ हैं।

हाथी का 6.4 लम्बा दात चित्र सं014

## जीवाश्मित अवशेष

बेलनघाटी में निम्न पूर्वपाषाणकालीन स्तर अथवा प्रथम ग्रैवेल से बहुत अधिक संख्या में बॉस (Bos), इक्वस (Equus) तथा एलीफस (Elephas) के जीवाश्मित अवशेष प्राप्त हुए हैं।

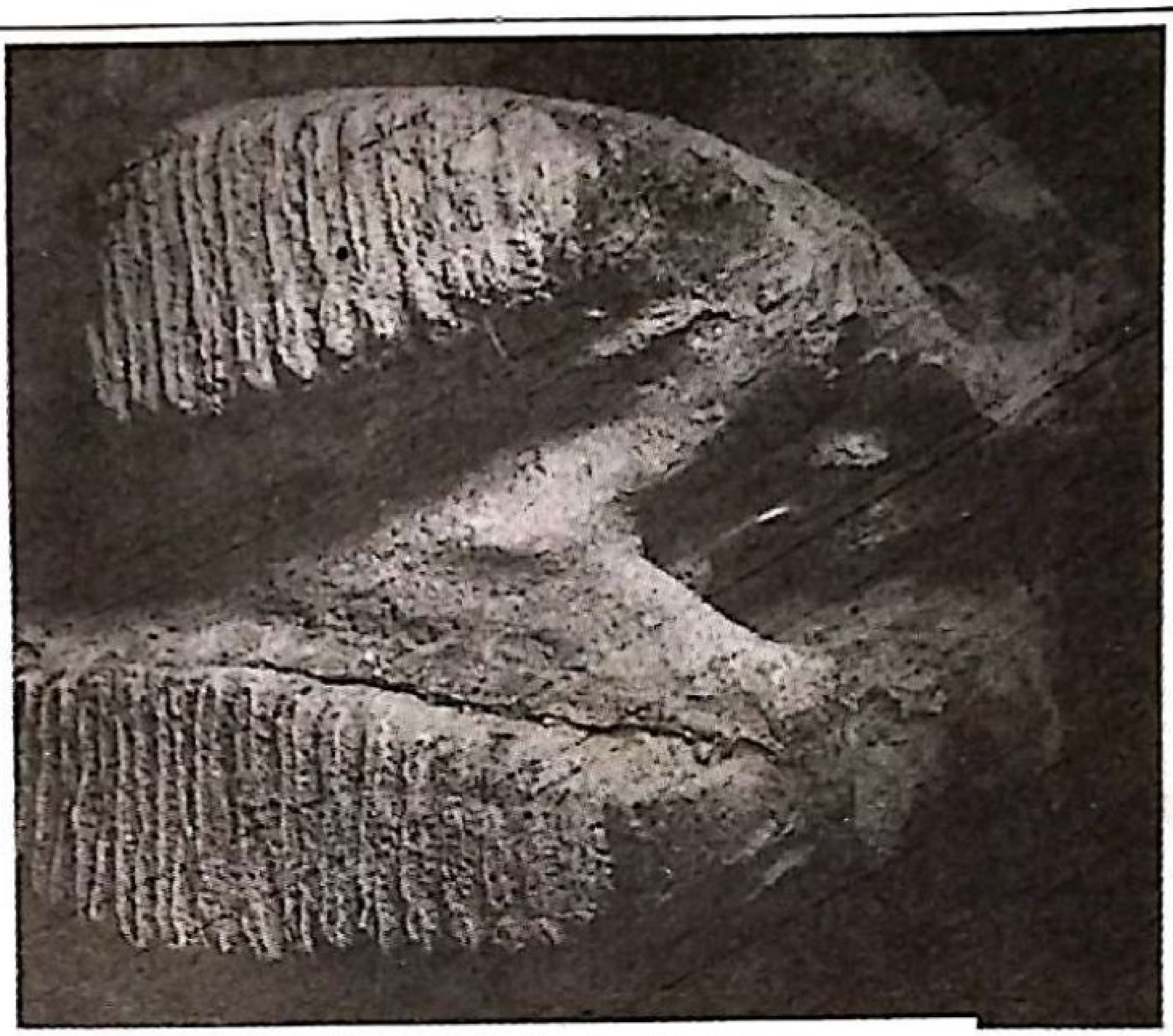

हाथी के खाने के दांत चित्र सं. 15

# 10

# बिहार तथा झारखण्ड प्रदेश

## (Bihar and Jharkhand Pradesh)

बिहार पूर्वी भारत का सबसे पश्चिमवर्ती प्रदेश था। इसके उत्तर में नेपाल, पूर्व में बांग्ला देश, दक्षिण में ओडिशा प्रदेश तथा पश्चिम में मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश के कुछ जिले थे। बिहार वास्तव में गंगा की घाटी का मध्य तथा निम्नवर्ती भाग है तथा गंगा की ऊपरी घाटी के अपेक्षाकृत शुष्क दोआब (भांगर) तथा बंगाल के आर्द्र दोआब (खादर) के मध्य का प्रदेश है। गंगा नदी इसके उत्तरी भाग में पश्चिम से पूर्व दिशा में बहती हुई इस सम्पूर्ण प्रदेश को दो भागों में विभाजित करती है। यहाँ इस भाग को गंगा घाटी अथवा गंगा का मैदानी इलाका भी कहते हैं। इस प्रदेश में गया की पहाड़ियों का इलाका भी सम्मिलित हैं। भू–वैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह क्षेत्र अपेक्षाकृत नवीन है। इस भाग की प्रमुख नदियों में गंगा, सोन, सरयू, गंडक आदि उल्लेखनीय है।

15, नवम्बर 2000 में बिहार प्रदेश का दक्षिणवर्ती भाग जो गंगा घाटी तथा गया की पहाड़ियों के दक्षिण में स्थित है के पाँच जिलों राँची, जमशेदपुर, धनबाद, हजारीबाग, बोकारो को काटकर नव निर्मित झार खण्ड प्रदेश बना दिया गया। यह सम्पूर्ण क्षेत्र अपेक्षाकृत पठारी है। इसके अन्तर्गत छोटा नागपुर तथा संथाल परगना आते हैं। छोटा नागपुर का इलाका आर्केयन नीसेस (Archaen gneisses) पर आधारित है। दामोदर का उत्तरवर्ती भाग अथवा हजारीबाग का स्थली प्राय प्रदेश (Peneplain)] हजारीबाग श्रृंखलाओं को छोड़कर समुद्रतल से लगभग 1,300 फीट ऊँचा है। इसके (हजारीबाग–स्थलीप्राय प्रदेश के) उत्तर में दामोदर की घाटी तथा दक्षिण में रॉची का पठारी प्रदेश है वह 2,000 से 2,500 फीट तक ऊँचा है। सुवर्ण रेखा नदी के निकट इस पठारी प्रदेश की ऊँचाई क्रमशः कम होती जाती है और उसके डेल्टा तक पहुँचते–पहुँचते पठारी प्रदेश मैदानी इलाके से मिल जाता है। नव निर्मित झार खण्ड प्रदेश के उत्तर में बिहार, उत्तर प्रदेश तथा छत्तीसगढ़, पश्चिम में ओडिशा दक्षिण पूर्व तथा पूर्व में बंगाल है।

कैमूर की पहाड़ियाँ मिर्जापुर जिले से होती हुई शाहाबाद जिले के दक्षिण में लगभग 800 वर्गमील में फैली हुई हैं। बिहार में इनकी सबसे ऊँची श्रृंखला 1,472 फीट है। हजारीबाग जिले में सबसे ऊँची पर्वत श्रृंखला जो पारसनाथ के नाम से विख्यात है लगभग 4,481 फीट ऊँची हैं।

बिहार प्रदेश की नदियों को भी दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम में गंगा तथा उसकी सहायक नदियाँ हैं जो उत्तर तथा दक्षिण दोनों ही दिशाओं से आकर मिलती हैं। गंगा में जो नदियाँ उसके उत्तरी तट पर मिलती हैं उनका बहाव उत्तर–पश्चिम से दक्षिण–पूर्व की ओर जैसे, गण्डक नदी का अथवा उत्तर–दक्षिण की ओर जैसे कोसी नदी का है, तथा जो नदियाँ दक्षिण तट पर मिलती हैं उनका बहाव साधारण रूप से दक्षिण–पश्चिम से उत्तर–पूर्व है जैसे, सोन नदी। दक्षिणी बिहार (झार खण्ड) की सबसे बड़ी नदी सोन है जो गंगा की ही सहायक है। इसके

अतिरिक्त अन्य सभी नदियाँ अपेक्षाकृत छोटी हैं और उनका बहाव साधारणतया उत्तर–दक्षिण दिशा की ओर है। इस प्रकार की नदियों में खरबई, संजय आदि हैं।

ऐतिहासिक काल के प्रारम्भ से ही बिहार प्रान्त (मगध महाजनपद) ने भारत के इतिहास के निर्माण में सबसे अधिक महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि बहुत अंशों में बिहार का इतिहास ही भारत का इतिहास था। किन्तु खेद का विषय है कि प्रागैतिहासिक बिहार के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान अन्य प्रदेशों की अपेक्षा बहुत न्यून है। इसके दो प्रमुख कारण हैं – प्रथम, अभी भी बिहार के विभिन्न भागों में वैज्ञानिक तथा योजनाबद्ध रूप से सर्वेक्षण नहीं हुआ है। दूसरे, गंगा की घाटी का प्रदेश भू–वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अपेक्षाकृत नवीन है और वहाँ पर निम्न पुरापाषाण काल की संस्कृति के अवशेषों के मिलने की सम्भावना भी बहुत कम है, किन्तु इस दृष्टि से बिहार का दक्षिणवर्ती प्रदेश (झार खण्ड) अधिक महत्वपूर्ण है।

दक्षिण बिहार के विभिन्न जिलों से समय–समय पर निम्न पुरा पाषाण कालीन उपकरणों के प्राप्ति की सूचनाएँ आती रही हैं। बीचिंग, बॉल, ऐण्डरसन आदि की गणना उन लोगों में की जाती है जिन्हें इस प्रान्त में सर्वप्रथम प्रागैतिहासिक उपकरण प्राप्त हुए थे। अभी तक बिहार प्रान्त के पाँच जिलों मुगेंर ( विदुला जायसवाल ––––ऐण्डरसन, सी0 डब्ल्यू0, 1917, 'नोट्स ऑन प्रीहिस्टारिक इम्पलीमेण्ट्स फाउण्ड इन दि सिंहभूम डिस्ट्रिक्ट ज0बी0ओ0रि0सो0 पृ0 344–62), हजारीबाग (इण्डियन आर्क्यालजी–ए रिव्यू, 1960–61, पृ0 5–6; वही, (साइक्लोस्टाइल, 1965–66, पृ0 13–15) संथाल परगना (वही, 1859–60, पृ0 12 );राँची (वही, 1960–61, पृ0 5–6) तथा सिंहभूम (वही, (साइक्लोस्टाइल) 1964–65, पृ0 10) से निम्न पुरा पाषाण काल के उपकरण प्राप्त हुए हैं। इनमें से अधिकांश स्थानों के उपकरणों तथा उनके स्तरों आदि के सम्बन्ध में भी कुछ ज्ञात नहीं है। इन सभी स्थानों में मुंगेर (बिहार) तथा सिंहभूम के उपकरण–उद्योगों के सम्बन्ध में ही केवल कुछ स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है।

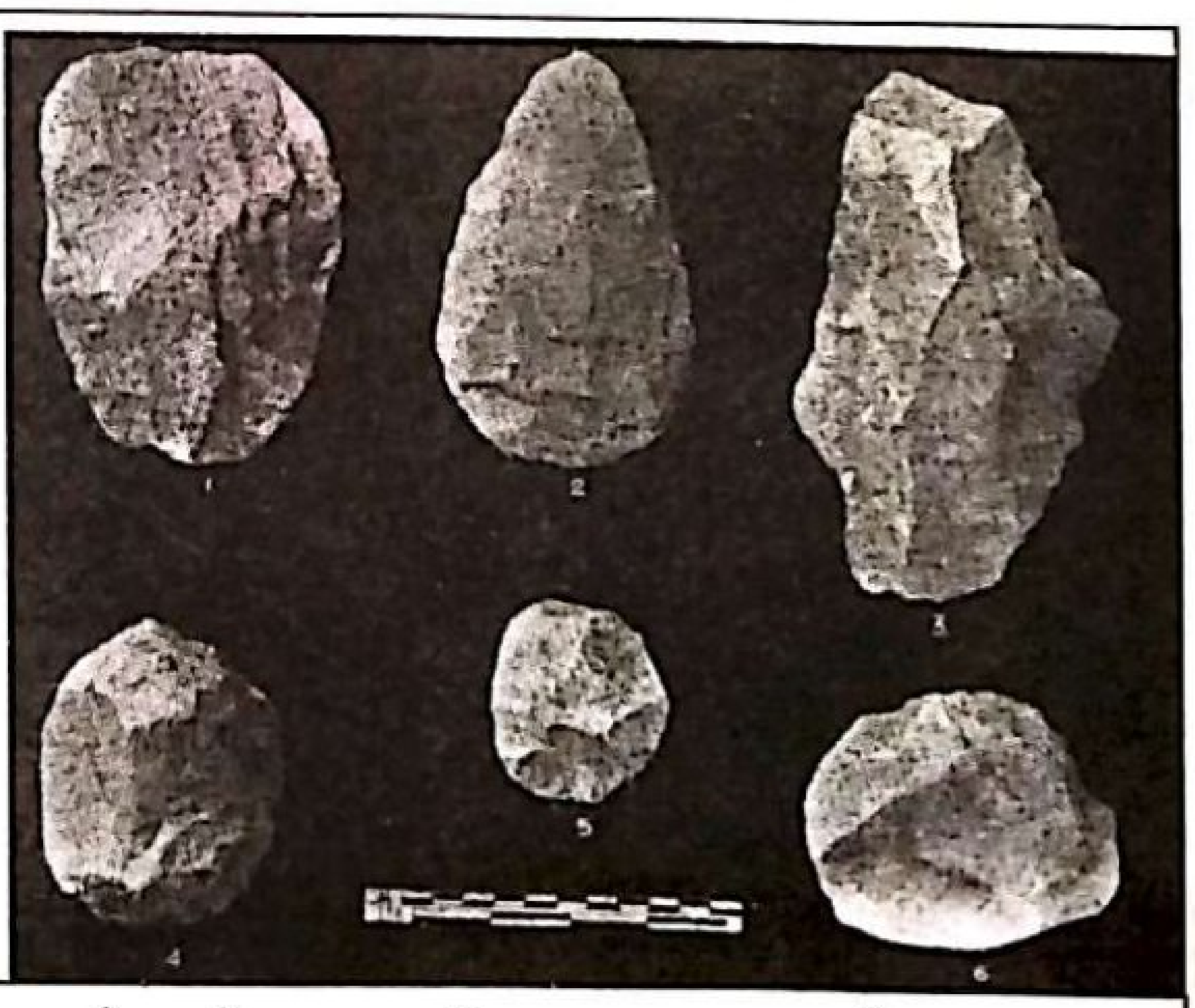

मुगेर से प्राप्त निम्नपुरापाषाण कालीन उपकरण
चित्र सं0–16

मुगेर में भीम बंध के निकट जोशी तथा सिह (वही, 1965–66, पृ0 15; 1961–62 पृ0 9) ने सर्वेक्षण किया था। नदी के किनारे उन्हें क्वार्टजाइट के थोड़े–घिसे हुए हैण्डैक्स, स्क्रेपर, फलक तथा कोर उपलब्ध हुए थे। यह उपकरण विकसित आशूलियाँ प्रकार के थे। यह उल्लेखनीय है कि क्लीवर नहीं मिला था। भीमबंध से थोड़ी दूर पर, रंजना के बायें तट पर पहाड़ियों के ऊपर से भी क्वार्टजाइट के बने आशूलियाँ उपकरण उन्हें प्राप्त हुए थे।

## पैसरा – आश्यूल आवास स्थल

पैसरा, पुरास्थल बिहार प्रान्त के मुंगेर जिले में स्थित है। 1972 में सर्वप्रथम इसे प्रकाश में लाने का श्रेय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग के पी० सी० पन्त तथा विदुला जायसवाल को है। पैसरा एक छोटा गाँव है, जहाँ हवेली–खरगपुर अथवा भीमबंध से जंगल मार्ग से पहुँचा जा सकता है। हवेली खरगपुर से यह 30 कि०मी० पश्चिम में तथा भीमबंध से 18 कि०मी० उत्तर में है।

यह स्थान नीची पहाड़ियों के मध्य में है। इस सम्पूर्ण क्षेत्र में अधिकांशतया गरमपानी 'के झरने हैं। पीने के पानी का अभाव है।

पैसरा में विभिन्न स्थलों पर सघन सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ कि सम्भवतः यह केवल उद्योग स्थल मात्र नहीं था, अपितु विकसित आश्यूल मानव का आवास–स्थल भी था। उपकरण स्थलों पर समूह (Cluster) में मिलते थे। सम्पूर्ण क्षेत्र के सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ कि यहाँ का पुरामानव पहाड़ों की अपेक्षा घाटी में रहना अधिक पसन्द करता था, क्योंकि पहाड़ियों तथा शैलाश्रयों में उनके उपकरण नहीं मिले।

पैसरा पुरास्थल का फैलाव लगभग 2 वर्ग किलोमीटर में था। यहाँ के अनुक्रम को समझने के लिए 1980 में अत्यन्त सीमित उत्खनन किया गया था। कालान्तर में 1984 में उत्खनन की दृष्टि से पाँच स्थल A से E तक चुने गए। पुनः 1986 में दो और स्थलों F तथा G में भी उत्खनन किया गया।

हैण्डैक्स पैसरा चित्र सं017

### उद्योग

पैसरा (Paisra) **उद्योग** में लैन्सियोलेट (Lanceolate) प्रकार के उपकरणों का आधिक्य है। इनपर उभयपक्षीय फलकीकरण किया गया है। स्वरूप में ये अण्डाकार हैं तथा सकरा नोक बनाते हैं। बड़े तथा छोटे आकार के क्लीवर तकनीकी दृष्टिकोण से अफ्रीका के इसीमिला (Isimila) तथा कलाम्बो फाल्स (Kalambo Falls) के उपकरणों के समान हैं। कुछ चौड़े क्लीवर यूरोप के द्विपक्षीय फलकीकृत–हैण्डेक्स–क्लीवर के अनुरूप हैं। निम्न–पूर्व पाषाणिक उपकरणों में हैण्डैक्सों की संख्या लगभग 10 प्रतिशत है। नोडूल (Nodule) पर बने चापर तथा चापिंगोपकरण 5 से 15 प्रतिशत है। किन्तु फलकों पर बने उपकरण लगभग 70 प्रतिशत हैं। फलक उपकरणें में दन्तुरित (Denticulate) तथा खातयुक्त (Notched tools) उपकरणों की संख्या अधिक है। इनके अतिरिक्त ब्यूरिन (Burin) अन्त स्क्रेपर, बोरर तथा

लगभग सभी प्रकार के स्क्रेपर भी उत्खनन में प्राप्त हुए थे।

Locality C – D में लेवालेवा उपकरणों की संख्या 10 प्रतिशत से 21 प्रतिशत तक है। यहाँ के आश्यूल उपकरणों में लेवालेवा प्वाइण्ट (Levaloisian Point) .44 से 4.15 प्रतिशत है।

फलकों पर एक पक्षीय, द्वि पक्षीय तथा एकान्तर तीनों ही प्रकार के पुर्नगठन के प्रमाण मिलते हैं।

पैसरा के उपकरण उद्योग को विकसित आश्यूल परम्परा के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

हैण्डैक्स तथा क्लीवर के विसरण में एकरूपता नहीं देखी गई। Loc D में देखा गया कि विशाल प्रस्तर पिण्डों के पास सबसे अधिक उपकरण एक स्थान पर थे। इस क्षेत्र में 21 हैण्डैक्स तथा 14 क्लीवर तथा कुछ अन्य उपकरणों के साथ मिले थे। यह स्थल प्राकृतिक प्रस्तर खण्डों तथा आवासीय स्थलों से अलग था। इसके आधारपर अनुमान किया गया कि यह स्थल विशिष्ट कार्यों के लिए चिन्हित था जैसे पत्थर काटने,लकड़ी छीलने आदि। उत्खनन कर्ताओं के अनुसार कार्य सम्पादन में विशिष्टता का प्रारम्भ हो गया था तथा विशेष कार्यो के लिए विशेष लोगों तथा उपकरणों का प्रयोग होने लगा था।

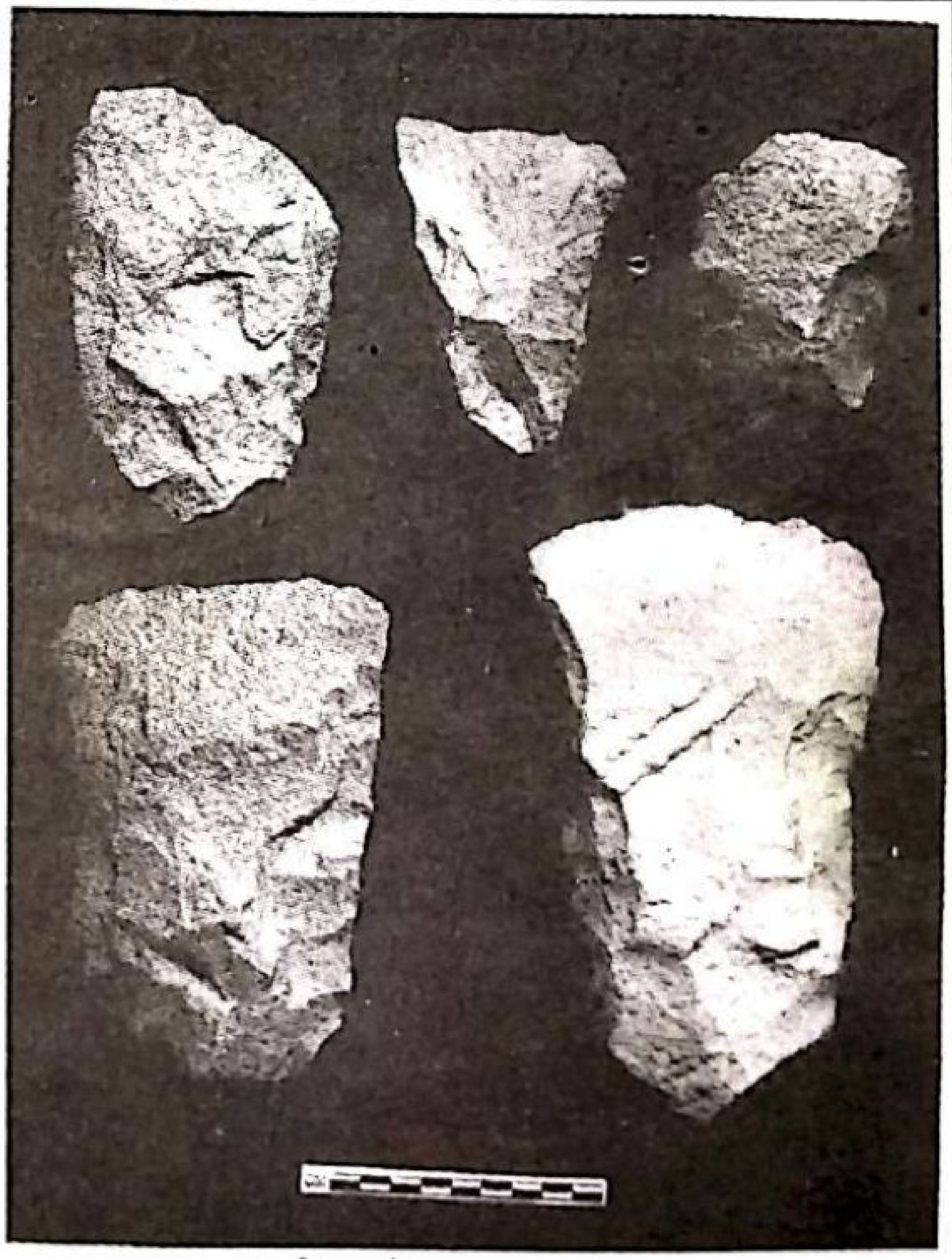

क्लीवर पैसरा चित्र सं0–18

दो सीधे खड़े खम्भों (vertical erected poles) के आधार पर दो प्रकार की संरचना (Fig-27A ,B) खड़गपुर जिले के कोदा जनजाति के लोग इसी प्रकार के ल्पकालिक आवास बनाते हैं। बी प्रकार के अल्पकालिक आवास अण्डमान के जनजातीय लोग बनाते हैं। एक खम्भे 29 ई के एफ सी के समान भी आवास बनाते हैं।

पैसरा से संग्रहीत उपकरणों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि यहाँ के आश्यूल उद्योग में हैण्डैक्स, क्लीवर आदि की संख्या फलक पर निर्मित उपकरणों की अपेक्षा अत्यन्त सीमित थी।

उभयपक्षीय क्लीवर के अतिरिक्त यहाँ पर ऐसे उपकरण बहुतायत से थे जो प्रायः मध्यपूर्वपाषाणिक उद्योगों में मिलते हैं। विशेषकर लेवालेवा फलक तथा कोर, हैण्डैक्सों में बरछाकार (Lanceolates) हैण्डैक्सों की अधिकता है। यहाँ से प्राप्त क्लीवर अफ्रीकन आशूलियन क्लीवर के समान हैं तथा कुछ उभयपक्षीय हैण्डैक्स के समान हैं, किन्तु उनका कार्यांग क्लीवर सदृश है। उपकरणों के निर्माण में लेवालेवा प्रविधि का विशेष प्रयोग मिलता है।

**आवास** : यहाँ के निवासियों ने सर्वप्रथम अपने आवास आधार शिला पर बिखरे गेरू की

Scanned with OKEN Scanner

गोलियों के जमाव पर बनाया था क्योंकि वहाँ पर आधारशिला पर किसी भी प्रकार का मृदा अच्छादन नहीं था। आवास स्थल प्रायः ऊँचे स्थलों पर ही थे यद्यपि उद्योग–स्थल सभी प्रकार के स्थलों पर मिलते हैं। उपलब्ध पत्थरों की दिशा (Alignment) तथा स्तम्भ गर्तों के आधार पर आवासों की रूपरेखा का अनुमान किया गया है। ये स्थल उद्योग–स्थल के रूप में भी प्रयुक्त होते थे। आवास स्थल पर भी सम्भवतः विशिष्ट कार्यों के लिए विशिष्ट स्थान होते थे, जैसे उपकरण निर्माण–स्थल। ऐसे स्थलों पर अनुपयोजित तथा उपयोजित फलकों की संख्या अधिक है। अन्य स्थलों, –निवास–स्थलों पर इनकी संख्या कम है। ऐसा प्रतीत होता है कि उपकरणों में विशिष्टता

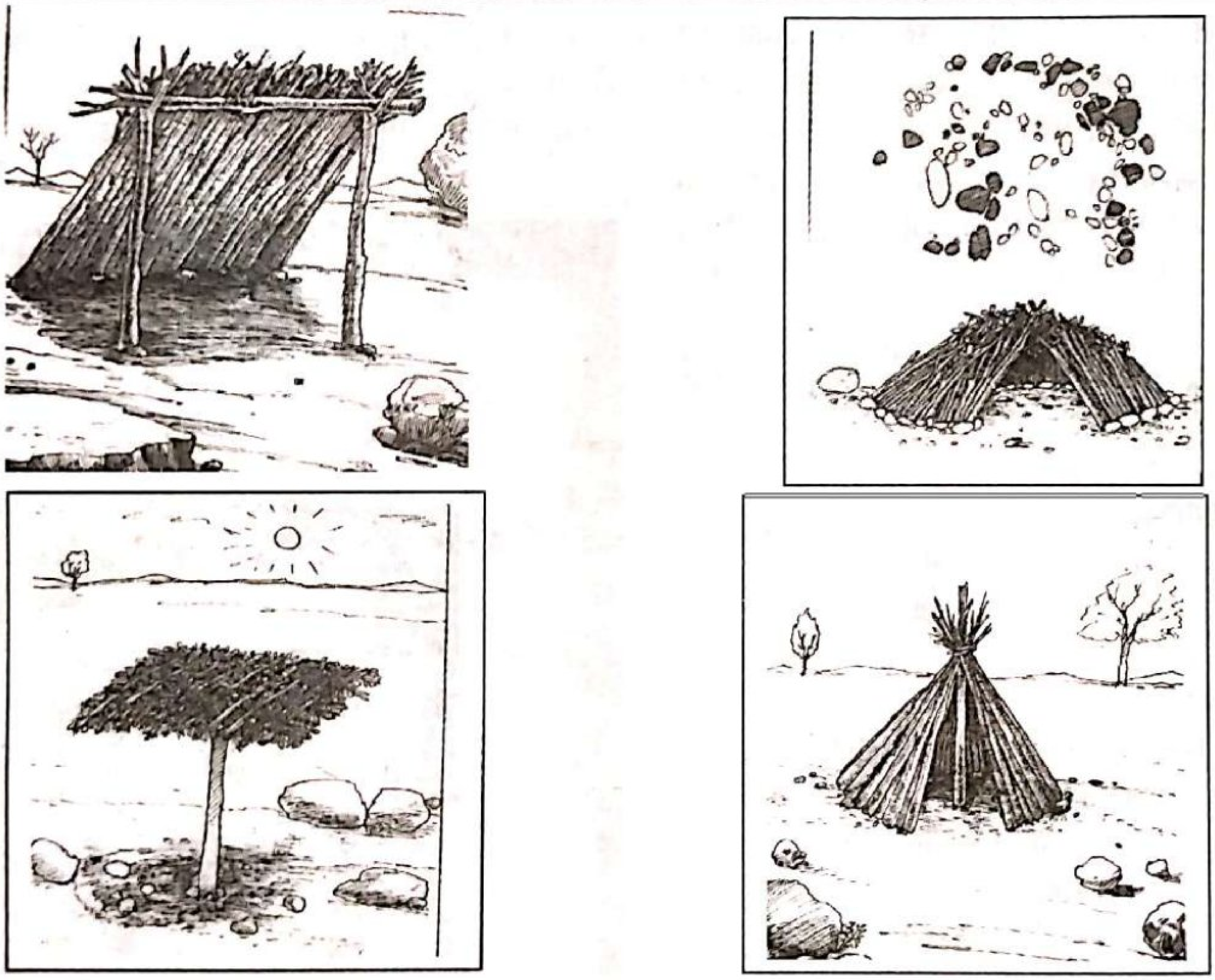

पैसरा के आवासों का अनुमानित स्वरुप : रेखा चित्र 19

का समावेश हो गया था। निश्चित कार्य के लिए निश्चित उपकरणों का प्रयोग होता था, जैसे बरछाकार उपकरण जिनमें प्रायः सभी की नोकें टूटी हुई हैं इससे अनुमान करते हैं कि उनके एक ही प्रकार के कार्य के लिए प्रर्युक्त किया गया होगा। हैण्डैक्सों के सम्बन्ध में देखा गया है कि ये प्रायः उन्हीं स्थलों पर मिले हैं जहाँ स्तम्भगर्त खोदे गए हैं। उनके टूटे नोक भी एक मीटर के अन्दर ही मिले हैं। सम्भवतः इनका उपयोग गड्ढा खोदने के लिए करते थे। इनका उपयोग जड़ो आदि को खोदने के लिए भी करते होगें। उपकरणों के वितरण स्वरूप (Distribution Pattern) से अनुमान

किया जा सकता है कि विशिष्ट प्रकार के उपकरण विशिष्ट लोग बनाते होंगे। उत्खनन कर्ताओं ने यह जानने का प्रयास किया है कि ये अपने आवास से कितने क्षेत्रा तक अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विचरण करते थे। उनके अनुसार प्रत्येक आवास का विचरण क्षेत्र लगभग 18 वर्ग किलोमीटर का था।

आश्यूल आवास स्थलों पर पत्थरों के रखने की जो संरचनायें मिलती हैं वे वक्र (Curve) रेखा, आयताकार अथवा वर्गों के समान मिलते हैं। प्रायः 30 से 60 से0मी0 की दूरी पर प्रस्तर पिण्ड रखे जाते थे। A E क्षेत्र में पत्थर बिना अन्तराल के रखे मिले।

खन्ती नं0 2 में इस प्रकार की 4 मीटर लम्बी तथा लगभग 1 मीटर चौडी संरचना मिली थी। इसी प्रकार से 20 से0मी0 मोंटी तथा 90 से0मी0 लम्बी बालू मिट्टी से बनी संरचनाये भी मिली हैं। इस प्रकार की संरचनायें पद्दैया को हुण्सगी (Hunsgi) में भी मिली थी।

इस प्रकार की संरचनायें किसी प्रकार के तम्बू (Tent Cover) अथवा हवा रोकने के लिए अथवा पशुओं से रक्षा के लिए निर्मित की जाती थी। कुछ स्थलों पर जैसे E तथा G में इन संरचनाओं के साथ स्तम्भ गर्त भी मिले हैं जो आयताकार, अर्धवृत्ताकार स्वरूप बनाते हैं। इस प्रकार के आवास आद्यैतिहासिक काल में तथा आधुनिक जनजातियों की आवास संरचना में भी मिलते हैं।

कुछ स्थलों पर 15 से0मी0 से 30 से0मी0 गहरे स्तम्भ गर्त जहाँ पर उपकरण समूह मिले हैं, मिलते हैं। D क्षेत्र में एक ही स्थान पर सात गर्त मिले हैं। अन्यत्र, दो ऐसे गर्त भी मिले हैं, जिनसे आवास की संरचना की जा सकती है: स्तम्भ गर्तों के आधार पर तीन प्रकार की संरचनायें हो सकती हैं एक स्तम्भगर्त वाले, दो स्तम्भगर्त वाले तथा पत्थर की संरचना के साथ, एक, दो, या अधिक स्तम्भ गर्त वाले। इनके द्वारा विविध प्रकार के झोपड़ियों का निर्माण किया जा सकता था।

## अर्थ व्यवस्था

प्रायः धारणा है कि आश्यूल संस्कृति के लोगों का जीवन आखेट तथा संग्रह पर आधारित था। पैसरा में निवास स्थल से एक भी हड्डी नहीं मिली, न ही कोई वानस्पतिक अवशेष। यहाँ से प्राप्त उपकरणों का उपयोग तीन प्रकार से सम्भावित लगता है : काटने के लिए, खुरचने के लिए तथा खोदने के लिए। बहुत सम्भव है कि लकड़ी के भाले सदृश उपकरण यहाँ के लोग भी बनाते हों जो अब नहीं मिलते। ऐसा प्रतीत होता है कि इन लोगों के जीवन की आवश्यकतायें जंगलों के उत्पाद से पूरी होती होंगी।

Scanned with OKEN Scanner

## भीमबंध

भीमबंध से लगभग सात मील की दूरी पर लगभग 830 फीट ऊँची पहाड़ी के पूर्वी किनारे पर एक समतल स्थान से एक छोटी नदी के किनारे (निर्मल कुमार बोस, निर्मल कुमार गुप्त, परिल बोस, अरबिंद, 1960; पेलियोलिथ्स फ्राम मुंगेर डिस्ट्रिक्ट, बिहार, मैन इन इण्डिया 40, पृ० 68) तथा उनके सहयोगियों को निम्न पूर्व पाषाणकालीन उपकरण उपलब्ध हुए थे जिनमें से दो विकसित आशूलियॉ प्रकार के थे। साधारणतः ये उपकरण मयूरभंज से प्राप्त विकसित उपकरणों के ही समान हैं।

बिहार प्रदेश में सबसे अधिक कार्य सिंहभूम जिले में ही हुआ है। यह छोटा नागपुर के दक्षिण–पूर्वी भाग में 21° 58′ तथा 23° 36′ उ0 अक्षांस (N. Latitude) और 86° 54′ देशांतर (E. Longitude) पर स्थित है। इस जिले की तीन प्रमुख नदियाँ सुवर्णरेखा वैतरणी तथा ब्राह्मणी हैं। सुवर्णरेखा इनमें सबसे बड़ी है। खरवई में पुनः अनेक छोटी–छोटी सरिताएँ जैसे, गमुआगरा, रोरो आदि मिलती हैं। रोरो की घाटी में सेन तथा घोष (सेन, धरणी तथा घोष, अशोक कुमार, 1960, ऑन दि अकरेंस ऑफ पेलियोलिथ्स इन सिंहभूम, मैन इन इण्डिया, वाल्यूम 40, 3 सेप्टेम्बर) को प्रस्तर उपकरण उपलब्ध हुए थे। उपकरण प्रमुखतः क्वार्टजाइट तथा जैस्पर के बने हैं, जो घाटी में पेबुल के रूप में बहुतायत से उपलब्ध हैं।

सेन आदि के अनुसार रोरो घाटी में तीन वेदिकाएँ हैं जो क्रमशः 60, 40 तथा 20 फीट की ऊँचाई पर स्थित हैं। उपर्युक्त विद्वानों के अनुसार ये वेदिकाएँ स्थानीय हैं। (सेन, धरणी तथा घोष, अशोक कुमार, 1960, पाश्वोद्धरित, पृ० 181)

तिलिमदाह के निकट भी उन्हें तीन जलोढ़ (Alluvial) वेदिकाएँ दृष्टिगोचर हुई थीं जिनका निर्माण भी सम्भवतः पृथ्वी के स्थानीय उत्थापन (Local uplift) के फलस्वरूप हुआ था। इनमें से प्रथम के ऊपर ग्रैवेल मिलता है, जो स्थान–स्थान पर पीली मिट्टी से आवृत्त है। ग्रैवेल के नीचे प्रायः मोरम का जमाव मिलता है। दूसरी वेदिका काफी सपाट है और उसके ऊपर भी ग्रैवेल है। उपकरण प्रमुखतया प्रथम ग्रैवेल से ही मिले हैं, किन्तु वे दूसरी तथा तीसरी वेदिका से भी प्राप्त हुए हैं, जो सम्भवतः प्रथम वेदिका से बहकर आये थे।

चाईबासा (Chaibasa) की कुछ खदानों से यहाँ के स्थानीय जमाव के क्रम पर प्रकाश पड़ा है। इनके अनुसार सबसे निम्न–स्तर पर एक स्टीयेटाइट (Steatite) जमाव के ऊपर लगभग 20 फीट मोटा विशाल प्रस्तर–पिण्ड का निक्षेप है। इसके ऊपर लगभग 15 फीट मोटा ग्रैवेल है। उसके ऊपर पुनः लाल मोरम तथा पीली बलुई मिट्टी का जमाव है जो क्रमशः 5 तथा 12 फीट मोटा है। प्रथम जमाव का आधार लैटेराइट मोरम है।

सभी उपकरण चाईबासा तथा उसके निकट से ही प्राप्त हुये हैं। सेन तथा घोष ने इन्हें तीन प्रमुख वर्गों –1. पेबुलोपकरण, 2. कोरोपकरण तथा 3. फलक उपकरण में विभाजित किया है। पेबुल उपकरणों की कोटि में पेबुल पर बने उपकरणों की गणना की गई है। यहॉ पर केवल एक पेबुल समन्तान्त हैण्डैक्स (Pebble-butted Handaxe) प्राप्त हुआ था। कोरोपकरणों में उभयपक्षीय चॉपिंगोपकरण, अबेवीलियॉ आशूलियॉ हैण्डैक्स और क्लीवर की गणना की गई है। फलक उपकरणों में चॉपर तथा स्क्रेपर सम्मिलित हैं।

पैंतीस उपकरणों में छब्बीस हैण्डैक्स, दो चॉपर–चॉपिंग उपकरण तीन क्लीवर तथा चार स्क्रेपर हैं। इनमें इक्कीस उपकरण जैस्पर के हैं और अन्य क्वार्टजाइट, सैंडस्टोन, चर्ट, क्वार्टज तथा बसाल्ट के हैं। प्ररूपात्मक दृष्टि से यह मद्रास–हैण्डैक्स उपकरण परम्परा के सन्निकट हैं।

Scanned with OKEN Scanner

घोष ने कालान्तर में सिंहभूम के भू–वैज्ञानिक जमावों का भली–भाँति अध्ययन किया। उनके अनुसार वहाँ पर प्रातिनूतन तथा उत्तर प्रातिनूतन कालीन जमाव इस प्रकार हैं (घोष, ए0 के0 1964, 'स्टडीज ऑन दि पेलियोलिथिक कल्चर ऑफ सिंहभूम, (थीसिस), कलकत्ता विश्वविद्यालय):

1. क्वार्टजाइट की आधार–शिला के ऊपर पुनर्स्थापित पेबुल–युक्त लैटेराइट (Secondary Pebbly Laterite) का जमाव है।
2. प्रथम के ऊपर चितकबरी मिट्टी (Mottled clay) का जमाव है। इसकी मोटाई स्थान–स्थान पर भिन्न है।
3. चितकबरी मिट्टी के ऊपर ग्रैवेल कांग्लोमरेट (Gravel Conglomerate) जमाव है। इन दोनों के बीच में अपसमविन्यास (Disconformity) है।
4. ग्रैवेल कांग्लोमरेट के ऊपर गाद–मृत्तिका (Silty clay) का जमाव है।
5. गाद मृत्तिका के ऊपर जल–घर्षित प्रस्तर जमाव है। इन दोनों के बीच में भी अपसमविन्यास है।
6. कुछ स्थानों पर ग्रैवेल–कांग्लोमरेट, गाद–मृत्तिका, जल–घर्षित प्रस्तर–जमावों का स्थान पुनर्स्थापित लैटेराइट (Secondary Laterite) के एक बहुत मोटे जमाव ने ले लिया है।
7. प्रातिनूतन काल का अन्त आधारिक ग्रैवेल के साथ गहरी भूरी मिट्टी के जमाव से होता है।
8. सबसे ऊपर आधुनिक जमाव है।

निम्नतर स्तर का पुनर्स्थापित लैटेराइट (Secondary Laterite) जमाव निम्न–प्रातिनूतन कालीन (Lower Plesistocene Period) है तथा इसका जमाव आर्द्र काल में हुआ था। इसके ऊपर का चितकबरी मिट्टी का जमाव अपेक्षाकृत कम आर्द्र अथवा शुष्क काल में हुआ था। ये दोनों ही जमाव पुरातत्वीय दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं हैं, क्योंकि इनसे कोई उपकरण नहीं प्राप्त हुआ है। संस्कृति का क्रम तीसरे अथवा ग्रैवेल कांग्लोमरेट जमाव से प्रारम्भ होता है जिसे निम्न ग्रैवेल कहा गया है। घोष की धारणा है कि यह जमाव इस भू–भाग के द्वितीय आर्द्रकाल का निर्देश करता है।

यहाँ के निम्न पूर्व पाषाणकाल के उपकरण उद्योग के दो प्रमुख तत्व है, — 1.चॉपर, 2. उभयपक्षीय उपकरण। ये उपकरण चितकबरी मिट्टी तथा उसके ऊपर के ग्रैवेल कांग्लोमरेट के संधि–स्थल से मिलने लगते हैं तथा ऊपर के ग्रैवेल जमाव तक मिलते हैं। सभी उपकरणों को दो प्रमुख–वर्गों – अबेवीलियाँ तथा आशूलियाँ में विभाजित किया गया है। घोष की धारणा है कि अबेवीलियाँ प्रकार के उपकरण चितकबरी मिट्टी तथा ग्रैवेल (Gravel) के संधि–स्थल में ही प्रायः मिलते हैं। अबेवीलियाँ उपकरण इस क्षेत्र की प्राचीनतम संस्कृति का निर्देश करते हैं।

उपकरणों के ऊपर बड़े तथा गहरे फलक चिन्ह (Flake Scar) मिलते हैं तथा उनका अनुभाग भी अनियमित है। प्रमुख उपकरणों में चॉपर तथा अबेवीलियाँ हैण्डैक्स हैं। ये भोंड़े तथा बड़े पेबुल पर बने हैं। इनके निर्माण में स्थिर–हथौड़ा–पद्धति (Block-on-block Technique) का प्रयोग किया जाता है। चॉपर में एकपक्षीय फलकीकरण है तथा आघात प्रायः केन्द्रोन्मुख दिशा में ही मिलता है। हैण्डैक्सों में फलकीकरण विभिन्न दिशाओं से हुआ है। सभी उपकरण भारी तथा विशालकाय हैं। यहाँ के उद्योग में एक विकास क्रम मिलता है। इस प्रकार घोष के अनुसार यहाँ के अबेवीलियाँ तथा आशूलियाँ उद्योगों में उत्पत्तिपरक सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। निम्न सिमेण्टेड ग्रैवेल, निम्न गाद मृत्तिका तथा उच्च ग्रैवेल तीनों जमावों में आशूलियाँ उद्योग के विकास की तीन अवस्थाएँ मिलती हैं जिन्हें क्रमशः आशूलियाँ I, II तथा III कहा गया है। उपकरणों के निर्माण की तकनीक

Scanned with OKEN Scanner

के अध्ययन से स्पष्ट है कि उनके फलक चिन्ह क्रमशः छोटे तथा छिछले होते गये हैं। आशूलियॉ I में सर्वप्रथम बेलनाकार–हथौड़ा–पद्धति (Cylindrical hammer Technique) का प्रयोग हुआ है, जो आशूलियॉ – उद्योग की विशेषता है।

उपकरण समुदाय में चॉपर (एक पक्षीय तथा उभयपक्षीय) हस्तंबसुली (Handa $d_3$ e), हैण्डैक्स, क्लीवर तथा स्क्रेपर हैं। इनमें से अधिकांष पेबुल तथा कोर पर बने हैं। फलकों का नितान्त अभाव नहीं है। इनके अतिरिक्त गढ़क (Fabricator) कोर, पुनर्गढ़ित फलक भी यहॉ के उपकरण उद्योग के अंग हैं। एकपक्षीय चॉपर फलक पर बने है। उभयपक्षीय चॉपर फलकों पर निर्मित नहीं मिलते। भारत में हस्तबंसुली (Handa $d_3$ e) केवल यहॉ से ही अधिसूचित है। ये पेबुल तथा कोर दोनों पर ही बने है। हैण्डैक्स की संख्या सबसे अधिक है। वे पुण्डरीकाकार (Pyriform), प्रलंब अण्डाभ (Elongated oval) क्लीवर के समान (Cleaver type) उपत्रिकोणात्मक (Sub-triangular), चौड़ा–अण्डाभ (Broad oval) अण्डाभ (Ovate) बादामाकार (Almond), बरछाकार (Lanceolate) आदि हैं।

उपकरणों में उभयपक्षीय क्लीवर भी विशेष उल्लेखनीय हैं। ये भी प्रायः पेबुल कोर तथा फलकों पर निर्मित हैं। समन्तान्त के आधार पर इन्हें तीन वर्गों, यथा 1. सीधा 'U' समन्तान्त (Straight U butt)] 2. उन्नतोदार समन्तान्त (Convex 'U' butt)] 3. 'V' समन्तान्त ('V' butt),में विभाजित किया गया है। क्लीवर, आशूलियॉ II स्तर के पूर्व नहीं मिलते हैं, किन्तु II तथा III स्तरों में उनका बहुत शीघ्रता से विकास होता है। घोष की धारणा है कि क्लीवर का विकास हस्तकुल्हाड़ी (Handaxe) से सम्बन्धित है। स्क्रेपर, कोर तथा फलक दोनों पर बने मिलते हैं। उनके दो प्रमुख प्रकार हैं – पार्श्व (Side) तथा वृत्तात्मक (Round)।

उच्च ग्रैवेल तथा उसके ऊपर की मृत्तिका में फलक उपकरण मिलते हैं। इसमें लेवालेवा के तत्व विद्यमान हैं। इसके पूर्व के उपकरणों की संख्या कम हो जाती है। स्क्रेपर इस काल का प्रमुख उपकरण है। दूसरा विशेष उपकरण शर (Point) है। छिद्रक (Borer) भी इस उद्योग का एक मुख्य अंग है।

यहाँ के उपकरण–समुदायों का अन्तिम तत्व फलक–ब्लेड (Flake-Blade) तत्व है। इसके निर्माण में पहले से भिन्न प्रकार के पत्थर का प्रयोग किया गया है। फलकों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक है। इसमें चॉपर (Choppers) पुनः मिलने लगते हैं। किन्तु ये पहले की अपेक्षा सुडौल तथा छोटे हैं। घोष के अनुसार चॉपर को केवल निम्न पुरापाषाणकाल का ही विशिष्ट उपकरण नहीं मानना चाहिए। अन्य उपकरणों में स्क्रेपर, शर, चाकू (Knife) , छिद्रक (Borer) तथा ब्यूरिन (Burin) की गणना की जा सकती है। सभी उपकरण फलक अथवा ब्लेड पर बने हैं। ब्लेड–कोरों की अधिकता है।

घोष की धारणा है कि उद्योगों का उपर्युक्त क्रम सम्पूर्ण पूर्वी भारत में लागू हो सकता है (घोष, ए0 के0 'पेलियोलिथिक इण्डस्ट्रीज ऑफ ईस्टर्न इण्डिया इन दि लाइट ऑव रिसेंट डिस्कवरीज' पर आधारित है जो Actes du VII congress International des Sciences Prehistoriques et Protohistoriques, PRAGUE, 21-27AOUT, 1966 के द्वारा। ACADEMIA Institu d'Archeologie SAV PRAGUE)

Scanned with OKEN Scanner

# 11

# पश्चिमी बंगाल प्रदेश

## (West Bengal Pradesh)

बंगाल प्रदेश गंगा की निचली घाटी में स्थित है। इसके पश्चिम में झारखण्ड (बिहार), पूर्व में बांग्लादेश, उत्तर में हिमालय तथा दक्षिण में बंगाल की खाड़ी एवं दक्षिण पश्चिम में ओडिशा के प्रदेश स्थित है। बंगाल का अधिकांश भाग, उत्तर के जलपाइगुड़ी, दार्जिलिंग तथा कूच–बिहार और पश्चिम दक्षिण के मिदानपुर, बांकुड़ा तथा पुरूलिया जिलों को छोड़कर, गंगा तथा उसकी सहायक नदियों द्वारा सिंचित मैदानी प्रदेश हैं। बंगाल का दक्षिण–पूर्वी भाग समुद्रतटीय डेल्टा का मैदान है।

बंगाल के पश्चिम तथा पश्चिम–दक्षिण से सीमाप्रान्तों में बिहार–झारखण्ड तथा उड़ीसा से निम्न पुरा पाषाणकालीन संस्कृतियों के अवशेष प्राप्त हुए हैं, किन्तु आधुनिक पश्चिम बंगाल से इसके अधिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। इसका प्रमुख कारण योजनाबद्ध वैज्ञानिक अनुसंधान एवं सर्वेक्षण की न्यूनता है। निश्चय ही बंगाल के पश्चिमी तथा पश्चिमी–दक्षिणी भागों का यदि सूक्ष्म सर्वेक्षण किया जाए तो अवश्य निम्न पुरा पाषाणकालीन मानव के अवशेष प्राप्त होंगे, बंगाल में 1865 ई0 में बी0 बॉल को बांकुड़ा जिले से सर्वप्रथम एक हैण्डैक्स उपलब्ध हुआ था। किन्तु, उसके बाद विद्वान् इस क्षेत्र से उदासीन रहे। 1959–60 ई0 से पुनः इस दिशा में विद्वानों का ध्यान आकर्षित हुआ तथा कम से कम बाँकुड़ा, मिदनापुर एवं पुरूलिया जिलों में अनेक प्रस्तरयुगीन आवास–स्थल कलकत्ता विश्वविद्यालय तथा राज्य – पुरातत्व विभाग के प्रयासों के फलस्वरूप प्रकाश में आये हैं।

### बाँकुड़ा, हाथीखेड़ा आदि

बाँकुड़ा, पश्चिमी बंगाल के सबसे पश्चिमवर्ती जिलो में से एक है। इसके दक्षिण तथा दक्षिण–पूर्व में मिदनापुर तथा पश्चिम में सिंहभूम है। जिले का पूर्वी भाग मैदान है तथा दामोदर के जलोढ़ निक्षेपों (Alluvial deposit) द्वारा निर्मित है। सोनामुखी तथा जेपुर (Jeypore) के निकट की भूमि लैटेराइट (Laterite) के जमाव से युक्त है। जिले के अन्य भाग इससे सर्वथा भिन्न हैं तथा उनमें अनेक पहाड़ियाँ हैं। वास्तव में बाँकुंड़ा जिले में छोटा नागपुर का पठारी प्रदेश समाप्त होकर मैदानी इलाके से मिल जाता है।

इस जिले की प्रमुख नदी द्वारकेश्वर है जो बीच से बहकर उसे दो भागों में विभाजित करती है। इसके अतिरिक्त गंधेश्वरी, दामोदर, कुमारी तथा कसाई आदि अन्य उल्लेखनीय नदियाँ हैं।

बाँकुड़ा जिले में कृष्णस्वामी ( इण्डियन आर्क्यालजी – ए रिव्यू, 1959–60, पृ0 48) सेन (सेन, धरणी, घोष, ए0के0, चैटर्जी, एम0, 1963, पेलियोलिथिक इण्डस्ट्री ऑफ बाँकुड़ा, वेस्ट बंगाल, मैन इन इण्डिया, वाल्यूम 43, जून 1963, पृ0 100–113 ), घोष (वही, 1960–61, पृ0 59), दासगुप्त (वही, 1965–66 (साइक्लोस्टाइल प्रति), पृ0 103–105; 1968–69, पृ0 41–42) आदि विद्वानों ने अनेक निम्न पूर्व पाषाणकालीन उद्योग स्थलों को अधिसूचित किया है। सेन तथा घोष का प्रमुख सर्वेक्षण बाँकुड़ा के निकट द्वारकेश्वर तथा कसाई और कुमारी की घाटियों में है। दोनों – ही स्थानों पर विद्वानों ने बहुत से उद्योग–स्थलों को ढूंढ़ा है। द्वारकेश्वर के समीप मन्जूरा के निकट पूर्व तथा पश्चिम की भूमि ग्रैवेल जमाव से आवृत्त है। यह स्थान समुद्र के जल–तल से 300 से 350 फीट

Scanned with OKEN Scanner

तक ऊँचा है। ग्रैवेल के नीचे जहाँ–जहाँ लैटेराइट अनावृत्त (Exposed) है वह अपरदी (Detrital) प्रकार का है। पेबुल लाल रंग में रंगे हुए हैं।

बाँकुड़ा के निकट उपकरण ग्रैवेल –मिश्रित अपरदी लैटेराइट जमाव में मिलते हैं, जो अनेक स्थानों पर आधारशिला पर स्थित है।

कसाई तथा कुमारी नदियों के निकटवर्ती उद्योग–स्थलों में हाथीखेड़ा नामक उद्योग–स्थल विशेष उल्लेखनीय हैं। यहाँ से बहुत से हैण्डैक्स, एकपक्षीय तथा उभयपक्षीय चॉपर तथा स्क्रेपरों का संकलन किया गया है। यहाँ से संग्रहीत उपकरण भूरे लाल रंग के हैं।

बाँकुड़ा के निकट प्राप्त उपकरणों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है (सेन, डी0, घोष, ए0के0 आदि, 1963, पार्श्वोद्धरित, पृ0 112)

(अ) चॉपर – पेबुल तथा कोर पर निर्मित।

(ब) स्क्रेपर – कोर तथा फलक पर निर्मित।

(स) हैण्डैक्स – कोर पर निर्मित।

(अ) अधिकांश चॉपर क्वार्टजाइट के हैं, किन्तु कुछ क्वार्टज पर भी बने मिलते हैं। उपकरण अधिकांशतया रूक्ष हैं। कार्यांग एकपक्षीय तथा लहरदार है। उभयपक्षीय पेबुल चॉपरों की संख्या नगण्य है। पुनर्गढ़न नहीं है। प्रायः कार्यांग पेबुल के किनारे ही मिलता है। कभी–कभी कार्यांग पूरी गोलाई में भी निर्मित मिलता है।

(ब) स्क्रेपर क्वार्टज तथा क्वार्टजाइट के बने हैं। वे भी लाल रंग के हैं। वे कोर अथवा फलक पर बने हैं। स्क्रेपर पार्श्व तथा वृत्तात्मक प्रकार के हैं। फ लकीकरण प्रायः कार्यांग तक ही सीमित मिलता है।

(स) बाँकुड़ा के निकट द्वारकेश्वर की घाटी में हैण्डैक्स बिरले हैं किन्तु हाथीखेड़ा के निकट उनकी संख्या अपेक्षाकृत अधिक है। हैण्डैक्स अधिकांशतया बदामाकार अथवा अण्डाकार हैं तथा देखने में प्रारम्भिक आशूलियाँ प्रकार के हैं।

हाथीखेड़ा वर्ग के उद्योग–स्थलों से केवल एक ही क्लीवर उपलब्ध हुआ था। किन्तु प्रथम वर्ग में इनका नितान्त अभाव था।

साधारण रूप से बॉकुड़ा तथा सिंहभूम के उपकरण उद्योगों को तकनीक तथा स्तरीकरण केदृष्टि से समान कहा जा सकता है।

सेन तथा घोष की धारणा है कि यहॉ और सोहन के पेबुलचॉपरों में बहुत समानता है; अन्तर मात्र इतना है कि सोहन परम्परा में फलक उसका एक प्रमुख अंग है[2], जो कि बॉकुड़ा में नही है। इसके अतिरिक्त सोहन में उभयपक्षीय उपकरण नहीं हैं, जबकि यहॉ पर विद्यमान है।

**गंधेश्वरी की घाटी** में सुसूनिया पहाड़ी पर पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के दासगुप्त का सर्वेक्षण भी विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने सुसूनिया पहाड़ी के निकट नदियों की घाटियों (वकजोर, धनकोरा तथा गंधेश्वरी आदि इण्डियन आर्क्यालजी –– ए रिव्यू, (साइक्लोस्टाइल) 1965–66, पृ0 103–105) तथा उनके कंगारों में लगभग पैंतीस उद्योग–स्थलों से निम्न पूर्व पाषाणकाल के उपकरणों का विशाल संग्रह किया है। उपकरण–समुदाय में प्रमुखतः विकसित प्रकार के आशूलियाँ हैण्डैक्स, अण्डाभ (Ovates), हृदयाकार (Cordates) तथा क्लीवर है। एकान्तर फलकीकरण तकनीक से फलकीकरण किया गया है। उपकरणों की दशा के आधार पर उन्हें दो वर्गों में विभाजित किया गया

Scanned with OKEN Scanner

है, जिन्हें एक दूसरे से अधिक प्राचीन कहा गया है। दास गुप्त की धारणा है कि हैण्डैक्स को प्रयोग में लाने वाले लोग सर्वप्रथम बालुकाश्म (Sandstone) की सतह पर आकर बसे होगें। क्योंकि कभी–कभी ग्रैवेल चट्टानों की दरारों में भी घुस गये हैं। इस काल के बाद अधिक आर्द्रकाल आया जब नदियों ने पहाड़ियों की घाटियों में तथा, कगारों में ग्रैवेल का जमाव किया। उपकरण अधिकांशतया ग्रैवेल में मिलते हैं। पहाड़ियों पर वे विरले हैं। कभी–कभी उपकरण बह कर आए मलवे में भी मिलते हैं। सुसूनिया के निकटवर्ती क्षेत्र में ग्रैवेल की औसत मोटाई लगभग एक मीटर है। इसमें क्वार्ट्ज, क्वार्टजाइट, लैटेराइट की गोलियाँ तथा चिकनी कीचड़ (Sticky mud) मिलती है। धनकोरा तथा गंधेश्वरी के निरन्तर प्रवाह मार्ग परिवर्तन के कारण बहुत से स्थानों पर पुनर्निक्षेपित ग्रैवेल मिलता है।

सिमेण्टेड ग्रैवेल के ऊपर पीले रंग से गेरूए–लाल रंग का बालू–जमाव है जिसमें प्रायः क्वार्टजाइट, पेगमेटाइट तथा फेल्सपार के टुकड़े हैं। इस स्तर से मध्य पाषाणकाल (Middle StoneAge) के अथवा मध्य पुरापाषाणकाल (Middle Palaeolithic) के उपकरण प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त बहुत अधिक संख्या में जीवाश्म भी यहाँ से मिले हैं उनमें से प्रमुख जीवश्म Bubalus palaeindicus, Bos namadicus, Bos Sp, Palaeoloxodon namadicus, Equus namadicus आदि हैं। जीवाश्मों के आधार पर इस स्तर को उच्च प्रातिनूतनकाल का कहा गया है। Bos namadicus की उपस्थिति से यह संभावित है कि यह स्तर उच्च प्रातिनूतनकाल से अधिक प्राचीन हो।

इस जमाव के ऊपर के स्तर पर हलके पीले रंग की बलुई मिट्टी का जमाव है जिसमें लैटेराइट की गोलियाँ भी है। दासगुप्त आदि की धारणा है कि यह जमाव नूतन–काल के आर्द्र जलवायु का द्योतक है। वे लघुपाषाण ब्लेड तथा फलक और नव पाषाण–युगीन वस्तुओं को इससे सम्बन्धित मानते हैं।

बाँकुड़ा तथा पुरूलिया जिलों में कांग्सवती (इण्डियन आर्क्यालजी – ए रिव्यू, 1959–60, पृ0 48; 1968–69, पृ0 41–42) की घाटी भी निम्न पुरापाषाणकालीन उपकरण उद्योग के दृष्टिकोण से विशेष उल्लेखनीय है। कृष्णस्वामी ने प्रारम्भ में बाँकुड़ा में हाथीखेड़ा, छियादा तथा बद्दिह (Baddih) में तथा पुरूलिया में मनररिहा में हैण्डैक्स तथा एकपक्षीय चॉपर प्राप्त किये थे। क्लीवर की संख्या अपेक्षाकृत बहुत कम थी तथा वे अधिक विकसित नहीं प्रतीत होते थे। बाँकुड़ा में उपकरण समुद्र तल से 450 फुट ऊपर 4 से 5 फीट मोटे ग्रैवेल के जमाव से उपलब्ध हुए थे।

दासगुप्त (वही, 1968–69, पृ0 41–42) ने कांग्सवती की घाटी का पुनः सर्वेक्षण किया जिसके फलस्वरूप कंकरदरा के निकट उन्हें लगभग 100 प्रारम्भिक तथा विकसित आशूलियाँ हैण्डैक्स, क्लीवर तथा पेबुलोपकरण प्राप्त हुए। ये उपकरण प्रायः पुनर्स्थापित लैटेराइट (Secondary Laterite) स्तर से मिले थे जो स्वंय आग्नेय (Igneous) प्रकार की डाइक (Dyke) पर आधारित था।

कंकरदरा के निकट दो वेदिकाओं की ओर भी इनका ध्यान आकर्षित हुआ जिनमें चार मीटर का अन्तर था। नीची वेदिका पर शिथिल सिमिण्टेड ग्रैवेल जमाव था जिसमें क्वार्ट्ज तथा क्वार्टजाइट के टुकड़े थे। ऊपर की वेदिका में पुनर्स्थापित लैटेराइट ग्रैवेल का जमाव था।

पश्चिमी बंगाल में मिदनापुर (इण्डियन आर्क्यालजी – ए रिव्यू, 1961–62, पृ0 59; 1963–64, पृ0 59; 1968–69, पृ0 41–42; सेन, डी0, घोष , ए0 के0, 1962, साइंस, एण्ड कल्चर, वाल्यूम 28,

नं0 7, जुलाई, पृ0 338–339) का जिला भी निम्न पुरा पाषाणकाल के दृष्टिकोण से विशेष उल्लेखनीय है। यह बाँकुड़ा के दक्षिणपूर्व में स्थित है। इसका उत्तर–पश्चिमी भाग छोटा नागपुर के पूर्वी भाग से मिला हुआ है। यहाँ पर स्थान–स्थान पर पहाड़ियों की ऊँचाई लगभग 1,000 फीट तक मिलती है तथा धरती पर लैटेराइट के जमाव हैं। भू–वैज्ञानिक दृष्टिकोण से यहाँ पर माइकेशियस शिष्ट क्वार्टजाइट ब्लूस्लेट तथा ट्रैप की संरचना मिलती है। छर्रेदार लैटेराइट के ऊपर लैटेराइट का ग्रैवेल जमाव है।

मिदनापुर में गोपालपुर (इण्डियन अर्क्यालजी – ए रिव्यू, 1963–64, पृ0 62), बेगुनाडीह, हाथीबरा (वही, 1968–69, पृ0 41), मुरसोल, चकदोवा (वही, 1964–65; पृ0 48; 1968–69, पृ0 42) गंगानीर मठ तथा शिलावती नदी के पास मिदनापुरके निकट कंसावती (इण्डियन अर्क्यालजी – ए रिव्यू, 1964–65, पृ0 48) आदि से उपकरण अधिसूचित है। प्रायः सभी स्थानों पर चॉपर, हैण्डैक्स तथा स्क्रेपर आदि पुनर्स्थापित लैटेराइट जमाव से मिले हैं। प्रायः लैटेराइट का यह जमाव आर्कयन आधारशिला पर आधारित है तथा इसके ऊपर रक्ताभ (Reddish) जमाव मिलता है। नालों आदि के निकट कभी–कभी लैटेराइट जमाव का स्थान ग्रैवेल ले लेते हैं जिनमें उपकरण मिलते हैं। घोष की धारणा है कि ग्रैवेल के विभिन्न स्तरों से प्राप्त उपकरणों से विकास क्रम (वही, 1964–65, पृ0 48) देखा जा सकता है। नीचे के स्तर से प्राप्त हैण्डैक्स अबेवीलियाँ तथा ऊपर के आशूलियाँ शैली के हैं।

जयघाटी में बोनकटी से अपरदी लैटेराइट (Detrital Laterite) तथा ग्रैवेल से निम्न पूर्व पाषाणकाल के उपकरण दासगुप्त, मुखर्जी (दासगुप्त, पी0सी0, 1964, दि एक्सकवेशन्स ऐट पाण्डुराजार ढिवि ए बुलैटिन ऑफ दि डाइरेक्टरेट ऑफ आर्क्यालजी, वेस्ट बंगाल नं0 2)तथा उनके सहयोगियों को उपलब्ध हुए थे। यहाँ के उपकरणों की यह एक विशेषता है कि उनमें से कुछ जीवाश्मित काष्ठ से निर्मित हैं।

Scanned with OKEN Scanner

# 12

# मेघालय

## (Meghalaya)

यह भारत का सबसे पूर्वोत्तरीय प्रदेश है जो पहले असम के नाम से विख्यात था। हाल में हुए पुनर्वर्गीकरण के फलस्वरूप यह अनेक छोटे-छोटे प्रान्तों जैसे नागालैण्ड (Nagaland), मेघालय (Meghalaya), अरूणाँचल (Arunachala), मिजोरम (Mizoram), मणिपुर (Manipura) तथा असम (Assam) में विभाजित हो गया है। अभी हाल तक यह प्रदेश भी प्रस्तुर युगीन मानव के निवास के लिए अनुपयुक्त समझाा जाता था, क्योंकि, भारत के अन्य प्रान्तों के समान यहाँ से प्रस्तर युगीन उपकरण प्रतिवेदित नहीं थे। इस प्रदेश को भारत के प्रागैतिहासिक प्रस्तरयुगीन मानचित्र पर लाने का श्रेय प्रमुख रूप से गौहाटी विश्वविद्यालय के डॉ0 टी0सी0 शर्मा को है। शर्मा तथा उनके सहयोगियों ने गारो पर्वतमाला में सर्वेक्षण के द्वारा अनेक प्रस्तर युगीन स्थलों को ढूँढ़ निकाला है (शर्मा, टी0सी0 एण्ड शर्मा, एच0 सी0, 1974, 'स्टोन एज कल्चर्स ऑफ दि गारो हिल्स : मेघालय', साइक्लोस्टाइल्ड प्रति, सेमिनार, इण्डियन प्रीहिस्ट्री, 1974, डेकन कालेज, पूना)

मेघालय के अतिरिक्त इस क्षेत्र के पुरापाषाणयुगीन संस्कृतियों के सम्बन्ध में समुचित सामग्री-उपलब्ध नहीं है। इसलिए उनका उल्लेख नहीं किया गया है।

Scanned with OKEN Scanner

# 13

# गारोहिल

यह मेघालय प्रान्त का उत्तर में स्थित एक नगर है। यहाँ के पर्वतीय प्रदेशों में गारों नामक जनजाति बसी है जिसके आधार पर ही इसका नामकरण हुआ है। दो जलोढ़ क्षेत्रों– उत्तर में ब्रहम्पुत्र तथा दक्षिण में सूर्मा घाटियों के मध्य में, पूर्व–पश्चिम दिशा में पर्वत श्रेणियाँ स्थित हैं जिनकी अधिकतम ऊँचाई 4,000 फीट है। इस जिले की प्रमुख नदियाँ सीमसंग (Simsang) अथवा सोमेश्वरी (Someswari), गनोल (Ganol), रोनग्राम (Rongram) तथा जिंजिरम (Jinjiram) है।

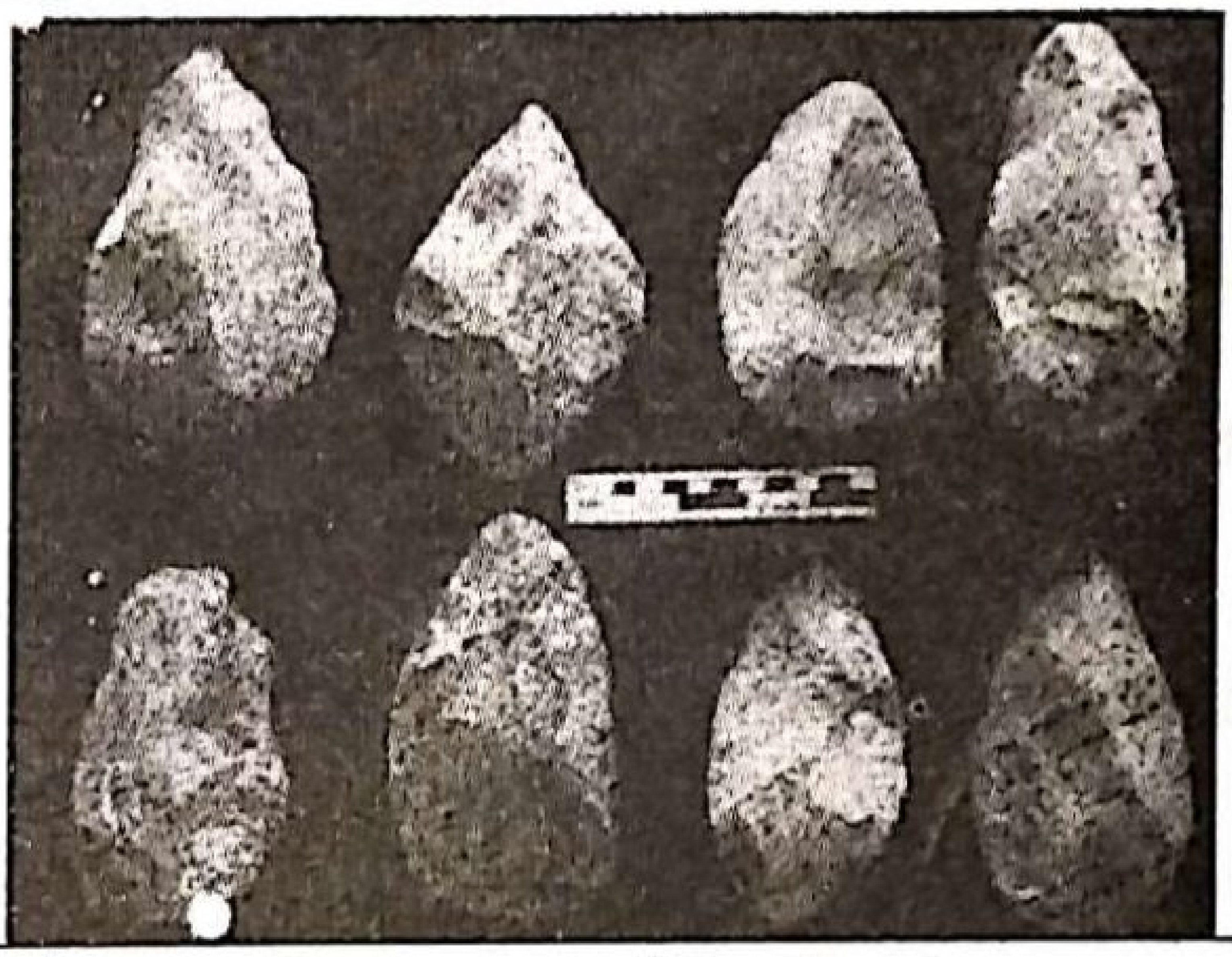

निम्नपुरापाषाणिक उपकरण गारोहिल चित्र सं0–20अ

भू–वैज्ञानिक दृष्टिकोण से गारो पर्वतमालाएँ प्रायद्वीपीय भारत के आर्कयन का ही विस्तार है। इसके बीच–बीच में डोलेरोइट (Dolerite) की डाइक (Dykes) भी हैं, जिनका उपयोग प्रागैतिहासिक मानव ने उपकरण निर्माण के लिए किया है। प्रागैतिहासिक मानव के उद्योग–स्थल मुख्य रूप से उन्हीं स्थलों पर हैं जहाँ उपकरण निर्माण के लिए पत्थर सुलभ हैं। जून 1974 में रोनग्राम (Rongram) वरम (Warm) , सीमसंग (Simsang) , सेलबेल (Selbel) तथा दिदामी (Didami) की घाटियों में नौ निम्न पुरा पाषाणकालीन स्थल प्रकाश में आये हैं। ये स्थल नदियों के ऊपरी भागों में स्थित है। इन सभी स्थलों में चार – रोनग्राम–अलगिरि (Rongram alagiri) , छिब्रगिरि (Chibragiri) , बरम थेब्रौगिरि (Waram Thebronggiri) तथा रोम्भगिरि (Rombhagiri) – स्तरित स्थल हैं। रोनग्राम–अलगिरि तथा छिब्रगिरि में संयोजित जल–घर्षित प्रस्तर–जमाव से चॉपर तथा हैण्डैक्स मिले हैं। इस ग्रैवेल तथा इससे प्राप्त उपकरणों की लगभग वही स्थिति है जो भारत में अन्य स्थानों में है। निम्न ग्रैवेल के ऊपर लाल गाद मिट्टी का मोटा जमाव है। शर्मा का विचार है कि ग्रैवेल तथा सिल्ट मध्य प्रातिनूतन कालीन नदी के उच्चयन (Aggradation) काल के दो चक्रों का निर्देश करते हैं।

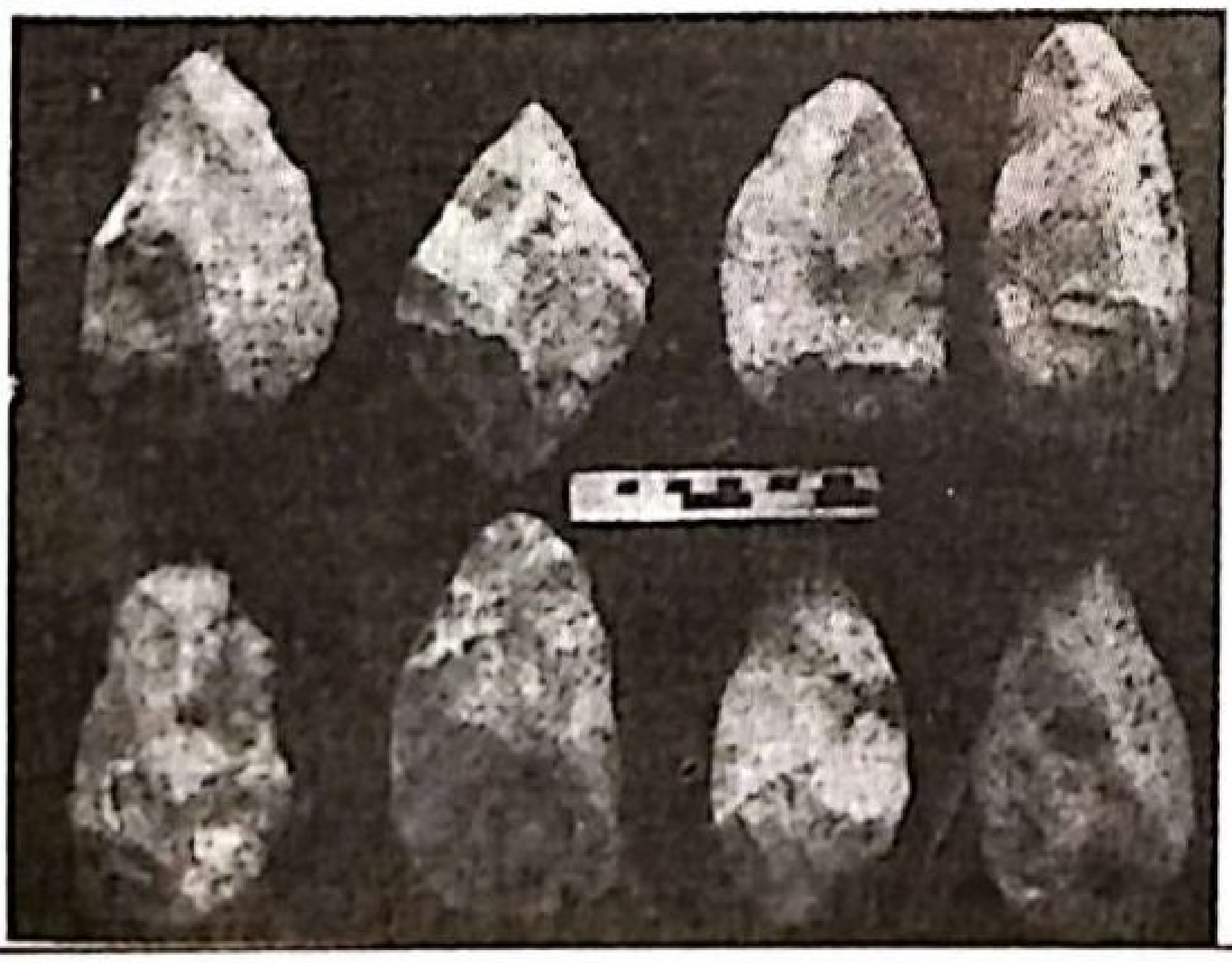

निम्नपुरापाषाणिक उपकरण गारोहिल चित्र सं0–20ब

Scanned with OKEN Scanner

गारोहिल में प्रातिनूतन कालीन जलोढ़ जमावों का पूरा क्रम अभी तक किसी भी स्थल पर नहीं मिला है। वरम थेब्रौगिरि (Waram Theoronggiri) नामक स्थान पर जो वरम नदी की वेदिका पर स्थित है बहुत से फलक उपकरण, कुछ हैण्डैक्सों तथा क्लीवरों के साथ प्राप्त हुए थे। यह सभी वहाँ पर पीली गाद मिट्टी (Yellowish Silt) तथा विशाल प्रस्तर पिण्डो (Boulders) के स्तरित जमावों से उपलब्ध हुए थे। शर्मा के अनुसार वरम थेब्रौगिरी की गाद मिट्टी का जमाव नदी के द्वितीय उच्चयन काल से सम्बन्धित किया जा सकता है तथा वह प्रारम्भिक उच्च प्रातिनूतन काल का है। प्रागैतिहासिक मानव इस स्थल पर निरन्तर मध्य पाषाणकाल (Mesolithic Period) तक रहा, क्योंकि ब्लेड–फ्लेक परम्परा तथा लघु पाषाणोपकरण भी इस स्थल से उपलब्ध हुए हैं।

गारोहिल में अभी तक स्तरित जमावों से उपकरण इतनी अल्प संख्या में मिले हैं कि उनके आधार पर उनके विकास का कोई भी क्रम स्थापित नहीं किया जा सकता है किन्तु, प्रारूपतामक आधार पर शर्मा ने नवपाषाणकाल के प्रारम्भ के पहले निम्न क्रम निर्धारित किया है :–

1. पेबुलोपकरण तथा चॉपर उपकरण परम्परा
2. कोरोपकरण तथा हैण्डैक्स–क्लीवर परम्परा
3. फलक उपकरण परम्परा
4. ब्लेड उपकरण परम्परा
5. लघुपाषाणोपकरण परम्परा

यहाँ के पेबुल तथा चॉपर उपकरण हैण्डैक्स परम्परा के ही अंग प्रतीत होते हैं। हैण्डैक्स तथा क्लीवर यहाँ के निम्न पुरा पाषाणकाल के सबसे प्रमुख अंग है। अबेवीलियाँ से आशूलियाँ के बीच कम–से–कम तीन अवस्थाएँ तकनीक के आधार पर निर्धारित की जा सकती हैं। उद्योगों के सम्बन्ध में मेघालय के निम्न पुरा पाषाणकाल के सम्बन्ध में इनती कम सामग्री उपलब्ध है कि उसके आधार पर अभी कोई सामान्य निष्कर्ष निकालना अनुचित होगा।

Scanned with OKEN Scanner

# 14

# ओडिशा प्रदेश

## (Odisa Pradesh)

पश्चिमी बंगाल के दक्षिण में स्थित ओडिशा भारत का एक पूर्ववर्ती प्रदेश है। यह उत्तर में पश्चिमी बंगाल के मिदनापुर तथा झारखण्ड के सिंहभूम जिलों, उत्तर–पश्चिम में झारखण्ड के रांची जिले, पश्चिम में छत्तीस गढ़ के रायगढ़ तथा रायपुर जिलों, दक्षिण–पश्चिम में बस्तर जिले तथा दक्षिण में आन्ध्र प्रदेश के श्रीकाकुलम, विशाखापटनम तथा पूर्वी गोदावरी जिलों से घिरा है। पूर्व में बंगाल की खाड़ी इसकी पूर्वी सीमा का निर्धारण करती है।

भू–वैज्ञानिक एवं भौगोलिक दृष्टिकोंणों से सम्पूर्ण उड़ीसा प्रदेश को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है : प्रथम नदियों के डेल्टाई जमावों से निर्मित मैदानी इलाका तथा दूसरा पहाड़ी अथवा पठारी प्रदेश। पहला भाग पूर्व में बंगाल की खाड़ी तथा पश्चिम में पठारी इलाके के मध्य में स्थित है। इस भू–भाग के निर्माण में इस प्रदेश में बहने वाली प्रमुख नदियों सुवर्णरेखा, बूढ़ावलंग, वैतरणी, ब्राम्हणी तथा महानदी ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। महानदी तथा सुवर्णरेखा मध्यप्रदेश तथा बिहार से क्रमशः निकलती है। ब्राम्हणी नदी का निर्माण शंख तथा कोयल नदियों के मिलने से हुआ है। ये झारखण्ड के हजारीबाग के पठार से निकलती है। वैतरणी तथा बूढ़ावलंग केउनझार तथा मयूरभंज की पहाड़ियों से निकलती है।

दूसरा भाग भौगोलिक तथा भू–वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मध्यप्रदेश तथा बिहार के पहाड़ी प्रदेशों का विस्तार है। उड़ीसा प्रान्त का अधिकांश क्षेत्र इसी भाग के अन्तर्गत आता है।

भारत के अन्य प्रान्तों के ही समान उड़ीसा में भी उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण से प्रागैतिहासिक प्रस्तर उपकरणों का मिलना प्रारम्भ हो गया था। 1875 में बॉल महोदय (Ball) ने उड़ीसा के विभिन्न स्थानों से चार उपकरणों का संकलन किया था (बॉल, वी0 1876, 'ऑन स्टोन इम्प्लीमेण्ट्स फाउण्ड इन दि ट्रिब्यूटरी–स्टेट्स ऑफ उड़ीसा', प्रो0 ए0, सो0 ब0, पृ0 122–123)। किन्तु, प्रस्तर उपकरणों का संकलन तथा अध्ययन 1939 से पहले सुचारू रूप में नहीं हो सका। 1939 में बरमन तथा आचार्य ने मयूरभंज से कुछ प्रस्तर उपकरणों का संकलन किया। यहाँ से ही कुछ समय पूर्व आर0डी0बनर्जी ने भी इसी प्रकार के उपकरणों का संकलन किया था। बरमन तथा आचार्य को लैटेराइट के एक जमाव से कुलियाना नामक स्थान में उपकरण मिले थे। उसी वर्ष कलकत्ता विश्वविद्यालय के निर्मल कुमार बोस तथा धरणी सेन ने कुलियाना में व्यवस्थित रूप से प्रागैतिहासिक उपकरणों तथा जमावों का अध्ययन प्रारम्भ किया। उनका कार्य 1942 तक चलता रहा (बोस, एन0 के0 एण्ड सेन, धरणी, 1948, 'एक्सकवेशन्स इन मयूरभंज' कलकत्ता यूनिवर्सिटी )। इनका कार्यक्षेत्र कुलियाना ग्राम के चारों ओर लगभग दस मील की परिधि में विस्तृत था। कुलियाना ग्राम बरीपद बंगरीपोसी (Baripada Bangariposi) मार्ग पर बरीपद के उत्तर–पश्चिम में 10–11 मील स्तम्भ के बीच में स्थित है।

कुलियाना के निकटवर्ती स्थानों से उपकरण लैटेराइट–ग्रैवेल गर्तो (Laterite gravel pits), जिन्हें 'गुरी खदान्ह' स्थानीय भाषा में कहते हैं, तथा उनकी सतह पर से प्राप्त हुए हैं। इसके

Scanned with OKEN Scanner

अतिरिक्त बूढ़ावलंग नदी के ग्रैवेल से भी थोड़े से उपकरण प्राप्त हुए थे।

कुलियाना, नुवावेरी आदि सभी स्थानों पर लगभग समान प्रकार के जमाव हैं। कुलियाना में सबसे अधिक गहराई तक निरीक्षण किया गया था। ऊपर की सतह से बीस फीट नीचे सफेद चिपचिपी मिट्टी का जमाव था। इसकी मोटाई कितनी रही होगी इसका अनुमान नहीं किया जासका। इस जमाव के ऊपर प्राथमिक लैटेराइट का जमाव मिलता है। किन्तु कुलियाना के 'स' खदान में विशाल प्रस्तर पिण्डों से निर्मित सिमेण्टेड ग्रैवेल का जमाव मिला था। इसमें प्रायः सभी पत्थर क्वार्टजाइट के थे। बोस तथा सेन की धारणा है कि इस ग्रैवेल का जमाव बूढ़ावलंग नदी के किसी सहायक नाले ने किया होगा। उनके अनुसार बूढ़ावलंग नदी किसी भी समय उसे निक्षेपित करने में सक्षम नहीं थी। प्राथमिक लैटेराइट (Primary Laterite) के ऊपर पुनर्निक्षेपित लैटेराइट (Secondary Laterite) का जमाव मिलता है। इसकी मोटाई विभिन्न स्थानों पर भिन्न–भिन्न है। यह जमाव सतही मिट्टी (Superficial Clay) के जभाव से आवेष्ठित है।

सभी स्थानों पर उपकरण पुनर्निक्षेपित लैटेराइट (Secondary Laterite) के जामव से प्राप्त हुए हैं, यद्यपि उनकी गहराई सभी स्थानों पर समान नहीं है। इसके साथ यह भी स्पष्ट कर देना अनुचित नहीं होगा कि उपकरणों के प्राप्ति–स्थान की गहराई उनकी प्राचीनता का द्योतन नहीं करती है, क्योंकि वह स्थान जहाँ के जमावों से उपकरण मिले हैं, वह स्वंय ही समतल नहीं था। बोस तथा सेन (बोस, एन0 के0 ऐण्ड सेन, धरणी, 1948, पार्श्वोद्धरित, पृ0 65) के अनुसार 'In-situ' प्राप्त उपकरणों की प्रधान विशेषताएँ निम्नलिखित थीं –

1. प्राचीनतम उपकरण चॉपर थे। जिनका कार्यांग सीधा अथवा उन्नतोदर होता था। इनका फलकीकरण एकपक्षीय, अनियमित तथा एकान्तरित होता था। दूसरा किनारा मोटा होता था जो पकड़ने के लिए अथवा मूठ के समान प्रयोग में लाया जा सकता था। कार्यांग पर पुनर्गढन के प्रमाण नहीं मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उपकरण के कार्यांग को किसी स्थिर तथा कठोर वस्तु पर प्रहार करके बनाया जाता था, क्योंकि उनके ऊपर सोपानपदीय दरारें (Step Fractures) मिलती हैं।

2. दूसरे वर्ग में अनियमित आकार के उभयपक्षीय उपकरण तथा अकृत्रिम आघात स्थल के फलक उपकरणों की गणना की गई है। सर्वप्रथम कोर से फलक निकालते थे (लेवालेवा पद्धति के प्रतिकूल) तदनन्तर उन पर फलकीकरण द्वारा उन्हें उपकरण में परिवर्तित करते थे।

3. इस वर्ग में नियमित आकर के सुगढ़, उभयपक्षीय उपकरण तथा अल्पसंख्यां में भोड़े प्रकार के क्लीवर हैं। क्लीवरों में अपवाद स्वरूप केवल एक नियमिति आकार का और सुगढ़ उपकरण है जो उत्खनन में प्राप्त हुआ था। इस वर्ग में यह उल्लेखनीय है कि प्रारम्भिक प्रकार के चॉपर भी विकसित तथा नियमित आकार के उपकरणों के साथ मिलते हैं किन्तु इन चॉपरों में भी पहले की अपेक्षा तकनीक की दृष्टि से विकास मिलता है। वे आकार में छोटे हो जाते हैं तथा कभी–कभी पार्श्व स्क्रेपर उपकरणों का भ्रम उत्पन्न करने लगते हैं। प्रायः ये उभयपक्षीय उपकरणों का भी भ्रम उत्पन्न करते हैं। इन उपकरणों में भी सोपानपदीय दरारें है जो सम्भवतः उदग्र तीव्र आघात के फलस्वरूप हुई थी।

इसी स्तर पर एक और निर्माण विधि का प्रयोग मिलने लगते हैं। इस विधि के अनुसार उपकरण को एक स्थिर–निहायी पर रखकर उसके ऊपर के भाग का फलकीकरण करते थे, किन्तु इस पद्धति का प्रयोग अधिक प्रचलित नहीं प्रतीत होता है।

Scanned with OKEN Scanner

सतह से संकलित उपकरणों की संख्या 663 थी जिसमें पेबुलोपकरण 12.21%, कोर 81.29% तथा फलक 6.48% थे। चॉपर, हैण्डैक्स तथा क्लीवर सम्मिलित रूप से सबसे अधिक थे। चॉपर 24. 32% , हैण्डैक्स तथा क्लीवर 63.3% स्क्रेपर तथा प्वाइंट सम्मिलित रूप से लगभग 4% थे।

'In' Situ' स्थिति से प्राप्त उपकरणों की संख्या 57 थी। यह उल्लेखनीय है कि दोनों में उपकरणों का प्रतिशत लगभग एक समान है जो निम्नलिखित है –

| | सतह से प्राप्त उपकरण 663 | 'In-Situ' प्राप्त उपकरण 57 |
|---|---|---|
| वृत्तात्मक चॉपर | 10.56 | 10.5 |
| पार्श्व चॉपर | 13.72 | 12.3 |
| चाकू | 6.63 | 8.7 |
| रौस्ट्रोकेरीनेट | 0.30 | ............ |
| रौस्ट्रायड हैण्डैक्स | 5.24 | 3.5 |
| हैण्डैक्स | 44.34 | 38.5 |
| क्लीवर | 13.72 | 12.3 |
| स्क्रेपर | 2.56 | 8.7 |
| प्वाइंट | 1.66 | 3.5 |
| अन्य | 1.20 | ...... |
| | 99.83 | 98 |

बोस तथा सेन (बोस, निर्मल कुमार तथा सेन, धरणी, 1948, पार्श्वोद्धरित, पृ0 127) के अनुसार कुलियाना उद्योग मूलतः कोर उद्योग है जिसमें पेबुल तथा अनगढित विषमकोणीय अकृत्रिम आघात–स्थल वाले फलक उपकरण भी मिलते हैं।

हैण्डैक्स तथा चॉपरों की संख्या अन्य की अपेक्षा अधिक है। हैण्डैक्स में अण्डाभ (Ovate) तथा दीर्घायताकार (Oblong) प्रकार के उपकरण अधिक है। रौस्ट्रायड हैण्डैक्स जो अधिक रूक्ष थे, भी निरूपित हैं। समानान्तर किनारे वाले रूक्ष चाकू (जिनका अग्रवर्ती भाग उपयोग के लिए नहीं होता) का भी उपकरण समुदाय में प्रमुख स्थान है। फलक उपकरणों की संख्या बहुत सीमित है। केवल क्लैक्टोनियन प्रकार के ही फलक मिलते हैं। लेवालेवा फलकों का सर्वथा अभाव है, किन्तु कुछ में लेवालेवा पद्धति का प्रयोग मिलता है, य़द्यपि उनके फलक बहुत रूक्ष हैं।

बोस तथा सेन के अनुसार कुलियाना उद्योग का विकास उस काल में हुआ था जब फलकीकरण प्रविधि अधिक विकसित नहीं थी। फलकीकरण प्रविधियों का क्रमिक विकास हो रहा था, जिसके फलस्वरूप नवीन प्रविधियों का प्रयोग होने लगा था तथा लोग क्रमशः प्रस्तर फलकीकरण में प्रवीण हो रहे थे। मयूरभंज के प्रस्तर उद्योगों का तिथि–क्रम निश्चित भू–वैज्ञानिक आधार पर निश्चित करने के लिए 1950 से 1957 के बीच बोस (बोस, एन0के0 सेन, डी0 तथा रे, जी0एस0, 1958, 'जियोलॉजिकल ऐण्ड कल्चरल एवीडेन्स ऑफ दि स्टोन एज इन मयूरभंज' मैंन इन इण्डिया, मार्च, 1958, वाल्यूम 38, नं. 1 पृ. 49–55) तथा उनके सहयोगियों ने बूढ़ावलंग नदी के अनुभागों का पुनः परीक्षण तथा अध्ययन कमरपाल तथा अन्य स्थानों पर किया। इसके फलस्वरूप स्तरों की निम्न श्रृंखला प्रकाश में आई :

Scanned with OKEN Scanner

1. सबसे निम्नस्तर पर कड़े खटीमय संस्तर (Calcareous bed) के ऊपर भूरे–नीले रंग की मिट्टी का जमाव है।

2. मिट्टी के उपर्युक्त जमाव के ऊपर बोल्डर पिण्ड का जमाव है। कभी–कभी इस बोल्डर पिण्ड जमाव के नीचे लैटेराइट का जमाव मिलता है।

3. बोल्डर पिण्ड के ऊपर नदी द्वारा लाई हुई मिट्टी अथवा जलोढ़क (Alluvium) जमाव है।

कमरपाल तथा कुलियाना के उपकरणों में परस्पर अन्तर भी प्रतीत हुआ। कमरपाल के उपकरणों में पेबुल उपकरण तथा उभयपक्षीय उपकरण भी थे। उपकरणों का निर्माण केवल कुछ फलकों को निकाल कर किया गया था। उनके सतह के अधिकांष भाग पर कॉर्टेक्स वर्तमान मिलता है। निर्माण के लिए अधिकांशतया क्वार्टजाइट के लम्बाकार बड़े पेबुलों का उपयोग किया गया है। छोटे गोलाकार पेबुलों का उपयोग प्रायः नहीं है। तकनीकी दृष्टिकोण से इन्हें पेबुलोपकरणों की श्रेणी में रखा जा सकता है।

कुलियाना में बोस आदि को बोल्डर पिण्ड में से भोड़े तथा रूक्ष प्रकार के तथा उसके ऊपर की लैटेराइट से अच्छे तथा विकसित उपकरण उपलब्ध हुए थे। सारांश में उनका मन्तव्य है कि कुलियाना में नीचे के स्तर से भोड़े तथा उसके ऊपर के स्तर से विकसित उभयपक्षीय उपकरण, क्लीवर तथा फलक उपकरण मिले थे।

निर्मल कुमार बोस तथा उनके सहयोगियों का कार्यक्षेत्र मयूरभंज के कुलियाना तथा उसके निकटवर्ती प्रदेशों तक ही सीमित था। उसके पश्चात् 1957–59 के बीच मोहपात्र ने उड़ीसा प्रान्त के ऊपरी भाग (अर्थात् महानदी के उत्तरवर्ती प्रदेश) का सर्वेक्षण किया जिसके फलस्वरूप धेनकनाल, सुन्दरगढ़, सम्बलपुर, कोउनझार तथा मयूरभंज में अनेक प्रस्तरयुगीन आवास प्रकाश में आए (.मोहपात्र, जी0 सी0, 1962, दी स्टोन एज कल्चर्स ऑफ उड़ीसा, डेकन कालेज, पोस्ट ग्रेजुएट ऐण्ड रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना)

प्रारम्भ में बोस तथा उनके सहयोगियों की धारणा थी कि प्रातिनूतनकाल में उड़ीसा में एकान्वेक आर्द्र तथा शुष्क काल हुए थे और उन्हीं के फलस्वरूप कुलियाना (मयूरभंज) के भू–वैज्ञानिक स्तरों का निर्माण हुआ था। किन्तु कालान्तर में (बोस ऐण्ड सेन, 1958, पार्श्वोद्धरित) उनकी धारणा बदल गई थी। अपने सर्वेक्षण के पश्चात् मोहपात्र इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि दक्षिण भारत के अन्य स्थानों की भाँति वहाँ पर भी प्रातिनूतनकाल में एकान्वेक आर्द्र तथा शुष्ककाल हुए थे।

प्रथम आर्द्रकाल में आधारशिला के ठीक ऊपर प्राथमिक लैटेराइट का जमाव हुआ। नर्मदा की घाटी तथा दक्षिण पूर्वीतट के लैटेराइट का जमाव भी यहाँ के समान जलवायु में ही हुआ होगा। इस काल में मानव की उपस्थिति के कोई भी प्रमाण नहीं मिलते हैं। बोस तथा सेन का विचार है कि इस स्तर से भी मानवाश्म मिल सकते हैं। जलवायु के दृष्टिकोण से यह दक्षिण–पूर्वी तट के द्वितीयकाल (Phase 2) के समान हैं, किन्तु वहाँ पर इस स्तर से प्रथम श्रेणी के उपकरण मिले हैं।

इसके बाद द्वितीय आर्द्रकाल आता है जिसमें ग्रैवेल का जमाव होता है। ये दस से बारह फीट तक मोटे हैं तथा भली–भाँति सिमेण्टेड हैं। इसके नीचे का भाग अधिक सिमेण्टेड तथा सख्त है, तथा ऊपर का कम। इसका प्रमुख कारण यह प्रतीत होता है कि नीचे का भाग अधिक काल तक जलमग्न था। इसी आर्द्रकाल में पुनर्निक्षेपित लैटेराइट का भी जमाव हुआ प्रतीत होता है।

इसी काल के जमावों में सर्वप्रथम मानव के आविर्भाव के प्रथम निश्चित प्रमाण मिलते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

दक्षिण–पूर्वी तट का तृतीय काल, जबकि प्रथम श्रेणी की (Series I) संस्कृति का अन्त होता है इसके साथ का प्रतीत होता है। उड़ीसा का प्रथम ग्रैवेल स्तरीय दृष्टिकोण से नर्मदा के निम्न ग्रैवेल जिससे अबेवीलियाँ आशूलियाँ तथा प्राक्सोहन उपकरण मिलते हैं, के समकालीन प्रतीत होता है।

रूक्ष ग्रैवेल जमाव के ऊपर लाल गाद मिट्टी (Red Silt) का जमाव मिलता है जो कभी–कभी 40 फिट से भी अधिक मोटा है। इसका जमाव बढ़ती हुई आर्द जलवायु में हुआ प्रतीत होता है। गुजरात में भी इस काल में इसी प्रकार का जमाव मिलता है। दक्षिण–पूर्वी तट पर कामियाडे (कामियाडे, एल0ए0 तथा वक्रिट एम0सी0, 1930, पार्श्वोद्धरित, पृ0 330) तथा बक्रिट इसे चतुर्थ काल (Phase IV) कहते हैं। यहाँ पर भी इस काल में पुनर्निक्षेपित लैटेराइट की सतह पर सम्भवतः मानव रहने लगा था। मोहपात्र को इस जमाव से कोई भी उपकरण प्राप्त नहीं हुए थे।

तृतीय आर्द्रकाल में लाल गाद मिट्टी के जमाव के ऊपर महीन ग्रैवेल का एक जमाव मिलता है। यह जमाव 2.6 फी0 से अधिक मोटा नहीं है। इस जमाव से मध्य पूर्व–पाषाणकाल (Middle StoneAge) के उपकरण उपलब्ध हुए हैं (मोहपात्र ने Middle Palaeolithic के स्थान पर Middle StoneAge का प्रयोग किया है)।

इसी काल में कुछ स्थानों पर मुरम का जमाव भी हुआ है। इस जमाव में मध्य पूर्व पाषाणकालीन (Middle StoneAge) संस्कृति के ही उपकरण मिले हैं।

तृतीय आर्द्रकाल के बाद के शुष्ककाल में पुनः एक लाल गाद मिट्टी का जमाव हुआ। इस जमाव में कोई भी उपकरण प्राप्त नहीं हुए हैं। कुछ स्थानों (नेता नाला) में उसका रंग पीलापन लिए हुए है। सभी स्थानों पर इसमें कंकड़ मिलते हैं।

नर्मदा की उच्च मृत्तिका (Upper Clay) जिसमें अन्त सोहन (Late Sohan) प्रकार के उपकरण मिलते हैं, जलवायु के दृष्टिकोण से उड़ीसा के इस जमाव के साथ का होगा।

नूतन युग में उड़ीसा में गुजरात आदि के समान शुष्कता बढ़ती जा रही थी जिसके फलस्वरूप मैदानी इलाकों में नदियाँ निक्षेपण कर रही थी तथा पर्वतीय क्षेत्रों में अपरदन हो रहा था।

मोहपात्र को निम्न पूर्व पाषाणकाल के उपकरण रूक्ष ग्रैवेल, पुनर्निक्षेपित लैटेराइट ग्रैवेल खदानों आदि बाइस विभिन्न स्थानों से प्राप्त हुए हैं। स्तर के आधार पर उपकरणों में कोई भी विकास क्रम नहीं मिलता है, किन्तु तकनीकी दृष्टिकोण से उन्हें तीन स्थितियों (III Stages) में विभाजित किया गया है। अधिकांश उपकरण क्वार्टजाइट के पेबुल पर बने हैं। जैस्पर का प्रयोग भी प्रायः किया गया है। फलक तथा फलक उपकरणों की संख्या कम है। वे केलव 36.75 प्रतिशत है।

प्रथम स्थिति (Stage I) में निम्न पूर्व पाषाणकाल के प्रारम्भिक उपकरणों की गणना की गई है। निर्माण में प्रस्तर–हथौड़ा–पद्धति का उपयोग किया गया है जिससे उपकरणों के ऊपर फलक चिन्ह बड़े, गहरे तथा अनियमित आकार के हैं। फलकीकरण मूलतः उपयोगिता की दृष्टि से किया गया है जिसकी वजह से उनका आकार अनियमित तथा भोड़ा है। उनके अधिकांश भागों पर कॉर्टेक्स विद्यमान रहता है। प्रथम वर्ग में जो उपकरण मिलते हैं वे इस प्रकार हैं – हैण्डैक्स, अनियमित प्रकार से फलकित उभयपक्षीय उपकरण, फलक स्क्रेपर तथा अनियमित प्रकार से फलकित पेबुल।

दूसरी स्थिति (Stage II) के उपकरणों के निर्माण में बेलनाकार–हथौड़ा–पद्धति का प्रयोग प्रारम्भ हो जाता है। इस वर्ग के उपकरण पहले की अपेक्षा अधिक विकसित प्रतीत होते हैं। उन पर फलक चिन्ह छोटे, छिछले तथा नियमित हैं। यद्यपि नियंत्रित फलकीकरण प्रविधि का प्रयोग होने लगा था, किन्तु फिर भी कुछ पर बड़े तथा अनियमित फलक चिन्ह मिलते हैं। ऐसा

Scanned with OKEN Scanner

प्रस्तर–हथौड़ा–पद्धति के प्रयोग के ही कारण हुआ होगा। संभवतः पहले उपकरणों को प्रस्तर–हथौड़ा–पद्धति से बनाया जाता था और बाद में बेलनाकार–हथौड़ा–पद्धति से संवारा जाता था। कार्यांग तीक्ष्ण तथा नियमित मिलता है। उपकरणों के निर्माण की दृष्टि से इस स्थिति के उपकरणों को मध्य–स्थिति का कहा जा सकता है। इसी स्थिति के उपकरण सबसे अधिक संख्या में मिले है। पेबुलसमन्तान्त हैण्डैक्स अब अन्तप्राय हो जाते हैं, इस वर्ग के उपकरण निम्न है– हैण्डैक्स, क्लीवर, स्क्रेपर, कोर, फलक तथा अनियमित प्रकार के फलकित पेबुल।

तीसरी स्थिति निम्न पुरापाषाणकाल के उपकरण परम्परा के अन्तिम चरण का निर्देश करती है। इस वर्ग के उपकरणों को सभी दृष्टिकोण से आदर्श कहा जा सकता है। इस काल में बेलनाकार हथौड़ा–पद्धति के प्रयोग में पूरी कुशलता प्राप्त हो चुकी थी। बड़े, गहरे तथा अनियमित फलक चिन्ह नहीं मिलते हैं, केवल विकसित अर्धशंकु अवश्य प्रायः मिलता है। अनुमानतः फलकों को निकालने के लिए प्रस्तर–हथौड़ा–पद्धति का प्रयोग किया जाता था। इस स्थिति में नए प्रकार के उपकरणों जैसे शर तथा छोटे पार्श्व तथा गोलाकार स्क्रेपरों का भी निर्माण होने लगता है। ये बहुत अंशों में मध्य पूर्व पाषाणकालीन उपकरणों के समान लगते हैं। मोहपात्र इन्हें उड़ीसा के आशूलियॉ फलक उपकरण के अन्तर्गत रखते हैं। उनकी धारणा है कि मध्य पुरापाषाणकाल के फलक उद्योगों की उत्पत्ति इनसे सम्बंधित की जा सकती है। इस वर्ग में हैण्डैक्स, क्लीवर, स्क्रेपर, शर, फलक, कोर अनियमित प्रकार के फलकित पेबुल सम्मिलित है।

मोहपात्र (मोहपात्र, गोपालचन्द्र, 1962, 'दि स्टोन एज कल्चर्स ऑफ उड़ीसा', पृ0 60–61) की धारणा है कि ओडिशा की निम्न पुरापाषाणकालीन संस्कृति प्रमुख रूप से उभयपक्षीय उपकरण परम्परा के अन्तर्गत आती है। इसमें कोर तथा फलक दोनों का ही प्रयोग मिलता है। मोहपात्र को सोहन प्रकार के पेबुल, चॉपर तथा चॉपिंगोपकरण नहीं प्राप्त हुए हैं। हैण्डैक्स की संख्या सबसे अधिक है। क्लीवर सर्वप्रथम दूसरी स्थिति (Stage II) में मिलते हैं। उनकी संख्या भी अपेक्षाकृत कम है। स्क्रेपर अधिकांशतया छोटे आकार के हैं। इन तीनों प्रमुख उपकरणों के अतिरिक्त शर, फलक और कोर भी काफी संख्या में मिले हैं। मोहपात्र ने कुछ हैण्डैक्सों को एकपक्षीय भी कहा है।

सारांश में ओडिशा की निम्न पुरा पाषाणकालीन संस्कृति को अबेवीलियाँ आशूलियाँ के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

Scanned with OKEN Scanner

# 15

# आन्ध्र प्रदेश
## (Andhra Pradesh)

कुछ समय पूर्व आन्ध्र प्रदेश के उत्तर पश्चिम भाग को काटकर तेलंगाना प्रान्त बना दिया गया है। अतः अब आन्ध्र प्रदेश उत्तर पश्चिम में तेलंगाना, उत्तर में छत्तीस गढ़, उत्तर पूर्व में ओडिशा, पश्चिम में कर्नाटक, दक्षिण में तमिलनाडू, पूर्व में बंगाल की खाड़ी से घिरा है। भारत में प्रागैतिहासिक मानव के इतिहास के अध्ययन के दृष्टिकोण से यह प्रदेश सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में से एक है।

भू–वैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह भारत के ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण पृथ्वी के प्राचीनतम भू–भागों में से है। यहाँ की लाल धरती, छिछली नदियाँ तथा पहाड़ियाँ सभी इस प्रदेश की प्राचीनता की ओर निर्देश करती हैं। गोदावरी, कृष्णा तथा पेन्नार इस प्रदेश की प्रमुख नदियॉ हैं, जो क्रमशः उत्तरी, मध्यवर्ती तथा दक्षिणी भागों को सिंचित करती है। पूर्वी घाट की नल्लमलाई तथा अर्रमलाई पर्वत मालाएँ इस प्रदेश के मध्य में दक्षिण–पश्चिम से उत्तर–पूर्व दिशा में फैली हैं तथा दक्षिण में पालकोंडा पर्वतमालाएँ हैं।

आन्ध्र प्रदेश के उत्तर–पूर्वी भागों को छोड़ कर प्रायः अन्य सभी भागों से प्रागैतिहासिक मानव के उपकरण मिले हैं। आदिलाबाद ( इण्डियन आर्क्यालजी – ए रिव्यू, 1964–65) सबसे उत्तरवर्ती तथा चित्तूर (वही, 1963–64, 64–65, 67–68, 68–69) सबसे दक्षिणवर्ती स्थल है। चित्तूर क्षेत्र में सबसे पुरोगामी तथा महत्वपूर्ण कार्य के लिए कामियाडे तथा बक्रिट विशेष उल्लेखनीय हैं, क्योंकि इन विद्वानों ने सर्वप्रथम प्रस्तर उपकरणों को भू–वैज्ञानिक स्तरों तथा प्रातिनूतन काल के जलवायु सम्बंधी परिवर्तनों से सम्बन्धित करने का सफल प्रयास किया था (कामियाडे, एम0 ऐण्ड बक्रिट, एम0 सी0 1939, फ्रेश लाइट ऑन दी स्टोन एजेज इन साउथ ईस्ट इण्डिया, ऐंटिक्यूटी वाल्यू0 4, 1930, पृ0 327–339)। कामियाडे ने अपने राजकीय कार्यों के दौरान गुण्डला–ब्रह्मेश्वरम तथा गिद्दलूर के निकटवर्ती स्थानों से प्रागैतिहासिक उपकरणों का संकलन किया था। इन उपकरणों को उनके स्तर, प्रारूप तथा अवस्था के आधारों पर चार स्पष्ट वर्गों में विभाजित किया गया है –

1. प्रथम श्रेणी में प्राचीनतम उद्योग के हैण्डैक्स आते हैं। ये प्रमुखतया क्वार्टजाइट पत्थरों के बने हैं।
2. दूसरे वर्ग में फलक उद्योग के उपकरण हैं। इसमें सुन्दरता से बने हुए कुछ हैण्डैक्स भी मिलते हैं। इस वर्ग के उपकरण प्रमुखतया क्वार्टजाइट के हैं, किन्तु उनके साथ सैण्डस्टोन तथा चाल्सेडनी का भी प्रयोग किया गया है।
3. तृतीय श्रेणी में भूथड़े पार्श्व के सुडौल ब्लेड, ब्यूरिन, अन्तस्क्रेपर आदि हैं। इन उपकरणों के निर्माण के लिए प्रमुखतया फ्लिण्ट प्रकार के पत्थरों का प्रयोग किया गया है।
4. चौथे तथा अन्तिम वर्ग में लघु पाषाणोपकरण आते हैं। वे प्रमुखतया अगेट तथा क्वार्टजाइट के बने हैं।

इन विद्वानों की धारणा है कि इस क्षेत्र में प्रागैतिहासिक मानव का आगमन लैटेराइट के जमाव

Scanned with OKEN Scanner

के बाद हुआ होगा, जबकि यहाँ की जलवायु अपेक्षाकृत शुष्क रही होगी। प्राचीनतम मानव ने प्राथमिक लैटेराइट के ऊपर ही अपना आवास बनाया होगा।

कामियाडे तथा बक्रिट के अनुसार इस क्षेत्र में प्रागैतिहासिक काल में जलवायु सम्बंधी सात परिवर्तन हुए जो इस प्रकार है–

1. विस्तृत आर्द्रकाल जिसमें लैटेराइट का निर्माण हुआ। इस काल में कोई भी मानव उपकरण नहीं मिलते हैं।
2. विस्तृत शुष्क काल जिसमें दलदल तथा जंगल मैदानों में परिवर्तित होने लगे। हैण्डैक्स संस्कृति के लोग इस काल में बसे।
3. तृतीय काल तीव्र वर्षा का काल था। इस काल में वर्षा के जल ने पहिले की एकत्रित बहुत सी सामग्री को स्थानच्युत करके पुनः एकत्रित किया जिसके फलस्वरूप पुनर्निक्षेपित स्तरों का निर्माण हुआ। इस काल में हैण्डैक्स संस्कृति का अन्त होता है।
4. चतुर्थ काल पुनः अपेक्षाकृत शुष्क काल था। इस काल में अपरदी लैटेराइट (Detrital Laterite) के ऊपर पुनः नवीन संस्कृति का प्रसार हुआ। ये लोग फलक तथा दूसरी श्रेणी के उपकरणों का प्रयोग करते थे।
5. पंचम काल में अपेक्षाकृत आर्द्र जलवायु का पुनरागमन होता है। किन्तु, इस काल में लैटेराइट (Laterite) का निर्माण नहीं हुआ। इस काल में जलोढ़क (Alluvium) जमाव हुए। इस काल में द्वितीय श्रेणी के उपकरणों के प्रयोग के प्रमाण मिलते हैं।

6–7. छठें तथा सातवें काल में आर्द्रता में अपेक्षाकृत न्यूनता हो जाती है तथा क्रमशः आधुनिक प्रकार की जलवायु का प्रारम्भ होता है। इन कालों में क्रमशः तीसरी तथा चतुर्थ श्रेणी के उपकरणों का प्रयोग होता है।

कामियाडे तथा बक्रिट का लेख केवल इसी दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण नहीं था कि इन विद्वानों ने विभिन्न उद्योगों को भू–वैज्ञानिक स्तरों से तथा प्रातिनूतन कालीन जलवायु के विभिन्न पक्षों से सम्बंधित किया था। इसका एक विशेष योगदान यह भी था कि इन विद्वानों ने विभिन्न उद्योगों का वर्गीकरण बहुत उपयुक्त प्रकार से किया था। उच्च पूर्व पाषाणकाल तथा मेसोलिथिक उद्योगों की स्थिति को सही परिप्रेक्ष में रखने का सर्वप्रथम श्रेय भी इन्हीं विद्वानों को मिलना चाहिए। यदि हम कहें कि इन विद्वानों ने भारतीय प्रागितिहास को सही दिशा में मोड़ने का प्रथम प्रयास किया था तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

कामियाडे तथा बक्रिट के पश्चात् काफी समय तक इस क्षेत्र में किसी अन्य विद्वान ने कोई कार्य नहीं किया था। 1949 में ज्वाएनर महोदय की अध्यक्षता में कृष्णस्वामी तथा सौन्दरराजन (सौन्दरराजन, के0वी0, 1952, स्टोन एज इण्डस्ट्रीज नीयर गिद्दलूर, डिस्ट्रिक्ट कर्नूल, ए0 इ0 नं0 8, पृ0 64–92) ने उस क्षेत्र का पुनः परीक्षण किया तथा गिद्दलूर के निकटवर्ती क्षेत्रों से उपकरणों का संकलन भी किया। उनका संकलन प्रमुख रूप से गिद्दलूर, तालपल्ले तथा कांचीपल्ले और उनके निकटवर्ती स्थानों पर ही सीमित था।

डेकन कालेज, पूना के इजाक ने सम्पूर्ण कर्नूल क्षेत्र का सर्वेक्षण अपने शोध–प्रबन्ध के लिए किया। (इजाक, 1970, 'स्टोन एज कल्चर्स ऑफ कर्नूल' पी0एच0डी0 थीसिस, डेकन कालेज, पूना लाइब्रेरी) मूल रूप में इनके कार्यों ने कामियाडे तथा बक्रिट के निष्कर्षों की ही पुष्टि की।

Scanned with OKEN Scanner

सौन्दरराजन आदि को कामियाडे तथा बक्रिट के प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी के उपकरण गिद्दलूर I से तथा तृतीय तथा चतुर्थ श्रेणी के उपकरण गिद्दलूर II से प्राप्त हुए थे। कांचिपल्ले तथा तालपल्ले से प्रमुख रूप से प्रथम श्रेणी के उपकरण प्राप्त हुए जिन पर मध्य पूर्व पाषाणकाल का प्रभाव परिलक्षित होता है। उनके संकलन में 'Rostrocarinate' तथा 'Victoria West' प्रकार के उपकरणों की उपस्थिति विशेष उल्लेखनीय है। ये आकार में विशाल हैं। इनके अतिरिक्त एकपक्षीय तथा उभयपक्षीय चॉपर भी मिलते हैं। सौनदरराजन के अनुसार गिद्दलूर I के उपकरण अनियमित हैं तथा पूरे पेबुल पर बने हैं और अफ्रीका के काफुवन अथवा ओल्डोवन पेबुल उपकरणों के सामन हैं। इससे भिन्न गिद्दूलर II के उपकरण प्रायः खण्डित पेबुल पर बने हैं तथा सोहन पेबुलोपकरणों के निकट प्रतीत होते हैं। दक्षिण भारत की अबेवीलियाँ आशूलियाँ परम्परा के अन्तर्गत पेबुल उपकरणों की इन दो भिन्न परम्पराओं का मिलना उल्लेखनीय है तथा उनके तकनीकी महत्व का निरूपण करना आवष्यक है। सौन्दरराजन का विचार है कि पेबुल उपकरणों की न्यूनता तथा उभयपक्षीय क्लीवर उपकरणों की बहुलता इस बात का निर्देश करती है, यह पेबुल उपकरण परम्परा दक्षिण भारत की कोर उपकरण परम्परा का ही अभिन्न अंग है और पेबुल तत्व को स्थानिक (Autochthonous) माना जा सकता है। अबेवीलियाँ आशूलियाँ उपकरण काफी संख्या में प्राप्त हुए हैं। इन उपकरणों के बाह्यान्त लहरदार हैं तथा समन्तान्त पर कार्टेक्स विद्यमान है। दोनों पक्षों में मध्य कटक (Mid rib) रहती है और उनका अन्त नुकीला होता है। दूसरे वर्ग में अण्डाभ उपकरण (Ovaloid tools) तथा फलकों पर बने हैण्डैक्स हैं। ये सम्भवतः मध्य अथवा उत्तर आशूलियाँ के हैं। देखने में ये पहले वर्ग की अपेक्षा नए प्रतीत होते हैं। इस संकलन में सौनदरराजन को दो चौड़े कार्यांग के हैण्डैक्स भी मिले थे। उनका विचार है कि ये हैण्डैक्स तथा क्लीवर के संधिकाल के हैं।

उपर्युक्त वर्गों के अतिरिक्त क्लीवरों का भी एक वर्ग है, जो या तो उभयपक्षीय फलकीकरण के फलस्वरूप निर्मित हैं अथवा एकल बाल प्राविधि (Single Vaal Technique) अथवा दुहरा वाल प्रविधि (Double Vall Technique) से निर्मित हैं। दूसरे प्रकार के क्लीवरों का बेड़ा अनुभाग (Cross Section) समानान्तर चतुर्भुजाकार (Parallelogram) है।

गिद्दलूर में लेवालेवा फलक नहीं है। वहाँ से प्राप्त उपकरणों में एक ब्लेड भी प्राप्त हुआ था, किन्तु सौन्दरराजन के अनुसार यह बक्रिट की तृतीय श्रेणी का है तथा इस वर्ग में आकस्मिक रूप से मिल गया है।

गिद्दलूर II में भी अबेबीलियाँ आशूलियाँ प्रकार के उपकरण मिले हैं, किन्तु वे अपेक्षाकृत छोटे हैं। उनमें आद्यलेवालेवा तथा लेवालेवा के लक्षण भी विद्यमान हैं। इनमें रोष्ट्रोकैरीनेट तथा विक्टोरिया वेस्ट प्रकार के उपकरण नहीं हैं। सामूहिक रूप से ये एक विकसित उद्योग की ओर निर्देश करते हैं। ब्यूरीनेट उपकरण, ब्लेड एवं ब्लेडफलक तकनीकी दृष्टिकोण से उद्योग के विकास के द्योतक है। अधिकांश फलक तथा स्क्रेपरों का आकार छोटा है। वे उच्च पूर्व पाषाणकालीन उपकरण–समुदाय के अंग प्रतीत होते हैं।

सारांश में सौन्दरराजन के अनुसार गिद्दलूर II में बक्रिट तथा कामियाडे के द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी के उपकरण प्रथम श्रेणी के उपकरणों के साथ मिलते हैं। गिद्दलूर II के निकट ही चतुर्थ श्रेणी के उपकरणो का भी उद्योग–स्थल है।

**तालपल्ले तथा कांचिपल्ले** से भी निम्न पूर्व पाषाणकालीन उपकरण प्राप्त हुए थे। सौन्दरराजन के अनुसार तालपल्ले में निम्न पूर्व पाषाणकाल तथा मध्य पूर्व पाषाणकालीन उद्योग के उपकरण

Scanned with OKEN Scanner

मिश्रित रूप से मिलते हैं। यह सम्भवतः मध्य पूर्व पाषाणकालीन उद्योग पर पूर्ववर्ती उद्योग के प्रभाव के कारण हैं। उनके अनुसार यहाँ पर प्रथम श्रेणी का अन्त तथा द्वितीय का विकास होता है। (सौन्दरराजन, के० वी०, 1952, पार्श्वोद्धरित, पृ० 72) यदि सौन्दरराजन के निष्कर्ष थोड़े अधिक उपकरणों पर आधारित होते तो उनके कथन में अधिक बल होता। सौन्दरराजन के संकलन में पेबुलोपकरणों की संख्या नगण्य (6/240) है, किन्तु इजाक के संकलन में वे लगभग चालीस प्रतिशत है। डॉ० सांकलिया (सांकलिया, एच० डी०, 1974, पार्श्वोद्धरित, पृ० 58) का प्रश्न है कि क्या ये सोहन से प्रभावित थे या सोहन प्रकार के पेबुलोपकरणों का स्वतंत्र विकास कई स्थानों पर हुआ? उनके विचार से दक्षिण तथा पूर्वी अफ्रीका के समान इन पेबुलोपकरणों का एक अधः स्तर था अथवा ये हैण्डैक्स उद्योग के ही सहवर्ती था।

आन्ध्र प्रदेश में दूसरा प्रमुख क्षेत्र जहाँ से निम्न पूर्व पाषाणकालीन मानव के उपकरण उपलब्ध हुए हैं वह कृष्णा घाटी में स्थित **गुण्टूर जिले में नागार्जुनकोण्ड** ( इण्डियन आर्क्यालाजी – ए रिव्यू, 1956–57, 57–58, 59–60, 61–62, 67–68) तथा निकटवर्ती प्रदेश है। कृष्णा घाटी में नदी की वेदिकाएँ स्पष्ट नहीं है, क्योंकि नदी पथरीली घाटी में होकर बहती है। नागार्जुन पर्वतमाला के लगभग दो–तीन किलोमीटर उत्तर से, तथा दक्षिण में पुत्तमपल्ले तक, पश्चिम में कृष्णा नदी तथा पूर्व में रंगीमोतू पर्वतमाला के बीच सौन्दरराजन को छः स्थानों (Loc.A, B, C, D, E, F) से प्रस्तरकालीन उपकरण उपलब्ध हुए थे। इसमें बक्रिट तथा कामियाडे के प्रथम श्रेणी से लेकर चतुर्थ श्रेणी तक ही सभी प्रस्तरयुगीन संस्कृतियाँ परिलक्षित हैं। (सौन्दरराजन, के० वी०, 1958, पार्श्वोद्धरित, एंशिएण्ट इण्डिया, नं० 14, पृ० 50)इसका यह भी तात्पर्य हो सकता है कि निम्न पुरा पाषाणकाल से नवपाषाणकाल तक प्रागैतिहासिक मानव इस घाटी में अनवरत रूप से निवास करता रहा।

निम्न पुरापाषाणकाल के उपकरणों को प्रमुखतः दो वर्गों में विभाजित किया गया है। अ–संस्थिति (Locality -A) से अबेबीलियाँ–आशूलियाँ (Abbevilleo-Acheulian) प्रकार के हैण्डैक्स, क्लीवर तथा कुछ पेबुलोपरकण पथरीली जमीन पर प्राप्त हुए थे। लेवालेवा तकनीक से प्रभावित फलक तथा फलक उपकरणों का नितान्त अभाव था। वास्तव में उपकरण वृहदाकार पेबुल पर निर्मित थे। 'ब' संस्थिति (Locality - B), जो 'अ' संस्थिति के दक्षिण–पूर्व में है, से फलक तथा फलक उपकरण जो प्रमुखतः लेवालेवा उद्योग के हैं, प्राप्त हुए हैं। यहाँ के उपकरणों में उभयपक्षीय उपकरणों का नितान्त अभाव है। प्रायः सभी स्थानों पर उपकरण सतह से ही प्राप्त हुए थे, किन्तु यह उल्लेखनीय है कि घाटी में कुछ विशिष्ट स्थानों से विशिष्ट वर्गों के ही उपकरण मिले थे। 'डी' संस्थिति (Locality - D) में केवल पेबुलोपकरण तथा वृहदाकार स्पष्ट अर्धशंकुवाले फलक ही मिले। अबेवीलियॉं हैण्डैक्स दुर्लभ है। सौन्दरराजन का विचार है कि प्राचीनतम प्रस्तरयुगीन मानव यहाँ तथा इस घाटी के उत्तर–पूर्व भाग में, अन्दर के घने जंगलों में प्रवेश करने के पूर्व,रहता था।लम्बादिगुदेम के दक्षिण–पूर्व में एक नाले से क्लैक्टोनियन उद्योग के वृहदाकार तथा विषम कोण के फलक प्राप्त हुए हैं। ये अबेवीलियाँ शैली के हैं। उल्लेखनीय है कि इस स्थान से पेबुलोपकरण नहीं मिले हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस घाटी में अबेवीलियॉं हैण्डैक्स दुर्लभ है। सौन्दरराजन का विचार है कि प्राचीनतम प्रस्तरयुगीन मानव यहाँ तथा इस घाटी के उत्तर–पूर्व भाग में, अन्दर के घने जंगलों में प्रवेश करने के पूर्व,रहता था।लम्बादिगुदेम के दक्षिण–पूर्व में एक नाले से क्लैक्टोनियन उद्योग के वृहदाकार तथा विषम कोण के फलक प्राप्त हुए हैं। ये अबेवीलियाँ शैली के

Scanned with OKEN Scanner

हैं। उल्लेखनीय है कि इस स्थान से पेबुलोपकरण नहीं मिले हैं। प्रागैतिहासिक मानव की सभ्यता की दो धाराएँ थीं। जो लोग कृष्णा नदी के निकट बसे (Locality -A, D) उन्हें चूंकि पेबुल सुलभ थे, वे पेबुलोपकरण को बनाने लगे, किन्तु अन्य लोग नालों से होते हुए पहाड़ी के निकट जाकर बसे वे क्लैक्टोनियन तथा कोरोपकरणों का निर्माण करने लगे। कालान्तर में आशूलियाँ उपकरणों का विकास साथ–साथ हुआ।

सौन्दरराजन के अनुसार ब्लेड–फलक–ब्यूरिन प्रकार के उपकरणों का प्रयोग करने वाले अथवा उच्च पूर्व पाषाणकाल के लोग ऊँचे केन्द्रीय स्थानों को चुनते थे जहाँ उपकरणों के निर्माण के लिए प्रचुर मात्रा में पत्थर उपलब्ध थे। इस घाटी में सबसे अच्छा अनुभाग 'सी' संस्थिति (Locality -C) में सुरक्षित हैं। यहाँ पर सबसे नीचे आधारशिला के ऊपर आधारिक ग्रैवेल (Basal Gravel) का जमाव है। यह पूर्णतः संयोजित है जो उप–कोणीय खण्डों तथा विभिन्न आकार के पेबुल से निर्मित है। प्रतीत होता है कि इसका जमाव आर्द्रकाल के बाद अपेक्षाकृत शुष्क काल में हुआ था। जिस समय इस प्रदेश में प्रथम मानव मानव का आगमन हुआ लगभग उसी समय इस ग्रैवेल का भी निर्माण हुआ होगा।

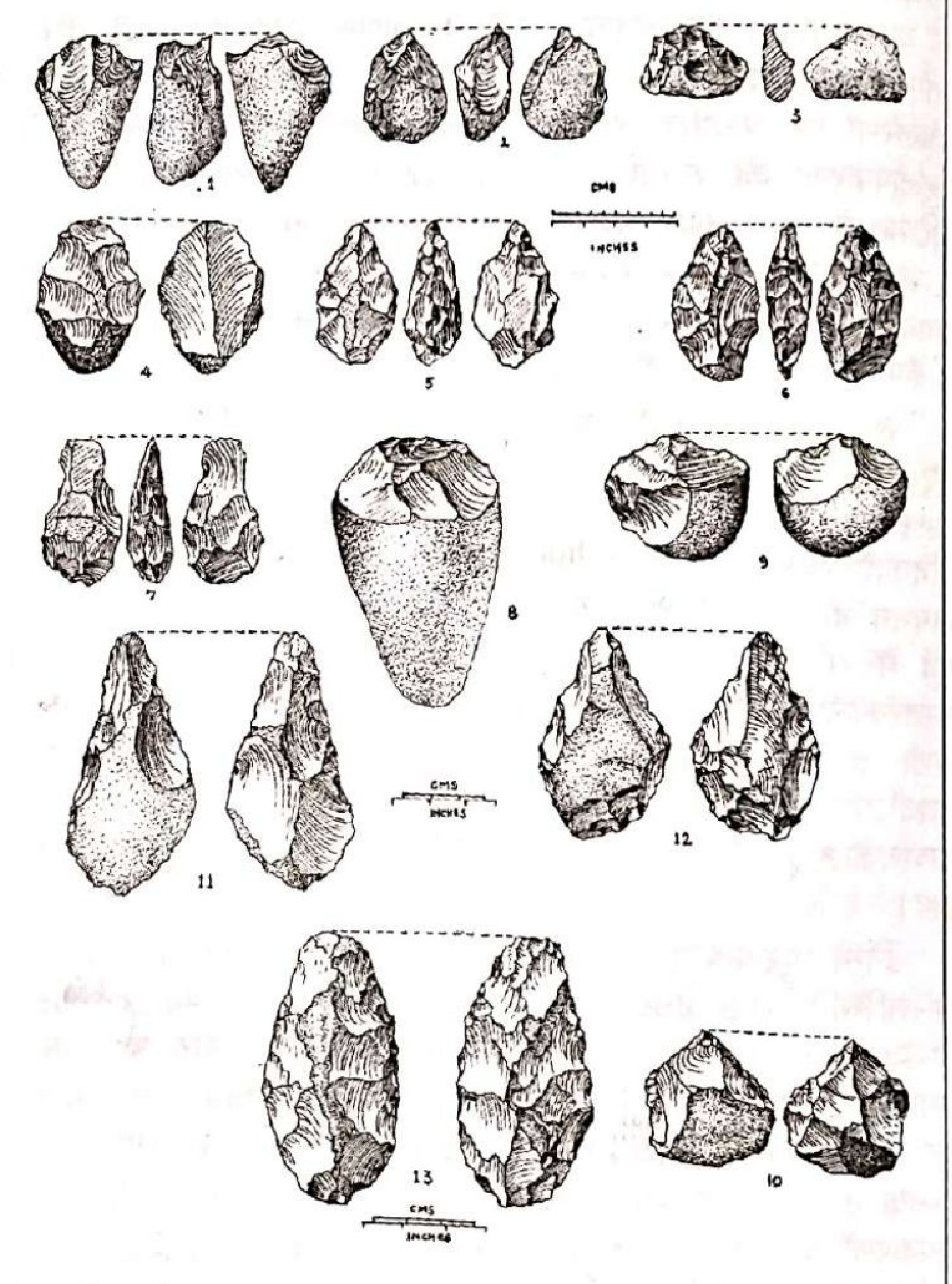

आंध्र प्रदेश के पुरापाषाणिक उपकरणः 1–3 पेबुल उपकरण, 4.–7 हैण्डैक्स नागार्जुन कोण्डा, 8–10 पेबुल उपकरण, 11–13 हैण्डैक्स नालगोण्डा चित्र सं. 21

निम्नतम ग्रैवेल के ऊपर कंकड़ मिश्रित मटमैले रंग के सिल्ट का जमाव है। इसके ऊपर पुनः दूसरे ग्रैवेल का जमाव है जो यहाँ के द्वितीय आर्द्रकाल का द्योतक है। इस ग्रैवेल के ऊपर फिर

गाद मिट्टी का जमाव है जिसके ऊपर तीसरा ग्रैवेल निक्षेपित है। यह तृतीय आर्द्रकाल का द्योतक है। यह ग्रैवेल जमाव अन्य की अपेक्षा अधिक पतला है। अन्तिम ग्रैवेल में ऊपर गाद मिट्टी का निक्षेपण है। उसके ऊपर सतही मिट्टी (Humas) का जमाव है। सौन्दरराजन का विचार है कि तीनों ग्रैवेल जमावों को पुरापाषाणकाल के उपकरणों के विकास का भी द्योतन करना चाहिए। किन्तु इसके लिए अधिक 'in-situ' प्राप्त उपकरणों का होना आवश्यक है।

निम्न तथा मध्य पुरापाषाणकाल के उपकरणों के निर्माण के लिए क्वार्टजाइट का प्रयोग किया गया है। उच्च पुरापाषाणकाल के लिए प्रमुखतः चर्ट (Chert) प्रकार के पत्थरों का प्रयोग हुआ है।

## करेमपुदी

नागार्जुनकोण्ड से 25 मी० पूर्व दक्षिण–पूर्व में करेमपुदी स्थल नागूलेरू नदी पर स्थित है। करेमपुदी के निकट चार स्थल II, III, IV, तथा V तो नागूलेरू नदी पर ही स्थित हैं और स्थल नागूलेरू की एक पूर्वी सहायक नदी पर। यह उल्लेखनीय है कि संस्थिति I से प्रमुखतः पेबुलोपकरण ओल्डोवन (Oldowan) के समान तथा II, III, IV, और V से अबेवीलियॉ आशूलियॉ तथा क्लैक्टोनियॉ और आद्य–लेवालेवा उपकरण प्राप्त हुए। यहॉ पर पेबुलोपकरणों का नितान्त अभाव था। सौन्दरराजन के अनुसार यह विशेष महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि इसके द्वारा पेबुलोपकरणों को एक विशेष परिप्रेक्ष्य के अन्तर्गत रख सकते हैं। संस्थिति I में पेबुलोपकरणों के साथ प्रारम्भिक अबेवीलियाँ (EarlyAbbevillean), रूक्ष उभयपक्षीय हैण्डैक्स तथा वृहदाकार क्लैक्टोनियन फलक भी मिले हैं। पेबुलोपकरणों में दोनों प्रकार – एकपक्षीय तथा उभयपक्षीय – उपकरण विद्यमान है। ये उपकरण उभयपक्षीय उपकरणों की परम्परा से भिन्न नहीं है, क्योंकि कुछ का उभयपक्षीय अबेवीलियॉ उपकरणों में विकास होता हुआ प्रतीत होता है। सौन्दरराजन के अनुसार करेमपुदी उद्योग की प्रमुख विशेषता यही है कि यह पेबुलोपकरणों तथा उभयपक्षीय उपकरणों को एक सापेक्षिक काल क्रमावली में रखने में सहायक है।

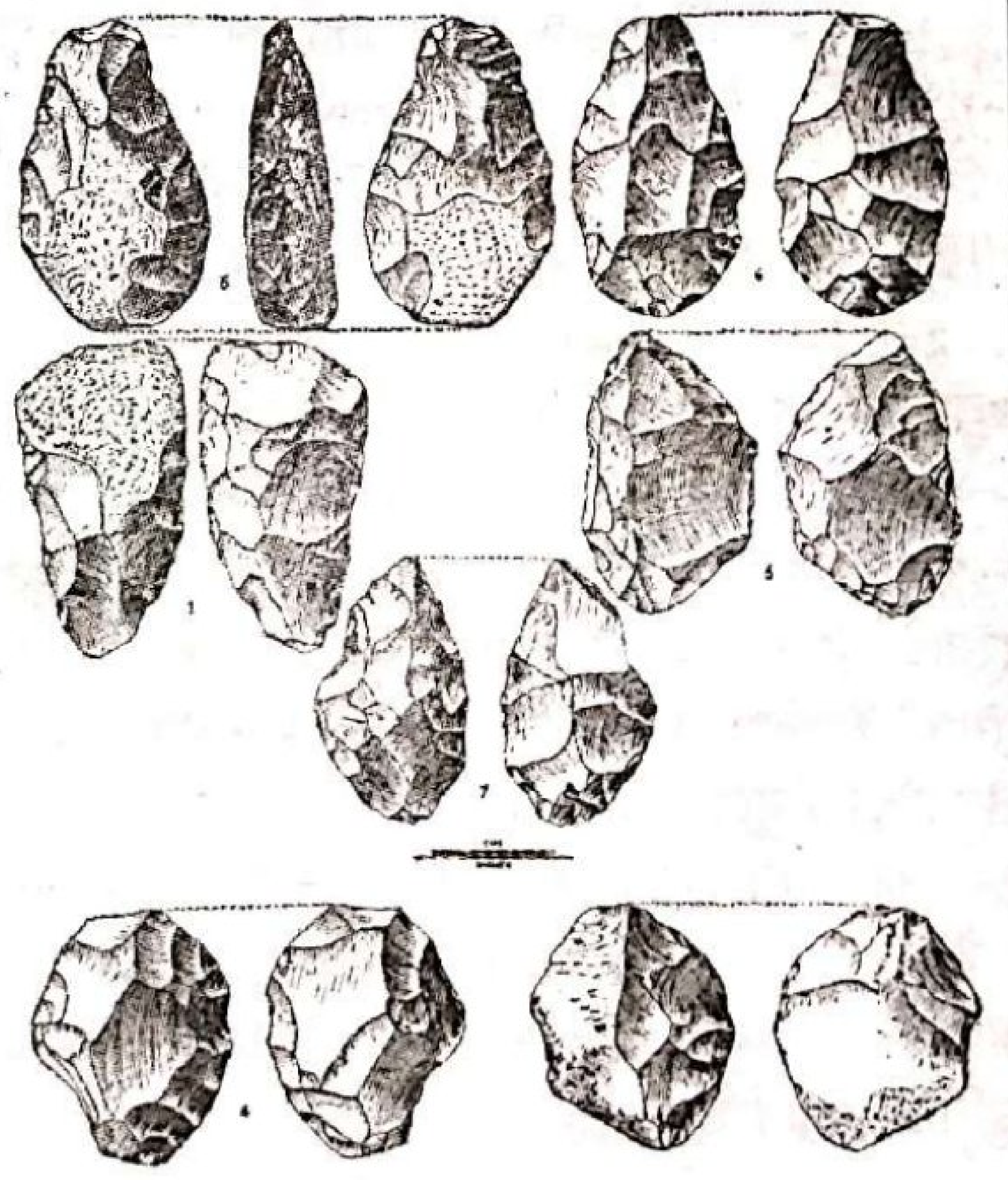

चित्तूर के पुरापाषाणिक उपकरणः चित्र सं0–21अ

सौन्दरराजन के विचार में प्रारम्भिक अवस्था में प्रागैतिहासिक मानव (किन्हीं कारणो वश जिसका निदान अभी सम्भव नहीं है) संस्थिति I में बसा था तथा कालान्तर में प्रमुख नदी के किनारे गया। उस समय तक उसने पेबुलोपकरणों का बनाना बन्द कर दिया था और विकसित प्रकार के उपकरण बनाने लगा था। संस्थिति II से V में फलकोपकरणों के साथ क्लीवर

Scanned with OKEN Scanner

भी मिलते हैं।

सांकलिया (सांकलिया, एच0डी0, 1962, पार्श्वोद्धरित, पृ0 83–84) की यह धारणा उचित प्रतीत होती है कि संस्थिति I के 25 उपकरणों के आधार पर कोई निष्कर्ष निकालना तर्कसंगत नहीं है। जब तक पेबुलोपकरणों का एक स्तर नदी पर कई स्थानों से न मिले तब तक उनका ओल्डोवन के समान एक सांस्कृतिक स्तर मानना उचित नहीं है। नागार्जुनकोण्ड तथा करेमपुदी के प्रस्तुत साक्ष्य पेबुलोपकरणों से हैण्डैक्स संस्कृति के विकास के क्रम का निर्देश नहीं करते हैं। सौन्दरराजन स्वंय कहते हैं कि पेबुलोपकरण हैण्डैक्स संस्कृति के ही अभिन्न अंग है। साथ ही वे यह भी कहते हैं कि प्रागैतिहासिक मानव एक ही काल में उपकरण निर्माण के विभिन्न प्रयोग करता रहा होगा। ऐसी स्थिति में सभी संस्थितियों को समसामयिक भी कहा जा सकता है।

नागार्जुनकोण्ड घाटी में नागार्जुनकोण्ड के एक्सकवेशन प्रोजेक्ट ने 1958 से 1961 तक कई स्थानों पर उत्खनन किया था जिसके फलस्वरूप निम्न पुरापाषाणकालीन संस्कृति के उपकरण प्रकाश में आए। 1959–60 में उत्खनन में निम्नतर स्तर से क्लीवर तथा 1960–61 में आशूलियॉ उपकरण प्राप्त हुए थे। ये सभी साक्ष्य सौन्दरराजन के तर्क के प्रतिकूल हैं।

## चित्तूर

आन्ध्र प्रदेश में दूसरा क्षेत्र जहाँ पर निम्न पुरापाषाणकाल के सम्बंध में शोध–कार्य हुआ है वह चित्तूर (मूर्ति, एम0 एल0 के0, 1966, 'स्टोन एज कल्चर्स ऑफ चित्तूर' (थीसिस), डेकन कालेज, पूना लाइब्रेरी) है। चित्तूर के उत्तर में अनन्तपुर, कुडप्पा तथा नेल्लोर जिले है। पूर्व में नेल्लोर तथा चिंगलपुत जिले हैं, पश्चिम में मैसूर स्टेट तथा सलेम जिले (मद्रास) हैं।

इस जिले की प्रमुख नदी सुवर्णमुखी है। रल्लकलावा नदी को छोड़कर प्रायः सभी नदियाँ अपनी घाटियों में निक्षेपण कर रही है। रल्लकलावा में प्राचीन नदी जमाव अभी भी सुरक्षित है।

निम्न पुरापाषाणकाल के उपकरण (मूर्ति, एम0एल0के0, 1966, पार्श्वोद्धरित, पृ0 30–31)चन्द्रगिरि, तिरूपति तथा वेदुल्लचेरूवु आदि स्थानों से प्राप्त हुए थे। इन सभी स्थानों में वेदुल्लचेरूवु पर जो रेनीगुण्टा से चार किलोमीटर उत्तर–पश्चिम में स्थित है, सबसे अच्छा नदी अनुभाग सुरक्षित है। इस अनुभाग से निक्षेपण के तीन चक्र स्पष्ट परिलक्षित होते है; सबसे नीचे सुसंयोजित पेबुल एवं जलघर्षित प्रस्तर पण्डि है, जो 4 से 6 फीट मोटा है। इसके ऊपर लाल सिल्ट का मोटा (15′) जमाव है। इस जमाव से निम्न पुरापाषाणकाल के घर्षित उपकरण प्राप्त हुए हैं। दूसरा जमाव अंसयोजित पेबुल तथा जलघर्षित प्रस्तरों का है जो पूर्ववर्ती ग्रैवेल पर आधारित है तथा पीले सिल्ट से ढका है। इस जमाव से मध्य पूर्व पाषाणकालीन उपकरण मिले हैं। सबसे ऊपर आधुनिक जमाव है।

संक्षेप में इस क्षेत्र–चित्तूर–का सम्पूर्ण जमाव क्रम संलग्न तालिका में दिया गया है (तालिका 4)

यह उल्लेखनीय है कि रूक्ष ग्रैवेल से निम्न पूर्व पाषाणकाल के उपकरण, दूसरे ग्रैवेल से मध्य पूर्व पाषाणकालीन उपकरण तथा पीले सिल्ट के ऊपर पिसोलाइटी नोडूल से उच्च पूर्व पाषाणकालीन ब्लेड तथा ब्यूरिन परम्परा के उपकरण प्राप्त हुए थे जिनके संबंध में यथा स्थान विचार किया जायेगा।

Scanned with OKEN Scanner

तालिका–4

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्रारम्भिक नूतन काल (Early Holocene) | बालू तथा पिसोलायटी नोड्यूल (SandAnd Pisolitic Nodule) | ब्लेड–ब्यूरिन उद्योग (Blade Burin Industry) | अल्पकालिक आर्द्र तथा शुष्ककाल (Temp. WetAnd Dry Pds.) |
| | पीली गाद मिट्टी (Yellow Silt) | | शुष्क काल (Dry Pd.) |
| उच्च प्रातिनूतन काल (Upper Pleistocene) | असंयोजित ग्रैवेल II (Loose Gravel II) | मध्य पाषाणकालीन उद्योग (Middle StoneAge Industry) (मध्य पुरापाषाणकालीन उद्योग) | आर्द्र काल (Wet Pd.) |
| | लाल गाद मिट्टी (Red Silt) | | शुष्क काल (Dry Pd.) |
| मध्य प्रातिनूतन काल (Middle Pleistocene) | रूक्ष ग्रैवेल (Coarse Gravel) | प्रारम्भिक पाषाणकालीन उद्योग (Early StoneAge Industry) (निम्न पुरापाषाणकालीन उद्योग) | आर्द्र काल (Wet Pd.) |
| | अपक्षीण आधारशिला (Weathered Bed-rock) | | शुष्क काल (Dry Pd.) |
| निम्नप्रतिनूतन काल (Lower Pleistocene) | निकटवर्ती दक्षिण–पूर्वी तट पर लैटेराइट का जमाव किन्तु यहाँ पर कोई जमाव नहीं है। | | आर्द्र काल? (Wet Pd.) |
| प्राक्प्रातिनूतन काल (Pre-Pleistocene) | आधार शिला (Bed-Rock) | | |

मूर्ति ने रल्लकलावा से प्राप्त सभी उपकरणों को पाँच A, B, C, D तथा E में विभाजित किया है। उनके अनुसार A से E तक सभी वर्गों में तकनीकी विकासात्मक क्रम मिलता है। रल्लकलवा A B C निम्न पुरापाषाणकालीन उपकरणों, D मध्य पुरापाषाणकाल तथा E उच्च पुरापाषाणकालीन उपकरणों से सम्बन्धित है।

रल्लकलावा A, B, C के पेबुलोपकरण, उभयपक्षीय कोर तथा फलक तकनीक से निर्मित है। इनमें उभयपक्षीय कोर उपकरणों का बाहुल्य है। प्रमुख उपकरण इस प्रकार है–

Scanned with OKEN Scanner

| | |
|---|---|
| 1. चॉपर | 4. स्क्रेपर |
| 2. हैण्डैक्स | 5. फलक |
| 3. क्लीवर | 6. अनियमित उपकरण |

क्लीवर तथा चक्रिक स्क्रेपर (Disc Scraper) B तथा C वर्गों में मिलते हैं। उपकरणों का अनुपात निम्नांकित है :–चॉपर 21.43 फलक 24.32 हैण्डैक्स 26.02 अनियमित उपकरण 8.05 क्लीवर 4.42 कोर 0.75 स्क्रेपर 25.46

रल्लकलावा A वर्ग के उपकरणों पर बड़े, गहरे तथा अनियमित फलक चिन्ह है। पुनर्गढ़न प्रायः कार्यांग के निकट ही मिलता है। उपकरण का अधिकांश भाग अछूता रहता है। एकपक्षीय तथा उभयपक्षी दोनों ही प्रकार का फलकीकरण मिलता है। पेबुलोपकरण, हैण्डैक्स तथा स्क्रेपर सभी में एकपक्षीय तथा उभयपक्षीय फलकीकरण के प्रमाण मिलते हैं।

रल्लकलावा B वर्ग के उपकरण मझोले से लेकर छोटे एवं नियमित आकार के हैं। उन पर फलक चिन्ह छोटे और छिछले मिलते हैं तथा कार्यांग तीक्ष्ण तथा भली–भाँति गढ़ा हुआ है।

रल्लकलावा C के उपकरण B वर्ग से भी अधिक सुगढ़ है। इनमें सोपानपद फलकीकरण के भी प्रभाव परिलक्षित होते हैं। मूर्ति की धारणा है कि पहले प्रस्तर–हथौड़ा–पद्धति (Stone Hammar Technique) से उपकरणों की रूपरेखा निर्धारित कर ली जाती थी पुनः बेलनाकार हथौड़े (Cylindrical Hammar) से उन्हें सुगढ़ बनाया जाता था। चॉपर इस वर्ग में नहीं हैं। रल्लकलावा के पेबुलोपकरण सोहन तथा हैण्डैक्स–क्लीवर मद्रास के उपकरणों के समान हैं ( मूर्ति, पार्श्वोद्धरित, पृ0 267)।

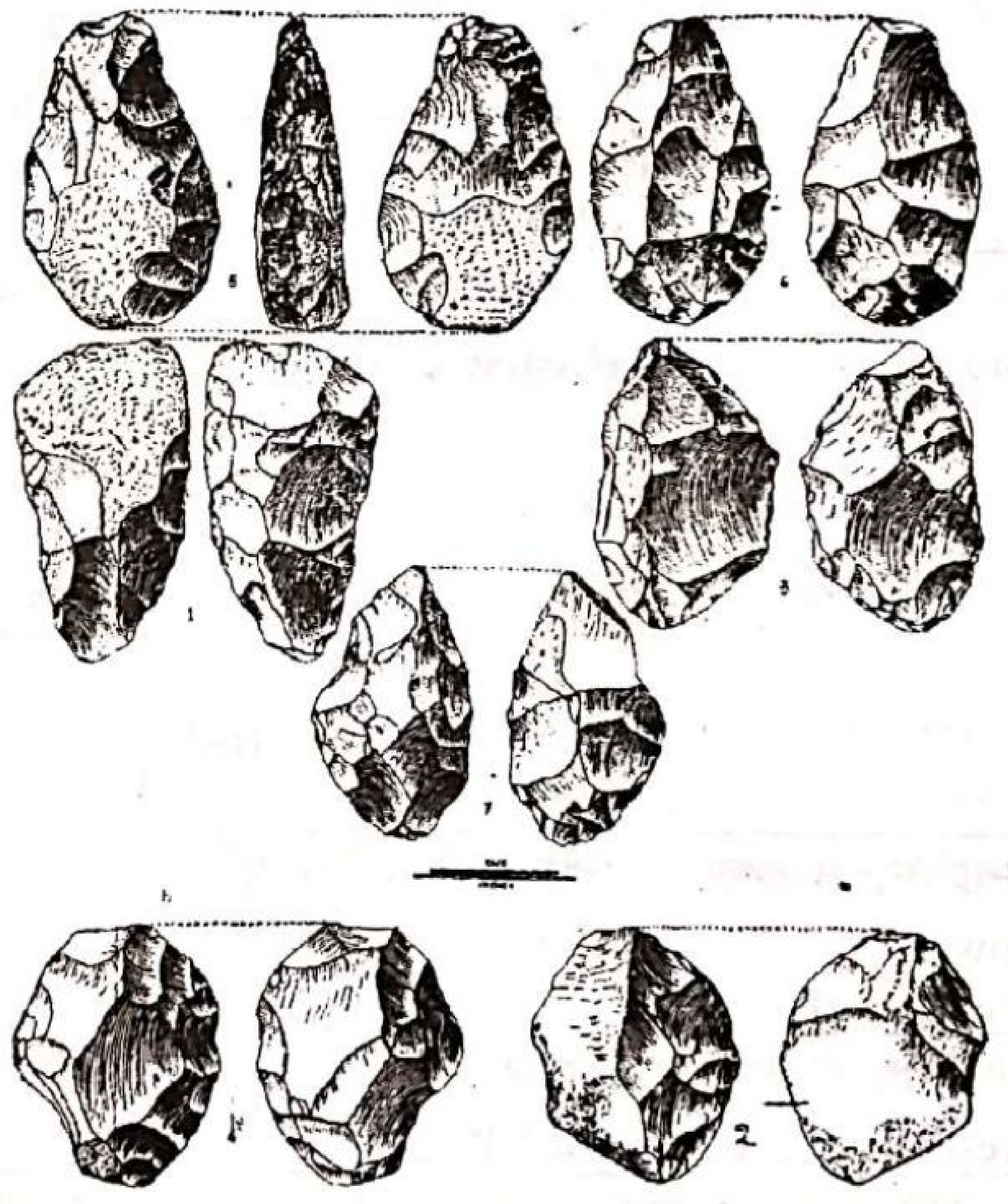

विकसित आशूलियाँ उपकरण रल्लकलावा चित्र सं0–22

पुरातत्व सर्वेक्षण के प्रीहिस्ट्री शाखा के डॉ0 के0डी0 बैनर्जी ने शिवशंकरपुरम के निकट कांग्लोमरेट पहाड़ी तथा गुन्दराजुकुप्पम (Gundrajukuppam वही, 1964–65, पृ0 1) से निम्न पुरापाषाणकालीन उपकरण प्राप्त किए। एटलस ब्राञच में सिंह तथा जायसवाल ने भी चित्तूर जिले के सत्यवेदु तालुका में अनेक निम्न पुरापाषाणकालीन उद्योग–स्थलों को खोजा है।

ऊपर वर्णित स्थानों के अतिरिक्त आन्ध्र प्रदेश में कुडप्पा (.वही, 1964–65, पृ0 2) महबूबनगर (वही, 1967–68, पृ0 ) तथा नेल्लोर (वही, 1967–68, पृ0 65; 68–69, पृ0 1) जिलों से भी निम्न पुरापाषाणकालीन मानव के अवशेष उपलब्ध हुए हैं, किन्तु उनके सम्बंध में अभी अधिक ज्ञात नहीं है।

## ज्वालापुरम पुरास्थल – उत्खनन

ज्वालापुरम गाँव जुरेरू (Jurreru) नदी के दक्षिणी किनारे पर आंध्रप्रदेश में कर्नूल जिले के वनगनपल्ले तालुके में स्थित है। जुरेरू घाटी पूर्व–पश्चिम दिशा में दो पहाणियों के बीच में स्थित है। पहाणी पर क्वार्टजाइट के शैलाश्रय तथा चूनापत्थर की अनेक कन्दरायें हैं किन्तु किसी भी शैलाश्रय में अभी तक मानव आवास के प्रमाण नही मिले हैं। ज्वालापुरम कुडुप्पा श्रृखला की पर्वतमाला में स्थित है।

जुरेरू जलोढ जमाव (JureruAlluvium) के ऊपर अनेक स्थानों पर Youngest toba Tuff (YTT) 74 ka का लगभग 1मी0 का जमाव जुरेरू डैम से वनगनपल्ले तक के 9 कि0 मी0 की लम्बाई में चिन्हित किए गए हैं। इस जमाव की सम्पूर्ण निक्षेपण प्रक्रिया तथा पूर्व टोबा जमाव तथा बाद का जमाव सुरक्षित मिला है। इनमें JWP 3,17 तथा 21 आदर्श स्थल हैं जहाँ कोई उथल पुथल नही हुई है। इन स्थलों पर विशेष अध्ययन तथा सीमित उत्खनन किया गया। अनुमानतः टेफ्रा (Tephra) का अनुमानित जमाव 1m cubic meter रहा होगा। इस पृष्ठीय उदभेदन (Super eruption) का मानव तथा मानव संस्कृति पर क्या प्रभाव पड़ा इस पर अनेक विद्वानों (Ambrose 1998; Williams 2009,2010) ने विस्तार से विचार यिा है। JWP 3 पर टेफ्रा की अधिकतम मोटाई 2.5 मी0 नापी गई है। अवसादन संरचना के अध्ययन से प्रतीत होता है कि उसका अवसादन गीली मिट्टी में जलाशयी पर्यावरण (Pond environment), में बहाव के जल निकास की घाटी के धरातल पर हुआ था। बाद में अगल बगल से मिट्टी आकर एकत्रित हो गयी। निक्षेप में पंक विदर (Mud cracks),तरंग चिन्ह (Ripple marks) जीवश्मित जड़ें (Mhizoliths) आदि भी थे। स्थानीय भूतात्विक जमावो के मिश्रण के भी प्रमाण नही मिले।

ज्वालापुरम 3,17,20–23 तथा 9 आदि के उत्खननों से उस क्षेत्र के पुराप्रागितिहास के सांस्कृतिक अनुक्रम में विशेष रूप से तथा दक्षिण एशिया के अनुक्रम में विशेष जानकारी हुई है। टेफ्रा के नीचे तथा ऊपर के स्तरों की OSL तिथि क्रमशः 77 तथा 74 ka नापी गई है। ज्वालापुरम टैंक में उत्खनित आश्यूल उपकरण प्राचीनतम हैं। ये लगभग 1 कि0मी0 के फैंग्लोमरेट जमाव (Fanglomerate deposit ) में एकदम ताजी अवस्था में मिलते हैं। उपकरणों में विभिन्न आकार के हैण्डैक्स, चाकू, चापर आदि हैं। यहाँ से प्राप्त OSL तिथि से अनुमान किया जाता है कि घाटी में आदि मानव M1S 6 में विद्यमान था।

## मध्य ज्वालापुरम पुरापाषाण युगीन आवासीय स्थल

2003 तथा 2010 के मध्य अनेक मध्य पुरापाषाण युगीन आवासीय स्थलों का उत्खनन किया

Scanned with OKEN Scanner

गया था जिससे स्पष्ट होगया कि विषम वातावरण के बावजूद भी मध्य पुरापाषाण युगीन संस्कृति टेफ्रा के पहले तथा बाद में भी चलती रही। ज्वलापुरम–3 में टेफ्रा के नीचे 3.6मी0 तक खोदा गया। राख के लगभग 1 मी0 नीचे एक सीमित क्षेत्र के पेबुलकाग्लोमरेट में मध्य पुरापाषाण युगीन उपकरण प्राप्त हुए थे तिसकी OSL तिथि 77 kay नापी गई। इस लेयर में 215 उपकरण तथा लाल रेखांकित गेरू प्राप्त हुआ था। टोबा लेयर (Toba Layer) में उसी प्रकार के 108 उपकरण प्राप्त हुए थे। पुरास्थल 21 में टेफ्रा के ऊपर 6 लेयर (A&F) के उत्खनन में 131 उपकरण प्राप्त हुए थे तथा उसकी तिथि 38 kay नापी गई।

स्थल–22 पर एक खनती 10 × 10 मी0 डाली गई थी जिसे 6.5 मी0 की गहरई तक खोदा गया। यहॉ पर टेफ्रा लेयर सतह से 1.8 तथा 1.9मी0 नीचे प्राप्त हुयी थी। इसके नीचे बहुत अधिक संख्या में उपकरण प्राप्त हुए। टेफ्रा के नीचे जिन सैम्पल्स की तिथि ली गई वे 78 से 85 kay के मध्य आती है। यहॉ से कुल मिलाकर 1628 उपकरण प्राप्त हुए।

## ज्वालापुरम–9 (शैलाश्रय)

ज्वालापुरम–9 शैलाश्रय के उत्खनन में लघुपाषाणोपकरण उद्योग की तिथि 35 ka नापी गई है। लघुपाषाणोपकरणों के साथ पत्थर तथा सीप के बीड, हड्डी के हारपून तथा आल (awl) मानव कपाल के टुकड़े आदि भी मिले हैं।

यहॉ पर 4 × 4 की एक खनती 3.3 मी0 की गहराई तक खोदी गई। प्राप्त सामग्री के आधार पर इसे पाँच लेयरों में विभजित किया गया। लेयर एफ स्टेराइल लेयर थी जिसे आधार शिला कहा गया। ए बी जमाव अन्त होलोसीन के थे जिसकी तिथि 12 ka निर्धारित की गयी। सी लेयर में कैल्शियम कार्बोनेट युक्त पत्थर बहुतायत से थे। इस स्तर से बहुत संख्या में लघुपाषाणोपकरण मुशेल शेल (mussel Shell) हड्डी के कटे उपयोजित टुकड़े तभा सीघ (antler) के टुकड़े पूरे जमाव में थे। डी तथा ई लेयरों में पत्थ्र, हड्डी तथा शेल की संख्या कम थी। AMS Radiocarbon dates जो land snails तथा bivalve helvec (Unica sp) पर की गई थी उसके द्वारा C stratum की तिथि 21–12 kay तथा D की 34 ka निर्धारित की गई।

उत्खनन में होमोसैपियन सैपियन के कपाल के कुछ टुकड़े मिले थे जिनमें चार टुकड़े संस्तर C से थे जिसकी तिथि 20–12 ka है। उनपर मिले निस्तापन के निशान (Calcinal marks) से अनुमान किया जाता है कि उन्हे जलाया गया था।

पशुओं की 2732 हड्डियॉ तथा 1644 मोलस्क शेल (mollusk shells) मिले थे। जगंली जानवरों में Gazella gazelle,Antilope cervicapra, boselaphus tragocamelas, sus sp, tetracerus quadricornisAnd muntiacus muntjek आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें खुर वाले जानवरों (ungulateAnimals) की संख्या अधिक थी। कार्निवोर पशुओं (carnivore) की संख्या नगण्य थी।

एक पक्तिक हारपून (Uniserial Harpoon) भी लगभग उसी स्तर से प्राप्त हुए थे। मोलस्क शेल (mollusk shells) तथा लैण्ड स्नेल्स (Land snails) डी तथा सी संस्तर के सभी स्तरों से प्राप्त

Scanned with OKEN Scanner

हुए थे।

संस्तर सी से 25 चूना पत्थर तथा हड्डी के बीड, एक पत्थर का ड्रिल तथा हड्डी की छेदनी (Awl) प्राप्त हुए थे। इनके अतिरिक्त एक रेखांकित लाल गेरू की वर्तिका (Striated red ocher crayon) सी तथा डी संस्तर के बीच से प्राप्त हुए थे।

यहाँ के मध्यपुरापाषाण युगीन उपकरणों में अत्यल्पिक उभ्यपक्षीय उपकरण (Diminutive bifaces) जो अन्य स्थलों पर मिलते हैं उनका अभाव है। Prepared cores, retouched flakes, scrapersAnd points का आधिक्य है। ये 78 से 38 ka में रखे जासकते हैं।

उपकरण निर्माण के लिए चूना पत्थर (Limestone) का उपयोग बहुलता से किया में गया है। इनके अतिरिक्त डालेराइट (Dolerite) चर्ट (chert), क्वार्टजाइट (Quartzite), चाल्सेडनी (Chalcedony) तथा क्वर्टज (Quartz) का भी प्रयोग हुआ है।

लेवालेवा कोर (Levalloisian core), तथा मल्टीप्लैटफार्म और सिम्पिल प्लैटफार्म (Multi-platform and simple platform) कोर तथा अन्य प्रकार के कोर भी मिलते हैं। टोबा (toba) के बाद के स्तर से माइक्रो ब्लेड कोर (Micro blde core) भी मिलते हैं। फलकों की औसत लम्बाई 23 mm है। उपयोजित फलको को, स्क्रेपर, खातयुक्त फलक, स्कंधित वाणाग्र में बाटा जासकता है। टेफ्रा के नीचे के मध्यपुरापाषाण युगीन उपकरणों की तुलना अफ्रीका के अन्तप्रातिनूतन (Tefra Pleistocene) मध्यपाषाण काल (Middle StoneAge) से की जा सकती है।

टेफ्रा के बाद के उद्योग में चूना पत्थर का उपयोग कम किया गया है तथा चर्ट चाल्सेडनी अधिक हैं।

## अन्तपुरापाषाण कालः लघुपाषाणिक तकनीक

ज्वालापुरम–9 के उत्खनन में 53,000 से अधिक लघुपाषावोपकरण प्राप्त हुए थे। इनकी सर्वाधिक संख्या 1.9 से 1.3 मी० की गहराई के बीच थी जिसकी तिथि 20–12 kay के मध्य निर्धारित की गई। लघुतर ब्लेड (micro blades) निम्नतम स्तर से नूतन कल्प तक अथवा 34 kay से लेकर नूतन कल्प तक निरन्तर मिलते हैं। भुथड़ा पृष्ठ उपकरण 34 ka से प्रारम्भ होते हैं तथा 20 ka तक उनकी संख्या सर्वाधिक होती है। उनके सूक्ष्म अध्ययन से ज्ञात होता है कि रेजिन लगाकर मढ़ा जाता था।

एक आघातस्थलीय तथा बहु दिशात्मक आघातस्थलीय कोर सभी स्तरों से मिले थे। नीचे के स्तरों में पुनर्गठित स्क्रेपर तथा खात स्क्रेपर आम उपकरण हैं किन्तु बाद में उनकी संख्या कम होजाती है। क्लाक्रसन आदि की धारणा है कि उपकरणों में क्रमिक तकनीकी विकास समय के अन्तराल के साथ स्पष्ट है। ट्रपीज तथा ट्रायंगिल (Trapeze and triangle) 2.20–1.80 मी० की गहराई तक सामान्य रूप से मिलते हैं जब कि ल्यूनेट 1.80–1.50 मी० के मध्य में अधिक हैं। वाणाग्र (points) संस्तर सी 1.82 –1.10 मी० के मध्य अधिक मिलते हैं। लघु फलकों के कटक में भी अन्तर मिलता है।

लघुपाषाणेपकरण मध्यपुरापाषाण युगीन उपकरणों से 38 तथा 35 ka से विकसित हुए।

# 16

# तमिलनाडु प्रदेश

## (Tamilnadu Pradesh)

तमिलनाडु भारत का सबसे दक्षिणवर्ती प्रदेश है। इसके उत्तर में आन्ध्र प्रदेश, दक्षिण में हिन्द महासागर तथा उत्तर–पश्चिम में कर्नाटक अथवा मैसूर का पठारी प्रदेश एवं केरल प्रान्त तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी है। भारतीय प्रागितिहास एवं विशेष रूप से निम्न पुरापाषाणकाल के इतिहास के दृष्टिकोण से तमिलनाडु का विशेष महत्वपूर्ण स्थान है। यहीं वह क्षेत्र है जहाँ पर भारतीय प्रागितिहास के जनक ब्रूसफूट ने 1863ई0 में सर्व प्रथम प्रस्तर उपकरणों का चयन करके भारतीय प्रागितिहास के अध्ययन का श्रीगणेश किया था। 30 मई, 1863 ई0 को ब्रूसफूट (फूट, आर0बी0, 1866, 'ऑन दि अकरेंस ऑफ स्टोन इम्पलीमेण्ट्स इन लैटेराइटिक फार्मेशंस इन वेरियस पार्ट्स ऑफ दि मद्रास ऐण्ड नार्थ ऑर्काट डिस्ट्रिक्ट्स' रिप्रोडयूस्ड फ्रॉम दि मद्रास जर्नल ऑफ लिटरेचर ऐण्ड साइंस, पार्ट 2, 1866; इन स्टडीज इन प्रीहिस्ट्री एडिटेड बाई डी0 सेन एण्ड ए0 के0 घोष, कलकत्ता, 1966.) को प्रथम उपकरण पल्लवरम कैण्टूनमेण्ट के लगभग 100 गज उत्तर में एक ग्रैवेल पिट तथा सड़क के पश्चिम में लगभग उतनी ही दूरी से प्राप्त हुए थे। अगले वर्ष 20 सितम्बर, 1864 ई0 को अत्तिरमपक्कम नाले से ब्रूसफूट के सहयोगी किंग को दो सुडौल अण्डाकार उपकरण प्राप्त हुए थे। किंग तथा ब्रूसफूट को बहुत से क्वार्टजाइट के उपकरण प्लाण्ट शेल (Plant Shale) पर आधारित लैटेराइट से प्राप्त हुए थे।

ऊपर वर्णित स्थानों के अतिरिक्त और भी बहुत से स्थानों से ब्रूसफूट को उपकरण लैटेराइट कांग्लोमरेट से मिले थे, किन्तु तिथि के दृष्टिकोण से ये वास्तविक लैटेराइट से बाद के हैं।

सभी उपकरणों को ब्रूसफूट ने तीन वर्गों में विभाजित किया है। वे इस प्रकार हैं :–

प्रथम वर्ग – इस वर्ग के उपकरणों का एक अन्त भुथड़ा है। ये निम्न है :

- अ. नोकदार उपकरण (Pointed Weapon)
- ब. फानाकार उपकरण (Wedge shaped Weapon)

द्वितीय वर्ग – इस वर्ग में चतुर्दिक् धार वाले उपकरण आते हैं :

- अ. उपकरण जिनके एक अथवा दोनों अन्त नोकदार होते हैं।
- ब. अण्डाकार उपकरण
- स. चक्रिक उपकरण

तृतीय वर्ग – इसमें फलक मात्र है।

ब्रूसफूट तथा किंग के पुरोगामी कार्यों के उपरान्त उस क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य वी0डी0 कृष्णस्वामी ने किया। मद्रास के निकट पालार (Palar) के मैदानों के सर्वेक्षण से उन्होंने कार्य प्रारम्भ किया। इस क्षेत्र में प्राप्त तृतीयक कालीन जमावों के ऊपर चतुर्थक कालीन बोल्डर कांग्लोमरेट का जमाव है तथा स्थान–स्थान पर इसके ऊपर अपरदी लैटेराइट (Detrital Laterite) का जमाव मिलता है। इसके पश्चात् येल कैम्ब्रिज अभियान के पेटरसन प्रथम विद्वान थे जिन्होंने मद्रास के

Scanned with OKEN Scanner

निकट प्रातिनूतनकालीन चार वेदिकाओं के क्रम का निर्देश किया। रेड हिल (Red Hill) के निकट एरूमैवत्तिपलैयम (Erumaivettipalaiyam) नामक स्थान पर लैटेराइट के स्थलीप्राय प्रदेश में कोर्तलयार नदी द्वारा काटी हुई वेदिकाएँ स्पष्टतया देखी जा सकती है। येल–कैम्ब्रिज एक्सपेडीशन ने भू–वैज्ञानिक स्तरों के साथ पुरातत्वीय सामग्री का जो सम्बंधीकरण स्थापित किया था, वह इस प्रकार है :

सर्वप्रथम सफेद बोल्डर कांग्लोमरेट के ऊपर अपरदी लैटेराइट का जमाव हुआ। उसके बाद उसकों काटते हुए तीन वेदिकाओं का निर्माण हुआ जिन्हें क्रमशः प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय वेदिका कहा गया। ये वेदिकाएँ कोर्तलयार घाटी में क्रमशः 60, 20 तथा 8 फीट की ऊँचाइयों पर स्थित हैं। प्रथम वेदिका अपरदनजनित तथा द्वितीय निक्षेपणजनित प्रतीत होती है। अतिरमपक्कम में यह बहुत स्पष्ट है। इनमें कोई जीवाश्मित अवशेष नहीं मिले थे, किन्तु उनके साथ निम्न पुरापाषाणकालीन उपकरण सम्बंधित थे। सभी उपकरण क्वार्टजाइट के बने थे।

बोल्डर कांग्लोमरेट स्तर से सबसे महत्वपूर्ण साक्ष्य बदमदुराई नामक स्थान से प्राप्त हुए थे (कृष्णस्वामी, वी0डी0, 1947, "स्टोन एज इण्डिया", एंशिएण्ट इण्डिया, वाल्यूम 3, पृ0 33 कृष्णस्वामी, वी0डी0, 1938, "चेन्जेज ऑफ प्रीहिस्टारिक मैन नीयर मद्रास", जर्नल ऑफ मद्रास जाग्रे0 एसो0 XIII , पृ0 58–90, मद्रास )।

यहाँ से प्राप्त प्रस्तर उपकरणों को उनकी रासायनिक रंगाई तथा प्ररूपात्मक आधारों पर तीन निम्न वर्गो में विभाजित किया गया है।

## प्रारम्भिक वर्ग

इस वर्ग के उपकरण भारी हैं तथा क्रीम रंग की रासायनिक रॅगाई से युक्त हैं। इनके ऊपर लैटेराइट का प्रभाव नहीं है। उपकरण घर्षित (Rolled) तथा प्राक् लैटेराइट काल के एवं बोल्डर कांग्लोमरेट के समकालीन हैं। इस वर्ग के उपकरणों को रासायनिक रंगाई तथा प्रारूप के आधार पर पुनः दो उपवर्गों में विभाजित किया गया है। प्रारम्भिक श्रेणी – इस श्रेणी में प्रमुखतः सफेद रासायनिक रॅगाई से युक्त अबेवीलियाँ प्रकार के हैण्डैक्स तथा कोर है। हैण्डैक्स रूक्ष तथा अनियमित आकार के और पेबुल समन्तान्त शैली के हैं। इनके अधिकांश भागों पर कॉर्टेक्स विद्यमान हैं। फलक–चिन्ह गहरे तथा अनियमित हैं। पुनर्गढ़न के प्रमाण नहीं मिलते हैं। कोर, भी अनियमित तथा वृहदाकार हैं। उपकरणों की बनावट को देखने से स्पष्ट है कि उनका निर्माण प्रस्तर–हथौड़ा पद्धति से किया गया है।

## उत्तर श्रेणी :

इस वर्ग के उपकरणों पर रासायनिक रंगाई कम है। कोर अपेक्षाकृत विकसित प्रतीत होते हैं। हैण्डैक्स प्रारम्भिक आशूलियॉ।के समान नियमित आकार के हैं। सोपानपद फलकीकरण का शुभारम्भ हो जाता है। कोर अधिकांशतया चक्रिक (Discoidal) प्रकार के हैं तथा उन पर एकान्तर फलकीकरण के चिन्ह स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। फलकित आघात–स्थल के प्रमाण नहीं मिलते हैं, किन्तु कॉर्टेक्स कम हो जाता है। पुनर्गढ़न के प्रमाण नहीं मिलते हैं।

## द्वितीय वर्ग

इस वर्ग के उपकरण कांग्लोमरेट के ऊपर पड़े लैटेराइट के सम्पक्र में आने से लाल रंग के हो गए हैं। प्रारम्भिक वर्ग के उपकरणों से इसवर्ग में उपकरणों में निश्चित प्रारूपात्मक विकास मिलता

Scanned with OKEN Scanner

है। हैण्डैक्स मध्य आशूलियाँ प्रकार के समान चपटे (Flat) तथा सुगढ़ित है। उनके निर्माण में सोपानपद फलकीकरण प्रविधि का प्रयोग अधिक किया गया है। अधिकांश उपकरण अण्डाकार अथवा नाशपाती के आकार के हैं। कोर प्रमुखतया चक्रिक (Discoidal) हैं, किन्तु उन पर फलकीकरण पहले से अधिक क्रमबद्ध हैं। फलकित आघात–स्थल वाले कोरों का अभी अभाव है।

## तृतीय वर्ग

इस वर्ग के उपकरणों पर लैटेराइट का रंग नहीं है। हैण्डैक्सों के ऊपर फलकीकरण कोमल हथौड़े (Soft Hammar) से किया हुआ प्रतीत होता है। ये उच्च आशूलियाँ।के निकट प्रतीत होते हैं। हैण्डैक्स प्रमुखतः दो प्रकार के हैं – प्रथम अण्डाकार हैं तथा दूसरे लम्बे एवं नुकीले हैं। इनका पेबुल समन्तान्त मोटा होता है। क्लीवर की संख्या बहुत कम है। कुछ गढ़ित आघात–स्थल (Prepared Platform) के कोर भी मिले हैं। फलक पतले हैं, किन्तु फलकित आघात–स्थल के नहीं मिले हैं। इनमें से कुछ पर पुनर्गढ़न किया गया है, जैसा कि प्रायः पार्श्व स्क्रेपरों पर मिलता है।

कृष्णस्वामी (कृष्णस्वामी, वी0डी0, 1947, पार्श्वोद्धरित, एंशिएण्ट इण्डिया, नं0 3, पृ0 34)की धारणा है कि कोर्तलयार घाटी में बदमदुराई के पश्चात् अत्तिरमपक्कम की वेदिकाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं, क्योंकि इस वेदिका के आधारिक लैटेराइट ग्रैवेल से दूसरी वेदिका के दुमट (Loam) तक के जमाव में प्राप्त होने वाले आश्यूल–संस्कृति के उपकरणों में विकासात्मक क्रम मिलता है। आधारिक लैटेराइट ग्रैवेल (Basal Laterite Gravel) में बदमदुराई के प्रथम दो वर्गों के घिसे हुए उपकरणों के समान कुछेक उपकरणों के अतिरिक्त अधिकांश बिना घिसे तथा ताजे हैं।

कृष्णस्वामी (वही, पार्श्वोद्धरित, पृ0 34) के अनुसार ये उपकरण आधारिक लैटेराइट ग्रैवेल के अथवा बदमदुराई के तृतीय वर्ग के उपकरणों के समकालीन हैं। हैण्डैक्स यूरोप तथा अफ्रीका के अन्त–आश्यूल (LateAcheul) प्रकार के हैं तथा वे फ्रांस के मिकाकुअन हैण्डैक्सों का स्मरण दिलाते हैं। ये फलक पर बने लम्बाकार, चिपटे एवं पतले हैं। विभिन्न आकार के क्लीवर बहुतायत से मिलते हैं। ये दक्षिण अफ्रीका के वाल प्रविधि (Vall Technique) द्वारा निर्मित क्लीवरों के समान हैं। उभयपक्षीय उपकरणों के साथ सोहन प्रकार के फलक तथा उपकरण भी मिले हैं। दुमट (Loam) से लेवालेवा प्रकार के फलकित आघात–स्थल के फलक, जिनमें अधिकांश भागों पर फलकीकरण किया गया था, मिलते हैं।

उपर्युक्त विवरण के सूक्ष्मावलोकन से स्पष्ट है कि बदमदुराई तथा अत्तिरमपक्कम के उपकरणों में स्तरीकरण के आधार पर विकासात्मक क्रम का निर्देश नहीं होता है। डॉ0 सांकलिया की भी यहीं धारणा है।

लगभग सभी स्तरों में विकसित तथा अविकसित उपकरण विद्यमान हैं। बोल्डर कांग्लोमरेट में, तीनों वर्गों के उपकरणों को स्तरीकरण के आधार पर पृथक्–पृथक् नहीं किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त प्रथम वर्ग में दोनों ही अबेवीलियाँ तथा आशूलियाँ प्रकार के उपकरण मिश्रित रूप से वर्तमान हैं। भारत में अन्य स्थानों पर भी लगभग यहीं स्थिति है। अतः कृष्णस्वामी और पेटरसन का मत निराधार है। डॉ0 सांकलिया का भी यही विचार है। इसके अतिरिक्त उनका (सांकलिया, एच0 डी0, 1974, पार्श्वोद्धरित, पृ0 66–68) कथन है कि कृष्णस्वामी ने सिरीज अथवा अन्य प्रकार के उपकरणों के सम्बंध में भी कोई प्रकाश नहीं डाला है। इस प्रकार के उपकरण दुमट तथा बाद की वेदिकाओं से सुब्बाराव को प्राप्त हुए हैं।

ऐरूमैवत्तिपलैयम के निकट मन्जनकरनानी नामक स्थान के उत्तर में जो कोर्तलयार घाटी में

Scanned with OKEN Scanner

ही है कामियाडे (बक्रिट, एम0सी0, कामियाडे, एल0ए0 ऐण्ड रिचर्डस, एफ0जे0, 1931, क्लाइमेटिक चेन्जज इन साउथ ईस्ट इण्डिया ड्यूरिंग अर्ली पेलियोलिथिक टाइम्स, जियोलॉजिकल मैगजीन LXIX, मई) आदि ने सभी उपकरणों का संग्रह अपरदी लैटेराइट से किया था। यह उल्लेखनीय है कि उनके वृत्तान्तों से यह स्पष्ट है कि उन्हें उपकरण आधारिक लैटेराइट से प्राप्त नहीं हुए थे। उन्होंने प्रारूपतामक आधारों के ऊपर उभयपक्षीय उपकरण, कोर तथा फलक (Bifaces, CoresAnd Flakes) को निम्न पुरापाषाणकाल के अन्तिम चरण का तथा मध्य पुरापाषाणकाल (Middle Palaeolithic) के प्रारम्भ का माना था, किन्तु कृष्णस्वामी को इसके विपरीत, उपकरण लैटेराइट से तथा स्तरीकरण के दृष्टिकोण से उनसे भी पहले के बोल्डर कांग्लोमरेट से प्राप्त हुए प्रतीत होते हैं। इस पुरातात्विक आधार पर कृष्णस्वामी मद्रास के निकटवर्ती लैटेराइट की तिथि पुठबल प्रदेश के मध्य प्रातिनूतन (Mid Pleistocene) काल की प्रथम तथा द्वितीय वेदिका के समान मानते हैं तथा पुठबल के बोल्डर पिण्ड को बदमदुराई के बोल्डरपिण्ड के समकालीन बताते हैं। दोनों क्षेत्रों के बोल्डरपिण्ड में अन्तर केवल इतना ही है कि पुठबल प्रदेश में इस जमाव से प्राक्सोहन प्रकार के तथा बदमदुराई से अबेवीलियाँ आशूलियाँ हैण्डैक्स उद्योग के अवशेष प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार कृष्णस्वामी के मतानुसार पूर्वी तट पर लैटेराइट का जमाव मानव–कालीन है तथा वह मध्य प्रातिनूतन काल के अन्त का है (कृष्णस्वामी, वी0 डी0, 1947, पार्श्वोद्धरित, एंशिएंट इण्डिया, नं0 3, पृ0 3)

कलकत्ता विश्वविद्यालय के डॉ0 सेन ने भी मयूरभंज के मध्य प्रातिनूतनकालीन लैटेराइट से हैण्डैक्स उद्योग के उपकरणों के प्राप्ति की घोषणा की है (सेन, डी0 1942, 'ए प्रिलिमिनरी नोट ऑन दी टाइपॉलजी ऑफ दि पेलियोलिथिक साइट्स इन मयूरभंज', प्रोसीडिंग ऑफ दि 29th इण्डियन साइन्स कॉंग्रेस (बड़ौदा 1942), पार्ट III एक्सट्रैक्ट्स, पृ0 185, सेक्शन IX ऐन्थ्रोपॉलजी )। किन्तु कृष्णस्वामी तथा सेन दोनों का उपर्युक्त मत उचित प्रतीत नहीं होता है। बाद के हुए अनुसंधानों से यह स्पष्ट है कि दक्षिण भारत अथवा पूर्वी भारत के तटीय प्रदेशों में लैटेराइट से मानव–निर्मित उपकरण नहीं मिले हैं। ये प्रारम्भिक प्रातिनूतनकाल के हैं। उपकरण सभी स्थानों पर अपरदी लैटेराइट से ही मिले हैं जिन्हें मध्य प्रातिनूतनकालीन माना गया है। डॉ0 सांकलिया की भी यहीं धारणा है (सांकलिया, एच0डी0, 1962, पार्श्वोद्धरित, पृ0 38, फु0 नो0 1)

कृष्णस्वामी के पश्चात् तामिलनाडु प्रदेश में प्रमुख कार्य करने वालों में पुरातात्विक सर्वेक्षण के डॉ0 के0 डी0 बैनर्जी (इण्डियन आर्क्यालजी – ए रिव्यू, 1963–64, पृ0 17; 1964–65, पृ0 10; 1968–69, पृ0 32) तथा आर0 वी0 जोशी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उत्तरी आर्काट (NorthArcot) तथा चिंगलपुत जिलों में सर्वेक्षणों के फलस्वरूप अनेक निम्न पूर्व पाषाणकालीन उद्योग–स्थल प्रकाश में आए ( वही, 1963–64, पृ0 17)।

प्रायद्वीपीय भारत में प्रस्तरयुग के क्रम का अध्ययन करने के लिए के0डी0 बैनर्जी तथा उनके सहयोगियों ने चिंगिलपुत जिले में गुडियम नामक गुहा तथा उसके निकट सीमित उत्खनन 1962–63 तथा 63–64 में किया। GDM-1 के उत्खनन में उपकरण प्राचीन फर्श स्तर (Ancient Floor Level) से ऊपर के गाद मिट्टी के स्तर (Silty layers) तक मिले। नीचे के पेबुल ग्रैवेल से उत्तर आशूलियाँ उपकरण जिसमें एक अर्धनिर्मित हैण्डैक्स भी सम्मिलित था, मिले थे तथा ऊपर के स्तर में मध्य पाषाणकाल (Middle StoneAge) के उपकरण थे। (यहाँ पर मध्य पाषाणकाल का तात्पर्य मध्य पुरापाषाणकाल से है।) GDM-2 में दो स्तर थे जिनमें नीचे की लेयर से अधिकांश

Scanned with OKEN Scanner

फलक उपकरण प्राप्त हुए तथा ऊपर के स्तर से मिश्रित उपकरण जिनमें फलक, प्वाइंट, स्क्रेपर, हैण्डैक्स, क्लीवर तथा ब्लेड थे। GDM-3 जो श्रीकृष्णपुरम के निकट स्थित था वहाँ पर छर्रेदार लैटेराइट मोरम का जमाव था जो नीचे के शेल के सम्पक्र से 30 से0मी0 तक पीले रंग का हो गया था। छर्रेदार लैटेराइट के जमाव से मध्यपुरापाषाणकाल के उपकरण उत्तर आशूलियाँ उपकरणों के साथ प्राप्त हुए थे। लैटेराइट मोरम जमाव से उत्तर आशूलियाँ प्रकार के उपकरण तथा नीचे के शेल से कोई उपकरण नहीं मिला।

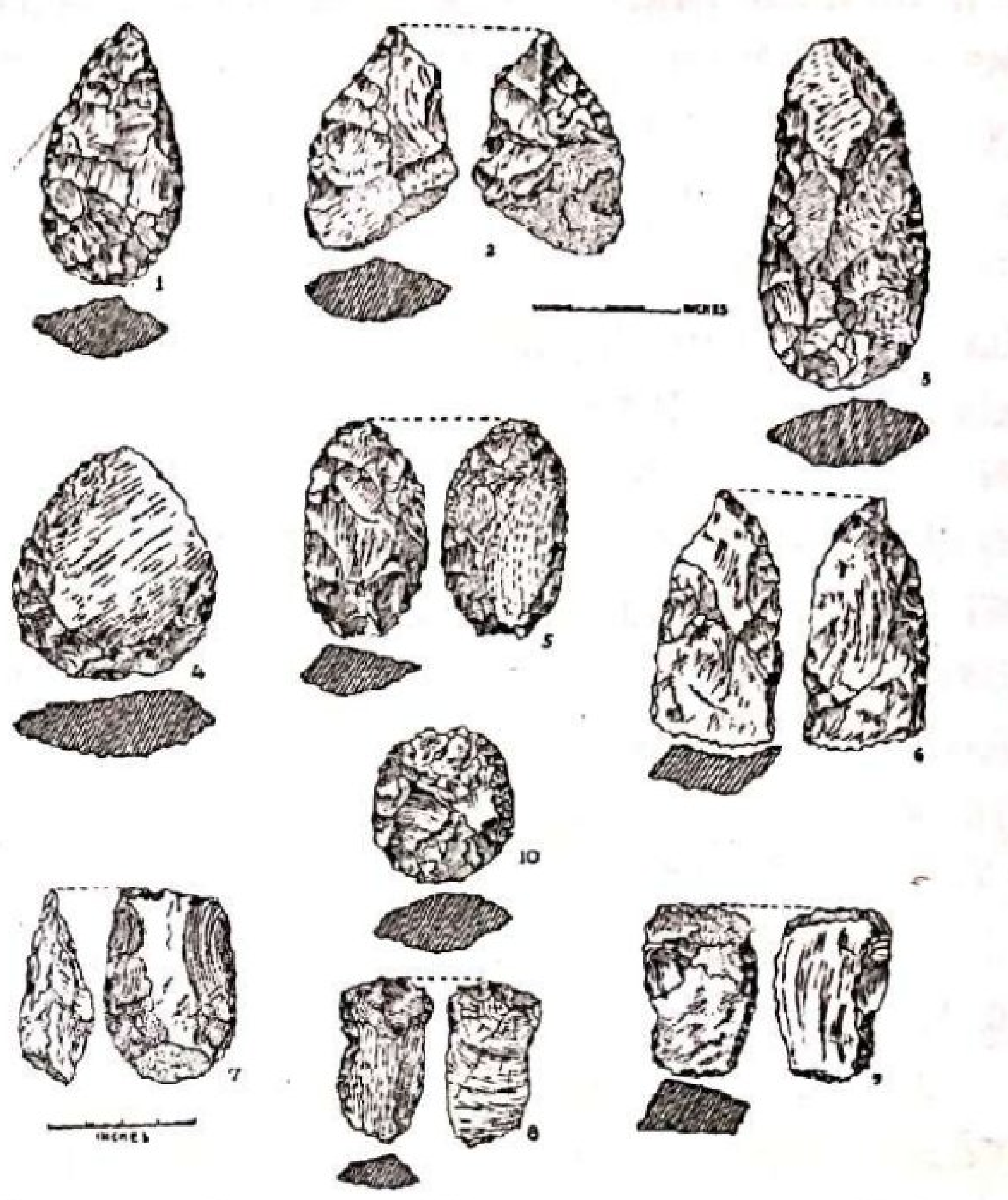

अत्तिरमपक्कम निम्न पुरापाषाणिक उपकरण : 1 – 5 हैण्डैक्स, 6–9 क्लीवर, 10 डिस्क्वायडल चित्र सं. 23

उत्तरी अर्काट (इण्डियन आर्क्यालजी – ए रिव्यू, 1964–65, पृ0 22, 1968–69, पृ0 32) जिले में कल्लार नदी के ग्रैवेल से तथा चिंगलपुत जिले (वही, 1963–64,पृ0 17; 1964–65, पृ0 20–22) से निम्न पुरापाषाणकाल के उपकरण प्राप्त हुए हैं। अत्तिरमपक्कम में बुदिया–मंनु–वंकू के दाहिने कगार पर प्रस्तर उद्योगों तथा लैटेराइट का सम्बंध निश्चित करने के लिए बैनर्जी ने उत्खनन भी किया। वहाँ पर नीचे से ऊपर की ओर निम्न क्रम मिला।

1. श्री परमबुदुर शेल के ऊपर के भाग से आशूलियॉ हैण्डैक्स तथा क्लीवर मिले।
2. इसके ऊपर के अपरदी लैटेराइट ग्रैवेल से उत्तर आशूलियॉ फलक उद्योग (PostAcheulian Industry) के उपकरण मिले जिनमें शर स्क्रेपर आदि सम्मिलित हैं।
3. अपरदी लैटेराइट ग्रैवेल को आच्छादित करती हुई भूरी गाद मिट्‌टी का जमाव था। इससे कोई उपकरण नहीं मिला।
4. सबसे ऊपर लघु पाषाण उपकरण मिले। बैनर्जी के अनुसार यह उत्खनन सिद्ध करता है कि यह धारणा कि लैटेराइट ग्रैवेल आशूलियाँ स्तर हैं, अनुचित है। इसी प्रकार गाद मिट्‌टी (Silt) को उत्तर आशूलियाँ फलक उद्योग का स्तर कहना भी सही नहीं है।

## अत्तिरमपक्कम उत्खनन

अत्तिरमपक्कम पुरास्थल कोर्तलयार की एक सहायक नदी के निकट, चेन्नई से उत्तर–पश्चिम में तमिलनाडु में स्थित है। इसे सर्व प्रथम प्रकाश में लाने का श्रेय राबर्ट ब्रूस फूट तथा उनके सहयोगी विलियम किंग को है। कालान्तर में वी0 डी0 कृष्णास्वामी (1947:32), डी टेरा, पेटरसन आदि ने भी इस क्षेत्र का विधिवत सर्वेक्षण किया। यहाँ से प्राप्त हैण्डैक्स उपकरणों को मद्रासीय

उद्योग के नाम से अभिहित किया गया। 1969 में के0डी0 बैनर्जी ने यहाँ उत्खनन किया। उपर्युक्त अधिकांश विद्वानों के विचार परस्पर मेल नहीं खाते थे। अतः 1990 के दशक में पप्पू (1996, 1999, 2001अ, 2002ब आदि) नें वहाँ पर पुनः सर्वेक्षण तथा उत्खनन किया।

कृष्णास्वामी तथा पेटरसन ने कोर्तलयार नदी में चार वेदिकाओं को चिन्हित किया था। अत्तिरमपक्कम टी–2 पर स्थित है। यह निक्षेपण जनित वेदिका (Aggradational Terrace) जल तल से 20 फीट की ऊचाई पर है। बैनर्जी के अनुसार यहाँ पर लैटेराइट जमाव आशूलियाँ उद्योग के उत्तरवर्ती थे किन्तु पप्पू की धारणा में यहाँ पर लैटेराइट जमाव आशूलियाँ जमाव के पूर्ववर्ती मानना चाहिए (Pappu 2001b-)।

अत्तिरमपक्कम में किए गए उत्खनन में प्रस्तर युगीन संस्कृतियाँ :– निम्न, मध्य तथा उच्च स्तरित रूप से प्रकाश में आईं। यह भी उल्लेख्य है कि ये सभी संस्कृतियाँ अपने भौतिक स्वरूप में (Primary context) में सरक्षित थी। यह उल्लेख्य है कि यहॉ पर आशूलियाँ उपकरण मिट्टी के धरातल पर मिले जिससे अनुमान किया जाता है कि उस समय वहाँ पर पुरा बाढ़ कृत मैदान (Palaeo flood plain) था।

उत्खनन के फलस्वरूप आठ निक्षेपण जनित संस्तर प्रकाश में आए। सबसे नीचे मृणमय गाद मिट्टी (Argillaceous silty clay) का जमाव लेयर 6 तथा 8 थी जिसके बीच में लेयर 7 एक ग्रैवल जमाव था। गाद मिट्टी में बालू क्वार्टजाइट के पेबुल (<2-5m0) भी थे। लेयर 7 में गोलाकार क्वार्टजाइट के पेबुल बड़े आकार के थे (~40 mm)। इन जमावों से अत्तिरमपक्कम के प्राचीनतम आशूलियाँ आवास के प्रमाण उपलब्ध हुए। इन जमावों के ऊपर लौहमय ग्रैवल संस्तर (Ferrugenous gravel bed) लेयर 5 था जिसके ऊपर चिकनी मिट्टी युक्त गाद मिट्टी का जमाव लेयर 3 तथा 4 थी उसके ऊपर महीन फैरीक्रेट ग्रैवेल (Fine grained ferricrate gravel deposit) जमाव लेयर 2 थी। सबसे ऊपर अन्त में मिट्टी की स्टेराइल लेयर (Sterile layer 1) थी। लेयर 5 से 2 में अन्त आशूलियाँ (LateAcheulian) तथा प्रारम्भिक से मध्यपूर्व पाषाणिक उपकरण प्राप्त हुए थे।

इस सम्पूर्ण अनुसंधान में जो महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आया वह यह था कि प्रारम्भ में धारणा थी कि जो आशूलियाँ उपकरण लेयर 6 तथा उसके नीचे के जमाव से प्राप्त हुए थे उन्हें अबादी अथवा श्रीपेरमबदुर श्रृखला के निम्न क्रटेशस शेल (Lower Cratecious shale) का माना जाता था। किन्तु इस उत्खनन से ज्ञात हुआ कि ये जमाव अपरदित क्रटेशस शेल तथा सैण्डस्टोन उपत्यकाओं से आए थे जो अवाह क्षेत्र (CatchmentArea) में थे। इनका जमाव उसी समय हुआ था जब कि आदि मानव वहाँ रहता था। इसी लिए उपयोग में लाए गए परित्यक्त उपकरण बालू तथा गाद मिट्टी के एकान्तर जमाव में मिलते हैं। स्थिर पानी में बालू तथा उपकरण धीरे–धीरे जमते गए। लेयर 3 तथा 4 में जो उपकरण मिले वे पहले नहीं मिले थे। विभिन्न लेयरों के खनिज विज्ञानिक (Mineralogy) विश्लेषण के अनुसार अनुमानतः आशूलियन जमाव लेयर 6 के दौरान ईषत–आर्द्र (SemiArid) जलवायु MAP<100 cm थी जो बाद में अधिक आर्द्र MAP>100 cm अन्त आशूलियाँ से मध्यपुरापाषाण लेयर 5–2 में बनी रही। पुरातात्विक दृष्टि से स्टेराइल लेयर 1 का जमाव ईषत–शुष्क (SemiArid) जलवयु में हुआ। पशुओं के तीन दाँत मिले थे जो —Bubalus अथवा Bos, equs sp, caprinae or Bosilaphini के थे अनुमान किया जाता है उस समय अन्त प्रातिनूतन काल में आर्द्र कालीन भू–परिदृष्य (Land scape) रहा होगा।

तिथि निर्धारण के लिए दो भिन्न पद्धतियाँ अपनाई गईं थी। खनती से उत्खनित उपकरणों के लिए cosmic ray exposure dating ($^{26}$AI/$^{10}$Be) का उपयोग किया गया। उसके अनुसार दफन करने की कम से कम तिथि 1.51+/−0.07 Ma आकी गई। पेलियो मैगनेटिक मेजरमेण्ट (Palaeo magnetic measurements) के द्वारा 9m की तिथि उपलब्ध हुई जिसके अन्तर्गत आशूलियाँ उपकरण प्राप्त हुए थे। सारांश में अत्तिरमपक्कम में आशूलियाँ मानव 1.07 Ma के पूर्व था (An earlier Acheulian Arrival in South Asia : Science 25 March 1532 & 33; Pappu S. Y. etal 2011 Early Pleistocene Presence ofAcheulian Hominins in South India. Science 25th March :1596-99).

उपकरणों में बड़े आकार के उभय पक्षीय (Bifaces) उपकरण तथा कुछ छोटे आकार के उपकरण भी हैं। हैण्डैक्स अधिकाशतया अन्त फलक (End struck large flakes 130−150 मि0मी0) तथा 90−100 मि0मी0 अधिकांश अण्डाकार हैं तथा नोकदार हैं तथा उनकी मूठ (Butt end) उन्नतोदर (Convex) हैं। क्लीवरों की संख्या कम है तथा वे 76−198 मि0मी0 के हैं। इनके अतिरिक्त कुछ फलकों पर उभयपक्षी फलकीकरण नहीं किया गया है। उनकी औसत लम्बाई 119 मि0मी0 है।

लेयर 5 तथा 6 कें संगम पर कुछ पशुओं के पद चिन्ह भी चिन्हित किए गए। लेयर 5 में संस्कृति में कुछ परिवर्तन के प्रमाण देखे गए। इसमें उभयपक्षी उपकरण कम होने लगते हैं। फलकों पर निर्मित छोटे उपकरणों की संख्या बढ़ने लगती है। लेयर 5−2 में अन्त आशूलियाँ से मध्यपुरापाषाण काल के संक्रमण के प्रमाण मिलने लगते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

# 17

## केरल प्रदेश
## (Kerala Pradesh)

यह भारत का सबसे दक्षिण–पश्चिमवर्ती प्रान्त है। दक्षिण में हिन्द महासागर, पश्चिम में अरब सागर, पूर्व में तमिलनाडु तथा उत्तर में कर्नाटक प्रान्त से घिरा हुआ है। यह भारत के सबसे छोटे किन्तु शिक्षित प्रान्तों में से है।

प्रस्तरयुगीन इतिहास के दृष्टिकोण से केरल प्रदेश का कोई महत्व नहीं है, क्योंकि अभी तक कोई भी प्रस्तरयुगीन उद्योग यहाँ से प्रकाश में नहीं आया है। इसका क्या कारण है स्पष्ट रूप से कहना कठिन है, किन्तु जैसा कि डॉ0 सांकलिया का विचार है इसका प्रमुख कारण अनुसंधान की न्यूनता ही अधिक सम्भाव्य प्रतीत होता है।

# 18

# कर्नाटक प्रदेश
## (Karnataka Pradesh)

कर्नाटक प्रदेश भारत के दक्षिण पश्चिम में स्थित है। 1 नवम्बर 1956 को यह निर्मित हुआ। प्रारम्भ में यह मैसूर के नाम से जाना जाता था 1973 में इसका नाम कर्नाटक पड़ा। इसके पश्चिम में अरब सागर, उत्तर–पूर्व में गोआ , आध्र प्रदेश, तमिलनादु दक्षिण पूर्व में महाराष्ट्र प्रान्त तथा केरल दक्षिण–पश्चिम में स्थित हैं।

कृष्णा, भीमा, घटप्रभा, वेदावती, मालप्रभा, तुगंभद्रा उत्तर की प्रमुख नदियॉं हैं कावेरी तथा उसकी सहायक हेमवती, सिमसा, अर्कावती, लक्षमन तीर्थ तथा कबीनी दक्षिण की। इनमें सें अधिकाशं बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं। सम्पूर्ण प्रान्त एक पठारी प्रदेश है। जलवायु की दृष्टि से इसके विभिन्न भागों में काफी विविधता पायी जाती है। उदाहरण के रूप में पश्चिमी भागों में जहॉं वर्षा अधिक होती है वहीं पूर्वी भाग कम वर्षा के कारण अपेक्षाकृत शुष्क है।

निम्न पुरापाषाणकाल की दृष्टि से कर्नाटक प्रान्त उतना महत्वपूर्ण नहीं माना जाता था जितना इसके उत्तर तथा पूर्ववर्ती प्रान्त महाराष्ट्र तथा आन्ध्र प्रदेश किन्तु गत वर्षा में यहॉं महत्व पूर्ण कार्य हुए हैं।

अधिकांश स्थानों के समान यहॉं पर भी सर्वप्रथम ब्रूसफूट को ही निम्न पुरापाषाणकालीन उपकरण शिभोगा जिले से प्राप्त हुए थे। गत कुछेक वर्षों में गुलबर्गा जिले से महत्वपूर्ण सामग्री प्रकाश में आई है।

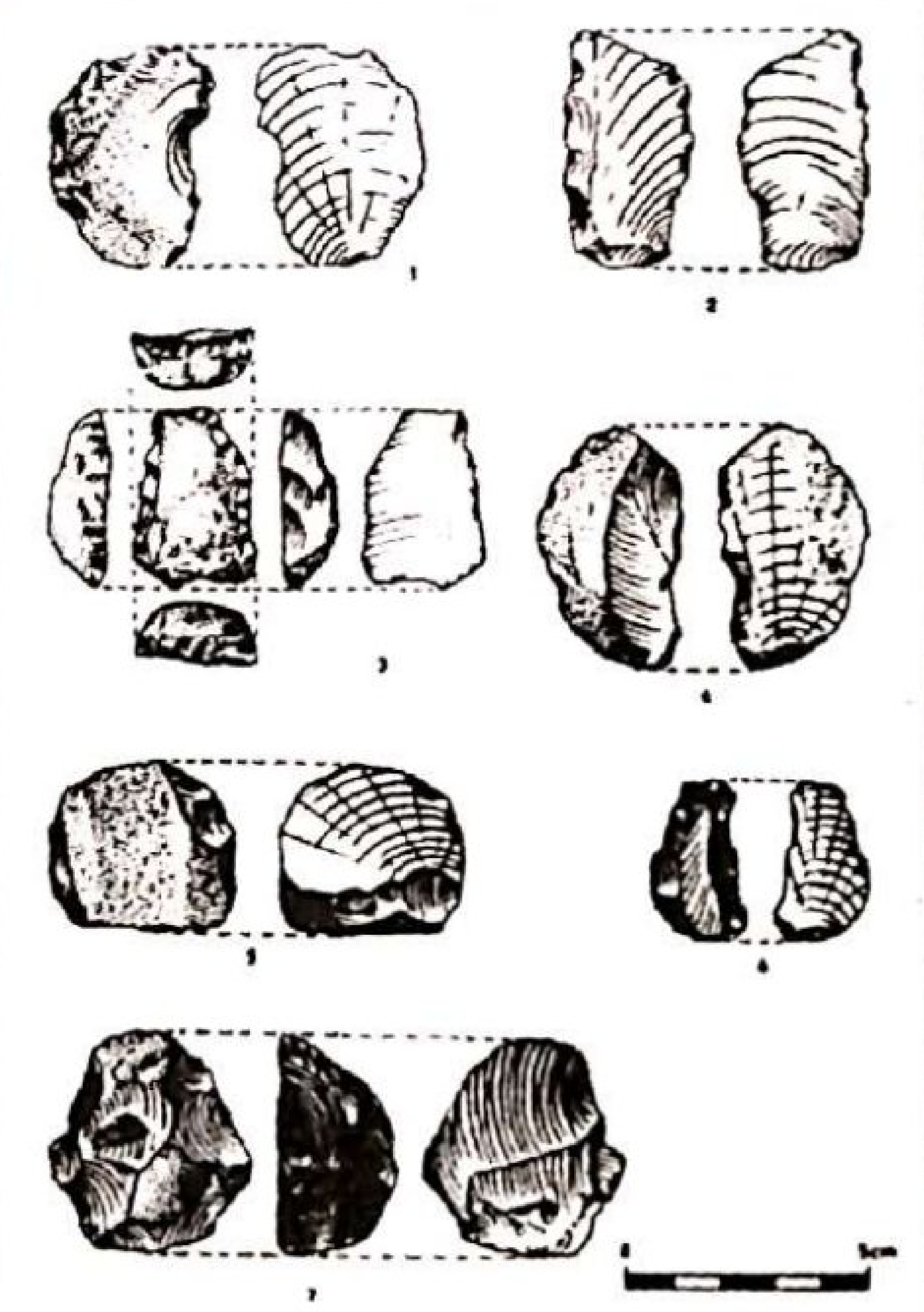

इसमपुर मध्यपुरापाषाणिकउपकरणचित्र सं0–24

## इसमपुर–कर्नाटक

इसमपुर (16$^0$ 30′N,76$^0$ 29′ E) उत्तरी कर्नाटक में हुण्सगी घाटी में है। पुरास्थल इसमपुर गॉंव के उत्तर–उत्तर–पश्चिम में 2कि0मी0 की दूरी पर इसमपुर घाटी में स्थित है। इसमपुर घाटी लगभग 12 कि0मी0 लम्बी –पूर्व–पश्चिम– तथा1.3 कि0मी0 चौड़ी है तथा चूनापत्थर के पठारी मैदान से घिरी है जो 20–40 मी0 ऊचे हैं। घाटी का भूमि तल समुद्र जल–तल से पश्चिम से 500 मी0 पूर्व में 460 मी0 की ढाल बनाता हुआ हुण्सगी घाटी से मिल जाता है।

इसमपुर घाटी के पानी का निकास मौसमी जलधारा कमता हल्ला (Kamta Halla) द्वारा होता है जो लगभग 20 कि0मी0 लम्बी है। कमता हल्ला के बायें तट से लगभग 150 मी0 की दूरी पर पुरास्थल स्थित है। इसमपुर घाटी की आधार शिलापर 1.5 से

2.5 मी0 का भूरी/काली गाद मिट्टी का जमाव है। धाटी की अधिकांश गाद मिट्टी नारायणपुर डैम के लिए खोदकर निकाली गई थी। जहाँ–जहाँ मिट्टी छूट गई थी वहाँ पर चूना पत्थर निर्मित आश्यूल उपकरण मिले। एंसे दो स्थलों II तथा III जो एक दूसरे से 50 से 60 मी0 की दूरी पर थे चिन्हित किए गए। वहाँ से 10–20 एकदम ताजे उपकरण जिनमें हैण्डैक्स, चापिंगुपकरण थे संग्रहीत किए गए। बाद में पानी आदि के बहने पर कुछ और स्थल प्रकाश में आए। 1994 में एक 25 से0मी0 काग्लोमरेट, चूनापत्थर की आधारशिला तथा भूरी गाद मिट्टी के बीच प्रकाश में आया। इसके अतिरिक्त और भी उपकरण, डेबीटाज आदि देखे गए, जिससे अनुमान किया गया कि वे सभी स्वस्थानीय हैं।

इससे प्रोत्साहित होकर 1997 से 2001 तक सर्वेक्षण तथा उत्खनन किया गया। उस क्षेत्र की पुराभौगोलिक स्थिति तथा विभिन्न जमावों की पिरिस्थितिकी को समझने के लिए 2x4 मी0 की नौ खनतियाँ पुरा स्थलों कें सन्निकट उत्तरी तथा पूर्वी दिश में डाली गई। सभी खनतियों के नीचे के भाग में भूरी तथा ऊपर के भाग में काली गाद मिट्टी का जमाव था। जमाव के स्वरूप से अनुमान किया गया कि यह लम्बे कालावधि में हुआ था। यह भी अनुभव किया गया कि घाटी का यह भाग पानी निकास (Palaeo channel) भी था जहाँ पानी निरन्तर रहता था।

उत्तरी भाग की एक खनती में भूरी काली गाद मिट्टी (Silt) जमाव के 15 मी0 नीचे आश्यूल स्तर था। इसके अतिरिक्त दो खनतियों में भूरी गाद मिट्टी के ऊपरी भाग में जो, चूनापत्थर के कांग्लोमरेट के ऊपर था जिससे चर्ट से निर्मित छोटेआकार के, मध्यपुरापाषाणिक उपकरण प्राप्त हूए। इससे मध्यपुरापाषाणिक उपकरणों तथा आश्यूल उपकरणों के सापेक्ष्य स्तर की पुष्टि हुई। साथ ही साथ इसपर भी प्रकाश पड़ा कि जिस समय पुरा मानव यहाँ रह रहा था उसी समय गाद मिट्टी का जमाव भी हो रहा था।

## प्रागैतिहासिक अनुसंधान

1983 तथा 1994 में यहाँ आश्यूल सांस्कृतिक उपादानों का संग्रह किया गया था। वहॉ पर 1x1 मी0 की 30 खनतियों (072 हेक्टेयर) में उत्खनन किया गया। इसका पूर्वीभाग खेल का मैदान था तथा पश्चिमी में छिछली पानी की धारा का तल था। पानी के तलहट क्षेत्र में जंगली घास थी। सम्पूर्ण क्षेत्र में उपकरण निर्माण सामग्री, अनुपयोजित फलक, निर्मित अर्ध–निर्मित उपकरण फैले हुए थे। सम्पूर्ण क्षेत्र में चार ऐसे स्थलों (I to IV) को चुना गया जहाँ पुरातात्विक सामग्री का सबसे अधिक संग्रह था। ये 500 मी0 x 500मी0 से 700x700 मी0 के थे। विभिन्न स्थलों में 5 खनतियाँ (160 मी0$^2$) का उत्खनन किया गया। Tr.I मे सबसे अधिक पुरातात्विक सामग्र मिली। सभी के सांस्कृतिक अनुक्रम एक दूसरे के पूरक थे।

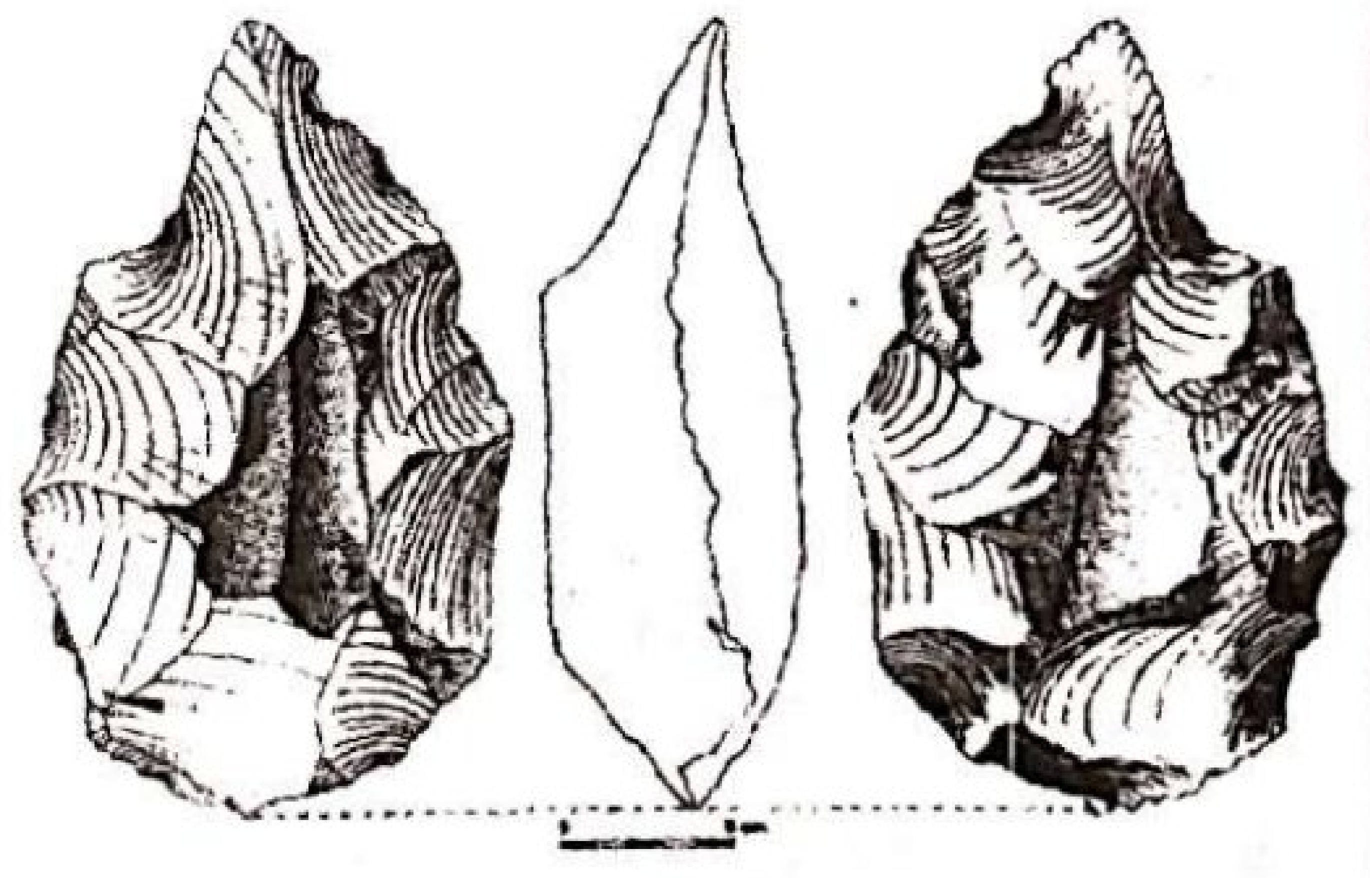

इसमपुर– हैण्डैक्स चित्र सं0–25

Tr.I यह पूर्वी भाग के खेत के मैदान में था। 1997 में भी यहाँ 3 × 2 मी0 की खनती में उत्खनन किया गया था। 1998 में 24 × 24 मी0 बढाया गया। उसके अगले वर्ष इसे 60 मी$^2$ तथा

Scanned with OKEN Scanner

2000 में इसे बढाकर 70 $मी^2$ किया गया। उत्खनन में निम्न अनुक्रम प्रकाश में आया।

0–10/20से0मी0 काली चिपचिपी मिट्टी 20/25–30से0मी0 गादमिट्टी मश्रित,ग्रैवेल, भूरी गाद मिट्टी तथा चर्ट के कोणिक पत्थर युक्त मलवा तथा मध्य पुरापाषाणयुगीन उपकरण।

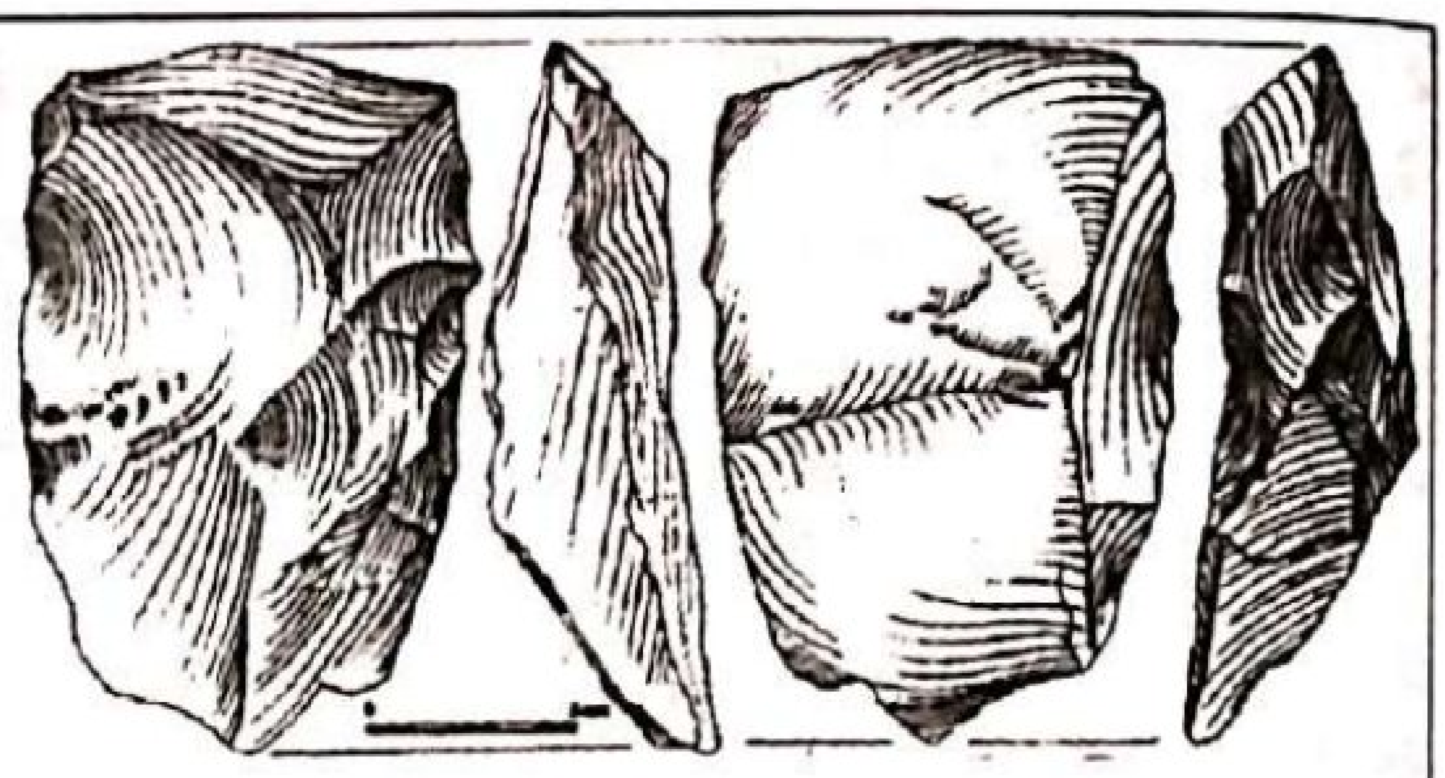
इसमपुर– क्लीवर चित्र सं0–26

1.30–50 से0मी0 आशूलियाँ ताजे उपकरण, पशु जीवाश्म, चूना पत्थर पिण्ड कंकरीले गादमिट्टी में जमे हुए थे।

2.50 से0मी0 तथा नीचे अपक्षीण चूनापत्थर का तल तथा कोणिक चूना पत्थर पिण्ड यही अनुक्रम 2–5 तक की खनतियों में भी था। मध्यपुरापाषाण युगीन संस्तर यहाँ पर आश्यूल संस्कृति के बाद सांस्कृतिक निरन्तरता की पुष्टि करता है।

आशूलियन स्तर को पाँच–पाँच से0मी0 की यूनिट में सतक्रता से खोदा गया था जिसमें 13,043 उपकरण प्रकाश में आए। खुदाई के फलस्वरूप सात गुच्छ (Cluster) चिन्हित किएं गए। वहाँ पर बहुत अधिक संख्या में कोर, बड़े फलक, उपकरण हथौड़ा पत्थर आदि पाए गए। प्रत्येक स्थलपर चूना पत्थर की पट्टियाँ भी थी सम्भवतः उनका उपयोग कार्यस्थल के रूप में किया गया था। उपकरण निर्माण के लिए चूने पत्थर का उपयोग प्रमुखता से तथा चर्ट एवं क्वार्टजाइट का उपयोग सीमित रूप से किया गया है।

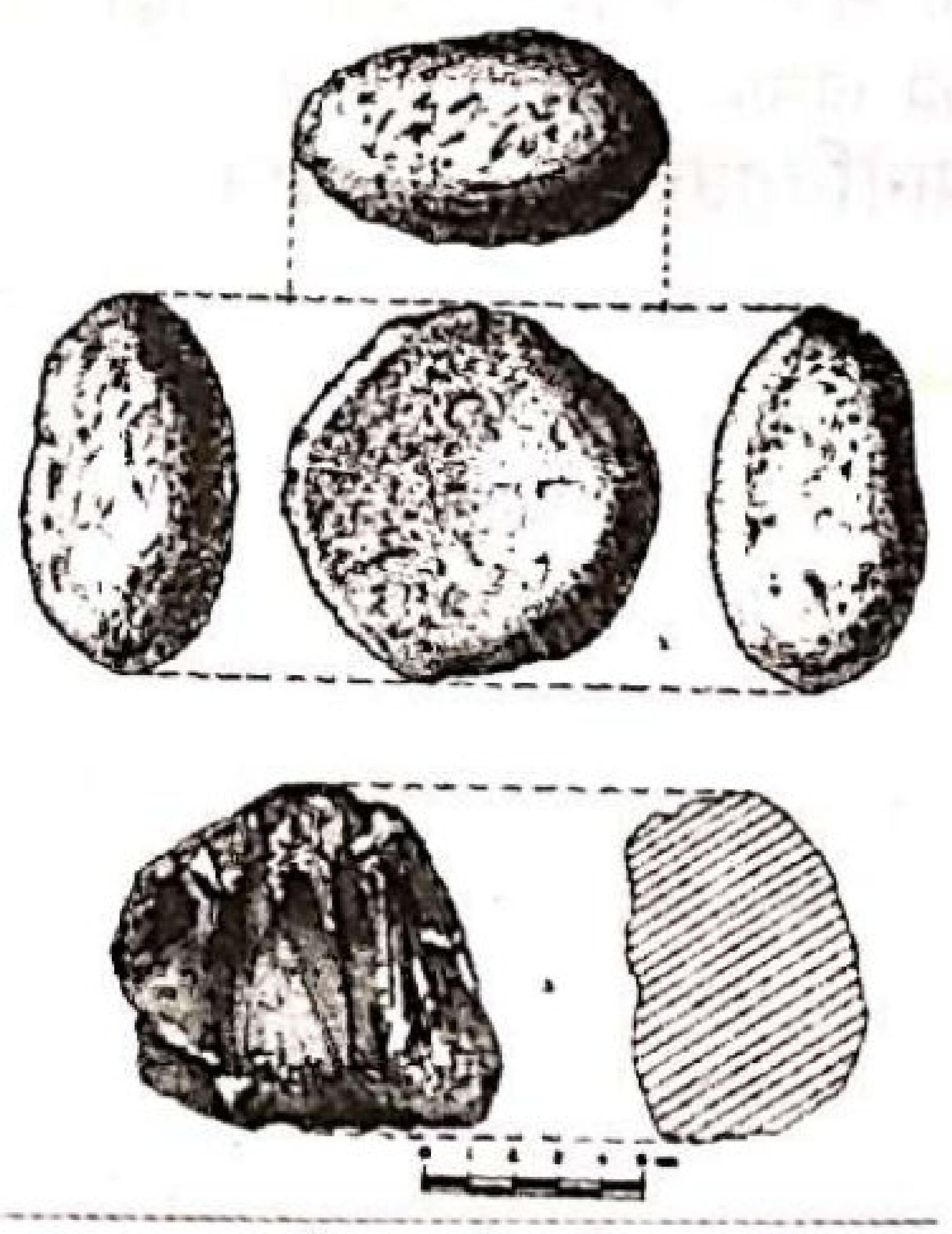
इसमपुर– हैमर स्टोन चित्र सं0–27

1. डोलेराइट, चर्ट एवं क्वार्टजाइट के पत्थरों का उपयोग हथौडे के रूप में किया जाता था।
2. उपकरण निर्माण के लिए 30–40 से0 मी0 के चूनापत्थर के पिण्ड का चयन कोर के रूप में करते थे। निर्मित कोरों से एक पक्षीय फलकीकरण के द्वारा फलक निकालते थे।
3. बड़े फलकों का पनः फलकीकरण करके चाकू (Knife) अथवा चापिगुपकरण (Chopping Tools) बनाते थे।
4. कभी–कभी फलकोंपर द्वितीय फलकीकरण करके उनसे हैण्डैक्स तथा क्लीवर बनाते थे।
5 छोटे फलकों से स्क्रेपर, परफोरेटर (Perforator) चक्रिक उपकरण (Discoids) आदि का निर्माण करते थे।
6 कभी–कभी पत्थर की पट्टियों से भी उपकरण बनाते थे।

प्राप्त निर्मित उपकरणों में 48 हैण्डैक्स, 15 क्लीवर,18 चाकू, 65 स्क्रेपर, 14 चापिंगुपकरण, 3 चक्रिक उपकरण, 5 छिद्रक (Perforators) आदि हैं। लम्बे फलकों के एक पार्श्व को भुथड़ा

(Blunted) कर के बनाया जाता था। ये सभी उपकरण पशुओं के खाल को उतारने तथा (Plant food) को तैयार करने में प्रयुक्त किए जासकते थे।

प्रस्तर उपकरणों के अतिरिक्त कुछ जीवाश्म–दाँत तथा लम्बी हड्डियाँ (long bones) सीघ तथा कछुए की हड्डी (Shell of Turtle) भी मिले हैं। यह उल्लेख्य है कि जंगली जानवरों घोड़ा, हाथी, हिरन आदि की हड्डियाँ हुण्सगी तथा बैचवल घाटी में आश्यूल स्थलों से प्राप्त हो चुके हैं। इसमपुर पुरास्थ्ल वास्तव में एक केन्द्रीय आवासीय स्थल था जहाँ पर आश्यूल मानव रह कर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता था। यह उल्लेख्य है कि इसमपुर स्थल के 5–6 कि0मी0 की परिधि में और भी पुरास्थल चिन्हित किए गए जहाँ पर इसमपुर मानव के अल्पकालिक आवास के प्रमाण मिले हैं।

**तिथि**

कुछ दाँतों (Bovid teeth) के इनेमिल का इलैक्ट्रानिक स्पिन रिजोनेन्स (ESR) तिथि विधि से विलियम कालेज बोस्टन (William College Boston) में आकलन किया गया जिसके आधार पर 1. 2 मिलियन औसत तिथि निर्धारित की गई है।

## हुण्सगी – कर्नाटक

हुण्सगी गाँव (16 27 N;76 31 E) कर्नाटक के गुलबर्गा जिले में शोरापुर तालुका में स्थित है। यह तृतीयक कालीन (Tertiary period) अपरदन जनित द्रोणी (Basin) में स्थित है। इसके पूर्वीभाग में ग्रेनाइट तथा शेल चूना पत्थर (Shale Lime Stone) की पहाणियाँ हैं जो 20 से 50 मी0 ऊँची हैं। हुण्सगी गाव के निकट हुण्सगी नदी बहती है जो कृष्णा नदी की सहायक है। हुण्सगी घाटी के ग्रेनाइट आधारपर लगभग 1 से 2 मी0 मोटा काली मिट्टी का जमाव है। हुण्सगी घाटी–द्रोणी– में निम्नपुरा पाषाण काल से लौह युग तक की संस्कृतियाँ संरक्षित हैं। 1974 से 1981 के बीच पद्दैया ने अनेक पुरास्थलों को चिन्हित किया था। इनमें से दो स्थलों पर उत्खनन किया गया जिसके फलस्वरूप आश्यूलकालीन अल्पकालिक (Camp sites) आवासीय स्थल चिन्हित किए गए।

1876 में ब्रूस फूट ने येदीहल्ली (Yedihalli) से पुरापाषाण युगीन उपकरणों को प्रतिवेदित किया था। 1961 में गलबल में पद्दैय्या को चूनेपत्थर के कुछ हैण्डैक्स तथा क्लीवर प्राप्त हुए। 1974 में हुसगी के निकट पुनः काफी संख्या में आश्यूल उपकरण मिले। वहाँ पर एक सीमित उत्खनन में (Loc.IV) में लगभग 500 उपकरण मिले। मुख्य नदी से दूर द्रोण संरचना में एकदम ताजे उपकरण की प्राप्ति से यह अनुमान किया गया कि यहाँ पर संरक्षित आवासीय जमाव के प्राप्ति की संभावना हो सकती है।

आश्यूल संस्थितिकी (Achule Locality) 15 से 50 मी0 के अण्डाकार क्षेत्र में केन्द्रित थी। इस प्रकार के स्थल एक दूसरे से 100 से 400 मी0 के अन्तराल में थे। जिसप्रकार से उपकरण जमीन पर मिले थे उससे प्रतीत होता है कि वे सभी स्वस्थिति (Insitu) में थे। वास्तविकता को जानने के लिए V तथा VI लोकेल्टी (locality) में उत्खनन किया गया।

**संस्थिति V (V locality)**

यह हुण्सगी के बायें तट पर हुण्सगी गाँव से लगभग 500 मी0 उत्तर पूर्व में स्थित है। यह घोड़े के खुर (Horse Shoe) के आकार की लगभग एक हेक्टेयर की संरचना, नदी की वेदिका है।

Scanned with OKEN Scanner

जल तल से इसकी ऊचाई लगभग 5 मी0 है। सम्पूर्ण क्षेत्र घासों से ढका हुआ है तथा ग्रेनाइट की चट्टानों से घिरा है। पूर्वी भाग में लगभग 50 से0मी0 मिट्टी का जमाव है जब कि पश्चिमी भाग पथरीला है।

1975 में आश्यूल उपकरणें के आधार पर 1x1 मी0 की कई खनतियॉ डाली गई किन्तु अधिकांश का उत्खनन निराशाजनक रहा। केवल खनती न03 की I-2 खनती में कुछ उत्साह वर्धक सामग्री मिली। यह खनती नदी से लगभग 45 मी0 की दूरी पर ग्रेनाइट चट्टान समूह के निकट थी। सतह से 70 से0मी0 नीचे सात उपकरण ग्रेनाइट के टुकणों के साथ मिले। इस खनती को 22 से 75 से0मी0 तक बढ़ाया गया जा कालान्तर में T3 के नाम से अभिहित किया गया। 1976 में इसका पुनः विस्तार पूर्व पश्चिम में 9 मी0 तथा उत्तर दक्षिण में 7 मी0 किया गया।

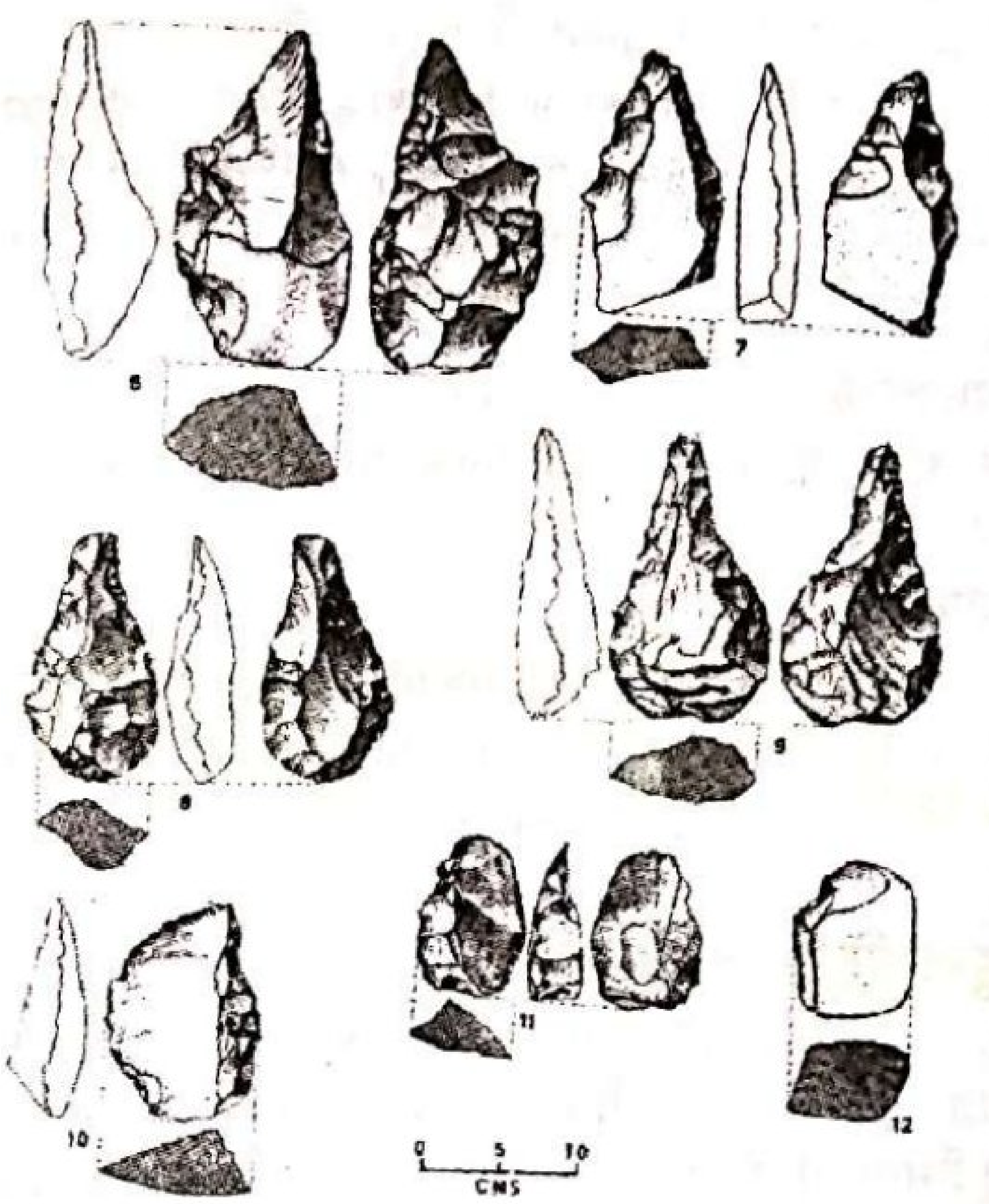

हुण्सगीः संस्थिति V हैण्डैक्स 6,.9,चाकू 10,11,चापिगुंपकरण 12, चित्र सं0–28

उत्खनन में ऊपर से नीचे निम्न अनुक्रम प्राप्त हुआ :–

1. काली मिट्टी– अधिकतम मोटाई 30 से0मी0
2. सघन (compact) गहरी भूरी मिट्टी– अधिकतम मोटाई 70 से0मी0
3. आश्यूल स्तर 10–35 से0मी0 मोटा
4. ग्रेनाइट निर्मित आधारशिला

लेयर 2 से 27 उपकरण : जिसमें 5 क्लीवर तथा 4 हैण्डैक्स थे। लेयर 3 में 1मी0 से 50 से0मी0 के ग्रेनाइट के टुकड़े थे। इसके अतिरिक्त 5 से 30 से0मी0 छोटे दूसरे पत्थर – डोलेराइट, क्वार्टजाइट, चर्ट आदि। ये सभी आश्यूल स्तर से पहले बहकर आए प्रतीत होते हैं। इसमें लाइमस्टोन के टुकड़े भी थे जो आदि मानव द्वारा लाए गए थे। ये सभी सफेद /हल्के/भूरे रंग के कंकरीट से सिमेण्टेड थे। इस जमाव से प्रथम सीजन में 291 तथा 1976 में 625 उपकरण प्राप्त हुए थे। ये सभी स्वस्थानीय थे। सभी एकदम ताजे थे जब कि लाइमस्टोन का क्षरण जल्दी होता है। आदि मानव के स्थल को छोड़ने के बाद पानी के बहाव से कुछ पत्थर तथा उपकरण उसी क्षेत्र में इधर उधर हो गए थे। उल्लेख्य है कि सम्पूर्ण क्षेत्र अण्डाकार था तथा सभी ओर से प्रस्तर पिण्डों से घिरा हुआ था।ऐसा प्रतीत होता है कि पत्थरों को जानबूझ कर ऐसे रखा गया था जिस से उस क्षेत्र की अलग पहचान बन सके। इन पत्थरों की सहायता से लकड़ी तथा लकड़ी के स्तम्भें से आवास का भी निर्माण करते रहे होगे। छाजन के रूप में घास तथा पत्तियों का उपयोग करते रहे होगे। यह भी उल्लेख्य है कि सम्पूर्ण अण्डाकार संरचना के मध्य भाग में सबसे अधिक उपकरण

मिले थे।

इसी के निकट चार पांच बड़े आकार के ग्रेनाइट खण्ड थे जिनका उपयोग उपकरण निर्माण में किया जाता होगा।

कोणीय चूनापत्थर के टुकणे, चर्ट तथा क्वार्टजाइट सदृश पत्थरों के हथौडे, नवीन बने उपकरण, फलक तथा विविध आकार के फलक इस बात के प्रमाण हैं कि इन स्थानों का उपयोग उपकरण निर्माण के लिए किया जाता था।

यद्यपि कोई जैविक पदार्थ नही मिले हैं किन्तु अनुमानतः ये जंगली पादप तथा जंगली पशुओं का उपयोग भोजन के रूप में इसी क्षेत्र में करते थे। निकटवर्ती नदी से पानी सुलभ था। चिरकी नेवासा तथा पैसरा में भी इसी प्रकार के अल्पकालिक आवास मिले हैं।

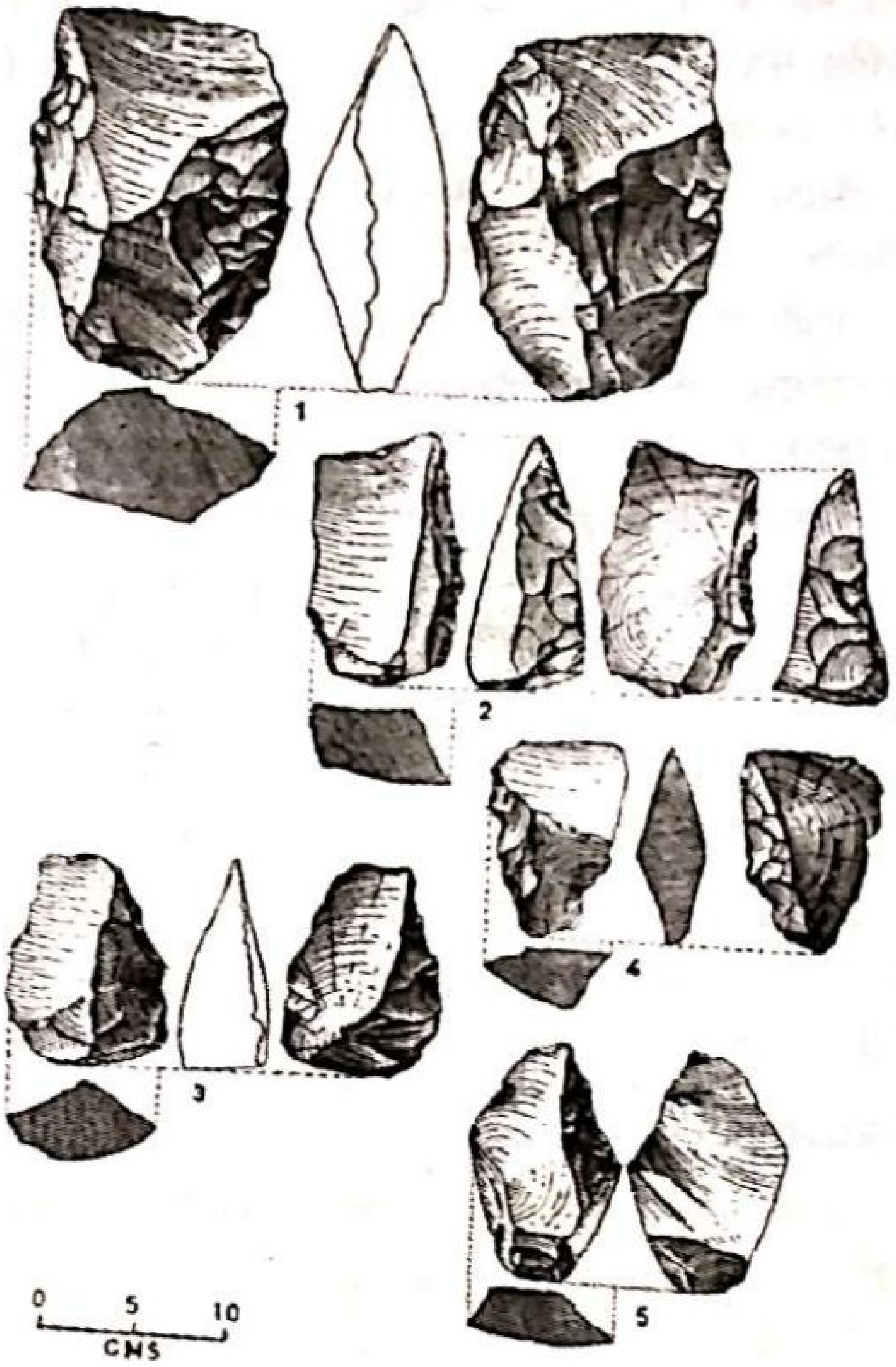

हुणसगी क्लीवर चित्र सं0–29

## प्रस्तर उपकरण उद्योग

यहाँ पर सिलिफाइड लाइम स्टोन (silified limestone) का प्रयोग किया गया है। ये पेबुल तथा प्रस्तर खण्ड दोनों ही रूपों में उपलब्ध थे। चर्ट तथा क्वार्टजाइट सदृश पत्थरों को हथौड़े के रूप में प्रयोग करते थे। क्लीवरों की संख्या–28, सबसे अधिक थी। हैण्डैक्स–18,· चाकू–14, चापर–9, पिक–8, स्क्रेपर–15 आदि।

## संस्थितिकी VI का उत्खननः (LocalityVI)

यह पुरास्थल संस्थितिकी V के उत्तर में है। दोनो स्थलों को हुसगी की एक सहायक नदी एक दूसरे से अलग करती है। यह पुरास्थल ग्रेनाइट की लघु पहाणी तथा खेती की भूमि से सटा है। ग्रेनाइट की कुछ चट्टानों को हटाकर खेती योग्य भूमि का निर्मण किया गया था। यहाँ पर आश्यूल संस्कृति तथा मेसोलिथिक के उपकरण तथा मध्ययुगीन पाटरी मिली थी।

आश्यूल उपकरणों की ताजी भौतिक अवस्था तथा लाइमस्टोन की चट्टानों के आधार पर अनुमान किया गया कि यहाँ पर स्वस्थानीय जमाव प्राप्त हो सकते हैं। 1977 में नवम्बर–दिसम्बर में 8 × 6 मी0 की एक खनती का उत्खनन किया गया। फलतः 5 जमाव प्रकाश में आए। लेयर 1 तथा 2 जिनकी सम्मिलित मोटाई 30 से0मी0 थी वह जुती हुई भूमि थी इसमें से मध्य कालीन पाटरी, जानवरों की हड्डियाँ तथा सफेद चर्ट के मेसोलिथिक उपकरण मिले थे। लेयर 3 जो 20 से0मी0

मोटी थी से ताजे आश्यूलियाँ तथा थोड़े से मेसोलिथिक उपकरण मिले थे। लेयर 4 जो 25–30 से0मी0 मोटी थी वह बहुत सख्त सफेद भूरे ग्रस (Gruss) से निर्मित थी, में से आश्यूलियाँ उपकरण मिले। इसके नीचे ग्रेनाइट की आधार शिला थी। उत्खनित खनती में देखा गया कि 3 से 4 मी0 के दो स्थलों पर आश्यूल उपकरण संकेंद्रित मिले थे। इनमें से एक स्थल पर 15 तथा दूसरे पर 13 उपकरण थे।

यहाँ से कोई निर्पेक्ष तिथि उपलब्ध नहीं है। पद्दैया के अनुसार इन्हें हुण्सगी तथा वैचाल घाटी के आश्यूल उपकरण विकासक्रम के मध्य अर्थात 0.2 तथा 0.7 सहस्र वर्ष (Million years) में रखा जासकता है।

इनके अतिरिक्त इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य करने वालों में शेशादारी (शेशादरी, एम0, 1955, 'दि पेलियोलिथिक इण्डस्ट्री ऑफ किब्बनहल्ली, मैसूर स्टेट', आर्टिवस एशिया, वाल्यूम XVIII, पृ0 171–87) तथा जोशी का नाम उल्लेखनीय है। शेशादरी को तुमकुर जिले में किब्बनहल्ली नामक स्थान से निम्न पुरापाषाणकालीन उपकरण प्राप्त हुए थे। यहाँ प्रारम्भिक अबेबीलियाँ तथा विकसित आशूलियाँ उपकरण मिश्रित रूप से मिले थे। उपकरणों में हैण्डैक्स, विविध प्रकार के क्लीवर, स्क्रेपर, चॉपर एवं चॉपिंगोपकरण उल्लेखनीय थे। इनके अतिरिक्त 'चंच्वाकार' (Beaked) उपकरण भी थे जो शेशादरी की धारणा में विशेष महत्वपूर्ण हैं। इन उपकरणों के साथ–साथ फलक उपकरण जो सम्भवतः मध्य पुरा पाषाणकाल के थे, भी प्राप्त हुए थे, किन्तु इनके साथ लेवालेवा फलकों का नितान्त अभाव था।

## मालप्रभा घाटी

कर्नाटक क्षेत्र में कृष्णा तथा उसकी सहायक नदियों की घाटी में सबसे महत्वपूर्ण कार्य डॉ0 जोशी (जोशी, आर0वी0, 1953, प्लायस्टोसीन स्टडीज इनदि मालप्रभा बेसिन, पूना 1955, धारवार) का है। इनका प्रमुख कार्य–क्षेत्र मालप्रभा की घाटी थी। इन्होंने मालप्रभा की घाटी में नदी के जमावों का तथाउनमें निहित मानव के उपकरणों का सूक्ष्म अध्ययन किया जिसके फलस्वरूप बीस प्रागैतिहासिक उद्योग–स्थल प्रकाश में आए। जोशी का कार्य भू–वैज्ञानिक स्तरों के माध्यम से प्रातिनूतनकाल के वातावरण तथा मानव–उपकरणों के अध्ययन की दृष्टि से, विशेष महत्वपूर्ण हैं।

मालप्रभा नदी पूर्वी पर्वतों से निकलती है। यह तथा घाटप्रभा कृष्णा की प्रमुख सहायक नदियों में से है। दोनों ही नदियाँ लगभग एक दूसरे के समानान्तर– घाटप्रभा उत्तर में तथा मालप्रभा दक्षिण में–बहती है।

मालप्रभा की घाटी में प्रायः सभी स्थानों पर पृथ्वी की सतह पर 1. काली मिट्टी तथा 2. लाल अथवा गहरी भूरी मिट्टी है। काली मिट्टी प्रायः नदी के दक्षिणी भाग में तथा भूरी मिट्टी उत्तरी भाग में परिलक्षित होती है। काली मिट्टी अत्यधिक प्राचीन प्रतीत होती है तथा उसका जमाव आज से अपेक्षाकृत अधिक आर्द्र जलवायु में हुआ होगा।

नदियों के किनारे ऊपर की मिट्टी के नीचे भूरी मिट्टी का मोटा जमाव मिलता है। मालप्रभा की घाटी में यह जमाव प्रायः सभी स्थानों पर है। फूट ने इस मिट्टी को लैटेराइटिक सब–स्वायल (Lateritic Sub-soil) की संज्ञा प्रदान की है।

बालुई मिट्टी के नीचे ग्रैवेल कांग्लोमरेट का जमाव है। इस जमाव से उपकरण मिले हैं। हीर मुलंगी (Hire Mulangi) नामक स्थान पर यह जमाव पानी के ऊपर 1 से 10 फीट तक मोटा है।

Scanned with OKEN Scanner

इसमें प्रमुखतः क्वार्टजाइट के पेबुल हैं, किन्तु थोड़ी संख्या में सैण्डस्टोन, ग्रेनाइट, शिस्ट, पेगमेटाइट तथा डाइक आदि के पेबुल भी मिलते हैं। सभी विकसित अथवा अविकसित उपकरण मिश्रित रूप से इसी जमाव से प्राप्त हुए हैं।

लगभग सभी स्थानों पर ग्रैवेल कांग्लोमरेट चितकबरी मिट्टी (Mottled Clay) अथवा गाद मिट्टी (Silty Clay) पर आधारित है। इनका रंग विविध स्थानों पर भिन्न–भिन्न मिलता है। स्पष्ट रूप से यह कहना कठिन है कि इसकी कितनी मोटाई है। अनुमानतः यह 4–5 फीट से अधिक नहीं प्रतीत होती है। जिन स्थानों पर ग्रैवेल का जमाव नहीं है वहाँ पर यह भूरी बालुई मिट्टी के ठीक नीचे मिलता है। यह जमाव पानी द्वारा जमा हुआ प्रतीत होता है।

नदी का आधुनिक तल प्राक् कालदगी शैल समूह पर है। नदी ने ग्रैवेल तथा चितकबरी मिट्टी (Mottled Clay) के जमावों को काटकर इस स्तर को प्राप्त किया है।

## उद्योग

सभी प्रकार के विकसित तथा अविकसित उपकरण ग्रैवेल जमाव से मिश्रित रूप में उपलब्ध हुए हैं, अतः स्तर अथवा उपकरणों के विकास के आधार पर उनका वर्गीकरण नहीं किया जा सकता है।

अधिकांश उपकरण कालदगी श्रेणी के क्वार्टजाइट के बने हैं, जो विविध रंगों में मिलते हैं। इनके अतिरिक्त सैण्ड स्टोन, क्ले शिस्ट, हैमेटाइट शिस्ट, हॉर्नब्लेण्ड शिस्ट आदि के भी उपकरण मिलते हैं।

अधिकांश उपकरण फलक पर बने हैं (जोशी, आर0वी0 1955, पार्श्वोद्धरित, पृ0 52–53) कोर तथा पेबुल पर बने उपकरण अपेक्षाकृत कम है। फलक स्थिर–हथौड़ा पद्धति (Block-on-block) से निकाले हुए प्रतीत होते हैं। जोशी की धारणा है कि फलकों का आधिक्य तथा पेबुलोपकरणों की न्यूनता उनके अधिक मिलने के कारण है। अधिकांशतया सभी उपकरण ताजे (Fresh) एवं हाल के बने प्रतीत होते हैं। सभी उपकरणों को तकनीकी दृष्टिकोण से अबेवीलियॉ, आशूलियॉ तथा लेवालेवा वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

उपकरणों में हैण्डैक्स उल्लेखनीय है। ये पेबुल, कोर तथा पार्श्व और अन्तफलकों पर निर्मित है। हैण्डैक्स विविध आकारों जैसे, नाश्पात्याकार (Pear Shaped) , बदामाकार (Almond shaped), अण्डाभ (ovate), हृदयाकार (Cordate), त्रिभुजाकार (Trianguler) आदि के हैं। छेन्यान्त–हैण्डैक्स (Chisel ended handaxe) आदि हैं।इसके अतिरिक्त छद्म–ब्यूरिन (Pseudo-Burin) प्रकार के उपकरण (जोशी, आर0वी0 1955, पार्श्वोद्धरित, पृ0 57) भी विशेष उल्लेखनीय हैं।

सभी क्लीवर फलकों पर ही निर्मित हैं(वही, पृ0 60)। इन्हें निम्न वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। 'अ' वर्ग के क्लीवर अन्तफलक पर तथा 'ब' वर्ग के पार्श्व फलक पर निर्मित है। इसके अतिरिक्त 'स' वर्ग भी है जिसमें आदि फलक–सतह निश्चित नहीं की जा सकती है। ये सभी भलीभाँति फलकित हैं। हैण्डैक्स तथा क्लीवर के अतिरिक्त अन्य प्राकर के उपकरणों में चॉपर, कोर–स्क्रेपर, डिस्क्वायड आदि हैं। कोर तथा फलकों की संख्या काफी है। सामूहिक रूप से मालप्रभा घाटी के उपकरणों को विकसित आशूलियॉ (AdvancedAcheulian) श्रेणी में रखा जा सकता है। मालप्रभा की घाटी के अतिरिक्त घाटप्रभा की घाटी में भी अनेक स्थलों से निम्न पुरापाषाण काल के उपकरण प्राप्त हुए हैं। उपकरणों में उल्लेखनीय आशूलियॉ हैण्डैक्स, क्लीवर, डिस्क्वायड आदि प्रमुख है ( इण्डियन आर्क्यालजी – ए0 रिव्यू, 1963–64, पृ0 23)।

शोरापुर दोआब (वही, 1968–69, पृ0 21)में गुलबल (Loc. 2) नामक स्थान से पद्दैय्या को निम्न पूर्व पाषाणकालीन उपकरण – हैण्डैक्स, क्लीवर, एकपक्षीय तथा उभयपक्षीय पेबुलोपकरण, कोर फलक आदि प्राप्त हुए थे। सम्मिलित रूप से उन्हें आशूलियाँ कहा जा सकता है।

## तुंगभद्रा घाटी

निम्न पूर्व पाषाणकाल के दृष्टिकोण से तुंगभद्रा की घाटी उल्लेखनीय है। यह पश्चिमी घाट में गंगमुला से निकलती है तथा कर्नूल में कृष्णा में विसर्जित होती है।

वेल्लरी जिले में तुंगभद्रा के दाहिने तट पर टेक्कलकोटा से लगभग 3½ मी0 पश्चिम में नित्तूर नामक ग्राम स्थित है। यह उद्योग–स्थल इस दृष्टिकोण से उल्लेखनीय है कि अनसारी को यहाँ पर सोहनप्रकार के एकान्तिक पेबुल उपकरण मिले हुए थे। (अनसारी, जेड0 डी0, 1970, 'पेबुल टूल्स फ्रॉम नित्तूर (मैसूर स्टेट)' इण्डियन ऐन्टिक्वेरी, थर्ड सिरीज, स्टडीज इन इण्डियन आर्क्यालजी, प्रोफेसर एच0डी0 सांकलिया, फेलीसिटशन वाल्यूम, पृ07)

उपकरणों के साथ जानवरों के जीवाश्म जिनमें अधिकांशतः बॉस नमाडिकस (Bos Namadicus) की हड्डियाँ थीं, भी प्राप्त हुए थे। सोहन घाटी को छोड़कर एकान्तिक रूप से अन्य किसी स्थान से पेबुलोपकरण नहीं प्राप्त हुए थे, विशेषतः दक्षिण भारत में जो प्रमुखतः हैण्डैक्स–क्लीवर उद्योग का क्षेत्र माना जाता है।

नित्तूर ग्राम के निकट नदी का अनुभाग 4.50 मीटर मोटा है। इसमें 35 से0मी0 मोटा पेबुल ग्रैवेल का जमाव है जो गहरे भूरे सिल्ट से आवेष्ठित है। पेबुली ग्रैवेल के पत्थर घर्षित है। इस ग्रैवेल–जमाव से मध्य पुरापाषाणकाल के उपकरण मिले हैं। अनुभाग तथा जलधारा के मध्य के भाग में वोल्डरी ग्रैवेल के टुकड़े छितरे हुए हैं। अनसारी की धारणा है कि चट्टानों की रूकावट के कारण ये यहाँ एकत्रित हो गए थे। ये अपने वास्तविक स्थान पर ही टूट रहे हैं। इसी ग्रैवेल जमाव से जीवाश्म तथा उपकरण दोनों ही प्राप्त हुए हैं। उपकरण प्रमुखतया, डोलराइट, एम्फीबोलाइट, एपीडायोराइट आदि से बने हैं। कुछ उपकरण क्वार्टजाइट तथा बैण्डेड हैमेटाइट तथा क्वार्टजाइट के भी मिले हैं।

नित्तूर पेबुल उद्योग की यह विशेषता है कि स्वतः टूटे हुए पेबुलों का न्यूनतम फलकीकरण करके उनको उपकरण का स्वरूप प्रदान किया गया है। प्रायः फलकीकरण एकपक्षीय है, किन्तु कभी–कभी उभयपक्षीय फलकीकरण भी किया गया है। समन्तान्त पर पेबुल का कॉर्टेक्स विद्यमान रहता है तथा फलकीकरण केवल कार्यांग पर ही सीमित रहता है। उपकरणों में अधिकांश चॉपर है। कुल संग्रहीत उपकरणों की संख्या 31 थी जिनमें एकपक्षीय चॉपर 11, उभयपक्षीय चॉपरों की संख्या 13, फलक 2 तथा अन्य 5 थे।

अनसारी की धारणा है कि यहाँ के निम्न पुरापाषाणकालीन तथा मध्य पुरापाषाणकालीन उपकरणों में परस्पर उत्पत्तिजनक सम्बंध था।

सुदूर दक्षिण में एकान्तरिक रूप से पेबुल चॉपरों का मिलना अनेक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है तथा अनेक नईपुरानी समस्याओं पर विचार करना आवश्यक हो जाता है। इस पर भी पुनर्विचार आवश्यक है कि क्या वास्तव में निम्न पुरापाषाणकालीन भारत को दो प्रथृक् क्षेत्रों में विभाजित करना उचित है? यह भी विचारणीय है कि पेबुल उपकरणों का कोई स्तर तो नहीं है? किन्तु इनके लिए अधिक साक्ष्यों की आवश्यकता है।

Scanned with OKEN Scanner

# 19

# महाराष्ट्र प्रदेश
## (Maharashtra Pradesh)

महाराष्ट्र भारत का पश्चिमवर्ती प्रदेश है। इसका निर्माण 1मई 1960 को हुआ था। इसके उत्तर पश्चिम में गुजरात उत्तर में मध्य प्रदेश, पूर्व में छत्तीसगढ़ दक्षिण–पूर्व में तेलंगाना, दक्षिण में कर्नाटक तथा दक्षिण–पश्चिम गोवा एवं अरब सागर से घिरा हुआ है। प्रान्त का पश्चिमी अथवा तटीय प्रदेश कोणकन के नाम से तथा पूर्व का भोग डेक्कन पठार के नाम से विख्यात है। तटीय प्रदेश में उत्तर से दक्षिण तक पश्चिमी घाट की पहाड़ियाँ अथवा सहयाद्रि पर्वतमालाएँ हैं जो घने जंगलों से ढकी हुई है। पूर्वी प्रदेश में जंगल अपेक्षाकृत कम है। यहाँ की भौगोलिक स्थिति के अनुरूप इस प्रदेश में दो प्रकार की नदियाँ हैं, प्रथम वे जो अरब सागर में गिरती हैं। ये अपेक्षाकृत छोटी हैं। दूसरी, वे जो बंगाल की खाड़ी में गिरती है। ये अरब सागर में गिरने वाली नदियों की अपेक्षा बड़ी हैं।

इस प्रदेश की उल्लेखनीय नदियाँ नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी, भीमा, कृष्णा आदि हैं। नर्मदा तथा ताप्ती उत्तरवर्ती नदियॉ हैं। दोनों ही पूर्व से पश्चिम दिशा में बहकर अरब सागर में गिरती हैं। गोदावरी तथा भीमा प्रदेश के मध्यवर्ती भाग में पश्चिम से पूर्व दिशा में बहती हैं। कृष्णा दक्षिणवर्ती नदी है तथा यह भी पश्चिम से पूर्व दिशा में बहती है।

प्रारम्भ में ब्रूसफूट की धारणा थी कि दक्षिणी पठार जो लगभग 2,000 से 2,600 फीट ऊँचा हैं तथा घने जंगलों से अवगुण्ठित है, निम्न पुरापाषाणकालीन मानव के निवास के अनुकूल नहीं था, अतः संभव है कि मानव वहाँ नहीं रहता हो। किन्तु डॉ0 सांकलिया के सतत प्रयासों ने यह स्पश्ट कर दिया है कि गोदावरी तथा उसकी सहायक नदियों की घाटियाँ उसके लिए उतनी ही अनुकूल थी जितना दक्षिणी भारत के अन्य क्षेत्र। नासिक, अकोला, नेवासा आदि सभी स्थानों पर प्रागैतिहासिक मानव के अवशेष प्राप्त हुए हैं।

### गोदावरी तथा प्रवरा घाटी

डॉ0 सांकलिया तथा उनके सहयोगियों ने गोदावरी तथा उसकी सहायक प्रवरा आदि नदियों का सर्वेक्षण काफी विस्तृत क्षेत्र में, किन्तु सूक्ष्मतापूर्वक किया है। गोदावरी का सर्वेक्षण विशेष रूप से गंगापुर, नासिक के निकट तपोधन, तमसवाडी, नान्दूर माधमेश्वर, आदि स्थानों पर तथा प्रवरा का विते, महेन्दुरी, इन्दुरी नेवसा, आदि स्थानों पर किया है। विभिन्न स्थानों पर गोदावरी तथा उसकी सहायक नदियों का जमाव अपनी स्थानीय विशिष्टता से युक्त है। कभी–कभी वे भिन्न प्रकार के प्रतीत होते हैं, किन्तु सूक्ष्मरूप से उनका अध्ययन करने पर उनमें कोई असंगतता नहीं मिलती है। साधारणतया सभी स्थानों पर दो वेदिकायें मिलती हैं। प्रथम वेदिका पर निम्न पुरापाषाणकाल के उपकरण मिलते हैं तथा द्वितीय वेदिका पर मध्य पुरापाषाणकाल के उपकरण, जिन्हें द्वितीय श्रेणी (Series II) का भी कहा गया है, मिलते हैं। सभी स्थानों पर जमावों का जो क्रम प्राप्त होता है उनका संक्षिप्त (Schematic) स्वरूप इस प्रकार है।

विते, महेन्दुरी तथा अकोला में सबसे नीचे सिमेण्टेड ग्रैवेल (Cemented gravel) का जमाव है।

उसके ऊपर पीली सिल्ट का एक मोटा जमाव मिलता है जो स्थान–स्थान पर वातावरण सम्बंधी परिस्थितियों के कारण लाल से भूरे रंग का हो गया है। प्रथम वेदिका के ऊपर भी यही जमाव मिलता है। दूसरा ग्रैवेल प्रायः इसी सिल्ट–जमाव के सहारे मिलता है जैसा नान्दूर माधमेश्वर, तमसवाडी, भेलपान्धरी, सुरेगाँव, मालेगाँव आदि स्थानों पर (गोदावरी के किनारे) तथा महेन्दुरी (प्रवरा के किनारे) में स्पष्ट है। द्वितीय उच्चयनकाल की सिल्ट का जमाव (माहेश्वर के अनुरूप) कहीं स्पष्ट नहीं है। किन्तु, इन्दुरी के निकट द्वितीय वेदिका स्पष्ट है। यह वेदिका जल–तल से 22 फीट की ऊँचाई पर है। प्रायः सभी स्थानों पर प्रथम वेदिका के ऊपर एक कंकडी–ग्रैवेल का जमाव मिलता है।

डॉ0 सांकलिया ने वेदिकाओं, उनकी निर्माण सामग्री तथा उनसे सम्बन्धित उद्योगों का विवरण इस प्रकार दिया है(सांकलिया, एच0डी0, एस0बी0देव आदि, 1960, फ्रॉम हिस्ट्री टू प्रीहिस्ट्री ऐट नेवासा, 1954–56, एपेण्डिक्स 5, पृ0 28)।

| वेदिका (Terrace) | संयोजन (Composition) | उद्योग (Industries) |
|---|---|---|
| I | पेबुल ग्रैवेल तथा सिल्ट का मोटा जमाव | निम्न पुरा पाषाणकालीन क्लीवर हैण्डैक्स आदि |
| II | सिमेण्टेड ग्रैवेल | मध्य पुरा पाषाणकालीन प्वाइंट स्क्रेपर आदि |
| ग्रैवेल प्रसार | कंकड़ तथा बालुई ग्रैवेल | लघु पाषाणोपकरण |

सिमेण्टेड ग्रैवेल से मध्य प्रातिनूतनकाल के जवाश्मित अवशेष भी प्राप्त हुए हैं।

इन सभी स्थानों पर फलकोपकरणों की ही प्रमुखता है। इसका प्रमुख कारण सम्भवतः नदियों में पेबुल का अभाव है। उपकरणों में क्लीवरों की ही संख्या अधिक है। डॉ0 सांकलिया की धारणा है कि वातावरण अथवा उपकरणों के निर्माण्या के लिए उपलब्ध सामग्री ही इसका प्रमुख कारण रही होगी। जंगलादि को साफ करने के लिए क्लीवर सदृश उपकरणों की ही अधिक आवश्यकता होती है। क्लीवरों के अतिरिक्त हैण्डैक्स, स्क्रेपर, चॉपिंगोपरकण, पत्थर के गोले आदि भी मिले हैं।

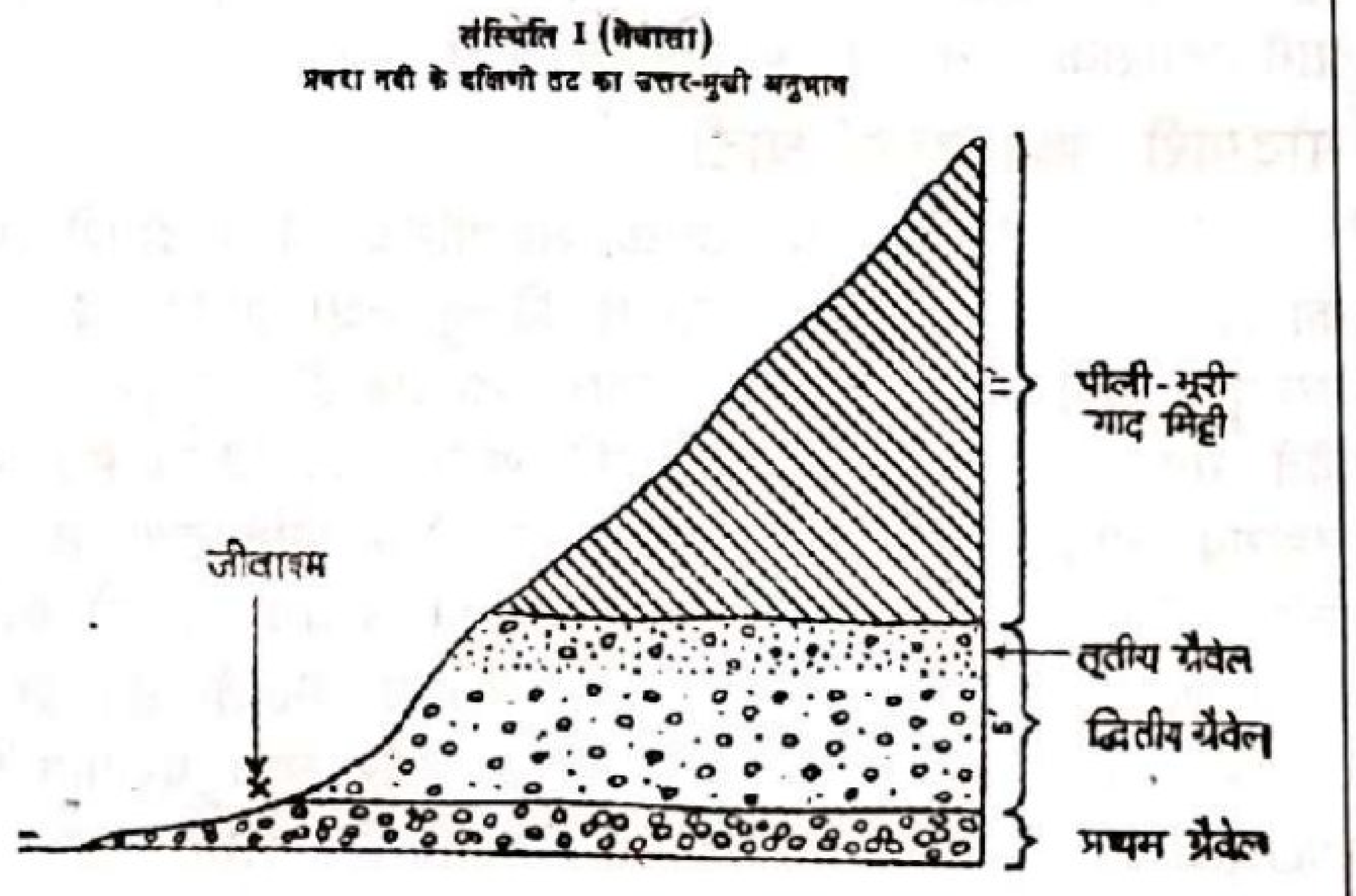


संस्थिति 1 (नेवासा) प्रवरा के दक्षिणी तट का उ0मुखी अनुभाग
चित्र सं0–30

## नेवासा

ऊपर वर्णित सभी क्षेत्रों एवं स्थानों में प्रवरा नदी पर स्थित नेवासा सबसे अधिक उल्लेखनीय है। नेवासा में भू–वैज्ञानिक स्तरों का जमाव लगभग वही है जिसका

उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। नेवासा में स्थल संख्या I, IV तथा V में संस्कृतियों का क्रम ऊपर से नीचे की ओर निम्न है (वही, पृ0 75)।

8. काली मिट्टी (ताम्रपाषाणिक संस्कृति का आधार)

7. पीली अथवा भूरी सिल्ट

5. महीन ग्रैवेल

5. पीली अथवा महीन सिल्ट

.4. अपेक्षाकृत छितरा तथा छोटे ग्रैवेल तथा द्वितीय श्रेणी के उपकरण और बॉस नमाडिकस फॉकनर के जीवाश्म

3. अपरदित सिल्ट जमाव

2 समेण्टेड ग्रैवेल, प्रथम श्रेणी के उपकरण तथा बॉस नमाडिकस

1. आधार शिला

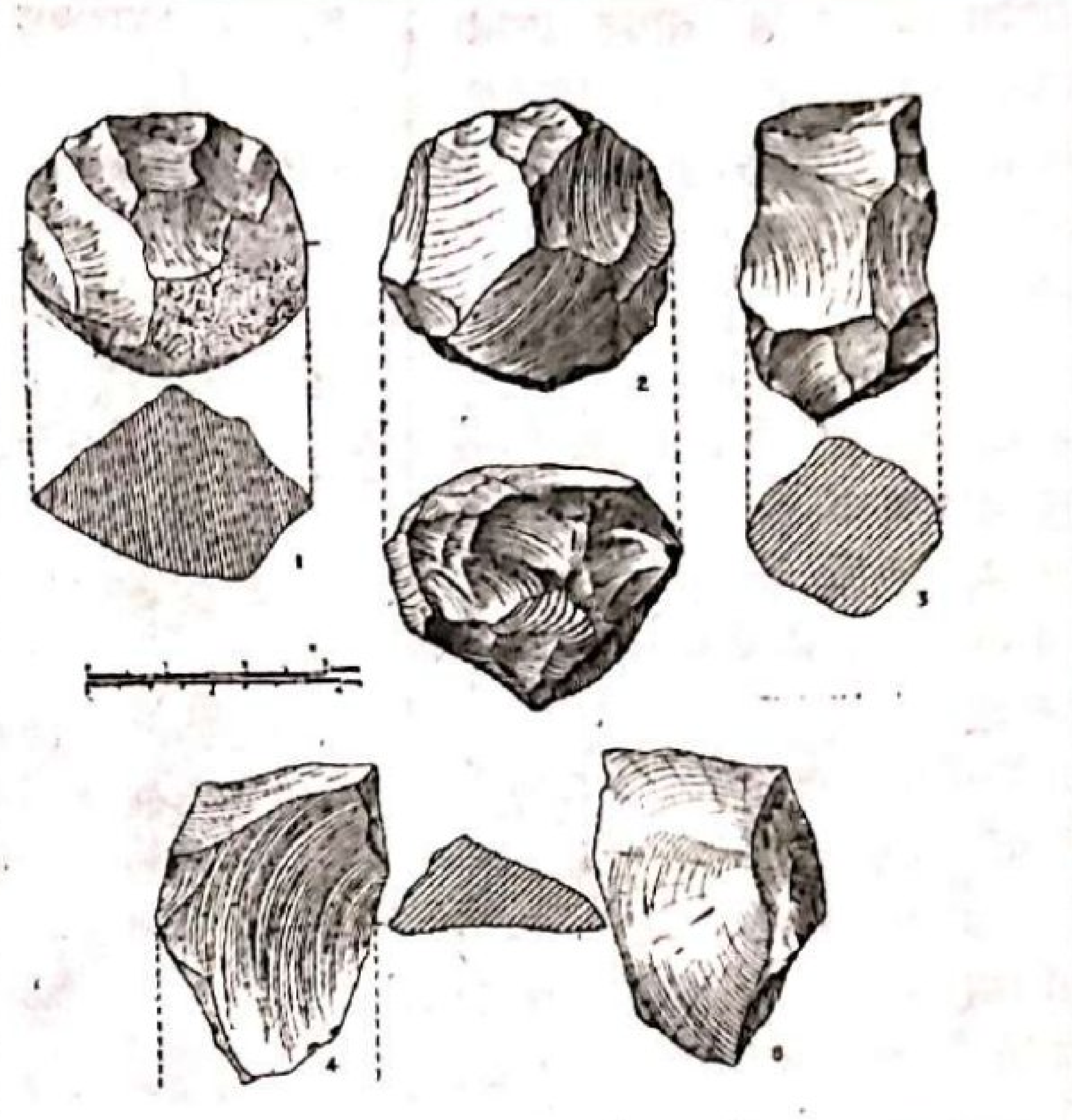

निम्नपूर्व पाषाणिक उपकरण–नेवासा चित्र सं0–31

जिन स्थलों पर आधार शिला अधिक ऊँची हैं वहाँ पर या तो सभी जमाव पतले हैं या उनमें से कुछ नहीं है। किन्तु प्राप्त जमावों के आधार पर डॉ0 सांकलिया आदि विद्वानों की धारणा है कि उस क्षेत्र में कम–से–कम तीन आर्द्रकाल तथा तीन शुष्क काल हुए हों गे।

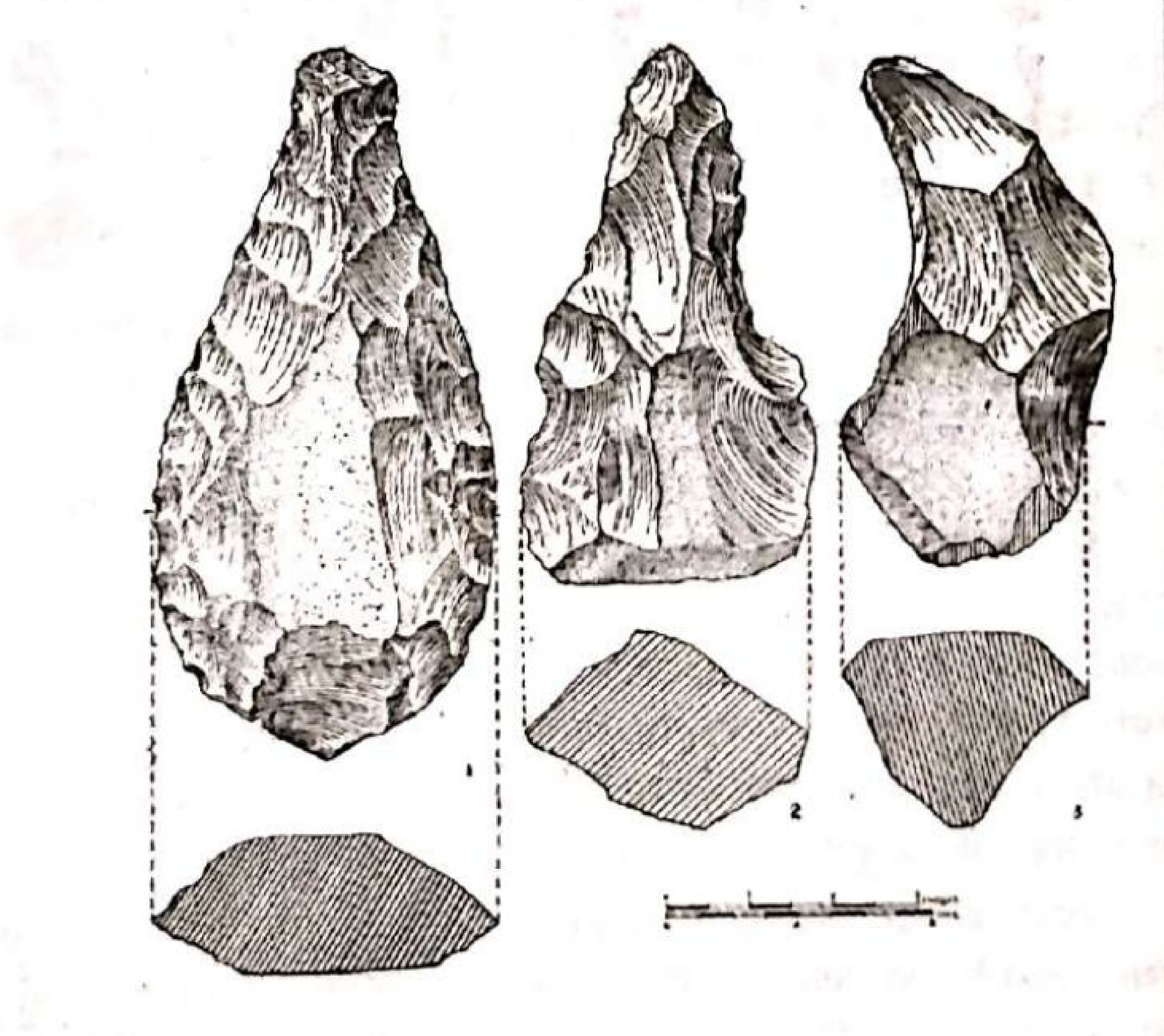

हैण्डैक्स नेवासा चित्र सं0–32

नेवासा में चूँ कि प्रथम ग्रैवेल का जमाव कहीं भी अधिक नहीं है इसलिए (सम्भवतः) उपकरण छितरे हुए सतह से ही मिले हैं। नेवासा से प्राप्त उपकरणों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया गया है – 1. हैण्डैक्स, 2. क्लीवर, 3. फलक, 4. कोर, 5.हैमरस्टोन तथा/ अथवा

चॉपिंगोपकरण, 6. चॉपर अथवा पार्श्व स्क्रेपर तथा 7. विशिष्ट प्रकार। इन सभी उपकरणों में क्लीवर की संख्या अपेक्षाकृत अधिक है।

1990 (काले, एटकिनसन आदि 1990) में नेवासा के निम्न पूर्व पाषाणिक स्तर (Gravel) के सिमेण्ट (Cement) की तिथि >400kyr आई है। इस प्रकार इसकी गणना भारत के प्राचीनतम आशूलियन पुरास्थलों में की जासकती है।

प्रवरा के अतिरिक्त अन्य नदियों – मूला, भीमा, ताप्ती आदि से भी जो साक्ष्य प्राप्त हुए हैं वे लगभग समान है।

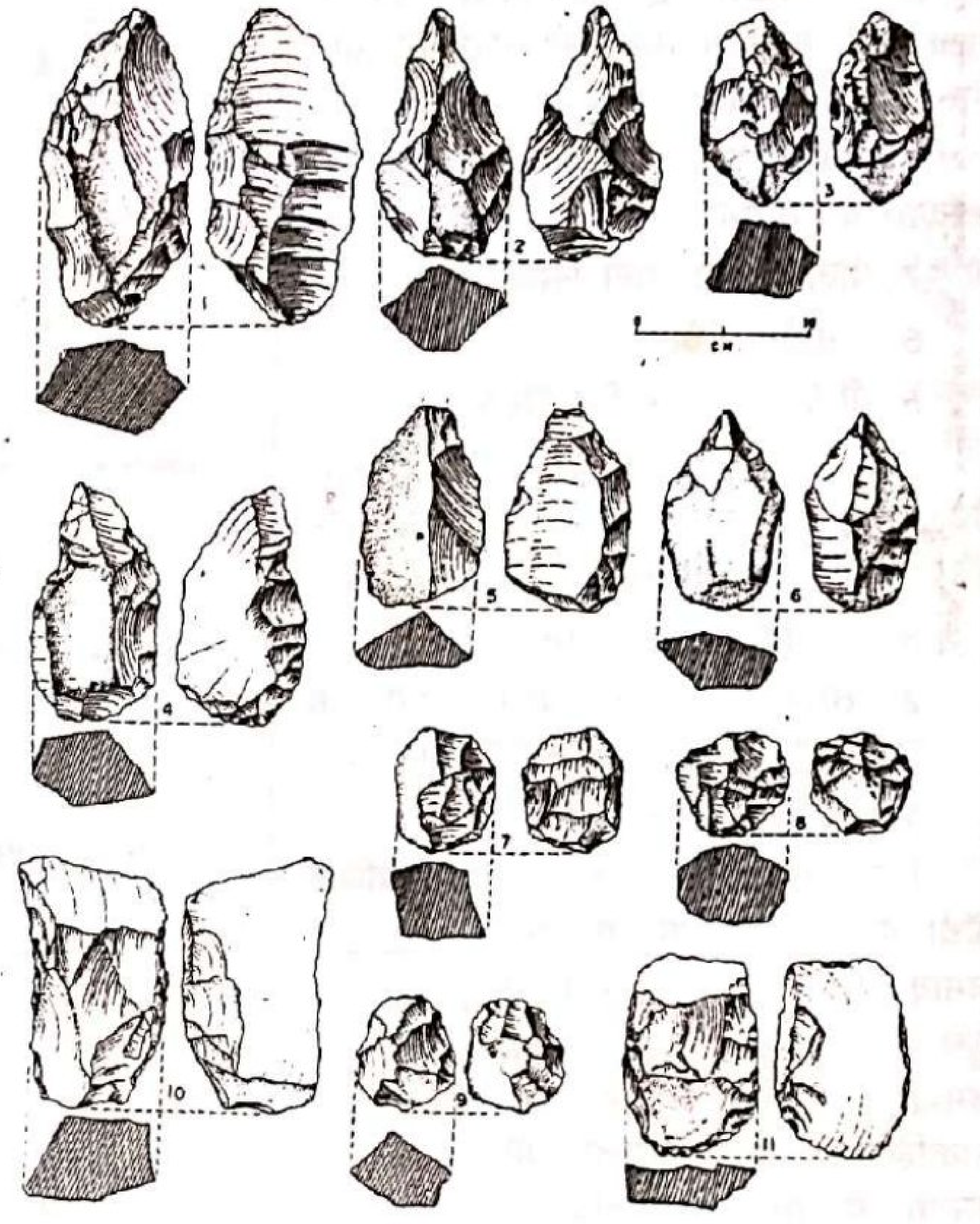

प्रारम्भिक आशूलियाँ उपकरण:1–3हैण्डैक्स,4चाकू,5स्क्रेपर,6पिक,7चापर, 8 पालीहेड्रान, 9 डिस्क्वाएड,10–11 चापर चित्र सं0–33

## चिरकी (नेवासा)

नेवासा से दो मील पर प्रवरा के अनुप्रवाह की ओर चिरकी–नेवासा संगम पर चिरकी नामक आशूलियॉ उद्योग–स्थल स्थित है। इसको सर्वप्रथम प्रकाश में लाने का श्रेय गुडरून कार्विनस को है (कार्विनस, गुडरून, 1970, 'दी आशूलियन वर्क्रशाप ऐट चिरकी आन दि प्रवरा रीवर, महाराष्ट्र, इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, पृ0 13) यहाँ पर 1966 से 1969 तक उत्खनन कार्य किया गया। चिरकी क्षेत्र में निम्न पूर्व पाषाणकाल के उपकरण सतहर से प्राप्त हुए थे जो अलूवियम से निकले हुए प्रतीत होते थे। आधारशिला के ऊपर स्थान–स्थान पर अलूवियम का 8 मी0 तक मोटा जमाव है। इस ग्रैवेल में मध्य पूर्व पाषाणकाल के उपकरण नहीं मिले थे। सातवीं खनती में निम्न पुरापाषाणकाल का एक संस्तर प्रकाश में आया जो 74 मीटर के क्षेत्र में खोदा गया था। यह संस्तर रबुल वोल्डरों से निर्मित, 20–40 से0मी0 मोटा था तथा ऊपर के अलूवियम ग्रैवेल से ढका हुआ था और ट्रैपवसाल्ट की आधारशिला पर स्थिर था।

रबुल बोल्डर संस्तर के प्रसार का अध्ययन करने के लिए कई खनतियों का उत्खनन किया गया। खनती नं0 XII, खनती नं0 VII से लगभग आधे मील की दूरी पर स्थित थी। इस खनती का जमाव मलवे की सामग्री से भरा हुआ था। इसमें अधिकांश संख्या अपूर्ण उपकरणों की थी। केवल थोड़े से ही पूर्ण थे। निश्चय ही यह एक उद्योग–स्थल रहा होगा। यहाँ से काफी संख्या में

Scanned with OKEN Scanner

लकड़ी के फॉसिल (Fossil wood) तथा वृक्षों के तने आदि मिले थे।

प्रवरा के दक्षिण किनारे पर उत्खनित क्षेत्र में अलूवियम के नीचे आधारशिला आधुनिक नदी के तल से कई मीटर ऊँची है। किन्तु, दूसरे तट पर आधारशिला स्थान–स्थान पर आधुनिक नदी के तल से कम–से–कम 7 मी0 तक नीचे है। यह प्रातिनूतनकालीन प्रवरा की प्राचीन घाटी थी।

आशूलियाँ मानव यहाँ पर उस समय उपिस्थत हुआ जबकि नदी ने अपनी घाटी को भरना प्रारम्भ कर दिया था। उसने उपकरणों के निर्माण के लिए ट्रैपवसाल्ट, एमिगडुलर, बसाल्ट, चाल्सेडनी–क्वार्टज आदि पत्थरों का प्रयोग किया। मानव घाटी के किनारे समतल मैदान में रहता होगा और उसने बोल्डरी वेदिकाओं को उपकरण निर्माण के लिए उद्योग–स्थल के रूप में प्रयोग किया होगा तथा यहाँ से उपकरणों का निर्माण करके उसे अपने निवास पर ले जाता होगा।

बोल्डरी ग्रैवेल के ऊपर एलूवियल ग्रैवेल का जमाव है। इस जमाव से नेवासियन अथवा मध्य पूर्व पाषाणकाल के उपकरण मिले हैं। उपकरण चाल्सेडनी तथा जैस्पर आदि के हैं। ये जमाव के सभी स्तरों से प्राप्त हुए थे। कार्विनस की धारणा है कि आशूलियाँ संस्कृति से ही नेवासियन का विकास हुआ होगा। दोनों के मध्य में कोई व्यवधान नहीं है।

सम्पूर्ण आशूलियाँ उद्योग में 2,050 उपकरण थे। इनमें 1,511 पूर्ण अथवा अपूर्ण उपकरण थे। कोर 95 तथा परित्यक्त फलक 444 थे। सभी उपकरणों को दो वर्गों – फलक वर्ग तथा पेबुल वर्ग में विभाजित किया गया है।

पेबुल वर्ग में निम्नलिखित उपकरण है –

| | |
|---|---|
| हैण्डैक्स | 330 |
| एकपक्षीय चॉपर | |
| उभयपक्ष चॉपर | |
| बहुपहल (पॉलिहेड्रल) चॉपर | |
| वैक्ड चॉपर | 546 |
| बहुपहल उपकरण (पॉलिहेड्रल) | |
| गोलाभ उपकरण (स्फेरॉयड) | |
| हैमरस्टोन | |
| कोर | 95 |
| | 971 |

फलक वर्ग में निम्नलिति उपकरण हैं :

| | |
|---|---|
| हैण्डैक्स | 186 |
| क्लीवर आदि | 382 |
| स्क्रेपर आदि | 66 |
| गठित फलक | 278 |
| अपशिष्ट फलक | 48 |
| अन्य फलक | 142 |

10 प्रतिशत फलक पार्श्व फलकों की श्रेणी में हैं।

उत्खनन से प्राप्त हड्डियों की संख्या अधिक नहीं है। बोल्डर संस्तर से बॉस (Bos) तथा (Elephas) के दाँतों के टुकड़े, हाथी का दाँत तथा एक सींघ मिला था।

## भीमा घाटी

भीमा घाटी में दो पुरास्थल बोरी ( काले आदि 1986 कोरीसेट्टार आदि 1988 बी ) तथा मोरगाव (IAR 88&89:69) प्रतिवेदित किए गए थे जो टेफा (Tefra horizon) से सम्बंधित थे। बोरी में उसकी तिथि 1.4myr वर्ष थी। $^{39}Ar/^{40A}r$ l से पुनः गणना करने पर उसकी तिथि 0-65myr आई। दोनो ही स्थानों के उपकरण प्रारम्भिक आशूलियाँ प्रकार केहैं।

## बोरी पुरास्थल

निम्नपूर्वपाषाण काल के तिथि की दृष्टि से महाराष्ट्र में बोरी (Bori) पुरास्थल विशेष महत्वपूर्ण है। यह पूना जनपद के जुन्नार तालुका में कुकड़ी नदी के किनारे बोरी ग्राम के पास चिन्हित किया गया है। इसको प्रकाश में लाने का श्रेय डेकन कालेज की शीला मिश्र तथा राजगुरू को है। बोरी गाँव के निकट बड़गाँव तथा जधोवाडी (Jadhovadi) के मध्य आठ स्थलों पर ज्वालामुखी की राख जलोढ़ जमावों के बीच में पाई गई है। यह 50 सेंमी0 से 2मी0 मोटी है। राख के जमाव के नीचे तथा ऊपर ग्रैवेल जमाव मिलता है। अधिकांश उपकरण ग्रैवेल जमाव में मिले हैं जो टेफ्रा (Tephra) के अन्दर तक धँसा है। सब मिलाकर 152 उपकरण सेक्शन के कटान से संकलित किए गए थे। टेफ्रा तथा ग्रैवेल दोनों के ऊपर तथा नीचे के जमाव समान है। इससे अनुमान कर सकते हैं कि जिस समय राख गिर रही थी उस समय वहाँ लोग रह रहे थे।

ग्रैवेल में पेबुल तथा कोणयुक्त दोनों प्रकार के पत्थर सम्मिलित हैं तथा कैलशियम कार्बोनेट से संयोजित हैं। उपकरणों में हैण्डैक्स, चॉपर, पालीहेड्रान, पिक आदि हैं। अधिकांश उपकरण बसाल्ट पत्थर से बने हैं

ज्वालामुखी की राख की तिथि प्रारम्भ में 1.4 myr आकी गई थी (कोरी सेत्तार 1993) किन्तु कालान्तर में $^{39}Ar/^{40}Ar$ के आधार पर यहाँ के आश्यूल संस्कृति की तिथि 670,000 वर्ष पूर्व निर्धारित की गई है (मिश्र आदि1995), जो दक्षिण भारत के पुरापाषाण काल की प्राचीनता को उच्च मध्यप्रातिनूतन काल (Late Middle Pleistocene pd.) से निम्न मध्य प्रातिनूतन काल अथवा प्रारम्भिक प्रातिनूतन काल (Early Middle Pleistocene) के अन्तर्गत ले जाती है।

## मुम्बई क्षेत्र

यह क्षेत्र भारतीय प्रागितिहास में टॉड महोदय के सर्वेक्षणों के कारण विख्यात है, जिसका विवरण उनके 1939 में प्रकाशित विद्वत्तापूर्ण लेख में निहित है ( टॉड, के0आर0यू0, 1939, 'पेलियोलिथिक इण्डस्ट्रीज ऑफ बाम्बे' ज0रा0ऐ0इन्स0वाल्यूम, L X I X, पृष्ठ 257–72)। इस लेख में इन्होंने बोरिवली तथा खाण्डिवली में सभी स्थिति के प्रस्तर उद्योगों की भू–वैज्ञानिक स्तरों से प्राप्त होने की घोषणा की थी। खाण्डिवली में विभिन्न उद्योगों से सम्बंधित जमावों का क्रम इस प्रकार था – आधारशिला के ऊपर 3'' से 50'' तक का एक मोटा जमाव था जिसे निम्न मिट्टी (Lower Clay) कहा गया। इसमें क्लैक्टन अथवा सोहन प्रकार के उपकरणों के समान उपकरण प्राप्त हुए थे। निम्न मिट्टी के ऊपर 1 से 6 फीट मोटा ललाई मिश्रित भूरे ग्रैवेल का जमाव है। इसे निम्न ग्रैवेल (Lower Gravel) कहा गया है। इस जामव के नीचे के भाग से अबेवीलियाँ तथा क्लैक्टन प्रकार के उपकरण चर्ट तथा शेल पर निर्मित प्राप्त हुए तथा ऊपर के भाग से ताजे

Scanned with OKEN Scanner

क्लैक्टन तथा आश्यूल प्रकार के उपकरण मिले। निम्न ग्रैवेल के ऊपर मध्य क्ले का जमाव है। इसके शीर्ष से कोर, ब्लेड, स्क्रेपर तथा छोटे आकार के हैण्डैक्स प्राप्त हुए थे। मध्य क्ले के ऊपर तीन फीट औसत मोटाई का उच्च ग्रैवेल (Upper Gravel) का जमाव है। इसके ऊपर से ब्लेड तथा ब्यूरिन उपकरण प्राप्त हुए। उच्च ग्रैवेल के ऊपर 18" औसत मोटाई का भूरी मिट्टी (Brown Clay) का जमाव है। इस उच्च क्ले में विकसित ब्लेड–ब्यूरिन उद्योग के उपकरण मिले। अन्त में ऊपर की सतह में लघुपाषाणोपकरण प्राप्त हुए।

सांकलिया (सांकलिया, एच0डी0, 1962, पाश्र्वोद्धरित, पृ0 47 )ने मोहपात्र तथा मिश्र के सहयोग से इस सम्पूर्ण क्षेत्र का पुनर्निरीक्षण एवं सर्वेक्षण किया। किन्तु उन्हें किसी भी स्थान पर टॉड का वर्णित सेक्शन तथा उद्योगों का क्रम नहीं दृष्टिगोचर हुआ। सांकलिया के सुझाव पर सुब्बाराव तथा ज्वाएनर ने भी उस स्थान का सर्वेक्षण किया। उन्हें भी टॉड का सेक्शन कहीं दृष्टिगोचर नहीं हुआ। ऐसी स्थिति में टॉड का सम्पूर्ण वृतान्त संशय युक्त हो जाता है।

### कोंकण

दक्षिण कोंकण के रत्नगिरि जिले में कई निम्न पुरापाषाणकालीन उद्योग–स्थलों को प्रकाश में लाने का श्रेय कुमारी गजदर को है। इस क्षेत्र के सभी स्थल (Sites) लैटेराइट के पठारी प्रदेश पर हैं। केवल एक स्थल घोड (Ghod) नदी के प्रवाह क्षेत्र (Flood Plain) में है। यहाँ से प्राप्त प्रस्तर–उद्योग को मुख्यतया फलक उद्योग कहा जा सकता है। सम्पूर्ण संकलन में कवेल एक हैण्डैक्स है। क्लीवर भी बहुत सीमित हैं। स्क्रेपर तथा चॉपर बहुतायत से मिले हैं। चॉपर, पेबुल, फलक तथा पाषाणखण्डों (Block) पर निर्मित मिलते हैं। गजदर की धारणा है कि कुछ चॉपरों की समता सोहन से भी की जा सकती है। उपकरण प्रायः क्वार्टजाइट के ही बने है। फलकीकरण के लिए सोपानपद फलकीकरण पद्धति का भी उपयोग किया गया है।

Scanned with OKEN Scanner

# 20

# गुजरात प्रदेश
## (Gujarat Pradesh)

गुजरात भारत का पश्चिमवर्ती प्रदेश है। इसका निर्माण 1मई 1960 को हुआ था। यह पश्चिम में अरब सागर, पूर्व में मध्य प्रदेश, उत्तर में सिंध (पाकिस्तान) तथा राजस्थान और दक्षिण में महाराष्ट्र से आवेष्ठित है। सम्पूर्ण गुजरात प्रदेश लगभग चौरस है। सहयाद्रि, सतपुड़ा तथा अरावली पर्वत मालाएँ सीमान्तों पर है। उत्तरी गुजरात बालू के टीलों से भरा है जो 20 से 100 फीट तक ऊँचे हैं। मध्य गुजरात की प्रमुख नदियाँ माही तथा नर्मदा है जो कच्छ की खाड़ी में अरब सागर से मिलती हैं। बड़ौदा का निकटवर्ती प्रदेश भी बहुत अंशों में उत्तरी भाग के समान हैं अन्तर मात्र इतना है कि यहाँ के बालू के टीले आकार में छोटे हैं। ताप्ती के दक्षिण में अनेक छोटी–छोटी नदियाँ सहयाद्रि पर्वतमाला से निकलकर अरब सागर में मिलती है जिससे तटवर्ती प्रदेश दलदली है।

### साबरमती, माही, ऑरसंग घाटी

गुजरात की नदियों में साबरमती, माही, नर्मदा तथा ताप्ती विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें साबरमती ने ही सर्वप्रथम विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया था। अन्य प्रमुख स्थानों के ही समान ब्रूसफूट को ही साबरमती की घाटी में भी सर्वप्रथम दो स्थलों को प्रकाश में लाने का श्रेय प्राप्त है। ब्रूसफूट के पदचिन्हों का अनुसरण करते हुए सांकलिया ने 1941 में साबरमती, ऑरसंग तथा करजन नदियों की घाटियों की सर्वेक्षण मण्डलियों का नेतृत्व किया। इसके फलस्वरूप अनेक स्थल प्रकाश में आए। यह कार्य 1949 तक निरन्तर चलता रहा। (सांकलिया, एच0डी0, 1974, पार्श्वोद्धरित, पृ0 92)

साबरमती घाटी में अनुभाग की दृष्टि से हडोल (Hadol) पेधामली (Pedhamali) तथा वीरपुर (Virpur) विशेष उल्लेखनीय हैं। हडोल में जमावों का क्रम निम्न है[1] :

| | |
|---|---|
| पीली बालुइ गाद मिट्टी (Loess) | 20 फीट |
| लाल गाद मिट्टी | 10 फीट |
| ग्रैवेल कांग्लोमरेट | 12 फीट |
| ग्रेनाइट | 15 फीट |

पेधामली तथा वीरपुर जमावों के क्रम में थोड़ा–सा अन्तर है। वहाँ पर सैण्डस्टोन तथा शेल की आधारशिला पर तथा सिमेण्टेड ग्रैवेल के नीचे लैटेराइट की एक परत मिलती है। वलासना से आगे ग्रैवेल कांग्लोमरेट में पेबुलों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक होती जाती है।

उपर्युक्त स्थलों पर मुख्यतः पेबुलोपकरण प्राप्त हुए हैं। वलासना आदि स्थानों पर हैण्डैक्स तथा क्लीवरों का नितान्त अभाव है। केवल हडोल में हैण्डैक्स, क्लीवर, डिस्क्वायड पेबुलोपकरण तथा फलक प्राप्त हुए थे। अधिकांश पेबुलोपरकण, स्वतः खण्डित पेबुलों पर निर्मित हैं। टूटे तरफ से, उन पर कभी–कभी गढन के प्रमाण मिलते हैं। सांकलिया का मत है कि कृष्णस्वामी (कृष्णस्वामी.

Scanned with OKEN Scanner

वी0डी0, 1947, पार्श्वोद्धरित, एन्शिएन्ट इण्डिया नं0 3, पृ0 32) की यह विचारधारा कि गुजरात तथा दक्षिण राजपुताना पेबुलोपकरण उद्योग तथा हैण्डैक्स क्लीवर उद्योग का संधिस्थल होगा, पुनःविचारणीय है। उनके अनुसार जहाँ कहीं भी हैण्डैक्स–क्लीवर उद्योग के साथ पेबुलोपकरण मिलते हैं वे उपकरण निर्माण की प्रथम अवस्था का निर्देश करते हैं। वलासना में उपकरण ग्रेनाइट तथा ग्रैवेल के संधिस्थल तथा ग्रैवेल से प्राप्त हुए थे। सबसे अधिक उपकरण पेधामली में लोहर नाला स्थल से मिले थे। वास्तव में लोहरनाला को एक उद्योगस्थल (Factory site) की संज्ञा प्रदान की जा सकती है। पेधामली में उपकरण लाल गाद मिट्टी (Reddish Silt) से तथा अल्प संख्या में ऊपर के जमावों से भी प्राप्त हुए थे। ऊपर के स्तरों से प्राप्त उपकरण अधिक विकसित हैं, किन्तु फिर भी सांकलिया का मत है ( सांकलिया, 1974, पार्श्वोद्धरित, पृ0 93) कि साधारण रूप से इनमें किसी विकासात्मक क्रम का निदर्शन नहीं होता है। अविकसित अबेवीलियाँ तथा विकसित आशूलियाँ प्रकार के उपकरण सभी स्तरों से मिश्रित रूप में मिले हैं। अतः यहाँ के साक्ष्यों के आधार पर उपकरणों में विकासात्मक क्रम की कल्पना नहीं की जा सकती है।

साबरमती उपकरण समुदाय में पेबुल पर बने विशाल कोर (जिनमें एकान्तरित प्रविधि (Alternate flaking Technique) से एक अथवा दो फलक निकाले हुए हैं) हैण्डैक्स, क्लीवर, फलक तथा छोटे चक्राकार कोर हैं। उपकरणों के निर्माण में प्रस्तर–हथौड़ा प्रद्धति तथा बेलनाकार–हथौड़ा पद्धतियों का उपयोग मिलता है। अधिकांश उपकरणों का कोण विषम है। कुछेक में समकोण भी है, किन्तु वास्तविक लेवालेवा फलक अथवा कोर का नितान्त अभाव है।

माही, ऑरसंग तथा करजन के साक्ष्य साबरमती के साक्ष्यों से बहुत भिन्न नहीं थे। आरॅसंग घाटी में उपकरण मिश्रित रूप से मिले हैं। वहॉ पर एक आशूलियॉ हैण्डैक्स तथा लेवालेवा पद्धति से निर्मित लम्बा ब्लेड प्राप्त हुआ था। सांकलिया की धारणा है कि यह गुजरात के पाषाणयुग के मध्य– उच्च पुरापाषाणकालीन तत्व की ओर निर्देश करता है।[1] इसी प्रकार विकसित उपकरण करजन घाटी से भी प्राप्त हुए थे जिनमें लम्बे हैण्डैक्स (Elongated handaxes) विविध प्रकार के क्लीवर, चक्राभ (Discoid) तथा पेबुल समन्तान्त हैण्डैक्स सम्मिलित थे।

नर्मदा की निचली घाटी का छन्दोद से समुद्र तक का क्षेत्र वेनराइट, हेगड़े तथा मलिक ने सर्वेक्षण किया, किन्तु उन्हें कहीं से भी उपकरण नहीं मिले।

साबरमती, माही, ऑरसंग घाटियों का महत्व उपकरणों की दृष्टि से अधिक नहीं है। इसका महत्व इस दृष्टि से विशेष है कि यह प्रायद्वीपीय भारत की प्रथम नदी है जिसके प्रातिनूतनकालीन जमावों का समुचित अध्ययन वैज्ञानिक पद्धति से किया गया है। ज्वाएनर (ज्वाएनर, एफ0ई0 1950, 'दि स्टोन एज ऐण्ड प्लायस्टोसीन क्रोनॉलजी इन गुजरात') महोदय के अध्ययन से उस क्षेत्र की निम्न पुरापाषाणकालीन जलवायु पर समुचित प्रकाश पड़ा है। उनका अध्ययन साबरमती के जमावों के विशेष अध्ययन पर आधारित है। डॉ0 ज्वाएनर की धारणा है कि आधारशिला के ऊपर प्रथम (P) लैटेराइट – ग्रैवेल जमाव की पूर्ववर्ती– की संरचना आधुनिक काल की अपेक्षा अधिक आर्द्र जलवायु में हुई थी। वेनराइट की धारणा है कि उस समय समुद्र का जल–तल भी अपेक्षाकृत नीचा था। दूसरे काल से नदी की घाटी में चितकबरी मिट्टी (Mottled clay) का जमाव हुआ। लैटेराइट के समान इसका जमाव भी सभी स्थानों में एक रूप नहीं हुआ था। वेनराइट ने इसे (Q) कहा। यह चन्दोद से तवर (Tavara) तक है। ज्वाएनर ने इसे निम्न क्ले (Lower clay) अथवा (X) कहा है। ज्वाएनर की धारणा है कि इस काल की जलवायु लैटेराइट काल के समान नहीं थी। वेनराइट इसे

नदी के उच्चयन काल से सम्बंधित करते हैं। चितकबरी मिट्टी के ऊपर ग्रैवेल कांग्लोमरेट का जमाव हुआ। नर्मदा तथा माही घाटियों में चितकबरी मिट्टी तथा ग्रैवेल जमावों के बीच में विषम–विन्यास जिसे वेनराइट ने (IX) कहा है। यह अपरदन का काल था तथा समुद्र का जल–तल नीचा था। सिमेंटेड ग्रैवेल का जमाव नदियों के ऊपर के भागों में तथा मिट्टी, गाद मिट्टी तथा बालू का जमाव नीचे के भागों में हुआ था। ज्वाएनर ने इसे (R) तथा वेनराइट ने Phase VIII कहा है। इस काल की जलवायु अधिक नम थी। समुद्र का जल–तल पुनः अपेक्षाकृत ऊँचा हो गया था, जिसकी वजह से नदी के नीचे के क्षेत्रों में मिट्टी, गाद मिट्टी तथा बालू का जमाव हुआ और ऊपर के भागों में ग्रैवेल की संरचना हुई। प्रायद्वीपीय भारत में लगभग सभी स्थानों से उपकरण इसी स्तर से प्राप्त होते हैं। इस जामव के बाद ज्वाएनर का Phase S आता है। जो साबरमती में परिलक्षित है। इस काल में नदी ने प्रभूत मात्रा में बालू तथा गाद मिट्टी का जमाव किया था। इस काल की जलवायु अपेक्षाकृत शुष्क थी। निम्न पूर्व पाषाणकालीन मानव इस काल में भी विद्यमान था। वेनराइट के अनुसार गाद मिट्टी काल (Slit Phase S) निम्न नर्मदा (Lower Narmada) के निम्न श्रेणी (Lower Series) के समान है तथा सिल्ट और मिट्टी (Clay) के नीचे जो सिमेंटेड ग्रैवेल है उसे भी उसी काल का मानना चाहिए (वेनराइट, जी0जे0, 1964, पार्श्वोद्धरित, पृ0 43)।

Phase (S) के बाद साबरमती घाटी में Phase (T) आता है जिसमें लाल मिट्टी की संरचना होती है। यह निम्न नर्मदा के Soil I के समकालीन है। नर्मदा तथा संभवतः माही में Soil I के समान दो अन्य जमाव Soil II तथा III हैं। वेनराइट के Soil I का जमाव उनके Phase VII में हुआ था, जबकि समुद्र का जल–तल अपेक्षाकृत नीचा था तथा नदी अपरदन कर रही थी। ज्वाएनर के अनुसार इस काल की जलवायु पहले से अधिक, किन्तु Phase P से कम आर्द्र थी। इस काल में निम्न पूर्व पाषाणकालीन मानव यहाँ से अदृश्य हो जाता है (ज्वाएनर, एफ0 ई0, 1950, पार्श्वोद्धरित, पृ0 23–24)। ज्वाएनर के अनुसार Phase T के पश्चात् Phase U आता है जो प्रमुखतः शुष्क था। इस काल के प्रारम्भ में आर्द्रता अपेक्षाकृत अधिक थी, किन्तु क्रमशः कम होती गई और वायुजनित जमावों की अधिकता होती गई। कुछ स्थानों में इस जामव के ऊपर का भाग प्रमुखतः वायु जनित है।

Phase V में भूतलिक अनाच्छादन (Sub-aerial denudation) के फलस्वरूप एक मिट्टी (Soil) की संरचना माही की घाटी में हुई। साबरमती की घाटी में इसका निर्माण नहीं हुआ। नर्मदा की घाटी में इस जामव को वेनराइट ने Soil II कहा है। इसकी संरचना समुद्र के जल–तल के नीचा होने के कारण अपरदन की क्रिया से हुआ था। इसी बीच नर्मदा की निम्न घाटी में Phase VI हुआ। इसमें समुद्र के जल–तल के अपेक्षाकृत ऊँचा होने के कारण बालू, गाद मिट्टी तथा मिट्टी का जमाव नर्मदा के निचले भागों में हुआ था। वेनराइट के अनुसार Phase V के बाद Phase IV में समुद्र का जल–तल पुनः ऊँचा हुआ, फलतः बालू, गाद मिट्टी तथा मिट्टी का जमाव हुआ। Phase III में समुद्र के जल–तल के नीचा होने से अपरदन की क्रिया के फलस्वरूप Soil III की संरचना Phase IV के जमावों के ऊपर हुई। Phase II में बालू तथा वातोद (Aeolion) पदार्थों का जमाव हुआ। यह जमाव बहुत मोटा नहीं है तथा मौसमी वर्षा में बाढ़ के कारण हुआ प्रतीत होता है। Phase I में आधुनिक मिट्टी का जमाव हुआ तथा नदियों ने अपनी आधुनिक स्थिति प्राप्त की।

Scanned with OKEN Scanner

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि नर्मदा की घाटी में लाल मिट्टी के तीन जमावों की संरचना हुई थी, जब कि साबरमती में केवल एक।

ज्वाएनर के (V) काल के बाद (W) काल में बालू के टीलों का निर्माण होता है। यह शुष्क काल का पुनरागमन है। प्राक्पाटरी लघुपाषाणोपकरण काल को (X) कहा गया है। इसमें बालू के टीलों के ऊपर मिट्टी का जमाव होता है। (Y) अन्तिम शुष्क काल है। यह कुछ सन्दिग्ध प्रकार का है, क्योंकि इसका निर्माण शुष्कता के बढ़ने से अथवा मनुष्य द्वारा वनस्पति के विनाश से भी हो सकता है। इस समय पाटरी का निर्माण होने लगता है। खेती का भी संभवतः श्रीगणेश हो गया था। (Z) आधुनिक काल है।

ज्वाएनर के उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि आर्द्र तथा शुष्क काल एकान्तरित रूप से हुए थे तथा आधुनिक काल तक आते–आते शुष्कता में क्रमशः वृद्धि होती गई।

वेनराइट के अनुसार लैटेराइट के बाद दो उच्चयन काल हैं जिनके बीच में एक अपरदन काल है। दूसरे उच्चयन काल के ग्रैवेल तथा सिल्ट जमावों से निम्न पुरा पाषाण कालीन, अविकसित तथा विकसित प्रकार के हैण्डैक्स, क्लीवर तथा लेवालेवा कोर प्राप्त हुए हैं। निम्न नर्मदा में इसके बाद समुद्र के जल तल के नीचा होने के प्रमाण तीन बार मिलते हैं, जिनमें से प्रत्येक विशिष्ट प्रकार की मिटटी की संरचना से सम्बन्धित है। बेनराइट (वेनराइट, जी0जे0, 1964,पार्श्वोद्वरित, पृ0 43–45) का विचार है कि यदि अन्तिम हिमयुग के 'three Maxima' में वे सम्बंधित थे तो जिन ग्रैवेल से उपकरण प्राप्त हुए हैं उनको अन्तिम अन्तर्हिम काल का माना जा सकता है इसके अनुसार लैटेराइट का जमाव उपान्त्य (Penultimate) हिमकाल में हुआ था।

सांकलिया के अनुसार यह तिथिक्रम गुजरात तथा अन्य स्थानों के हैण्डैक्स क्लीवर उद्योग की तिथि मध्य प्रातिनूतन के अन्त में अथवा उच्च प्रातिनूतन के प्रारम्भ में निर्धारित करेगी। उपकरणों के विकसित स्वरूप को देखकर यह तिथि क्रम तर्कसंगत प्रतीत होता है (सांकलिया, एच0डी0, 1974, पार्श्वोद्वरित, पृ0 97)।

Scanned with OKEN Scanner

# 21

# सौराष्ट्र प्रदेश

## (Saurashtra Pradesh)

गुजरात का पश्चिमवर्ती भाग, जो पेनिनसुला के समान अरब सागर में प्रलम्बित है, प्रायः सौराष्ट्र के नाम से विख्यात है। अभी हाल तक यह भूमिभाग प्रमुख रूप से हड़प्पा संस्कृति के अवशेषों के लिए विख्यात था। पाषाणकालीन प्रागैतिहासिक उपकरण यहाँ से प्रतिवेदित (Reported) नहीं थे। जिनका प्रतिवेदन किया भी गया वे संदर्भ विहीन थे अथवा उनका उचित ज्ञान नहीं था। उदाहरण के रूप मे ब्रूसफूट को चर्ट तथा जैस्पर आदि पर बने उपकरण इस क्षेत्र से प्राप्त हुए थे, किन्तु उन्होने इन्हे नव पाषाणिक संदर्भ में रखा थां किन्तु कालान्तर मे अधिक अनुसंधान के बाद यह ज्ञात हुआ कि सभी उपकरणो को तीन वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है जिनमें से प्रत्येक भिन्न संदर्भो मे ताम्र पाषाणग्रुगीन (Chalcolithiic) मध्य पाषाणयुगीन (Mesolithic) तथा मध्य पूर्वपाषाण कालीन (Middle Palaeolithic) थे। साकलिया के प्रयासो से पूर्ववर्ती उद्योग भी प्रकाश मे आए। उन्हें उपकरण प्रमुख रूप से दो स्थानों भदर नही तथा डोकामार्दो नाले के किनारे प्राप्त हुए है।

### भदर घाटी

भदर सौराष्ट्र की सबसे बडी नदी है जिसका प्रवाह क्षेत्र लगभग 120 मील लम्बा है। भदर नदी के जमावों का क्रम करीब–करीब वैसा ही है जैसा कि महाराष्ट्र तथा प्रयद्वीपीय भारत की अन्य नदियों का है (वही, 1974 पार्श्वोद्वरित, पृ0 97)। भदर नदी पर जमावो का क्रम इस प्रकार मिलता है।

आधारिक ट्रैप के ऊपर पेबुल–ग्रैवेल का जमाव मिलता है। इसके बाद जब जलवायु क्रमशः शुष्क होने लगी तथा नदी का बहाव मन्द हो गया था उस समय नदी ने कंकड़ मिश्रित लाल सिल्ट का जमाव किया। इस जमाव के उपरांत दूसरे का प्रारंभ अपरदन से होता है। इस काल मे बहुत स्थानों पर पहले के जमाव को नदी ने आधारिक शिला तक बहा दिया। उसके बाद पुनः नदी ने ग्रैवेल का जमाव सभी स्थानों पर किया। किन्तु यह ग्रैवेल जमाव पहले की अपेक्ष अधिक छोटा एवं बारीक था। इसके बाद नदी ने पुनः भूरी गाद मिट्टी (Brown Silt) का एक मोटा जमाव किया।

इस स्थान पर यह स्पष्ट कर देना अनुचित नही होगा कि यहाँ पर भी प्रायद्वीपीय भारत की भाँति द्वितीय चक्र के जमाव प्रथम चक्र के जमावों को पूर्णतः नही ढकते है अपितु वे उन पर आधारित मिलते हैं तथा एक निम्न वेदिका का स्वरूप धारण कर लेते हैं।

डॉ0 सांकलिया को प्रथम ग्रैवेल से प्रथम श्रेणी (निम्न पूर्वपाषाणकालीन) तथा दूसरे ग्रैवेल से द्वितीय श्रेणी (मध्य पूर्वपाषाणकालीन) उपरकण प्राप्त हुए थे। सौराष्ट्र क्षेत्र मे निम्न पूर्णपाषाणकालीन उपकरण तीन स्थितियों मे मिलते हैं (सांकलिया, एच0डी, 1974, पार्श्वोद्धरित, पृ0 98)।

1. रूक्ष ग्रैवेल में
2. ऊपर के ग्रैवेल तथा सिल्ट मे पुनर्स्थापित होकर

Scanned with OKEN Scanner

2. सतह पर

उपकरणों के निर्माण के लिए अच्छे प्रकार के लाल चर्ट का प्रयोग किया गया है। उपकरण समुदाय मे हैण्डैक्स, क्लीवर, स्क्रेपर, चॉपिगोपकरण तथ विविध प्रकार के फलक है। हैण्डैक्स मे चर्ट पर बना हुआ एक आशूलियाँ प्रकार का ओवेट भी हैं। डॉ0 सांकलिया की धारणा है कि ये उपकरण निम्न पूर्वपाषाकाल में बाद की स्थिति का निर्देश करते हैं जिन्हे मध्य प्रातिनूतन काल मे रखा जा सकता है।

भदर नदी के अतिरिक्त निम्न पूर्वपाषाकालीन एवं मध्य पूर्वपाषाणकालीन उपरकण डोकामार्दो नाला के किनारे, शेदी नदी के किनारे जूनागढ मे तथा सोमनाथ के निकट भी प्राप्त हुए हैं, किन्तु उनके संबध मे अधिक ज्ञात नही है। इसी प्रकार कच्छ के भी कुछ भागों से निम्न पूर्वपाषाणकाल के उपकरण प्राप्त हुए हैं, किन्तु उनके संबध मे भी अधिक ज्ञात नही है (अनसारी ऐण्ड पप्पू, आर0एस0 1970–72, स्टोन एज इन कच्छ, बु0डे0रि0इ0, वाल्यू0 31–2, पृ0 150–67, पूना)।

# 22

# मध्य प्रदेश
# (Madhya Pradesh)

मध्य प्रदेश भारत का मध्यवर्ती एवं क्षेत्रफल की दृष्टि से विशालतम प्रान्तों में है। यह उत्तर–पश्चिम मे राजस्थान, उत्तर–पूर्व मे उत्तर प्रदेश, दक्षिण–पूर्व मे छत्तीसगढ़,दक्षिण मे महाराष्ट्र से घिरा हुआ है। कर्क्ररेखा इसके मध्य से नर्मदा के समानान्तर होकर निकलती है।

इस प्रदेश मे विंध्य तथा सतपुडा पर्वत मालाएँ एक दूसरे के समानान्तर पश्चिम से पूर्व दिशा मे प्रान्त के लगभग मध्य मे स्थित हैं। चम्बल, बेतवा, सोन, नर्मदा, ताप्ती महानदी तथा चन्द्रावती इस प्रदेश की प्रमुख नदियाँ हैं

भूमि, जलवायु तथा संस्कृति की दृष्टि से यह प्रान्त विविधताओं से परिपूर्ण है। इसके विभिन्न भागों मे 30° से 60° तक वर्षा होती है। उत्तरी भाग की जलवायु तीव्र (extreme), मालवा प्रदेश की समशीतोषण तथा पूर्वी और दक्षिणी भागों की आर्द्र है। प्रदेश के निवासी प्रमुखतया दो जनजाति (Racial groups) के हैं उत्तरी भाग मे इंडो–आर्य (Indo-Aryan) तथा दक्षिणी और पूर्वी भागों मे आदिवासी तथा इंडो–द्राविड़ हरिजन। सभी प्रकार के खनिज पदार्थ के दृष्टिकोण से भी यह प्रान्त विशेष उल्लेखनीय है, क्योंकि प्रायः सभी प्रकार के खनिज पदार्थ यहाँ उपलब्ध हैं।

प्रागितिहास के अध्ययन की दृष्टि से भारतीय प्रागितिहास मे मध्य प्रदेश का विशेष महत्व है। इस क्षेत्र मे सर्वप्रथम सन् 1873 ई0 मे हैकेट महोदय को स्तनी वर्ग के जीवाश्मो (Fossil-mammalia) से सम्बंधित क्वार्टजाइट का एक हैण्डैक्स नेर्मदा के किनारे भुट्रा (Bhutra) के निकट नदी अनुभाग से प्राप्त हुआ था। उसके उपरात प्रान्त के विभिन्न भागों से उस प्रकार की नवीन उपलब्धियो की घोषणाएँ होती रहीं। इस दृष्टि से नर्मदा घाटी विशेष महत्वपूर्ण हैं

## नर्मदा घाटी

नर्मदा नदी शहडोल जिले मे मैकाल पहाडी मे स्थित अमरकण्टक नामक स्थान से निकलती है। मध्यप्रदेश तथा गुजरात में लगभग 800 मील का रास्ता पार करती हुई नर्मदा नदी कच्छ की खाड़ी मे अरब सागर मे विसर्जित होती हैं। पहाड़ी क्षेत्र से होकर बहती हुई इस नदी के किनारे अनेक दर्शनीय स्थल हैं। उद्गम–स्थल से लगभग पाँच मील की दूरी पर यह नदी 150 फीट की ऊचॉई से गिरकर सुन्दर प्रपात बनाती है। इसी प्रकार जबलपुर मे भेड़ाघाट के पास संगमरमर की पहाड़ी के बीच से बहती हुई नर्मदा विशेष दर्शनीय हैं।

प्रागैतिहासिक अध्ययन की दृष्टि से नरसिंहपुर तथा होशंगाबाद के मध्य का क्षेत्र विशेष महत्वपूर्ण है। इस क्षेत्र मे बहुत अधिक संख्या मे प्रस्तर उपकरण तथा जीवाश्म प्राप्त हुए हैं जिन्हे प्रायः मध्य प्रातिनूतनकाल का समझा जाता है। किन्तु डॉ0 सांकलिया की धारणा है कि जीवाश्मों के साक्ष्यों पर इन्हें उच्च प्रातिनूतनकाल के अन्तर्गत रखा जा सकता है (सांकलिया, एच0डी0 1974, पार्श्वोद्धरित, पृ0 114)। सन् 1830 ई0 से ही अनेक विद्वानों ने नरसिहपुर तथा होशंगाबाद के निकट के स्तरो का अध्ययन किया है। येल–कैम्ब्रिज अभियान, जो डी टेरा के निर्देशन मे भारत आया था उसने भी इस क्षेत्र को अपने विशेष अध्ययन के लिए चुना, क्योंकि यहाँ से बहुत अधिक संख्या मे

Scanned with OKEN Scanner

उपकरण तथा जीवाश्म स्तरित जमावों से प्रतिवेदित हो चुके थे। इसके फलस्वरूप स्थान का महत्व ओर बढ़ गया।

डी टेरा तथा उनके सहयोगियों के अनुसार नर्मदा घाटी मे होशंगाबाद तथा नरसिंहपुर के निकट जमावों के तीन चक्र जिनमे प्रत्येक मे ग्रैवेल, बालू तथा गाद–मिट्टी है, मिलते हैं। इन्हे क्रमशः

1. निम्नवर्ग Lower group
2. उच्चवर्ग Upper group
3 कॉटन–स्वायल अथवा रीगर वर्ग कहा गया है।

उनके अनुसार ये तीनों वर्ग नर्मदा घाटी में होशंगाबाद तथा नरसिंहपुर में 130 फिट की गहराई तक वेदिका के रूप में मिलते हैं। अन्यत्र इनकी गहराई 500 फीट तक है। उस गहराई तक भी आधारशिला नहीं मिली है। होशंगाबाद के निकट इन सबके नीचे लैटेराइट का जमाव मिलता है। डी टेरा के अनुसार प्रत्येक जमाव–चक्र के बाद विषमविन्यास (Unconformity) के प्रमाण मिलते है। इस प्रकार तीन विषमविन्यासों से सम्बन्धित तीन अपरदन कालों के प्रमाण मिले है। डी टेरा तथा उनके सहयोगियों ने यहाँ के इन तीनों जमावों का सम्बन्धीकरण पुठवल क्षेत्र के निक्षेपों से किया है।

प्रत्येक जमाव–चक्र दो स्तरों का है। इसमें नीचे आधारिक ग्रैवेल और उसके ऊपर गुलाबी अथवा नारंगी रंग की कंकड़ युक्त मिट्टी और सिल्ट है। दोनों अर्थात् निम्न तथा उच्च वर्गो के जीवों में कोई विशेष अन्तर प्रतीत नहीं होता है, किन्तु उनके अनुसार दोनों ही मध्य प्रातिनूतन काल के प्रतीत होते है।

डी टेरा तथा पेटरसन के अनुसार नर्मदा के जमावों का क्रम निम्न है (डी टेरा ऐण्ड पेटरसन, टी0टी0 पार्श्वोद्धरित पृ0 313–26 पर आधारित)

| | | |
|---|---|---|
| 7. काली गाद मिट्टी (Black Silt)<br>6 .महीन ग्रैवेल (Fine gravel) | (उच्च प्रातिनूतन तथा नूतन कालीन<br>(Upper Pleistocene and Holocene) | मध्य प्रातिनूतन<br>(Middle Pleistocene) |
| 5. गुलाबी गाद मिटटी ( Pink silt)<br>4 ग्रैवेल (अपेक्षाकृत असंहत)<br>(Gravel,Comparatively loose) | उच्च वर्ग (Upper Group) | |
| 3 गुलाबी – रक्ताभ गाद मिट्टी<br>(Pink- reddish silt)<br>2 .सिमेण्टेड ग्रैवेल ( Cemented gravel) | Lower gr. निम्न वर्ग | |
| 1. लैटेराइट (Laterite) | | |

आधार शिला ( Basal rock)

तलिका सं0–5

डी टेरा के अनुसार निम्निवर्ग सोहन की प्रथम तथा द्वितीय वेदिका के समकालीन है। इस वर्ग के आधारिक ग्रैवेल से ही जीवाश्म तथा उपकरण मिलने लगते है। उमरिया तथा होशंगाबाद में विषमविन्यास के निकट आधारिक लेयर 4 से जो दोनोंवर्गो को अगल करता है बांस नमाडिंकस (Bos namadicus) एलिफस नमाडिकस ( Elephas namadicus) हेक्साप्रोटोडान ( Hexa protodon) तथा ब्यूवेलस ( Bubalus) के जीवाश्मित अवशेष प्राप्त हुए थे। दोनों वर्गो के जीवाश्मों में यद्यपि कोई अन्तर नहीं है, किन्तु उनसे सम्बन्धित पुरातात्विक सामग्री में अवश्य अन्तर मिलता है। निम्नवर्ग के आधारिक ग्रैवेल से डी टेरा को एक प्राक् सोहन प्रकार का विशाल फलक प्राप्त हुआ था। इसके साथ उन्हें अबेवीलियाँ तथा आशूलियाँ हैण्डैक्स क्लीवर तथा कोर और फलक भी प्राप्त हुए थे। ये काफी घिसे हुए तथा प्रारम्भिक सोहन के समान थे।

आधारिक ग्रैवेल के ऊपर कंकड़ युक्त मिट्टी तथा गाद मिट्टी से उच्च आशूलियॉ प्रकार का एक ताजा उभयपक्षीय उपकरण (Biface) तथा बिना घिसे हुए फलक प्राप्त हुए थे। चूँकि निम्नवर्ग से बिना घिसे तथा घिसे हुए आशूलियाँ उपकरण, अबेवीलियाँ हैण्डैक्स तथा प्रारम्भिक सोहन के समान फलक मिले थे अतः आशूलियाँ उद्योग को आधारिक कांग्लोमरेट के समकालीन माना गया है। इस प्रकार डी टेरा की धारणा में यह स्तर आशूलियाँ उद्योग की ऊपरी सीमा का निर्धारण करती है। नर्मदा के ऊपर वर्णित, स्तरों से उपलब्ध पुरातात्विक सामग्री पंजाब की प्रथम तथा द्वितीय वेदिका की सामग्री के समान है, अतः डी टेरा की धारणा में वे एक ही युग की होनी चाहिए।

नर्मदा के उच्च वर्ग से मध्य प्रातिनूतन कालीन जीवाश्म प्राप्त हुए हैं। निम्न वर्ग के ही समान उच्च वर्ग के भी जमावों से दो भिन्न प्रकार के उद्योग प्रकाश में आए हैं, जो कि निम्न वर्ग के उद्योगों से विकसित प्रतीत होते हैं। इनमें से एक उभयपक्षीय घर्षित आशूलियॉ उपकरण हैं जो निम्न वर्ग के ग्रैवेल से निकलकर पुनर्स्थापित प्रतीत होता है।

दूसरे उद्योग के उपकरण बिना घिसे तथा ताजे हैं। वे उच्च वर्ग के समकालीन हैं। इनमें फलक, चक्रिक उपकरण (Discoidal) तथा पेबुल कोर हैं। ये प्रारूपात्मक दृष्टिकोण से अन्तसोहन की परिधि में आते हैं। इन्हें सोहन की तृतीय तथा चतुर्थ वेदिका के समकालीन माना जा सकता है। इनमें ग्रैवेल तृतीय वेदिका के तथा गुलाबी मिट्टी चतुर्थ वेदिका के समकालीन हैं। उच्च वर्ग के ऊपर प्रातिनूतनकालीन जमावों में एक बाधा आ जाती है तथा जमावों का एक नवीन चक्र प्रारम्भ होता है जिसमें बालू तथा गैवेल नर्मदा की निम्नतम वेदिका का निर्माणकरते हैं। यह पंजाब की पाँचवी वेदिका के समकालीन है। इस जामव के ग्रैवेल तथा बालू के नीचे के कुछ फीट तक डी टेरा तथा टीलहार्ड को एक फलक उद्योग जिसमें ब्लेड तथा स्क्रेपर की बहुलता थी, प्राप्त हुआ था। ये मध्य पाषाणकाल अथवा मैसोलिथिक के समकक्ष रखे जा सकते हैं। इस उद्योगक के उपकरण फ्लिंट, चाल्सेडनी, तथा जैस्पर आदि के थे। डी टेरा ने इन्हें आद्यनियोलिथिक (Proto-neolithic) कहा है।

वी0डी0 कृष्णस्वामी की धारणा है कि नर्मदा के तीनों विषमविन्यासों के प्रतिरूप पंजाब में निम्न प्रातिनूतन तथा तृतीय वेदिका के बीच में विषमविन्यास मिलते हैं। इसी प्रकार पंजाब की द्वितीय तथा चतुर्थ वेदिका के प्रतिरूप नर्मदा का उच्च ग्रैवेल तथा गुलाबी मिट्टी है।

सारांश में नर्मदा के निक्षेपों का पंजाब की वेदिकाओं के साथ सम्बंधीकरण निम्न प्रकार से किया गया है :–

Scanned with OKEN Scanner

| | |
|---|---|
| नर्मदा घाटी | पंजाबक्षेत्र (यह सम्बंधी करण पुरातात्विक सामग्री पर आधारित है।) |
| निम्न आधारिक ग्रैवेल | प्रथम वेदिका |
| गुलाबी कंकड़युक्त मिट्टी | द्वितीय वेदिका (निम्न वर्ग) |
| उच्च ग्रैवेल | तृतीय वेदिका |
| गुलाबी मिट्टी | चतुर्थ वेदिका (उच्च वर्ग) |
| काली मिट्टी वर्ग | पंचम वेदिका |

डी टेरा तथा पेटरसन के उपर्युक्त अध्ययन को आधार मानकर बाद के प्रायः सभी विद्वान उनका अंधानुकरण मात्र करते रहे। किन्तु कुछ विद्वानों (मैकाउन, बैनर्जी, खत्री आदि) ने नर्मदा क्षेत्र का पुनः अध्ययन किया। यह उल्लेखनीय है कि अधिकांश विद्वान जिन्होंने इस क्षेत्र में काम किया है उनके निष्कर्ष एक दूसरे से नितान्त भिन्न हैं।

इस संदर्भ में खत्री का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने डी टेरा तथा पेटरसन से भिन्न जमावों के क्रमों का विवरण दिया है। उनके अनुसार महादेव पिपरिया, मुर्गाखेड़ा, बरमन घाट, सण्डिया, अझेरा आदि सभी स्थानों पर सबसे निम्नवर्ती जमाव लाल मिट्टी (Red clay) का है। इसी पर प्रथम ग्रैवेल आधारित है। उनके अनुसार जमावों का क्रम निम्नलिखित है (खत्री , ए0पी0 1966, ओरिजिन ऐण्ड इवोल्यूशन ऑफ हैण्डैक्स कल्चर इन दि नर्मदा बैली सेन्ट्रल इण्डिया, स्टडीज इन प्रीहिस्ट्री, सम्पादक सेन ऐण्ड घोष चित्र 50,)

6. पीलीगाद मिट्टी तथा आधुनिक मिट्टी (Yellow silt and modern soil (3'- 15')
5. संकोणाश्म जमाव (Breccia deposit) (5'-15')
4. पीला क्रास–संस्तरित बालू (Yellow cross-bedded sand) अथवा गुलाबी कंकड़युक्त मिट्टी (Pink Concretionary Clay) (25'-30')
3. सिमेण्टेड बालूयुक्त ग्रैवेल (Cemented Sandy Gravel) (5'-8)
2. बोल्डर कांग्लोमरेट ग्रैवेल I (2'-9')
1.लाल मिट्टी (Red clay) (4'-12')

इसके अतिरिक्त खत्री ने नर्मदा घाटी के हैण्डैक्स उद्योग में विकासात्मक क्रम को प्राप्त करने की भी घोषणा की है, (वही पृ0 99) उनके अनुसार हैण्डैक्स के विकास के निम्नलिखित चार अवस्थाएँ हैं :–

1. चॉपर–चॉपिंगोपकरण स्तर–महादेवियन–यह लाल मिट्टी तथा प्रथम ग्रैवेल में मिलता है।
2. अन्त चेलियन–प्रारम्भिक आशूलियाँ स्तर ग्रैवेल तथा वर्मन घाट उद्योग–स्थल से)

मैकाउन ने भी नर्मदा घाटी का सर्वेक्षण किया है। उनका मत भी सभी के मतों से नितान्त भिन्न था। उनके अनुसार होशांगाबाद तथा उसके निकट जो पेबुल जमाव मिलते है वे पहाड़ी नदियों द्वारा लाकर एकत्रित किए गए है, किन्तु गाद मिट्टी का जमाव किसी भिन्न माध्यम से हुआ है। डॉ0 सांकलिया मैकाउन के विचारो से सहमत नही हैं। उनके अनुसार इस प्रकार के जमाव स्थान–विशेषों पर पहाड़ी नदियों द्वारा एकत्रित किए जा सकते हैं किन्तु वस्तुतः सम्पूर्ण नर्मदा घाटी की स्थिति ऐसी ही थी कहना उचित नहीं है। माहेश्वर के निकट कसरीद नाले में एक मोटा पेबुल

Scanned with OKEN Scanner

जमाव है, जिसमें छोटे–बडे सभी प्रकार के पेबुल मिलते हैं। वह जमाव स्थानीय नहीं हो सकता है, क्योंकि उसमें लगभग सभी पेबुल क्वार्टजाइट के हैं, जबकि नदी बेसाल्ट के प्रदेश से होकर बहती है। अतः यह जमाव नदी द्वारा ही अन्य क्षेत्र से लाकर एकत्रित किया गया है (सांकलिया, एच0डी0 1974, पार्श्वोद्धरित पृ0 115)।

डॉ0 सांकलिया ने स्वयं भी नर्मदा घाटी का सर्वेक्षण किया है, किन्तु उन्हें भी डी टेरा तथा पेटरसन के विभिन्न जमाव एक स्थान पर नहीं मिले। उनका विचार है कि डी टेरा ने नर्मदा का जो अनुभाग दिया है वह वास्तविक नहीं है, अपितु पुनः निर्मित है। डॉ0 सांकलिया ने अपनी पुस्तक में अमरकण्टक से लेकर माहेश्वर तक में पांच स्थानों पर प्राप्त होने वाले जमावों का विवरण दिया है ( वही पृ0 115–116)। किन्तु उस विवरण से पाठक के ज्ञान में कोई भी बृद्धि नहीं होती है। वास्तव में विभिन्न स्थानों पर प्राप्त होने वाले जमावों का सम्बन्धीकरण नितान्त आवश्यक है। इस कार्य के लिए वे ही सबसे अधिक सक्षम विद्वान थे।

मध्य नर्मदा घाटी में काम करने वालों की सूची में डेकन कालेज के सुपेकर का नाम भी उल्लेखनीय है। उनका शोध–प्रबन्ध मध्य नर्मदा घाटी के स्तरीकरण तथा उनमें उपलब्ध पुरातत्विक सामग्री पर आधारित है (सुपेकर, एस0जी0 1968, प्लायस्टोसीन स्ट्रैटीग्रैफी ऐण्ड प्रहिस्टॉरिक आर्क्यालजी आफ दि सेंट्रल नर्मदा बेसिन, पी0एच0डी0 थीसिस, डेकन कालेज तथा पूना विश्वविद्यालय लाइब्रेरी)।

सुपेकर ने नर्मदा घाटी के जमावों का पुनर्निर्माण निम्न प्रकार से किया है :–

(1) निम्नतम जमाव जहाँ कहीं भी दृष्टिगत होता है वह बोल्डर कांग्लीमरेट है। इसका जमाव ग्रैवेल की परत ( Sheet gravel ) के रूप में हुआ था। यह 3′ से 12′ मोटा है तथा विंध्य सैण्डस्टोन पर आधारित है। यद्यपि इसके नीचे किसी भी स्थान पर लैटेराइट जमाव परिलक्षित नहीं होता, किन्तु वह रहा होगा यह निश्चित है, कयों कि वेधन ( Bore hole) में वे प्राप्त हुए हैं (सुपेकर, एस0जी0 1974, ए री अप्रेजल आफ प्लायस्टोसीन स्ट्रैटीग्रैफी ऐण्ड प्रीहिस्ट्री आफ दी सेन्ट्रल नर्मदा बैली, साइक्लोस्टाइल्ड समरी इंडियन प्रीहिस्ट्री सेमिनार, 1974, पूना)।

इस बोल्डर कांग्लोमरेट से Elephas, Equus आदि के जीवाश्म निम्न पूर्व–पाषाणकाल ( Early stoneAge) के उपकरणों के साथ अनेक स्थानों से मिले है। किन्तु महादेव पिपरिया के उत्खनन में इसी जमाव से मध्य पूर्वपाषाणयुगीन ( Middle StoneAge) उपकरण बांस नमाडिकस ( Bos namadicus) के जीवाश्मोंके साथ मिले हैं।

(2) इसके ऊपर का जमाव लगभग 9 से 15 फिट मोटा है तथा प्रायः रेड क्ले ( Red Clay) के नाम से विख्यात है। सांस्कृतिक सामग्री की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण नहीं है।

(3) लालभूरी कंकड़ीयुक्त गाद मिटटी (जो वास्तव में बालुई गाद मिटटी है) तथा बालुई पेबुल ग्रैवेल ( Sandy pebbly gravel) जो गुर्गाखेडा, देवा कछार आदि में है, में अपसमविन्यास ( Disconformity) प्रतीत होता है। किन्तु महादेव विपरिया के उत्खनन तथा बेधन साक्ष्यों से यह अपसमविन्यास ( Disconformity) स्थानीय प्रतीत होती है।

(4) मध्य नर्मदा घाटी में बालुई पेबुल–ग्रैवेल ( Sandy pebbly gravel) का जमाव 30 से 40 फिट मोटा है। इस ग्रैवेल से बांस, एलीफस, इक्वस ( Bos, Elephas, Equus) आदि के जीवाश्म देवा कछार से मध्य पूर्व पाषाणकालीन उपकरणों के साथ मिले है। उपकरण जमाव के स्तरों से मिले हैं, किन्तु उनमें कोई तकनीकी अथवा प्रारूपात्मक अन्तर नहीं है। दोनों ग्रैवेलों में प्राप्त

Scanned with OKEN Scanner

जीवाश्मों में भी कोई अन्तर नहीं है।

(5) बालुई, पेबुल ग्रैवेल क्रमशः पीले–भूरे बालुई गाद मिट्टी में विलीन हो जाती हैं। इसमें भी कभी–कभी जीवाश्म मिले है। इसके ऊपर की सतह से लघुपाषाणोपकरण प्राप्त होते है।

मध्य नर्मदा में निम्न पुरापाषाणकाल ( Early StoneAge) के प्रमुख उपकरणों में चांपर–चांपिंग पेबुल तथा फलक उपकरण और आशूलियाँ हैण्डेक्स क्लीवर आदि हैं। अधिकांश उपकरण रूक्ष है। उपकरण मुख्यतया विशाल फलकों और कोर पर बने हैं।

मध्य पाषाणकालीन (मध्य पूर्वपाषाणकालीन : सुपेकर ने Early StoneAge, Middle StoneAge, तथा Late StoneAge, शब्दावली का प्रयोग किया है ) स्तर से स्क्रेपर, शर, छिद्रक फलक तथा कोर मिले है। इनके साथ कुछ ब्यूरिन, छोटे आकार के हैण्डैक्स तथा चांपर महादेव पिपरिया के स्तरित जमावों से तथा पृथ्वी की सतह से प्राप्त हुए हैं। यह प्रमुख रूप से फलक उद्योग है।

सुपेकर ने महादेव पिपरिया नामक स्थान पर उत्खनन करके निम्नतम ग्रैवेल जमाव तथा उसमें निहित पुरातात्विक सामग्री को समझने का प्रयास किया। उनका दो सत्रों में किया गया उत्खनन इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि उसने अनेक प्राचीन मान्यताओं को खण्डित किया। उत्खनन के फलस्वरूप तथा कथित निम्न ग्रैवेल से उन्हें चापर–चापिंग पेबुल तथा फलक परम्परा के उपकरणों के साथ आशूलियाँ हैण्डैक्स क्लीवर तथा मध्य पाषाणकालीन (मध्य पूर्वपाषाणकालीन) उपकरण भी प्राप्त हुए। उपकरणों के स्वरूप तथा ताजगी आदि में कोई अन्तर नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ कि जिसे आधारिक ग्रैवेल जमाव समझा जा रहा था वह वास्तव में आधारिक नहीं है और पुनर्निक्षेपित प्रतीत होता है। सुपेकर का सुझाव है कि तीनों संस्कृतियों के लोग भिन्न भिन्न समयों में अथवा एक साथ वहाँ रह रहे होंगे। इस सम्बन्ध में अभी कुछ भी कहना सम्भव नहीं है। तिथि के संदर्भ में इस ग्रैवेल की तिथि मध्य पाषाणकाल (मध्य पुरापाषाण काल) की ही माननी चाहिए।

माहेश्वर के निकट सांकलिया तथा उनके सहयोगियों ने नदी जमावों का अध्ययन करने की चेष्टा की है। वहां पर छः स्थानों पर – तीन नदी के दांए तथा तीन बायें तट पर–नदी के जमावों का सूक्ष्म अध्ययन किया। उन सभी स्थानों पर जमावों के क्रम में अन्तर नहीं है। उनके अनुसार जमाव क्रम निम्नलिखित है :

सर्वप्रथम विशाल प्रस्तर पिण्डों का जमाव ग्रैवेल की परत ( Sheet Gravel) के रूप में हुआ। ये प्रस्तर पिण्ड नदी के द्वारा ओंकारेश्वर के आगे से लाए गए होंगे, क्योंकि प्रस्तर पिण्ड प्रमुखतया क्वार्टजाइट के हैं, जबकि ओंकारेश्वर से वसाल्ट का क्षेत्र प्रारम्भ हो जाता है।

माहेश्वर के निकट मानव का आविर्भाव इस ग्रैवेल के जमाव के बाद हुआ होगा। विशाल एकपक्षीय तथा उभयपक्षीय कोर तथा बडे आघात के अर्धशंकु से युक्त फलक ग्रैवेल जमाव में मिले हैं। इनके साथ कभी–कभी हैण्डैक्स तथा क्लीवर भी मिलते है। इसका तात्पर्य है कि नर्मदा में उपकरण निर्माण की अविकसित तथा विकसित दोनों ही प्रणालियाँ उस समय प्रचलित थीं।

इस ग्रैवेल के ऊपर गाद मिट्टी का मोटा जमाव है। यह गुलाबी सा लगता है तथा इसकी मिट्टी में चूने की मात्रा बहुत अधिक प्रतीत होती है। इसकी मोटाई का स्पष्ट ज्ञान नहीं हो सकता है, क्योंकि इसके ऊपर दूसरा ग्रैवेल है। जिन स्थानों पर ग्रैवेल नहीं है वहाँ भूरी गाद मिट्टी का जमाव मिलता है।

दूसरे प्रस्तर–पिण्ड का जमाव लगभग वैसी ही जलवायु में हुआ होगा जैसा कि प्रथम के समय

Scanned with OKEN Scanner

था। इस प्रस्तर–पिण्ड का निर्माण क्वार्टजाइट के प्रस्तर–खण्डों, पेबुल तथा जैतून के समान हरे ( Olive green) वसाल्ट से हुआ है। प्रथम जमाव से प्राप्त उपकरणों के ही समान उपकरण इस जमाव से भी एकत्रित किए गए थे। द्वितीय प्रस्तर–पिण्ड का जमाव गाद मिट्टी के 40 फिट मोटे जमाव से आवृत्त है। इन जमावों पर आधारित छोटे ट्रैप, क्वार्टजाइट, चाल्सेडनी तथा जैस्पर के पेबुलों से निर्मित एक महीन ग्रैवेल का जमाव है। इसके ऊपर भूरी गाद मिट्टी है। इसकी ऊँचाई लगभग 40 फिट है तथा यह दूसरी वेदिका का निर्माण करती है। वास्तव में इस ग्रैवेल से मध्य पूर्वपाषाणकाल के उपकरण मिलते हैं।

प्रथम वेदिका की ढाल पर तथा इसके किनारे–किनारे एक कंकड़ युक्त ग्रैवेल तथा सिल्ट जमाव मिलता है जो नदी के अन्तिम उच्चयन काल का है।

डा0 सांकलिया की धारणा है कि माहेश्वर के जमाव क्रम तथा होशंगाबाद नरसिंहपुर के जमाव–क्रमों में कोई मौलिक अन्तर नहीं है।

गत सौ वर्षो में विद्वानों ने नर्मदा घाटी में कार्य किया है, किन्तु सभी के अपने तक्र एवं विचार हैं जो एक दूसरों से भिन्न हैं। ऐसी स्थिति में वहाँ के संस्तर तथा सम्बन्धित पुरातात्विक सामग्री के संदर्भ में कुछ भी कह सकना सम्भव नहीं है। वहां के स्तरों की समझने के लिए भू–वैज्ञानिकों तथा पुरातत्व वेत्ताओं का एक उच्चस्तरीय अभियान पुनः जाना चाहिए।

नर्मदा घाटी के अतिरिक्त मध्य प्रदेश में शिविना (खत्री, ए0पी0, 1958, 'स्टोन एज कल्चर्स ऑफ मालवा', थीसिस डेकन कालेज तथा पूना यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी ), वेतवा (.सिंह, रामेश्वर, 1965, 'पेलियोलिथिक इण्डस्ट्रीज ऑफ नार्दर्न बुन्देलखण्ड', थीसिस, डेकन कालेज तथा पूना यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी ), सोनार (जोशी, आर0 वी0 1961, 'स्टोन एज इण्डस्ट्रीज ऑफ दि दमोह एरिया', मध्य प्रदेश एंशिएण्ट इण्डिया नं0 17), सोन (अहमद निसार, 1961, दि स्टोन एज कल्चर्स ऑफ दि अपर सोन वैली, थीसिस, डेकन कालेज तथा पूना यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी) घाटी आदि में भी विविध विद्वानों ने कार्य किया है।

## नर्मदा घाटी में पुनः किए गए कार्य :

उपर्युक्त विद्वानों के अतिरिक्त नर्मदा घाटी के विभिन्न भागों में विभिन्न।विद्वान उत्खनन एवं सर्वेक्षण करते रहे हैं। 1977–2003 के मध्य शर्मा तथा शर्मा (शर्मा 2005) ने पीली करार क्षेत्र में, मिश्र आदि (1990 अ,ब) ने मध्यपुरापाषाणिक पुरा स्थल समनापुर में उत्खनन किया। इसके अतिरिक्त ओटा (1992), मिश्रा तथा राजगुरू (1993), घोष (1993) तथा मिश्र (1993), मोहापात्र तथा कबीर (1983), मिश्र आदि (1999) ने महत्वपूर्ण कार्य किए। नर्मदा घाटी के स्तरविन्यास तथा कालानुक्रम का सबसे महत्वपूर्ण कार्य तिवारी तथा भाई (1997) का है। स्तरों के पारस्परिक सम्बंधों, अपरदन जनित विषमविन्यास (erosional unconformities), टेफ्रा (Tefra) जमाव, पेलियोमैगनेटिक, सिगनेचर, मृदा सम्बंधी लक्षणों (Pedogenic characteristics) अवसादी खनिज विज्ञान, तथा संरचना के आधार पर सम्पूर्ण चतुर्थक कालीन संरचना को सात जमावों में विभाजित किया गया है जो क्रमशः पीली करार (Pilikarar), धांसी (Dhansk) सूरजकुण्ड (Surajkund), हिरदेपुर

Scanned with OKEN Scanner

(Hirdepur), बौरस (Bauras) तथा रामनगर (Ramnagar) हैं। ये सम्मिलित रूप से प्रारम्भिक प्रातिनूतन काल से नूतन काल तक की समयावधि को पूर्ण करते हैं।

इनमें से प्रथम चार प्राचीनतम हैं।

1 **पीली करार**

पीली करार संरचना ऐसी है जो नदी के किनारे कहीं भी परिलक्षित नहीं है, किन्तु मध्य घाटी में दृश्यांश (out crop) के रूप में दिखता है। तिवारी तथा भाई (1997) के अनुसार यह प्राचीनतम जमाव सीधे डेकन ट्रैप (Deccan Trap) पर आधारित है तथा सभी चतुर्थक कालीन जमावों का अधार है।

2. **धौसी संरचना**

धौसी में यह एक लगभग 15 मीटर अनुभाग में सूरजकुण्ड संरचना के लगभग 3 मी0 नीचे है। धौसी संरचना की मोटाई इस क्षेत्र में लगभग 50 मी0 है किन्तु इसका आधार परिलक्षित नहीं है। इस संरचना से अभी तक मात्र कुछ जीवाश्म प्रतिवेदित हैं। भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण के अनुसार पेलियोमैगनेटिक तिथिक्रम प्रणाली से आँकी गई तिथि के अनुसार इस अनुभाग के नीचे से आधी ऊँचाई की तिथि 780 ka से भी अधिक है। यदि यहाँ पर किए गए अनुसंधान इस तिथि की पुष्टि करते हैं तो इस संरचना से प्राप्त पुरातात्विक सामग्री सबसे प्राचीन होगी। यह स्थल अत्तिरमपक्कम (Attirampakkam) के समान दूसरा पुरास्थल होगा।

मानव कपाल चित्र सं0–34

**सूरजकुण्ड संरचना तथा हथनोरा :**

इस संरचना में सबसे अधिक संख्या मे जीवाश्म तथा प्रस्तर उपकरण मिले हैं। सूरजकुण्ड में यह जमाव लगभग 15 मी0 दृष्टव्य है। हथनोरा में आधारिक कांग्लोमरेट तथा ग्रैवेल लेंयर भी लक्षित हैं। बोल्डर कांग्लोमरेट डेक्कन ट्रैप पर विषमविन्यास (unconformably) रूप से आधारित है। बोल्डर कांग्लोमरेट की मोटाई 4मी0 है। इससे ही मानव जीवाश्म तथा उपकरण भी प्राप्त हुए हैं। कुछ शोधकर्ता (KhanAnd Sonakia 1992. Rao etal1997) इसे मध्यप्रानूितनकाल में रखते हैं।

हथनोरा के निकट नदी का क्रास सेक्शन चित्र सं0–35

सूरजकुण्ड के प्रतुख अनुभाग से लगभग 1.5 कि0मी0 ऊपर हथनोरा के दाहिने किनारे पर सूरजकुण्ड जमाव की तिथि 1.28 ka से 500ka (तिवारी तथा भाई; 1997 ) आँकी गयी है। अन्यत्र सूरजकुण्ड जमाव प्रातिनूतन कालीन धौंसी संस्तर से ऊपर है। यहाँ से प्राप्त मेरुदण्ड विहीन तथा

मेरुदण्डयुक्त जीवों तथा पेलिनोलाजिकल समुच्चय (PalynologicalAssemblage) से यह अनुममान किया जाता है कि सूरजकुण्ड जमाव प्रारम्भिक मध्य प्रातिनूतन (Early Middle Pleistocene) से प्रारम्भिक अन्त प्रातिनूतन (Early late Pleistocene) के समकक्ष रखा जासकता है। इसका निक्षेपण गर्म–आर्द्र वातावरण गें हुआ था।

सूरजकुण्ड जमाव से प्राप्त स्तन्य पशुओं (Mammelan) में Stegodon namadicus, Equus namadicus, hippopotamus, Sus namadicus nd, evonAlpknus उल्लेख्य हैं। इनसे अनुमान किया जाता है कि गरमजलवायु के साथ अन्त मध्य प्रातिनूतन काल में रुक–रुक कर शुष्क जलवायु के काल आते गए। प्रारम्भिक तथा मध्यप्रानूितनकाल में मेरुदण्डयुक्त जीवों में ciprind fish, crocodile, Hippopotamus palaeindricus तथा Elephas bysundricus गरम जलवायु का निर्देश करते हैं किन्तु अन्त प्रातिनूतन काल के अन्त में जलवायु और शुष्क हो गई थी जिसका अनुमान जंगली गदहे (Equusbeninonus kbur) तथा शुतुर्मुर्ग (strutbio camilus) से किया जा सकता है। सूरजकुण्ड जमाव से प्राप्त द्विपक्षीय उपकरण (bifaces) स्वस्थानीय (instu) हैं। इन्हें अन्त आशूलियॉ।के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इस प्रकार के उपकरण निरन्तर सिमेंटेड गैवेल तथा पुरानिखात (palaeosol) के बीच में मिलते हैं। इनसे अनुमान कर सकते हैं कि पुरा मानव ने

हथनोरा के निकट नदी का अनुभाग चित्र सं0–353अ

इनका विसरण काफी विस्तृत क्षेत्र में किया था।1980 तथा 1990 के प्रारम्भिक दशको में हथनोरा से पुरा मानव के आंशिक कपाल (cranium) दो क्लैविकल्स (clavicals), तथा पसली (Rib) का एक टुकड़ा मिला था। हथनोरा से प्राप्त कपाल के अंश का समीकरण विभिन्न विद्वानों ने Homo erectus,Archaic H sapiens and H. beidelbergenusis (Sonakia,1984, Kennedy and Chiment 1991, Sankhyan 1997,2005, Cameron etal, 2004) से की है। इसके अस्पष्ट लक्षणें के कारण इसे कुछ विद्वान मात्र Homo sp.indet. श्रेणी में रखते हैं। हाल में हुए अनुसंधानों से ज्ञात होता है कि सूरजकुण्ड जमाव से प्रायः सम्बंधित किया जाता था वे सभी उससे सम्बधित नहीं किए जा सकते। उदाहरण के लिए जिस तरह से पुरामानव कपाल संग्रहीत किया गया है वह पुनर्निक्षेपित

(reworked) प्रतीत होता है। चार मी0 मोटे जिस बोल्डर ग्रैवेल तथा बालुई–पेब्ली धरातल से पुरामानव का जीवाश्म प्राप्त हुआ है उसमें एलीफस बाईसुड्रिकस (eliphasbysundricus) तथा स्टुटबायो केमेलस (Strut biocamelus) के अण्डों के टुकड़े भी मिले थे। भारत में शुतुर्मुर्ग के अण्डे अन्तप्रातिनूतन काल (LatePleistocene) के हैं। हथनोरा के अण्डे के छिलके तथा पुरा मानव कपाल भी काफी बाद के हैं। कपाल 50 kay का हो सकता है। इन सभी वाद विवादों को समाप्त करने के लिए और अधिक शोध की आवश्यकता है।

## बनेटा जमाव

सूरजकुण्ड जमाव के ऊपर बनेटा जमाव है। इस जमाव से भी (Equus, Bos, Bubalus, Hexaprotodons तथा Cervidae के जीवाश्म, शेल (Shell) क्रोकोडइल (Crocodile) के दाँत तथा पराग समुच्चय मिले हैं। पराग समुच्चय से अनुमान किया जासकता है कि उस समय ठण्डी शुष्क जलवायु रही होगी जैसी अन्तिम हिमावर्तन काल में थी। पराग विश्लेषण विज्ञान के अनुसार 24 तथा 20 kay के लगभग अन्तिम हिमावर्तन काल में घास के बड़े मैदान थे तथा वृक्ष कम थे। हथनोरा के निकट तथा नर्मदाघाटी में छोटे छोटे जलाशयों तथा झीलों का बाहुल्य रहा होगा। हथनोरा में बनेटा जमाव में बोल्डर कांग्लोमरेट के ऊपर 9मी0 मिट्टी तथा बालू का जमाव था जिसमें से मानव जीवाश्म मिला था। टोबा ऐश (TobaAsh) जमाव के आधार पर बनेटा जमाव अन्त प्रातिनूतन काल में 70 ka से (128ka Rao etal. 1997) के अन्तर्गत रखते हैं। आचार्य तथा बसु (1993) ने भी बनेटा जमाव की तिथि Fission Track विधि के आधार पर 74 ka निर्धारित की है। इस जमाव से प्रायः मध्यपुरापाषाण काल के उपकरण मिलते हैं।

## शिविना एवं सोन घाटी

शिवना में जमाव के दो चक्र मिलते है। शिविना पर मन्दसोर में दो प्रमुख स्थल श्मशान घाट तथा रामघाट हैं। शिविना से प्राप्त उपकरण समुदाय को अबेबीलियाँ–आशूलियाँ (Abbevilleo-Acheulian) वर्ग के अन्तर्गत रखा जा सकता है। उपकरणों में कुछ छोटे आकार के हैण्डैक्स तथा क्लीवर भी है। डा0 सांकलिया की धारणा है कि ये मध्य पुरापाषाण काल का आह्वान करते है।

उपर्युक्त स्थानों के अतिरिक्त मध्य प्रदेश में और भी अनेक भागों का प्रागैतिहासिक सर्वेक्षण किया गया है, जैसे उच्च सोन घाटी। उच्चसोन घाटी में निसार अहमद (वही, 1966, पार्श्वोद्धरित) ने कुल 35 स्थलों को खोजा है, किन्तु इन सब स्थलों पर कुल मिलाकर के 167 उपकरण तथा फलक प्राप्त हुए है। इतने विस्तृत क्षेत्र में इतने थोड़े उपकरणों पर कोई निष्कर्ष निकालना उचित नहीं है। उन्होंने सोन नदी के जमावों का जो क्रम प्रस्तुत किया है वह भी सम्यक् अध्ययन पर आधारित प्रतीत नहीं होता है।

Scanned with OKEN Scanner

# मध्य सोन घाटी
## (Middle Son Valley)

मध्य सोन घाटी नकझार चित्र सं0–36

## सोन घाटी (सीधी जिला)

भारत की प्रागैतिहासिक संस्कृतियों के अध्ययन की दृष्टि से मध्य सोनघाटी का विशेष महत्व है। सोन नदी मध्य प्रदेश में शहडोल जिले में अमरकंटक की पहाड़ियों से निकलती है। इसका उद्गम सोनभद्र अथवा सोनभुदा के नाम से जाना जाता है। उद्गम स्थान से निकलकर यह शीघ्र ही 76 मीटर नीचे खड्ड में गिरती है। इस घाटी की संरचना इस प्रकार की है कि यह किसी भी स्थान पर 10 कि0मी0 से अधिक चौड़ी नहीं हैं तथा प्रारम्भ से अबतक इस क्षेत्र में इसका मार्ग परिवर्तन नहीं हुआ है। सोन नदी 792 कि0मी0 का मार्ग तय करती हुई पटना में गंगा से मिलती है। यह उल्लेख्य है कि मध्य सोन घाटी के भूतात्विक प्रागैतिहासिक अध्ययन की दृष्टि से येल–कैम्ब्रिज अभियान के निर्देशक डी टेरा तथा उनके बाद ज्वायनर ने भी इस क्षेत्र के महत्व के सम्बन्ध में संकेत किया था। राधाकान्त वर्मा ने 1958–.62 में आधुनिक सोनभद्र जिले मे तथा निसार अहमद ने 1962–.63 में सोन की ऊपरी घाटी का सर्वेक्षण किया था। 1968 में वर्मा तथा बी0 बी0

Scanned with OKEN Scanner

मिश्र ने सिहावल के निकट जोगदहा पुल, सीधी जिले में पुनः सर्वेक्षण किया। 1974 के बाद से इसका सघन सर्वेक्षण प्रो0 जी0 आर0 शर्मा के निर्देशन में हुआ तथा उसके बाद से निरन्तर कार्य होता रहा है। इस सर्वेक्षण में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग के पुरातत्ववेत्ताओं ने विशेष भूमिका निभाई है। 13,601 वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र पश्चिम में चुरहट से पूर्व में बिच्छी तक तथा उत्तर में कैमूर की पहाड़ियों से दक्षिण में सोन तथा गोपद संगम तक के क्षेत्र का सर्वेक्षण किया गया। इस क्षेत्र के सर्वेक्षण में 1980.82 में कैलिफोर्निया स्थित बक्रले विश्वविद्यालय के जे0 डी0 क्लाक्र के सहयोगी पुरातत्वत्ताओं, नृतत्व शास्त्रियों एवं भूतत्ववेत्तओं के दल ने भी अपना सहयोग दिया है। कालान्तर में वर्मा ने रींवा विश्वविद्यालय के तत्वावधान में 1985 से 1997 तक सर्वेक्षण किया जिसके फलस्वरूप वनस्पतियों के जीवाश्म प्रकाश में आए। उन्होंने पटपरा में उत्खनन भी कराया।

सोन नदी की उत्तरवर्ती पहाड़ियों तथा सोन के समानान्तर तट के निकट नीची पहाड़ी (Ridge), पर बहुत से पुरास्थलों की पहचान की गई है, जहाँ से भारी संख्या में उपकरणों का संग्रह किया गया है। कुछेक स्थलों पर उत्खनन भी किए गए जिनमें सिहावल, नकझर खुर्द, पटपरा तथा बघोर विशेष महत्वपूर्ण हैं। सर्वेक्षण के फलस्वरूप बहुत से पुरास्थल, प्रागैतिहासिक उपकरण तथा जीवाश्म प्राप्त हुए हैं , जो तत्कालीन मानव संस्कृति पर विशेष प्रकाश डालते हैं। प्रारम्भ में इस क्षेत्र के प्रातिनूतन कालीन भूतात्विक जमावों का निम्न अनुक्रम चिन्हित किया गया था जो नीचे से ऊपर की ओर इस प्रकार था–1..सिहावल जमाव; 2.पटपरा जमाव; 3.बघोर जमाव; 4खेतौही जमाव।

कालान्तर में टोबा ऐश (Toba ash) के मिलने के बाद इस क्रम में सिहावल जमाव तथा पटपरा जमाव के मध्य में खुण्टेली (Khunteli deposit) जोड़ा गया। फलतः अब निम्न अनुक्रम माना जाता है:

1. सिहावल जमाव;
2. खुण्टेली जमाव;
3. पटपरा जमाव;
4. बघोर जमाव;
5. खेतौहीं जमाव

**सिहावल जमाव :**

यह सबसे निम्नवर्ती प्रातिनूतन कालीन जमाव है। इसका नामकरण उस पुरास्थल के आधार पर किया गया है, जहाँ पर यह सबसे अच्छी प्रकार से दर्शित है। इस ग्रैवेल जमाव की अधिकतम मोटाई 1.5 मी0 है। सभी स्थानों पर यह विगलित होती हुई आधार शिला पर अवस्थित है।

Scanned with OKEN Scanner

सिहावल जमाव चित्र सं. 37

इस सम्पूर्ण जमाव को दो भागों मे विभाजित करते हैं :—

1.सिहावल ग्रैवेल जमाव।

2.सिहावल सिल्ट जमाव।

1. सिहावल ग्रैवेल जमाव में वालुकाश्म, शेल तथा क्वार्टजाइट के कोणाकार, गोलाकार पत्थर है, जो सूक्ष्मकणों से लेकर 50 से0मी0 तक मोटे हैं। ये अर्धशुष्क जलवायु का निर्देश करते हैं।
2. सिहावल सिल्ट जमाव लगभग 50 से0मी0 मोटा है।.इसमें चितकबरी मिट्टी का जमाव भी मिलता है। यह सिहावल तथा पटपरा में परिलक्षित है। इसमें उपकरण नहीं है।

सिहावल ग्रैवेल जमाव के निम्न वर्ग से निम्नपूर्व पाषणयुगीन उपकरण मिलते हैं। जिनमें ताजे तथा घिसे हुए दोनों ही सम्मिलित हैं। मिट्टी के जमाव मे उपकरण नहीं मिलते। कालक्रम के आधार पर इसे मध्य से उच्च प्रातिनूतन काल के अन्तर्गत रखते हैं। इस स्तर से 91kyr (Pal etAl. 2004).एक ऊष्मादीप्ति तिथि (OSLR) 103,800 ± 19,800 उपलब्ध हुई है।

घोघर के निकट ज्वालामुखी की राख चित्र सं0–38

## खुण्टेली जमाव

इस जमाव की पहचान खुण्टेली गाव के निकट सोन के दाहिने तट के अनुभाग में की गई थी। यह सिहावल तथा पटपरा जमावों के बीच में है। इसके दो भाग हैं। आधारिक भाग लगभग 6मी0 मोटा है तथा पीले भूरे रंग के मझोले आकार के शिथिल बालू तथा शुद्ध ज्वालामुखी राख का असंतत संस्तर (Discontinuous bed) तथा 1.5 मी0 मोटा जमाव तथा 4मी0 मोटी महीन /रूक्ष बालू का क्रास संसतरित जमाव है। चतुर्थक कालीन ज्वालामुखी सर्वप्रथम भारत में यहाँ मिला था। इसका विस्फोट सुमात्रा **में टोबा ज्वालामुखी से** 73 ± 4 Kyrs **के लगभग हुआ था।**

पटपरा जमाव:टुफा तथा पत्ती के फासिल चित्र सं0–39

## पटपरा जमाव

यह **खुण्टेली** जमाव के ऊपर है। इसका नामकरण पटपरा नामक गाँव के निकट अनुभाग पर आधारित है। गहरे लाल रंग के इस निक्षेप की अधिकतम मोटाई 10 मी0 है।

इसमें बालू के कण, बलुआ पत्थर, क्वार्ट्ज, शेल तथा क्वार्टजाइट के छोटे टुकड़े भी मिलते हैं। यह जमाव आंशिक रूप से संयोजित (Cemented) है जिसके कारण इसका रंग अधिक लाल दीखता है। पटपरा के निकट इस जमाव के अन्दर टुफा (Tufa) जमाव भी मिलता है जो ऊपर से अत्यन्त सिकु ड़ा हुआ लगता है। इस जमाव में प्रायः वानस्पतिक जीवाश्म विशेषतः पत्ती के जीवश्म (Leaf fossils) काफी मात्रा में मिलते हैं।

पत्ती के फासिल चित्र सं0–40

इस जमाव से मध्यपूर्वपाषाण–कालीन उपकरण बहुतायत से मिले हैं। इनमें नवनिर्मित उपकरणों की संख्या अधिक है। इनके साथ कुछ उपकरण आश्यूल परम्परा के भी मिलते हैं। इस सम्पूर्ण जमाव को उच्च प्रातिनूतन काल में रखते हैं। सौर्य वर्षों में इसकी तिथि एक लाख से तीस हजार वर्ष प्राचीन मानी गई है। इस जमाव से एक निर्पेक्ष तिथि 54 kyr BP प्राप्त है।

## बघोर जमाव

चौथा जमाव बघोर जमाव है, जो बघोर ग्राम के नाम पर आधारित है। यह विशाल निक्षेप कहीं कहीं पर 20 मी0 तक मोटा तथा पटपरा जमाव पर आच्छादित है। बघोर जमाव को उसकी संरचना के आधार पर दो भागों में विभाजित किया गया है : 1. **निम्नवर्ती रूक्षवर्ग** 2. **ऊपरवर्ती महीनवर्ग**।

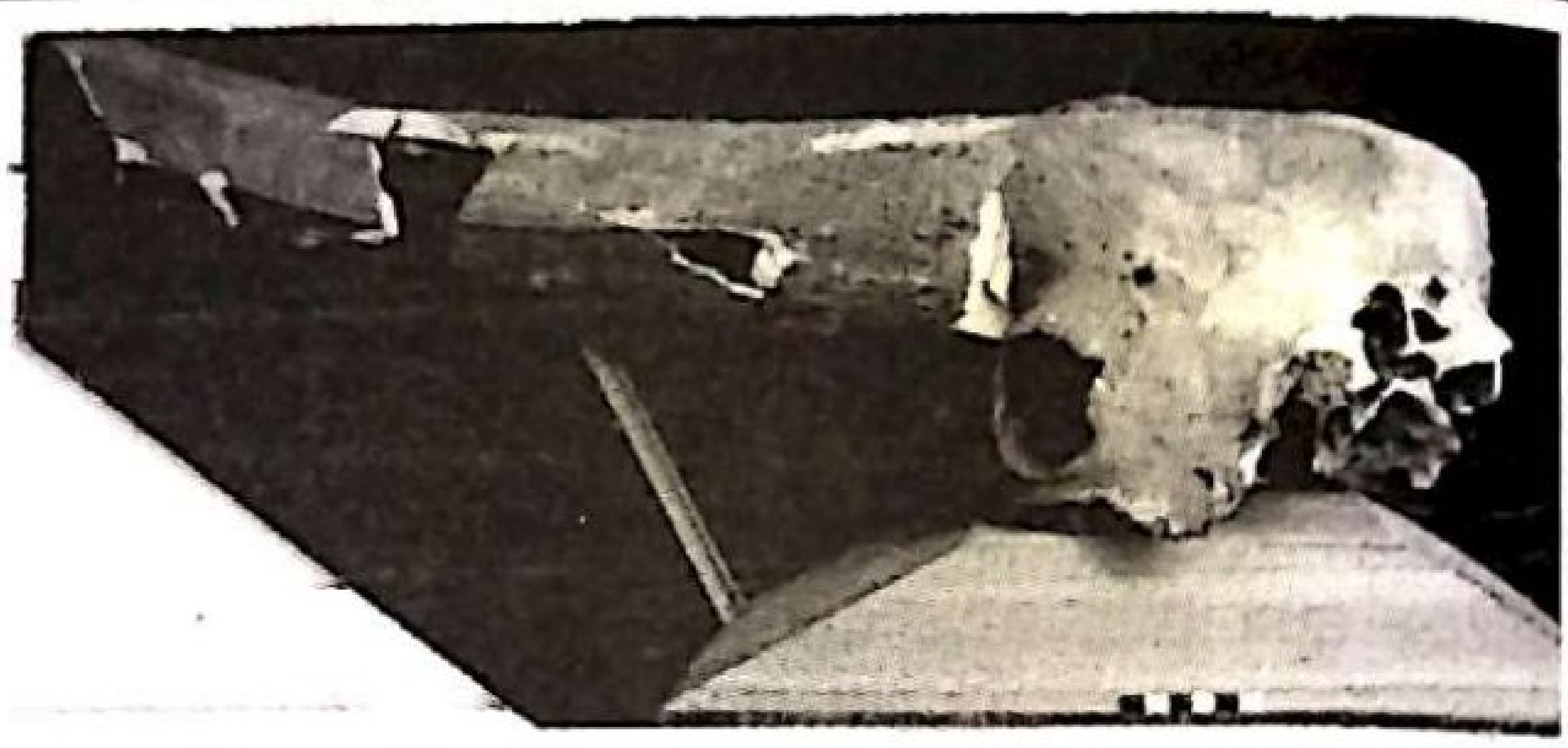

6फी06इ0 चौड़ा श्रृंग युक्त गौर का शिर चित्र सं0–41

### निम्नवर्ती रूक्षवर्ग

निम्नवर्ती जमाव मोटे कण के बालू से निर्मित है इसकी अधिकतम मोटाई 10 मी0 तक है। इसमें असंयोजित बालू के 5 से0मी0 से 85 से0मी0 तक मोटे क्रास संसतरण मिलते हैं। कहीं कहीं पर कैलशियम कार्बोनेट से सीमेण्टेड बालू की पर्ते भी इसमें मिलती हैं जिनके बीच बीच में अपेक्षाकृत बालू तथा महीन ग्रैवेल असंयोजित (Unconsolidated) रूप में मिलते हैं। कहीं कहीं पर इनमें लहरों के चिन्ह (Ripple-marks) भी मिलते हैं। जहाँ जहाँ यह विदरित अवस्था में मिलता है वहाँ इसमें से पुनर्निक्षेपित मध्य–पाषाणिक उपकरण तथा उच्चपूर्व पाषाणिक संक्रमण कालीन उपकरण भी मिलते हैं। इस जमाव में बहुत भारी संख्या में पशुओं के जीवश्म मिले हैं, जिसमें वाइसन (गौर–भैंसा) गैण्डा, दरियायी घोड़ा, हाथी, हिरन, घड़ियाल, कछुआ, आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

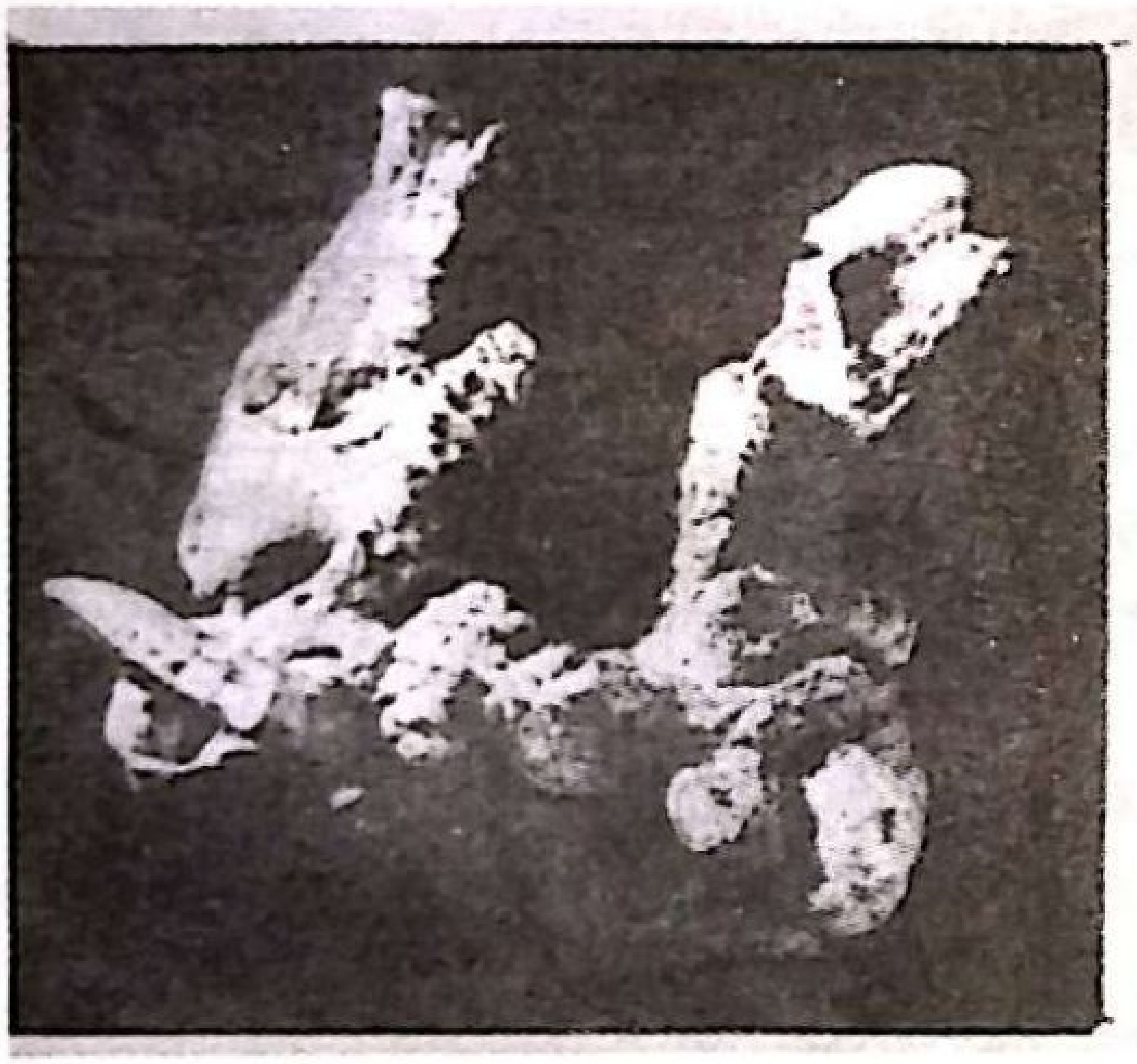

गैण्डे का जबड़ा सोन घाटी चित्र सं0–43

गौर का शिर चित्र सं0–42

कछुआ चित्र सं0–44

इस जमाव के निम्नवर्ती भाग से प्राप्त मलस्क सीप (mollusk shells) से 26000 years BP की तिथि प्राप्त है। नीचे के मध्य भाग से एक अन्य तिथि 36 kyrs BP तथा मध्य भाग से 22 kyrs उपलब्ध है।

## ऊपरवर्ती महीन वर्ग

यह निम्नवर्ती रूक्षवर्ग पर आच्छादित है तथा इसकी अधिकतम मोटाई 10 मी0 है। इस महीन जलोढ़ जमाव में गाद मिट्टी (Silt) तथा मिट्टी की क्षैतिज पर्ते विविध मोटाइयों की मिलती हैं। इसमें कंकड़ के टुकड़े (Calcium carbonate) तथा बालू की पर्ते भी प्रायः मिलती है।

इस जमाव से उच्चपुरापाषाण काल के ताजे उपकरण प्राप्त हुए हैं। विलियम्स तथा राइस ने इसे प्रातिनूतन काल के अन्त तथा नूतन काल (Holocene) के प्रारम्भ से मध्य काल के अन्तर्गत रखा है। सौर्यवर्षों में इसकी तिथि लगभग 20,000 वर्ष ईसापूर्व मानी जा सकती है। इस जमाव से एक तिथि 18 kyrs B.P उपलब्ध है।

## खेतौंही जमाव

यह इस क्षेत्र का सबसे ऊपरवर्ती जमाव है। इसका सबसे सुरक्षित अनुभाग सोन तथा रेही के संगम के निकट खेतौहीं नामक पुरास्थल पर दृष्टव्य है। इसका अधिकतम निक्षेप लगभग 10 मी0 है। यह जमाव गाद मिट्टी, मिट्टी तथा महीन बालू से निर्मित है। इसका निर्माण मध्यनूतन काल में हुआ था। जहाँ कहीं भी इस जमाव का ऊपरी भाग क्षरित है, वहाँ पर मध्यपाषाण युगीन लघुपाषाण उपकरण यथेष्ट संख्या में मिलते हैं। इस निक्षेप की तिथि लगभग 10,000 वर्ष पूर्व निर्धारित की जा सकती है।

सरांश में इस क्षेत्र के भौतात्विक जमाव इस प्रकार हैं :

| | | | |
|---|---|---|---|
| Mid Upper Pleistocene | Semi Humid & Humid | Sihawal Formation | Lower Palaeolithic |
| Upper Pleistocene | Semi Humid & Humid Climate | Khunteli Formation | |
| Upper Pleistocene | Semi Humid & Humid 1000,000B.C. | Patpara Formation | Middle Palaeolithic Artefacts |
| Terminal | Cold & Dry 30,000 | Baghor Formation | Rolled middle Palaeolithic |
| End Pleistocrne | Max.Over bank flooding | Baghor Formation | Upper Palaeolithic (Fresh) And Mesolihic |
| Holocene | 10,000 to 3000B.C. | Khethauni Formation | Mesolithic, Neolithic |

Scanned with OKEN Scanner

## सांस्कृतिक अनुक्रम

मध्य सोनघाटी में किए गए सर्वेक्षणों एवं उत्खननों से स्पष्ट है कि इस क्षेत्र में प्रागैतिहासिक मानव का पदार्पण उस समय हो गया था जब सिहावल जमाव का निक्षेपण हो रहा था, जिसकी तिथि मध्य प्रातिनूनतन के लगभग निर्धारित की गई है। उसके बाद से सोनघाटी में मानव निरन्तर रहा। मध्य सोनघाटी में सर्वेक्षणों के फलस्वरूप 47 निम्नपूर्वपाषाण कालीन पुरा स्थल प्रकाश में आए जिनमें सिहावल, रामपुर, नकझर, बरबसा की पहरी, पटपरा, बर्री, पण्डारी, धूप खरी, तथा हटवा खरी प्रमुख हैं। सोनघाटी में निम्नपूर्वपाषाण कालीन पुरा स्थल सोन के उत्तर में मध्यवर्ती पहाड़ी जो नदी के समानान्तर है के उपर अथवा नदी के किनारों के निकट हैं।

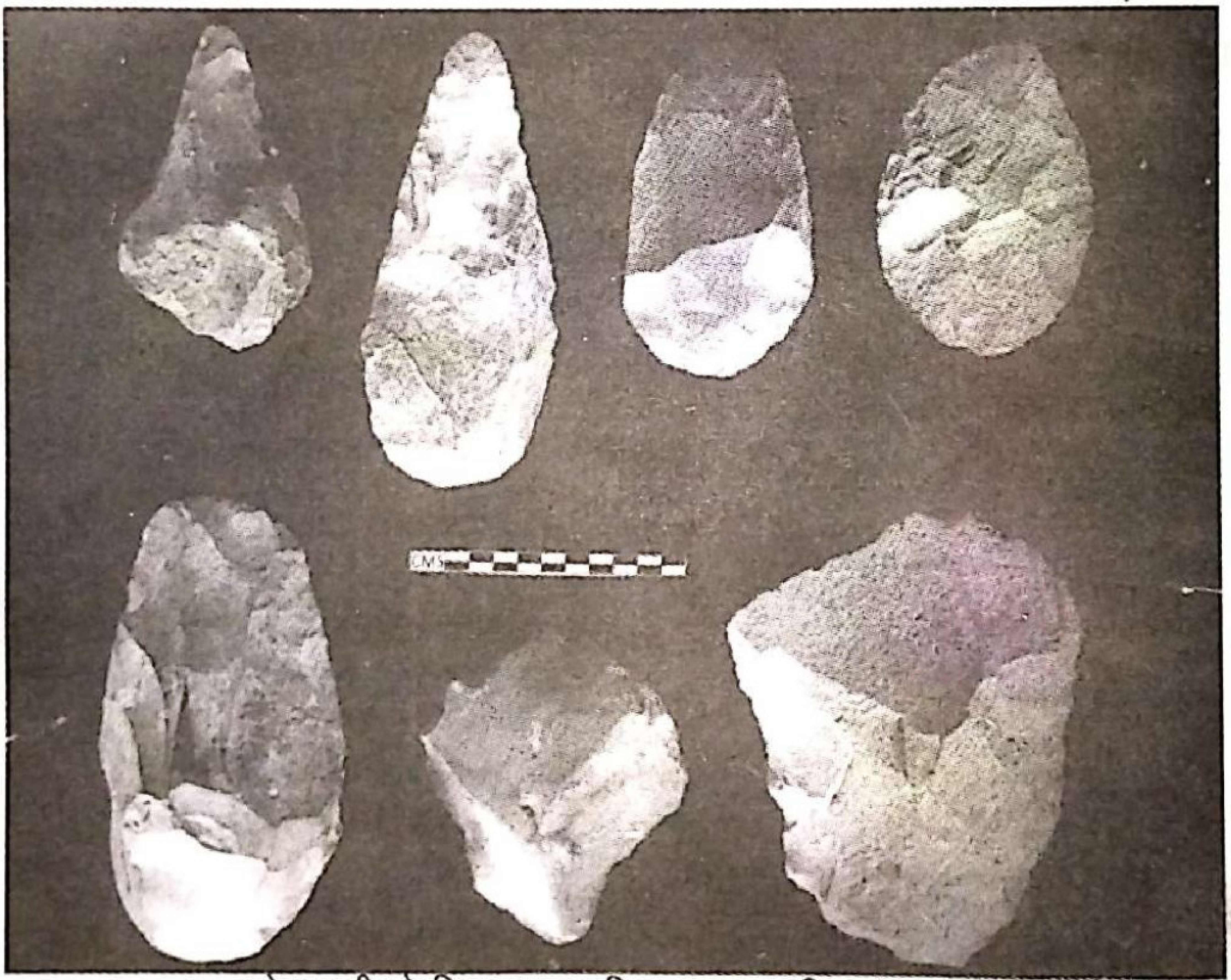


सोन घाटी के निम्न पुरापाषाणिक उपकरण चित्र सं.–45 अ

सोनघाटी के सिहावल जमाव से तथा उत्तरवर्ती पहाड़ियों पर अवस्थित पुरास्थलों से बहुत अधिक संख्या में निम्नपुरापाषाण कालीन उपकरण, जिनमें नव निर्मित उपकरणों की संख्या बहुत अधिक है, संग्रहीत किए गए हैं। उपकरणों के स्वरूप तथा निर्माण प्रविधि के आधार पर उन्हें मध्य तथा विकसित आशूलियाँ के अन्तर्गत रख सकते हैं। उपकरणों पर फलक चिन्ह छिछले हैं तथा उनपर कार्टेक्स प्रायः नहीं है। अधिकांश उपकरण अन्त फलक पर निर्मित हैं। पेबुल पर बने अबेबीलियाँ प्रकार के उपकरण नगण्य हैं। अधिकांश उपकरण पूर्णतया फलकित तथा सुडौल हैं।

Scanned with OKEN Scanner

नुकीले हैण्डऐक्सों (Pick) की संख्या भी यथेष्ट है। उपकरणों के निर्माण के लिए अच्छे प्रकार के क्वार्टजाइट, चर्ट आदि का प्रयोग किया गया है। उपकरणों के फलक चिन्हों के अध्ययन से स्पष्ट है कि ये लोग कोमल तथा बेलनाकार हथौड़ा–पद्धति तथा सोपान पद फलकीकरण प्रविधियों से पूर्णतया परिचित हो गए थे। कुछ उपकरणों पर लेवालेवा पद्धति के प्रयोग के प्रमाण भी स्पष्ट मिलते हैं।

उष्मादीप्ति तिथि विधि से इसकी तिथि 74,000 ± 20,000 वर्ष पूर्व निर्धारित की गई 2007 के उत्खनन से बम्बुरी और पटपरा से प्राप्त OSL तिथियाँ 140 & 135 Kyr मिली है।

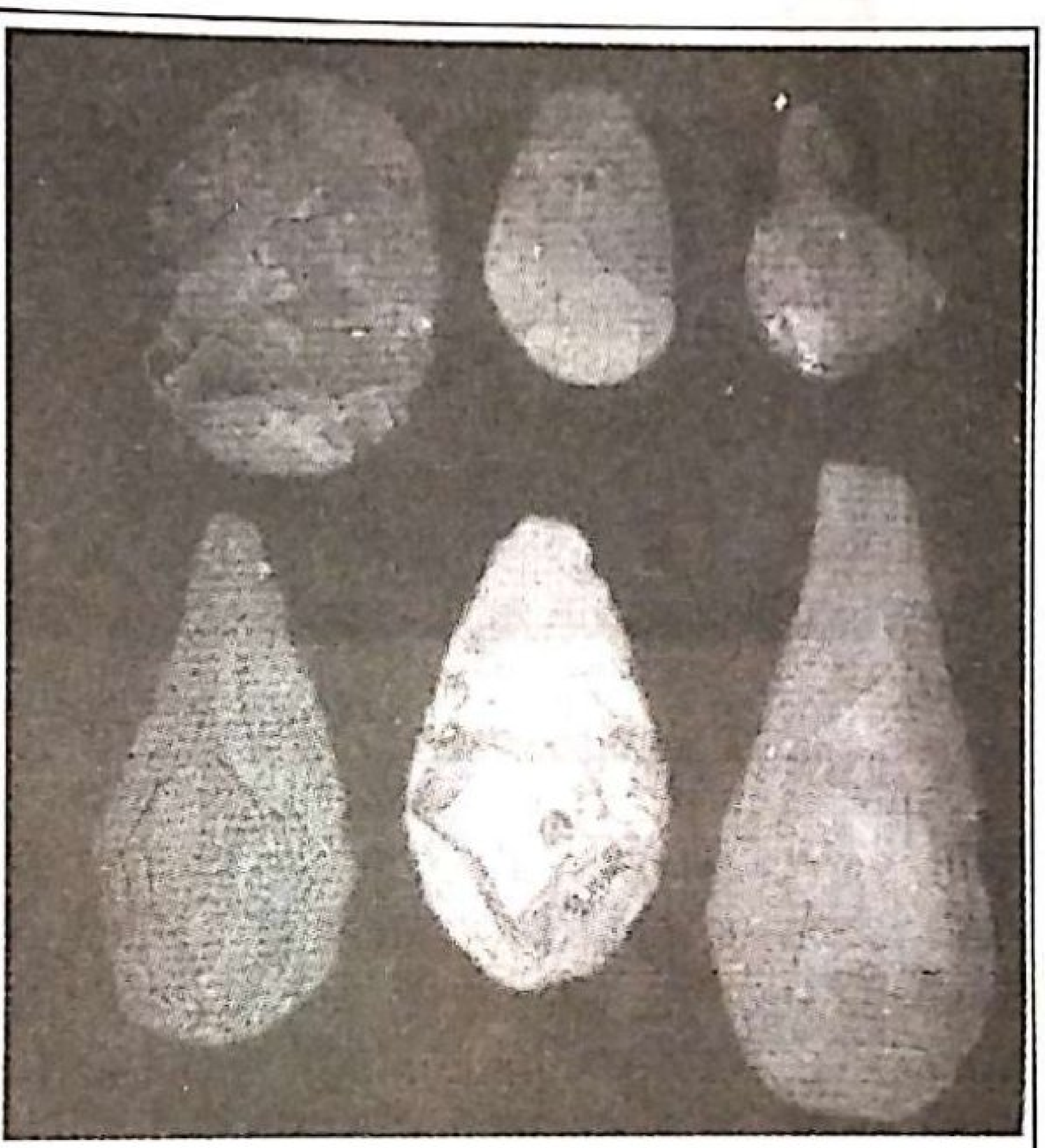

विकसित आशूलिया उपकरण चित्र सं. 45 ब

मध्य पुरा पाषाण काल के उपकरण पटपरा जमाव के अतिरिक्त लगभग 84 पुरास्थलों से भी प्राप्त हुए हैं जिनमें से कम से कम 23 उद्योग स्थल हैं। ये अधिकांशतया सोन नदी तथा विंध्यपर्वत माला के मध्यवर्ती कटक (Medial ridge) की ढाल से मिले हैं। उपकरणों में अधिकांश शर, छिद्रक, ब्लेड तथा विविध प्रकार के स्क्रेपर हैं। ये चर्ट तथा फ्लिण्ट प्रकार के पत्थरों पर निर्मित हैं। फलकों पर निर्मित उपकरणों की संख्या अधिक है।

यह उल्लेख्य है कि पटपरा जमाव से यद्यपि पशुवर्ग के जीवाश्मित अवशेष अधिक नहीं मिले हैं किन्तु उसके अन्तर्गत टूफा (Tufa) जमाव से वानस्पतिक अवशेष, विशेषतः पत्तियों के काफी संख्या में प्राप्त हुए हैं। नकझर खुर्द तथा पटपरा के उत्खननों में भी मध्यपाषाण कालीन स्तर प्राप्त हुआ है।

उच्च पुरा पाषाण काल के उपकरण बघोर जमाव के निम्नवर्ती रूक्ष जमाव से तथा मध्य–कटक पर अवस्थित पुरास्थलों से प्राप्त हुए है। उच्चपुरापाषाण काल के 78 से अधिक पुरास्थल अभी तक प्रकाश में आ चुके हैं जिनमें से 39 उद्योग–स्थल हैं। उपकरण समुदाय में विविध प्रकार के स्क्रेपर, लम्बे तथा अपेक्षाकृत चौड़े ब्लेड, भूथड़े पार्श्वब्लेड, विशालकाय ल्यूनेट, शर, छिद्रक तथा ब्यूरिन विशेष उल्लेखनीय हैं। ब्लेडों की संख्या सबसे अधिक है। उपकरणों के निर्माण के लिए चर्ट तथा फ्लिण्ट् सदृश पत्थरों का उपयोग किया गया है। मध्यसोन घाटी में बघोर जमाव से बहुत अधिक संख्या में जीवाश्मित अवशेष मिले हैं। अनुमानतः इनकी संख्या 10,000 से अधिक होगी जो भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण कलकत्ता; जी0आर0शर्मा संग्रहालय, प्राचीन इतिहास विभाग, विश्वविद्यालय, इलाहाबाद तथा रींवा विश्वविद्यालय में संग्रहीत हैं। इनकी सबसे बड़ी संख्या जी0 आर0 शर्मा0 संग्रहालय में है। सोन तथा उसकी सहायक लगभग सभी नालों से जीवाश्म मिले हैं।

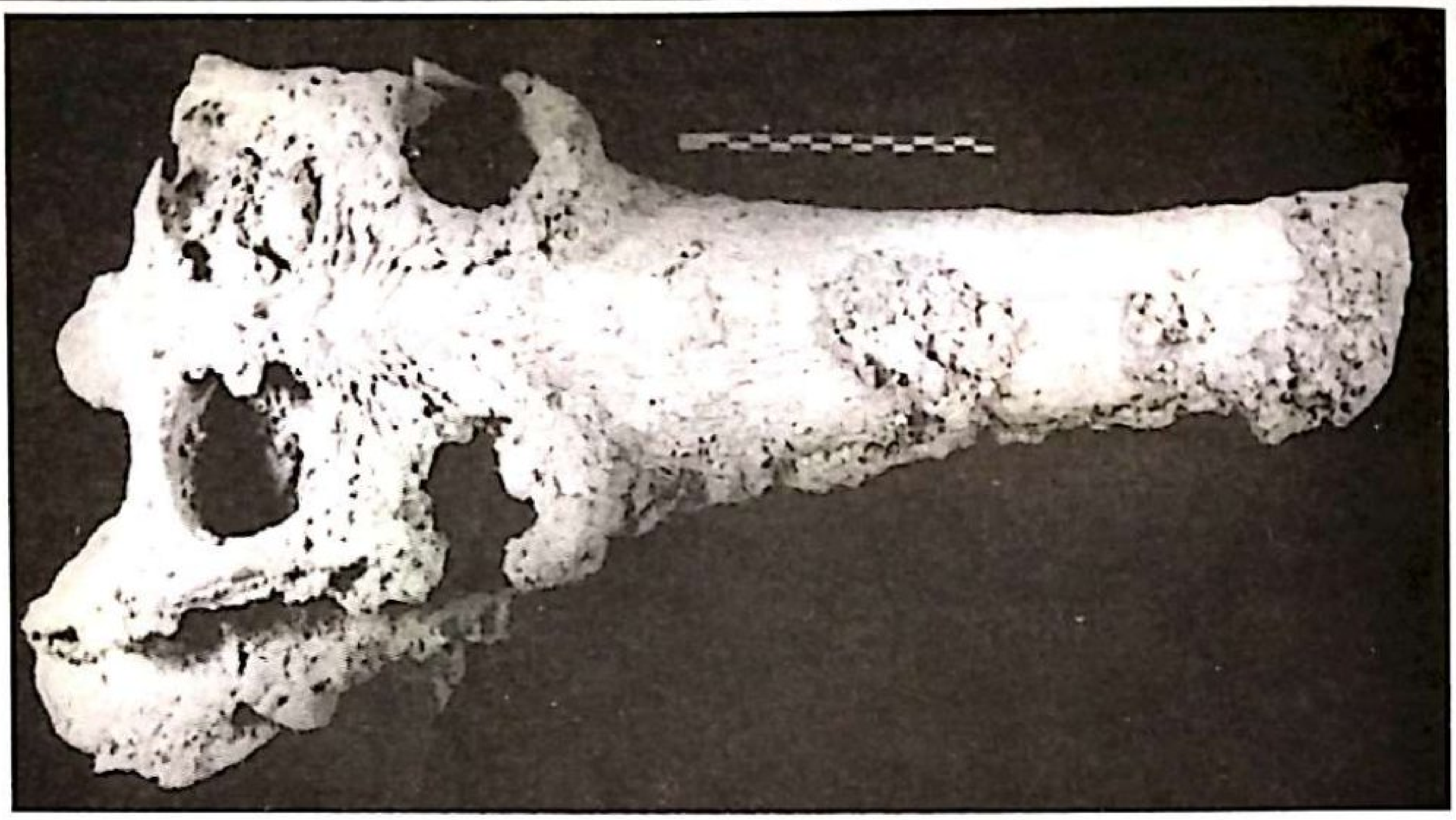

घवियालिस (Ghavialis), चित्र सं. 46

सोन घाटी की सबसे उल्लेखनीय उपलब्धि वहां के जीवाश्मित अवशेष हैं। उनमे रामनगर, मुड़वा, पवरिया, बघोर, लौवार आदि सबसे अधिक उल्लेखनीय हैं। जीवाश्म सहायक नालों में अधिक मिलते हैं। अभी तक जिन जानवरों के जीवाश्म मिले हैं वे इस प्रकार हैं बॉस (Bos), बाइसन (Bison), ब्यूवेलिस (Bubalis), हिप्पोपोटेमस (Hippopotamas), ईक्वस (Equus), घवियालिस (Ghavialis), ऐण्टिलोप (Antilop), सुस (Sus), एलीफस (Elephas), आदि। ये सभी उच्च प्रातिनूतनकाल से नूतनकाल के हैं। जीवाश्मों की बहुलता की दृष्टि से सोन घाटी नर्मदा घाटी से भी अधिक महत्वपूर्ण हो रही है।

## मैहर पुरास्थल

मैहर रीवां से 66 किलोमीटर दूर रीवां–जबलपुर मार्ग पर स्थित है। मैहर–देवी की पहाड़ी के दक्षिण–पश्चिम में विंध्य पहाड़ियाँ अर्धवृत्ताकार में स्थित हैं। इस क्षेत्र में पानी का निकास लिलजी नदी के द्वारा होता है जो स्वयं टोंस की सहायक है तथा मन्दिर के दक्षिण में होकर बहती है। मन्दिर के उत्तर में भी एक नाला है जो वास्तव में लिलजी का ही सहायक है। नदी इस समय शेल (Shale) पर बह रही है। नदी पर जो अनुभाग सुरक्षित हैं वे भी शेल की आधारशिला पर ही स्थित हैं। नीचे से ऊपर की ओर निम्न जमाव–क्रम मिलता है। शेल के ऊपर विशालकाय प्रस्तर पिण्ड का निक्षेप है। यह उल्लेखनीय है कि यह तरंगित (Undulating) है। इसकी औसत मोटाई एक मीटर है। इस जमाव के ऊपर 1.5 मीटर मोटा गहरा भूरा सिल्ट जमाव है जिसमें शेल के टुकड़े हैं। इसके ऊपर पीले सिल्ट का जमाव है जिसके नीचे के भाग में कंकड़ का एक संस्तर है। इसकी औसत मोटाई 2.5 मीटर है। इसके ऊपर काले रंग का एक 2 मीटर मोटा जमाव है। सबसे ऊपर का जमाव लाल सिल्ट का है जिसमें पत्थर के टुकड़े मिले हैं।

Scanned with OKEN Scanner

मिश्र तथा पाण्डे विशाल प्रस्तर पिण्ड जमाव को बेलन तथा सोन नदी के प्रथम ग्रैवेल के अनुरूप बताते हैं। यह उल्लेखनीय है कि अभी तक इस स्थल में कवेल निम्न पुरापाषाणकाल तथा मध्य पाषाणकाल के ही उपकरण प्राप्त हुए हैं। निम्न पुरापाषाणकाल के उपकरण केवल उन्हीं स्थलों पर मिलते हैं जहां शेल के ऊपर का जमाव हट गया है। चूंकि एक ही स्थल पर निर्माण की विविध अवस्थाओं में फलक तथा उपकरण मिलते हैं, इसलिए यह अनुमान किया जा सकता है कि प्रागैतिहासिक मानव इन्हीं स्थलों पर उपकरणों का निर्माण करता रहा होगा। अधिकांश उपकरण एकदम ताजे हैं तथा उनका स्थानान्तरण भी नहीं हुआ है।

प्रारम्भिक सर्वेक्षण में कुल 430 उपकरण प्राप्त हुए थे। वे इस प्रकार है :

| | | |
|---|---|---|
| कोर | 40 | 9.3% |
| फलक | 78 | 18.2% |
| अपशिष्ट फलक | 98 | 22.8% |
| हैण्डैक्स | 55 | 12.8% |
| हैण्डैक्स टूटन | 7 | 1.6% |
| क्लीवर | 120 | 27.9% |
| क्लीवर टूटन | 6 | 1.4% |
| स्क्रेपर | 26 | 6.0% |

फलकों को निकालने के लिए प्रस्तर–हथौड़ा पद्धति, निहाई पद्धति आदि का प्रयोग करते थे। कभी–कभी इच्छित आकार का फलक निकालने के लिए पहले के फलक चिन्ह को आघात–स्थल बनाते थे। उपकरणों के निर्माण में सोपानपद फलकीकरण प्रविधि का भी उपयोग किया जाता था। अधिकांशतया सभी उपकरण सुडौल तथा पतले अनुभाग के हैं। पेबुल उपकरण तथा रूक्ष, विशाल अवेवीलिया प्रकार के उपकरण नहीं हैं। मिश्र तथा पाण्डे के अनुसार इसे विकसित आशूलियाँ उद्योग के अन्तर्गत रखना चाहिए। उपकरणों के निर्माण के लिए प्रमुख रूप से क्वार्टजाइट का ही उपयोग किया गया है।

मिश्र तथा पाण्डे मैहर उद्योग को बेलन के प्रथम ग्रैवेल से प्राप्त उपकरणों के साथ रखते हैं, किन्तु इस सम्बन्ध में यह ध्यान देना आवश्यक है कि मैहर उद्योग में पेबुल उपकरण तथा अबेवीलियाँ प्रकार के उपकरण नहीं हैं। इसके अतिरिक्त इस उद्योग में हैण्डेक्स का भी अपेक्षाकृत अभाव है। बेलन घाटी में प्रथम ग्रैवेल से प्राप्त उपकरणों में पेबुल उपकरण और अबेबीलियाँ उपकरण भी विद्यमान हैं। इसके अतिरिक्ति उसमें क्लीवर की अपेक्षा हैण्डैक्स की ही बहुलता है, अत, मैहर उद्योग को बेलन उद्योग के केवल अन्तिम चरण के ही समकालीन रखा जा सकता है। इस प्रकार इसकी तिथि मध्य प्रातिनूतन काल के अन्तिम चरण अथवा उच्च प्रातिनूतनकाल के अन्तर्गत होनी चाहिए।

मैहर क्षेत्र 1 का वास्तविक महत्व वहां के उपकरण उद्योग में नहीं है।इस क्षेत्र के उद्योग–स्थलों की स्थिति इस प्रकार की है कि अनुमान किया जाता है कि यहाँ की पुरातात्विक सामग्री में स्थानान्तरण नहीं हुआ है। विंध्य की पहाड़ियाँ मैहर देवी के मन्दिर के दक्षिण के अर्धवृत्ताकार में स्थित है जो इस क्षेत्र की जल–विभाजक रेखा ( Water Shed) भी है। ऐसा प्रतीत

होता है कि प्रारम्भ में इस पहाड़ी के उत्तर का भाग एक छिछले परात के समान था जो धीरे–धीरे पहाड़ी पर से आयी हुई सामग्री से भर गया। वह क्षेत्र इस प्रकार पहाडी से घिरा है कि उसमें किसी दूसरे स्थल से कोई भी सामग्री नहीं आ सकती है। लिलजी नदी का अस्तित्व इस क्षेत्र के जल के निकास के लिए ही हुआ प्रतीत होता है। इस समय यह नदी पहले की भरी घाटी का निरावरण कर रही है। इसी के फलस्वरूप निम्न पुरापाषाणकाल के उद्योग–स्थल प्रकाश में आ रहे है। ऐसा प्रतीत होता है जिस समय यह घाटी भरी नहीं थी उसी समय शेल के ऊपर प्रागैतिहासिक मानव आकर बसा था तथा उसने अपने उपकरणों का निर्माण प्रारम्भ कर दिया था। यदि यहाँ पर उत्खनन किया जाए तो प्रागैतिहासिक मानव की जीवन–पद्धति के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सामग्री का संकलन हो सकता है, क्योंकि सामग्री का स्थानान्तरण नहीं हुआ है।

### उत्खनन 1987,1988 तथा 1991

इस क्षेत्र में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के जे0 एन0 पाण्डेय तथा जे0 एन0 पाल ने तीन सत्रों में (1987, 1988 तथा 1991) में चार विभिन्न क्षेत्रों में उत्खनन किया है, जिन्हें क्रमशः मैहर -I, मैहर -II, मैहर -III, तथा मैहर -IV कहा गया है। इनमें से मैहर-I से निम्न पुरा पाषाणिक, II और मैहर-III से मध्यपुरा पाषाणिक तथा मैहर-IV से उच्चपुरा पाषाणिक संस्कृतियों के अवशेष मिले हैं।

### मैहर–I

शारदादेवी मन्दिर तथा लिलजी नदी के मध्य में एक सपाट क्षेत्र है, उसमें उत्खनन स्थल, पहाड़ी से लगभग 700 मी0 पूर्व में तथा 170 मीटर नदी से पश्चिम में स्थित है। इस क्षेत्र का ढलान दक्षिण–उत्तर दिशा में है। इसके उत्तर में एक नाला है जो मैहर देवी के पहाड़ी से निकलकर लिलजी नदी में गिरता है। नाले के उत्तर में 864 वर्गमीटर का क्षेत्र उत्खनन के लिए चिन्हित किया गया जिसे 1 x 1 मी0 के वर्गों में विभाजित किया गया।

इनमें सर्वप्रथम SB-I तथा SC-I में नियंत्रण गर्त के रूप में 1.73 मी0 की अधिकतम गहराई तक खोदा गया जिसे तीन स्तरों में विभाजित किया गया।

उत्खनन के फलस्वरूप पाँच प्रमुख जमावों को चिन्हित किया गया। सबसे निम्नवर्ती जमाव (3) के दो उपविभाग थे (3) तथा (3A) दोनो में ही उपकरण मिले थे। जमाव (3A) 20-40 से0मी0 मोटा था, जो चितकबरी मिट्टी से निर्मित था तथा शेल की आधारशिला पर अवस्थित था। इसके ऊपर बालुकाश्म तथा क्वार्टजाइट के बड़े–बड़े बोल्डर भी थे। इस स्तर से नवनिर्मित उपकरण प्राप्त हुए थे।

इसके ऊपर का जमाव जिसे लेयर (3A) कहा गया है, पीली गाद मिट्टी का 13 से 26 से0मी0 मोटा जमाव था। इसमें लैटेराइट की गोलियाँ तथा शेल के टुकड़े भी मिश्रित रूप से मिले थे। इस जमाव से काफी संख्या में नवनिर्मित आशूलियन उपकरण प्राप्त हुए थे। ये सभी उपकरण स्वस्थानीय प्रतीत होते हैं।

इस लेयर के ऊपर (2A) का जमाव था जो 30 से 46 से0मी0 मोटा तथा पीली गाद मिट्टी से निर्मित था। इसमें लोहे के नोडूल तथा शेल के टुकड़े भी मिश्रित रूप में मिलते हैं। लेयर (2) तथा (2A) जमाव से कोई भी उपकरण नहीं मिले। वास्तव में यही आशूलियन संस्कृति के लेयर को आच्छादित करती है।

लेयर (2) के ऊपर लेयर (1A) का लाल रंग जमाव था जिसकी औसत मोटाई 5 से0मी0 थी।

Scanned with OKEN Scanner

इसमें भी शेल तथा पत्थर की चिप्पियाँ थी।

सबसे ऊपरवर्ती जमाव लेयर (1) का था। यह 22 से 25 से0मी0 मोटा लाल रंग के गाद मिट्टी का जमाव था जिसमें शेल, लोहे के नोडूल आदि भी मिश्रित थे। यह जमाव निश्चित रूप से बहकर तथा वायु के द्वारा एकत्रित हुआ था।

सभी उपकरण क्वार्टजाइट के है, केवल कुछ में बालुकाश्म का प्रयोग किया गया है। क्लीवर तथा हैण्डऐक्स के अतिरिक्त फलक, कोर आदि भी मिले हैं। इनके साथ एक पत्थर का चक्र (Disc) मिला है जिसके किनारे पर एकान्तर फलकीकरण किया गया है। उत्खनन कर्ताओं की धारणा है कि यह कोई कलात्मक वस्तु होगी।

तीन सत्रों में 393 वर्गों का उत्खनन किया गया था।

उत्खनन के द्वारा तत्कालीन मानव के क्रिया कलापों को जानने का प्रयास किया गया था, जिसके फलस्वरूप उद्योगस्थल पर निहायी के पास, हथौड़े तथा निर्माण की विविध अवस्थाओं में उपकरण मिले थे। एक निहायी 44 × 36 से0मी0 थी। इनके अतिरिक्त कुछ अर्धवृत्ताकार संरचनायें बड़े पत्थरों के टुकड़ों से बनी मिली थी। सम्भवतः ये क्षेत्र निवास के लिए थे।

## दमोह क्षेत्र

मध्य प्रदेश के दमोह क्षेत्र में जोशी का सर्वेक्षण उल्लेखनीय है (जोशी, आर0बी0 1961, स्टोन एज इण्डस्ट्रीज आफ दी दमोह एरिया, मध्य प्रदेश, एन्शिएण्ट इण्डिया, नं0 17, पृ. 4–37)। इस क्षेत्र में उन्होंने सोनार, कोपरा तथा बेरमा नदी की घाटियों का सर्वेक्षण किया। ये केन नदी की सहायक हैं जो स्वयं यमुना की सहायक है।

## सोनार घाटी

रेहली, घोघरा, हरात (सोनार घाटी में) आदि स्थानों पर आधारशिला के ऊपर ग्रैवेल कांग्लोमरेट का जमाव है जिसकी मोटाई 4–10 फीट है और क्वार्टजाइट पेबुल सैण्डस्टोन तथा शेल से निर्मित है। इसके ऊपर की सिल्ट के जमाव के पूर्व ग्रैवेल का काफी उपरदन हुआ था। सिल्ट की मोटाई 10 से 25 फिट है। इस सिल्ट के ऊपर 1 से 3 फिट मोटा आधुनिक मिटटी का जमाव है।

रेहली नामक स्थान के निकट सोनार नदी पर लगभग पौन मील तक एक अपेक्षाकृत शिथिल सिमेण्टेड ग्रैवेल है जो कही कहीं पर 30 फिट मोटा है। कहीं कहीं नदी का पूरा अनुभाग इसी से निर्मित है। इसमें केवल पेबुल तथा बालू मिश्रित रूप से मिलते हैं। जोशी की धारणा है कि यह ग्रैवेल प्रथम ग्रैवेल से भिन्न है तथा इसका जमाव बाद में फैन ग्रैवेल (Fan Gravel) के रूप में हुआ है। उल्लेखनीय है कि इस ग्रैवेल में चर्ट के नोडूल भी हैं। सम्भवतः इसी स्तर से फलक, ब्लेड तथा स्क्रेपर आदि उपकरण भी मिलते हैं। इस प्रकार का ग्रैवेल जमाव नदी पर अन्यत्र भी मिला है।

निम्न पूर्वपाषाकाल के 114 उपकरोणें में 15 हैण्डैक्स, 6 अण्डाभ (Ovate) क्लीवर, 9 स्क्रेपर, 20 फलक, 40 कोर तथा कोर चॉपर प्राप्त हुए थे। उपकरण क्वार्ट जाइट के हैं। इन उपकरणो में 5 से 24 in-situ ग्रैवेल से प्राप्त हुए थे। प्रारूपात्मक दृष्टि से जो उपकरण ग्रैवेल से प्राप्त हुए हैं वे मध्य आशूलियाँ के समकक्ष रखे जा सकते हैं तथा जो सतह से एकत्रित कि गए हैं वे अवेवीलियाँ से आशूलियाँ स्तर के है। इसके आधार पर जोशी की धारणा है कि सम्भवतः अविकसित उपकरण ग्रैवेल के निर्माण के पूर्ववर्ती हैं।

## ग्वालियर क्षेत्र

मध्य प्रदेश के निम्न पुरापाषाणकालीन उद्योगो का जो विवरण अभी तक प्रस्तुत किया गया है वह प्रमुखतया दक्षिणी भागों का ही है। उत्तरी मध्य प्रदेश इस दृष्टिकोण से अपेक्षाकृत अछूता ही है। 1964 तथा उसके बाद से लाल तथा उनके सहयोगियों ने ग्वालियर तथा निकटवर्ती क्षेत्रों मे अनके स्थलों को खोजा है ( इण्डियन आर्क्यालजी ए रिव्यू, 1968–69, पृष्ठ 11,)। कालान्तर मे लाल, नौटियाल तथा उनके सहयोगियों ने ग्वालियर क्षेत्र मे अन्य महत्वपूर्ण स्थलों को खोज निकाला ( लाल, बी0बी0 ऐण्ड नौटियाल, के0पी0, 1974, लोअर ऐण्ड मिडिल पेलियोलिथिक इण्डस्ट्रीज इन ग्वालियर,–साइक्लोस्टाइल्ड कॉपी, सेमिनार इण्डियन प्रीहिस्ट्री, 1974 पूना)।

इनमें सबसे महत्वपूर्ण गुप्तेश्वर हैं यह नगर के पश्चिम मे लगभग तीन किलोमीटर पर स्थित है। यहॉ पर निम्न पुरापाषाणकालीन उपकरण सर्वेक्षण के दौरान मे पृथ्वी की सतह पर से एकत्रित किए गए थें। उनके वास्तविक स्तरों को समझने के लिए लाल, नौटियाल तथा उनके सहयोगियों ने वहाँ उत्खनन भी किया है।

गुप्तेश्वर टिगरा डैम के रास्तें मे एक पहाड़ी है। यहाँ उत्खनन के लिए तीन खनतियाँ – प्रथम स्तर, द्वितीय स्तर तथा तृतीय स्तरों पर डाली गई। प्रथम स्तर (Level 1) आमरा पहाड़ पर सबसे ऊचें चौरस स्थल पर स्थित है। इसकी ऊंचाई समुद्र तल से 1,011 से 1,045 फीट पर है। द्वितीय स्तर (Level 2) प्रथम स्तर से 150 फीट नीचे स्थित है। तृतीय स्तर (Level 3) दूसरे से 100 फीट नीचे है। द्वितीय स्तर से तृतीय स्तर तक एक 160 मीटर लम्बी खनती उत्खनन के लिए लगायी गयी तथा इसे 16 बराबर भागों में विभाजित किया गया था।

उतखनन के फलस्वरूप विभिन्न स्तरों पर निम्न जमाव–क्रम दृष्टिगोचर हुए:

**स्तर 1 (Level 1)**

इस स्त्र पर अधिकतम गहराई 0.28 से 0.33 मीटर है। ऊपर से नीचे जमाव क्रम इस प्रकार है।

1. ह्यूमस जमाव
2. लाल बालुई मिट्टी
3. गोलाकार पेबुल (निम्न पूर्वपाणाकालीन उपकरणो का स्तर)
4. लैटेराइट का पतला–जमाव
5. बालुकाश्म आधार शिला

**स्तर 2 (Level 2)**

इस स्तर का जमाव 1–2 मीटर मोटा था तथा उपकरणो का स्तर .50 से .70 मीटर थां इस स्तर से प्रथम की अपेक्षा अधिक उपकरण प्राप्त हुए थे।

**स्तर 3 (Level 3)**

इसका उतखनन 1.65 मीटर तक हुआ था। सबसे ऊपर ह्यूमस (Humus) जमाव थां उसके नीचे काली मिट्टी का जमाव थां जिसमे चौड़ी–चौड़ी दरारें थी। काली मिट्टी के नीचे कैलकेरियस ग्रैवेल का जमाव था। इसमें मध्य पूर्वपाषाणकाल के उपरकण मिले हैं। सबसे नीचे विगलित जेनिसिक आधारशिला थी।

## निम्न पुरापाषाणकालीन उद्योग

तीनों स्तरों से 1,000 से अधिक उपकरण प्राप्त हुए थे। उन उपकरणों मे परस्पर प्रारूपात्मक सम्बंध प्रतीत होता है। लगभग सभी उपकरण क्वार्टजाइट के बने हैं। कोर, हैण्डैक्स, क्लीवर, स्क्रेपर तथा ब्लेड के अतिरिक्त अत्यधिक संख्या अपशिष्ट फलकों (Waste Flakes) आदि की थी। जो इस स्थल के उद्योग–स्थल होने का संकेत करते हैं।

प्रथम स्तर से प्राप्त उपकरण बहुत अधिक रासायनिक रंगाई से युक्त है। स्क्रेपर के अतिरिक्त in-situ स्थिति मे कोई दूसरा उपकरण प्राप्त नही हुआ था। स्क्रेपर अपेक्षाकृत छोटे आकार के हैं। इनके चार प्रकार–पार्श्व (Side), अन्त (End), गोलाकर (Round) तथा सीधा (Straight) - मिलते है। अन्तिम प्रकार विशेष उल्लेखनीय है, क्योंकि इसका कार्यांग सीधा है तथा उसके समन्तान्त पर कॉर्टक्स विद्यमान है। लाल तथा नोटियाल'( लाल बी0बी0 ऐण्ड नौटियाल, के0पी0, 1974 पार्श्वोद्धरित, पृ08 ) की धारणा है कि इसे चॉपिंग उपकरण कहना अधिक उचित होगा।

दूसरे स्तर के उपकरण भी क्वार्टजाइट के हैं, किन्तु वे कम घिसे हुए तथा पैटीनेटेड हैं। उपकरण निर्माण मे कोर तथा फलक दोनों का प्रयोग किया गया है। इस स्तर मे हैण्डैक्स की संख्या अन्य उपकरणों की अपेक्षा बहुत कम है। क्लीवर काफी संख्या मे मिले है। वे विवध प्रकार के हैं तथा अधिकांश अन्तफलको पर बने हैं। इनमे से एक क्वीवर विशेष उल्लेखनीय है जो लेवालेवा फलक पर निर्मित है तथा अन्त अशूलियाँ का प्रतीत होता है।

इनके अतिरिक्त बालुकाश्म के लम्बे ब्लेड भी उल्लेखनीय हैं जो Rr.I तथा 11 से मिले हैं और निम्न पूर्वपाषाणकालीन उद्योग से सम्बंधित हैं। इस प्रकार के ब्लेड अन्त सोहन तथा छौन्तरा से भी प्राप्त हुए थे। इनके साथ कुछ बहुत छोटे आकार के हैण्डैक्स जिन्हें खिलौना प्रकार (Toy-type) भी कहा है, प्राप्त हुए थे। इनका क्या उपयोग था स्पष्ट कहना कठिन है। सम्भवतः ये उपकरण निर्माण परम्परा मे परिर्वतन का द्योतन करते हैं। कठिन है। सम्भवतः ये उपकरण निर्माण परम्परा मे परिर्वतन का द्योतन करते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

## भीम बैठका

मध्य प्रदेश के निम्न पूर्वपाषाणकाल का कोई भी विवरण भीम बैठका के वृत्तान्त केअभाव मे अपूर्ण है। यह एक पहाड़ी का नाम है जो लगभग एक किलोमीटर लम्बी पूर्व–पश्चिम, आधा किलोमीटर चौड़ी उत्तर दक्षिण तथा लगभ 100 मीटर निकटवर्ती मैदानों से ऊँची है। इस पहाड़ी मे कई सौ गुंफाएँ हैं जिनमें से अनके चित्रित भी है। यह पहाड़ी विंध्य पर्वतमाला मे भोपाल से 45 किलोमीटर दक्षिण मे रायसेन जिले के मियाँपुर गॉव से 2 किलोमीटर दक्षिण–पश्चिम मे स्थित है।

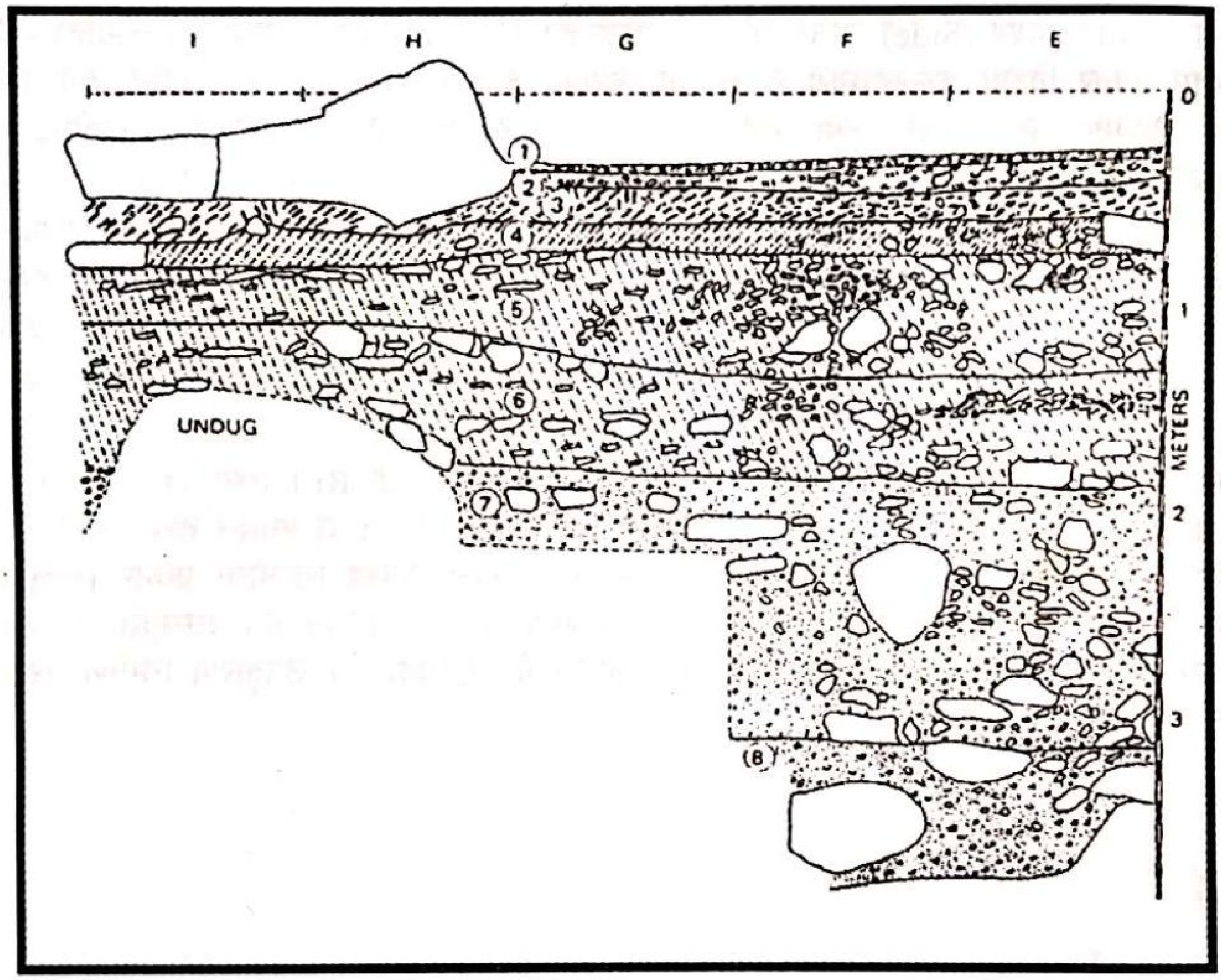


भीम बैठका III F.23 के उत्खनन का अनुभाग चित्र सं0–47

इस गुहा–समूह को प्रकाश मे लाने का श्रेय विक्रम विश्वविद्यालय के वी0 एस0 वाकणकर को है। इन्होनें ही सर्वप्रथम 1972 में यहाँ की एक गुहा मे उत्खनन करवाया था जिसके फलस्वरूप उन्हे आशूलियाँ स्तर प्राप्त हुआ। 1973 से वी0एन0 मिश्र ने यहाँ पर उत्खनन करवाया। भीम बैठका पहाड़ी के चार (III F-245,A-29, IIIA-30 तथा F-23) शिलाश्रयों से अभी आशूलियाँ उपकरण उपलब्ध हुए हैं, किन्तु इनमे भी शिलाश्रय नं0 23 के ही सम्बंध मे ज्ञात है ( मिश्र, वी0एन0 1974, दि आशूलियन इण्डस्ट्री एनालिसिस' साइक्लोस्टाइल्ड कॉपी, सेमिनार, इण्डियन प्रीहिस्ट्री 1974, पूना तथा पुरातत्व नं0 8, पृ0 13–36) इस शिलाश्रय का निकास दक्षिण की ओर है। शिलाश्रय के भीतर लगभग 32 वर्ग मीटर के क्षेत्र मे उत्खनन किया गया था। यहाँ का औसत जमाव 3.60 मीटर है। सारांश मे स्तर तथा संस्कृति–क्रम इस प्रकार है।

लेयर 1: मोटाई 5–10 से0मी0 है।यह हल्के पीले–भूरे रंग की बालुई मिट्टी जिसमें कभी–कभी कोणिक पत्थर (Angular Stones) भी है, से निर्मित हैं। इस जमाव मे चाल्सेडनी के ज्यामितीय लघुपाषाणोपकरण, क्वार्टजाइट के फलक, ब्लेड आदि, सिल, लोढ़े, पत्थर के बीड, सादी भूरी और लाल पाटरी से सम्बन्धित मिलते है।

लेयर 2 : मोटाई 10–25 से0मी0 है। यह पीले–भूरें रंग का (प्रथम लेयर से गाढ़ा) जमाव है। पाटॅरी के टुकड़े तथा बीड को छोडकर इसकी सांस्कृतिक सामग्री प्रथम के ही समान है। प्रस्तर उपकरण 1 की अपेक्षा अधिक हैं।

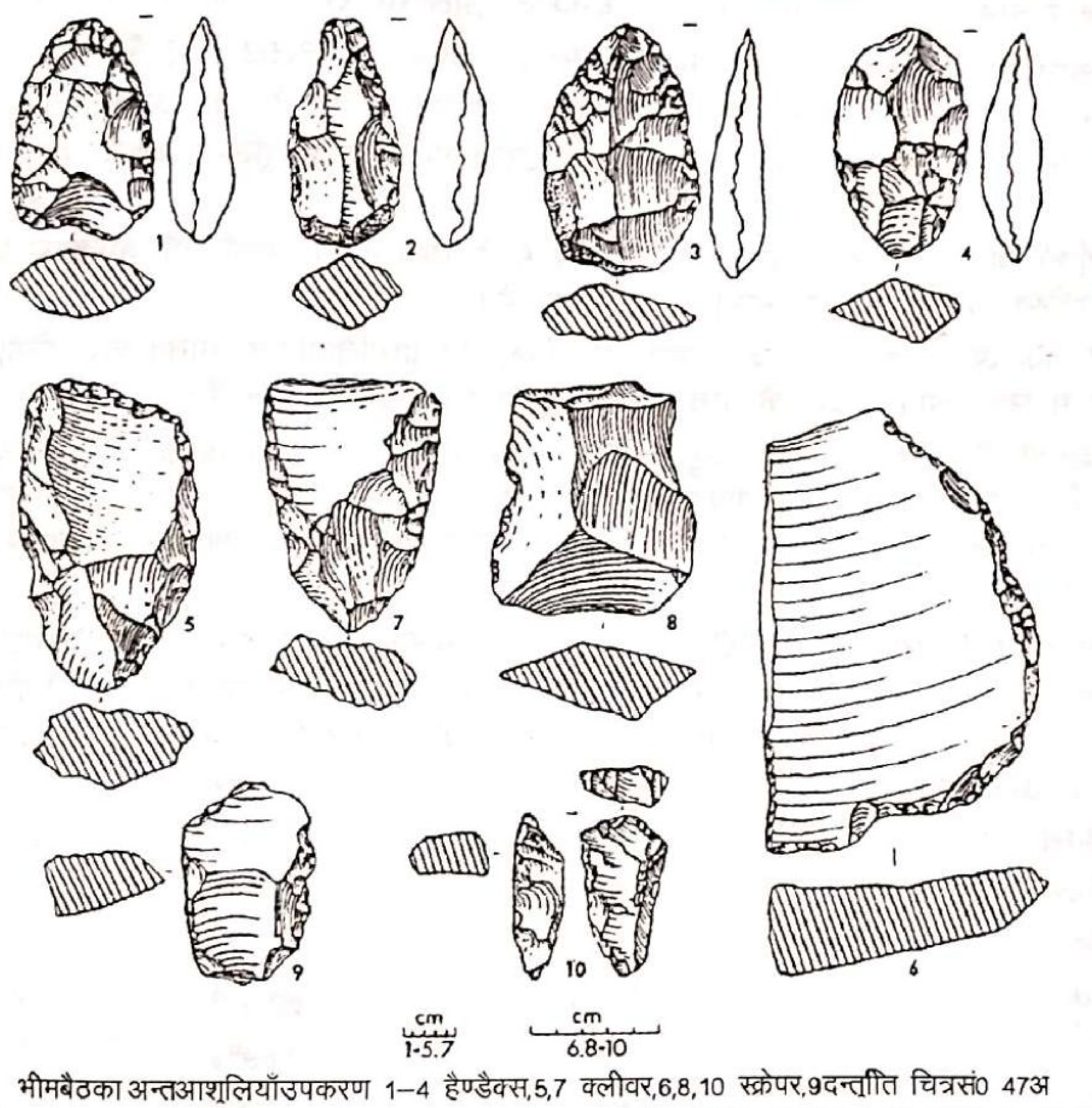


भीमबैठका अन्तआशूलियाँउपकरण 1–4 हैण्डैक्स,5,7 क्लीवर,6,8,10 स्क्रेपर,9दन्तुीत चित्रसं0 47अ

लेयर 3 : मोटाई 10–20 से0मी0 है। जमाव की मिट्टी हल्के भूरें रंग की है तथा इसमें अपेक्षाकृत बडे पत्थर के टुकडे है। शिलाश्रय के अन्दर की ओर रंग हलका हो जाता हे तथा पत्थर के टुकडो की मात्रा मे भी न्यूनता आ जाती है। लघुपाषाण उपकरणो की संख्या कम हो जाती है।लेयर 4 : यह 15–20 से0मी0 है। जमाव की मिट्टी हल्के भूरे रंग की है तथा इनमे अपेक्षाकृत बडे पत्थर के टुकडे है। इससे क्वार्टजाइट के फलक, ब्लेड, पार्श्व तथा अन्तस्क्रेपर तथा ब्यूरिन मिले हैं। जो मध्य पूर्वपाषाणकालीन अथवा उच्च पूर्वपाषाणकालीन उद्योग का निर्देश करते है।

लेयर 5 : मोटाई 40–50 से0मी0 है। यह हल्की ललाई लिए हुए भूरे रंग का जमाव है। इसमें कोणिक तथा अन्य प्रकार के पत्थर के टुकड़े पहले की अपेक्षा अधिक है। इसमे भी विविध प्रकार के पार्श्व स्क्रेपर, अन्तस्क्रेपर, लेवालवा फलक, ब्लेड तथा कभी–कभी हैण्डैक्स और क्लीवर नीचे 10 से0मी0 तक के जमाव मे मिलते हैं। उत्खननकर्ता इसे मुस्तेरियाँ उद्योग कहते हैं। इसे माध्य पूर्वपाषाणकालीन कहा गया है।

लेयर 6 : मोटाई 80–90 से0मी0 है। यह जमाव 5 के ही समान है, किन्तु यह अधिक ठोस तथा लाल है। इसमें अन्त आशूलियाँ उद्योग मिला है।

लेयर 7: यह 90–100 से0मी0 है। यह चमकीले लाल भूरे रंग का जमाव है। इनमें भी अन्त आशूलियाँ उद्योग के उपकरण मिले हैं। उपकरण ı ललाई लिए हैं।

लेयर 8: यह 80–90 से0मी0 मोटा जमाव है तथा रंग नारंगी है। यह अपेक्षाकृत कम ठोस है। उपकरण पीले रंग के हैं तथा बहुत कमजोर है। इसमें भी अन्त आशूलियाँ प्रकार के उपकरण प्राप्त हुए हैं।

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि लेयर 6. 7 तथा 8 से आशूलियाँ उपकरण प्राप्त हुये थे तथा सम्मिलित रूप से सब की मोटाई 2.40 मीटर है।

अभी तक अग्नि के प्रयोग के प्रमाण नही मिले हैं। प्रागैतिहासिक मानव उसे निवास के लिये भी प्रयोग मे लाता था। पत्थरों के पॉच फर्शों के निर्माण के प्रमाण मिले हैं।

उपकरणों के निर्माण के लिए प्रमुखरूप से ऑथोक्वार्टजाइट (Orthoqurtzite) का प्रयोग किया गया है। हैण्डैक्स तथा क्लीवर विशेषतः बैगनी अथवा गहरे भूरें रंग के क्वार्टजाइट से बने है। अन्य सभी पीलापन लियें हुये क्वार्टजाइट से निर्मित हैं। लेयर 8 के उपकरणा को छोड़कर अन्य सभी देखने मे एकदम ताजे हैं।

उत्खनन के फलस्वरूप सम्मिलित रूप से 4,705 फलक एवं उपकरण आदि प्रकाश मे आये हैं इनमे 1,501 उपकरण एवं अन्य फलक आदि है। इससे यह अनुमान किया जाता है कि उपकरणों का निर्माण गुहा में ही किया जाता था। विभिन्न प्रकार के उपकरणों की संख्या इस प्रकार है।

| | | |
|---|---|---|
| फलक उपकरण | 1,332 | 28.10% |
| हैण्डैक्स | 33 | 0.70% |
| हैण्डैक्स टूटन | 11 | 0.23% |
| क्लीवर | 82 | 1.74% |
| फलक | 2,866 | 60.91% |
| कोर | 155 | 3.89% |
| अन्य | 183 | 3.89% |
| योग | 4,705 | 99.98% |

संराश मे भीम बैठका उद्योग मे क्लीवरों का बाहुल्य है तथा हैण्डैक्स अपेक्षाकृत कम है। मिश्र की धारणा है कि यह उद्योग आशूलियाँ परम्परा मे मुस्तेरियाँ के निकट है। आशूलियाँ जमाव के ऊपर की लेयर 5 मे उभयपक्षीय तत्व (Biface element) समाप्त हो जाता हैं इस प्रकार भीम बैठका उद्योग आशूलियाँ परम्परा के अन्त का निर्देश करता है।

Scanned with OKEN Scanner

## 23

# राजस्थान प्रदेश
## (Rajasthan Pradesh)

राजस्थान प्रदेश का निर्माण 1 नवम्बर 1956 को हुआ था। क्षेत्र–फ़ल की दृष्टि से यह भारत का सबसे बड़ा प्रदेश है। यह भारत के पश्चिमी भाग में स्थित है तथा थार का रेगिस्तान भी इसी के अन्तर्गत है। उत्तर–पश्चिम तथा दक्षिण–पश्चिम में यह पाकिस्तान के पंजाब तथा सिधं से घिरा है। उत्तर में भारत के पंजाब तथा हरियाणा प्रदेश तथा उत्तर–पूर्व में उत्तर प्रदेश, दक्षिण–पूर्व में मध्य–प्रदेश, दक्षिण–पश्चिम में गुजरात प्रदेश हैं। थार का रेगिस्तान तथा अरावली की पहाड़ियाँ दक्षिण–पश्चिम से उत्तर–पश्चिम दिशा में प्रदेश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाती हैं। इस क्षेत्र की प्रमुख नदी लूनी है जो अजमेर के अन्नासागर से निकलती है और लगभग पूरे मारवाड़ प्रदेश में बहने के बाद कच्छ की खाड़ी के निकट रेगिस्तान मे ही विसर्जित हो जाती हे। अरावली से आकर अनेक छोटी–छोटी नदियाँ इसमे मिलती हैं। इन सभी नदियों का रुख पूर्वोत्तर दिशा से दक्षिण–पश्चिम दिशा में है। घघ्घर नदी हरियाणा के आगे थार रेगिस्तान में समाप्त हो जाती है। पश्चिम का भाग मारवाड़ के नाम से विख्यात है। इसका अधिकांश भूमि–भाग रेगिस्तानी है। वर्षा 10" से भी कम होती है।

अरावली के दक्षिण पूर्व का भाग मेवाड़ के नाम से विख्यात है। यह क्षेत्र अपेक्षाकृत हरा–भरा और उपजाऊ है तथा बानस, बेराच, गम्भीरी तथा अन्य अनेक छोटी–छोटी नदियों से सिंचित है। इस सम्पूर्ण भाग का झुकाव दक्षिण–पश्चिम से पूर्वोत्तर दिशा मे है, फलतः ये नदियॉ भी उसी दिशा मे बहती है और इन सबका पानी चम्बल मे गिरता है जो स्वयं यमुना की सहायक है। इस प्रकार इस सम्पूर्ण क्षेत्र का पानी गंगा के द्वारा बंगाल की खाडी मे गिरता है।

मारवाड प्रदेश जहाँ पर आज विस्तृत रेगिस्तान है प्राचीन काल मे ऐसा नही था। ला टूश (La Touche) का विचार है कि यह कल्पना करने मे किंचित मात्र कठिनाई नही है कि प्राचीनकाल मे यह प्रदेश अनेक नदियों तथा उपजाऊ घाटियों से युक्त था (ला टूश, जी0टी0डी0 1902. जिऑलजी ऑफ वेस्टर्न राजपूताना' मेम्वायर्स ऑफ दि जियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, वालयूम XXXV, भाग 1)। लगभग दो सहस्त्राब्दी ईसा पूर्व में इस प्रदेश के हरप्पन संस्कृति के अनेक आवास विलुप्त सरस्वती नदी के तट पर थे (घोष, अमलानन्द, 1952 दि राजपूताना डेजर्ट–इट्स आर्क्येलाजिकल ऐसपेक्ट, बुलेटिन ऑफ दि नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑव साइन्सेज ऑव इण्डिया नं. 1 )।

प्रातिनूतन काल मे भी यह प्रदेश रेगिस्तान नही था। निश्चय ही यहॉ पर भी पाषाणकालीन मानव के अनेक उद्योग–स्थल रहे होंगे। यह प्रदेश उत्तर तथा दक्षिण के आवागमन के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण रहा होगा। किन्तु कालान्तर में, जलवायु परिर्वतन के फलस्वरूप, रेगिस्तानी प्रदेशो के विकास के साथ–साथ मानव के प्राचीन निवास–स्थान भी बालू के जमावों के अन्दर विलीन हो गये। कुछ काल पूर्व तक इसके सम्बंध मे कुछ कहना कठिन था, किन्तु वरिधानी ($27^0$.20. 00"N,$72^0$.18.45") ( मोहपात्र, जी0 सी0 भाटिया एस0वी0 तथा साहू0 वी0के0 1963, दि डिसकवरी ऑफ ए स्टोन एज साइट इन दि इण्डियन डिजर्ट, रिसर्च बुलेटिन एन0एस0 पन्जाब यूनिवर्सिटी, वाल्यूम 14 पार्ट II पृष्ठ 215–223 दिसम्बर, 1973) मे जोधपुर मे वाप के निकट एक मध्य

पुरापाषाणकालीन उद्योग–स्थल के प्रकाश में आने से इस धारणा को और पुष्टि मिली है। खेद का विषय है कि जहाँ मध्य पुरापाषाणकाल के अनके उद्योग–स्थल इस सम्पूर्ण प्रदेश मे विशेषतः लूनी ( मिश्र, वी0एन0 1961, दि स्टोन एज कलचर्स ऑफ राजपूताना, थीसिस अप्रकाशित, पूना विश्वविद्यालय) तथा उसकी सहायक नदियों की घाटियों में मिले हैं। वहाँ निम्न पुरापाषाण काल के उद्योग–स्थल नगण्य हैं।

निम्न पुरापाषाणकालीन उद्योग की दृष्टि से राजस्थान का दक्षिण–पूर्वी प्रदेश विशेष रूप से चम्बल, बेराच, गम्भीरी आदि की घाटियाँ विशेष महत्वपूर्ण है। पिछली शताब्दी मे सी0ए0 हैकेट (ब्राउन, जे0सी0 1817 कैटेलाग ऑव प्रीहिस्टारिक ऐण्टीक्यूटीज इन दि इण्डियनू म्यूजियम, पृ0 66–67 प्लेट ए चित्र 3,6,7) को पूर्वी राजस्थान से एक आशूलियाँ हैण्डैक्स प्राप्त हुआ था। उसके बाद 1935–54 से भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के एस0 आर0 राव (इण्डियन आर्क्यालजी–ए रिव्यू, 1953–54 पृ0 37 1954–55 पृ0 58; 1955–56 पृ0 68) ने प्रागैतिहासिक उद्योग–स्थलों का अनुसंधान प्रारम्भ किया था। इनके बाद अनेक और विद्वानों ने भी इस क्षेत्र मे कार्य किया (इण्डियन आर्क्यालजी–ए रिव्यू, 1955–56, पृ0 68 1956–57 पृ08)। राव को मद्रासीय हैण्डैक्स–क्लीवर तथा सोहन चॉपर–चॉपिंगोपकरण दोनो ही प्रकार के उपकरण मिश्रित रूप से प्राप्त हुये थे। उनकी धारणा थी कि यहाँ के सर्वेक्षणों से सोहन तथा मद्रास परम्परा के पारस्परिक सम्बंध पर प्रकाश पड़ सकता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होने चम्बल घाटी मे तथा भेसरोरगढ पर सीमित उत्खनन भी किया (इण्डियन आर्क्यालजी–ए रिव्यू, 1956–57, पृ05)। सोनिता मे उन्हें 4 फीट मोटा कांग्लोमरेट तथा उसके ऊपर एक ग्रैवेल जमाव मिला था। कांग्लोमरेट से उन्नीस उपकरण–तीन चॉपर, बार क्लवीर, आठ स्क्रेपर एक अण्डाभ Ovate तथा तीन अस्पष्ट आकार (Indetrminate shape) मिले थें ग्रैवेल जमाव से चॉपर तथा लेवालेवा फलकों के साथ विविध प्रकार के स्क्रेपर भी प्राप्त हुए थे। इस जमाव से चॉपर तथा आशूलियाँ हैण्डैक्स नही मिले थे।

भेंसरोरगढ़ मे दो स्थानों से उपकरण उपलब्ध हुये थे। दोनों ही स्थानों पर निम्नतर स्तर पर कांग्लोमरेट का मोटा जमाव था, उसके ऊपर ग्रैवेल तथा रूपान्तरित शेल (Metamorphosed shale) का पतला जमाव था। सबसे ऊपर कोणयुक्त पेबुल तथा मोटे बालू से युक्त ग्रैवेल का मोटा जमाव था। कांग्लोमरेट का जमाव विगलित शेल (Decomposed shale) पर आधारित था। चुलियाफॉल (Chulia Falls) के द्वितीय वेदिका के समकालीन से उन्हें एक चॉपर, सात हैण्डैक्स, पॉच क्लीवर, नौ स्क्रेपर और दो चक्र स्क्रेपर (Discoid) प्राप्त हुये थे। इसके अतिरिक्त सिरीज II मध्य पुरापाषाणकाल के चार फलकोपरकण भी मिले थे। राव की धारणा है कि मद्रास क उभयपक्षीय उपकरणों की अधिकता तथा सोहन चॉपरो की न्यूनता इस बात का निर्देश करती है कि क्रमशः सोहन परम्परा का अन्त हो रहा था ( इण्डियन आर्क्यालजी–ए रिव्यू, 1956, पृ0 5)।

कांग्लोमरेट के ऊपर की लेयर के आशूलियाँ शैली के एक हैण्डैक्स, एक क्लीवर तथा एक स्क्रेपर प्राप्त हुये थे। राव की धारणा है कि इसका तात्पर्य है कि इस स्तर पर पहुँचते–पहुँचते इस उद्योग का भी अन्त हो रहा था तथा उसका स्थान सीरीज II के उपकरण ले रहे थे। इसके ऊपर के जमाव से लेवालेवा फलक तथा ब्लेड–स्क्रेपर जो सीरीज II के अन्तर्गत आते हैं प्राप्त हुए थे (वही, पृ0 8) इनके अतिरिक्त चम्बल की घाटी मे राव ने अन्य निम्न पुरापाषाणकालीन स्थलों से भी उपकरणो का संग्रह किया था (वही, 1958–59 पृ0 27 तथा पृ0 72)। राव के संग्रह तथा उद्योग–स्थालों का परीक्षण इतना सीमित था कि उसके आधार पर विशेष निष्कर्षो की निकालना अनुचित होगा।

Scanned with OKEN Scanner

राव के अतिरिक्त इस क्षेत्र मे खत्री (खत्री, ए0पी0 1958 ''दि स्टोन एज टूल्स आंव दि गम्भीरी बेसिन'' जर्नल यूनिवर्सिटी आंव बाम्बे ) ने भी कार्य किया था। वी0एन0 मिश्र ( मिश्र, वी0एन. 1961, दि स्टोन एज कल्चर्स आव राजपूताना, थिसिस (अप्रकाशित), डेकन कालेज तथा पूना विश्वविद्यालय ) ने इस स्थान का सर्वेक्षण बहुत सूक्ष्म रूप से किया है। कालान्तर मे इसकी विस्तृत रिपोर्ट भी प्रकाशित हुई (1967, प्री ऐण्ड प्रोटो हिस्ट्री ऑव दि बेराच बेसिन, साउथ राजस्थान, डेकन कालेज, पूना, 1967)।

## बेराच घाटी (Berach Valley)

बेराच नदी उदयपुर के उत्तर मे अरावली की पहाडियो से निकलती है। अरावली की पहाडियाँ से होते हुय उदयपुर के पूर्व मे कुछ किलोमीटर तक आकर दिल्ली शैल समूह के ऊपर से होते हुये तीस किलोमीटर तक ग्रेनाइट के सख्त सपाट भूमि पर बहती है। पहाड़ों पर इसका ढाल (Gradient) अपेक्षाकृत बहुत अधिक है। उदयपुर के निकट बोल्डर तथा पेबुल का विस्तृत तथा मोटा जमाव है। नदी का तल प्रायः छिछला है। बेराच की अन्य प्रमुख सहायक नदियाँ बागन, गम्भीरी, कादमली आदि हैं। बागन नदी बडी सदरी के निकट अरावली से निकलती है और हजिया खेड़ी के निकट बेराच से मिलती है। बागन के समान गम्भीरी भी दक्षिण से उत्तर की दिशा में बागन के ही सभानान्तर बहती है तथा सिरडी के निकट बेराच से मिलती है। कादमली अपेक्षाकृत बहुत छोटी नदी है। यह छोटी सदरी के निकट पहाड़ों से निकलती है और तथा निम्बहेरा से लगभग आठ किलो मीटर उत्तर पूर्व में गम्भीरी नदी से मिलती है।

बेराच नदी के किनारें का व्यवस्था अनुभाग ¼Schematic section½ नीचे से ऊपर की ओर (मिश्र, वी0एन0, 1967, पार्श्वोद्धरित, पृ0 7–12) इस प्रकार है:

1. आधारशिला के ऊपर चितकबरी मिट्टी का जमाव है। इसकी अधिकतम मोटाई 4.5 मीटर है। साधारण रूप से यह जमाव आधारशिला के विगलन (Decomposition) के कारण बना हुआ प्रतीत होता है, किन्तु कहीं–कहीं पर यह ग्रैवेल जमाव में अन्तर्निविष्ट (Intercalated) मिलता है। ऐसी स्थिति में यह नदीय जमाव (Fluviatile) सा प्रतीत होता है। इस जमाव से कोई भी उपकरण नहीं मिले हैं।

2. चितकबरी मिट्टी के ऊपर गोलाश्मों से युक्त ग्रैवेल (Bouldery gravel) अथवा पेबुल से युक्त सिमेण्टेड ग्रैवेल जमाव है। यह 0.3 से 5 मीटर तक मोटा है। कहीं–कहीं पर यह सिमेण्टेड नहीं है। इस जमाव से निम्न पुरापाषाणकालीन उपकरण प्राप्त हुए हैं।

3. सिमेण्टेड ग्रैवेल के ऊपर गाद मिट्टी का जमाव है जो हलके भूरे रंग का है। इसकी मोटाई 0.3 से 5 मीटर तक है। दोनों जमावों का अन्तर स्पष्ट है। इस जामव से भी कोई उपकरण प्राप्त नहीं हुआ है।

गम्भीरी नदी के किनारे भी लगभग इसी प्रकार का जमाव मिलता है। बागन तथा कादमली नदियों में इन तीन जमावों के अतिरिक्त दो और जमाव भी मिलते हैं जो क्रमशः इस प्रकार हैं।

4. चितकबरी मिट्टी के ऊपर महीन बालू तथा ग्रैवेल का जमाव है जिसकी मोटाई लगभग 1.50 मीटर है। बागन में कहीं–कहीं पर इन दोनों ग्रैवेल के बीच चितकबरी मिट्टी का जमाव नहीं मिलता है। इस जमाव से प्रायः निम्न तथा मध्य पूर्वपाषाणकालीन उपकरण मिलते हैं।

5. इस जमाव के ऊपर गाद मिट्टी (Silt) का जमाव है। इसकी औसत मोटाई 2 मीटर के लगभग है।

Scanned with OKEN Scanner

## प्रस्तर उद्योग

बेराच, गम्भीरी, बागन तथा कादमली नदियों की घाटियों से प्राप्त उपकरणों के सूक्ष्म परीक्षण से स्पष्ट है कि प्रथम तीन नदियों से प्राप्त उपकरण समुदायों में पारस्परिक समानता है, किन्तु अन्तिम अर्थात् कादमली नदी से प्राप्त उपकरण समुदाय भिन्न है। यह भिन्नता अधिकतम तथा न्यूनतम अनुपात की विषमता के अतिरिक्त उपकरण प्रकार में भी परिलक्षित है। प्रथम तीन में, उपकरणों में, हैण्डैक्स सबसे अधिक है, कादमली में कोर चॉपर/स्क्रेपर सबसे अधिक है तथा लेवालेवा प्रकार के फलकों, ब्लेड तथा डिस्क्वायडों का नितान्त अभाव है, जब कि अन्य में (बागन में

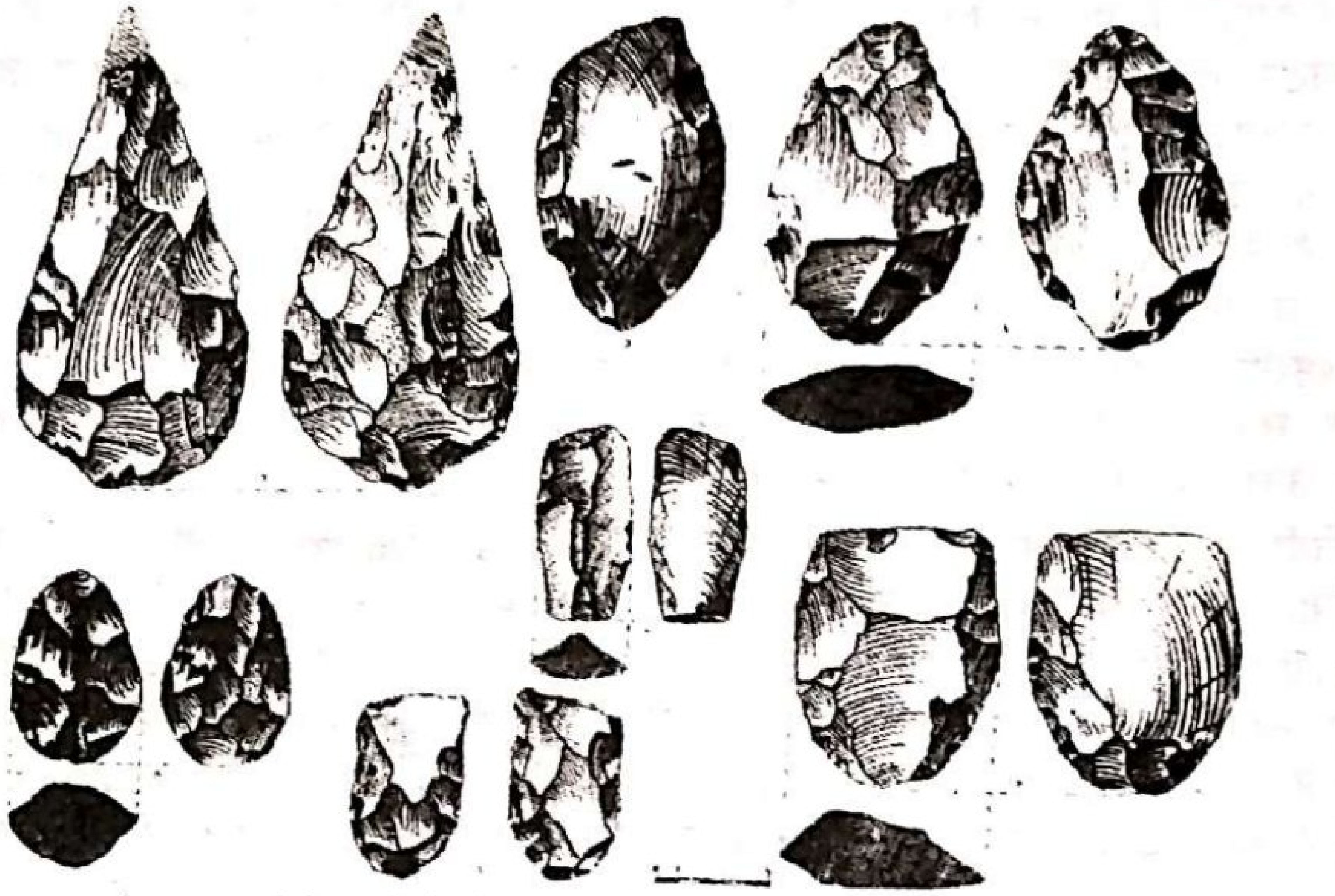

बेराच, गम्भीरी घाटियों के निम्नपूर्व पाषाणिक उपकरण चित्र सं0–48

ब्लेड नहीं है, किन्तु ब्लेड कोर हैं) उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त कादमली उद्योग में 7.89 प्रतिशत नोकदार उपकरण मिलते हैं, जबकि अन्य में इनका सर्वथा अभाव है। इस अन्तर का प्रमुख कारण यह भी हो सकता है कि कादमली का उपकरण समुदाय बहुत ही सीमित है (मिश्र, वी0एन, 1967, पार्श्वोद्धरित, पृ0 72)।

बेराच, गम्भीरी तथा बागन के उपकरण समुदायों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया गया है :–

1. कोर
2. फलक तथा ब्लेड
3. कोर चॉपर/स्क्रेपर
   क. एकपक्षीय
   ख. उभयपक्षीय
4. चक्राभ (Discoid)

5. हैण्डैक्स
6. क्लीवर

कोर : तकनीक के आधार पर कोर प्रमुख रूप से तीन प्रकार के हैं – प्रथम साधारण , दुसरे कच्छपकोर और तीसरे ब्लेड कोर, किन्तु दूसरे तथा तीसरे प्रकार के कोर नगण्य हैं। गम्भीरी से केवल एक लेवालेवा तथा बागन से एक ब्लेड कोर उपलब्ध हुआ है।

फलक : कोरों के अनुरूप तीन प्रकार के फलक भी हैं – साधारण , लेवालेवा तथा ब्लेड। ब्लेड की संख्या नगण्य हैं, किन्तु लेवालेवा प्रकार के फलक 3.10 से 4.24 प्रतिशत तक मिलते हैं।

स्क्रेपर : ये दो प्रकार के हैं – फलक स्क्रेपर तथा कोर स्क्रेपर। फलक स्क्रेपर के अन्तर्गत अन्त अथवा पार्श्व फलकों पर निर्मित स्क्रेपरों की गणना की गई है।

कोर चॉपर/स्क्रेपर विशेष उल्लेखनीय हैं क्योंकि ये प्रमुख रूप से पेबुल उपकरण हैं तथा मोवियस के चॉपर (सोहन) के समान हैं। इनमें दोनों ही प्रकार के – एकपक्षीय तथा उभयपक्षीय–उपकरण सम्मिलित हैं। इनको बनाने के लिए चिपटे आधार के तथा गोलाकार दोनों ही प्रकार के पेबुलों का प्रयोग किया गया है। एकपक्षीय स्क्रेपर प्रायः चिपटे आधार के पेबुलों पर ही बने हैं और उभयपक्षीय फलकीकरण प्रायः गोलाकार पेबुलों पर किया गया है।

यहाँ से प्राप्त कुछ चॉपर, तकनीक तथा स्वरूप दोनों ही दृष्टिकोणों से सोहन चॉपर तथा चॉपिंगोपकरण के निकटतम हैं। बेराच घाटी का DNT 18 चित्र नं0 61 इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। उनकी समानता इतनी अधिक है कि साधारणतया उन्हें अलग करना कठिन होगा। कोर चॉपर बेराच घाटी में 14.9% , गम्भीरी में 9.99% , बागन में 9.32% तथा कादमली में 31.58 प्रतिशत है। सभी स्थानों पर फलकों को छोड़कर हैण्डैक्स के बाद ये ही सबसे अधिक हैं। कादमली में इनकी संख्या हैण्डैक्स से भी अधिक है।

चक्राभ स्क्रेपर (Discoid) – ये आकार में छोटे, गोलाकार अथवा चक्राकार स्क्रेपर हैं जिन पर सभी ओर से केन्द्रोन्मुख फलक निकाले गये हैं।

हैण्डैक्स – सभी स्थलों (कादमली को छोड़कर जहाँ पर कोर चॉपर/स्क्रेपर अधिकतम है) पर उपकरणों में हैण्डैक्स की संख्या सबसे अधिक है। तकनीक के आधार पर मिश्र (मिश्र, वी0एन0, 1967, पाश्र्वोद्धरित)ने उन्हें तीन वर्गों में विभाजित किया है। प्रथम वर्ग के उपकरण प्रस्तर–हथौड़ा पद्धति से बने हैं। इनके आकार अस्पष्ट, फलकीकरण रूक्ष, सतह असमतल (Uneven) तथा बाह्य रेखा अनियमित है।

द्वितीय वर्ग के उपकरणों को देखने से प्रतीत होता है कि उन्हें बेलनाकार हथौड़ा पद्धति से बनाया गया है। उनका आकार सुडौल, फलक चिन्ह छोटे तथा छिछले, सतह पहले वर्ग की अपेक्षा कम असमतल तथा बाह्य रेखा नियमित है।

तृतीय वर्ग के उपकरण और अच्छे प्रकार से बने हैं। फलक चिन्ह छिछले, सतह एकरूप तथा बाह्य रेखा पूर्णरूपेण नियमित है।

ऊपर वर्णित तीनों वर्गों के हैण्डैक्सों को पुनः उनके आकार के आधार पर उपवर्गों में विभाजित किया गया है। उपकरणों के विवरण तथा उनके चित्रों को देखने से स्पष्ट है कि प्रथम वर्ग के उपकरण अविकसित हैं तथा अबेवीलियॉ प्रकार के उपकरणों की कोटि में रखे जा सकते हैं। इनमें से कुछ पेबुल पर बने हैं (चित्र 6, नं0 26, पृ0 31) तथा उन पर बहुत ही सीमित फलकीकरण हुआ है। इन्हें पेबुल समन्तान्त हैण्डैक्सों की श्रेणी में रखा जा सकता है। इन्हें आद्य हैण्डैक्स (Proto-handaxes) कहना भी अब अनुचित नहीं होगा।

Scanned with OKEN Scanner

..क्लीवर : ये प्रायः सभी स्थलों पर हैण्डैक्स तथा चॉपर/स्क्रेपर के बाद आते हैं। सभी स्क्रेपर अन्त अथवा पार्श्व फलकों पर बने हैं। इनमें से कुछ अन्तफलकों पर बने स्क्रेपरों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक है। गम्भीरी घाटी के कुछ क्लीवर लेवालेवा फलकों पर बने हैं, फलतः उनके ऊपर नाम मात्र को ही फलकीकरण मिलता है।

सभी स्थान के क्लीवरों को उनके समन्तान्त तथा कर्यांग के आधार पर पांच वर्गों में विभाजित किया गया है। प्रायः सभी क्लीवरों का समन्तान्त गोलाकार अथवा नुकीला है। कार्यांग सीधा (Straight), तिरछा (Oblique) अथवा तिरछा फैला हुआ है।

विभिन्न नदियों में उपकरणों का निम्न प्रतिशत मिलता है (मिश्र, वी0एन. 1967, पार्श्वोद्धरित की तालिका 15, पृ0 124 पर आधारित)।

तालिका सं0 6

| | बेराच | गम्भीरी | बगन | कादमली |
|---|---|---|---|---|
| कोर | 4.97 | 9.50 | 4.25 | 5.26 |
| फलक | 29.19 | 26.85 | 23.90 | 10.53 |
| लेवालेवा फलक | 3.10 | 3.72 | 4.24 | |
| ब्लेड | 0.62 | 2.07 | | |
| फलक स्क्रेपर | 6.83 | 7.44 | 5.09 | 2.63 |
| डिस्क्वायड | 3.11 | 0.83 | 3.40 | |
| कोर चॉपर/ स्क्रेपर | 14.90 | 9.09 | 9.32 | 31.58 |
| हैण्डैक्स | 27.95 | 30.99 | 33.05 | 28.95 |
| क्लीवर | 9.31 | 9.50 | 5.78 | 13.16 |

## दिदवाना थार रेगिस्तान

1980 में वी0एन0 मिश्र तथा राजगुरू ने अनेक वैज्ञानिक संस्थाओं के सहयोग से यहाँ के भूतात्विक अनुक्रम, पुराजलवायु तथा सांस्कृतिक अनुक्रम को समझने के लिए एक अभियान प्रारम्भ किया। इस अभियान दल ने साभर की नमक की झीलों, कुछमन (Kuchaman), दिदवाना (Didwana), तालछपर (Talchhaper), पछभद्र (Pachbhadra) आदि स्थलों के भूतात्विक स्तरों का अध्ययन किया तथा विभिन्न जमावों के रासायनिक परीक्षण करके C14 तिथिविधि के द्वारा कालानुक्रम निर्धारित करने का भी प्रयास किया।

दिदवाना के निकट जायल (Jayal) तथा सिंगी तलाव (Singi Talav), इन्दोला की धानी (Indola Ki Dhani) तथा सोलह R (16R) में उत्खनन भी किया। फलतः चतुर्थक कालीन स्तरों, पुराजलवायु तथा पुरातात्विक साक्ष्यों– निम्नपूर्वपाषाण काल से मध्य पाषाण काल तक के सम्बंध में महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हुई।

16R क्षेत्र के बालू के टीलों के निर्माण की गाथा कार्बन उष्मादीप्ति तथा यूरेनियम, थोरियम, तिथि विधि के आधार पर 4 लाख वर्ष अथवा मध्य प्रातिनूतन काल में आंकी गई है जिसका विवरण आगे दिया गया है।

नागौर जिले (Nagaur District) के जायल तथा दिदवाना (JayalAnd Didwana) क्षेत्रों में

Scanned with OKEN Scanner

किए गए सघन अध्ययन के फलस्वरूप तीन जमावों का भूतात्विक एवं सांस्कृतिक अनुक्रम प्रकाश में आया, जिसमें सबसे निम्नवर्ती जमाव जायल–जमाव तथा उसके ऊपर का अमरपुरा जमाव (Amarpura Formation) और सबसे ऊपर का दिदवाना जमाव (Didwana Formation) के नाम से अभिहित किया जाता है।

## जायल जमाव

यह जमाव 20-60 मीटर मोटा है। इसमें बड़े बोल्डर, गाद मिट्टी युक्त बालू, आर्थोक्वार्टजाइट (Arthoquartzite), क्वार्टजाइट, क्वार्ट्ज तथा नीस (Gneiss) पत्थर मिलते हैं। इस जमाव को प्रारम्भिक प्रातिनूतन काल (Late Neogene or Early Pleistocene) में रखते हैं।

## अमरपुरा जमाव

इस जमाव में चूना, मिट्टी, कंकड़ बहुतायत से मिलते हैं। सबसे सुरक्षित रूप में इसे दिदवाना के निकट अमरपुरा गाँव के पास देखा जा सकता है। इस जमाव के ऊपरी भाग में 3 से 6 से0मी0 के कंकड़ मिलते हैं। इसकी अधिकतम मोटाई 2 मीटर है। इनमें निम्न तथा मध्यपुरा पाषाण कालीन उपकरण मिलते हैं। इस जमाव का निम्नवर्ती जमाव सबसे सुरक्षित स्थिति में सिंगी तलाव के पास परिलक्षित है। यहाँ से निम्न पुरा पाषाण कालीन प्रारम्भिक आश्यूल उपकरण मिले हैं। इस जमाव की मोटाइ 15 से 20 मीटर है। पुरातात्विक सामग्री के आधार पर कहा जा सकता है कि अमरपुरा जमाव का निर्माण मध्य प्रातिनूतन काल से उच्च प्रातिनूतन काल के अन्त तक हुआ था।

## दिदवाना जमाव

यह सबसे ऊपरवर्ती जमाव है। यह वायु जनित बालू के टीलों तथा पर्तों से निर्मित है। इसकी अधिकतम मोटाई 19 मीटर है। इसे रंग, संरचना तथा चूने की धारियों के आधार पर तीन प्रमुख इकाइयों में विभाजित किया गया है। इसकी सम्पूर्ण संरचनात्मक विविधता को देखने से स्पष्ट है कि बालू के टीलों का निर्माण निरन्तर प्रक्रिया नहीं थी।

इस जमाव में अनेक स्थलों से निम्नपुरापाषाण काल से लेकर उच्च पुरा पाषाण काल के उपकरण विभिन्न गहराइयो से प्राप्त हुए हैं। 25 से0मी0, 70 से0मी0, तथा 110 से0मी0 की गहराइयों से तीन ऊष्मादीप्ति तिथियाँ प्राप्त हुई हैं जो क्रमशः 6,140, 14,610 तथा 16,190 वर्ष प्राचीन हैं। ये तीनो तिथियाँ प्रथम ईकाई से हैं।

द्वितीय इकाई से C-14 तिथि उच्चपुरापाषाण कालीन संस्तर से मिली हैं जो 26,210 ± 2200 / 1700 वर्ष पूर्व हैं।

तृतीय इकाई से एक ऊष्मादीप्ति तिथि है जो 63,000 ±21,000 वर्ष पूर्व है इसके अतिरिक्त तीन असंशोधित U/Th तिथियाँ 12.65 मीटर, 14.25 मीटर, तथा 18.60 मीटर से इस प्रकार हैं। 144,000±12,000 ; 1,50,000±10,000 तथा 3,90,000±50,000 वर्ष पूर्व।

## पुरातात्विक सामग्री

पुरातात्विक सामग्री के संकलन के लिए जायल, सिंधी तलाव, इन्दोला की धानी तथा 16R में उत्खनन किया गया।

**जायल** (27° 13' N: 75° 11'E) दिदवाना से 52 कि0मी0 पश्चिम में है। यहाँ पर धरातल से निम्नपुरा पाषाण काल से उच्चपुरा पाषाण काल के उपकरण मिले थे। इस क्षेत्र में चार खन्तियों में उत्खनन किया गया था, जिसके फलस्वरूप निम्नपर्वूपाषाण युगीन –स्क्रेपर, हैण्डैक्स, चॉपर, चापिंगुपकरण, चाकू, कोर तथा फलक आदि प्राप्त हुए। सभी उपकरण नवनिर्मित प्रतीत होते हैं।

**सिंघी तलाव** दिदवाना से 1 कि0मी0 पश्चिम में है। उत्खनन से यहाँ पर दो सांस्कृतिक स्तर प्रकाश में आये। दोनों ही प्रारम्भिक आश्यूल संस्कृति के हैं। उपकरणों में चापर, चक्राभ (Discoids), हैण्डैक्स, क्लीवर, स्क्रेपर आदि उल्लेखनीय हैं। सभी उपकरणों का निर्माण प्रस्तर हथौड़ा पद्धति से किया गया था। लेवालेवा तकनीक के प्रमाण नहीं हैं। उपकरणों के निर्माण के लिए क्वार्टजाइट अथवा क्वार्ट्ज, का प्रयोग किया गया है। आश्यूल प्रकार के उपकरण और भी अनेक स्थलों से प्राप्त हुए हैं।

**इन्डोला की धानी** सिंघी तलाव से 1.5 कि0मी0 पश्चिम में हैं। इस उत्खनन में नीचे के स्तर से आशूलियाँ तथा ऊपर के स्तर से मध्यपूर्वपाषाण काल के उपकरण मिले थे।

## बंगर केनाल –16R

उत्तर–पश्चिम भारत में रजस्थान के दिदवाना क्षेत्र में डेक्कन कालेज के वी0एन0 मिश्र तथा एस0 एन0 राजगुरू और उनके बहु विषयक विद्वानों की टीम ने विविध दृष्टिकोणों से गहन सर्वेक्षण तथा उत्खनन किया और बालू के टीले 16 R (Sand dune 16 R) में निम्न उद्देश्यों से उत्खनन किया :–

1. बालू के टीले के निर्माण की विविध अवस्थायें क्या थी ?
2. वायुनिर्मित तथा जलोढ़ जमावों का सम्बंध
3. बालू के टीले के अन्दर पुरातात्विक सामग्री का ज्ञान
4. प्रस्तर संस्कृतियों का अमरपुरा से दिदवाना जमाव तक का विकास क्रम।

बंगर केनाल –16 R के उत्खनन के फलस्वरूप निम्न–पुरा पाषाण काल (Lower Palaeolithic) से मध्यपाषाणकाल (MSA) के उपकरण प्रकाश में आए। यहाँ पर 1980–81 से 1983–84 तक उत्खनन किया गया। उत्खनन स्थल बंगर केनाल के बायें तट पर दिदवाना से लगभग 2 कि0मी0 पश्चिम में स्थित है। बंगर केनाल का निर्माण 1941–42 में निकटवर्ती पहाड़ के पानी को सिंघी तलाव तक पहुचाने के लिए किया गया था।

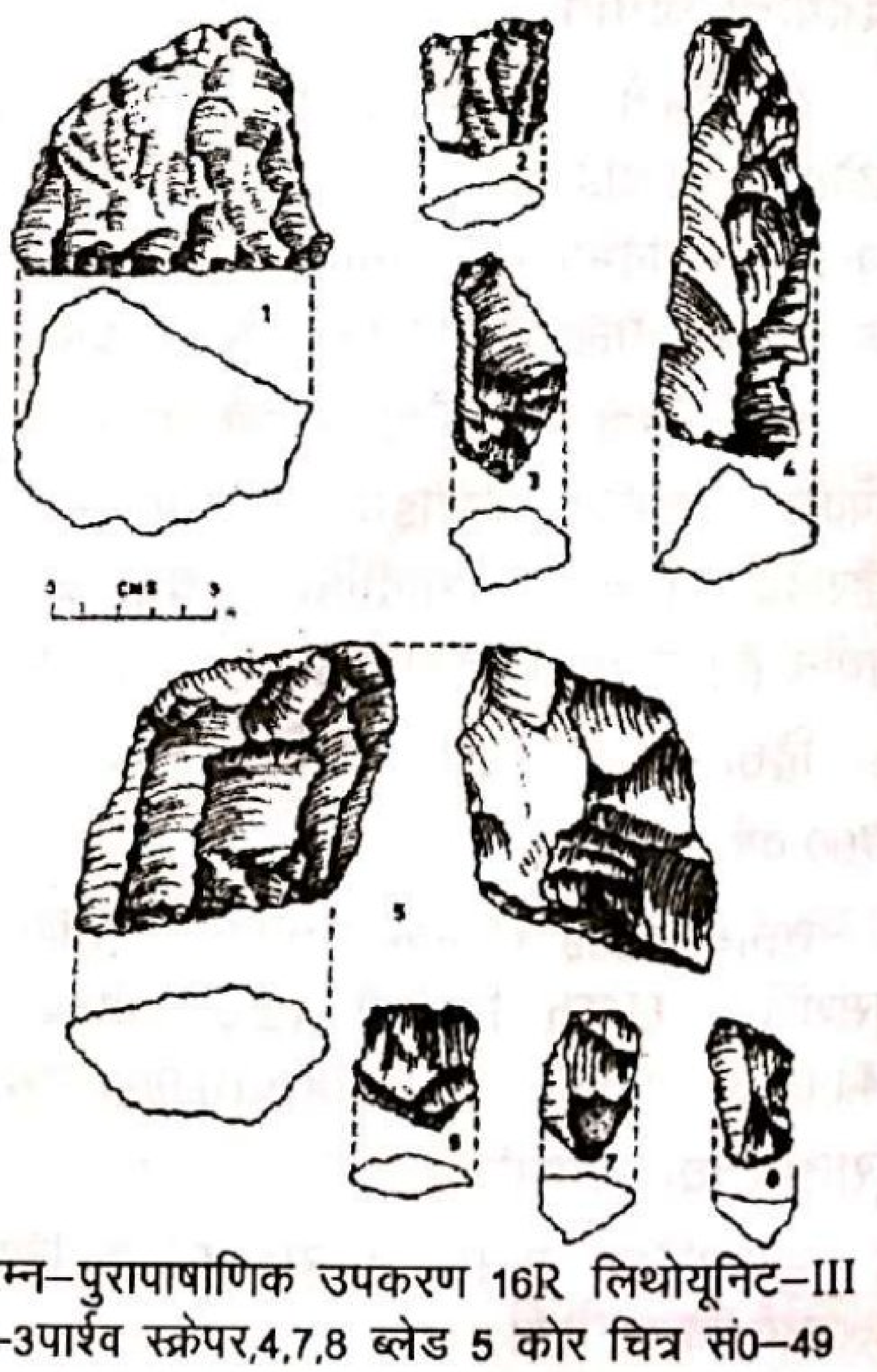

निम्न–पुरापाषाणिक उपकरण 16R लिथोयूनिट–III
1–3पार्श्व स्क्रेपर,4,7,8 ब्लेड 5 कोर चित्र सं0–49

उत्खनन के लिए बंगर केनाल के बायें तट

पर 2 मी0 चौड़ी तथा 30 मी0 लम्बी सीढ़ी नुमा खनती डाली गई। इसमें 19.5 मी0 की अधिकतम गहराई तक उत्खनन किया गया किन्तु बालू टीले की गहराई नहीं मिली।

ऊपर के 88 से0मी0 के निक्षेप को Litho unit I की संज्ञा प्रदान की गई। इसमें भली भाँति छटे हुए कैलशियम विहीन बालू–पीले–भूरे रंग के 4.90 मी0 तक क्रमशः हलके भूरे रंग के थे।

Litho unit I तथा II के बीच 10 से0मी0 मोटी बालू, गोलाकार अथवा कोण युक्त क्वार्ट तथा क्वाटजाइट की छर्रियाँ थी जो निकटवर्ती स्थलों से बहकर आई थीं। इसके नीचे 3.05 मी0 का जमाव रूक्ष कैल्साइट नोड्यूल तथा हलके भूरे दुमटबालू का जमाव है। इस यूनिट में 5.40 और 6.10 मी0 की गहराई में ब्लेड फलक उपकरण तथा कुछ हैण्डैक्स मिले थें। Litho Unit III लगभग 10. 95 मी0 मोटा था। इसमें बड़े आकार –5 से0मी0 से 20 से0मी0–कैल्साइट के रोड़े थे। यूनिट III की 9 से 13 मी0 की गहराई में मध्यपुरापाषाणकाल के उपकरण अच्छी संख्या में मिले थे। इस संरचना के नीचे 17.20 और 18.40 की गहराई के बीच दो समुच्चय मिले थे। उत्खनन कर्ताओं की धारणा के अनुसार दोनों ही निम्नपुरापाषाण काल अथवा आश्यूल परम्परा के थे।

बंगर केनाल –16R में बालू टीले की रेडियोमितीय (Radio metric Profile) का निर्माण किया गया है। अमरपुरा संरचना में 55 से0मी0, 70 से0मी0, 110 से0मी0, की गहराइयों से तीन तिथियाँ जो क्रमशः 6140, 14610 तथा 16190 बी0 पी0 प्राप्त की गई। जिस गहराई से ये तिथियाँ प्राप्त की गई हैं उनका समीकरण यूनिट–1 के ऊपरवर्ती जमाव से किया गया है। यूनिट–2 के पेडोजेनिक कार्बोनेट (Pedogenic carbonate) से कार्बन 14 तिथि 26210±2110–1670 वर्ष बी0पी0 आई है जिसे उच्च पुरापाषाणिक समुच्चय से सम्बधित किया जाता है। इसी प्रकार लिथो यूनिट–2 के पेडोजेनिक कार्बोनेट से एक और तिथि 22760±1220 वर्ष बी0पी0 भी प्राप्त है। यूनिट–3 के ऊपर से एक टी0 एल0 तिथि 63000 ± 21000 बी0पी0 तथा चार $^{यू}$–234 / $^{टी0एच}$230 तिथियाँ हैं जो विभिन्न गहराइयों से ली गई थी वे क्रमशः144000 ± 12000 BP(12.65m), 150000 ± 10000 BP(14-25m),131050 ± 15000BP(17-55m) तथा 390000 ± 1500BP(18-60m) है। एक तिथि को छोड़ कर सभी तिथियाँ अविरोधी (Consistent) हैं।

## पुरातात्विक समुच्चय लिथो यूनिट–3

17.20 मी0 से 18.40 मी0 के बीच में उपकरणों का एक समुच्चय प्राप्त हुआ जिसमें कोर फलक, ब्लेड तथा नीचे के भाग से एक स्क्रेपर तथा चार चापिंगुपकरण प्राप्त हुए थे। इसमें यद्यपि कोई भी आश्यूल उपकरण नहीं थे किन्तु फिर भी इसे निम्न–पुरा पाषाणिक कहा गया क्यों कि ऊपर के जमाव से मध्यपुरापाषाणिक काल के उपकरण प्राप्त हुए थे। इन्हें 15000 बी0पी0 के अन्तर्गत रखा गया। निम्न–पुरापाषाणिक स्तर के नीचे के स्तर से दो Th/U तिथियाँ 131,050±15000 बी0पी0 (17.55m) तथा 390,000±15000 बी0पी0(18.60m) क्रमशः मिली थी। इन तिथियों के आधार पर तथा सिंघी तलाव तथा छाजोली (Chajoli) राजस्थान, नेवासा हुण्सगी–बैचवाल कर्नाटक के उपकरणों की समानता के आधार पर यहाँ की निम्न–पुरा पाषाण काल अथवा आश्यूल परम्परा को

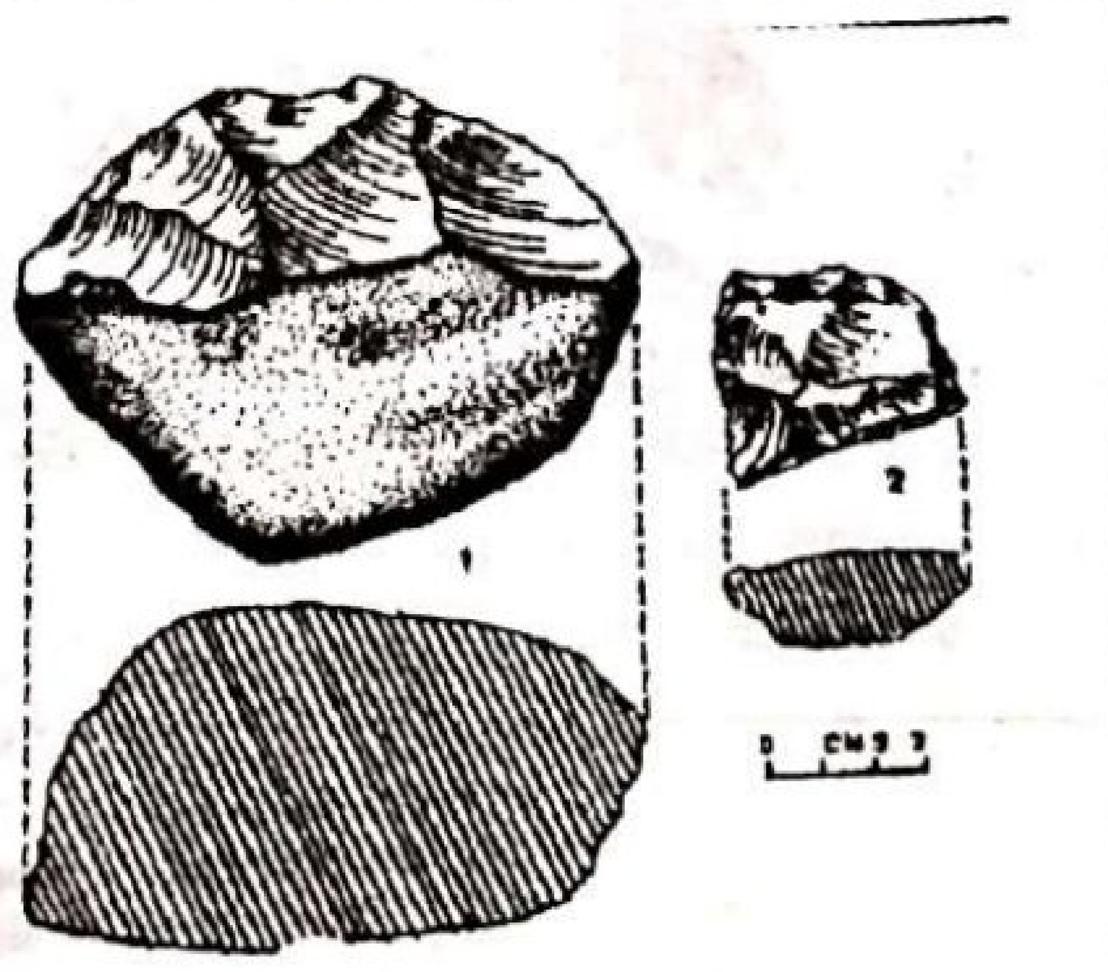

निम्न–पुरापाषाणिक उपकरण 16R लिथोयूनिट–III
लिथोयूनिट–III चित्र सं0–50

2,00000 बी0सी0 से 4,00000 बी0पी0 के मध्य रखा जाता है।

लिथो यूनिट–3 से मध्यपुरापाषाणिक काल के उपकरण 9–13 मी0 की गहराई से प्राप्त हुए थे। उपकरणों में विविध प्रकार के स्क्रेपर – पार्श्व, नतोदर, अन्तस्क्रेपर आदि, छोटे हैण्डैक्स, लेवा लेवा, साधारण फलक ब्लेड और कोर आदि। सभी उपकरण ताजे तथा क्वार्टजाइट के हैं। मध्य पाषाणिक स्तर से दो Th/U और एक टी0एल0 तिथि उपलब्ध है जो क्रमशः इस प्रकार हैं: 144,000±12000, 150,000±10000 तथा 163,000±21000 बी0पी0 हैं।

उत्खनन कर्ताओं की धारणा में यहाँ के मध्यपुरापाषाणिक उपकरण 25000 बी0पी0 के पहले के होगे क्यों कि उच्च पुरापाषाणिक स्तर से 25000 बी पी की तिथि प्राप्त है।

उच्च पुरापाषाणिक उपकरण लिथो यूनिट–2 के ऊपर के 70 से0मी0 जमाव में 5.40 से 6.10 से0मी0 प्राप्त हुए थे। 30 वर्ग मीटर के उत्खनन में ब्लेड, फलक उपकरण के साथ कुछ हैण्डैक्स भी प्राप्त हुए थे। उपकरण क्वार्टजाइट तथा क्वार्ट्ज के थे। उनमें विविध प्रकार के स्क्रेपर, ब्लेड, फलक उपकरण सम्मिलित हैं।

उच्च पुरापाषाणिक स्तर को 25000 बीपी के लगभग रखा गया है। यहाँ से एक सी14 तिथि 26,210±2110 – 1670 बी0पी0 प्राप्त है।

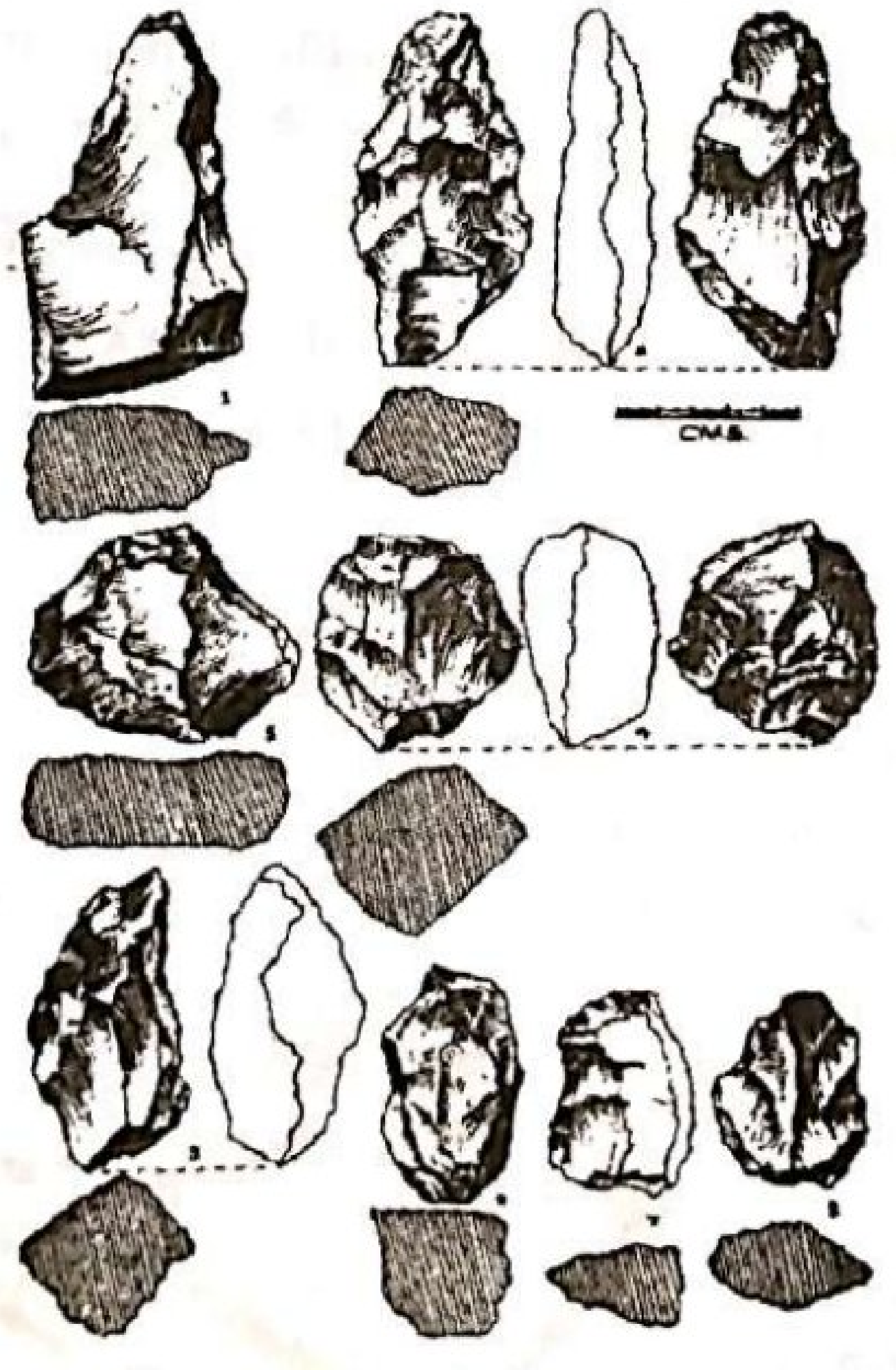


मध्यपुरापाषाणिकउपकरण:1,2हैण्डैक्स
3,4चापर,5–7स्क्रेपर,8प्वाइंट चित्र सं0–51

उच्च पुरापाषाणिक उपकरण चित्र सं0–52

# मध्य पुरापाषाण काल

# 24

## मध्य पूर्वपाषाण काल
## (Middle Palaeolithic Period)

### सामान्य परिचय

स्तरीकरण की दृष्टि से मध्य पुरापाषाणकाल निम्न पुरापाषाणकाल का उत्तरवर्ती तथा उच्च पुरापाषाणाकालीन स्तर का पूर्ववर्ती है। कुछ समय पूर्व (1954) तक इसकी स्थिति के संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं था, यद्यपि समय–समय पर विभिन्न स्थानों से एक विशिष्ट प्रकार का उद्योग जिसमें फलक तत्व का बाहुल्य था एवं स्पष्ट लेवालेवा प्रभाव परिलक्षित था, क्रमशः प्रकाश में आ रहा था।

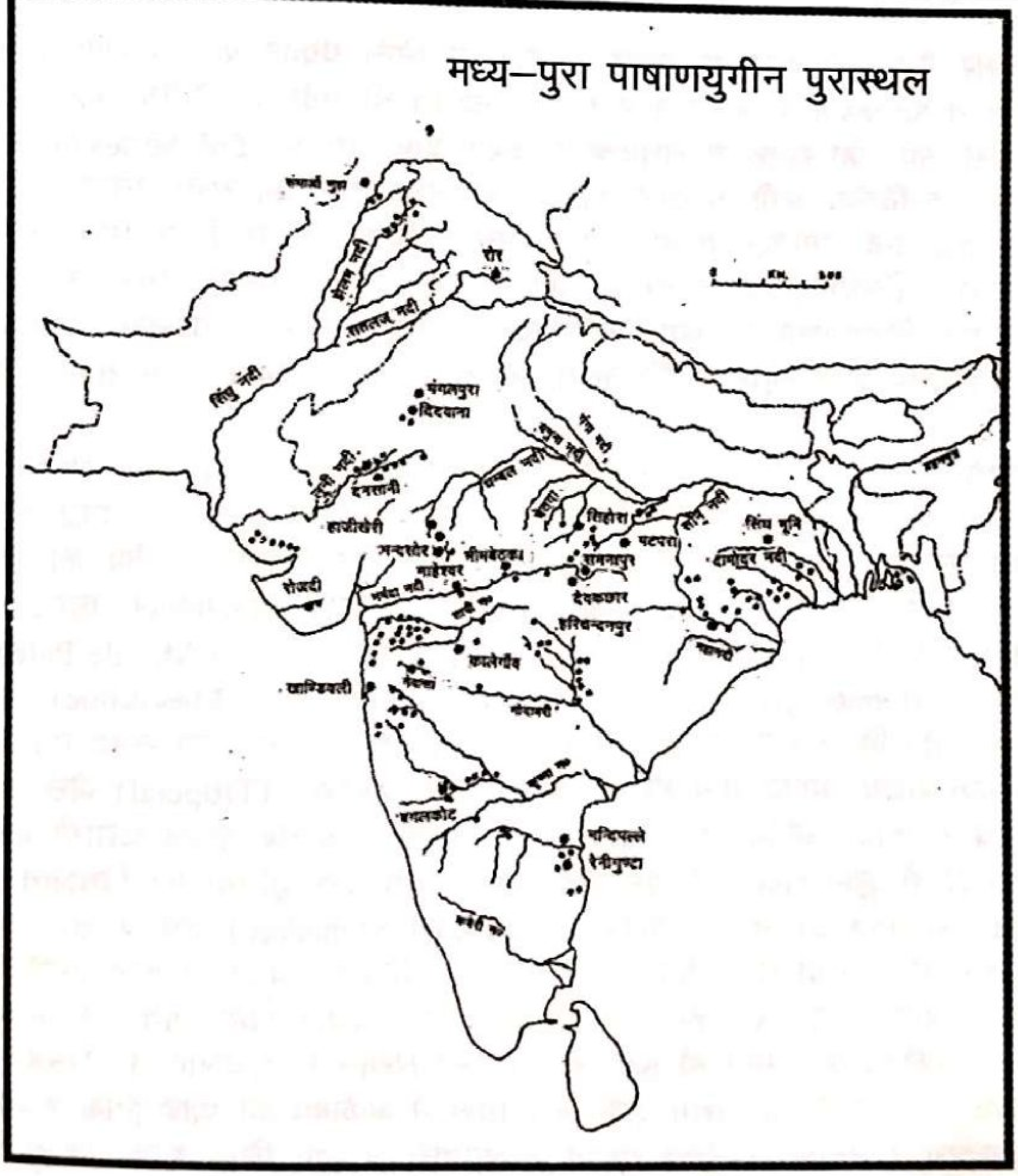


चित्र सं.–53

बक्रिट तथा कामियाडे (1930) को कर्नूल में, टॉड (1939) को बम्बई और खाण्डिवली में, डी टेरा तथा पेटरसन (1939) को पंजाब में तथा नर्मदा की काली मिट्टी में इस उद्योग के उपकरण प्राप्त हो चुके थे। यह उद्योग प्रमुख रूप से फलकों पर निर्मित था। इसके प्रमुख उपकरण स्क्रेपर, शर तथा ब्लेड आदि थे। विद्वानों ने अपनी सुविधानुसार इसे अभिहित किया था। बक्रिट तथा कामिडयाडे, डी टेरा आदि ने इसे पंजाब में अन्त सोहन तथा नर्मदा की काली मिट्टी से प्राप्त उद्योग को आद्यनव पाषाणयुगीन ( Proto-neolithic) कहा। उपुर्यक्त स्थानों के अतिरिक्त और भी अनेक स्थानों में इस प्रकार के उपकरण निरन्तर प्रकाश में आ रहे थे। किन्तु इस उद्योग की वास्तविक स्थिति (स्तर के सम्बन्ध में) तथा उपकरण समुदाय का सम्यक् ज्ञान नेवासा के स्तर विन्यास तथा उपकरण समुदाय के अध्ययन के बाद ही हुआ। नेवासा में सांकलिया को प्रवरा के स्तरित निक्षेपों से क्रमशः तीन प्रस्तर उद्योग मिले। उद्योगों को उन्होंने तीन श्रेणियों में क्रमशः – Series I, II तथा III में विभाजित किया। प्रथम श्रेणी के उपकरण प्रथम उच्चयन काल ( FirstAggradation Phase) अथवा प्रथम ग्रैवेल से सम्बन्धित थे।

नदी के दूसरे ग्रैवेल से वहां पर प्रथम ग्रैवसेल से भिन्न प्रकार के उपकरण प्राप्त हुए थे जिनको सांकलिया ने Series II के अन्तर्गत रखा। ये निश्चय ही नदी के द्वितीय उच्चयन काल से सम्बन्धित थे। सबसे ऊपर की सतह से लघुपाषाणोपकरण प्राप्त हुए थे। इन्हे Series III कहा गया। बैनर्जी ने सांकलिया के द्वितीय श्रेणी के उपकरणों को ही 'नेवासियन' की संज्ञा उनकी विशिष्टता के कारण प्रदान की तथा उन्हें "मिडिल पेलियोलिथिक (मध्य पूर्वपाषाणकाल) के अन्तर्गत रखा (बैनर्जी, के0डी0 1957, मिडिल पेलियोलिथिक इण्डस्ट्रीज ऑफ दि.डेक्कन, (थीसिस), डेकन कालेज, पूना)। उद्योग के प्रारूपात्मक विशेषताओं को ध्यान में रखकर मलिक (मलिक, एस0सी0 1959,स्टोन एज इण्डस्ट्रीज ऑफ दि बाम्बें ऐण्ड सतारा डिस्ट्रिक्टस, पृ0 43)ने इन्हें 'फलेक–ब्लेड स्क्रेपर उद्योग की संज्ञा प्रदान की।

भारत के विभिन्न भागों से नदियों के द्वितीय उच्चयन काल से अथवा मध्य स्थिति से प्राप्त होने वाले उपकरणों को सामूहिक रूप से कौन सी संज्ञा प्रदान की जाय यह विद्वानों के लिए समस्या का विषय बन रही थी। इसके कई कारण थे। अभी तक भारत में यूरोप की पारिभाषिक शब्दावली का ही प्रयोग किया जा रहा था। यूरोपे में सम्पूर्ण पाषाणकाल चार सांस्कृतिक कालों–निम्न पूर्व पांषाणकाल ( Lower Palaeolithic) मध्य पूर्वपाषाणकाल ( Middle Palaeolithic) उच्च पूर्वपाषाणकाल (Upper palaeoithic) तथा मध्य पाषाणकाल (Mesolithic) मे क्रमशः विभाजित किया गया है। किन्तु भारत मे उच्च पूर्वपाषाणकाल के उपकरण उस समय तक प्रतिवेदति नही थे अथवा उनके साक्ष्य नगण्य मात्र ही थे। किन्तु उष्ण कटिबंधो (Tropcial) जैसे अफ्रीका में प्रागितिहास के क्षेत्र मे काफी अधिक कार्य हुआ था। अफ्रीका में प्रस्तर युगीन उद्योगो का विकास यूरोप से भिन्न प्रकार से हुआ था। अतः वहॉ पर पाषाण युगीन संस्कृतियों का विभाजन प्रारम्भिक पाषाणकाल (Early StoneAge) मध्य पाषाणकाल (Middel StoneAge) तथा उत्तर पाषाणकाल (Late StoneAge) मे किया गया था। चूँकि भारत भी उष्णकटिबंधीय प्रदेश है तथा यूरोप के समान उच्च पुरापाषाणिक उद्योग यहॉ पर नही मिले थें, अतः यह विचार किया गया कि भारत मे भी उद्योगो का विकास अफ्रीका के समान ही हुआ होगा। ऐसी स्थिति मे सुब्बाराव ने दिसम्बर 1961 मे दिल्ली मे आयोजित आर्क्यालजी की प्रथम एशियन कॉग्रेस मे अफ्रीका की पारिभाषिक शब्दावली को अपनाने का सुझाव रखा। उनका उपर्युक्त सुझाव सर्वसम्मति से मान लिया गया। किन्तु कालान्तर

Scanned with OKEN Scanner

मे विभिन्न स्थानो पर हुए सर्वेक्षणों से यह स्पष्ट ही गया कि भारत के पाषाणिक संस्कृतियों का विकास–क्रम अफ्रीका के समान न होकर यूरोप के अनुरूप ही हुआ था। भारत मे भी उच्च पूर्वपाषाणकाल के उपकरण मध्य पुरापाषाणकाल (Middle Palaeolithic) तथा मध्य पाषाण काल (Mesolithic) के मध्यवर्ती स्तर से प्राप्त हुए है। इसके अतिरिक्त लुघपाषाण उद्योगों का विकास भी यूरोप के ही समान उच्च पुरापाषाण काल के उद्योगों से ही हुआ है। ऐसी स्थिति मे सुब्बाराव द्वारा प्रतिपादित पारिभिषिक शब्दावली भारतीय सन्दर्भ मे अनुपयुक्त सिद्ध होने लगी, फलतः 1972 मे टाटा इंस्टीट्यूट मे आयोजित रेडियों कार्बन तथा इण्डियन आर्क्यालजी की इण्टरनेशलन सिम्पोजियम मे पुनः यह सर्वसम्मति से निश्चित किया गया कि मिडिल स्टोन एज' के स्थान पर मिडिल पेलियोलिथिक' का ही प्रयोग अधिक समीचीन होगा। उन स्थलों पर जहाँ मध्य पूर्वपाषाणकालीन उपकरण स्तरित जमावो से प्राप्त हुए है वहाँ के सर्वेक्षण से स्पष्ट है कि उपकरण नदी के द्वितीय उच्चयन काल से सम्बन्धित द्वितीय ग्रैवेल मे मिलते है। उन स्थलों पर जहाँ हैण्डैक्स–क्लीवर समुदाय के उपकरण भी मिले है वे सदैव ही नदी के प्रथम उच्चयन काल अथवा प्रथम ग्रैवेल से सम्बन्धित पाये गए है। नदियो के दोनो कालों से सम्बनिधत ग्रैवेल एवं स्वरूप में भी पर्याप्त अन्तर है। नदी के प्रथम ग्रैवेल जमाव जिसमें प्रायः हैण्डैक्स–क्लीवर उद्योग के उपकरण मिलते है वह अपेक्षाकृत बडे पेबुल, विशाल प्रस्तर खण्डों आदि से निर्मित हैं तथा वह प्रायः अधिक संयोजित भी होता है तथा आधारशिला पर आश्रित मिलता है,जब कि द्वितीय ग्रैवेल प्रायः छोटे–छोटे पेबुल तथा पत्थरों से पुनर्स्थापित होते हैं, यद्यपि यह बात सिद्धान्ततः कहना कठिन है। प्रायः यह निक्षेप काफी मोटा तथा आधारशिला से काफी अधिक ऊँचाई पर मिलता है। इस जमाव की संरचना से स्पष्ट है कि जिस समय इसका निक्षेपण हुआ होगा वह काल प्रथम ग्रैवेल के काल की अपक्षो कम आर्द्र रहा होगा, क्योकि नदियों मे उस समय इतनी शक्ति नही थी कि वे विशालकाय प्रस्तर पिण्डों को स्थानान्तरित कर सकते। किन्तु इसमें सन्देह नही कि उस समय भी पर्याप्त आर्दता रही होगी, अन्यथा इतना मोटा जमाव नही हो पाता। इस जमाव को प्रायः नदी के द्वितीय उच्चयन काल से सम्बधित किया जाता है।

नदियों की घाटियों तथा उनके ग्रैवेल जमावों के अतिरिक्त मध्य पुरापाषाणकाल के उपकरण वेदिकाओं, नीची पहाड़ियों के ऊपर एवं पहाड़ियों की ढालों पर, समतल पृथ्वी के संगम – स्थल के पहले मिलते हैं।

सबसे अधिक ऊंचाई पर निम्न पुरापाषाणकालीन स्थल, उससे नीचे पहाडी की ढाल पर मध्य पुरा पाषाणिक तथा पृथ्वी और पहाड़ी के संगमस्थल पर उच्च पुरापाषाणकालीन स्थल प्रायः मिलते हैं। उद्योग स्थलों की स्थिति इस प्रकार क्यों है यह निश्चय ही विचारणीय प्रश्न है। क्या कम होती हुई आर्द्रता भी इसका एक कारण हो सकती है ?

मध्य पुरापाषाण काल के उपकरण अपनी विशिष्टता के लिए भी विशेष उल्लेखनीय है। निम्न पुरापाषाण काल के हैण्डैक्स–क्लीवर शैली के उपकरणों का उद्योग के रूप में अन्त हो जाता है। यह कहना उचित नहीं है कि मध्य पुरापाषाण काल के स्तरों में ये एकदम नहीं प्राप्त होते हैं। किन्तु जहां कहीं भी ये मिले हैं इनके स्वरूप में बहुत अन्तर है। संख्या की दृष्टि से ये नगण्य है। इनका स्थान एकदम नये प्रकार के उपकरण ले लेते है। निम्न पुरापाषाणकाल के उपकरणों में केवल स्क्रेपर ही अपने विकसित स्वरूप में मिलते है। यदि कहें कि इस युग का यह सबसे प्रमुख उपकरण था, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। किन्तु इसके स्वरूप तथा तकनीक में इतना परिर्वतन हो

जाता है कि दोनो कालो के स्क्रेपरो को सहज अलग किया जा सकता है। फलक तत्व जो निम्न पुरापाषाणकाल मे दृष्टिगोचर हो रहा था वह अब बहुत स्पष्ट हो जाता है। इसी प्रकार से ब्लेड तत्व भी अपनी ओर सहज ही ध्यानाकर्षित करते है। इस युग के सभी नहीं तो अधिकांश उपकरण फलक अथवा ब्लेड पर ही बने हुये मिलते है। डा0 सांकलिया का विचार है कि मध्य पुरापाषाण काल को 'फलक संस्कृति' भी कहा जा सकता है। फलक, ब्लेड तथा स्क्रेपरों की प्रधानता के कारण प्रायः सभी इस उद्योग को ब्लेड–फलक–स्क्रेपर परम्परा के अन्तर्गत रखते है। यहां पर यह स्पष्ट कर देना अनुचित नहीं होगा कि मध्य पुरापाषाणकाल के ब्लेड तथा बाद के ब्लेडों में नितान्त अन्तर है ( वर्मा आर0 के0: प्री हिस्ट्री 1974)। वास्तव में इन्हें ब्लेड फलक ही कहना अधिक उचित होगा। इस काल के ब्लेड साधारण अथवा लेवालेवा कोर से निकाले जाते थे तथा उनको निकालने के लिये अप्रत्यक्ष संघात प्रविधि ( Indirect Percussion Method) तथा प्रत्यक्ष संघात विधि (Direct Percussion Method) दोनों का ही प्रयोग होता था। निपीड प्रविधि (Pressure Technique) का प्रयोग ब्लेड निर्माण के लिये प्रचलित नहीं था अथवा बहुत कम होता था। इस काल में लेवा लेवा प्रविधि का प्रयोग उल्लेखनीय है। कृत्रिम आघात स्थल के कोर अथवा कच्छप कोर, फलकित अथवा गठित (Facetted) फलक अब बहुतायत से मिलने लगते हैं।

पूनर्गढन के क्षेत्र में भी इस काल के उपकरणों में विशेष परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। पुनर्गठन के लिए निश्चय ही निपीड प्रविधि का प्रयोग भी प्रचलित हो गया था। बहुत से उपकरणों के पुनर्गठन इतने सूक्ष्म तथा क्रमबद्ध हैं कि उन्हें साधारणतया संघात प्रविधि– प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष– से नहीं किया जा सकता है।

उपकरणों की बनावट तथा उनके आकार में भी इस काल में विशेष अन्तर मिलता है। पहले की अपेक्षा उनका आकार बहुत छोटा हो जाता है। इसके अतिरिक्त यह भी उल्लेखनीय है कि इस काल के उपकरणों के निर्माण में उपयोगिता के साथ ही साथ उनकी सुडौलता एवं कमनीयता पर भी समुचित ध्यान दिया जाता था। इसलिए इस काल के उपकरण देखने में पहले की अपेक्षा बहुत अच्छे प्रतीत होते है। उपकरण निर्माण के लिये पत्थरों के चयन में भी विविधता मिलती है। इस काल में प्रयुक्त हुए क्वार्टजाइट पहले से अधिक अच्छे हैं। क्वार्टजाइट के अतिरिक्त बसाल्ट जैस्पर, चर्ट, फ्लिन्ट आदि का भी उपयोग होता है। उपकरण निर्माण के लिए पत्थरों का चयन बहुत कुछ उनकी स्थानीय उपलब्धि पर भी निर्भर करता था।

मध्य पुरापाषाणकाल में उपकरणों का आमूल परिवर्तन कैसे हुआ तथा उसके क्या कारण थे यह एक विचारणीय प्रश्न है। डा0 सांकलिया (सांकलिया, एच0डी0, 1964, स्टोन एज टूल्स पृ0 60) की धारण है कि उपकरणों का यह विभेद जलवायु सम्बन्धी परिवर्तनों तथा नवीन प्रभावों के कारण अथवा नवीन मानव की उत्पत्ति के कारण हो सकता है। उपर्युक्त विवरण के अनुसार डा0 सांकलिया ने सभी सम्भावनाओं का उल्लेख कर दिया है। जहाँ तक तीसरी सम्भावना का प्रश्न है उसके खण्डन–मण्डन के लिए तर्कों का नितान्त अभाव है। इसके अतिरिक्त यह भी इस समय कहना कठिन है कि यह परिवर्तन सर्वप्रथम कहाँ पर आरम्भ हुआ और कैसे सभी स्थानों में फैला। यह साधारण रूप से बोधगम्य नहीं है कि कैसे एकदम नवीन प्रकार के लोगों का अभ्युदय सभी स्थानों पर हुआ और उन्होने उपकरण निमार्ण मे दक्षता प्राप्त कर ली। हॉ, बहुत अधिक संख्या मे स्थानान्तरण एव प्रव्रजन की सम्भावना को भी निर्मूल नही कहा जा सकता है। किन्तु वर्तमान स्थिति मे इसको मानने के लिए अधिक प्रमाणो की आवश्यकता है। इन सभी सम्भावनाओं मे प्रथम, वर्तमान

Scanned with OKEN Scanner

स्थिति मे, अधिक बोधगम्य प्रतीत होता है। दोनों कालो की जलवायु मे निःसन्देह बहुत परिवर्तन रहा होगा यद्यपि जीवाश्मो के साक्ष्यो से इस सम्बनध मे कोई प्रकाश नही पड़ता है। इस सन्दर्भ मे उन स्थानो के साक्ष्य जहाँ मध्य पुरापाषाणकालीन उपकरण स्तरित जमावों मे मिले हैं विशेष उल्लेखनीय है। ऐसे स्थानो मे नागपुर के निकट वैनगंगा के स्थल, तथा चित्तूर के साक्ष्यो की गणना की जा सकती है। किन्तु अभी तक भारत मे सबसे अधिक उल्लेखनीय साक्ष्य बेलनघाटी से ही प्राप्त हुए हैं। यहाँ द्वितीय ग्रैवेल को तीन भागों मे उनकी संरचना तथा पुरातात्विक सामग्री के आधार पर विभाजित किया गया है। प्रथम अथवा निम्नतम जमाव मे हैण्डैक्स–क्लीवर आदि के साथ–साथ मध्य पुरापाषाण युग के उपकरण भी मिले है। इस स्तर मे फलक–तत्व की पहले की अपेक्षा प्रधानता है। मध्य स्तर मे मध्य पुरापाषाणकालीन उपकरणो की संख्या बढ जाती है, किन्तु निम्न पुरापाषाण काल के फलक तत्व एकदम समाप्त हो जाते है और केवल मध्य पुरापाषाणकालीन उपकरण मात्र ही मिलते हैं। यदि अन्तिम स्तर के मध्य पुरापाषाणकालीन उपकरणो को निम्न पुरापाषाणकालीन उपकरणो के साथ रखा जाए तो दोनों का सम्बंध बताना अथवा उनका विकास क्रम स्पष्ट करना कठिन हो जाता है, किन्तु सभी स्तरो के उपकरणो को एक साथ ध्यान से देखने पर उनका विकास क्रम स्पष्ट हो जाता है। बदलती हुई नवीन परिस्थितयों से सामन्जस्य स्थापित करने के लिए उपकरणो मे आवश्यकतानुसार परिवर्तन नितान्त आवश्यक था। केवल बदलती परिस्थितियों का ही योगदान नही था। अपितु मानव के तकनीकी ज्ञान ने भी इसमें सहायता की थी। विशालकाय भोड़े तथा भारी उपकरणों के स्थान पर छोटे सुडौल उपकरण अधिक उपयोगी थे। इसके अतिरिक्त बहुधंधी उपकरणो के स्थान पर विशिष्ट उकरणों का निर्माण तत्कालीन मानव के विकसित होते हुए ज्ञान का निर्देश करता है।

## तिथि

मध्यपुरापाषाण कालीन उद्योगों की तिथि निर्धारण जटिल समस्या है। गत दशकों में जो कार्य हुए है, उनसे स्पष्ट है कि पहले जो तिथियाँ मान्य थी उनमें अब बहुत परिवर्तन हुआ है। वास्तव में मध्यपूर्वपाषाण काल के प्रारम्भ की तिथियाँ रेडियों कार्बन तिथि प्रणाली की सीमा से बहुत बाहर हैं। मध्यपूर्वपाषाण युगीन स्तरों को यदि अन्तर्हिमकाल से सम्बन्धित किया जाता है, तो उसके प्रारम्भ की तिथि अति प्राचीन होना निश्चित है। दक्षिण अफ्रीका में समुद्रीय सीपी में ऑक्सिजन आइसोटोप के अनुपात के आधार पर ऑक्सिजन आइसोटोप स्तर 5e (Oxygen isotope stage 5e) से सम्बन्धित किया गया है जिसके आधार पर उसकी तिथि 1,25,000 वर्ष आँकी गई है। मिस्त्र में बीर तरवाफी पुरास्थल ( Bir Tarwafi sites) की तिथि भी आफ्रीका की तिथि को पुष्ट करती है। भारत में दिदवाना क्षेत्र मे 16 R स्थल पर मध्यपुरा पाषाणिक स्तरों को भी ऑक्सिजन आइसोटोप 5e के समकक्ष रखा जा सकता है। वहाँ से इन स्तरों से मध्यपुरापाषाण काल की थोरियम/ यूरेनियम (Th/U) तिथि प्राप्त हुई है। वह 1,26,000 वर्ष पूर्व की है तथा अफ्रीका और मिस्त्र से प्राप्त तिथियों को सम्पुष्ट करती है।

इसके अतिरिक्त मध्य सोनघाटी में पटपरा जमाव जिसे मध्यपुरा पाषाण संस्कृति के समकक्ष रखते हैं (शर्मा ऐण्ड क्लाक्र 1982; विलियम्स ऐण्ड राएस 1983) की तिथि <100,000 से 30,000 वर्ष पूर्व (उच्च प्रतिनूतन काल) रखते हैं। सागीलेरु धाटी में ग्रैवल II के ऊपर के स्तर से गैस्ट्रोपायड शैल्ल (Gastropod Shells) से दो कार्बन तिथियाँ प्राप्त हैं जो इसे 23,000 वर्ष से पूर्व रखती हैं। मध्यपूर्व पाषाणिक संस्कृति अन्तप्रतिनूतन काल से उच्च प्रतिनूतन काल तक रही

(वी0एन0मिश्र1989अ)।

इन तिथियों के आलोक में मध्यपपुरा पाषाण काल की तिथि कम से कम 125ka वर्ष पूर्व से 40ka वर्ष पूर्व के मध्य में निर्धारित की जा सकती है (वी0एन0मिश्र1995अ)A

## संस्कृति

निम्न पुरापाषाणकालीन संस्कृति के समान मध्य पुरापाषणकालीन संस्कृति के अवशेष भी भारतीय प्रायदीप के लगभग सभी भागों से प्राप्त हुये हैं। किन्तु सभी स्थलो मे भूवैज्ञानिक स्तरों तथा उपकरणो का ज्ञान अभी सम्यक् नही हैं।

निम्न पृष्ठों मे केवल उन्ही स्थलों का विवरण दिया गया है जिनके विषय मे अपेक्षाकृत अधिक ज्ञात है।

# 25

## उत्तर पश्चिम भारत–हिमालयी क्षेत्र

यहाँ पर पाकिस्तान के बुनेर क्षेत्र (BunnerArea) में मर्दान जिले में संघावो पार्खोदर्रा में दानी (1964) को cemented lime stone boulder conglomerate में धसी कन्दरा में 12 लेयरों का एक जमाव प्राप्त हुआ था जिसे 5 उप कालों में विभाजित किया गया। नीचे की 6 लेयरों से मध्य पुरापाषणकालीन संस्कृति के अवशेष प्राप्त हुए। उपकरण क्वार्टज (Quartz) पर निर्मित थे। उपकरणों में स्क्रेपर, ब्लेडफ्लेक, पुच्छल तथा त्रिकोणात्मक प्वाइण्ट, ब्यूरिन थे। ब्यूरिन केवल Pd.I में ही थे अन्य शेष उपकरण Pd-II तथा III में भी थे। ब्यूरिन तथा ब्लेड से उच्च पूर्वपाषणकालीन संस्तर का भी अनुमान कर सकते हैं।

डी टेरा तथा पेटरसन के अन्तसोहन 'ब' तथा 'अ'उद्योग को उनके निर्माण प्रविधि तथा प्रकार के (Typo technology) आधार पर मध्य पुरापाषणकालीन संस्कृतियाँ में रख सकते है।

तृतीय हिमायन काल की द्वितीय वेदिका के आधारिक ग्रैवेल से जो उपकरण डी टेरा को प्राप्त हुए थे उन्हें अन्त सोहन 'A' (Late Sohan 'A') कहा गया तथा लोएस के निचले बीस फीट के जमाव से जो उपकरण प्राप्त हुए थे उन्हें अन्त सोहन 'B' (Late Sohan'B') की संज्ञा प्रदान की गई। ये आदि सोहन 'C' के उपकरणों से छोटे तथा सुडौल हैं और उन्हीं से विकसित हुए प्रतीत होते हैं। इनमें कच्छप कोर तथा लेवालेवा फलक भी हैं। इन्हें साधारणतया मध्य पुरापाषाण कालीन (Middle Palaeolithic) उपकरण परम्परा के अन्तर्गत रख सकते हैं।

पिण्डी घेब के निकट धोक पठान के पास अन्त सोहन बी के पुरास्थल मिले थे। फेयर सर्विस को सिंधु के दाहिने तट पर झेरूक (Jherruck) में एक ग्रैवेल टैरेस मिला था। 1975 में अलचिन बी0 को मध्य पुरापाषणकालीन संस्कृति के अवशेष सुक्कुर के निकट रोहरी पहाड़ियों तथा 101 मील के पत्थर के पास मिले थे। लाल को (1956,1979–80) कांगड़ा जिले में व्यास तथा बानगंगा में, मोहपात्र को (1966) सिरसा घाटी, साहनी तथा मोहपात्र (1964) को कांगड़ा जिले में रोर में प्राप्त हुए थे।

अलकनन्दा घाटी में श्रीनगर गढ़वाल में नौटियाल आदि (1977) को मध्य पुरापाषणकालीन उपकरण प्राप्त हुए थे। यहाँ के उद्योग में क्वार्टजाइट तथा जैस्पर से बने स्क्रेपर बहुलता से थे।

नेपाल के दंग–देवखुरी–दुन घाटी (Dun valley) में कार्विनस (Corvinous 1994) को मध्य पुरापाषणकालीन उपकरण प्राप्त हुए थे जिसमें ब्लेड तथा फलकों की संख्या अधिक थी। घाटी के जमाव मे अर्जुन 3 (Arjun 3) पर निम्न पुरापाषाणकालीन संस्कृति के उपकरण नीचे के स्तर से प्राप्त हुए थे। अर्जुन घाटी के टैरेस पर 2 मी0 मोटा जलोढ़ ग्रैवल ( Fluvial Gravel deposit) है उसके ऊपर 8 मी0 सिल्ट का जमाव है। सिल्ट के आधार से मध्य पुरापाषणकालीन ब्लेड तथा फलक उद्योग मिला। इसके अतिरिक्त लेवालेवा प्रकार के कोर, कुछ स्क्रेपर, प्वाइण्ट, चापर तथा कोर स्क्रेपर भी वहाँ से संग्रहीत किए गए।

Scanned with OKEN Scanner

# 26

# उत्तर प्रदेश
## Uttar Pradesh

### बेलन घाटी

मध्य पुरापाषाणकालीन संस्कृति के दृष्टिकोण से बेलनघाटी तथा उसके निकटवर्ती क्षेत्र उत्तर प्रदेश मे सबसे महत्वूपर्ण स्थलो मे से हैं। भारत का यह प्रथम स्थल है जहाँ पर मध्य पुरापाषाणकालनी उपकरणों की उत्पत्ति एवं विकास की समस्याओं पर प्रकाश पड़ा है, तथा उत्पत्ति की प्रत्येक स्थिति का सम्बंधीकरण निश्चित भू–वैज्ञानिक स्तरों से स्थापित किया जा सका है। बेलन घाटी मे एक ही प्रकार के भू–वैज्ञानिक स्तर बहुत विस्तृत क्षेत्र मे मिलते है। इस प्रकार का एकरूप निक्षेपण अन्यत्र कही नही मिला है।

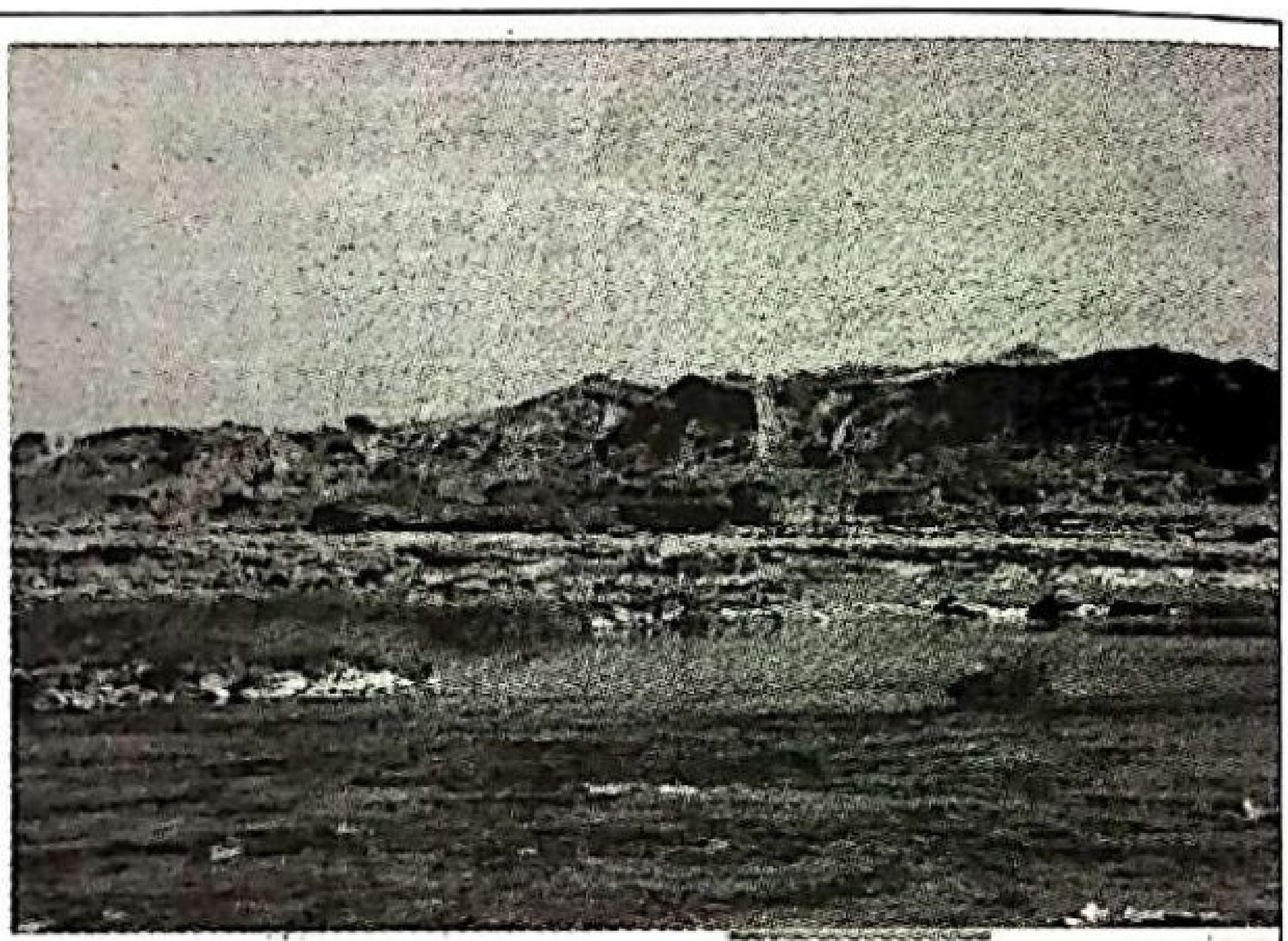

बेलन अनुभाग मे द्वितीय ग्रैवेल चित्र सं.–54

बेलनघाटी मे प्रथम ग्रैवेल से निम्न पुरापाषाणकालीन उपकरण मिले हैं। मध्य पुरापाषाणकालीन उपकरण द्वितीय ग्रैवेल से प्राप्त हुए हैं। इसकी अधिकतम मोटाई पॉच मीटर है तथा औसत मोटाई 2.74 मीटर है। इसमे औसतन 2 से 4 से0मी0 के पेबुल मिलते है। इस सम्पूर्ण ग्रैवेल जमाव को संरचना के आधार पर तीन भागों मे विभाजित किया गया है, जिन्हें क्रमश ऊपर से नीचे अ, ब तथा स कहा गया है, इनमे से 'ब' जमाव मे बहुत स्पष्ट क्रॉस संस्तरण (Cross Bedding) मिलता है। कुछ स्थानों पर इन उपविभागो के बीच मे एक पतला गाद मिट्टी का जमाव भी दिखता हें। यह बेलन की सहायक सेवती मे बहुत स्पष्ट है।

ग्रैवेल के उपविभागो से जो पुरातात्विक सामग्री उपलब्ध हुई है वह विशेष उल्लेखनीय है, क्योकि यह मध्य पूर्वपाषाणकाल के उपकरणों मे एक विकास क्रम का निर्देश करती हैं इस ग्रैवेल के प्रथम अथवा निम्नतम उपविभाग से निम्न पुरापाषाणकाल से मध्य पुरापाषाणकाल के परिवर्तन (Transition) का द्योतन होता हैं इस जमाव में हैण्डैक्स नही मिले है। क्लवीर भी अपेक्षाकृत कम 10% हैं तथा स्क्रेपर की ही बहुलता है। इस जामव के उपकरण प्रथम ग्रैवेल के उपकरणों से आकार मे अपेक्षाकृत छोटे है। इसके अतिरिक्त कुछ उपकरणों मे पुनर्गढन के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं। हैण्डैक्स का अभाव, सीमित संख्या मे क्लीवरो का मिलना, फलक तत्व की अधिकता तथा उपकरणो के आकार मे परिवर्तन आदि इस तथ्य की ओर निर्देश करते है कि प्राचीन उद्योग का अन्त तथा नवीन उद्योग का क्रमिक विकास हो रहा था। दो उपकरणो को छोडकर अन्य सभी क्वार्टजाइट के बने है। इस स्तर से बॉस नमाडिकस के जीवाश्म भी मिले है।

Scanned with OKEN Scanner

बेलनघाटी के मध्यपूर्व पाषाणिक उपकरण चित्र सं0–55 अ

द्वितीय ग्रैवेल के मध्य स्तर से फलक–ब्लेड–स्क्रेपर परम्परा के उपकरण मिले हैं। ये वास्तविक मध्य पुरापाषाणकालीन उपकरणों के ही समान हैं इस स्तर मे निम्न पुरापाषाणकालीन उपकरणो का नितान्त अभाव है। इसमे स्क्रेपर 73% है जिनमे 57% क्वार्टजाइट के तथा 43% चर्ट आदि पत्थरों के है। सबसे अधिक जीवाश्म इसी स्तर से मिले हैं। जीवाश्मों मे सबसे अधिक संख्या बॉस तथा एलीफस की ही है।

ग्रैवेल के अन्तिम उपविभाग अ से भी लगभग वैसे ही उपकरण मिले है जैसे कि उपविभाग ब से। अन्तर केवल उपकरणों के आकार मे है। वे अब पहले की अपेक्षा और अधिक छोटे हो गये है। उनकी औसत लम्बाई–चौडाई 4 × 3 से0मी0 है। इसके अतिरिक्त चर्ट तथा तत् सदृश पत्थरों का उपयोग 8% तक हो जाता है।

द्वितीय ग्रैवेल के ऊपर रक्ताभ गाद मिट्टी (Reddish silt) का जमाव है। यह लाइम कार्बोनेट (Lime Carbonate) लैटेराइट की गोलियॉ तथा पत्थर की चिप्पियो से निर्मित हे। इस जामव की औसत मोटाई 1.26 मीटर हें इससे भी मध्य पुरापाषाणकाल के उपकरण मिले हैं। इसमे स्क्रेपर 85% तथा ब्लेड 15% है। उपकरण प्रमुखतया चर्ट तथा उसी के समान पत्थरां से बने है।

मध्य पुरापाषाणकालीन स्तरों के ऊपर के जमावों मे पुनः मध्य पुरापाषाणकाल तथा उच्च पुरापाषाणकाल के परिवर्तन (Transiton) के साक्ष्य मिले हैं। ऊपर के जमावों में क्रमशः ब्लेडो की संख्या अधिक होने लगती है। साथ ही अच्छे प्रकार के पत्थरों का उपयोग भी बहुलता से होने लगता हैं ये उच्च पुरापाषण्णकाल के आगमन का आहवान करते है।

बेलन घाटी के अतिरिक्त मध्य पुरापाषाणकालीन उपकरण निकटवर्ती क्षेत्र मे पहाड़ियों की ढाल पर, नीची पहाडियों के ऊपर तथा वेदिकाओ पर भी उद्योगस्थल के रूप मे मिलते हैं। ये स्थल मध्य पुरापाषाणयुगीन उद्योगों के क्रमिक विकास के अध्ययन की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण हैं क्योकि विभिन्न स्थलों से प्राप्त उपकरण विकास की विभिन्न अवस्थाओं मे रखे जा सकते है। मध्य पुरापाषाणकाल के उद्योग–स्थलों मे विशेष उल्लेखनीय बटाऊबीर, खूटाबीर, मड़वा, नाउन कला, आदि हैं।

बटाऊवीर तथा खूटावीर स्थल उसी नाम की पहाडियों पर है जो नदोह नाले के निकट ही स्थित है। ये बेलन नदी के दक्षिण में तथा कैमूर के उत्तर में इलाहाबाद मिर्जापुर की सीमा पर स्थित हैं। मड़वा तथा नाउनकलां मिर्जापुर में कैमूर के ऊपर हैं।

बटाऊवीर तथा खूटावीर में उपकरण बहुत अधिक संख्या में प्राप्त हुये हैं। यह उल्लेखनीय है कि लगभग सभी उपकरण क्वार्टजाइट पर निर्मित हैं, किन्तु यहां पर जिस क्वार्टजाइट का प्रयोग

किया गया है वह निम्न पूर्वपाषाणकाल के क्वार्टजाइट से अधिक महीन कणो।का है तथा उसमें लोहे की मात्रा भी अधिक प्रतीत होती है। चर्ट का उपयोग नगण्य मात्र है। उपकरणों का निर्माण छोटे–छोटे शिलाखण्डों का फलकीकरण करके किया गया है। सबसे अधिक संख्या स्क्रेपरों की है। उनमें भी चक्राभ अथवा चक्राकार स्क्रेपर सबसे अधिक है।

स्क्रेपरों के ऊपर फलकीकरण प्रायः परिधि से केन्द्रोन्मुख दिशा में हुआ है। स्पष्ट है कि उनके निर्माण में नियमित फलकीकरण प्रविधि का प्रयोग किया गया है। स्क्रेपर के अतिरिक्त ब्लेड, शर, छिद्रक और फलक भी प्रभूत संख्या में मिले है। लेवालेवा पद्धति का विकास होगया था, क्योंकि उस पद्धति से निकाले गये फलक तथा कोर भी प्राप्त हुये हैं। अधिकांश फलकों अथवा कोरों पर फलक चिन्ह छिछले तथा छोटे हैं। उपकरणों में पुनर्गढन के प्रमाण मिलते हैं, किन्तु सम्भवतः निपीड प्रविधि से पुनर्गढन नहीं होता था, क्योंकि वे बहुत क्रमिक अथवा महीन नहीं है, किन्तु छोटे फलकों को निकालने के लिये कोमल अथवा बेलनाकर हथौड़े का ही प्रयोग हुआ होगा।

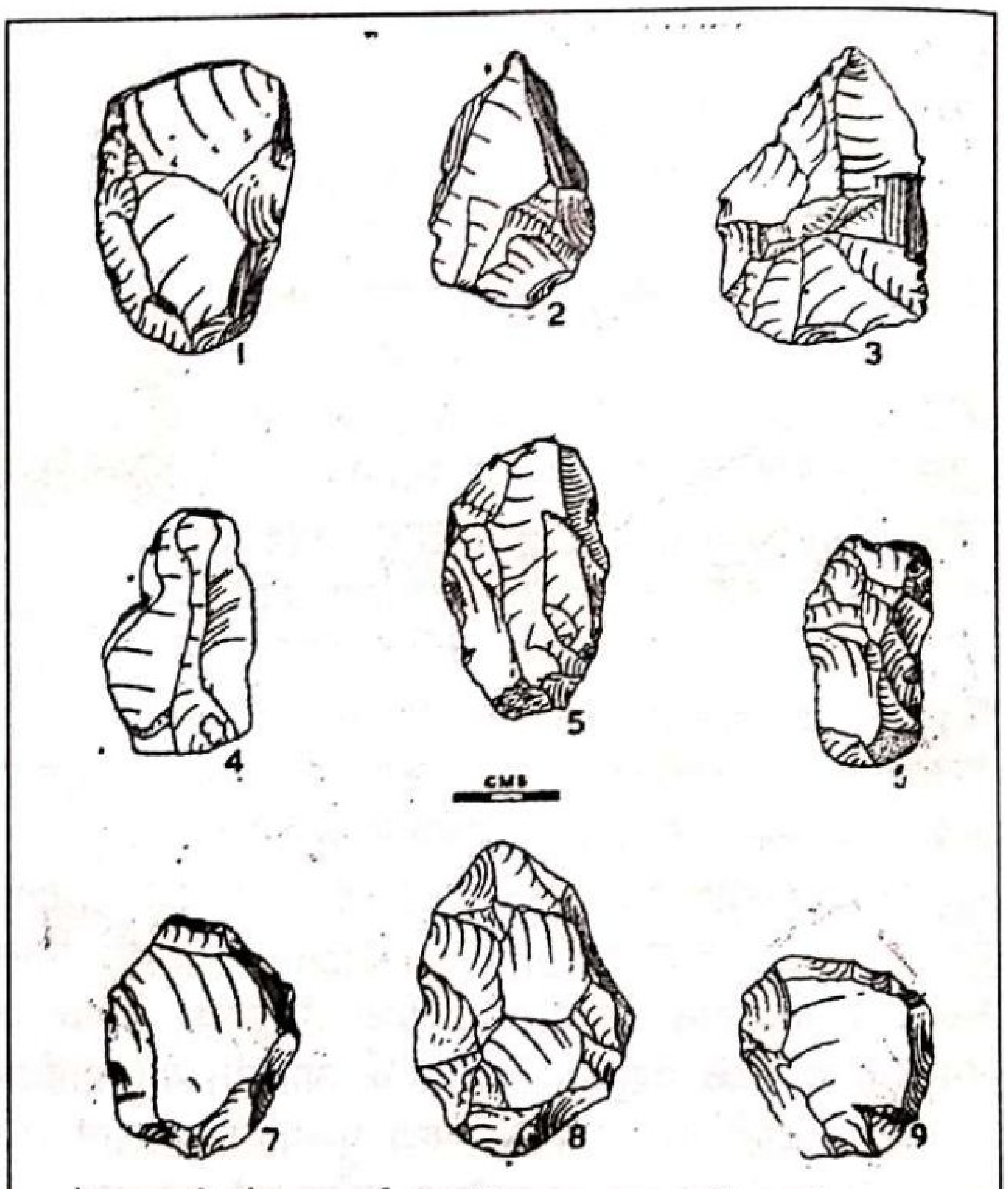

बेलनघाटी के मध्यपूर्व पाषाणिक उपकरण चित्र सं0–55 ब

## अदवा घाटी

बेलन की सहायक अदवा नदी जो बेलन तथा सोन के मध्य में बहती है उसमें भी मध्य पूर्वपाषायुगीन पुरास्थल चिन्हित किए गए हैं जिसमें मनिगरा, सोनगरा, टिकुरी तथा मघा उल्लेखनीय हैं। पुरा स्थल अदवा घाटी की थोड़ी ऊची पहाड़ियों तथा अधेसर पहाड़ी की ढाल पर हैं। जिस प्रकार से पुरास्थल पर उपकरण फलक आदि पड़े हैं उससे अनुमान कर सकते हैं कि वे उद्योगस्थल के रूप में प्रयोग हुए थे। इस क्षेत्र की बैधा–6 (Baidha-6) एक बड़ा प्राइमरी पुरास्थल (Extensive primary site ) है। उपकरण भूरे क्वार्टजाइट से निर्मित हैं जिनमें स्क्रेपर, प्वाइण्ट, ब्लेड, डिस्क्वायड, कोर, फलक आदि मिले हैं। मनिगड़ा से एक छोटे आकार का हैण्डैक्स भी मिला था।

बुन्देलखण्ड में रामेश्वर सिह (1965) ने तथा पी0 सी0 पन्त ने (1997) कुछ पुरास्थलों को चिन्हित किया था जिनमें लहचुरा–2 तथा सिद्धपुर उल्लेखनीय हैं। पन्त के अनुसार इनके उपकरणों में यूरोप के मौस्टेरियन के डेण्टिकुलेट से समानता मिलती है। जायसवाल (1989) को बेतवा घाटी में सिहरा (Sihara), घटसेमत्रा (Ghatsemtr), हसराई (Hasrai) तथा गोची (Gonchi)।से भी इस प्रकार के उपकरण मिले थे।

Scanned with OKEN Scanner

**27**

# बिहार एवं छत्तीसगढ़ प्रदेश
## Bihar & Chattisgarh Pradesh

जमालपुर में कालीपहाड़ के ऊपर से मध्य पूर्वपाषायुगीन उपकरण संग्रहीत किए गए। यह पुरास्थल इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इसमें मध्य पूर्वपाषाणयुगीन उपकरण उद्योग में थोड़ा अन्तर मिलता है (पन्त तथा जायसवाल 1977–8 ;जायसवाल 1978; 158–61)। जमालपुर में एक सीमित उत्खनन किया गया। 50सं0मी0 के जमाव में 32 उपकरण भी मिले। उपकरण महीन कण के क्वार्टजाइट से निर्मित हैं। उपकरणों में कोर, फलक, ब्लेड, कोर पुनुरूज्जावन फलक आदि हैं। लेवालेवा फलक काफी संख्या में हैं। निर्मित उपकरणों में चापर, चापिग टूल, हैण्डैक्स, चाकू, विविध प्रकार के स्क्रेपर, ब्यूरिन, डेण्टिकुलेट, बोरर, छिद्रक आदि हैं। कुछ विशिष्ठ प्रकार के ऐक्स (Axes) तथा चाकू (knives) मिले थे जिन्हें जमालपुर ऐक्स तथा जमालपुर चाकू कहा गया (पन्त तथा जायसवाल 1977–8 )।

इस क्षेत्र के अन्य पुरास्थलों में भीमबंध तथा कन्दिनी का उल्लेख कर सकते हैं।

चक्रवर्ती तथा चट्टोपाध्याय को हजारीबाग, गिरिडीह तथा छोटानागपुर में पालामउ से भी मध्य पूर्वपाषायुगीन उपकरण मिले थे (चक्रवर्ती तथा चट्टोपाध्या 1987,88a)। इन्होंने पश्चिमी बंगाल के बर्दवान तथा मिदनापुर में भी मध्य पूर्वपाषायुगीन स्थल चिन्हित किए। उपकरणों में विविध प्रकार के स्क्रेपर, बोरर, प्वाइण्ट आदि थे। **फासिल वुड** (Fossil wood) पर निर्मित लेवालेवा प्वाइण्ट तथा फलक विशेष उल्लेखनीय हैं (चक्रवर्ती तथा चट्टोपाध्याय 1984b)। बाकुड़ा तथा पुरूलिया काग्सवती तथा कुमारी नदियों के पीली बालू जमाव से भी मध्य पूर्वपाषाणयुगीन उपकरण मिले हैं (IAR 1959-60).

# 28

# ओडिशा

## Odisa

ओड़िशा में सबसे उल्लेखनीय कार्य मोहपात्र का है। उनके अतिरिक्त भी विद्वानों नें वहां पर अनेक स्थलों को खोज निकाला है, किन्तु उनके सम्बनध में पर्याप्त जानकारी का अभाव है।

मोहपात्र ने उड़ीसा के मध्य पूर्वपाषाणकालीन उद्योगों का जो वर्गीकरण किया है वह इस प्रकार है।

1. मध्य पूर्वपाषाण काल के उपकरण द्वितीय अथवा महीन ग्रैवेल में मिलते है जो प्रायः चिकनी मिट्टी ( Clay ) अथवा लाल गाद मिटटी ( Red silt) पर आधारित है। यह जमाव महीन ग्रैवेल जमाव को निम्नतम ग्रैवेल से अलग करता है। जिसमें निम्न पूर्वपाषाण काल के उपकरण मिलते है। अतः स्तर–विन्यास के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि महीन ग्रैवेल से प्राप्त उपकरण प्रथम ग्रैवेल से प्राप्त उपकरणों के बाद के है।
2. ओडिशा में लघुपाषाणोपकरण सदैव पृथ्वी की ऊपरी सतह अथवा नदी की घाटियों में मिलते हैं। अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि मध्य पुरापाषाण काल के उपकरण लघुपाषाणोपकरणों के पूर्ववर्ती हैं।
3. उपकरणों के निर्माण के लिये प्रमुखतया अच्छे प्रकार के पत्थरों यथा, चर्ट, जैस्पर, ओपल आदि का प्रयोग किया गया है।
4. अधिकांश उपकरण छोटे फलकों पर निर्मित हैं तथा उनको निकालने के लिए कोमल अथवा बेलनाकार हथौड़ा पद्धति का उपयोग किया जाता था।
5. फलकित आघात–स्थल के फलक अपेक्षाकृत कम हैं। कच्छपकोरो ( Tortoise Core) का नितान्त अभाव है।
6. पूनर्गठन का प्रयोग अत्यन्त सीमित हुआ है जहां नितान्त आवश्यक था वहां पर ही पुनर्गठन केवल ऊपर की सतह से किया गया है।
7. उपकरणों के निर्माण में कमनीयता के स्थान पर उपयोगिता को ही विशेष महत्व दिया जाता था। अधिकांश उपकरण पूर्ण निर्मित नहीं प्रतीत होते है।
8. अधिकांश उपकरण ताजे प्रतीत होते हैं।

स्क्रेपर, बोरर, ब्यूरिन, प्वाइंट तथा स्क्रेपर–बोरर यहां के उपकरण समुदाय के प्रमुख अंग हैं। इनके अतिरिक्त बहुत से फलक, ब्लेंड तथा कोर भी प्राप्त हुये हैं। बहुत से फलक तथा ब्लेड के ऊपर प्रयोग चिन्ह मिलते हैं। चौड़े ब्लेड यहां के उपकरण समुदाय के अभिन्न अंग हैं। उनका उपयोग अधिकतर पार्श्व – स्क्रेपर के रूप में किया गया है। मोहपात्र की धारणा है कि सम्भंवतः इस काल के ब्लेड उत्तर पाषाणकाल ( Late StoneAge = Mesolithic pd.) के ब्लेड परम्परा के पूर्ववर्ती है।

मोहपात्र के सम्पूर्ण संकलन में 404 उपकरण तथा फलक आदि थे। इनमें 51.98 % वास्तविक

Scanned with OKEN Scanner

उपकरण है। जिनमें –

| | |
|---|---|
| स्क्रेपर | 71-90 % ( 151) |
| शर (प्वाइंट) | 21.90 % (46) |
| छिद्रक (बोरर) | 1.90 % (4) |
| ब्यूरिन | 1.90% (4) |
| स्क्रेपर–बोरर | 2.38% (5) |

उड़ीसा के मध्य पूर्वपाषाणकाल के उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि वहां पर मध्य पूर्वपाषाणकाल के बाद उच्च पूर्वपाषाण काल का विकास नहीं हुआ था जैसा कि उत्तर प्रदेश की बेलन घाटी में मिलता है। किन्तु यह भी उल्लेखनीय है कि वहां पर मध्य पूर्व पाषाणकालीन उपकरण समुदायों में ब्यूरिन भी सम्मिलत है, जो कि अन्यत्र नहीं हैं। वास्तव में मोहपांत्र ने उड़ीसा में उस समय कार्य किया था, जब कि उच्च पूर्वपाषाण काल की स्थिति का ज्ञान नहीं था। बहुत से ब्लेड जिन्हें मोहपात्र ने मध्य पूर्वपाषाण काल के अन्तर्गत रखा है वे वास्तव में उच्च पूर्वपाषाणकालीन हो सकते है। इसके अतिरिक्त स्तर विन्यास की दृष्टि से भी विशेष ध्यान देना आवश्यक है। इन सभी तथ्यों को ध्यान में रख कर उड़ीसा प्रदेश का पुनःसर्वेक्षण नितान्त आवश्यक है। संकलित उपकरणों की संख्या भी बहुत सीमित है, अतः उनके आधार पर विशेष निष्कर्षो का निकालना उचित नहीं होगा।

सम्बलपुर जिले में महानदी घाटी में बरा पहाड़, दारीदुंगी तथा हीराकुड पहाड़ी की ढाल से भी मध्य पूर्व पाषाणकालीन उपकरण संग्रहीत किए गए।

Scanned with OKEN Scanner

# 29

# आंध्र प्रदेश

## Andhra Pradesh

आंध्र प्रदेश में सर्वप्रथम कामियाडे तथा बक्रिट ने प्रस्तर युगीन संस्कृतियों की एक श्रृंखला के प्राप्ति की घोषणा की थी, जिसमें मध्य पुरापाषाण काल के उपकरण भी प्रतिवेदित थे। उनके द्वितीय श्रेणी में वास्तव में वे ही उपकरण थे जिन्हें मध्य पुरापाषाण काल के अन्तर्गत रखा जाता है। इसमें फलक उद्योग के उपकरण थे जिनके निर्माण में प्रमुख रूप से क्वार्टजाइट का प्रयोग किया गया था। इसके अतिरिक्त सैण्डस्टोन तथा चाल्सेडनी का भी उपयोग मिलता है फलक उपकरणों के साथ सुन्दरता से बने कुछ हैण्डैक्स भी मिले थे। कामियाडे तथा बक्रिट के अनुसार यह उद्योग उनके चतुर्थ काल का है, जब कि जलवायु अपेक्षाकृत शुल्क थी। इसी समय अपरदी लैटेराइट ( Detrital Laterite) के ऊपर नवीन संस्कृति का प्रसार हुआ।

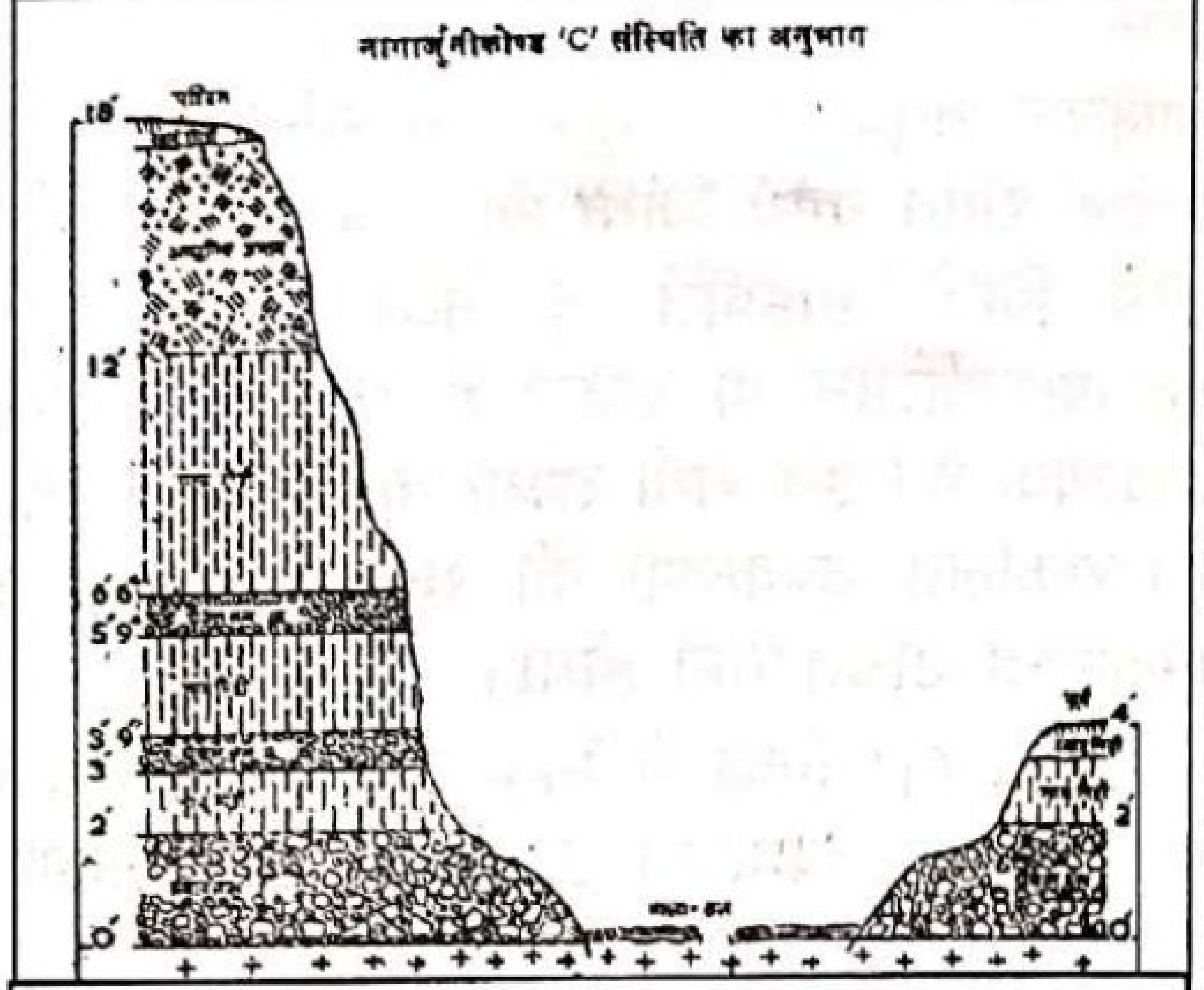

नागार्जुनकोण्ड सी संस्थिति – चित्र सं0–56

उपर्युक्त प्रकार के उपकरण गिद्दलूर II, तालपुल्ले आदि से सौन्दरराजन को भी मिले थे।

नागार्जुनकोण्ड की 'C' संस्थिति Locality C ) पर सौन्दरराजन को एक ही स्थान पर तीन ग्रैवेल जमाव मिले थे। (देखिये रेखा चित्र ) इन ग्रैबेल – जमावों से बहुत कम संख्या में उपकरण मिले थे, किन्तु सौन्दरराजन का विचार है कि पूर्वपाषाणकाल के जमावों के दृष्टिकोण से ये विशेष महत्वपूर्ण है, इनसे उद्योगों के विकास क्रम पर प्रकाश पड सकता है। यहां यह उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा कि इस प्रकार का जमाव उत्तर प्रदेश की बेलन घाटी में मिल चुका है।

प्रारूपात्मक दृष्टिकोण से निम्न पूर्वपाषाण काल के उपकरणों तथा फलक उपकरणों में पत्थर के अतिरिक्त उनकी निर्माण विधि में भी अन्तर था। इसमें विकसित लेवालेवा पद्धति के प्रयोग के साथ – साथ पुनर्गठन का प्रयोग भी मिलता है। पुनर्गठन निपीड प्रविधि से किया गया है। उपकरणों में विशेष उल्लेखनीय विविध प्रकार के स्क्रेपर–पार्श्व स्क्रेपर ( Side scraper) अन्तस्क्रेपर ( End Scraper). नतोदर स्क्रेपर ( Hollow Scraper), शर ( Points) आदि हैं। इनके साथ ब्लेड तथा ब्यूरिन उपकरण भी है। ब्लेड के ऊपर कृत्रिम आघात– स्थल बनाने के प्रमाण मिलते हैं। ये प्रायः जैस्पर तथा चर्ट सदृश पत्थरों पर निर्मित हैं। ब्लेड तथा ब्यूरिन उपकरण उच्च पूर्वपाषाणकालीन परम्परा के प्रतीत होते हैं, यद्यपि इनके लिये स्तरित प्रमाणों का नितान्त अभाव है। सारांश में यहां के ब्लेड – फ्लेक उद्योग में तीन प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर होती है। (1) फलक उद्योगों में मुस्तेरियन प्रभाव, (2) ब्लेड तथा ब्यूरिन उपकरण (3) पुनर्गठित तथा निपीड प्रविधि से फलकित स्क्रेपर।

प्रथम वर्ग के उपकरणों के साथ अधिक संख्या में फलक तथा शर ( Points) है जिन पर

विस्तृत पुर्नगठन मिलता है। इनके साथ हैण्डैक्स के समान, किन्तु छोटे आकार के उभय पक्षीय उपकरण भी है। सौन्दरराजन की धारणा है कि ये हैण्डैक्सों से विकसित हुये है तथा कालान्तर में इन्हीं से बादामाकार शरो (Almond Shaped points) का विकास हुआ होगा। इनमें से कुछ में प्रारम्भिक पुच्छल ( Incipient Tang) भी मिलता है.।

दूसरे वर्ग में ब्लेड उपकरण है। ये विविध आकार के है तथा निर्माण की भिन्न–भिन्न अवस्थाओं में मिलते है। ब्यूरिन विविध प्रकारों के ही नहीं है, अपितु ब्यूरिन पद्धति के पुनर्गठन का प्रयोग स्क्रेपर आदि के कार्यांग को बनाने के लिए किया जाता था। ब्लेड पतले तथा सुडौल हैं।

उपर्युक्त तीनों वर्गो में से केवल प्रथम वर्ग ही मध्य पुरापाषाणकाल का प्रतिनिधित्व करता है।

आइजक (आइजक, एन0 1960, दि स्टोन एज कल्चर्स ऑफ कर्नूल, थीसिस (अप्रकाशित), डेकन कालेज, पूना) ने भी इस प्रकार के उपकरणों का एक विस्तृत संकलन किया था, किन्तु उस समय तक उन उपकरणों के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं था। राव ने नालगोण्डा जिले का सर्वेक्षण किया था जिसके फलस्वरूप अनेक मध्य पूर्वपाषाणकालीन उद्योग स्थल प्रकाश में आये। मध्य पूर्वपाषाणकाल के उपकरण भूरी गाद मिटटी (Brown Silt) के ऊपर महीन ग्रैवेल में तथा गिरि पीठों ( Foot hills) के निकट मिलते है। कृष्णानदी के किनारे येलेश्वरम् से आठ किलो मीटर उत्तर में रामतीर्थमपये ( Ramatirthampae) एक प्रमुख उद्योग स्थल है। यहां पर निकटवर्ती दस स्थलों से 600 उपकरण एकत्रित किये गये थे। इनमें से 389 उपकरण उद्योग स्थलों से एकत्रित किये गये थे। सभी उपकरणों को दो प्रमुख वर्गों में विभाजित किया गया है।

1.फलक तथा ब्लेड पर निर्मित उपकरण।

कृत्रिम कोरों से निकाले हुये फलकों पर बने उपकरण। इस वर्ग के उपकरणों को 2 वर्गो में विभाजित किया गया है।

प्रथम वर्ग में बडे फलक है तथा बेलनाकार हथौडे से बनाये गये है। इनमें ऊपर के भाग पर कॉर्टेक्स विद्यमान है।

दूसरे वर्गके उपकरण छोटे, पतले एवं तीक्ष्ण फलकों पर बने हैं जो त्रिकोणात्मक अथवा अण्डाकार है। उनके आघात–स्थल फलकित नहीं है। इस वर्ग में नालीमत कोर ( Fluted Core) से निकाले गये ब्लेड भी सम्मिलित है। उपकरणों का वर्गीकरण उनके कार्यांगो के आधार पर दो वर्गो में किया गया है।

अ– इस वर्ग में केवल ऐसे ही उपकरण है जिनमें केवल एक ही कार्यांग है। इन्हें ऐकिक उपकरण, (Single Tool) कहा गया है।

ब– इस वर्ग के उपकरणों में एक से अधिक कार्यांग है जिन्हे बहुप्रयोजन उपकरण (Multiple Tools) कहा गया है। इन दोनो वर्गो के उपकरण को पुनः उपवर्गो में विभाजित किया गया है। ये सभी उपकरण विभिन्न प्रकार के स्क्रेपर, प्वाइंट तथा बोरर के अन्तर्गत रखे जा सकते है।

नालगोण्डा के अतिरिक्त चित्तूर (मूर्ति, एम0 एल0 के0, 1966 स्टोन एज कल्चर्स ऑफ चित्तूर, थीसिस, डेकन कॉलेज, पूना–6 ; इण्डियन ऑक्र्यालजी–ए रिव्यू 1963–64, 1964–65, 1967–68, 1968–69) भी उन प्रमुख क्षेत्रों में से है जहॉ पर विशेष कार्य हुआ है। यहॉ पर मूर्ति को मध्य पाषाण काल के उपकरण प्रमुख रूप से या तो द्वितीय निर्वध ग्रैवेल (Loose II Gravel) जो लाल गाद मिट्टी पर आधारित है, में मिला है अथवा जहॉ पर ग्रैवेल नहीं है वहॉ पर लाल गाद मिट्टी के

Scanned with OKEN Scanner

ऊपर अथवा उस पर आश्रित (Against) मिलता है। लाल गाद मिट्टी में कहीं–कहीं पर अपरदन के फलस्वरूप गड्ढे हो गये थे जिनमें प्रायः पीली गाद मिट्टी का भराव है। संस्थिति 4 (Locality-4) में मध्य पुरापाषाणकाल के उपकरण इस प्रकार के भराव से प्राप्त हुये हैं (मूर्ति, एम0 एल0 के0, 1966, पार्श्वोद्धरित, पृ0 107.)।

मूर्ति ने रल्लकलावा क्षेत्र से भी मध्य पुरापाषाण कालीन उपकरणों के प्राप्ति की घोषणा की है। रल्लकलावा 'डी' (D) से उन्हें मध्य पुरापाषाणकालीन उपकरणों के साथ निम्न पुरापाषाण काल के सुन्दरता से बने हैण्डैक्स आदि भी प्राप्त हुये है। मूर्ति की धारणा है कि ये उपकरण मध्य पुरापाषाणकाल के भी अभिन्न अंग है। किन्तु दोनों कालों के बने हैण्डैक्स आदि में उनकी बनावट तथा तकनीक में प्रर्याप्त अन्तर है। डॉ0 सांकलिया का विचार है कि चूँकि निम्न पुरापाषाणकाल के उपकरण सभी स्थलों पर मध्य पुरापाषाण काल के उपकरणों से सम्बंधित नहीं हैं, अतः इस प्रकार की धारणा बहुत तर्क संगत प्रतीत नहीं होती है। डॉ0 संकलिया का विचार काफी हद तक सही है, किन्तु इस प्रकार के साक्ष्य अब अनेक स्थलों से मिल चुके हैं, अतः इस सम्भावना को निर्मूल नहीं कहा जा सकता है कि मध्य पुरापाषाणकाल में भी काफी समय तक पहले की परम्परायें कुछ परिवर्तनों के साथ चलती रहीं।

अन्य स्थानों के ही समान यहाँ पर भी मध्य पुरापाषाण काल के उपकरणों में स्क्रेपर का बाहुल्य है। फलकित आघात स्थल के फलक विद्यमान हैं, किन्तु उनकी संख्या नगण्य है। इनके अतिरिक्त शर, छिद्रक–शर (Awl Point) छिद्रक (Awls), फलक–ब्लेड (Flake Blade), ब्लेड (Blade), फलक (Flake), कोर (Core), आदि है।

कुडुप्पा (इण्डियन आर्क्यालजी–ए रिव्यू, 1964–65, पृ0–2 ;थिम्मा रेड्डी तथा सौन्दर राजन 1978. ) तथा नेल्लौर (वही, 1967–68, पृ0 5–6.) में भी मध्य पुरापाषाण काल के अनेक स्थल प्रतिवेदित हैं, किन्तु उनके सम्बन्ध में सम्यक् जानकारी का अभाव है।

कर्नूल जिले में रामी रेड्डी (Rami Reddi 1978) ने अकविदु तथा अर्वीतकोला स्थलों को चिन्हित किया। यहाॅ से क्वार्टजाइट, क्वार्टजाइटिक सैण्डस्टोन तथा बसाल्ट पर बने विविध प्रकार के स्क्रेपर फलक आदि मिले। इसी जिले में पलेरू घाटी मे ( मधुसूदन राव 1987 ) अनेक स्थल चिन्हित किए गए। वहाॅ से ताजे स्क्रेपर, प्वाइण्ट, बोरर, चापर, चक्राभ, हैण्डैक्स, उपयोजित फलक, फलक, फलक ब्लेड कोर आदि मिले। उपकरण बनाने के लिए महीन अथवा रूक्ष कण के क्वार्टजाइट तथा क्वार्टज का प्रयोग किया गया था।

Scanned with OKEN Scanner

30

# कर्नाटक प्रदेश
## Karnataka Pradesh

कर्नाटक प्रदेश में मध्य पुरापाषाण काल के उपकरण बेलगॉव, बीजापुर, गुलबर्गा, धारवाड़ आदि स्थानों से प्रतिवेदित हैं। कर्नाटक के मध्य पुरापाषाणिक उद्योग को बैनर्जी ने 'कर्नाटक नेवासियन' की संज्ञा से अभिहित किया है ( बैनर्जी, के0 डी0, 1757, मिडिल पेलियोलिथिक इण्डस्ट्रीज ऑफ दि डेकन, थीसिस, डेकन कालेज, पूना–6)। इस उद्योग में शर (Point) की बहुलता थी। इसके अतिरिक्त विविध प्रकार के स्क्रेपर छिद्रक आदि भी इस उद्योग के अभिन्न अंग है। जिस समय बैनर्जी ने अपना शोध प्रबंध प्रस्तुत किया था उस समय भारतीय प्रागितिहास अपनी शैशवावस्था में था तथा उस सयम तक भारतीय प्रस्तर युगीन विभाजनों का स्वरूप भी स्पष्ट नहीं था। कालान्तर में **शोरापुर दोआब** (पद्दैया, के0, 1968, प्री ऐण्ड प्रोटोहिस्टारिका इनवेस्टिगेशनस इन शोरापुर दोआब, थीसिस, डेकन कालेज, पूना–6) तथा **कृष्णाघाटी** (पप्पू, आर0 एस0, 1974, प्लायस्टोसीन स्टडीज इन दि अपर कृष्णा बेसिन, थीसिस, डेकन कालेज, पूना–6) में व्यवस्थित रूप से कार्य हुआ। शोरापुर दोआब में पद्दैया को मध्य पुरापाषाण काल के उपकरण आठ स्थलों–उद्योग स्थलों एवं अन्य स्थलों—से प्राप्त हुये थे। मध्य पुरापाषाण–काल के उपकरण उनको दो प्रकार के ग्रैवल–नदी घाटी के ग्रैवल तथा उच्च स्थलीय ग्रैवेल (High Level Gravel) से उपलब्ध हुये थे– उस क्षेत्र की नदियों में तीन निक्षेपणजनित वेदिकाओं के निर्माण के प्रमाण मिलते है। प्रथम 45 फी0 पर, दूसरा 25 फी0 पर तथा तीसरा 5 फीट पर है। प्रथम वेदिका का निर्माण प्राचीन जलोढक जमाव से हुआ है जिसमें उच्च स्थलीय ग्रैवेल (High Level Gravel), नदी–घाटी ग्रैवेल (Bed Level Gravel) तथा पीली भूरी गाद मिट्टी (Yellow Brown Silt) के निक्षेपण है। स्थलीय ग्रैवेल के संबंध में यह धारणा है कि इसका निक्षेपण मध्य पुरापाषाण काल के पहले हुआ था।( इण्डियन आर्क्यालजी–ए रिव्यू 1968–69, पृ0 22) काली भूरी गाद मिट्टी से दूसरी वेदिका तथा बलुई पेबुल–ग्रैवेल से तृतीय वेदिका का निर्माण हुआ है। उच्च स्थलीय तथा नदी घाटी के ग्रैवेल में मध्य पुरापाषाण काल के उपकरण मिलते है। काली भूरी मिट्टी के जमाव में ब्लेड उपकरण मिले है।

मध्य पुरापाषण काल के उल्लेखनीय स्थलों में भीमा नदी पर स्थित **हगरगुन्दगी** है। यहाँ से 181 उपकरण प्राप्त हुये थे जिनमें से 43 उपकरण 'In-situ' स्थिति में थे (पद्दैयया, के0, 1968, पार्श्वोद्धरित) अधिकांश उपकरण चाल्सेडनी के हैं जिनमें विविध प्रकार के स्क्रैपर, शर, छिद्रक, फलक–ब्लेड, ब्लेड आदि है। उपकरणों के अतिरिक्त जानवरों के जीवाश्मित अवशेष–जबड़े, कंधे पैर आदि की हड्डिया आदि भी उपकरणो से सम्बंधित मिले है। ये जीवाश्म बॉस (Bos), एलीफस (Elephas), तथा सरविड (Cervidae) परिवार के हैं। इसके अतिरिक्त डॉन तथा कृष्णा के किनारे भी और स्थल प्रकाश में आये है। इसमें प्रमुख हुसंगी (Hunsgi), हेगरातगी (Hegratgi), देवपुर (Deopur) आदि है।

पद्दैया ने उपकरणों का वर्गीकरण उनके आकार तथा कार्यांग के आधार पर तीन वर्गो में किया है:–

1. धारदार उपकरण (Edge Tools)

Scanned with OKEN Scanner

2. इतर.–धारदार उपकरण (Non-Edge Tools)
3- बहु प्रयोजन उपकरण (Multiple & Multipurpose Tools)

उपयुर्क्त वर्गो में विविध प्रकार के स्क्रेपर, शर, छिद्रक–स्क्रेपर आदि सन्निहित हैं।

## कृष्णा घाटी

कृष्णा घाटी के ऊपरी भागों में मध्य पुरापाषाणकालीन स्थलों को प्रकाश में लाने का श्रेय पप्पू (पप्पू, आर० एस०, 1974, पार्श्वोद्धरित, पृ० 85–115) को है। इस क्षेत्र में बीस स्थलों से उन्होंने 3,311 उपकरणों का संकलन एवं अध्ययन किया। इन स्थलों में से 14 कृष्णा की घाटी में तथा 6 घाटप्रभा के किनारे हैं।

इन सभी स्थलों में कालदगी (Kaladgi) क्षेत्र सबसे महत्वपूर्ण है। इसमें से कोवल्ली तथा आंगबाड़ी उल्लेखनीय है। सबसे अधिक उपकरण कोवल्ली से प्राप्त हुये है। कोवल्ली घाटप्रभा के बायें तट पर स्थित है। यहॉ पर चर्ट काफी संख्या में उपलब्ध है। ये प्राकृतिक कारणो से टूटकर ढोके के रूप में मिलते हैं। यहॉ पर मध्य पुरापाषाणिक तथा मध्य पाषाणिक (Mesolithic) उपकरण उपलब्ध हुये हैं।

उपकरणों का प्रातिनिधिक संग्रह करने के लिए दो स्थलों पर 3 × 3 मीटर का वर्ग बनाकर उनसे उपकरणों का संग्रह किया गया था। इसके अतिरिक्त 1 × 1 मीटर के वर्ग का उत्खनन भी किया गया। इस विधि से संग्रह के फलस्वरूप सम्पूर्ण संकलन में उपकरण –.51%, फलक 19. 49%, कोर 10.91%, तथा अन्य 62.09% थे। सभी उपकरण अत्यन्त ताजी अवस्था में हैं। उनका स्थानान्तरण नहीं हुआ है। कुछ उपकरणों के ऊपर हल्का सफेद रासायनिक रंग मिलता है। अधिकांश उपकरण फलकों पर निर्मित हैं जो 20 मि0मी0 से 125 मि0मी0 तक है। बड़े फलकों को प्रस्तर हथौड़ा पद्धति से निकालते थे तथा छोटे फलकों के लिए कोमल हथौड़े का प्रयोग करते थे। कुछ फलकों को देखने से प्रतीत होता है कि उन्हें लेवालेवा पद्धति का ज्ञान हो गया था। फलकों पर पुर्नगढ़न करके उनको उपकरण में परिवर्तित करते थे। विविध प्रकार के स्क्रेपर (80%), छिद्रक (11%) तथा शर (7%), इस उद्योग के प्रमुख उपकरण थे। यह उल्लेखनीय है कि मध्य पूर्व पाषाणिक उपकरणों पर पुनर्गढ़न एक ही पक्ष से किया गया है, जबकि आशूलियॉ उद्योग में दोनों ओर से मिलता है।

Scanned with OKEN Scanner

# 31

# महाराष्ट्र प्रदेश

## (Maharashtra Pradesh)

मध्य पुरापाषाण काल के उपकरण महाराष्ट्र में अब तक लगभग सभी क्षेत्रों से प्रतिवेदित हो चुके हैं ( इण्डियन आर्क्यालजी–ए–रिव्यू, 1954–55, 1957–58, 195–60, 1960–61,1961–62, 1963–64, 1964–65, 1967–68, 1968–69, ,1969–70). प्रारम्भ में टॉड (Todd) ने बम्बई के निकट खाण्डिवली से प्रस्तर उद्योगों की एक श्रृंखला (Series) के प्राप्ति की घोषणा की थी। इसका विवरण पहले दिया जा चुका है। कालान्तर में सांकलिया तथा उनके सहयोगियों ने उसका पुनः निरीक्षण किया था, किन्तु उन्हें टॉड द्वारा वर्णित सांस्कृतिक अनुक्रम नहीं मिला। डॉ0 सांकलिया ( सांकलिया, एच0 डी0, 1974, पाश्र्वोद्धरित, पृ0 159) के अनुसार वहाँ पर निक्षेपण तथा अपरदन के दो चक्र हैं। इनमें प्रथम ग्रैवेल जमाव तो प्राचीन तथा मूल ग्रैवेल जमाव है और दूसरा पुनर्निक्षेपित (Redoposited) हो सकता है। उनके अनुसार प्रथम आर्द्रकाल तथा उसके बाद के शुष्क काल में पैबुल ग्रैवेल तथा गाद मिट्टी का मोटा जमाव हुआ, यही प्रथम वेदिका भी हुयी। दूसरे आर्द्रकाल में इस वेदिका का अपरदन हुआ तथा एक कोणिक ग्रैवेल (Rubble gravel) जिसमें पहले की सामग्री भी निहित थी, का निर्माण हुआ। इसके बाद में, शुष्ककाल में गाद मिट्टी का एक महीन जमाव हुआ। इन सम्पूर्ण जमावों से सांकलिया (वहीं, पृ0 160) तथा उनके सहयोगियों ने 85 उपकरणों का संग्रह किया था। उसमें 30 उपकरण आधारिक ग्रैवेल से प्राप्त हुये थे। आधारिक ग्रैवेल तथा उसके ऊपर के जमावों से उपलब्ध उपकरणों में तकनीकी दृष्टिकोण से कोई अन्तर नहीं था। उपकरण समुदाय में कोर, विविध प्रकार के स्क्रेपर, रौष्ट्रोकैरीनेट, शर अथवा छिद्रक, ब्यूरिन कार्यांग युक्त नोडूल थे। इनके अतिरिक्त विविध प्रकार के फलक भी प्राप्त हुये है।

### अहमदनगर

महाराष्ट्र में सबसे महत्वपूर्ण मध्य पुरापाषाणिक स्थल अहमदनगर जिले में प्रवरा तथा गोदावरी नदियों के किनारे है। इनमें सबसे प्रमुख नेवासा है जहाँ पर सर्वप्रथम मध्य पुरापाषाणकाल के उपकरण स्तरित जमावों में प्राप्त हुये थे। स्तरों के क्रम का विस्तृत विवरण पीछे दिया जा चुका है। नेवासा में मध्य पुरापाषाणकाल के उपकरण मध्यवर्ती ग्रैवेल जमाव से उपेलब्ध हुए थे।

यहाँ तथा चिरकी नेवासा से संकलित उपकरणों पर कालान्तर में हुए अध्ययन ( एस0 मिश्र 1986) से प्रतीत होता है कि ये उपकरण मध्य पुरापाषाणकाल के नही थे। ये '*light duty tools of theAcheulianAssemblage*' (एस0 मिश्र 1995). कहे जा सकते हैं। चिरकी नेवासा में सिलिका पर बने फलक (Light duty tools) उसी स्तर से आ रहे थे जहा से बसाल्ट पर बने (*heavy duty tool of theAcheulian* ) आ रहे थे ( कार्विनस 1983).

पुणे में मीना नदी के दाहिने तट पर रंजनी स्थल पर एक ग्रैवेल से 9 कोर तथा डोलेराइट पर

Scanned with OKEN Scanner

बने 15 फलक, कोर, चक्राभ कोर आदि प्राप्त हुए थे।

इसी प्रकार के उपकरण गोदावरी पर स्थित बेल पांधरी (Bel Pandhari), सुरेगॉव (Suregaon) तथा कालेगांव में भी प्राप्त हुए थे। गोदावरी पर स्थित बेलपांधरी, सुरेगांव तथा कालेगांव में मध्यपुरापाषाण काल के उपकरण निम्नतम ग्रैवेल से उपलब्ध हुए थे। ऊपर वर्णित विवरण सांकलितया की प्रीहिस्ट्री ऑफ इण्ड़िया ऐण्ड पाकिस्तान पर आधारित है।) प्रारम्भ में सांकलिया की धारणा थी कि ये उपकरण इन सभी स्थलों पर निम्नतम ग्रैवेल से प्राप्त हुए हैं, क्योंकि सम्भवतः इसके पहले का जमाव उन स्थलों पर परिलक्षित नहीं था।

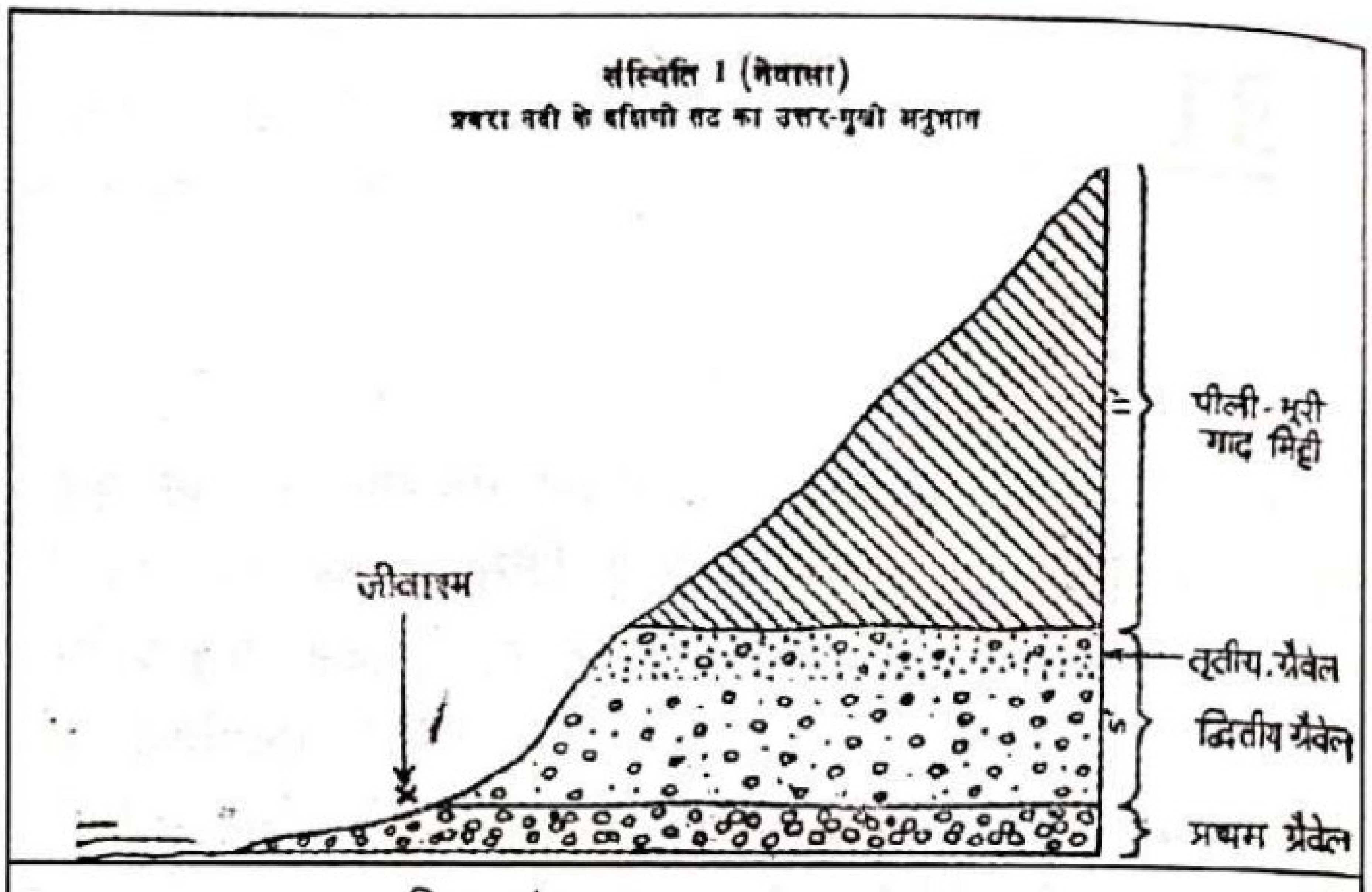

चित्र सं0–57

बालपांधरी में कालान्तर में एक नाले में उन्हें पूर्ववर्ती उपकरण पूर्ववर्ती ग्रैवेल से उपलब्ध हुए। सांकलिया की धारणा है कि द्वितीय ग्रैवेल प्रथम तथा तृतीय ग्रैवेल से नितान्त भिन्न है। नान्दूर माधमेश्वर में भी नदी की घाटी में पूर्ववर्ती ग्रैवेल के जमाव मिले थे। इस प्रकार इस ग्रैवेल (जिससे मध्य पुरापाषाण काल के उपकरण मिलते है) की मध्य स्थिति के-सम्बंध में किसी सन्देह की सम्भावना नहीं रह जाती है। इस ग्रैवेल में जैस्पर, चाल्सेडनी तथा जीयोलाईट की बहुलता है तथा ट्रैप दुलर्भ हैं। ग्रैवेल जमाव में क्रॉस संस्तरण (Cross bedding) मिलता है तथा उसका जमाव छिछले पानी में हुआ था। नेवासा में यह II ग्रैवेल, Loc.I, Loc.V तथा Loc.VII में प्रथम ग्रैवेल के ऊपर है तथा उन स्थानों पर जहाँ प्रथम ग्रैवेल नहीं है वहाँ पर भूरी गाद मिट्‌टी के सहारे (Against) मिलता है। डॉ0 सांकलिया का विचार है कि गोदावरी प्रवरा नदियों में अपने उद्‌गम से संगम तक प्रथम ग्रैवेल चक्र के उपरान्त (Earliest gavel phase) के ऊपर भूरी गाद मिट्‌टी का

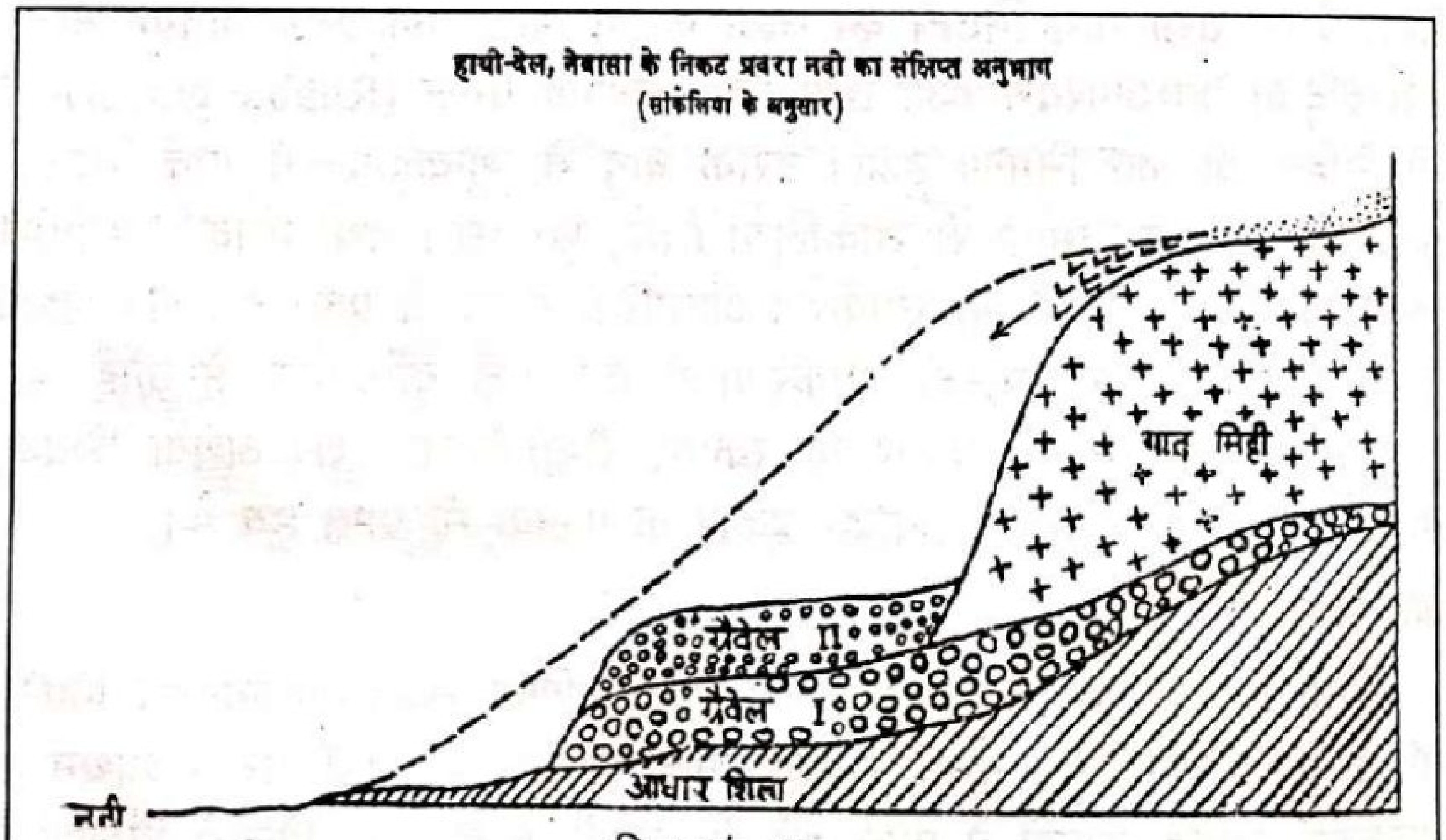

चित्र सं.–58

मोटा जमाव हुआ। इसी ने इन नदियों में प्रथम वेदिका का निर्माण किया। बाद में नदी इस ऊँचाई तक किसी आर्द्र काल में नहीं पहुँच सकी, अतः बाद में आर्द्र तथा शुष्क कालों में ग्रैवेल और गाद मिट्टी का जमाव इस भूरी गाद मिट्टी के सहारे (Against) मिलते हैं जिसने द्वितीय वेदिका को जन्म दिया। सांकलिया के अनुसार ऊपर वर्णित जमावों का प्रस्तावित अनुभाग इस रेखा में दिया गया है। ( सांकलिया की पुस्तक प्री–हिस्ट्री ऐण्ड प्रोटो हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ऐण्ड पाकिस्तान, 1974 के Fig. 36 पर आधारित।)

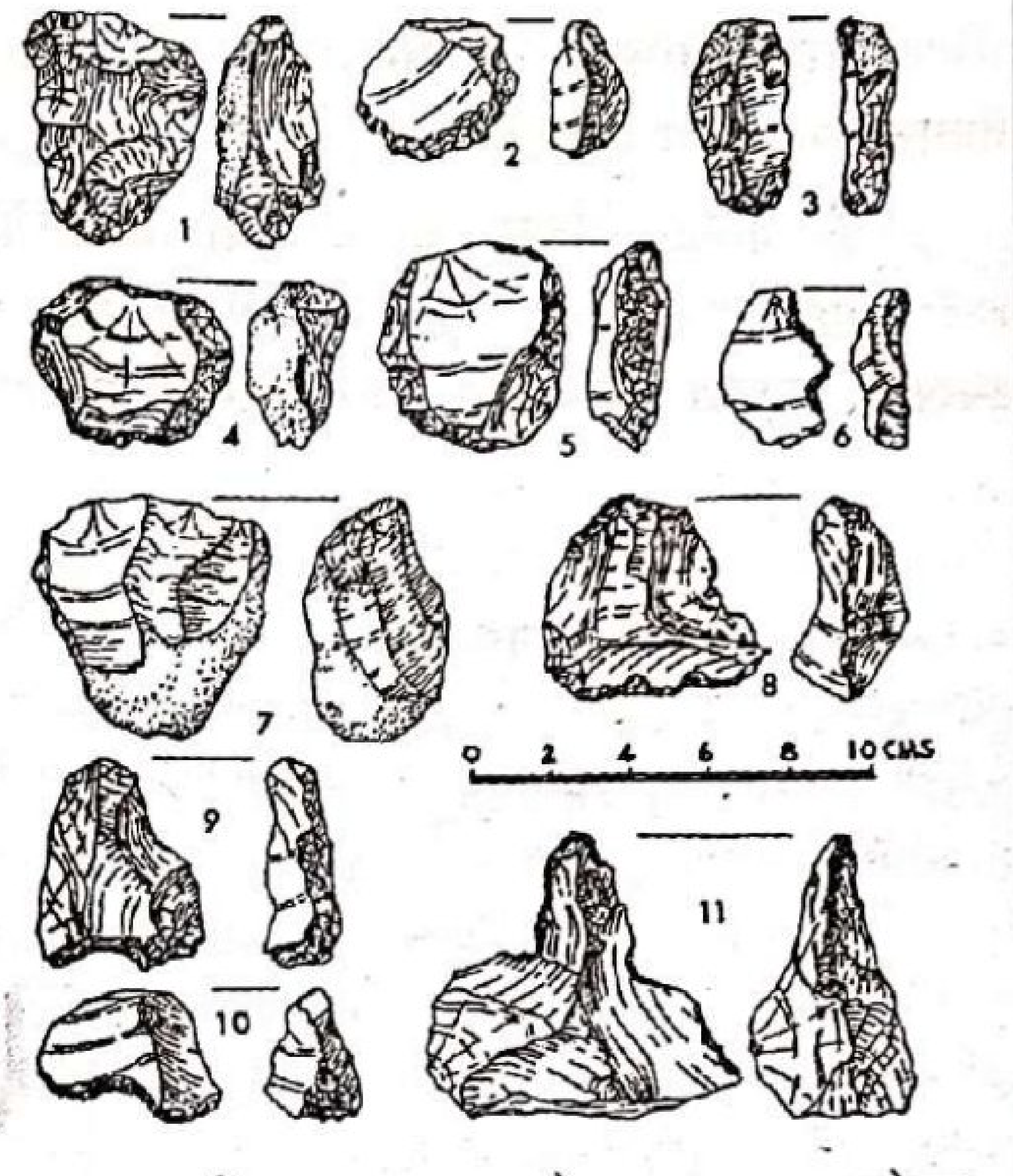

मध्य पुरापाषाणिक उपकरण–1कोर,2,6,8,9,10,11स्क्रेपर 3 ब्लेड फलक,4,5,7 कोर चित्र सं0–59

काले गांव में मध्य पुरापाषाणकालीन ग्रैवेल जमाव से उपकरणों के साथ Bos namadicus Falc. का सीगों सहित एक सिर (Skull) प्राप्त हुआ था। जिसे मध्यप्रातिनूतन कालीन कहा गया था, किन्तु अब C-14 तिथियों के साक्ष्यों के आधार पर इसे उच्च प्रतिनूतन कालीन कहा जा सकता है ( सांकलिया, एच0 डी0 1974, पार्श्वोद्धरित, पृ0 146). बेलपांधरी, कालेगांव, नेवासा तथा नान्दूर माधमेष्वर से प्राप्त उपकरणों में चार प्रमुख प्रकार के उपकरण मिले हैं –

| | |
|---|---|
| षर (Point) | 15.7 |
| स्क्रेपर | 57.5 |
| छिद्रक (Borer) | 24.9 |
| स्क्रेपर–कम–बोरर | 2.2 |

यह उल्लेखनीय है कि शरों में पुच्छल शर (Tanged points) एक स्कंधीय तथा द्विस्कंधीय (Single shouldered तथा double shouldered) दोनों ही हैं।

प्रवरा–गोदावरी घाटी के अतिरिक्त ताप्ती घाटी भी इस दृश्टि से उल्लेखनीय है कि यहां पर, ताप्ती की सहायक रंका नाला (इण्डियन आर्क्यालजी – ए रिव्यू, 1959–60, पृ0 33; 1960–61 पृ0 22) (Rankanala) पर कुम्भ्रपद तथा उभज के बीच पुरातत्व सर्वेक्षण के साली को, प्रस्तर उद्योगों का एक क्रम स्तरित जमावों से प्राप्त हुआ था। यहां पर पीले–भूरे–कंकड़–नोड्‌ूल युक्त गाद मिट्टी के जमाव में उत्तर आशूलियॉ (Late Acheulian) काल के उपकरण प्राप्त हुए थे। इसके बाद ऊपर के लाली लिए हुए भूरे क्रॉस संस्तरित बालुई ग्रैवेल (Reddish-brown Current or Cross-bedded Sandy gravel) जमाव से ब्लेड–फ्लेक–स्क्रेपर परम्परा के उपकरण जिसमें नालीमत कोर (Fluted core), चौड़े ब्लेड, ब्लेड–फलक, ब्यूरिन, स्क्रेपर, शर आदि उपलब्ध हुए थे। ये उपकरण पूर्ववर्ती आशूलियॉ उपकरणों से ही विकसित प्रतीत होते हैं। अधिकांश उपकरण हेमेटाइटिक बेसाल्ट (Heamatitic basalt) के बने हैं, किन्तु उनके साथ जैस्पर तथा ब्लड स्टोन का भी प्रयोग किया

Scanned with OKEN Scanner

गया था।

इसके ऊपर के कंकड़ ये युक्त पीले बलुई गाद मिट्टी के जमाव से लघुपाषाणोपकरण उपलब्ध हुए थे। इन उपकरणों के निर्माण में प्रमुखतया चाल्सेडनी, जैस्पर तथा अगेट का प्रयोग किया गया था।

समुचित प्रमाणों के अभाव में अभी यह कहना कठिन है कि यहां पर उद्योगों में एक विकासात्मक क्रम वास्तव में है।

ऊपर वर्णित नदियों की घाटियों के अतिरिक्त वार्धा तथा वैनगंगा की घाटियों में भी अनेक स्थल (वही, 1961–62, पृ0 30; 1963–64, पृ0 20; 1968–69; पृ. 16) से मध्य पुरापाषाणिक उपकरण प्रकाश में आये हैं, किन्तु उनके सम्बन्ध में विवरण अपर्याप्त है।

32

# मध्य प्रदेश
## (Madhya Pradesh)

मध्य प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों से मध्य पुरापाषाण काल के उपकरण प्रतिवेदित है। अधिकांश स्थलों पर ये निर्बध ग्रैवेल (Loose gravel) से नदियों की घाटियों में अथवा ऐसे ही स्थलों से उपलब्ध हुए हैं जिनके भू–वैज्ञानिक स्तर के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी नही है। ऐसी स्थिति में केवल उन्हीं स्थानों का विवरण दिया जा रहा है जो अन्य की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है अथवा जिनके विशय में प्रकाषित सामग्री उपलब्ध है।

### धसान तथा बेतवा घाटी

अपने शोध–प्रबंध (सिंह, रामेष्वर, 1965, पेलियोलिथिक इण्डस्ट्रीज ऑफ नार्दर्न बुन्देलखण्ड, थीसिस पूना विष्वविद्यालय तथा डेकन कालेज पुस्तकालय, पृ0 115–165) के संदर्भ में रामेश्वर सिंह ने धसान तथा बेतवा नदियों का सर्वेक्षण किया था जिसके फलस्वरूप धसान पर सिहोरा के निकट तथा बेतवा पर गोंची में मध्य पुरापाषाण काल के उद्योग–स्थल प्रकाश में आये। रामेश्वर सिंह ने इस उद्योग को उत्तरपेलियोलिथिक (Later Palaeolithic) कहा है। उनके अनुसार इस उद्योग के विकास के पूर्व ही 'Early Palaeolithic' (Lower Palaeolithic) का अन्त हो चुका था। यहां पर भी द्वितीय ग्रैवेल से छोटे आकार के हैण्डैक्स, नोकदार उपकरण, लम्बे फलक तथा फलक–ब्लेड उपलब्ध हुए हैं। सिंह का विचार है कि विाकस की प्रारम्भिक अवस्थाओं में उपकरण निर्माणकर्ताओं ने पूर्व प्रचलित प्रकारों का ही अनुकरण किया था। इसके प्रमाण के फलस्वरूप उपत्रिकोणात्मक (Sub-Trianguler), अण्डाभ हैण्डैक्स (Ovate) तथा U – आकार के क्लीवरों की गणना की जा सकती है। कालान्तर में अण्डाकार आकार छोटे होते गए तथा उनसे ही उपत्रिकोणात्मक आकारों के छोटे शर तथा छिद्रकों का विकास हुआ। क्लीवरों का स्थान भी विविध प्रकार के स्क्रेपरों ने ले लिया और बड़े फलकों के स्थान पर छोटे फलकों का निर्माण होने लगा। सम्भवतः अन्तिम काल में स्क्रेपर, अंगुष्ट नख–स्क्रेपर (Thumb-nail Scraper) में परिवर्तित हो गए और फलक–ब्लेड छोटे समानान्तर ब्लेडों में। सिंह के विचार में उपकरण तथा फलक से निर्माण के तकनीकी विकास का अध्ययन किया जा सकता है।

उपकरणों के निर्माण के लिए प्रमुखतया चर्ट (Chert) पत्थर का उपयोग किया गया है।

सिंह ने उपकरणों के विकास का अनुमान प्रारूपात्मक आधार पर ही किया था। उनके पास स्तरीय प्रमाणों का सर्वथा अभाव था। वास्तव में इसके लिए ठोस भू–वैज्ञानिक आधार आवश्यक है। अब यह आधार उत्तर प्रदेश में बेलन घाटी से उपलब्ध है।

धसान के ऊपर सागर से 16 मील पश्चिम में सिहोरा तथा बेतवा पर मुंगवल स्टेषन के चार मील पूर्व में गोंची स्थित है। दोनों स्थलों पर सम्मिलित रूप से 551 उपकरण (321 सिहोरा तथा 230 गोंची में) प्राप्त हुए थे। यहाँ पर भी उपकरणों के निर्माण के लिए चर्ट का ही प्रयोग विशेष रूप से किया गया है जो उन स्थलों पर उपलब्ध है। उपकरण समुदाय में हैण्डैक्स, क्लीवर, स्क्रेपेर, शर, ऑल (Awl), ऑल–कम–स्क्रेपर, कोर आदि हैं। सिहोर उद्योग में स्क्रेपर का अनुपात गोंची की

Scanned with OKEN Scanner

अपेक्षा अधिक है। अन्य उपकरणों का अनुपात लगभग एक समान ही है।

यह उल्लेखनीय है कि फलकित आघात–स्थल के फलक तथा गढ़ित कोर (Prepared Core) भी विद्यमान हैं। इससे स्पष्ट है कि लेवालेवा तकनीक का विकास हो चुका था, किन्तु पूर्ण विकसित लेवालेवा फलक अधिक नहीं है। उपकरण निर्माण के लिए प्रायः सभी प्रविधियों का प्रयोग किया जाता था। ब्लेड तथा ब्लेड फलकों की संख्या बहुत सीमित है। पुनर्गढ़न का प्रयोग भी अधिक नहीं मिलता, किन्तु जहॉ कहीं भी उसका उपयोग किया गया है वहां वह उनकी कार्यदक्षता का परिचायक है।

रामेश्वर सिंह के अतिरिक्त जोशी (जोशी, आर० वी०, 1961, 'स्टोन एज इण्डस्ट्रीज ऑफ दि दमोह एरिया', मध्य प्रदेष एंशिएंट इण्डिया नं० 17), बृंजेट अलचिन (अलचिन बृजेट, 1959, 'दि इण्डियन मिडिल स्टोन एज , सम न्यू साइट्स इन सेन्ट्रल ऐण्ड सदर्न इण्डिया, ऐण्ड देयर इम्पलीकेशन्स' ब० इन्स० ऑफ आर्क्यालजी) खत्री (खत्री, ए०पी०, 1957, 'स्टोन एज कल्चर्स ऑफ मालवा' थीसिस, डेकन कालेज, पूना तथा इण्डियन आर्क्यालाजी – ए रिव्यू, 1959–60 ) आदि को भी मध्य पूर्व पाषाणिक स्थलों को प्रकाश में लाने का श्रेय है, किन्तु स्तरीकरण तथा उपकरणों के दृष्टिकोण से उनमें से कोई भी विशेष उल्लेखनीय नहीं है।

## मध्य सोन घाटी

स्तरीकण एवं उपकरणों की दृष्टि से मध्य प्रदेश में सीधी डिस्ट्रिक्ट में सिहावल के निकट जोगदहा पुल से लेकर गोपद संगम तक का क्षेत्र महत्वपूर्ण है। यहां पर गत वर्षों में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पुरातात्विक दल (इस अभियान में डॉ० राधाकान्त वर्मा, श्री विद्याधर मिश्र, बृज बिहारी मिश्र, रणजीत सिंह, जगन्नाथ पाल आदि) ने भी सहयोग दिया। भारतीय भू–वैज्ञानिक सर्वेक्षण से पेलियॉण्टोलाजिकल सेक्शन के सर्वश्री दास शर्मा तथा विश्वास ने भी भू–वैज्ञानिक स्तरों का अध्ययन करके उपकरणों से सम्बन्धित करने का प्रयास किया है ( Sharma and Clark 1983; Clark and Williams 1990)। इसमें 23 फैक्ट्री साइट तथा पटपरा जमाव मे द्वितीय संदर्भ में 63 पुरास्थल मिले हैं। क्षेत्र का सर्वेक्षण अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ जिसपर आगे विचार किया गया है। मध्य पुरापाषाणिक उद्योग को पटपरा जमाव से सम्बधिंत किया गया है। विस्त्रित विवरण के लिए देखिए–

मध्य पुरापाषाणिक उद्योग–स्थल कैमूर की दक्षिणी ढाल पर मध्यवर्ती कटक (medial ridge) जो सोन के बाये तट के समानान्तर चलती है पर स्थित हैं। संकलित उपकरणों में स्क्रपेर, चक्राभ प्वाइण्ट, बोरर, ब्लेड, कोर आदि हैं। निर्माण के लिए चर्ट, क्वार्टजाइट, फ्लिण्ट, जैस्पर आदि का उपयोग किया गया है। प्रायः चर्ट के चिपटे नोडूल से फलक निकाले गए हैं। कुछ फलक तथा कोर पर फलकित आघातस्थल मिलते है। उपकरणों पर दोनो तरफ से पुनर्गठन मिलता है।

## उद्योग

यहाँ के निम्न पुरापाषाणकाल के समान मध्य पुरापाषाणिक उद्योग भी बहुत विकसित था। भारत के अन्य क्षेत्रों के समान यहाँ का मध्य पुरापाषाणिक उद्योग फलकबहुल है। अधिकांशतया सभी उपकरण फलकों पर निर्मित हैं। फलकों को निकालने के लिए अप्रत्यक्ष प्रविधि, बेलनाकार अथवा कोमल हथौड़ा पद्धति का प्रयोग होने लगा था। कुछ फलकों के ऊपर पड़े फलक चिन्हों तथा उनके फलकित आघात–स्थलों को देखने से स्पष्ट है कि लेवालेवा प्रविधि का प्रयोग होने

Scanned with OKEN Scanner

लगा था।

निम्न पुरापाषाणकालीन उपकरण मध्य पुरापाषाणिक स्तर से नहीं मिले हैं। किन्तु इस सन्दर्भ में एक क्लीवर विशेष उल्लेखनीय है जो आकार में अत्यन्त छोटा तथा सुडौल है। ऐसा प्रतीत होता है कि बदलती हुई परिस्थिति में भी कभी–कभी पूर्ववर्ती उपकरणों का निर्माण परिवर्तित स्वरूप में होता था। चूंकि कई हजार मध्य पुरापाषाणिक उपकरणों में कवेल एक ही क्लीवर मिला है, अतः स्पष्ट है कि उनका कोई औद्योगिक महत्त्व नहीं होगा।

यहां के उपकरण समुदाय में विविध प्रकार के स्क्रेपर, चौड़े तथा लम्बे ब्लेड–फलक, ब्लेड, छिद्रक तथा शर विशेष उल्लेखनीय है। अधिकांश उपकरणों पर पुनर्गढ़न भी मिलता है। पुनर्गढ़न निश्चित रूप से प्रत्यक्ष संघात प्रविधि तथा कोमल हथौड़े से किया जाता था। कभी–कभी ऐसा भी लगता है कि निपीड प्रविधि का भी प्रचलन हो गया था, किन्तु इसके प्रमाण अधिक नहीं है। पुनर्गढ़न प्रायः एक पक्ष से ही होता था, किन्तु उभयपक्षीय पुनर्गढ़न के प्रमाण भी उपलब्ध हैं

मध्य पूर्वपाषाणिक उपकरण—सोनघाटी

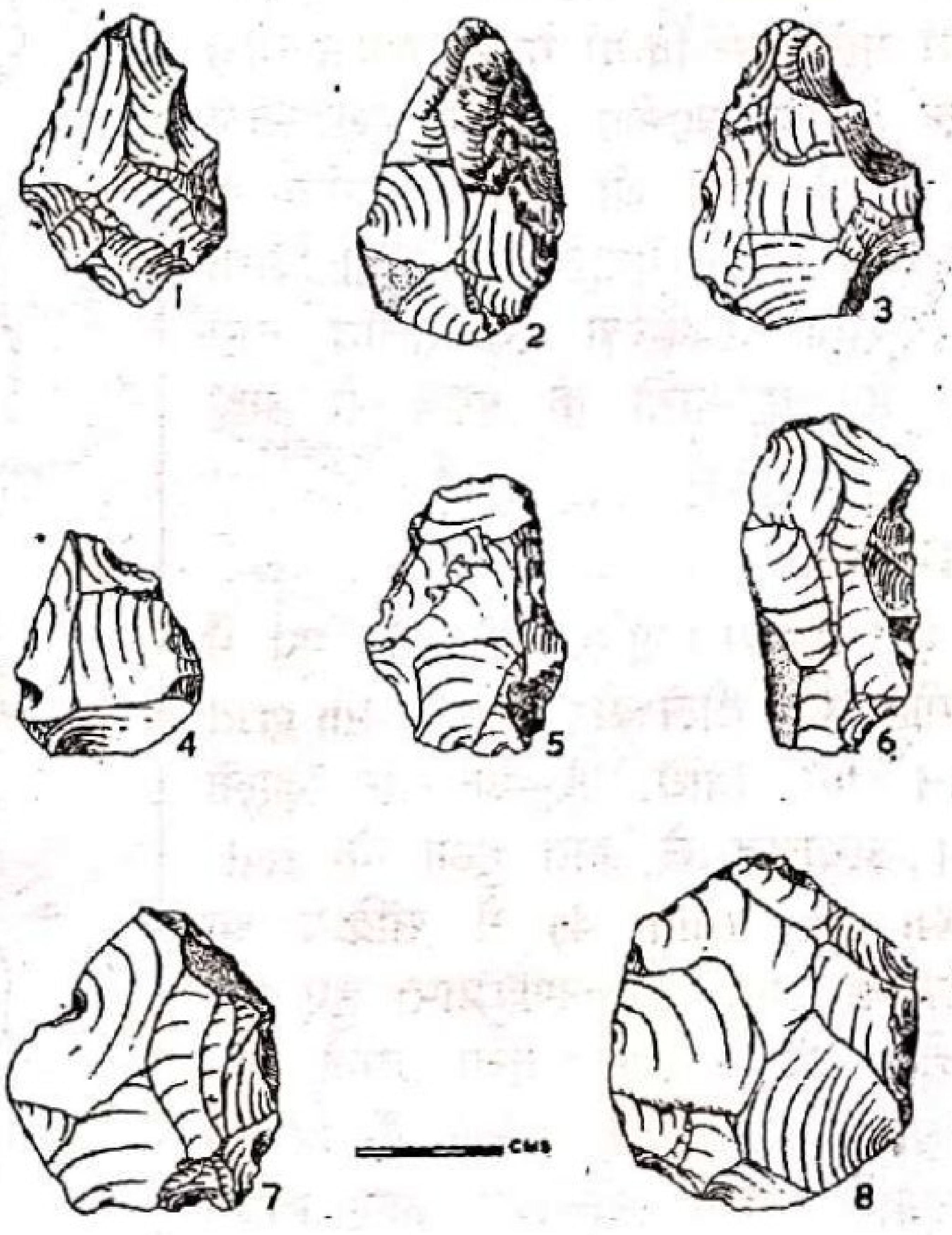

मध्य पुरापाषाणिक उपकरण चित्र सं0 60

उपकरणों के निर्माण के लिए महीन कणों के पत्थरों का ही चयन किया गया है। क्वार्टजाइट आदि के बने उपकरण इस क्षेत्र में नगण्य है। अधिकतर फ्लिण्ट, चर्ट, जैस्पर, ब्लैक स्टोन आदि का ही उपयोग हुआ है।

मध्य पुरापाषाणिक उपकरणों से सम्बन्धित स्तर से एलीफस, बॉस, ईक्वस, कार्निवार, बाइसन, सुस, घवियालिस, चेलोनिया आदि के बहुत अधिक संख्या में जीवाश्म मिले हैं।

भोपाल के निकट भोपाल कर्रवइ मार्ग पर मिश्र तथा पाल आदि ने (मिश्र, वी0 डी0 आदि 1997–98) कुछ पुरास्थल चिन्हित किए थे जिसमें मेनदौरी महत्वपूर्ण था ( पाल जे. एन. दी मिडिल पेलियोथिक कल्चर आफ साउथ एशिया)।

मध्य सोन घाटी में पटपरा गँाव के पूर्व में दो स्थलो परं उत्खनन (ब्लूमेनशाइन अदि 1983 ) किया गया जहाँ पर पटपरा जमाव अपरदित हो रहा था। क्षैतिज रूप से निर्मित लाल–भूरी तथा ग्रैवेल युक्त मिट्टी (red-brown clayey and gravelly clays) का जमाव प्रातिनूतन काल के प्रारम्भिक तथा मध्य वर्ती काल में हुआ होगा। खुले धरातल पर निम्न तथा मध्य पुरापाषाणिक उपकरण फैले थे।

## पटपरा – I

पटपरा I का धरातल लगभग चौरस था यहाँ पर 25 × 25 मी0 को 1 × 1 मी0 के वर्गो में धरातल के अध्ययन के लिए विभाजित किया गया। 170 से0मी0 के जमाव में तीन संस्तर चिन्हित किए गए। सबसे ऊपर वर्ती जमाव अपरदनित धरातल (weathered surface) था जिसका समीकरण पटपरा जमाव के चौथी युनिट से किया गया। लेविल 2 की अधिकतम मुटाई 130 से0मी0 थी यह लाल भूरी मिट्टी से निर्मित था। इसको तीन उपविभागों 2a,2b,2c में रंग के आधार पर बाटा गया। मध्यवर्ती 2b का रंग अन्य दो वर्गो से हलका था। इसी वर्ग से सभी उपकरण प्राप्त किए गए। लेबिल 3, 50 से0मी0 मोटा गहरा लाल भूरी मिट्टी तथा मैंगनीज से निर्मित था। इसका समीकरण पटपरा जमाव के तीसरी युनिट से किया गया। सबसे नीचे लेविल 4, 35 से0मी0 मोटा गहरा लाल भूरी ग्रैवेली मिट्टी थी इसका समीकरण पटपरा जमाव के दूसरी युनिट से किया गया। सभी उपकरण स्वस्थानीय नहीं लगते हैं। वे पानी के बहने से आए होगे।

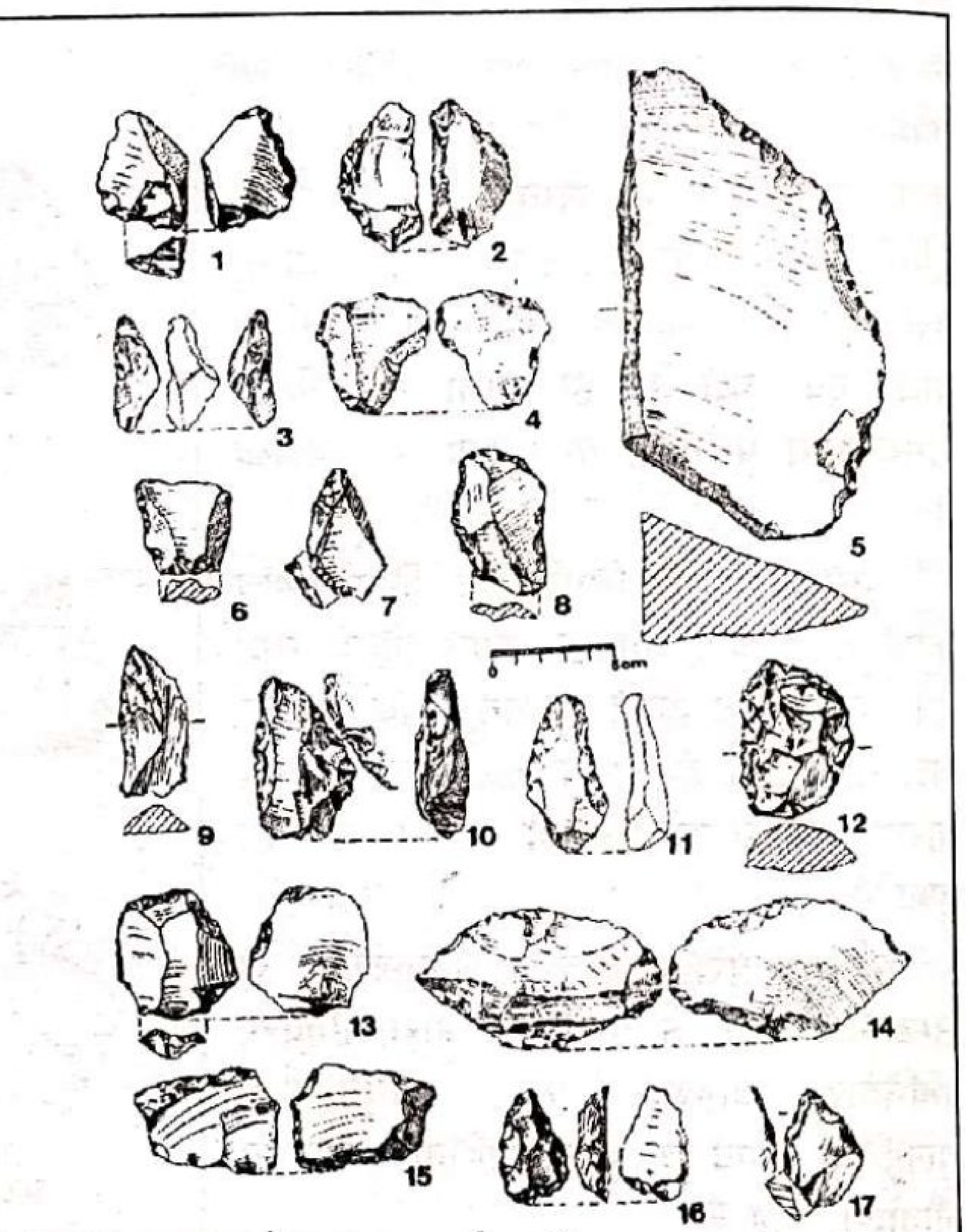

पटपरा उत्खनन से प्राप्त मध्य पूर्वपाशाणिक उपकरण चित्र सं0–61

## पटपरा II

यह पटपरा I से 0.5 कि0मी0 पूर्व में 4.5 मी0 ऊचे टीले से 2 × 11.14m grid सोपान पद विधि के अनुसार डाला गया। उत्खनन से ज्ञात हुआ कि red-brown clay (unit 4) में सक्रिय था जिसमें से सभी उपकरण प्राप्त हुए थे। उपकरण बिना घिसे तथा ताजे थे। जिससे अनुमान कर सकते हैं कि वे निकटवर्ती उद्योग स्थलों से आए होगे। निर्मित उपकरणें में विविध प्रकार के स्क्रेपरों के अतिरिक्त खात युक्त उपकरण, ब्यूरिन, बोरर, हैण्डैक्स, क्लीवर, चापर, सब–स्फेरायड आदि उल्लेखनीय हैं। क्वार्टजाइट तथा चर्ट का उपयोग प्रमुखता से किया गया है।

पटपरा में ही एक अन्य स्थल पर राधाकान्त वर्मा ने पटपरा जमाव में उत्खनन किया था (वर्मा आर0 के0 1991; 1994): वहाँ पर उन्हे टुफा जमाव में पत्तियों के जीवाश्मित अवशेष प्राप्त हुए।

## ढाबा पुरास्थल

सोन नदी के बाये तट पर ढाबा पुरास्थल पर 2009 में उत्खनन किया गया था किन्तु इसके

सम्बन्ध में विशेष जानकारी नही है।

## मैहर उत्खनन 1987,1988 तथा 1991

इस क्षेत्र में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के जे0 एन0 पाण्डेय तथा जे0 एन0 पाल ने तीन सत्रों में (1987, 1988 तथा 1991) में चार विभिन्न क्षेत्रों में उत्खनन किया है। इनमें से मैहर-II और मैहर-III से मध्यपूर्व पाषाणिक संस्कृतियों के अवशेष मिले।

## मध्यपूर्वपाषाण कालीन (मैहर-II तथा III)

मैहर द्वितीय, मैहर प्रथम से 270 मी0 दक्षिण में है। यह स्थल मैहर से लगभग 43 से0मी0 अधिक ऊचाई पर है। यहाँ पर सतह के ऊपर लाल तथा काले महीन कणिक क्वार्टजाइट के उपकरण मिले थे। यहाँ पर 1 × 1 मी0 के 25 वर्ग डाले गए थे। धरातल पर फलक, फलकों के टुकड़े, कोर, पुनर्गठित फ्लेक, ब्लेड तथा कुछ स्क्रेपर और क्लीवर भी मिले थे।

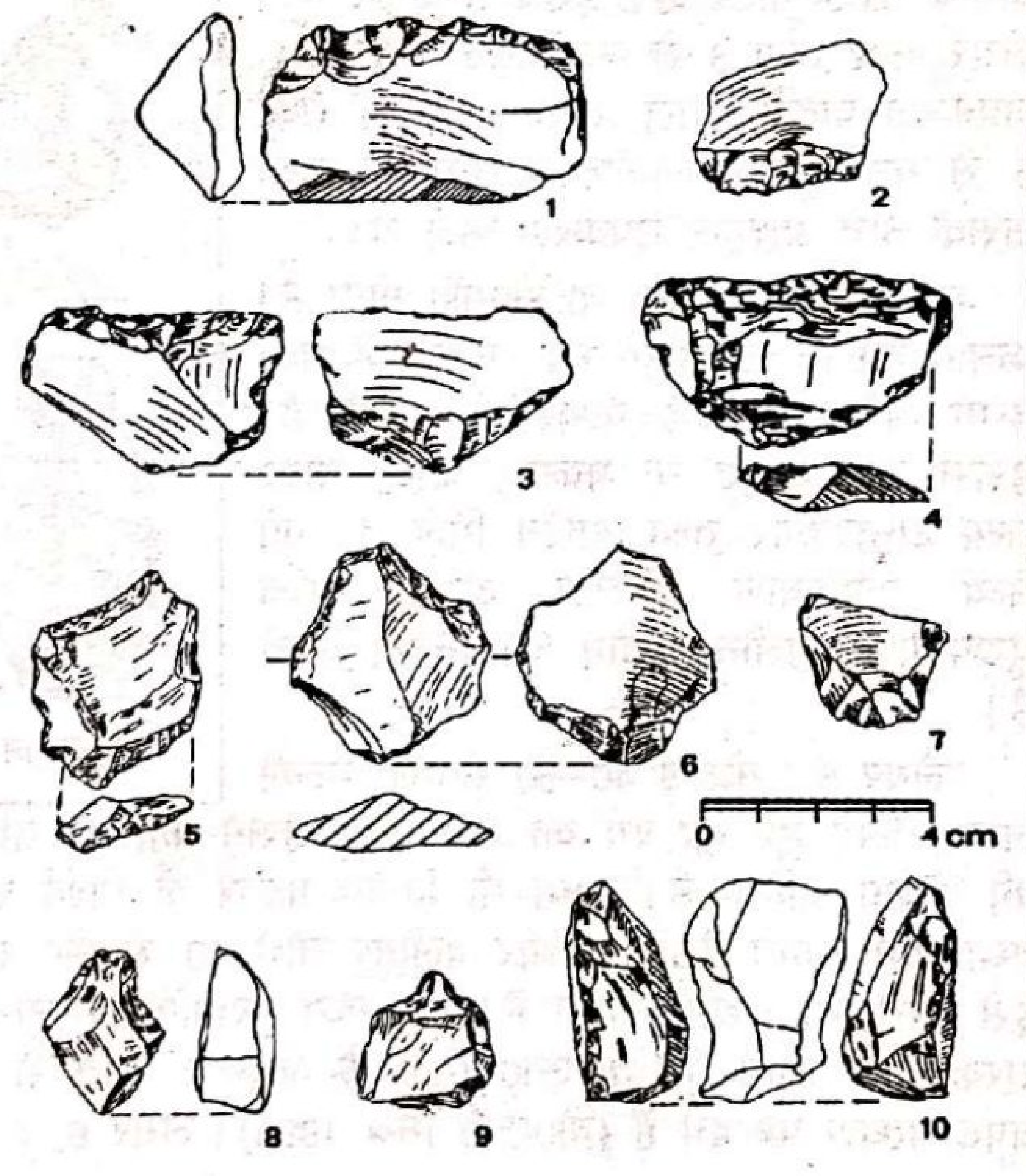


पटपरा उत्खनन से प्राप्त मध्य पुरापाषाणिक उपकरण : चित्र सं. 62

मैहर तृतीय, मैहर प्रथम के दक्षिण में 345 मी0 की दूरी पर था। इसका धरातल, मैहर पुरास्थल से 50 से0मी0 नीचे है। यहाँ पर 1 × 1 मी0 के 25 वर्ग डाले गए। धरातल के उपकरणों को नक्शे पर डालने के बाद 3 × 3 मी0 का एक गर्त 62 से0मी0 की गहराइ तक खोदा गया। उत्खनन के फलस्वरूप 20 से0मी0 मोटा लाल जमाव प्रकाश में आया जिसके नीचे मध्यपूर्व पाषाण युगीन उपकरण थे। उत्खनित उपकरण समुदाय में कोर, डिस्क्वायड, स्क्रेपर, फलक, पुनर्गठित फलक आदि थे।

सभी उपकरण चर्ट, क्वार्टजाइट तथा चाल्सेडनी से निर्मित हैं। इनको दो वर्गों में विभाजित किया गया है।

1. अनुपयोजित फलक आदि
2. उपकरण

उपकरणों में पुनर्गठित ब्लेड तथा फलक, विविध प्रकार के ब्लेड, भुथड़े–पार्श्वब्लेंड, दन्तरित ब्लेड एवं विविध प्रकार के त्रिभुज, ल्यूनेट, अन्त स्क्रेपर, छिद्रक आदि थे।

Scanned with OKEN Scanner

## भीमबेठका उत्खनन

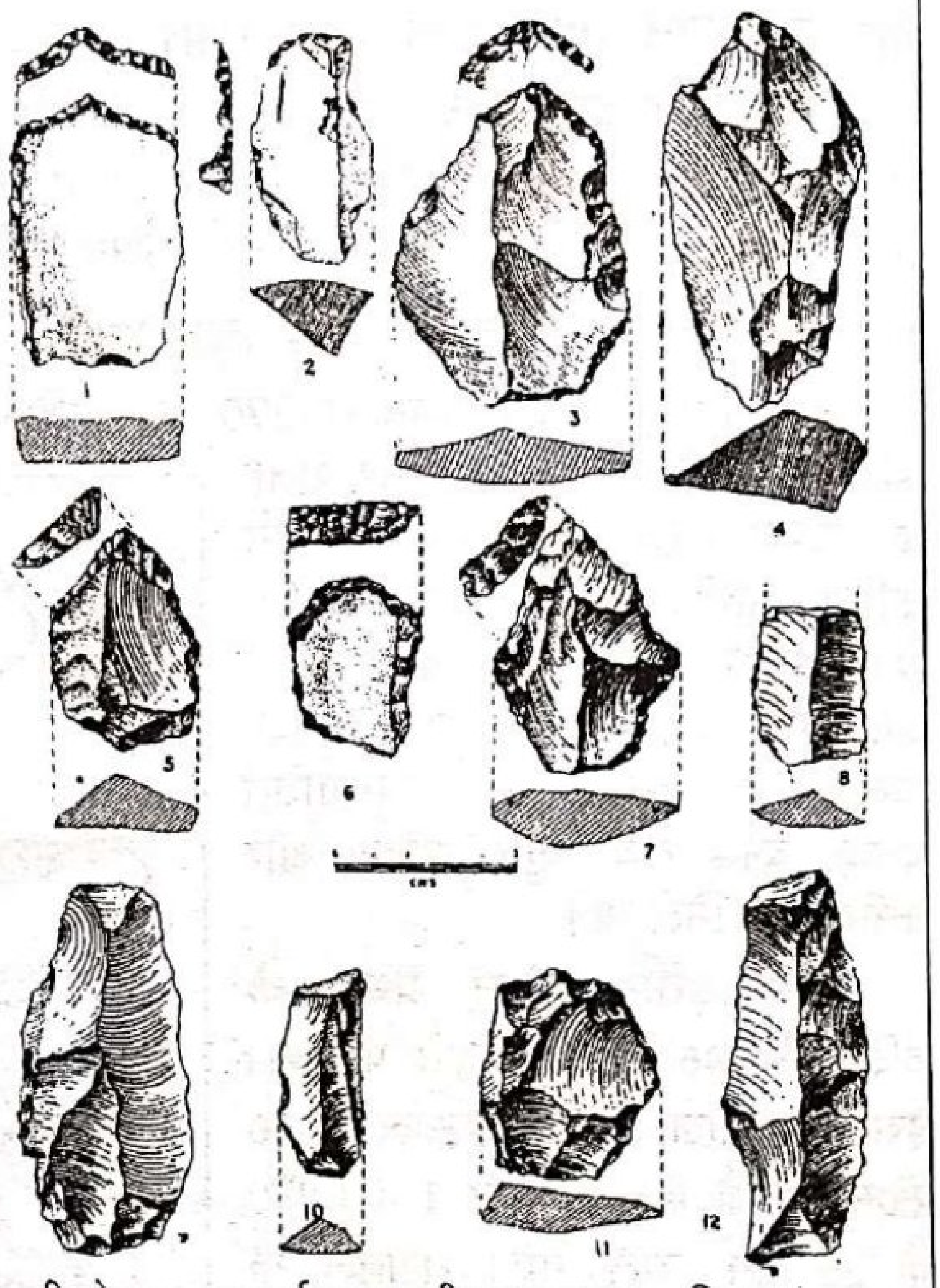
भीमबेठका मध्यपूर्वपाषाकालीन उपकरण : चित्र सं. 23

भीमबेठका में मिश्र, वी0एन0 ने शिलाश्रय नं0 23 में (1974, 'दि आशूलियन इण्डस्ट्री ऐन एनालिसिस' साइक्लोस्टाइल्ड कॉपी, सेमिनार, इण्डियन प्रीहिस्ट्री 1974, पूना तथा पुरातत्व नं0 8, पृ0 13–36 शिलाश्रय के भीतर लगभग 32 वर्ग मीटर के क्षेत्र मे उत्खनन किया था। जहाँ औसत जमाव 3.60 मीटर है। इसमें 8 लेयरें थी। लेयर 1, 2 तथा 3 से ज्यामितिक लघुपाषाण उपकरण पाटरी, सिल, लोहे आदि। 4 तथा 5 से मध्य पुरापाषाणकालीन उपकरण तथा उसके नीचे आश्यूल उपकरण मिले थे।

लेयर 4 : यह 15–20 से0मी0 मोटा है। जमाव की मिट्‌टी हल्के भूरे रंग की है तथा इनमे अपेक्षाकृत बडे पत्थर के टुकडे है। इससे क्वार्टजाइट के फलक, ब्लेड, पार्श्व तथा अन्तस्क्रेपर तथा ब्यूरिन मिले है। जो मध्य पुरापाषाण कालीन अथवा उच्च पुरापाषाण कालीन उद्योग का निर्देश करते है।

लेयर 5 : मोटाई 40–50 से0मी0 हल्की ललाई लिए हुए भूरे रंग का जमाव है। इसमें कोणिक तथा अन्य प्रकार के पत्थर के टुकड़े पहले की अपेक्षा अधिक है। इसमे भी विविध प्रकार के पार्श्व स्क्रेपर, अन्तस्क्रेपर लेवालवा फलक, ब्लेड तथा कभी–कभी हैण्डैक्स और क्लीवर नीचे 10 से0मी0 तक के जमाव मे मिलते है उत्खननकर्ता इसे मुस्तेरियॉ उद्योग कहते है। इसे मध्य पुरापाषाणकालीन कहा गया है इसका विकास आशूलिया संस्कृति से होता है। वी0एन0 मिश्र के अनुसार बहुत से उपकरण फलक के स्थान पर प्राकृतिक चपटे पत्थरों पर बने हैं (वी0एन0 मिश्र 1995)। लेयर 6, 7 तथा 8 से आशूलिया उपकरण मिले थे।

## आदमगढ़ शैलाश्रय

आदमगढ़ शैलाश्रय में लाल बालुयी मिट्टी के जमाव से क्वार्टजाइट तथा महीन कणिक पत्थरों से निर्मित 38 उपकरणों का समुदाय मिला था जिसमें चापर, चापिग, हैण्डैक्स, स्क्रेपर, बोरर तथा प्वाइण्ट थे (जोशी 1978 )।

## समनापुर

इस पुरास्थल पर 1987 से 1990 तक वी.एन. मिश्र तथा उनके सहयोगियों ने उत्खनन किया था। (वी.एन. मिश्र 1990)। यह 100 × 60 मी. के क्षेत्र में फैला हुआ है। पुरा स्थल नर्मदा के उत्तरी किनारे पर तथा नर्मदा से 1 कि.मी. उत्तर–पश्चिम में है। 44 वर्ग मी. के उत्खनन में 3000

उपकरण प्रकाश में आए। उपकरण चर्टी क्वार्टज पर बने हैं जो वहाँ पर प्रभूत संख्या में उपलब्ध हैं। कुछ उपकरण क्वार्टजाइट पेबुल और कौबुल पर बने है जो रीची नाले के ऊपरी भाग में उपलब्ध हैं तथा कुछ डालेराइट पर बने हैं जो वहाँ से उत्तर पश्चिम में 20 कि0मी0 दूर झीरी घाटी में उपलब्ध हैं। कुछ फलकित फलक मिले हैं किन्तु वास्तविक लेवलेवा नही हैं। उपकरणों में विविध प्रकर के स्क्रेपर, डेण्टिकुलेट, खात उपकरण, प्वाइण्ट, बोरर, पुनर्गठित फलक चाकू आदि है।

नर्मदा सागर डैम की डूब क्षेत्र में ओटा (1992) ने अनेक पुरास्थलों को चिन्हित किया।

मालवा में चम्बल तथा शिविना घटी में अनेक मध्य पूर्वपाषाणकालीन स्थ्ल प्रकाश में आए। 1957–58 में खत्री ने मन्दसौर, खड़की तथा नालगढ़ की पहचान की। चम्बल की पार्वती घाटी में लखविन्दर सिह ( 1998) ने पैची, कोला तथा भदौरा की पहचान की। इनके सम्बंध में अधिक जानकारी नही है।

Scanned with OKEN Scanner

# 33

# राजस्थान प्रदेश
## (Rajasthan Pradesh)

राजस्थान में मध्य पुरापाषाणकाल के साक्ष्य विशेष रूप से पश्चिमी भाग से प्रति वेदित हैं। इस क्षेत्र में लूनी तथा उसकी सहायक– जोजरी, रेरिया, बांदी सुक्री, लिलरी आदि पर अनेक स्थल मिले हैं। (मिश्र, वी0एन0 1963, 'पेलियोलिथिक कल्चर ऑफ वेस्टर्न राजपूताना', बलुटिन, डेकन कालेज रिसर्च इंस्टीट्यूट, वाल्यूम 21, पृ0 85–156)।

इस संस्कृति के अवशेष विविध पर्यावरणीय संदर्भो में मिले है जैसे बकलिया, मंगलपुरा, श्यामपुरा, जेनाना, इण्डोला की धानी में अमरपुरा लोम के नीचे, 2. 16 आर में टीले के विदरित होते सतह पर, 3. जयाल में ग्रैवेल कटक के किनारे, 4. लूनी तथा उसकी सहायक नदियों के बलुई–पेब्ली कांगलोमरेट में, 5. पाली जिले सोजत के पास चूनापत्थर की उपत्यका में, 6. जैसलमेर में नदियों की परित्यक्त घटी मैं।

उपकरण बनाने के लिए चर्ट, रियोलाइट, फासिल वुड, क्वार्टज तथा क्वार्टजाइट का प्रयोग किया गया है। उपकरणों में स्क्रेपर, चापिग उपकरण, क्लीवर, ब्लेड, ब्यूरिन, खात युक्त फलक आदि सम्मिलित हैं।

### लूनी घाटी

उपर्युक्त सभी नदी घाटियों में लूनी सबसे महत्वपूर्ण है। मिश्र के अनुसार लूनी में निम्न जमाव क्रम मिलता है (वही)।

1. सफेद चिकनी मिट्टी (White clay)
2. सिमेण्टेड ग्रैवेल (Cemented Gravel)
3. गाद मिट्टी तथा बालू (Silt and Sand)

1. सफेद चिकनी मिट्टी – यह चिपचिपी मिट्टी का सफेद अथवा हरे रंग का जमाव है। दुन्दारा के निकट यह सीधे आधारषिला पर स्थित है। इसकी औसत मोटाई 3–5 फीट तक दिखाई देती है। इसकी अधिकतम मोटाई क्या होगी कहना कठिन है।
2. सिमेण्टेड ग्रैवेल – इसकी औसत मोटाई 2 से 5 फीट के अन्तर्गत है तथा यह थोड़ी–थोड़ी दूरी पर टुकड़ों में मिलता है। इसमें प्रायः 1" से 4" परिधि तक के पेबुल मिलते हैं, किन्तु कभी–कभी इससे थोड़े बड़े पेबुल भी दिखाई देते हैं। पेबुल की संख्या बहुत कम है। महीन ग्रैवेल तथा मोटे बालू का अनुपात अधिक है। इस जमाव की संरचना से अनुमान किया जाता है कि जिस समय इसका जमाव हुआ था उस समय की जलवायु आधुनिक जलवायु से अधिक आर्द्र थी।
3. गाद मिट्टी तथा बालू – ग्रैवेल के ऊपर सभी स्थानों पर भूरे रंग की गाद मिट्टी का जमाव है जो ऊपर के भागों में अधिक बालुई हो जाता है। यह 2' से 10' तक मोटा होता है। यह जमाव क्रमषः शुष्क होती हुई जलवायु का निर्देश करता है। इस बढ़ती हुई शुष्कता के फलस्वरूप ही बालू के टीलों आदि का निर्माण हुआ है।

Scanned with OKEN Scanner

मिश्र ने ग्रैवेल से प्राप्त प्रस्तर उपकरणों को 'पेलियोलिथिक' मात्र कहा है। ग्रैवेल की संरचना तथा उपकरणों के प्रारूपात्मक समानता के आधार पर इसे दक्षिण भारत की नदियों के द्वितीय उच्चयन काल तथा मध्य पुरापाषाणकाल से क्रमशः सम्बन्धित किया जा सकता है।

पश्चिमी राजस्थान में उपकरणों के निर्माण के लिए प्रयुक्त पत्थरों को दो वर्गों में विभाजित किया गया है।

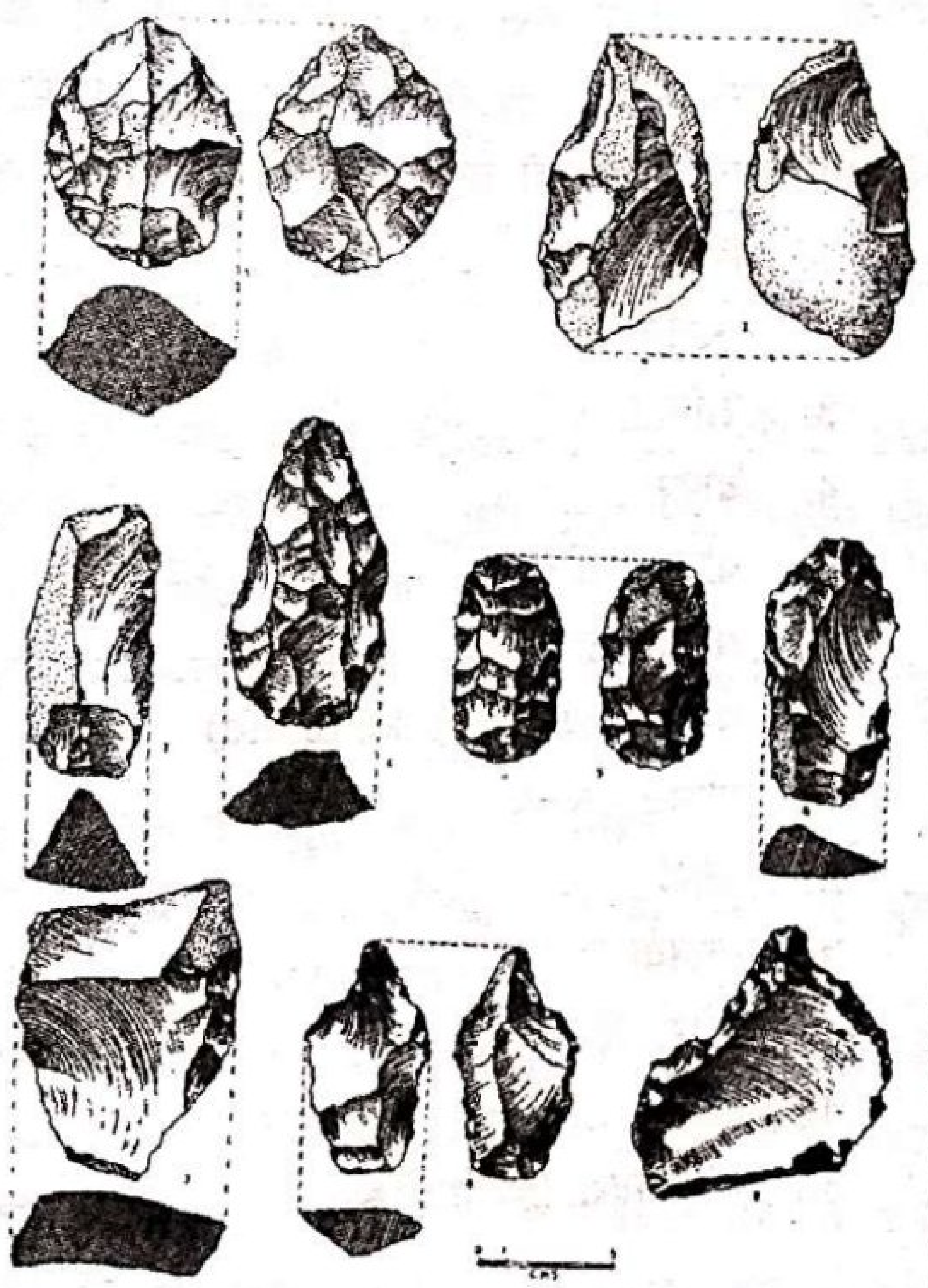

मध्य पूर्वपाशाणिक उपकरण लूनी घाटी चित्र सं0–63

प्रथम वर्ग में क्वार्टजाइट, सैण्डस्टोन, चर्ट, फ्लिण्ट, चाल्सेडनी तथा जैस्पर और दसरे वर्ग में ज्वालामुखी से प्राप्त रियोलाइट (Rhyolite), फेल्सपार प्रॉफिरी (Flespar porphyry) आदि है। चर्ट का उपयोग उपकरण निर्माण के लिए प्रायः किया गया है। यह विभिन्न रंगों में मिलता है। पीले जैस्पर, चाल्सेडनी तथा अगेट का उपयोग भी किया गया है। महीन तथा मोटे दोनों ही प्रकार के कणों में क्वार्टजाइट के उपरकण मिलते हैं। रियोलाइट भी विभिन्न रंगों के हैं। इनमें से अधिकांश लाल, बैंगनी, भूरे अथवा काले रंगों के हैं। यह अत्यन्त सख्त तथा चमकदार हैं।

अधिकांश उपकरण ताजे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उनका स्थानान्तरण नहीं हुआ है। अधिकतर उपकरण फलकों पर निर्मित हैं। आघात–स्थल प्रायः फलकित नहीं है। फलक कोण 900 से 1100 के अन्दर है। अर्धशंकु विकसित नहीं है। अनुमानतः इनका निर्माण कोमल हथौड़ा पद्धति से किया गया था। कुछ फलकों का कोण $110^0$ से $125^0$ के लगभग मिलता है। ये सम्भवतः प्रस्तर हथौड़ा पद्धति से निकाले गये होंगे। इनके अतिरिक्त कुछ फलकों के आघात–स्थल फलकित नहीं है। सम्भवतः इनको निकालने के लिए लेवालेवा प्रविधि का प्रयोग किया जाता था। ब्लेडों को निकालने के लिए अनुमानतः अप्रत्यक्ष संघात प्रविधि का उपयोग किया जाता था। सारांष में फलकीकरण की लगभग सभी प्रविधियों का प्रयोग होता था। आषूलियां प्रकार के हैण्डैक्सों पर छिछले फलक सोपानपद फलकीकरण प्रविधि द्वारा निकाले जाते थे।

पश्चिमी राजस्थान के मध्य पुरापाषाण काल के उपकरण समुदाय में सबसे उल्लेखनीय उपकरण स्क्रेपर, फलक तथा ब्लेड हैं। थोड़ी संख्या में अन्य उपकरण भी मिले हैं। अधिकांश

उपकरण नदी की घाटी में मिले हैं। किन्तु कुछ 'In-situ' भी हैं। घाटी से प्राप्त बहुत से उपकरणों के ऊपर ग्रैवेल चिपका हुआ है। इससे यह अनुमान किया जाता है कि वे भी ग्रैवेल से ही निकल कर आये होगें। सफेद चिकनी मिट्टी अथवा गाद मिट्टी और बालू के जमाव से कोई भी उपकरण नहीं मिला है। नदी की घाटी के अतिरिक्त उद्योग–स्थालों से भी उपकरण प्राप्त हुए हैं। पष्चिमी राजस्थान में धनेरी इस प्रकार का एक उद्योग स्थल है।

पश्चिमी राजस्थान में मध्य पूर्वपाशाण कालीन सन्दर्भ में निम्नलिखित उपकरण उपलब्ध हुए हैं। ये उपकरण 17 स्थलों तथा 7 नदी–घाटियों से संकलित किये गये हैं।[1]

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | हैण्डैक्स | 15 | 2% |
| 2. | क्लीवर | 7 | 1% |
| 3. | स्क्रेपर | 99 | 16% |
| 4. | बोरर | 6 | 1% |
| 5. | बोरर–स्क्रेपर | 5 | 1% |
| 6. | षर (प्वाइंट) | 39 | 6½% |
| 7. | फलक–चाकू (Flake Knife) | 18 | 3% |
| 8. | फलक–ब्लेड | 12 | 2% |
| 9. | ब्लेड | 22 | 3½% |
| 10. | फलक | 300 | 50% |
| 11. | कोर | 47 | 7½% |
| 12. | डिस्क | 3 | ½% |
| 13. | परित्यक्त (Rejects) | 34 | 5½% |
| | | 607 | 100% |

हैण्डैक्स सत्रह में से केवल चार स्थलों से प्राप्त हुए हैं। इनको भी दो वर्गों में विभाजित किया गया है। प्रथम वर्ग में रूक्ष तथा दूसरे में विकसित प्रकार के हैं। हैण्डैक्स विभिन्नाकारों – नाशपात्याकार (Pear Shaped), अण्डाभ (Ovate), हृदयाकार (Cordate), बादामाकार (Almond-Shaped) आदि के हैं।

क्लीवरों की संख्या भी हैण्डैक्स के समान ही सीमित है। केवल दो स्थलों से सात क्लीवर मिले हैं। मिश्र की धारणा है कि ये यहां के मध्य पुरापाषाणकालीन उद्योग के अभिन्न अंग नहीं है।

सभी स्क्रेपरों को दो वर्गों में विभाजित किया गया है। वर्ग 'अ' के उपकरणों की दो विशेषतायें हैं – 1. फलक अथवा पेबुल के एक पार्श्व अथवा अंत में कार्यांग हैं। 2. पार्श्व भुथड़ा अथवा मोटा है। जिन उपकरणों का कार्यांग उनके पार्श्व में है वे लम्बे तथा पतले हैं तथा जिनका कार्यांग अन्त में है, वे प्रायः अण्डाकार है।

Scanned with OKEN Scanner

वर्ग 'ब' में उपकरण प्रथम के ही समान हैं। किन्तु वे अत्यन्त रूक्ष हैं।

दूसरे वर्ग में उपकरणों की संख्या पहले की अपेक्षा अधिक है तथा उसमें पुनर्गढ़न के भी प्रमाण मिलते हैं। उपकरण आकार में छोटे तथा सुन्दर हैं।

सभी छिद्रक (Borer) फलक पर निर्मित है। उनका निर्माण अन्त के निकट खात (Notch) बनाकर किया गया है।

बोरर–स्क्रेपर एक संयुक्त उपकरण है जिससे बोरर तथा स्क्रेपर दोनों के ही कार्य लिए जा सकते हैं।

शर (प्वाइन्ट) वर्ग के सभी उपकरणों का एक अन्त नोकदार है। ये एकपक्षीय (Unifacial) तथा उभयपक्षीय (Bifacial) दोनों ही प्रकार के हैं।

पश्चिमी राजस्थान के उपकरण समुदाय में फलक चाकू (Flake Knives), एक विशिष्ट प्रकार के उपकरण हैं। इनका कार्यांग सीधा तथा तीक्ष्ण है तथा कार्यांग के दूसरी ओर का किनारा मोटा तथा भूथड़ा है। ये फलकों पर निर्मित है तथा 5 से 9 से0मी0 तक लम्बे हैं।

इन उपकरणों के अतिरिक्त ब्लेड तथा फलक भी यहां से उपलबध हुए हैं। फलकों में कुछ साधारण तथा कुछ कृत्रिम अथवा लेवालेवा प्रकार के हैं।

दक्षिणी राजस्थान मे मध्य पुरापाषाण काल के प्रमाण प्रमुख रूप से बागन तथा कादमली नदियों की घाटियों से उपलब्ध हुए हैं। बेराच बेसिन में ये नगण्य हैं (मिश्र, वी0एन0 1967, प्री ऐण्ड प्रोटोहिस्ट्री ऑफ दि बेराच बेसिन साउथ राजस्थान' डेकन कालेज, पूना)।

बागन घाटी में चार स्थलों से 217 उपकरण प्राप्त हुए थे जिनमें 24 उपकरण 'In-situ' थे। इसमें 14 उपकरण प्रथम ग्रैवेल से तथा 10 अन्य ग्रैवेल से मिले हैं (सांकलिया, एच0डी0, 1974, पार्श्वोद्धरित पृ0 194)। मिश्र (मिश्र, वी0एन0 1967, पार्श्वोद्धरित, पृ0 73) के अनुसार 14 उपकरण ग्रैवेल I में, I ग्रैवेल II से, 7 ग्रैवेल III से प्राप्त हुए थे तथा 2 की स्थिति स्पष्ट नहीं है। इस विवरण के अनुसार वहां पर तीन ग्रैवेल हैं तथा तीनों से मध्य पुरापाषाण काल के उपकरण प्राप्त हुए हैं जो सभी की स्थिति को संदिग्ध बना रहे हैं। इस स्थान पर एक शंका का समाधान आवश्यक है। ग्रैवेल I, II तथा III में मध्य पुरापाषाण काल के उपकरणों का मिलना कई समस्यायें उत्पन्न करता है। प्रथम जिन्हें डॉ0 मिश्र 'In-situ' उपकरण कह रहे हैं वे या तो 'In-situ' नहीं है अथवा तीनों ग्रैवेल एक ही हैं या वे सभी उपकरण मध्य पुरापाषाणकाल के नहीं है। कभी–कभी स्तरीकरण में संभ्रान्ति का होना कोई विशेष बात नहीं है। वास्तव में यहां पर थोड़े अधिक सूक्ष्म निरीक्षण की आवश्यकता है।

कादमली घाटी में 65 उपकरण मिले थे जिसमें से 33 ग्रैवेल II में, 3 चितकबरी मिट्टी (Mottled Clay) से और 29 उपकरण नदी की घाटी से प्राप्त हुए थे।

यहाँ के उपकरण प्रमुख रूप से क्वार्टजाइट के ही बने थे। यहां से निम्नलिखित उपकरण प्राप्त हुए थे–

Scanned with OKEN Scanner

| | |
|---|---|
| कोर | 5 |
| फलक | 33 |
| लेवालेवा फलक | 9 |
| ब्लेड | 1 |
| फलक पर स्क्रेपर | 9 |
| कोर स्क्रेपर | 3 |
| बोरर | 1 |
| हैण्डैक्स | 3 |

राजस्थान के मध्य पुरापाषाण कालीन उद्योगों के उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत के अन्य क्षेत्रों के समान यहाँ का भी मध्य पाषाणिक उद्योग ब्लेड–फलक–स्क्रेपर परंपरा पर ही आधारित है। उपकरण समुदाय में यद्यपि फलक, स्क्रेपर तथा ब्लेड की ही बहुलता है, किन्तु कुछ निम्न पुरापाषाणकाल के उपकरण जैसे हैण्डैक्स तथा स्क्रेपर भी प्रायः मिलते हैं, किन्तु उनकी संख्या अन्य की अपेक्षा नगण्य हैं। उपकरण निर्माण में प्रायः सभी विकसित संघात प्रविधियों का प्रयोग होता था और महीन कणों के ही पत्थरों का प्रयोग अधिकांषतः किया जाता था।

# मध्यपाषाण काल

## उच्चपुरापाषाण युगीन पुरास्थल

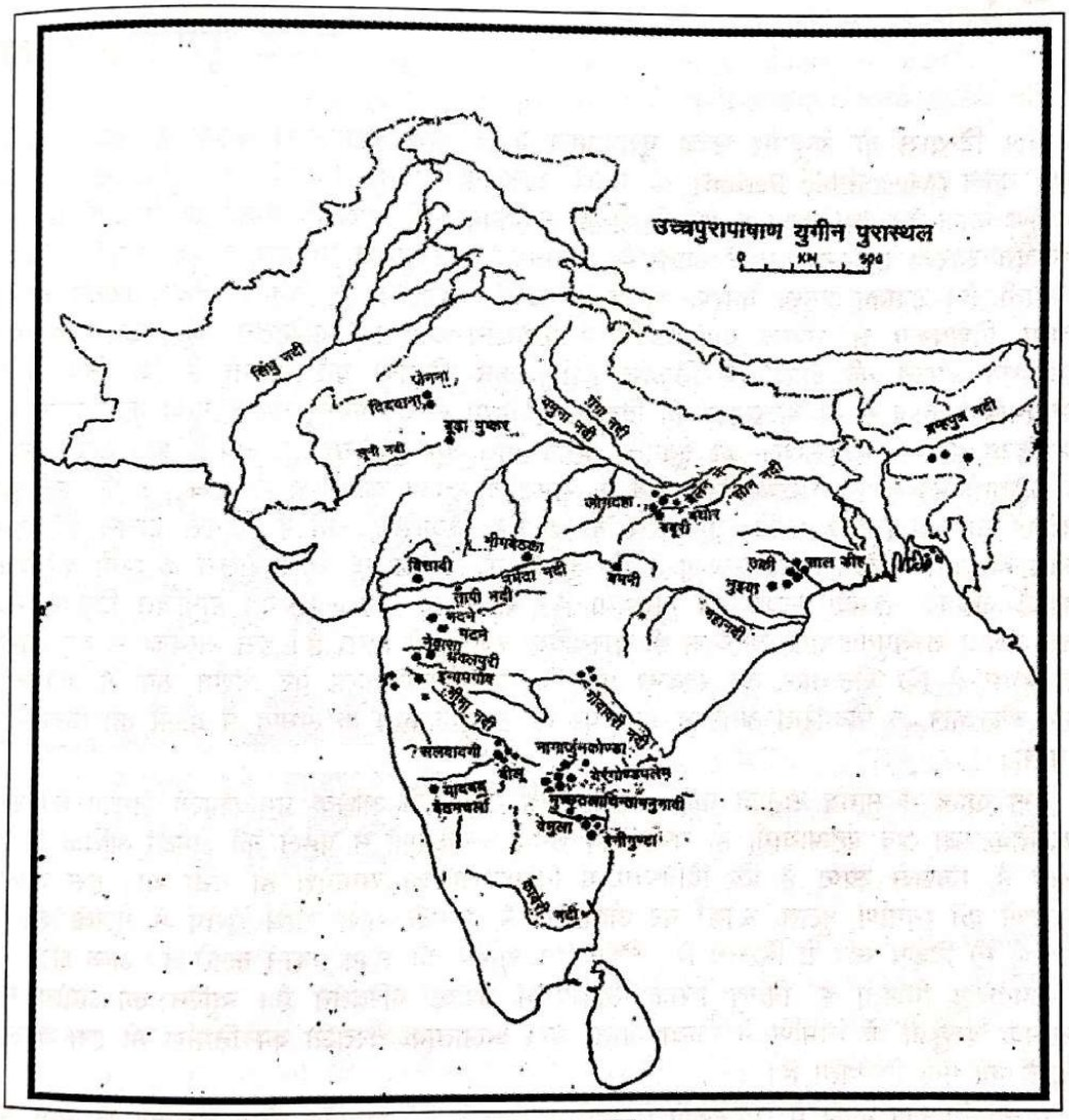


चित्र सं0–64

# 34

# उच्च पुरापाषाण काल

स्तर विन्यास के अनुसार उच्च पुरापाषाण काल मध्य पुरापाषाण काल के बाद तथा मध्य पाषाण काल (Mesolithic Period) के पहले आता है। मानव विकास की दृष्टि से यह सबसे महत्वपूर्ण काल है। इस काल में मेधावी मानव के विकास के साथ ही मानव के सांस्कृतिक विकास का नवीन स्वरूप उभरकर सामने आता है। मानव के सांस्कृतिक विकास में एक अपूर्व गतिशीलता आ जाती है। इसका प्रमुख कारण मानव के कर्परीय धारिता में विकास तथा उसकी शारीरिक संरचना, विशेषरूप से, उसके चेहरे आदि में परिवर्तन था। इन परिवर्तनों के फलस्वरूप परस्पर संवाद एवं बोलने की क्षमता में विकास हुआ। कुछ विद्वानों की धारणा है कि निम्नपूर्व तथा मध्यपूर्वपाषण काल में भी बोलचाल का विकास हो गया होगा। किन्तु उसने भाषा का स्वरूप धारण नहीं किया होगा। नियण्डर्थल का पूर्ववर्ती मानव मात्र कुछ ध्वनियों से अपनी बात अपने साथियों तक पहुँचाते रहे होगें। नियण्डर्थल मानव के समय बोलचाल की भाषा में अधिक प्रगति हुई होगी। मानवेतर प्राणियों (वानर आदि) के शरीर के वे अंग विकसित नहीं हैं जिनसे बोलने में सहायता मिलती है। अनेक विद्वानों की धारणा है कि ठुड्डी के विकास के साथ बोलने के अंगों का विकास होता है जो कि मेधावी मानव की विशेषता है। बोलचाल (Speech) का समुचित विकास मेधावी मानव अथवा उच्चपूर्वपाषाण काल से ही वास्तविक स्वरूप में होता है। इस सम्बन्ध में हुए शोधों से ज्ञात होता है कि बोलचाल का सम्बन्ध एवं विकास सामाजिकता पर विशेष रुप से आश्रित है। केवल बोलचाल के विकसित अंगों के होने पर भी सामाजिकता के अभाव में बोली का विकास नहीं हो पाता।

इस काल में मानव समाज का गठन पूर्ववर्ती कालों से अधिक प्रभावशाली लगता है। उनका सांस्कृतिक पक्ष अब बहुआयामी हो गया था। उनके उपकरणों में पहले की अपेक्षा अधिक विविधता मिलती है, जिससे स्पष्ट है कि विविधता में विशिष्टता का समावेश हो गया था। इस काल के उपकरणों का निर्माण मूलतः ब्लेडों पर आधारित है, उसके साथ–साथ यूरोप में मूलतः एक और उपकरण भी विशेष रूप से मिलता है , जिसे हम ब्यूरिन की संज्ञा प्रदान करते हैं। अन्य क्षेत्रों में भी यह उपकरण मिलता है, किन्तु इसके स्वरूप में यथेष्ट परिवर्तन है। ब्यूरिन का प्रयोग मूलतः कलात्मक वस्तुओं के निर्माण में किया जाता था। कलात्मक वस्तुओं का निर्माण भी इस काल की संस्कृति की एक विशेषता है।

उच्चपूर्वपाषाण काल में उपकरणों में यांत्रिक प्रणाली का समावेश होता है। अब, ये लोग, लीवर के माध्यम से भालों को फेकने की विद्या जान गए थे (सेमेनव एस0ए0 1964, पृ0 202-203)। इस काल के उपकरणों में सबसे महत्वपूर्ण आविष्कार धनुष तथा बाण का था। इसके प्रयोग से उच्चपूर्वपाषाण कालीन मानव की मारक क्षमता में बहुत विकास हुआ। यह भाले से अधिक उपयोगी था, क्योंकि इसकी गति भाले से द्विगुणित होती है।

इसके अतिरिक्त विशिष्ट उपकरण यथा छिद्रक (Awls), आँख युक्त सूई (Needle with eye), सिल लोढ़े आदि का भी विकास हुआ। सुई का उपयोग सिलने के लिए ही किया जाता था। सिल लोढ़े का प्रयोग रंगों को बनाने में तथा पत्थर को घिसने आदि के लिए करते थे।

Scanned with OKEN Scanner

इस काल में मानव अपने विकास के लिए निश्चित रूप से आवासों का निर्माण करने लगा था। चेकोस्लोवाकिया से साइबेरिया तक इस प्रकार के आवास मिले हैं जिनको उच्च पुरा पाषाण कालीन मानव ने निवास के लिए निर्मित किया था (क्लाक्र,जे0 जी0 डी0,1952,पृ0 132-133)।

इस काल में दीपक (Lamp) का आविष्कार हो गया था जिससे ये अंधकार पर विजय प्राप्त कर सके। पश्चिमी यूरोप के भूमितल के नीचे कन्दराओं में चित्र बनाते समय प्रकाश के लिए इनका प्रयोग किया जाता था। ये दीपक प्रायः छिछले प्लेट के समान होते थे।

इस काल की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि उनकी कलात्मक अभिव्यक्ति कही जा सकती है, जो प्रायः गुहा अथवा शैल चित्रों, सचल कलात्मक वस्तुओं तथा अलंकारों के रूप में मिलती हैं। सचल कलात्मक वस्तुओं में लघु मूर्तियाँ तथा हड्डी तथा हाथी दाँत पर तराश कर बनाई गई आकृतियाँ भी सम्मिलित हैं। भारत में बेलन घाटी में लोहदा नाले से मातृदेवी की हड्डीकी एक मूर्ति प्राप्त हुई है। इसका उल्लेख पीछे किया जाचुका है।

इन कलात्मक वस्तुओं के माध्यम से हम उच्चपुरापाषाण युगीन मानव के मानसिक क्रिया कलापों के सम्बन्ध में तथा उसके विचार एवं विश्वास के सम्बन्ध में भी कुछ अनुमान कर सकते हैं। पशुचित्रों के साथ–साथ कुछ ऐसे चित्र भी मिले है, जिसमें पशु का मुखौटा पहने हुए मनुष्य का चित्र है। कुछ ऐसे भी चित्र हैं, जिन्हें जादू टोने से सम्बन्धित किया जा सकता है। क्या इस प्रकार के चित्रों का सम्बन्ध किसी प्रकार की मान्यता से था ? यह एक आवश्यक प्रश्न है। कुछ चित्रों का सम्बन्ध धार्मिक अनुष्ठानों (Rituals) से भी स्थापित किया जा सकता है। भारत में सीधी जिले के बघोर–1 पुरा स्थल पर एक पूजा स्थल चिन्हित किया गया है। इस काल की कला मानव की विकसित होती हुई संवेदनशीलता तथा चैतन्यता का भी परिचायक है।

इस काल का मानव इस जीवन से परे जीवन के सम्बन्ध में भी कुछ धारणायें रखनें लगा था। अनेक स्थलों से निश्चित रूप से दफनाने के प्रमाण मिले हैं। मृतकों के साथ उपकरण तथा उनके प्रयोग में लाने वाले आभूषण भी प्राप्त हुए हैं, जिनमें सीप के कर्णाभरण तथा कण्ठहार प्रमुख हैं।

यह सम्पूर्ण काल मात्र 30–.35 हजार वर्षों के काल कोष्ठक में समाहित है किन्तु सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण था।

## भारत में उच्च पुरापाषाण काल

भारत में बीसवीं शताब्दी के सातवें दशक तक उच्चपूर्वपाषाण काल की स्थिति सन्दिग्ध थी, क्योंकि उस समय तक स्पष्ट स्तरित जमाव प्रकाश में नहीं आए थे। भारतीय प्रागितिहास में इसकी स्थिति भी सन्देहास्पद थी। दिवंगत सुब्बाराव (सुब्बाराव, बी0, 1958, दि पर्सोनैलिटी ऑफ इण्डिया, पृ0 39) की धारणा थी कि भारतीय प्रस्तरयुग में यूरोप के उच्च पुरापाषाण काल के समान कोई युग नहीं हुआ। उनके अनुसार यहाँ की स्थिति भी लगभग वैसी ही होनी चाहिए, जैसी की अफ्रीका में थी, जहाँ पर मध्य पाषाणकालीन उद्योगों का विकास मध्य पुरापाषाण युगीन (Middle Palaeolithic = Middle StoneAge) लेवालेवा उद्योग से सम्बंधित है। उनकी उपर्युक्त धारणा का आधार भारत में उच्च पुरापाषाणिक स्थलों का अभाव तथा भारत और अफ्रीका की जलवायुगत समीपता थी। दिसम्बर 1961 में दिल्ली में आयोजित, आर्क्यालजी की प्रथम एशियन कॉग्रेस में उन्होनें यह प्रस्ताव रखा कि भारत में यूरोपीय शब्दावली का प्रयोग उचित नहीं है जिसमें मध्य पुरापाषाण काल के बाद तथा मध्य पाषाण काल के पहले उच्च पुरापाषाण काल आता है। अतः भारत में अफ्रीका की शब्दावली– Early StoneAge, Middle StoneAge तथा Late StoneAge का

Scanned with OKEN Scanner

प्रयोग करना चाहिए। सुब्बाराव का उपर्युक्त प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। फलतः भारतीय प्रागितिहास में Early StoneAge (प्रारम्भिक पाषाण काल), Middle StoneAge (मध्य पाषाण काल) तथा Late StoneAge (उत्तर पाषाण काल) का प्रयोग होने लगा। प्रागितिहास के क्षेत्र में काम करने वाले अनेक विद्वान् सुब्बाराव से सहमत नहीं थे तथा समय समय पर उन्होनें अपने मतों का प्रकाशन भी किया। (मिश्र, वी0एन0, 1962, प्रॉब्लम ऐण्ड टर्मिनॉलजी ऑफ ऐटसेटरा,, ईस्टर्न ऐंथ्रोपॉलजिस्ट नं0 2, मई–अगस्त, पृ0 118; वर्मा, आर0के0 1969, प्रॉब्लेम ऑफ टर्मिनॉलजी इन प्रीहिस्ट्री इन दि लाइट ऑफ न्यू एवीडेन्स, प्रो0 इण्डियन हिस्ट्री कॉंगेस)। 1964 में भी पूना में आयोजित सेमिनार में उच्च पुरापाषाण काल पर कोई भी लेख नहीं पढ़ा गया था, क्योंकि उस समय तक भी इसकी स्थिति सन्दिग्ध मानी जाती थी, यद्यपि भारत में प्रागितिहास के अध्ययन के ऊषःकाल से ही ऐसे स्तरों से ऐसे उद्योगो की घोषणायें समय–समय पर होती रही है जिन्हें उच्च पुरापाषाणकालीन कहा गया था। कमियाडे तथा बक्रिट ( कामियाडे, एल0 ए0 ऐण्ड बक्रिट, एम0 सी0 1930, फ्रेश लाइट ऑन दि स्टोन एजेज ऑफ साउथ–ईस्ट इण्डिया' ऐण्टिक्विटी, वाल्यूम0 4, पृ0 327–339) उन पुरागामी विद्वानो में से थे जिन्होनें 1930 में सर्वप्रथम इन उद्योगों की घोषणा भारत के दक्षिण–पूर्वी तट से की थी। इन विद्वानों ने अपने Series III के अन्तर्गत ब्लेड ब्यूरिन उद्योगों को ही रखा था। ये उपकरण जिस स्तर से उपलब्ध हुए थे वह मध्य पुरापाषाणिक स्तर (Series III) के ऊपर तथा लघुपाषाणोपकरणों (Series IV) के नीचे के स्तर से प्राप्त हुए थे।

इसी क्षेत्र में कालान्तर में इजाक (इजाक, एन0, 1960, दि स्टोन एज कल्चर्स ऑफ कर्नल, थीसिस, अप्रकाशित, डकेन कालेज, पूना) तथा सौन्दरराजन् (सौन्दराजन, के0 वी0 1952 पार्श्वोद्धरित) ने भी ऐसे उपकरणों का संग्रह किया जिसे प्रारूपात्मक दृष्टिकोणो से कामियाडे तथा बक्रिट के तृतीय श्रेणी के उपकरणों के समकक्ष रखा जा सकता था। कठिनाई मात्र इतनी थी कि इन विद्वानों को उपकरण उस प्रकार के भू–वैज्ञानिक स्तरों से उपलब्ध नहीं हुए थे, जैसे कि कामियाडे आदि को मिले थे, अतः उस पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया।

टॉड (टॉड, के0 आर0 यू0, 1939 'पेलियोलिथिक इण्डस्ट्रीज ऑफ बाम्बे', ज0 रा0, ऐ0 इन्स0 लन्दन वाल्यूम, पृ0 257–272) ने 1939 में बम्बई के खाण्डिवली नामक स्थान से इस प्रकार के उद्योग की घोषणा की थी। किन्तु कालान्तर में सांकलियाा तथा उनके सहयोगियों ने टॉड के अनुभागों का पुनः सर्वेक्षण किया और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि टॉड की घोषणा सम्यक् साक्ष्यों पर आधारित नहीं थी (सांकलिया, एच0 डी0, 1974, प्रीहिस्ट्री ऐण्ड प्रोटोहिस्ट्री ऑफ इण्डिया ऐण्ड पाकिस्तान, पृ0 159–60)।

1964 के बाद से स्थिति में परिवर्तन होने लगा और ऐसे बहुत से सतही स्थल तथा स्तरित जमाव प्रकाश में आने लगे, जिनसे उच्च पुरापाषाणकाल की स्थिति की सन्दिग्धता में सुधार होने लगा। इस सम्बन्ध में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रा0 गोवर्द्धन राय शर्मा तथा उनके सहयोगियों( डॉ0 राधाकान्त वर्मा, सर्वश्री वी0डी0 मिश्र, बृजबिहारी मिश्र,जे0एन0 पाल0 आदि) के प्रयास उल्लेखनीय है। इन्होनें मिर्जापुर, वाराणसी, इलाहाबाद उत्तर प्रदेश में तथा मध्य प्रदेश में सोनघाटी में सीधी जिले के सिहावल के निकट अनेक ऐसे स्थलों को खोज निकाला जहॉं पर ब्लेड–ब्यूरिन उद्योगों के उपकरण स्तरित जमावों से प्राप्त हुए। इसके अतिरिक्त मूर्ति (मूर्ति एम0 एल0 के0, 1968, 'ब्लेड ऐण्ड ब्यूरिन इण्डस्ट्रीज नीयर रेनीगुण्टा', प्रो0,प्री0,सो0 लन्दन1970,; मूर्ति एम0 एल0 के0'ब्लेड ऐण्ड ब्यूरिन ऐण्ड स्टोन एज इण्डस्ट्रीज एराउण्ड रेनीगुण्टा, चित्तूर डिस्ट्रिक्ट, इण्डियन

Scanned with OKEN Scanner

ऐंटिक्वेरी, IV, 106–128) को भारत के दक्षिण–पूर्वी तटीय प्रदेशो से, पद्दैया, (पद्दैया, के0, 1970, 'दि ब्लेड टूल इण्डस्ट्री ऑफ शोरापुर दोआब', इण्डियन ऐण्टीक्वेरी पृ0 165–190) को शोरापुर दोआब से, साली (साली, एस0 ए0, 1974, 'अपर पेलियोलिथिक रिसर्च सिन्स इनडिपेंन्डेंस,' बुलैटिन डेकन कालेज रिसर्च इन्स्टीट्यूट, वाल्यूम नं0 XXXIV नं0 1–4) को महाराष्ट्र में पटने से, अलचिन (अलचिन, बी0 तथा गूडी, ऐ0 1971, 'ड्यून्स, एरिडिटी ऐण्ड अर्ली मैन इन गुजरात, वेस्टर्न इण्डिया', मैन, वाल्यूम 5, नं0 2) तथा गूडी (वही ) को बूढ़ा पुष्कर क्षेत्र गुजरात से इस उद्योग के निश्चित प्रमाण उपलब्ध हो चुके है। इसके अतिरिक्त इस सम्बंध में और अधिक सामग्री मध्य प्रदेश में भीम बैठका शिलाश्रय से प्रकाश में आ रही थी।

उपर्युक्त सभी स्थलों से प्राप्त उपकरणों को उनकी प्रारूपात्मक समानता तथा उनके प्राप्ति स्तर के आधार पर उच्च पुरा पाषाण कालीन कहा गया है। भारत के विभिन्न भागों से जब एक ही प्रकार की सामग्री लगभग समान स्तरों से प्रकाश में आने लगी तब विद्वानों के लिए उच्च पुरापाषाण कालीन समस्या पर पुनर्विचार आवश्यक हो गया। टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ फण्डामेण्टल रिसर्च, बम्बई में आयोजित कार्बन 14 तथा इण्डियन आर्क्यालजी की अन्तर्राष्ट्रीय सिम्पोजियम में बेलनघाटी में प्राप्त साक्ष्यों के प्रतिवेदन के फलस्वरूप इस समस्या का समाधान मान लिया गया। वहॉ पर उपस्थित विद्वत् मण्डली ने भारतीय प्रागितिहास में उच्च पुरापाषाण काल की स्थिति को स्वीकार कर लिया। 1974 में डेकन कालेज में आयोजित 'प्रीहिस्ट्री 1974' के सेमिनार में उच्च पुरापाषाणकाल को उसका उचित स्थान प्राप्त हुआ।

निम्न पंक्तियों में केवल उन्हीं उच्च पुरापाषाणकालीन स्थलों का विवरण दिया गया है जिनके सम्बंध में निश्चित जानकारी है।

## उत्तर प्रदेश

### बेलन घाटी

उच्च पुरापाषाणिक सन्दर्भ में बेलन घाटी सबसे महत्वपूर्ण स्थल है। इस प्रकार के भू–वैज्ञानिक स्तरित जमाव भारत में अन्यत्र नहीं मिले है। बेलनघाटी के विभिन्न स्तरित जमावों को तथा उनमें मिलने वाले उपकरणों के सूक्ष्मावलोकन से स्पष्ट है कि ब्लेड तथा उन पर बनने वाले उपकरण सर्वप्रथम सीमेण्टेड ग्रैवेल के II स्तर से मिलते है। किन्तु इन्हें ब्लेड फलक की ही श्रेणी में रखना चाहिए। इस स्तर से मध्य पुरापाषाण कालीन उपकरण निवेदित हैं। द्वितीय ग्रैवल के 'ब; स्तर के ठीक ऊपर के तथा छठे निक्षेप में ब्लेड तत्व अधिक हो जाते है। पॉचवें निक्षेप में पहुंचते–पहुँचते उनकी प्रधानता हो जाती है। साथ ही फलक तत्व का प्रतिशत पहले की अपेक्षा कम होने लगता है। स्तरों के साक्ष्य के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यहॉ पर उच्च पुरापाषाणिक उद्योगों का विकास मध्य पुरापाषाणिक उद्योगों से ही हुआ है। बेलन घाटी का पॉचवॉ निक्षेप मध्य पुरापाषाण काल से उच्च पुरापाषाण काल के परिवर्तन का स्तर है। इसके ऊपर का ग्रैवेल जमाव जिसे तृतीय ग्रैवेल कहा गया है वास्तविक उच्च पुरापाषाणकालीन स्तर है। इसके ऊपर के चतुर्थ निक्षेप से भी यद्यपि ब्लेड तथा ब्लेड उपकरण उपलब्ध हुए हैं, किन्तु वह उच्च पुरापाषाण काल तथा मध्य पाषाण काल का अन्तर्वर्ती है। दूसरे शब्दों में उन्हें संक्रान्ति काल (Transition Period) कहा जा सकता है। तृतीय निक्षेप से लघुपाषाणोपकरण भी प्राप्त होने लगते है। इस जमाव से उपलब्ध उपकरणों में उच्च पुरापाषाणकालीन ब्लेडों की संख्या मात्र 27% है। इस

प्रकार बेलन के उपर्युक्त जमावों में मिलने वाले उपकरणों के सूक्ष्म अध्ययन से उच्च पुरापाषणकालीन उद्योगों के क्रमिक विकास तथा अवसान पर समुचित प्रकाश पड़ता है।

भारतीय भू–वैज्ञानिक सर्वेक्षण के दास शर्मा तथा विश्वास ( दास शर्मा तथा विश्वास के टंकित रिपोर्ट पर आधारित) का विचार है कि तृतीय ग्रैवेल का निक्षेपण शुष्क (Dry) तथा आर्द्र (Humid) कालों के संधिकाल में हुआ था तथा उसके ऊपर के जमाव वायु निक्षेपित (Aeolean) हैं तथा बढ़ती हुयी शुष्कता का निर्देश करता है।

बेलन घाटी के निकटवर्ती क्षेत्रों में बहुत से सतही स्थल (Surface Sites) भी प्रकाश में आए है। अधिकांश स्थल पहाड़ी तथा नीचे के धरातल के संधि स्थल पर स्थित हैं। इन सभी स्थलों को अनेक वर्गो में विभाजित कर सकते है। प्रथम वर्म में ऐसे उपकरण हैं जो मध्य पुरापाषाण काल में उच्च पुरापाषाण काल की संक्रान्ति का निर्देश करते हैं दूसरे वर्ग के उपकरणों को उच्च पुरापाषाणकालीन कहा जा सकता है तथा तीसरे वर्ग के उपकरण उच्च पुरापाषाण काल तथा मध्य पाषाण काल की संक्रान्ति का निर्देश करते हैं। प्रथम वर्ग अथवा मध्य पुरापाषाण काल और उच्च पुरापाषाण काल की संक्रान्ति का निर्देश करने वाले उपकरण समुदाय में ब्लेडों की अपेक्षा ब्लेड–फलकों का बाहुल्य है। इसके अतिरिक्त वे समानान्तर बाहु के भी नहीं हैं। इस प्रकार के फलक–ब्लेड साधारण अथवा लेवालेवा कोरों से निकाले जाते है। अधिकांश फलक–ब्लेडों के ऊपर आघात का अर्धशंकु भी अपेक्षाकृत विकसित प्रकार का है। इस प्रकार के फलक–ब्लेड के साथ–साथ वास्तविक ब्लेड भी मिलने लगते है। यद्यपि वास्तविक बेलनाकार ब्लेड कोरों का विकास नहीं मिलता है, किन्तु उनके निर्माण की ओर प्रगति होने लगती है। ब्लेड निकालने के लिए कोर का प्रायः एक अन्त गढ़ने की प्रथा का प्रचलन मिलने लगता है। भुथड़े पार्श्व ब्लेड नगण्य है। अर्धचान्द्रिक नहीं है। स्क्रेपर लगभग पहले के ही समान है, किन्तु खात स्क्रेपरों की संख्या बढ़ने लगती है और ब्लेड–फलकों का उपयोग स्क्रेपर बनाने के लिए अधिक मिलने लगता है।

तीसरे वर्ग के उपकरण उच्च पुरापाषाण काल तथा मध्य पाषाण काल की संक्रान्ति का निर्देश करते है। इनमें यद्यपि लम्बे तथा चौड़े ब्लेड अभी भी मिलते है, किन्तु सकरे ब्लेडों की संख्या अधिक हो जाती है। इस वर्ग में 20 मि0मी0 से कम सकरे ब्लेडों का आधिक्य है। ब्लेडों का मध्य कटक जो पहले अधिक सुस्पष्ट था अब पहले की अपेक्षा कम हो जाता है तथा उनका अनुभाग भी पतला हो जाता है। सकरे भूथड़े, पार्श्व ब्लेड, शर, छोटे सुडौल अर्धचान्द्रिक (Symmetrical Lunate),उपकरणों की संख्या बढ़ जाती है। छोटे बेलनाकार (Cylindrical), शंक्वाकार (Conical) नालीमत कोरो का विकास होने लगता है।ब्लेडों का अनुभाग पहले की अपेक्षा बहुत पतला हो जाता है तथा त्रिकोणात्मक अनुभाग के ब्लेडों की संख्या और कम हो जाती है। ब्यूरीनेट उपकरण (Burinate tools) अब पहले की अपेक्षा छोटे हो जाते है। ऊपर वर्णित प्रकार के उपकरण भैसोर ग्राम के निकट शिलाश्रयों के तथा देवघाट के निकट चोपनीमाण्डों के उत्खननों से भी मिले थे। इन सभी स्थलों पर लम्बे तथा चौड़े उच्च पुरापाषाण कालीन ब्लेड अ–ज्यामितिक लघुपाषाणोपकरण के स्तर के नीचे के स्तर में मिले हैं। ये उपकरण चर्ट–फ्लिंट प्रकार के पत्थरों से निर्मित है। इस सन्दर्भ में यह भी उल्लिखित है कि यहॉ पर चर्ट तथा फ्लिंट प्रकार के पत्थरों का ही प्रयोग उच्च पुरापाषाण कालीन उपकरणों में किया गया है। उच्च पुरापाषाण कालीन उपकरण समुदाय में विविध प्रकार के ब्लेड–ब्यूरिन के अतिरिक्त छिद्रक (Borer), स्क्रेपर (Scraper), अर्धचान्द्रिक (Lunate), आदि है। इनमें ब्लेड सभी दृष्टिकोणों से उल्लेखनीय है।

Scanned with OKEN Scanner

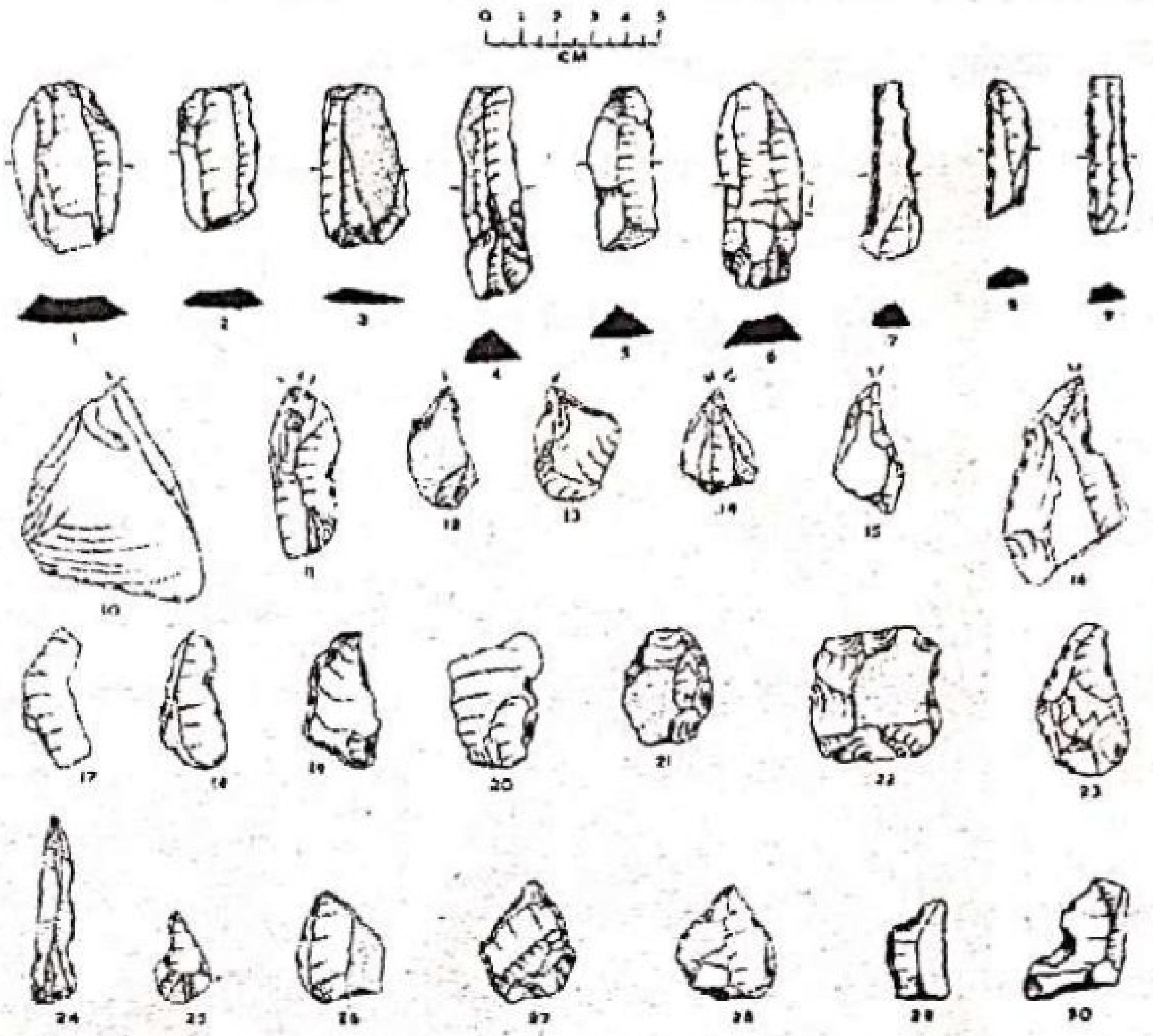

उच्च पुरापाषाण कालीन उपकरण विंध्य क्षेत्र चित्र सं0–65अ

इनका उद्भव मध्य पुरापाषाण काल में ही हो जाता है, किन्तु दोनो कालों के ब्लेडों में प्रर्याप्त अन्तर है। मध्य पुरापाषाण काल के ब्लेड साधारण अथवा लेवालेवा कोरों से निकाले जाते थे, किन्तु उच्च पुरापाषाण काल के ब्लेड बेलनाकार कोरों (Cylindrical Cores) से निकाले जाते थे जो कालान्तर में नालीमत कोरों (Fluted Cores) में परिणत हो जाते है। इनके आघात–स्थल कभी–कभी गढ़ित होते थे तथा उसमें से एकान्तर ब्लेड निकालते थे। इस प्रकार से निकाले गए ब्लेड समानान्तर बाहु के होते थे। इसके अतिरिक्त मध्य पुरापाषाण काल के ब्लेड की चौड़ाई लम्बाई के अनुपात में अधिक होती है तथा उनके ऊपर के भागों पर अनियमित फलक चिन्ह भी प्रायः मिलते है। इनको वास्तव में ब्लेड–फलक ही कहना चाहिए। उच्च पुरापाषाण काल के ब्लेड की लम्बाई चौड़ाई के अनुपात में अधिक होती है। जैसे–जैसे हम मध्य पाषाण काल की ओर अग्रसर होते हैं, ब्लेडों की चौड़ाई तथा लम्बाई दोनो कम होती हैं, किन्तु उसमें चौड़ाई लम्बाई के अनुपात में अधिक कम होती है। उच्च पुरापाषाण काल के ब्लेड प्रायः 15 मि. मी0 से अधिक चौड़े हैं, तथा मध्य पाषाण काल के उससे सकरें हैं। समानान्तर बाहु–ब्लेड के अतिरिक्त भुथड़ा पृष्ठ ब्लेड (Backed blade) आदि भी है। ब्लेड की धार को भुथड़ा करने के लिए उन पर इस प्रकार पुर्नगढ़न किया जाता था जिससे उसकी धार समाप्त हो जाती थी और पृष्ठ (Back) एकदम सीधा हो जाता है। ब्लेड–चाकू भी इस काल के प्रमुख उपकरणों मे थे। ये लगभग समानान्तर ब्लेड अथवा शिलापट्ट पर एक पार्श्व को

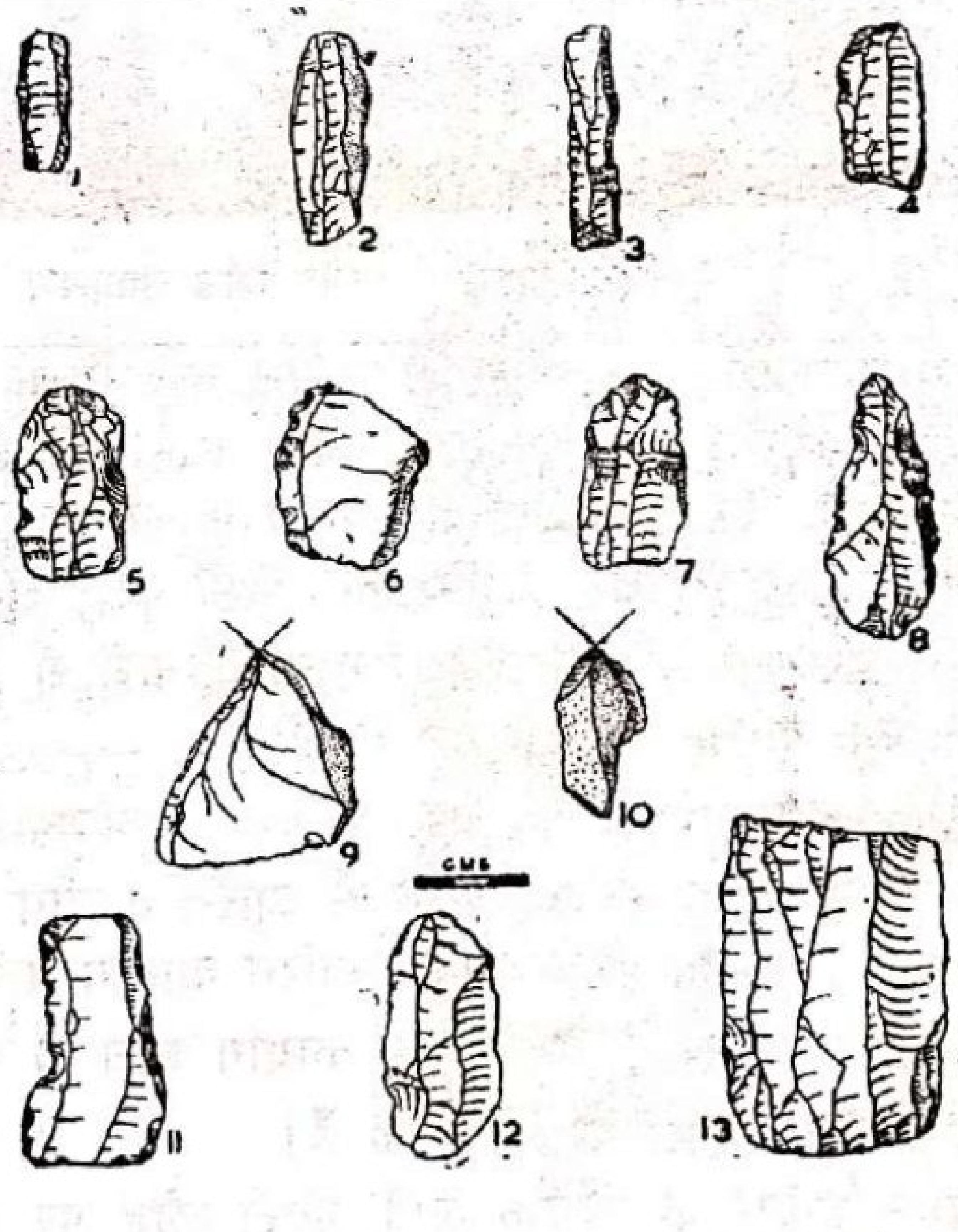


उच्च पुरापाषाण कालीन उपकरण–विंध्य क्षेत्र चित्र सं0–65ब

उभयपक्षीय पुर्नगढ़न के द्वारा बनाये जाते थे।

ब्लेड के बाद उपकरणों में दूसरा प्रमुख प्रकार ब्यूरिन (Burin) का है। इस क्षेत्र में किसी भी

उच्च पुरापाषाण कालीन ब्लेड उपकरण – विंध्य क्षेत्र चित्र सं0 65स

मध्य पुरापाषाणकालीन स्थल से ब्यूरिन नहीं मिला है। ये केवल उच्च पुरापाषाणिक स्थलों पर ही मिलते है। ब्यूरिन प्रायः अवशिष्ट कोरों (Residual Core) को पुनर्जीवित करने के लिए निकाले गए फलकों आदि पर ही मिलते है। पतले फलकों पर इनका निर्माण प्रायः नहीं होता था। कार्यांग के दृष्टिकोण से उनके चार प्रमुख प्रकार यहाँ पर मिले हैः

(1) इस प्रकार के ब्यूरिन में दोनों किनारों से अथवा ग्रेवर मुख (Graver Facet) के दोनों ओर से एक एक फलक स्थल बनाये गए है।

(2) इस प्रकार में एक पार्श्व से एक से अधिक फलक लम्बवत् दिशा में निकाले गए है।

(3) इस प्रकार में एक पार्श्व से ब्यूरिन कार्यांग के पास बेड़ी अथवा फलक की मोटाई की दिषा से छोटे छोटे फलक निकाल कर ब्यूरिन कार्यांग बनाया गया है।

(4) इस प्रकार के ब्यूरिन का कार्यांग चोंच के समान है।

छिद्रक (Borer) दो प्रकार के हैं।

प्रथम प्रकार के छिद्रक लम्बे–पतले ब्लेड पर बने हैं, जिनमें मध्य कटक होता है। इस प्रकार के छिद्रकों में कार्यांग लम्बा होता है तथा उसे दोनों ओर पुनर्गढ़न करके बनाया जाता है।

दूसरे प्रकार के छिद्रक चौड़े फलकों पर निर्मित है। इस प्रकार के छिद्रकों में एक किनारे खात बनाकर छिद्रक कार्यांग बनाया जाता है।

Scanned with OKEN Scanner

ब्लेड के बाद सबसे अधिक संख्या **स्क्रेपरो** की है। स्क्रेपर का कार्यांग बनाने के लिए अग्रपक्ष अथवा पृष्ठपक्ष से पुनर्गढ़न करते थे। स्क्रेपरो के विविध प्रकार हैं यथा **पार्श्व स्क्रेपर, खात स्क्रेपर, नतोदर स्क्रेपर, अन्त स्क्रेपर तथा चक्रिक स्क्रेपर** आदि। इनमें सबसे अधिक संख्या पार्श्व स्क्रेपरों की है। खात स्क्रेपर इस युग के सबसे विशिष्ट उपकरणों में से हैं, क्योंकि मध्य पुरापाषाण काल तथा मध्य पाषाण काल दोनों में ही इनका अपेक्षाकृत अभाव है।

शरों (Points) की संख्या अपेक्षाकृत कम है।

इस क्षेत्र के उच्च पुरा पाषाण कालीन उपकरण समुदाय में उल्लेखनीय वर्ग अर्धचान्द्रिकों (Lunates) का है। ये वास्तव में मध्य पाषाण काल के उपकरण माने जाते है। किन्तु उच्च पुरापाषाण काल के अर्धचान्द्रिक तथा मध्य पाषाण काल के अर्धचान्द्रिकों में बहुत अन्तर है। ये अपेक्षाकृत बहुत बड़े तथा चौड़े हैं। इस क्षेत्र में प्राप्त सबसे बड़ा अर्धचान्द्रिक 43 × 26 मिली मीटर है। सभी अर्ध चान्द्रिकों की चौड़ाई लम्बाई के आधे से अधिक है। मध्य पाषाण काल के अर्धचान्द्रिकों की चौड़ाई प्रायः लम्बाई के आधे से कम है।

हड्डी के बने उपकरण नहीं मिले हैं। अपवाद स्वरूप केवल एक उपकरण मुड़वा नामक स्थल से प्राप्त हुआ है। किन्तु यह इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि वह हड्डी के प्रचलन की ओर इंगित करता है।

**कलाकृति**

बेलन क्षेत्र में उच्च पुरापाषाण काल की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि हड्डी की बनी मातृ देवी की एक प्रतिमा है, जो लोंहदा नाला में तृतीय ग्रैवेल से प्राप्त हुयी थी। भारत में इस प्रकार की देवी की प्रतिमा उच्च पुरापाषाणकालीन स्तर से अन्यत्र नहीं मिली है। पटने में अवश्य साली को तीन शुतुर्मुर्ग के अण्डों पर सीधी तिरछी (Criss-Cross) रेखाओं से अलंकरण मिला है (साली, एस० ए०, 1974, 'अपर पेलियोलिथिक रिसर्च सिन्स इनडिपेंण्डेंस', बुले० ऑफ दि डेकन कालेज रिसर्च इन्स्टीट्ट पूना, वाल्यूम नं० XXXIV 14, पृ० 157)।

मातृ देवी की प्रतिमा चित्र सं. 66

बेलन घाटी के उच्च पुरापाषाणिक उद्योगों को स्तरीकरण के आधार पर प्रातिनूतन काल के अन्तिम चरण में रखते हैं। सौर्य वर्षों में उसके प्रारम्भ तथा अन्त की तिथि लगभग 32,000 वर्ष ईसा पूर्व से 10,000 वर्ष ईसा पूर्व के मध्य निर्धारित की जा सकती है। तृतीय ग्रैवेल से दो कार्बन तिथियाँ भी उपलब्ध हैं जो क्रमशः इस प्रकार हैं:

1. T.F : PRL 86 : 23840 ± 830
2. T.F : PRL 1245 : 17765 ± 340

कार्बन तिथियों पर आगे विचार किया गया है।

# 35

# आन्ध्र प्रदेश

उच्च पुरापाषाण काल के दृष्टिकोण से आंध्र प्रदेश में **रेनीगुंटा**, (मूर्ति, एम0 एल0 के0, 1968, 'ब्लेड ऐण्ड ब्यूरिन इण्डस्ट्रीज नीयर रेनीगुण्टा आन दि साउथ ईस्ट कोस्ट ऑफ इण्डिया, प्रो0 प्री0 हिस्टा सो0, वाल्यूम XXXIV, पृ0 83–101;–1970, 'ब्लेड–ऐण्ड–ब्यूरिन ऐण्ड लेट स्टोन एज इण्डस्ट्रीज एराउण्ड रेनीगुण्टा, चित्तूर डिस्ट्रिक्ट, इण्डियन ऐण्टी–क्वेरी, स्टडीज इन इण्डियन आर्क्यालजी, वाल्यूम, पृ0 106–228 I), येरीगोण्डपलेम, मुच्छतला चिन्तामनुगावी (मूर्ति, एम0 एल0 के0,1970, 'ए लेट प्लायस्टोसीन साइट इन सदर्न इण्डिया,' प्रो0 ऑफ दि अमे0 फिल0 सोसायटी, वाल्यूम 118, नं0 2 अप्रैल, पृ0 196–230 ) आदि स्थल महत्वपूर्ण हैं। **रेनीगुण्टा चित्तूर** जिले में मद्रास–बाम्बे मार्ग पर स्थित है। इस क्षेत्र के जल का निर्गम रल्लकलावा नदी द्वारा होता है जो स्वर्णमुखी की सहायक है। रल्लकलावा के ऊपर दो उच्च्यन कालीन वेदिकायें मिलती है। ये ग्रैवेल तथा गाद मिट्टी से निर्मित है। इसमें क्रमशः पुरापाषाण काल (Early StoneAge) तथा मध्य पाषाण काल (Middle StoneAge) के उपकरण मिलते हैं। (नोटः मूर्ति ने Early StoneAge, Middle StoneAge तथा Late StoneAge का प्रयोग किया है। यहाँ पर Middle StoneAge सें Middle Palaeolithic का तात्पर्य है।) टिमैय्या गुण्टा (Timmayya Gunta), वेंकमनायानिपल्ली (Venkamanayanipalli) तथा चुन्दी (Chundi) से उच्च पुरापाषाण कालीन ब्लेड–ब्यूरिन उद्योग उपलब्ध हुए थे। वेदुल्लचेरूवू (Vedullacheruvu) तथा नल्लगुण्डलू (Nallagundlu) से ब्लेड–ब्यूरिन उद्योग तथा मध्य पाषाणकालीन उपकरण (Late StoneAge Industries) एक साथ मिले हैं। ये जिन पत्थरों से निर्मित है तथा उपकरणों के आकार के आधार पर दोनों उद्योगों को परस्पर एक दूसरें से अलग किया जा सकता है। ब्लेड तथा ब्यूरिन महीन कण के क्वार्टजाइट से निर्मित है तथा लघु पाषाणोपकरणों का निर्माण दुधिया क्वार्ट्ज से किया गया है। नल्लगुण्डलू में 12 वर्ग फीट के क्षेत्र को 4 वर्ग फीट के चार वर्गो में विभाजित करके उसे खुरचा गया जिससे यह ज्ञात हुआ कि वास्तव में ब्लेड–ब्यूरिन

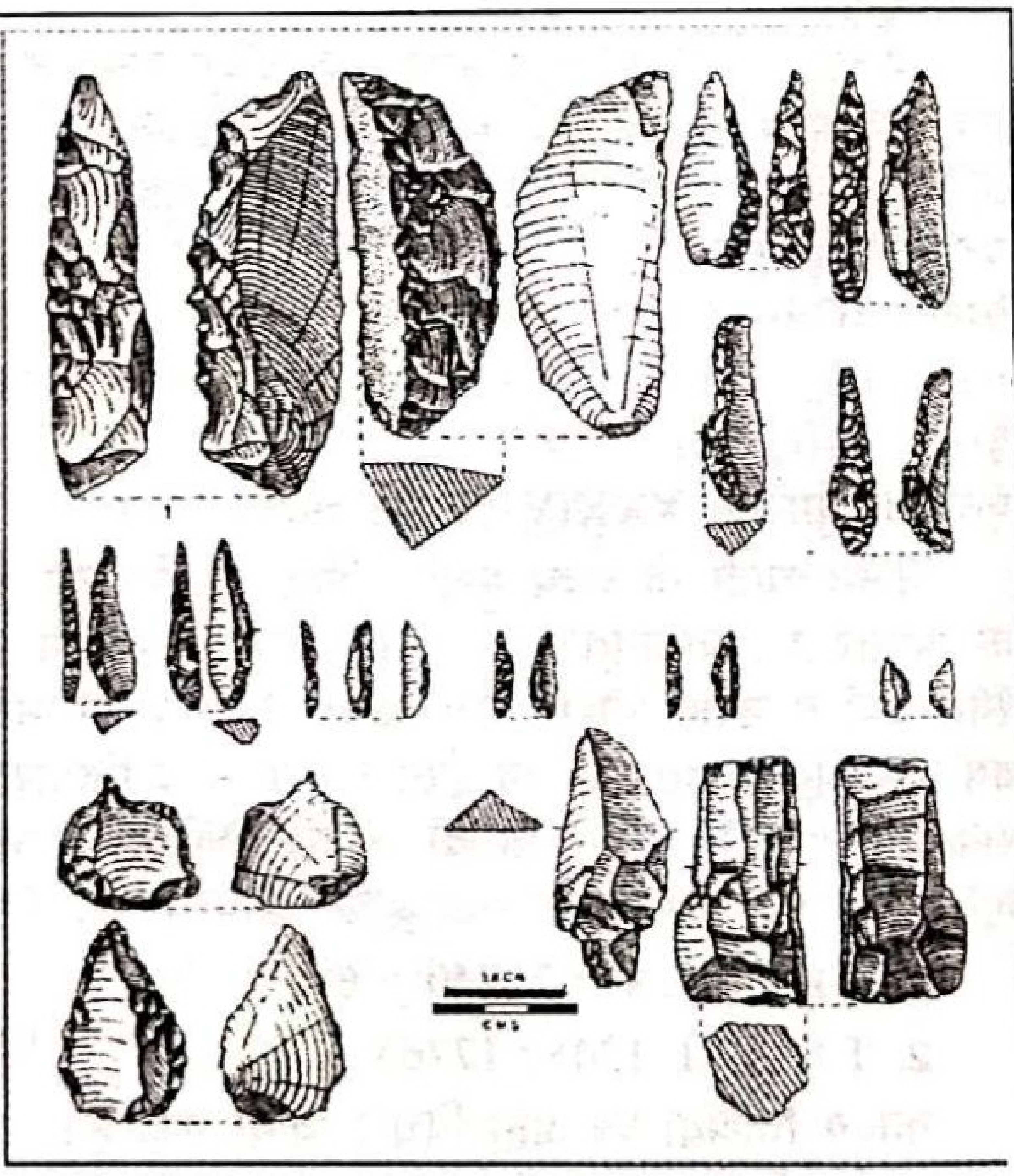

उच्चपुरापाषाणिक उपकरण रल्लकलावा चित्र–सं. 67 अ

उद्योग का केन्द्रीकरण सतह से 8" नीचे मिलता है। सतह पर ये लघु पाषाणोपकरणों के साथ बहुत थोड़ी संख्या में मिलते है। मूर्ति की धारणा है कि इस स्तर–विन्यास (Stratigraphy) के आधार पर कहा जा सकता है कि ब्लेड–ब्यूरिन उद्योग लघुपाषाणिक उद्योग का पूर्ववर्ती था। दोनों उद्योगों के उपकरण सतह पर एक साथ अपरदन के कारण ही मिलते हैं।

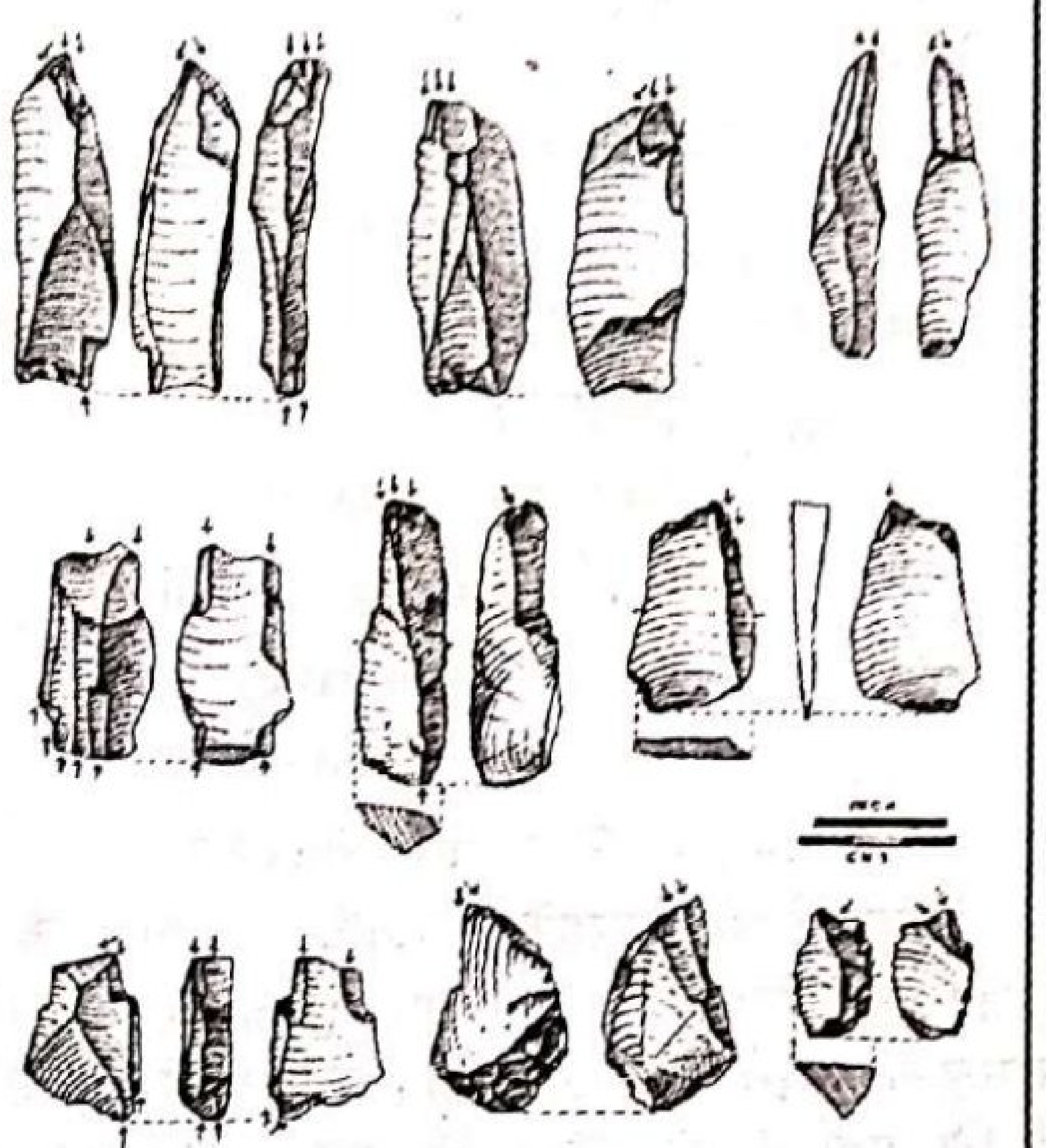

उच्चपुरापाषाणिकउपकरण रल्लकलावा चित्र–सं067ब

इस उद्योग की सबसे प्रमुख विशेषता ब्लेड तथा ब्लेड पर बने उपकरण हैं जिन्हे नालीमत कोर (Fluted Core) से निकाला गया था। स्क्रेपर तथा चॉपर साधारण कोर और फलक पर निर्मित मिलते हैं। ब्लेड प्रायः लम्बे, सुडौल समानान्तर अथवा अनियमित बाहु के मिलते हैं। इनके ऊपर एक अथवा अधिक कटक (Ridge) भी मिलते हैं। इनके आड़े अनुभाग (Cross Section) प्रायः विषम चतुर्भुजाकार (Trapezoidal), त्रिज्य खण्डाकार (Sector Like) हैं। ब्लेड बेलनाकार हथौड़े से अप्रत्यक्ष संघात प्रविधि से नालीमत कोर के दोनों अन्त से एकान्तरतया निकाले जाते थे। चारों तरफ से फलक निकालने के बाद अवशिष्ट कोर को ब्यूरिन बनाने के लिए प्रयोग में लाते थे। इन्हीं ब्लेडों को ही विविध प्रकार से गढ़ कर शर (Points), चाकू (Knives), अर्ध चान्द्रिक (Lunates) आदि बनाते थे।

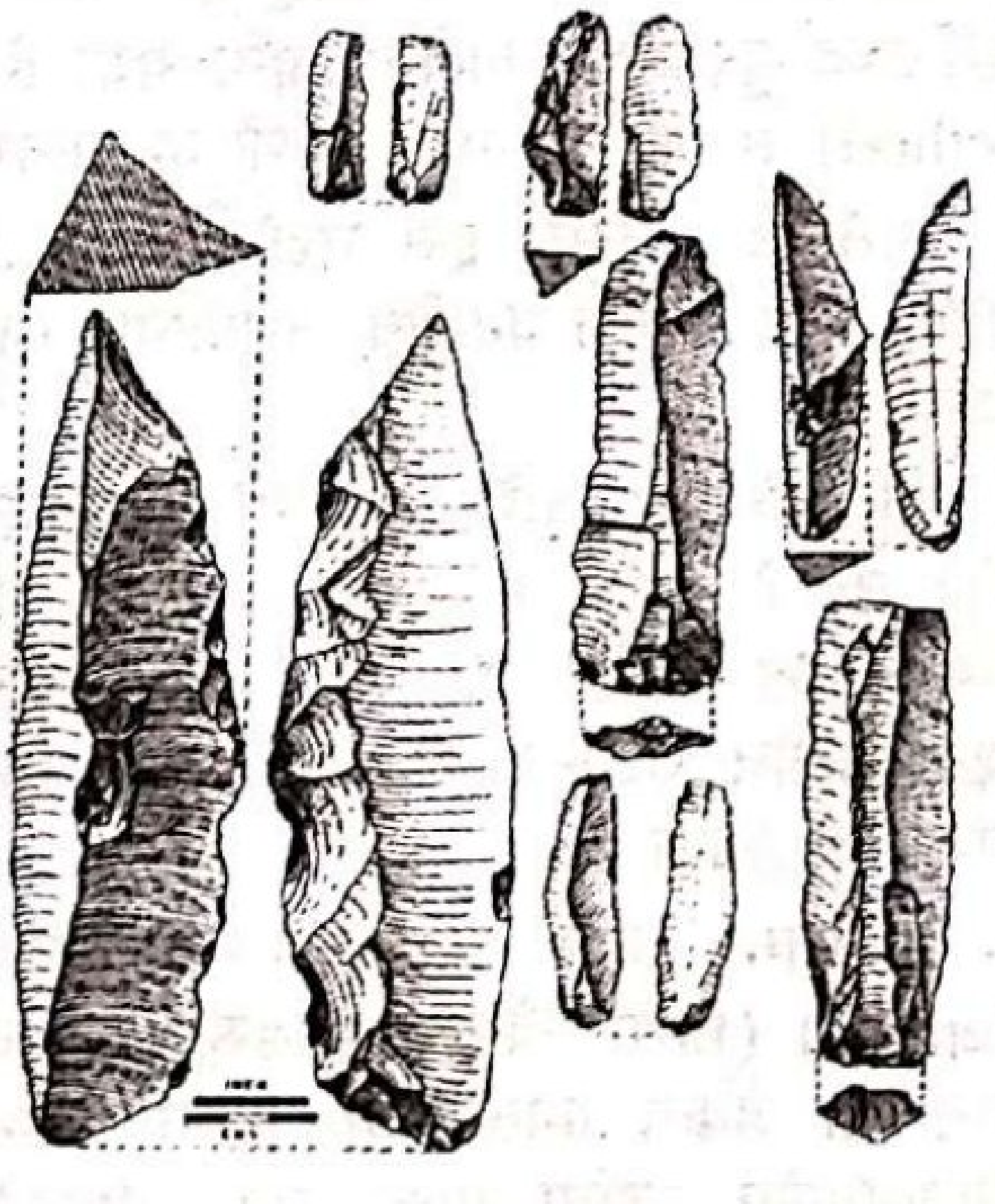

उच्चपुरापाषाणिक उपकरण रल्लकलावा चित्र सं. 67स

सम्पूर्ण संकलित उपकरणो की संख्या 5,993 थी (मूर्ति, एम0 एल0 के0, 1970, पार्श्वोद्धरित, पृ0 109–110)। इनमें से 1,279 उपकरण उत्खनन द्वारा सतह से 8" नीचे के स्तर से प्राप्त हुए थे। इनमें 13.2% पूर्ण (Finished) उपकरण थे। ब्लेड 19.3% तथा अन्य 67.5% थे। 16.40% ब्लेड 36 से 40 मि0मी0 के अन्तर्गत थे। उपकरण समुदाय में उपकरणों का वर्गीकरण निम्न था:

| | |
|---|---|
| चॉपर | 27 |
| स्क्रेपर | 63 |
| ब्यूरिन | 131 |
| भूथेड़े पार्श्व | 532 |

| | |
|---|---|
| ऑल | 30 |
| शर | 16 |

यहाँ से प्राप्त ब्यूरिन को छः वर्गो में नून (नून, एच0 वी0 बी0 'ए क्लैसीफिकेशन ऑफ फिंलट ब्यूरिन ऐण्ड ग्रेवर्स' ज0 ऑफ दि ऐन्थ्रो0 इन्स0 वाल्यूम 64, पृ0 81–94),के विश्लेषण के आधार पर विभाजित किया गया है।

| | |
|---|---|
| केन्द्रीय (Central) | 30 |
| प्रवण कोण (Bevel) | 44 |
| समकोणीय (Rectangular) | 44 |
| नतोदार (Concave) | 6 |
| उन्नतदोर (Convex) | 2 |
| अपूर्ण (Unfinished) | 2 |

ब्यूरिन के अतिरिक्त विविध प्रकार के भुथड़े पार्श्व उपकरण (Backed Pieces) चाकू (Knives), ऑल (Awl), शर (Point), अर्धचान्द्रिक (Lunate), त्रिभुज (Triangle), विषम कोण समलम्ब चतुर्भुज (Trapeze) (इनकी तीन छोटी भुजायें भुथड़ी हैं), आदि मिले है। यह उल्लेखनीय है कि यहाँ से एक भी दन्तुर कटक ब्लेड (Crested Redged Blade) नही मिला है।

रेनीगुण्टा के ब्लेड–ब्यूरिन उद्योग सतहीं स्थलों से ही प्राप्त हुए थे, अतः उनके तिथि निर्धारण के लिए स्तर–विन्यास से कोई भी प्रमाण उपलब्ध नहीं है। उपकरणों के प्रारूपात्मक दृष्टि से ही इन्हें उच्च पुरापाषाणकालीन माना गया है। इनकी तिथि का निर्धारण भी सापेक्ष विधि (Releative Method) से लघु पाषाणोपकरणों के सन्दर्भ में किया गया है।

मूर्ति के अनुसार इस उद्योग को 8,000 ई0 पू0 से 6,000 ई0पू0 के अन्तर्गत रखना चाहिए, क्योंकि मध्य पाषाण कालीन लघुपाषाण उद्योग की तिथि लगभग 5,000 वर्ष ई0पू0 निर्धारित की जा सकती है।

मूर्ति के द्वारा वर्णित उद्योगों का महत्व बहुत अधिक बढ़ जाता यदि वे स्तरित जमावों में मिले होते। उसके अभाव में इनका अध्ययन प्रारूप विद्या पर ही आधारित है। उच्च पुरापाषाण कालीन ब्लेड–ब्यूरिन उद्योग की जो तिथि उन्होनें दी है वह भी ठीक नहीं प्रतीत होती है। अब मध्य पाषाणकालीन उद्योगों की कई कार्बन तिथियाँ उपलब्ध हैं जो उसकी प्राचीनता 8,000 ई0पू0 के लगभग ले जाती है।

प्रकाशम जिले के येर्रगोण्डपलेम (Yerragondapalem) तथा कुडुप्पा जिले के वेमुला (Vemula) (1970, 'वेमुला इण्डस्ट्री इन कुडप्पा बेसिन', इण्डियन ऐण्टीक्वेरी, पृ0 227–34) नामक स्थानों से डेकन कालेज के थिम्मा रेड्डी को ब्लेड–ब्यूरिन उद्योग के उपकरण प्राप्त हुए थे। येर्रगोण्डपलेम उद्योग प्रारूपात्मक दृष्टिकोणो से रेनीगुण्टा के ही समान है। यहाँ से भी चॉपर (Chopper), स्क्रेपर (Scraper), भूथड़े पार्श्व ब्लेड (Blunted back blades), चाकू (Knife edged blade), ब्यूरिन (Burin), शर (Point), छिद्रक (Awl) मिले हैं। यहाँ पर ब्यूरिन के चार प्रकार मिले हैं। नतोदर (Concave) प्रकार के ब्यूरिन यहाँ पर भी मिले हैं।

## मुच्छतला चिन्तामनुगावी

उच्च पूर्णपाषाण कालीन सन्दर्भ में मुच्छतला चिन्तामनुगावी शिलाश्रयों का उल्लेख समीचीन है।

Scanned with OKEN Scanner

ये वेटमचर्ला से 5 किलोमीटर दक्षिण–पश्चिम में एक छोटी पहाड़ी के कगार में स्थित है। पुराना वर्ग (Purana group) के चूना पत्थर की संरचना में स्थित है। गुहा में प्रवेश के तीन मार्ग है। फरवरी–जून के अतिरिक्त वर्ष के अधिकांश समय यह गुहा अंधकारमय रहती है।

उत्खनन के फलस्वरूप इस गुहा में तीन जमाव मिले जिन्हें क्रमषः (1), (2), (3) कहा गया है।

**प्रथम लेयर**– 15 से0मी0 मोटी है तथा इसका रंग भूरा है। इसमें एक गहरा *बोल* (Bowl-कटोरा) मिला था जिसकी पेंदी में छिद्र थे। इसके अतिरिक्त पत्थर तथा हड्डी के उपकरण भी मिले थे।

**द्वितीय लेयर**– इसका अधिकतम जमाव 70 से0मी0 था। यह भूरी चिकनी गाद मिट्टी से निर्मित है। इससे भी प्रस्तर–उपकरण, हड्डी के उपकरण, जानवरों के दाँत तथा हड्डियों के अतिरिक्त एक हैमर स्टोन (Hammar Stone) भी प्राप्त हुआ था।

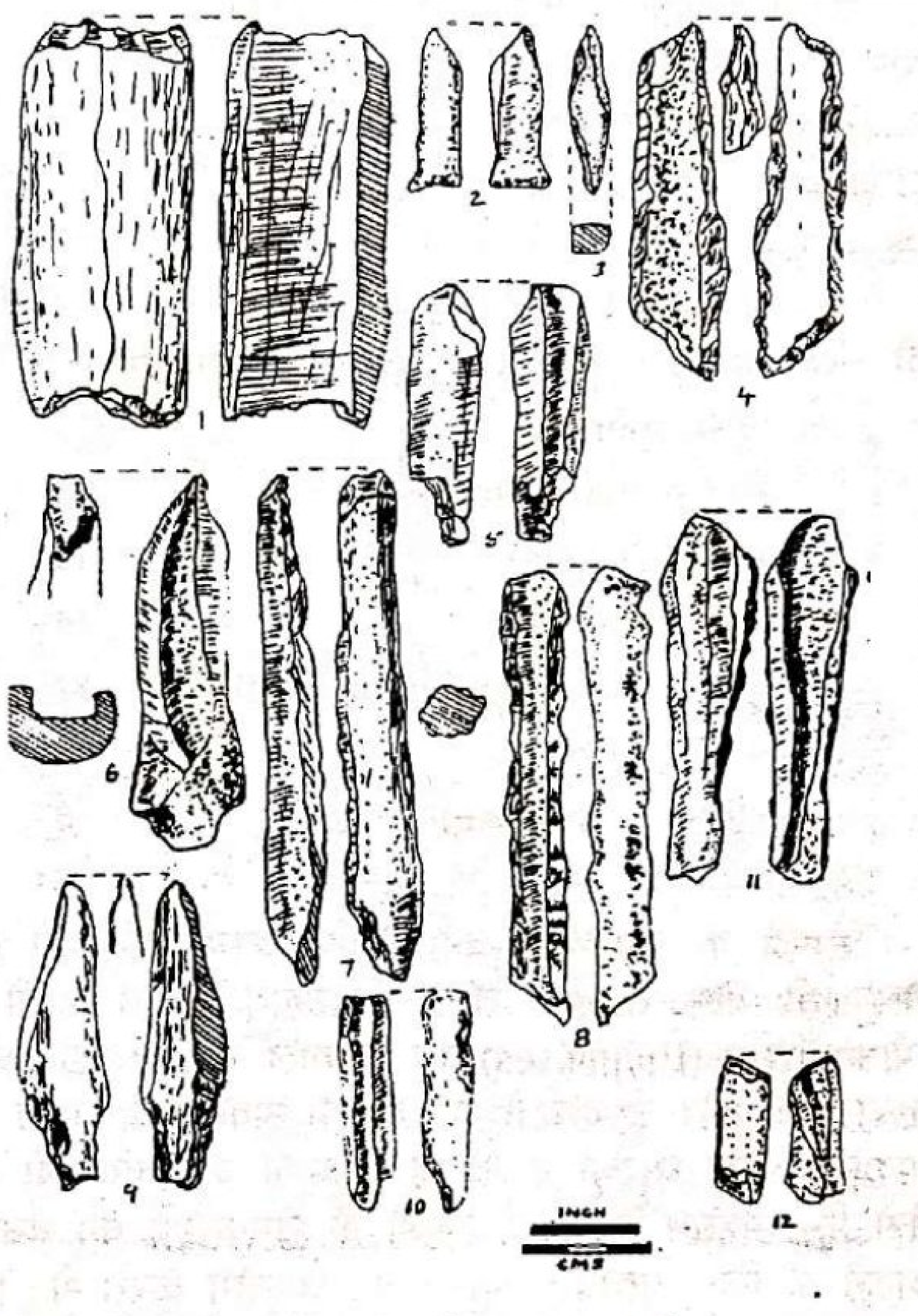


**मुच्छतला चिन्तामनुगावी:** हड्डी के उपकरण 1 स्क्रेपर,2,3 छिद्रक,4–6छेनी,7,8स्पैटुला,9पुच्छल शर,11बोन ब्लैंक चित्र सं0–68

**तृतीय लेयर**– यह चॉकलेट भूरी मिट्टी से निर्मित है तथा इसकी अधिकतम मोटाई 45 से0मी0 है। यह निम्नतम जमाव शेल की आधारशिला पर स्थित है तथा भली भाँति संयोजित (Cemented) एवं पथरीली है। इसमें चूना पत्थर और शैल के टुकड़े मिले हुए हैं। इस स्तर से प्रस्तर तथा हड्डी के उपकरणों के अतिरिक्त, जानवरों के दाँत तथा हड्डियाँ भी उपलब्ध हुयी है।

सांस्कृतिक दृष्टि से इस सम्पूर्ण जमाव में दो संस्कृतियों के अवशेष चिन्हित है:

1. नव पाषाण युगीन (Neolithic)
2. उच्चपुरापाषाण कालीन (UpperPalaeolithic)

एक मात्र हैमर स्टोन के अतिरिक्त अन्य सभी सामग्री, उच्च पुरापाषाणकालीन है। तीनों जमावों के उपकरणों में किसी भी प्रकार का प्रारूपात्मक अन्तर (Typological Variation) नहीं है। अन्तर केवल उनकी अवस्था में है। यहाँ से उपलब्ध प्रस्तर–ब्लेड उच्च पुरापाषाण कालीन ब्लेडों के समान ही है। इनसे सम्बंधित जैविक अवशेषो में 12 उत्तर प्राति नूतन कालीन जीव वर्गों के हैं। उच्च पुरापाषाण कालीन सम्पूर्ण उपकरणों में 223 प्रस्तर उपकरण तथा 200 हड्डी के उपकरण हैं।

प्रस्तर उपकरण समुदाय फलक (Flake), ब्लेड (Blade), कोर (Core), चिप्पियाँ (Chips). तथा हैमर स्टोन में विभाजित किया गया है। उपकरणों में पुनर्गढ़न नगण्य सा है। फलकों के ऊपरी सतहों पर जो फलक चिन्हित मिलते हैं उनसे अनुमान किया जा सकता है कि वे साधारण कोरों से प्रस्तर हथौड़े से निकाले गये थे। प्रायः सभी ब्लेड नियमित हैं तथा उनके ऊपर समानान्तर कटक इस बात के प्रमाण है कि वे नालीमत कोरों से निकाले गए थे।

यहाँ का प्रमुख उद्योग, हड्डी उद्योग (Bone Industry) था। इस प्रकार के सम्पूर्ण उपकरणों की संख्या 2003 है जिसमें से 151 पूर्ण (Finished) हैं। इन्हें निम्न वर्गों में विभाजित गया है:

| | |
|---|---|
| (Scraper) | 1 |
| छिद्रक Perforators) | 61 |
| छेनी (Chisels) | 12 |
| स्कूप (Scoop) | 14 |
| पुच्छल शर (Shouldered point) | 27 |
| कॉटे (Barb) | 18 |
| स्पैटुला (Spatulae) | 8 . |
| | 151 |

हड्डी के उपकरणों का निर्माण लम्बी हड्डियों (Long bones) से किया जाता था। इनके निर्माणकी कम–से–कम तीन आवस्थायें प्रतीत होती है: प्रथम अवस्था में लम्बी हड्डियों के एपीफाईसिस (Epiphyses) को निकाल कर हड्डी को आड़ा काटते थे। दूसरी अवस्था में उसे लम्बाई की ओर से काटते थे। तीसरी अवस्था में पार्श्व से फलकीकरण करके उनको पूर्ण करते थे। सांकलिया की धारणा है कि इन हड्डी के उपकरणों को लगभग उसी प्रकार से बनाया जाता है जैसे कि पश्चिम यूरोप में हड्डी के उपकरणों को बनाया जाता था। हड्डी को अनुलम्ब दिशा में काटने के लिए सम्भवतः ब्यूरिन का उपयोग करते थे। निकाले हुए हड्डी के टुकड़े के अन्तभाग को गढ़कर उनका विभिन्न प्रकार से उपयोग किया जाता था। स्क्रैपरों का निर्माण प्रायः मोटे तथा चौड़े हड्डी के टुकड़ों पर करते थे।

उत्खनन से प्राप्त जैविक अवशेषों की पहचान डॉ0 के0एन0 प्रसाद ने की है। उनके अनुसार निम्न जीवों के अवशेष वहाँ से उपलब्ध हुए हैं। ये सभी अन्त प्रातिनूतन कालीन हैं (सांकलिया, एच0डी0, 1974, पार्श्वोद्वरित, पृ0 217)।

| | |
|---|---|
| Primates | Presbytis entellus |
| Carnivora | Viverra Sp. |
| Redentia | Hystrix Sp. |
| | Equus Sp. |
| | EqussAsinus |
| Artiodactyla | Cervus Sp. |
| | Boselephas Sp. |
| | Bos. Sp. |
| | Bubalus Sp. |
| | Antilope Sp. |

Scanned with OKEN Scanner

· Gazella Sp.

जन्तु वर्गों से अनुमान किया जाता है कि यहाँ पर वृक्षों का जंगल रहा होगा तथा अधिकांश भागों में केवल लम्बी घासों के मैदान होंगे। मूर्ति की धारणा है कि यह गुहा तत्कालीन मानव का स्थायी निवास अथवा जानवरों का वध स्थल नही रही होगी। अन्त प्रातिनूतन काल में तत्कालीन मानव इसका उपयोग अल्प कालीन आवास अथवा मार्गस्थ आवास के रूप में करता होगा (मूर्ति, एम0 एल0 के0, 1974, पार्श्वोद्धरित, पृ0 225–227)।

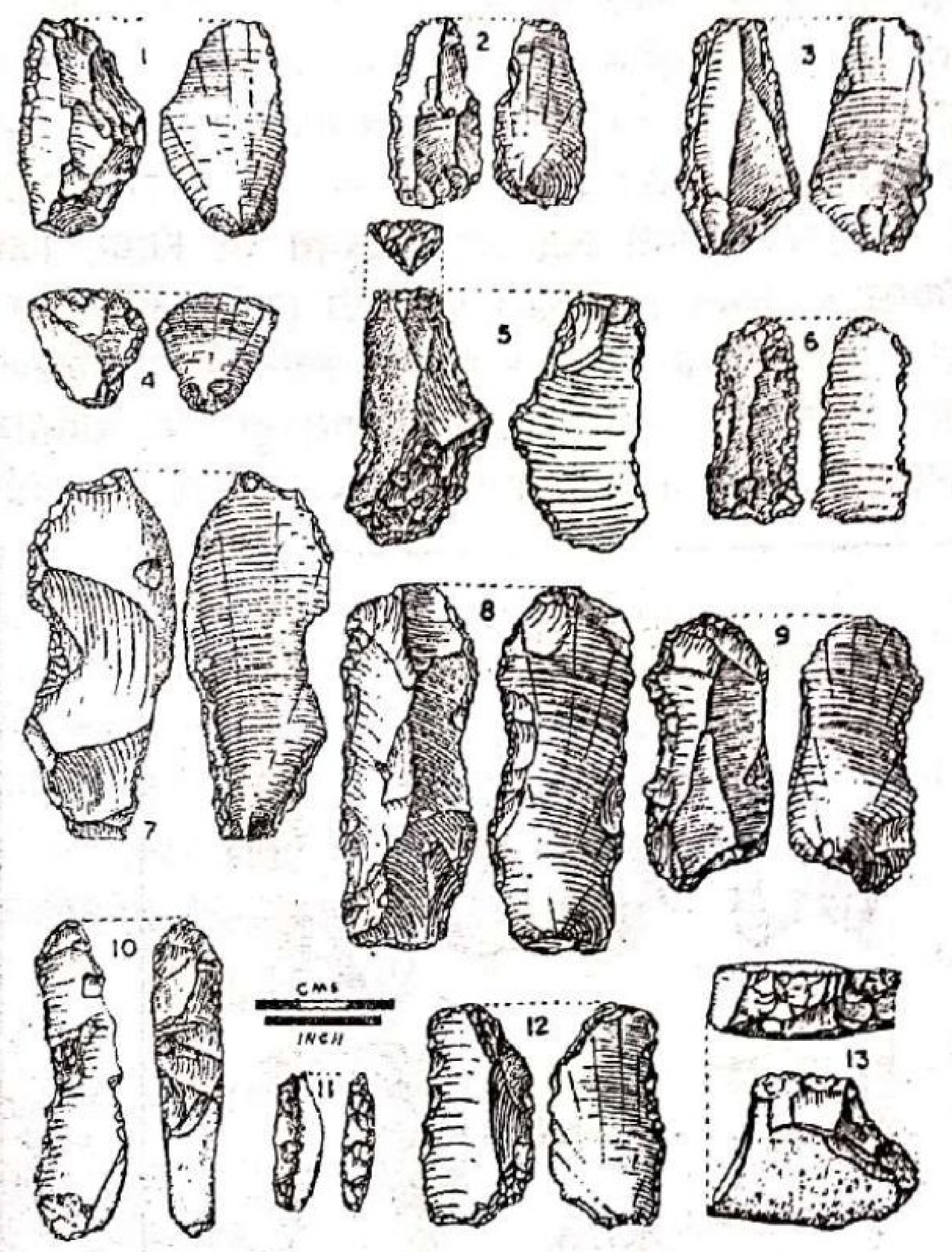

उच्चपुरापाषाणकालीन उपकरण रल्लकलाबा चित्र सं0–69अ,ब,स

1983 में नाम्बी तथा मूर्ति (बी0,डी0,सी0,अर0, इ0 वल्यूम 40 पृ0 110–113 ) ने उच्च पुरापाषाण कालीन चूल्हे का उल्लेख किया है। इसकी टी0 एल0 तिथि 17,390 वर्ष आकी गई है।

मुच्छतला चिन्तामनुगावी Tr.no.E (2m × 2m) के उत्खनन में 1.35 मी0 के नीचे निरन्तर राख के रूप में अग्नि के प्रमाण मिल रहे थे। उत्खनन कर्ताओं ने उसका उल्लेख इस प्रकार किया है। 'लाइम–स्टोन बोल्डरों को घोड़े की नाल के आकार में रखते थे जिसमें 1.6 मी0 की अधिकतम लम्बाई तथा 0.70 मी0 की अधिकतम आन्तरिक चौड़ाई थी। अग्निस्थल के निकट 1.5 मी0–1.85 मी0 तक जली हड्डी के टुकड़े, जले चूना पत्थर मिट्टी के लोढ़े हरे रंग के चर्ट आदि बिखरे थे। इस अग्नि स्थल का उपयोग मांस को पकाने तथा चर्ट के नोडूल को गर्म करने में करते थे।

## शोरापुर दोआब

शोरापुर दोआब उच्च पूर्वपाषाणिक स्थल की दृष्टि से अन्य महत्वपूर्ण केन्द्र कर्नाटक के गुलबर्गा जिले में स्थित शोरापुर दोआब (पद्दैय्या, के0, 1970, 'दि ब्लेड टूल इण्डस्ट्री ऑफ शोरापुर दोआब) इण्डियन ऐण्टीक्वेरी, पृ0 165–190) है जो कृष्णा तथा भीमा नदियों के संगम के फलस्वरूप बना है। उच्च पुरापाषाण कालीन स्थल शोरापुर तालुका से पश्चिम दिशा में लगभग 22 मील की दूरी पर एक खेत में लगभग दो एकड़ के दायरे में फैला हुआ है। यहाँ से पहले सुंन्दरा तथा शेशादरी ने संग्रह किया था (इ0 आर्क्या0, 1960–61)।

यहाँ से लगभग दो मील दक्षिण में मेरलभावी (Meralbhavi) में पद्दैय्या ने पुनः एक खेत में इसी प्रकार के स्थल को खोज निकाला। यह स्थल सात–आठ एकड़ में विस्तृत है। यहाँ पर भी मध्य पूर्वपाषाणकालीन उपकरण तथा ब्लेड उद्योग के उपकरण मिश्रित रूप से मिले हैं। प्रारूपात्मक दृष्टि से उनमें से 196 मध्य पूर्वपाषाणकाल के तथा 446 ब्लेड उद्योग के थे। चूँकि उपकरण मिश्रित थे तथा सतही स्थल से प्राप्त हुए थे, अतः उनका विशेष महत्व नहीं था। पद्दैय्या ने वहाँ पर 4 × 4 फीट की खनती डालकर उत्खनन भी किया, किन्तु उससे भी कोई महत्वपूर्ण निष्कर्ष नहीं निकला। गुलबल (Gulbal), बेनहट्टी (Benhatti) तथा हुण्सगी (Hunsgi) से भी वैसे ही स्तरों से ब्लेड उपकरण प्राप्त हुए थे। सभी स्थानों पर उपकरण काली–भूरी गाद मिट्टी के अन्तर्गत पेबुल और ग्रैवेल के निर्बंध जमावों में प्राप्त हुए थे। सौभाग्य से इन्हें हुण्सगी न्प्रले में, जो सलबादगी मेरलभावी पठार के पूर्वी भाग में है, जमावों का निम्नलिखित क्रम प्राप्त हुआ :

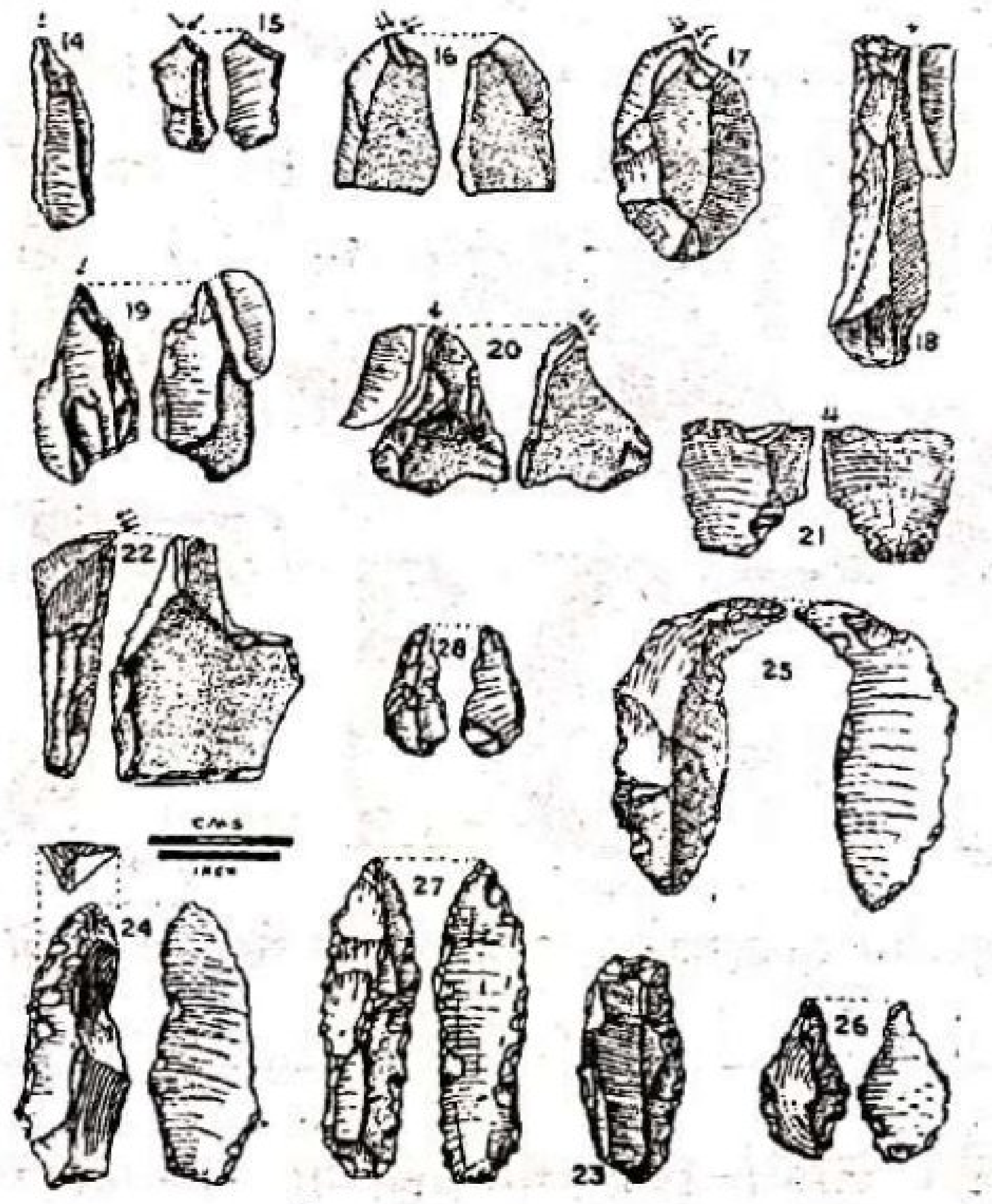

उच्चपुरापाषाणिक उपकरण रल्लकलावा
चित्र–सं. 69 ब

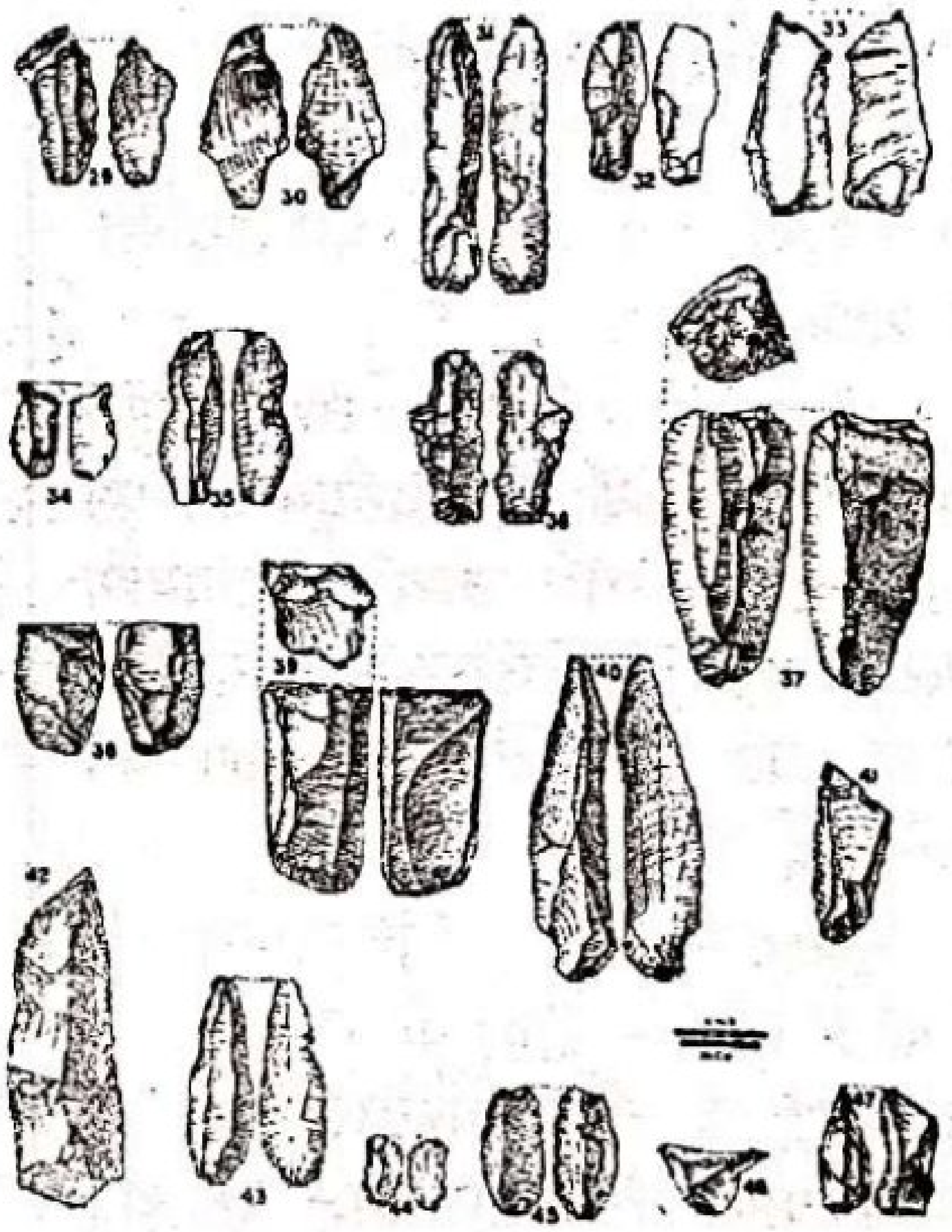

उच्चपुरापाषाणिक उपकरण रल्लकलावा
चित्र–सं. 69 स

6. सतह
5. काली–भूरी गाद मिट्टी तथा उसके अन्तर्गत निर्बंध पेबुल–ग्रैवेल
4. पीली–भूरी गाद मिट्टी
3. पेबुल–ग्रैवेल
2. मोटा प्रस्तर पिण्ड ग्रैवेल
1. आधारशिला

उपर्युक्त जमाव क्रम के नीचे से द्वितीय निक्षेप से निम्न पुरापाषाण काल के उपकरण तथा तृतीय से मध्य पुरापाषाणकाल के उपकरण प्राप्त हुए थे। ब्लेड–ब्यूरिन उपकरण उद्योग–स्थलों पर

जिस स्तर से प्राप्त हुए थे वह वास्तव में पाँचवां स्तर – काली भूरी गाद मिट्टी ही था। वस्तुतः इस स्तर के अन्तर्गत निर्बंध पेबुल ग्रैवेल के निक्षेप मिलते हैं। उन्हीं में उच्च पूर्वपाषाण काल के उपकरण निहित है। लघुपाषाण उपकरण धरातल की सतह पर मिलते हैं। पद्दैय्या का विचार है कि यहाँ के तीनों उद्योगों को तीन भिन्न काल–क्रम का मानना चाहिए।

सभी उपकरण फ्लिण्ट के समान चर्ट पर निर्मित हैं, जो यहाँ पर बालू पत्थर के बीच–बीच में मिलता है। चर्ट प्रायः रक्ताभ–भूरे रंग के हैं, इनके अतिरिक्त पीले, लाल तथा नीले रंगों के भी दिखाई देते हैं। सभी उपकरण एकदम नवनिर्मित प्रतीत होते हैं। प्रायः लम्बे बेलनाकार पत्थर के टुकड़ों को गढ़कर उन्हें नालीमत कोरों में परिणत करते थे। पद्दैय्या की धारणा है कि यहाँ पर ब्लेडों को निकालने के लिए अप्रत्यक्ष विधि के अतिरिक्त प्रत्यक्ष विधि का भी उपयोग करते थे। आघात स्थल प्रायः साधारण तथा आघात के अर्धशंकु विकसित हैं। ब्लेड के पृष्ठ भाग पर लम्बे फलक चिन्ह मिलते हैं जो इस बात का निर्देश करते हैं कि ब्लेड कई बार निकाले गए थे। कुछ ब्लेडों पर पुनर्गढ़न के प्रमाण भी मिलते हैं तथा पुनर्गढ़न के द्वारा उन्हें विविध प्रकार के उपकरणों में परिणत किया गया है। पुनर्गढ़न तीन प्रकार का मिलता है : 1. इस प्रकार में कार्यांग के किनारे छोटे–छोटे फलक निकालकर कार्यांग को तीक्ष्ण करते थे। 2. इस प्रकार के पुनर्गढ़न में किनारे को इस तरह भुथड़ा करते थे कि उसे मढ़ने में सुविधा हो। 3. इसमें बहुत पतली तथा सकरी पर्ते निकालकर पुनर्गढ़न करते थे।

पद्दैय्या ने उपकरणों का वर्गीकरण कार्यांग के आधार पर किया है। इन्हें तीन वर्गों में निम्न प्रकार से विभाजित किया गया है :

1. धारदार उपकरण (Edge Tools)
2. अ–धारदार उपकरण (Non-Edge Tools)
3. बहुल उपकरण (Multiple Tools)

प्रथम वर्ग में विविध प्रकार के ब्लेड तथा ब्यूरिन हैं। पद्दैय्या ने इन्हें ग्यारह प्रकारों में बाँटा है। दूसरे वर्ग में विविध प्रकार के शर तथा छिद्रक सम्मिलित है। तृतीय वर्ग में ऐसे उपकरण हैं जिनमें एक ही उपकरण से विविध कार्य लिए जा सकते हैं। ब्यूरिन पांच प्रकार की हैं – अ. एकाघातीय ब्यूरिन (Single blow burins), ब. बेक्–द–फ्लूत ब्यूरिन (Bec-de-flute burins), स. बहुतलीय ब्यूरिन (Ployhedral burins), द. कोणीय ब्यूरिन (Angle burin), य. चन्च्वाकार ब्यूरिन (Beaked burin)

सांकलिया (सांकलिया, एच0डी0, 1976, पार्श्वोद्धरित, पृ0 221–222) का विचार है कि यहाँ के उद्योग में वास्तविक सुगढ़ ब्लेड नहीं है और यदि हैं तो बहुत कम हैं। ब्यूरिन के भी यद्यपि विविध प्रकार मिलते हैं, किन्तु उनमें वास्तविक उच्च पुरापाषाणकालीन ब्यूरिन की परिपूर्णता अथवा परिसज्जा नहीं है। सांकलिया के अनुसार इस उद्योग को प्रारूपात्मक दृष्टि से रेनीगुण्टा तथा येर्रगोण्डपलेम के वास्तविक उच्च पुरापाषाणकालीन उद्योग का पूर्ववर्ती मानना चाहिए। यहाँ पर लघुपाषाण उद्योग के अर्धचान्द्रिक, त्रिभुज तथा विषम चतुर्भुजाकार उपकरण इस उद्योग के साथ नहीं मिले हैं।

# 36

## पटने (महाराष्ट्र)

उच्च पुरापाषाण काल के अनेक उद्योग स्थल महाराष्ट्र में समय–समय से प्रतिवेदित होते रहें हैं, किन्तु उनमें पटने विशेष उल्लेखनीय है (साली, एस0ए0, 1970, क्वाटर्नरी स्ट्रैटीग्रैफी इन दि कान बेसिन, जे0ए0सी0 बाम्बे0 वाल्यू0 39, पृ0 157–67;सांकलिया एच0डी0, 1974, पार्श्वोद्धरित, पृ0 226–228)। पटने, जलगाँव जिले में चालीसगाँव रेल स्टेशन से तेरह किलोमीटर दक्षिण में आद नाला के निकट स्थित है। इसके जल का निकास तित्तूर नदी के द्वारा गिराना में होता है जो ताप्ती की सहायक है। पटने गाँव के दक्षिण में लगभग आधे किलोमीटर की दूरी पर जिसे क्षेत्र 'A' कहा गया है से प्रस्तरयुगीन संस्कृतियों – – मध्य पुरापाषाणकाल से लेकर मध्य पाषाणकाल तक – का क्रम मिला था। 1972–73 में उस स्थान पर क्षेत्र 'A' तथा 'B' में उत्खनन भी किया गया। कुल मिलाकार चौदह खनतियाँ डाली गई। दोनों ही क्षेत्रों में 10 मीटर जमाव प्रकाश में आया जो ऊपर से नीचे इस प्रकार था (साली, एस0ए0, 1974) :

| लेयर नं0 | जमाव | मोटाई | | सांस्कृतिक क्रम |
|---|---|---|---|---|
| 1 | गाढ़ा भूरा ग्रैवेल (Dark brown gravel) | 20 सेमी0 | IIIC | उत्तर मध्यपाषाणकालीन (Late Mesolithic) |
| 2 | भूरी लोएस गाद मिट्टी (Brown loessic silt) ---Unconformity-- | 1.40 मी0 | III B | |
| 3 | फॉसिल मिट्टी | 40 से0मी0 | IIIA | प्रारम्भिक मेसोलिथिक |
| 4 | बालुई महीन ग्रैवेल (Sandy fine gravel) | 1.00 मी0 | | |
| 5 | पीली कंकड़ी गाद मिट्टी (Yellow Kankary Silt) | 1.50 मी0 | II F | उत्तर उच्च पुरा पाषाणिक (Late Upper Paleaoithic) |
| 6 | महीन ग्रैवेल, पेबुल एवं विशाल प्रस्तर पिण्ड (Fine gravel with bouldersAnd pebbles) --Unconformity-- | 30 से0मी0 | | |
| 7 | भूरी विदरित मिट्टी (फॉसिल मिट्टी) Brown Fissured clay (Fossil Soil) | 20 से0मी0 | II D | |

Scanned with OKEN Scanner

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 8 | गहरी भूरी विदरित मिट्टी (Dark Brown fissured clay ) | 90 से0मी0 | II C | |
| 9 | बलुई महीन ग्रैवेल (Sandy fine gravel) | 30 से0मी0 | | |
| 10 | भूरी गाद मिट्टी (Brown Silty clay) | 70 से0मी0 | | |
| 11 | कोणिक चूर्णमय ग्रैवेल (Angular calcareous gravel) | 30 से0मी0 | II B | प्रारम्भिक उच्च पाषाणिक |
| 12 | अत्यधिक चूर्णमय गाद मिट्टी (Highly caly Silt) --Unconformity-- | 1.30 मी0 | IIA | |
| 13 | लाल बलुई महीन ग्रैवेल (Reddish Sandy fine gravel) | 1.50 मी0 | I | विकसित मध्य पाषाणिक |
| 14 | अपक्षीण बसाल्ट (Weathered Basalt) | | | |

सांकलिया की पुस्तक (1974) में ये दोनों विभाजन एक साथ दर्शित हैं। साली ने तीन विषमविन्यास (Unconformity) को भी दिखाया है, जब कि सांकलिया ने उसका उल्लेख नहीं किया है।

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि पटने के सम्पूर्ण पुरातात्विक अवशेषों को तीन सांस्कृतिक कालों में विभाजित किया जा सकता है, जो इस प्रकार है :–

प्रथम काल – विकसित मध्य पुरापाषाणिक (Middle Palaeolithic)

द्वितीय काल – उच्च पुरापाषाणिक (Upper Palaeolithic)

तृतीय काल – मध्य पाषाणिक (Mesolithic)

प्रथम काल (Period I) – लेयर (13) अथवा लाल बालुई महीन ग्रैवेल से मध्य पुरापाषाणिक उपकरण उपलब्ध हुए हैं। उपकरण समुदाय में स्क्रेपर, शर तथा छिद्रक के अतिरिक्त चौड़े पुनर्गढ़ित ब्लेड–'फलक मिले थे। उपकरण निर्माण के लिए प्रमुखतया जैस्पर का उपयोग किया गया है।

द्वितीय काल (Period II) – इस काल के उपकरण लेयर (12) से (4) तक के निक्षेपों से उपलब्ध हुए हैं। यह वास्तविक उच्च पुरापाषाणिक स्तर है। साली ने इसे दो भागों – 1. प्रारम्भिक उच्च पुरापाषाणिक तथा 2. उत्तर उच्च पुरापाषाणिक में विभाजित किया है। इन्हें पुनः पाँच उपविभागों I, B, C, D तथा E में विभक्त किया गया है (सांकलिया ने केवल चार उपविभाग दिए हैं।)। इनमें से I तथा B प्रारम्भिक उच्च पुरापाषाणिक है तथा अन्य उत्तर पुरापाषाणिक।

स्तर के अतिरिक्त विभिन्न उपकरणों में निर्माण सामग्री, उपकरणों के आकार तथा प्रकार में भी अन्तर है।

## पटने IIA

इस वर्ग के उपकरण मुख्यतया जैस्पर के हैं। इस स्तर से एक भुथड़ा–पार्श्व चाकू, स्क्रेपर, शर

Scanned with OKEN Scanner

तथा ब्यूरिन प्राप्त हुए हैं। पहले की अपेक्षा ब्लेडों की संख्या बढ़ जाती है तथा फलक पर निर्मित स्क्रेपर तथा शर अपेक्षाकृत कम हो जाते हैं। सांकलिया ने इस स्तर को उच्च पुरापाषाणिक संस्कृति के निर्माण का काल कहा है।

**पटने II B**

यह पहला वास्तविक उच्च पुरापाषाणिक स्तर है। इसमें ब्लेड, ब्यूरिन, तथा ब्लेड पर निर्मित उपकरणों की संख्या में वृद्धि हो जाती है। साधारणतया ब्लेड लम्बे, चौड़े तथा मोटे हैं। इनके अतिरिक्त भूथड़े पार्श्व ब्लेड, पुनर्गढ़ित ब्लेड, अन्त स्क्रेपर, स्क्रेपर और कुछ नालीमत कोर भी मिले हैं। जैस्पर का प्रयोग प्रमुख रूप से किया गया है।

**पटने II C**

इस वर्ग के उपकरणों का निर्माण जैस्पर के स्थान पर चाल्सेडनी से किया गया है। इसके अतिरिक्त उपकरण पहले की अपेक्षा आकार में भी बहुत छोटे होने लगते हैं। ब्लेड तथा ब्यूरिन उपकरणों का आधिक्य हो जाता है। ब्लेड में पुच्छल ब्लेड (Tanged Blade), पेन नाइफ ब्लेड, भूथड़े, पार्श्व ब्लेड तथा भली भाँति गढ़ित ब्लेड सम्मिलित हैं। ब्लेड फलक तथा कोर तीनों का उपयोग ब्यूरिन के निर्माण के लिए किया गया है। कुछ पुच्छल शर भी मिले हैं।

इस स्तर से एक चक्र बीड (Disc bead) भी मिला है, जो शुतुर्मुर्ग के अण्डे के टुकड़े पर बना है।

**पटने II D**

इस वर्ग के उपकरण पहले की अपेक्षा आकार में काफी छोटे हो जाते हैं तथा 'वास्तविक ब्यूरिन' सर्वप्रथम इस वर्ग में मिलती है।

**पटने IIE**

इस वर्ग के उपकरण IID के ही समान हैं, किन्तु उनके साथ कुछ ज्यामितिक – यथा, त्रिभुज तथा विषमकोण चतुर्भुज आकार भी अब मिलने लगते हैं। अर्धचान्द्रिक, शर तथा छिद्रकों की संख्या बहुत बढ़ जाती है और ब्यूरिन की संख्या अपेक्षाकृत कम हो जाती है। इस काल से उच्च पुरापाषाण काल का अन्त तथा मध्य पाषाणकाल का प्रारम्भ होता है। इस प्रकार यह स्तर उच्च पुरापाषाण काल के परिवर्तन का द्योतन करता है।

प्रस्तर उपकरणों के अतिरिक्त शुतुर्मुर्ग के अण्डे के टुकड़े, बीड (Beads), सीप (Shell) तथा हड्डियों के टुकड़े आदि भी उत्खनन में मिले थे।

पटने काल खण्ड I तथा II से एक सौ से अधिक शुतुर्मुर्ग के अण्डे के टुकड़े मिले थे जिनमें से तीन–दो IID तथा एक IIE – पर दो सामानान्तर रेखाओं के बीच में आड़ी–तिरछी (Criss-Cross) रेखायें उत्कीर्ण थीं। इसके अतिरिक्त शुतुर्मुग के अण्डे के दो अपूर्ण बीड तथा एक सीपी का बीड IID तथा IIE से क्रमशः मिला था।

पटने से एक कार्बन तिथि GRN 7200 : 25,000 ± 200 उपलब्ध है।

Scanned with OKEN Scanner

# 37

## गुजरात प्रदेश
## Gujrat Pradesh

गुजरात में उच्च पुरापाषाणिक स्थल के दृष्टिकोण से पावागढ़ के निकट विसादी सबसे उल्लेखनीय है (अलचिन, बी0 ऐण्ड ऐण्ड्रयू गूड़ी, 1971, ड्यून, एरिडिटी ऐण्ड अर्ली मैन इन गुजरात, वेस्टर्न इणडिया, मैन, वाल्यूम 6 नं0 2)। यहाँ पर खेतों के सतह के कुछ इंच नीचे प्रस्तर उपकरण मिले। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस समय बालू के टीलों का निर्माण हो रहा था उस समय पाषाणिक मानव ने इन टीलों का प्रयोग उद्योगस्थल के रूप में किया होगा। प्रस्तर उपकरणों के अतिरिक्त यहां से कोई अन्य सांस्कृतिक सामग्री उपलब्ध नहीं हुई है। उपकरणों को सामूहिक रूप से देखने से स्पष्ट है कि वे मध्य पाषाणिक उपकरणों से नितान्त भिन्न हैं। विसादी उद्योग के ब्लेड में आघात का अर्धशंकु मध्य पाषाणिक ब्लेडों की अपेक्षा अधिक विकसित है, साथ ही वे लम्बाई तथा चौड़ाई के अनुपात में भी अधिक मोटे हैं। इससे प्रतीत होता है कि वे प्रत्यक्ष संघात प्रविधि से ही निकाले जाते थे। अलचिन की धारणा है कि ब्लेडों की मोटाई तथा आकार इस प्रकार का है कि वे अर्धचान्द्रिक, त्रिभुजादि उपकरणों के निर्माण के लिए उपयोगी नहीं हैं। ब्लेड कोर तथा ब्लेड फलक कोर विवधि प्रकार के हैं। कच्छप कोरों का नितान्त अभाव है।

ब्लेड विविध प्रकार के हैं। कुछ में प्रयोग के चिन्ह भी हैं। स्क्रेपर केवल चार है जिनमें एक अन्त स्क्रेपर, एक नतोदर स्क्रेपर जो फलक पर निर्मित है तथा दो नतोदर स्क्रेपर जिनका एक अन्त 'ऑल' (Awl) के समान हैं।

सबसे उल्लेखनीय उपकरण ब्यूरिन है। इनमें से अधिकांश पर प्रयोग के चिन्ह स्पष्ट हैं। कुल मिलाकर इक्कीस ब्यूरिन मिले हैं।

विसादी उद्योग में मुख्यतया क्वार्ट्ज (Quartz) का उपयोग किया गया है।

अलचिन तथा गूड़ी विसादी उद्योग की तिथि 40,000 से 12,000 B.P. के अन्तर्गत निर्धारित करते हैं।

# 38

# मध्य प्रदेश
## (Madhya Pradesh)

मध्य प्रदेश में उच्च पुरापाषाणिक उद्योग की दृष्टि से सोनघाटी (सीधी जिले) उल्लेखनीय है। सोन घाटी में सर्वप्रथम राधाकान्त वर्मा तथा मिश्र ( इण्डियन आर्क्यालजी – ए रिव्यू, 1968–69, पृ0 33) ने जोगदहा पुल के निकट उच्च पुरा पाषाणिक स्थलों को खोजा था। कालान्तर में उस सम्पूर्ण क्षेत्र का पुनः सूक्ष्म सर्वेक्षण किया गया जिसके फलस्वरूप उच्च पुरापाषाणकाल के उपकरणों का भू–वैज्ञानिक स्तरों से सम्बंधीकरण स्थापित किया जा सका। साथ ही अनेक उद्योग–स्थल भी प्रकाश में आये।

उच्च पुरा पाषाण काल के उपकरण बघोर जमाव के निम्नवर्ती रूक्ष जमाव से तथा मध्य–कटक पर अवस्थित पुरास्थलों से प्राप्त हुए हैं। उच्चपुरापाषाण काल के 78 से अधिक पुरास्थल अभी तक प्रकाश में आ चुके हैं जिनमें से 39 उद्योग–स्थल हैं। उपकरण समुदाय में विविध प्रकार के स्क्रेपर, लम्बे तथा अपेक्षाकृत चौड़े ब्लेड, भूथड़े पार्श्व ब्लेड, विशालकाय ल्यूनेट, शर, छिद्रक तथा ब्यूरिन विशेष उल्लेखनीय हैं। ब्लेडों की संख्या सबसे अधिक है। उपकरणों के निर्माण के लिए चर्ट तथा फ्लिण्ट सदृश पत्थरों का उपयोग किया गया है।

बघोर जमाव से बहुत अधिक संख्या में जीवाश्मित अवशेष मिले हैं। अनुमानतः इनकी संख्या 10,000 से अधिक होगी जो भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण कलकत्ता; जी0आर0 शर्मा संग्रहालय, प्राचीन इतिहास विभाग, विश्वविद्यालय, इलाहाबाद तथा रींवा विश्वविद्यालय, में संग्रहीत हैं। इनकी सबसे बड़ी संख्या जी0 आर0 शर्मा संग्रहालय में है। सोन तथा उसकी सहायक लगभग सभी नालों से जीवाश्म मिले हैं। जिन पशुओं के जीवाश्म

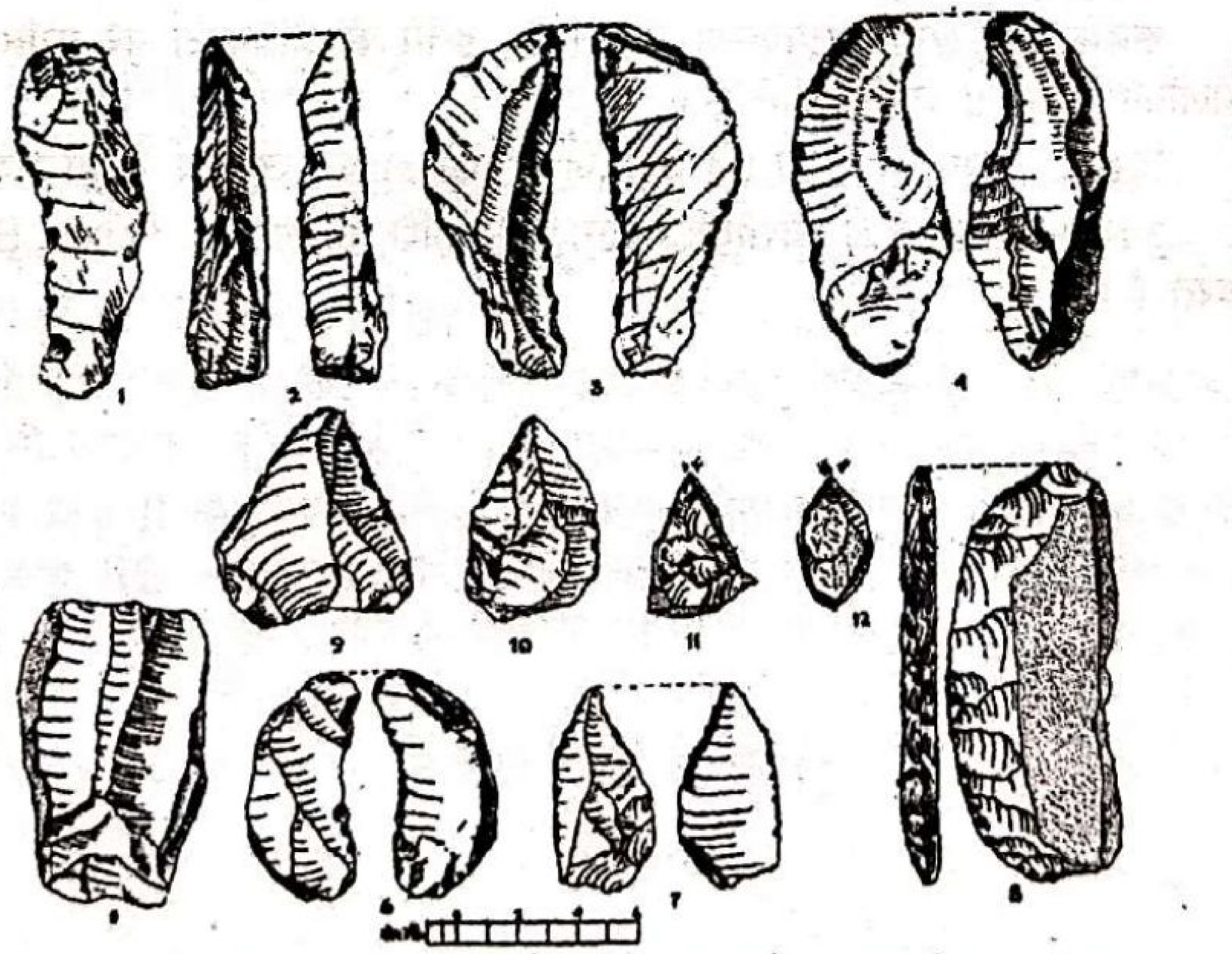

उच्च पुरा पाषाण कालीन उपकरण बघोर जमाव चित्र सं0–70

बहुतायत से मिले हैं उनमें बॉस (Bos), बायसन (Bison), ब्यूबेलिस (Bubalus), दरियाई घोड़ा (Hippopotamus), घोड़े (Equus), घड़ियाल (Gharialis), हिरन (Antilop), सुअर (Sus), हाँथी (Elephant), कछुए (Chelonia), प्रमुख हैं।

यहाँ का उच्च पुरापाषाणिक उद्योग (रेखाचित्र 70 ) बेलन घाटी की अपेक्षा अधिक विकसित प्रतीत होता है। ब्लेड अन्य उपकरणों की अपेक्षा सबसे अधिक संख्या में मिले हैं। ब्लेडों के अतिरिक्त ब्यूरिन, ब्लेड–फलक, ब्लेड–चाकू, स्क्रेपर, शर, छिद्रक आदि भी विशेष उल्लेखनीय हैं।

ब्लेड 10–12 से0मी0 तक लम्बे तथा 2 सेमी0 तक चौड़े हैं तथा लगभग समानान्तर बाहु के हैं। ब्लेडों के ऊपर मध्य कटक मिलता है, किन्तु उनका अनुभाग बहुत मोटा नहीं है। नालीमत कोरों का भी विकास हो गया था। कोर के दोनों अन्तों को गढ़ कर बारी–बारी से फलक निकालते थे। इस प्रविधि से निकाले गये फलक समानान्तर बाहु एवं पतले अनुभाग के होते थे।

उपकरणों में शर भी विशेष उल्लेखनीय हैं। अधिकांशतया वे हृदयाकार अथवा त्रिकोणात्मक हैं और उनका निर्माण दोनों भुजाओं का पुनर्गढ़न करके किया गया है। सभी उपकरणों में एक ब्लेड–चाकू विशेष उल्लेखनीय हैं। इसका निर्माण एक चौड़े ब्लेडनुमा शिलापट्ट की एक भुजा को द्विपार्श्वीय फलकीकरण द्वारा किया गया है। दोनो ही पक्षों से केन्द्रोन्मुख दिशा में अत्यन्त छिछले फलक इतनी कुशलता से निकाले गए हैं कि बहुत तेज धार का उपकरण बन गया है। यह अपने में अनूठा उपकरण है। स्क्रेपरों में अधिक संख्या नतोदर प्रकार की है। स्क्रेपरों का निर्माण भी अधिकांशतया ब्लेड फलकों पर ही किया गया है। लगभग सभी उपकरणों पर पुनर्गढ़न के प्रमाण मिलते हैं। सम्भवतः पुनर्गढ़न के लिए निपीड प्रविधि का भी उपयोग होने लगा था। उपकरणों के निर्माण के लिए चर्ट, फ्लिण्ट, जैस्पर सदृश पत्थरों का उपयोग किया गया है।

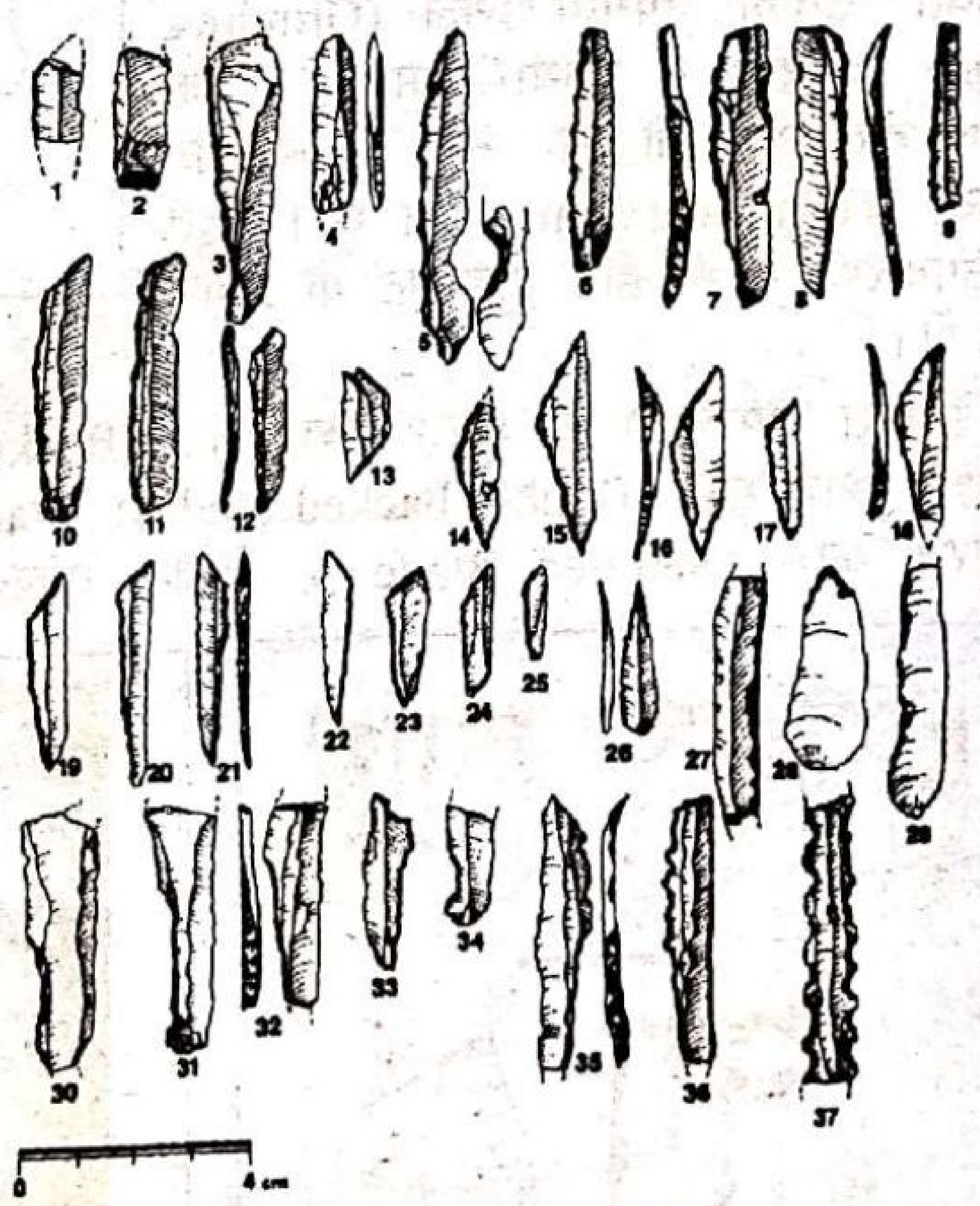

उत्खनन से प्राप्त विविध प्रकार के ब्लेड उपकरण
चित्र सं0–71

## बघोर –1 (उत्खनन)

यह पुरा स्थल लगभग 660 वर्ग मी0 में फैला हुआ था जिसमें 284 वर्ग मी0 में उत्खनन किया गया। सम्पूर्ण जमाव को तीन लेयरों में विभाजित किया गया है। लेयर 1 की औसत मोटाई 35 से0मी0 थी जो नारंगी रंग के बलुई मिट्टी से निर्मित थी। लेयर 2 की औसत मोटाई 20 से0मी0 थी जो धूसर–भूरे रंग के दुमट मिट्टी से निर्मित थी। इसी लेयर से उपकरण प्राप्त हूए थे। ऊपर की दोनों लेयरों में उपकरण नहीं थे।

भूवैज्ञानिकों के अनुसार इस लेयर का समीकरण बाघोर संरचना से (Baghor formation) से किया जा सकता है जिसे उच्चपूर्व पाषाणिक कहा गया है।

इसी स्तर से एक चूल्हा मिला है जिसका उपयोग भोजन पकाने तथा पत्थरों का हीट ट्रीटमेण्ट (Heat treatment) के लिए किया जाता होगा।

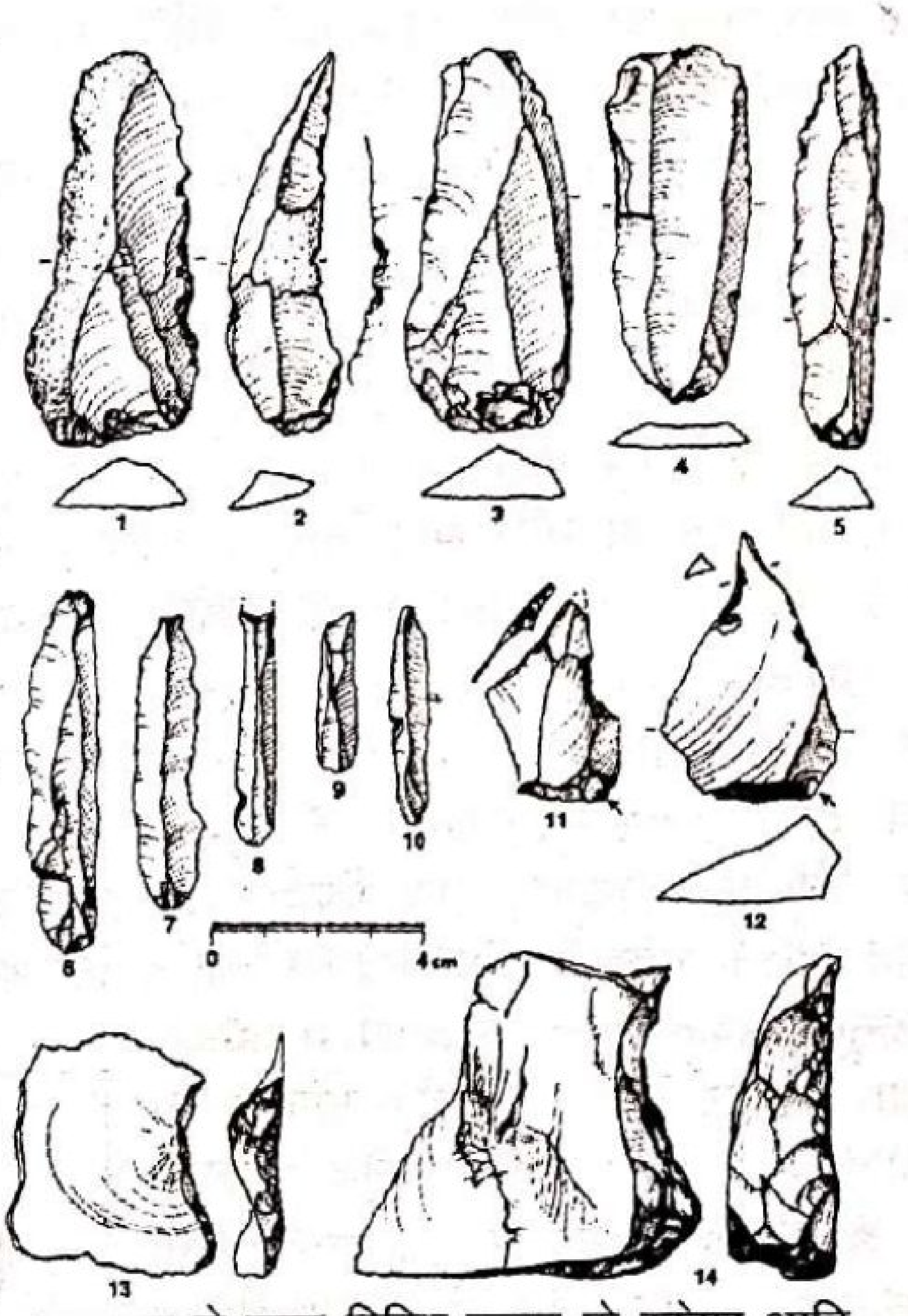

उत्खनन से प्राप्त विविध प्रकार के स्क्रेपर आदि उपकरण चित्र सं0–72

यहाँ पर बहुत सीमित स्थान में उपकरण निर्माण के लिए पत्थर, कोर, फलक, ब्लेड, अनुपयोजित फलक तथा निर्मित एवं अर्ध–निर्मित उपकरण प्राप्त हुए थे। साथ–साथ हथौड़ा पत्थर (Hammer Stone), निहाई पत्थर (Anvil stone), चर्ट तथा चाल्सेडनी पत्थर , फलक तथा ब्लेड भी मिले थे। कुछ चौरस बालू पत्थर भी मिले जिनके ऊपर का भाग घिसा हुआ था। सम्भवतः उनका उपयोग सिल (Grinding stone) के रूप में किया गया था। एक विशेष बात यह थी कि सभी पत्थरों को पकाया (Heat treatment) गया था। बहुत से उपकरणों में भी हीट ट्रीटमेण्ट के प्रमाण मिले थे।

निर्मित उपकरणों में भूथड़े पृष्ठ ब्लेड (Backed blade), उन्नतोदर ब्लेड (Convex blade), द्विपार्श्व भूथड़े ब्लेड (Double backed blades), (Partly backed blades) अंशतः भूथड़े पृष्ठ ब्लेड, दन्तुरित ब्लेड (Serrated Blade ), विविध प्रकार के पुनर्गठित ब्लेड (Different types of

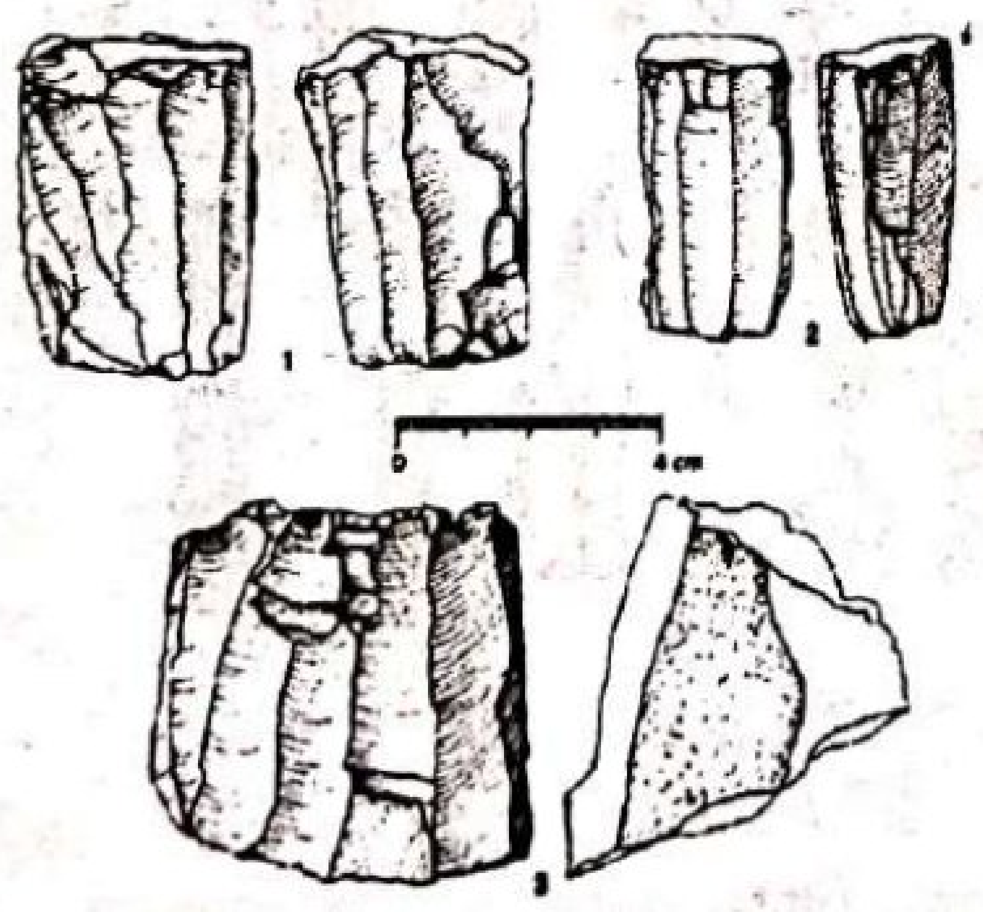

उत्खनन से प्राप्त नालीमत कोर चित्र सं0–73

पूजास्थल का चबूतरा चित्र सं0–74

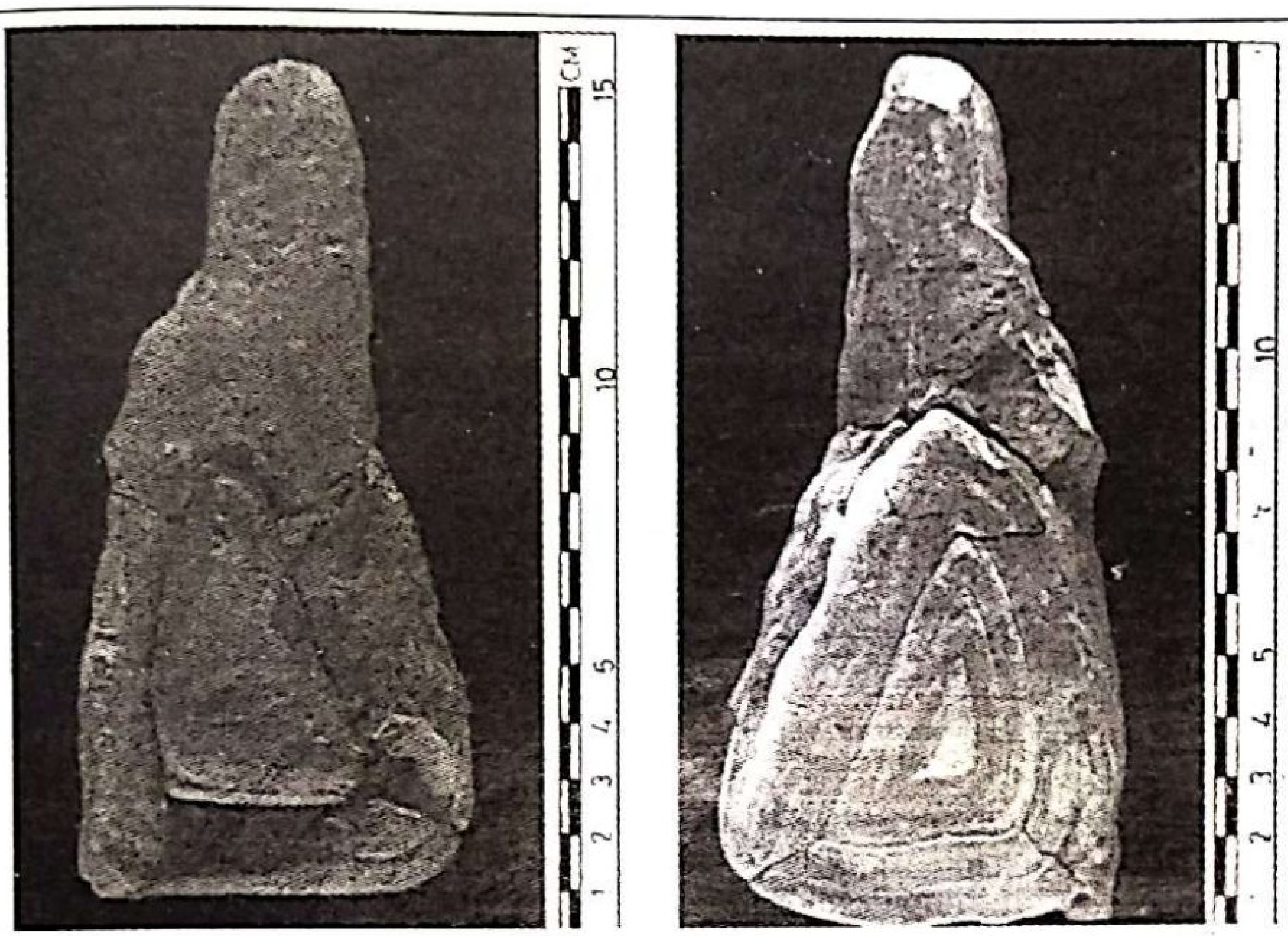


प्राकृतिक त्रिकोणात्मक स्वरुप का पत्थर–अग्र भाग तथा पृष्ठ भाग चित्र सं. 75

retouched blades),विषमबाहु त्रिभुज (Scalene Triangle), समलम्ब चतुर्भुज (Trapeze),विष्म कोण चतुर्भुज (Trapezoid), (drill, ) विविध प्रकार के स्क्रेपर आदि।

1982 के उत्खनन के समाप्त होते–होते एक महत्व पूर्ण खोज हुई जिसका समीकरण एक पूजास्थल से किया गया। खनती 1–9 तथा 1–10 (2x1मी0) में एक स्थान पर उपयोजित तथा अनुपयोजित उपकरण तथा बालूपत्थर के टुकड़े पड़े हुए थे। उनको हटाने के बाद बालूपत्थर के बहुत से टुकडे तथा चर्ट के उपकरण प्रकाश में आए। उनको हटाने के बाद यह ज्ञात हुआ कि कुछ–कुछ स्थानों पर उपकरण का जमाव लगभग 10 से0मी0 तक था जब कि नीचे के भाग में बालू पत्थर के टुकड़े तथा अनुपयोजित चर्ट के फलक दीखे। चर्ट के उपकरणों को हटाने के बाद ज्ञात हुआ कि बालू के पत्थर 85 से0मी0 डायमीटर का एक गोलाकार चबूतरा का रूप धारण कर रहे हैं। इस चबूतरे के बीच में एक प्राकृतिक लौहमयपटलित बालुकाश्म (Ferruginous बालुकाश्म (Ferruginousla-minated sand stone) था जिसका रंग हलके पीले–लाल से गहरे रक्ताभ भूरे रंग का था। इस पत्थर के और भी टुकड़े चबूतरे के किनारे–किनारे मिले। एक टुकड़ा चबूतरे के केन्द्र से 90 से0 मी0 दक्षिण में पड़ा था। सभी

आधुनिक पूजास्थल केराई–की–देवी चित्र सं0–76

प्राप्त टुकड़ो को जोड़ने पर प्राकृतिक त्रिकोणात्मक स्वरूप का पत्थर बना जो 15 से0मी0 ऊंचा 65 से0मी0 चौड़ा तथा 6.5 से0मी0 मोटा था। चूकि इसके सात टुकडे चबूतरे के केन्द्र से प्राप्त हुए थे इसलिए अनुमान किया जासकता है कि संक्रेद्रित त्रिकोणात्मक संरचना का यह पत्थर चबूतरे के मध्य में रखा होगा।

इसी प्रकार के पत्थर आज भी इस इलाके में मातृदेवी–केराई की देवी–के रूप में पूँजी जाती हैं। मेढौली गाव में इस प्रकार की देवी नीम के पेड़ के नीचे आज भी देखी जासकती हैं। इनका पूजन विभिन्न नामों यथा अंगारी देवी, अंगरमाटी आदि से होता है। स्थानीय लोग इसे देखते ही अपनी आस्था प्रगट करने लगते हैं। अतः इसमें सन्देह नही कि इसका पूजन उच्चपुरापाषाण काल से चला आ रहा है।

यहाँ यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि बेलनघाटी मे उच्च पुरापाषाण कालीन स्तर –यूनिट 6–के अपरदित स्तर से लोहदा नाला –बेलन की सहायक–में हड्डी की एक प्रतिमा (IAR-1970&71) प्राप्त हुई थी जिसका समीकरण भी मातृदेवी से किया गया है। यद्यपि कुछेक विद्वान इससे सहमत नहीं थे। सॉकलिया की धारणा में वह निश्चितरूप से मातृदेवी की प्रतिमा थी (सॉकलिया1974:184 )। बघोर के पूजास्थल के बाद अब इसमें कोई सन्देह नहीं है। इस काल में यहाँ पर भी यूरोप आदि के समान मातृपूजा प्रचिलित थी।

उत्खनन में कोई भी निर्पेक्ष तिथि उपलब्ध नही हैं। भूतत्ववेत्ता बघोर 1 को बघोर संस्तर के रुक्षकण वाले जमाव के साथ का मानते हैं। इसकी तिथि 18000 ईसा पूर्व के लगभग सी–14 तिथि निर्धारण विधि के आधार पर मानते हैं।

दो IRSL तिथियों के आधार पर बघोर नाले के पास रुक्ष वर्ग के निम्न वर्ती भाग से एक तिथि 39000±9000 वर्ष प्राप्त हुई है तथा मध्यभाग के लिए 24000±3000 वर्ष (पाल आदि 2004(विलियम्स आदि 2006) प्राप्त हुई है। पुनः मुख्य नदी से हटकर पहाड़ी के नीचे के भाग से कुंदेरी नाले के पास से एक तिथि 20135± 220 वर्ष B.P प्राप्त विलियम्स एण्ड क्लाक़ 1984 (1995:303) हुई है।

बघोर के सूक्ष्मकण वर्ग की बघोर नाले के पास एक IRSL तिथि 19000±2000 वर्ष (पाल आदि 2005 विलियम्स आदि 2006) प्राप्त है किन्तु इसके साथ कोई पुरातात्विक सामग्री नहीं थी। नकझर खुर्द से एक ऊष्मादीप्ति तिथि 26100±5400 वर्ष एक बालुई जमाव से प्राप्त है जिसे बघोर के सूक्ष्मकण वर्ग के समकक्ष रखा जाता है किन्तु इसके साथ भी कोई उपकरण सम्बंधित नहीं हैं।

## भीम बैठका शिलाश्रय

## नं0 III F-23

मध्य–प्रदेश में भीमबैठका गुहा में किए गए उत्खनन भी महत्वपूर्ण हैं। वहाँ पर भी उच्चपुरापाषाण काल के क्रमिक विकास के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। वाकणकर को भीमबैठका में उत्खनन में हरे रंग उच्च पुरा पाषाण कालीन स्तर से प्राप्त हुए थे। इसके आधार पर भीमबैठका शिलाश्रयों में हरे रंग में प्राप्त चित्रणों

हरे रंग के चित्र चित्र सं0–77

को उच्चपूर्व पाषाणिक कहा गया है। ऊपर से नीचे तक सम्पूर्ण जमाव में उपकरण, कोर, उपयोजित फलक मिले थे। इससे अनुमान किया जाता है कि उपकरणों का निर्माण शैलाश्रयों में ही किया जाता था। बैगनी अथवा गहरे भूरे रंगो के आर्थोक्वार्टजाइट या क्वार्टजाइट का प्रयोग हैण्डैक्स तथा क्लीवर के लिए विशेष रूप से किया जाता था। अन्य उपकरण पीले क्वार्टजाइट से बनाए गए हैं।

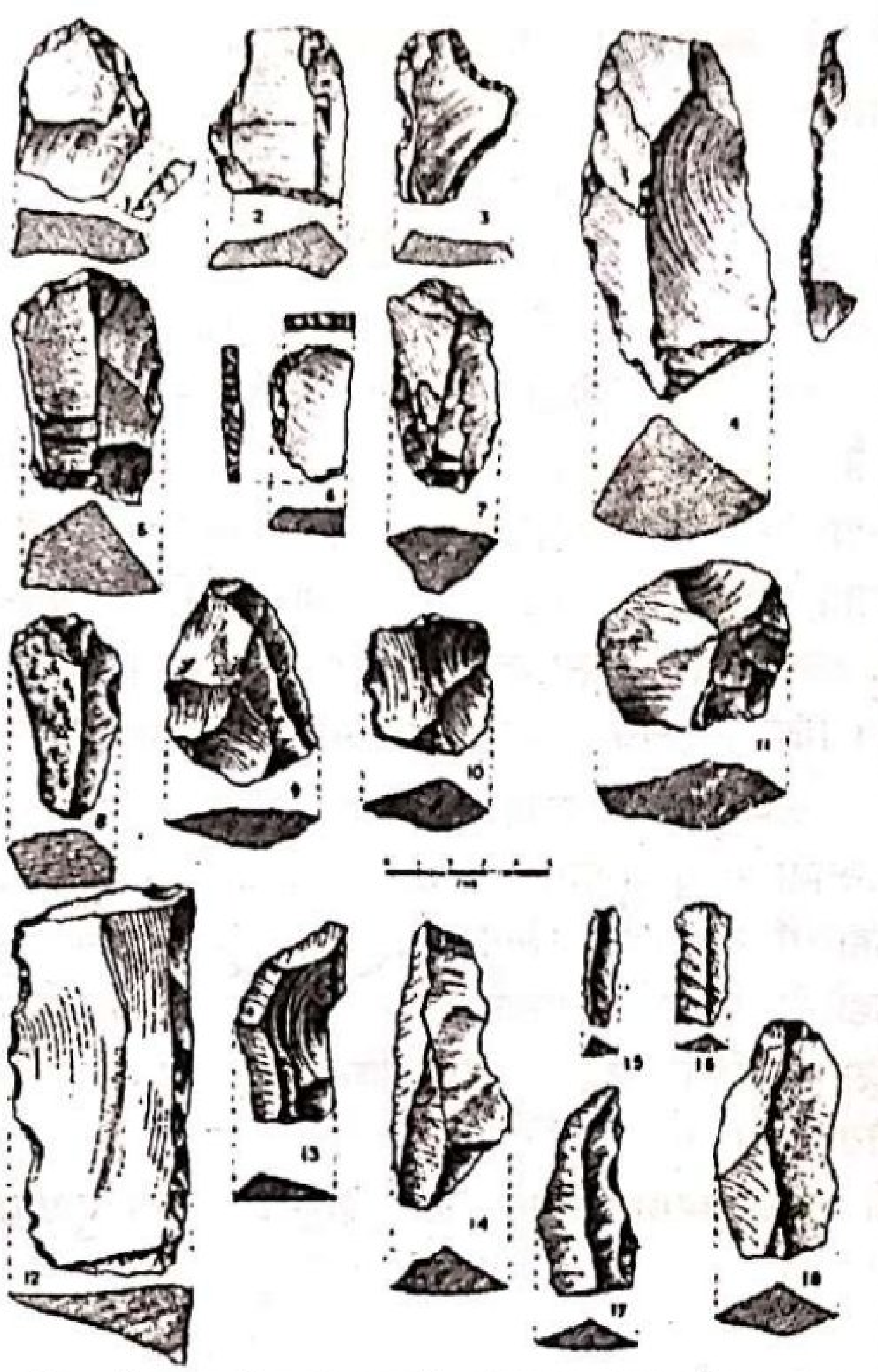

भीम बैठका शिलाश्रय नं0 III F-23 से प्राप्त उच्चपुरा पाषाणिक उपकरण चित्र सं0–78

## भारत में उच्चपुरा पाषाण काल की तिथि

उच्चपुरा पाषाण कालीन स्तरों से अब तक लगभग चवालिस कार्बन 14 तिथियाँ प्राप्त हो चुकी हैं। इनमें सबसे प्राचीन तिथियॉ मेहताखेरी तथा से शेल (Fresh water Shell) तथा शुतर्मुर्ग के अण्डों से है।

मेहताखेरी (Mehtakheri) से उपलब्ध दो तिथियाँ इस प्रकार हैं,

A 6518 30,680±1040-920 तथा

AA 6463 >41,900

चन्द्रसाल (Chandrasal) से उपलब्ध दो तिथियाँ इस प्रकार हैं

GRN 10638- 36,550± 600

GRN 10639- 38,900± 750

उपयुक्त ये तिथियाँ शुतुर्मुर्ग के अण्डों की हैं। देवघाट तथा इनामगाव से भी चार तिथियां उपलब्ध हैं जो क्रमशः इस प्रकार हैं :

1. देवघाट PRL86 –25790+ 830-730
2. देवघाट TF 1245 --19,715 ± 330
3. इनामगाँव TF 1003—21725+ 630-570 (21,725 ± 630)
4. इनामगाँव TF 1177--19,290 ± 360

प्रारम्भ में इन दोनों तिथियों को मध्य पुरापाषाणिक संदर्भ में बताया गया था ( Current Science, March 5, 1975, वाल्यूम 44, नं0 5, पृ0 141–151) अब इन्हें उच्च पुरापाषाणिक मानते हैं (साली, एस0ए0, 1974, पार्श्वोद्धरित पृ0 154)।भारत में अन्य स्थलों से प्राप्त तिथियों को संलगनक में देखिए।

यह उल्लेखनीय है कि देवघाट तथा इनामगाँव दोनों ही स्थलों से दो–दो तिथियाँ उपलब्ध हैं और दोनों अलग–अलग तथा सामूहिक रूप से परस्पर एक दूसरे की पूरक हैं। ये चारों तिथियाँ 21,000 वर्ष ईसा पूर्व से 18,000 वर्ष ईसा पूर्व की हैं, जबकि उच्च पुरापाषाणिक उद्योग पूर्ण

विकसित अवस्था में था। बेलन घाटी में इस उद्योग का विकास तृतीय ग्रैवेल के पूर्ववर्ती निक्षेप में ही हो जाता है। इसका उल्लेख अन्यत्र किया जाचुका है। ये कार्बन तिथियाँ उद्योग के प्रारम्भ का निर्देश नहीं करती हैं।

इसके अतिरिक्त सबसे बाद की तिथि 10,000 वर्ष के लगभग है। तिथियों के आधार पर भारत के उच्च पुरापाषाण काल की तिथि 40,000 वर्ष से 10,000 वर्षो के बीच निर्धारित की जा सकती है , जैसा कि विश्व के अन्य देशों में भी है।

उपर्युक्त वर्णित क्षेत्रों के अतिरिक्त भारत के अन्य उच्च पुरापाषाणिक स्थलों में मध्य प्रदेश के वंजेर घाटी (घोष, ए0के0, 1961, 'ए न्यू लिथिक साइट इन माण्डला डिस्ट्रिक्ट' दि ईस्टर्न ऐन्थ्रोपॉलजिस्ट, XIV (3) , पृ0 209–215), वैनगंगा, नर्मदा तथा इन्द्रावती आदि, बिहार में सिंहभूम (घोष, ए0के0, 1970, 'दि पेलियोलिथिक कल्चर्स ऑफ सिंहभूम' ट्रांजैक्शन्स ऑफ दि अमेरिकन फिलसाफिक सोसाइटी (न्यू सिरीज) 60। फिलाडेलफिया), महाराष्ट्र में इनाम गाँव विशेष उल्लेखनीय है। किन्तु उनके सम्बन्ध में प्रकाशित सामग्री के अभाव में अभी कोई प्रकाश डालना सम्भव नहीं है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि यूरोप के समान भारत में भी उच्च पुरापाषाणिक उद्योगों का विकास मध्य पुरापाषाण काल के बाद और मध्य पाषाण काल के पहले हुआ था। बेलन घाटी में इन उद्योगों की मध्य स्थिति वहाँ के भू–वैज्ञानिक स्तरों में अत्यन्त स्पष्ट है। साथ ही वहाँ पर पूर्ववर्ती उद्योगों में एक विकास क्रम भी मिलता है जिसके अनुसार हम मध्य पुरापाषाणिक उद्योगों से उच्च पुरापाषाणिक उद्योगों को विकसित होते हुए देख सकते हैं। पुनः उच्च पुरापाषाणिक उद्योगों का विकास मध्य पाषाणिक उद्योगों से होता है। इसकी पुष्टि पटने के साक्ष्यों से भी होती है। वहाँ पर भी उच्च पुरापाषाणिक स्तर के नीचे मध्य पुरापाषाणिक तथा ऊपर मध्य पाषाणिक उद्योग मिले हैं।

# मध्यपाषाण काल
# (Mesolithic Period)

Scanned with OKEN Scanner

# मध्यपाषाण काल

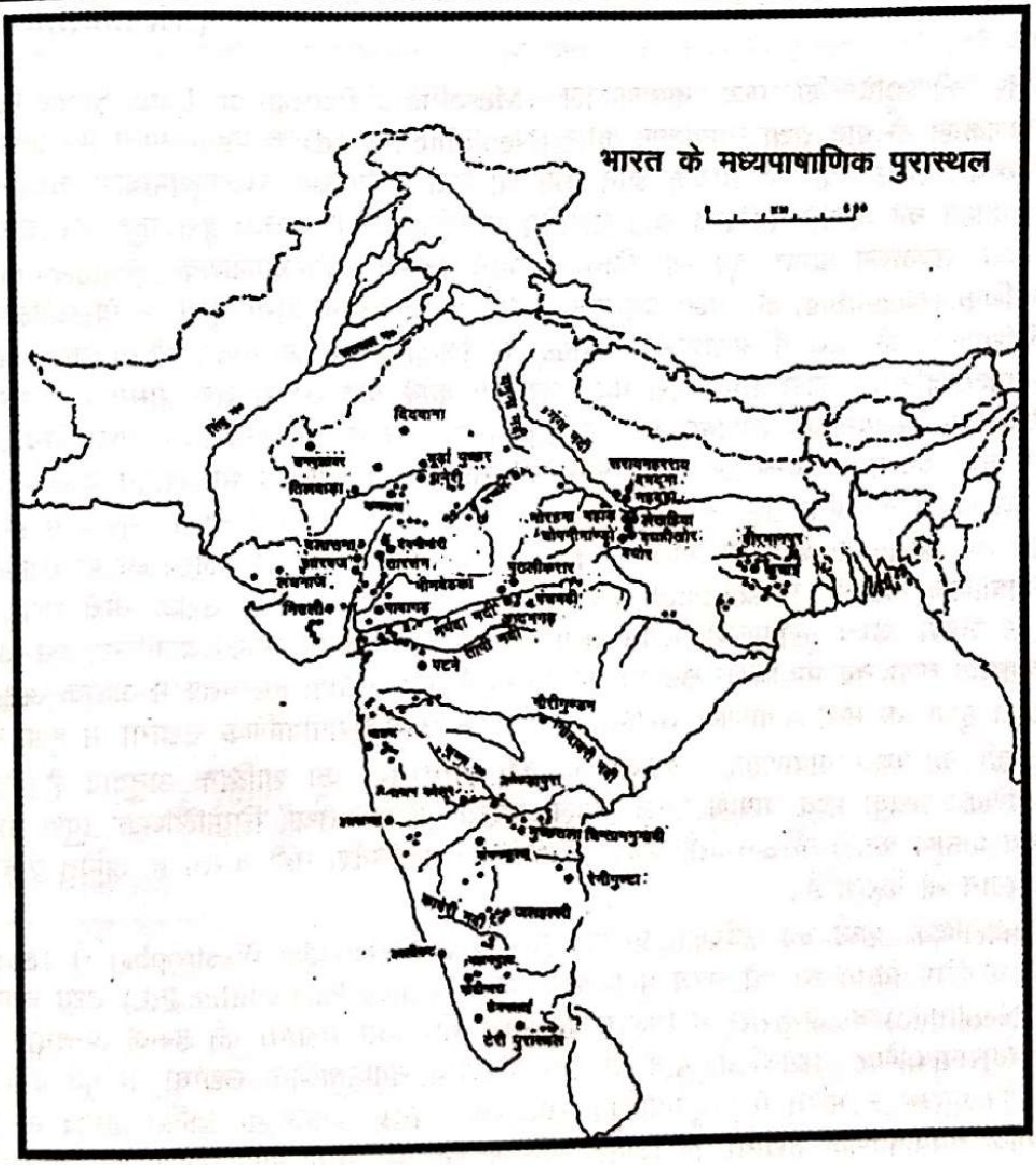


चित्र सं0–79

# 39

# मध्यपाषाण काल
## (Mesolithic Period)

स्तर की दृष्टि से मध्य पाषाणकाल (Mesolithic Period or Late StoneAge) उच्च पुरापाषाणकाल के बाद तथा नवपाषाण काल (Neolithic Period) के पहले आता है। प्रारम्भ में जब प्रस्तर युगीन संस्कृतियों का सम्यक् ज्ञान नहीं था उस समय तक उच्चपुरापाषाण काल तथा मध्य पाषाण कालों की स्थिति सन्दिग्ध थी। भारतीय प्रागितिहास के जनक ब्रूस फूट को केवल दो ही प्रकार के उपकरण प्राप्त हुए थे जिन्हें उन्होंने क्रमशः पेलियोलिथिक (Palaeolithic) तथा नियोलिथिक (Neolithic) की संज्ञा प्रदान की थी। अतः उन्होंने दोनों युगों – पेलियोलिथिक तथा नियोलिथिक – के मध्य में अन्तराल (Hiatus) के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया (फूट, आसर0बी0, 1914, पार्श्वोद्धरित)। जिस समय ब्रूस फूट भारत में कार्य कर रहे थे उस समय तक यूरोप में भी प्रागैतिहासिक अध्ययन की रूपरेखा स्पष्ट नहीं थी। वहाँ पर भी पेलियोलिथिक तथा नियोलिथिक के मध्य में इसी प्रकार के अन्तराल की कल्पना की गई थी। किसी को भी इसका ज्ञान नहीं था कि पुरा पाषाणकाल का अन्त तथा नव पाषाण काल का प्रारम्भ किस प्रकार हुआ। यूरोप में इस समस्या का समाधान अपेक्षाकृत शीघ्र ही फ्रांस में Mas d'Azil के उत्खनन के फलस्वरूप हो गया। वहाँ पर मध्य पाषाणिक उद्योग (Mesolithic) मध्यवर्ती स्तर से प्राप्त हुए थे। उसके नीचे तथा ऊपर के स्तरों से क्रमशः उच्च पुरापाषाणकालीन तथा नवपाषाणिक उद्योग मिले। इसीलिए इस उद्योग को पुरापाषाणिक तथा नव पाषाणिक उद्योगों का अन्तर्वर्ती कहा गया। कालान्तर में अधिक अनुसंधान के बाद ज्ञात हुआ कि मध्य पाषाणिक उद्योगों का विकास उच्च पुरापाषाणिक उद्योगों से हुआ है।

हिन्दी का मध्य पाषाणकाल अंग्रेजी के 'Mesolithic' का शाब्दिक अनुवाद है। वास्तव में 'मेसोलिथिक' अथवा मध्य पाषाण काल केवल 'पेलियोलिथिक' तथा 'नियोलिथिक' (पुरा पाषाणकाल तथा नव पाषाण काल) के अन्तर्वर्ती प्रस्तर उद्योगों का ही निर्देश नहीं करता है, अपितु एक युगान्तर का आह्वान भी करता है।

मेसोलिथिक' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग हाडर वेस्ट्राफ (Hodder Westrophs) ने 1866 में उन उद्योगों के लिए किया था जो उच्च पुरापाषाण काल (Upper Palaeolithic Pd.) तथा नवपाषाणिक काल (Neolithic) के अन्तराल में मिलते थे। आज भी उन्हीं उद्योगों को इसके अन्तर्गत रखते हैं, जो उच्चपुरापाषाणिक उद्योगों के बाद के स्तर से तथा नवपाषाणिक उद्योगों के पूर्व वर्ती स्तर से मिलते हैं। प्रारम्भ में भारत में लघुपाषाणिक उपकरण उपर्युक्त प्रकार के स्तरित जमाव में नहीं मिले थे, क्योंकि नवपाषाणिक उद्योगों की स्थिति सन्दिग्ध थी अतः प्रायः ऐसी धारणा थी कि यहाँ पर भी लघुपाषाण उद्योग का विकास अफ्रीका के अनुरूप मध्य पाषाणिक उद्योगों से हुआ होगा। किन्तु कालान्तर में बेलन घाटी के स्तरित जमावों के प्रकाश में आने पर इस समस्या का समाधान हो गया। यद्यपि इसके पहले भी इस प्रकार के उद्योग, आन्ध्र में करनूल (आइजक, एन0: 1961), चित्तूर (मूर्ति, एम0 एल0 के0: 1961 पृ0 170), मैसूर में शोरापुर दोआब (पद्दैया, के0 : 1968, पृ0 68), बम्बई में खाण्डिवली (टॉड, के0आर0यू0: 1938, पृ0 256-72), नर्मदा की घाटी में बामेर नदी (सेन डी0 ऐण्ड घोष, ए0के0 : 1963) उत्तर प्रदेश में इलाहाबाद में बेलन के किनारे (इण्डियन

आर्क्यालजी–ए, रिव्यू, 1966-67 ) आदि स्थानों से एक निश्चित–स्तर से मिले हैं, अर्थात् उच्च पुरा पाषाण काल के बाद के स्तर से। तकनीकी दृष्टिकोण से यूरोप तथा यहाँ के ब्लेड–ब्यूरिन उद्योगों में बहुत समानता है। अन्तर केवल स्थानीय कहा जा सकता है। यूरोप में जिस स्तर से उच्च–पुरापाषाणकालीन उद्योग के प्रमाण मिलते हैं, उन्हें प्रातिनूतन काल में रखा जाता है, भारत में भी यही स्थिति है। बेलनघाटी से प्राप्त कार्बन तिथियां इसकी पुष्टि करती हैं। अब यह सर्व मान्य है कि लघुपाषाण उपकरण उद्योग का विकास उच्चपुरा पाषाण काल के ब्लेड उद्योग से हुआ है।

भारत में लघुपाषाण उपकरणों को सर्वप्रथम 1867 में कार्लायल ने विन्ध्य क्षेत्र से प्रतिवेदित किया था। उसके उपरान्त उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध में काकबर्न (Cockburn), रिवेट कारनाक (Rivet Carnac), ब्रूसफूट आदि (Bruce Foote: 1914), कामयाडे (1924), कामियाडे तथा बक्रिट (CammiadeAnd Burkitt,1930), टाड (Todd, 1932) आदि ने अपनी खोजों को प्रतिवेदित किया। किन्तु इस पर महत्वपूर्ण कार्य बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में ही हो सका। कृष्णस्वामी तथा सौन्दर राजन (1951), सांकलिया ने लंघनाज (1956) बी0 बी0 लाल ने बीरभानपुर (1958) में उत्खनन किए। इस पर सबसे अधिक कार्य 1960 के बाद हुआ। 1963-65 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के तत्वाधान में राधा कान्त वर्मा तथा मिश्र ने भैसोर ग्राम (मिर्जापुर) के निकट मोरहना पहाड़, बघहीखोर तथा लेखहिया में उत्खनन किया, जोशी तथा खरे ने 1966 में आदमगढ़ में, 1970 के दशक में वी0 एन0 मिश्र ने तिलवाड़ा तथा बागोर (राजस्थान) में, इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने चोपनी माण्डो बेलन घाटी में तथा गंगाघाटी में सराय नहर राय, महदहा तथा दमदमा, राजेन्द्रन ने केरल के तटवर्ती क्षेत्रों में तथा रमेश ने उत्तर पूर्वी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण कार्य किये। लघुपाषाण उपकरण भारत में लगभग सभी स्थानों से जो तत्कालीन मानव के आवास के योग्य थे , पठार के ऊपर खुले में, शैलाश्रयों मे, नदियों तथा नालों के सबसे ऊपर कगार पर , गंगाघाटी में गोखुर झीलों के किनारे भाँगर जमावों में, रेगिस्तानी इलाकों में रेत के टीलों (Sand-dune) में तथा समुद्र के तटीय क्षेत्रों में मिले हैं।

## पर्यावरण

पुरापाषाणकाल के समाप्त होते–होते पुनः सार्वभौमिक जलवायु सम्बंधी परिवर्तन होने लगे। विश्व के जिन भागों में हिम की चादरें बिछी हुई थीं वे क्रमशः संकुचित होने लगीं तथा जिन क्षेत्रों में अत्यधिक वर्षा होती थी वहाँ पर अन्तर्वर्षा काल की स्थिति उत्पन्न होने लगी। इन परिवर्तनों ने पृथ्वी के धरातल की रूपरेखा को बदल दिया। उन क्षेत्रों में जहाँ पर प्रातिनूतन काल में बर्फ की चादरें बिछी हुई थीं वहां पर घास के मैदान हो गए तथा जहाँ पर अतिवर्षा होती थी वहां पर घने जंगलों का विकास होने लगा। नूतन काल (Holocene) के इन परिवर्तनों ने पृथ्वी के धरातल पर विचरण करने वाले प्राणियों को भी समुचित प्रकार से प्रभावित किया। अब शीत जलवायु में रहने वाले विशालकाय मैमथ, रेनडियर आदि विलुप्त होने लगे अथवा उन जन्तुओं के आकार आदि में परिवर्तन होने लगा तथा छोटे आकार के घास चरने वाले जानवर जैसे, विविध प्रकार के हिरन, भेड़, बकरी आदि का विकास बहुलता से होने लगा।

अत्यान्तिक जलवायु (Extreme Climate) के समापन तथा समशीतोष्ण (Temperate) जलवायु के प्रारम्भ होने से पृथ्वी की उर्वरा शक्ति में वृद्धि हुई। नवीन प्रकार की घासों से पृथ्वी का धरातल ढकने लगा। इनमें से बहुत सी घासें आधुनिक अन्नों की पूर्ववर्ती हैं। इन नवीन घासों की उत्पत्ति ने भी पशु तथा मानव दोनों को ही समान रूप से प्रभावित किया। दोनों ही उनसे आकर्षित हुए जिसके फलस्वरूप कालान्तर में पशुपालन का विकास हुआ। इन परिवर्तनों ने मुनष्य की

Scanned with OKEN Scanner

अर्थ–व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित किए। मानव जो अभी तक केवल आखेटक था तथा जिसका जीवन दिन प्रतिदिन के आखेट पर ही आश्रित था अब संग्रहक होने लगा। प्रारम्भ में जंगली घासों के बीजों के संग्रह ने तथा बाद में पशुपालन ने उसके जीवन में व्यवस्था तथा स्थिरता प्रदान की जो मानव के विकास की ओर प्रथम चरण था।

किसी भी मानव समाज के अर्थ–व्यवस्था के विकास में बदलती हुई प्राकृतिक परिस्थितियाँ, उनके प्रति मानव तथा अन्य जन्तु वर्गों की प्रक्रिया तथा उसकी आवश्यकतायें एवं आकांक्षायें विशेष भूमिका निभाती हैं। मध्य पाषाण काल में बदलती हुई परिस्थितियों से सामन्जस्य स्थापित करने के लिए मानव को अनेक परिवर्तन करने पड़े। इनमें सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन उसके उपकरणों में था। मानव के उपकरणों में परिवर्तन उसके जीवन पद्धति के परिवर्तन से सम्बन्धित है। उच्च पुरापाषाण काल के अन्त होते–होते ही इस परिवर्तन का आभास होने लगा था। वे पहले की अपेक्षा छोटे होने लगे थे तथा ब्लेड अथवा ब्लेड पर बने उपकरणों की बहुलता हो गई थी। मध्य पाषाण काल में वे एकदम छोटे हो जाते हैं और उपकरणों का निर्माण एकदम छोटे, सकरे तथा पतले ब्लेडों पर ही सीमित हो जाता है। वे लघुपाषाण उपकरण के नाम से विख्यात हैं। प्रारम्भ में मध्य पाषाणिक उद्योगों के सम्बंध में यह धारणा थी कि ये ह्रासोन्मुख समाज (क्लाक्र, जे0जी0डी0, 1932, दि मेसोलिथिक एज इन बूटेन कैम्ब्रिज) (Decadent Society) के परिचायक हैं, किन्तु सूक्ष्म रूप से विचार करने पर स्पष्ट है कि वे मानव की विकसित होती हुई मानसिक शक्ति का भान कराते हैं। आकार में छोटे होने पर भी ये अधिक उपयोगी एवं घातक थे। इसके अतिरिक्त इनका प्रयोग दूर से किया जा सकता था।

जीवन की सुविधा में वृद्धि के साथ–साथ इस काल में सम्भवतः जनसंख्या में भी अपार वृद्धि हुई। एकदम से बहुत अधिक संख्या में उद्योग–स्थल तथा आवस–स्थल मिलने लगते हैं। जनसंख्या के विकास तथा नवीन स्थलों पर अधिक सुविधा की आकांक्षा ने मानव समाज में प्रव्रजन तथा स्थानान्तरण को भी बहुत अंशों में प्रोत्साहन दिया जिसमें भिन्न क्षेत्रों में रहने वाले मानव समुदाय एक दूसरे के सम्पर्क में आए होंगे। फलतः पारस्परिक सम्बंध की अनेक समस्यायें उत्पन्न हुई होंगी।

बढ़ती हुई समस्याओं के निदान के लिए नवीन आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं का जन्म हुआ होगा जो किसी भी संस्कृति तथा समाज के विकास के अनिवार्य अंग हैं। इन्हीं समस्याओं के निदान के फलस्वरूप मध्य पाषाणकाल में छोटे–छोटे समुदायों का गठन तथा किसी प्रकार के प्रारम्भिक कौटुम्बिक जीवन का भी श्री गणेश हुआ।

## जीवन एवं अर्थव्यवस्था

मध्यपाषाण युगीन मानव का जीवन आखेट एवं संचय पर आधारित था। आखेट की खोज में ये संचरणशील जीवन व्यतीत करते थे। जिन क्षेत्रों में खाद्यान्न दुलर्भ थे उनमें इनके जीवन का मूलाधार आखेट था। आखेट के साथ–साथ फलों, कन्दमूल तथा अन्य वनस्पतियों का भी उपयोग करते थे जो उन्हें सहज उपलब्ध थे। किन्तु जिन क्षेत्रों में खाद्यान्न (आधुनिक अन्नों के पूर्ववर्ती) उपलब्ध थे वहाँ उनका जीवन तथा अर्थव्यवस्था भिन्न प्रकार की थी, जैसे गंगा घाटी में वे खाद्यान्नों पर, शिकार की अपेक्षा अधिक आश्रित थे। यहाँ पर सिल लोढ़े अधिक मात्रा में मिले हैं तथा आखेट के उपकरण अपेक्षाकृत कम संख्या में। यहाँ हड्डी के उपकरण भी काफी संख्या में प्राप्त हुए हैं क्योंकि इस क्षेत्र में उपकरण निर्माण के लिए पत्थर उपलब्ध नहीं थे। इसी लिए गंगाघाटी मे उनकी अर्थव्यवस्था भिन्न प्रकार की थी। सराय नहर राय, महदहा तथा दमदमा के उत्खनन से

Scanned with OKEN Scanner

ज्ञात होता है कि इनके आवास–स्थल अपेक्षाकृत अधिक स्थायी तथा बड़े होते थे, जिसमें लगभग 450 से 1000 तक की आबादी रही होगी। ऐसा प्रतीत होता है कि पारिवारिक ईकाई– माता, पिता तथा बच्चों, का गठन हो गया था। इसकी पुष्टि छोटे–छोटे चूल्हों तथा युग्मित शवाधानों से भी होता है। युग्मित शवाधानों में स्त्री तथा पुरूष अगल–बगल अथवा ऊपर नीचे दफनायें मिले हैं। प्रत्येक स्थिति में पुरूष कब्र में पहले तथा स्त्री बाद में दफनाई गई हैं। यह भी निश्चित है कि वे दोनों एक साथ ही बिना काल के अन्तराल के दफनाये गए थे।

मध्यपाषाणयुगीन लोग निश्चित रूप से बाँस, बल्ली तथा खपच्चियों की सहायता से रहने के लिए घरों का भी निर्माण करने लगे थे। चोपनीमाण्ड़ों तथा बागोर से इस प्रकार के प्रमाण मिले हैं। जिन क्षेत्रों में शैलाश्रय थे वहाँ निश्चित रूप से उनका उपयोग निवास के लिए किया जाता होगा।

शैलचित्रों तथा उत्खननों से प्राप्त हड्डियों के परीक्षण से ज्ञात होता है कि ये लोग गैंडे, भैंसे, सुअर, विविध प्रकार के हिरन आदि का शिकार करते थे। बड़े पशुओं यथा गैण्डे, भैसे तथा सुअर आदि का शिकार कई लोगों के सहयोग से करते थे। यह एक सामाजिक क्रिया थी, जिसमें समाज के अधिकांश लोग भाग लेते थे। शिकार के बाद मांस का वितरण सभी में होता होगा, जिसे वे अपने आवास पर लाकर आग में भून कर खाते थे। गर्तचूल्हों में पशुओं की अधजली हड्डियाँ मिली हैं। शिकार के लिए धनुषबाण, भाले तथा हारपून का प्रयोग किया जाता था। ये पशुओं को गढ्ढ़ों के जाल में फसाने की कला से भी परिचित थे। सम्भवतः स्त्रियाँ जमीन में बिल खोदकर चूहे तथा इसी प्रकार के छोटे जन्तुओं को पकड़ती थीं। चिड़ियाँ तथा पानी के जन्तु, मछली, केकड़े, घोघे आदि का भी सेवन ये लोग करते थे। खाद्यान्नों के संग्रह में तथा बच्चों की परवरिश में स्त्रियो की विशेष भूमिका रहती होगी। खाद्यान्नों को एकत्रित करने के लिए चोपनी–माण्डों तथा दमदमा में प्लास्टर किए हुए छोटे गर्त मिले हैं। इस काल में पशुपालन प्रथा का प्रारम्भ हो गया था अथवा नहीं कहना कठिन है। पशुपालन के प्रमाण केवल आदमगढ़ शैलाश्रय के उत्खनन में ही मिले हैं। इस आधार पर मात्र इतना ही कहा जा सकता है कि सम्भवतः इस दिशा में कुछ विकास होने लगा था। मध्यपाषाण काल में मृद्‌भाण्डों का विकास हुआ था अथवा नहीं इस सम्बन्ध में विद्वानों में विवाद है किन्तु विंध्य क्षेत्र से जो प्रमाण उपलब्ध हैं उनके आधार पर इस सम्भावना को नकारा नहीं जा सकता है कि हस्त–निर्मित मृद्‌भाण्ड का निर्माण इस काल मे होने लगा था (पाल,जगन्नाथ : पार्श्वोद्धरित ), यद्यिप उद्योग के रूप में विकास नवपाषाणिक काल में ही सम्पन्न हुआ।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल में पुष्ट सामाजिक संगठन का निर्माण हो गया था तथा नेतृत्व **(Leadership)** के सिद्धान्त का प्रचलन भी हो गया था। सामूहिक आखेट तथा विस्तृत आवासों का प्रावधान नेतृत्व के अभाव में सम्भव नहीं है। गंगा घाटी के कतिपय शवाधानों में केवल कुछ पुरूषों के कंकाल मृगश्रृंगों से बने आभूषणों से युक्त थे। यह भी अनुमानतः उन लोगों की सामाजिक विशिष्टता का परिचायक है।

इस काल में सम्भवतः कुछ विशिष्ट वर्गों का भी विकास हो गया था। उदाहरण के लिए हड्डी अथवा श्रृंग के आभूषणों तथा उपकरणों का निर्माण करने वाले। बहुत सम्भव है कि ये अपने समाज में ही नहीं अपितु उसके बाहर भी वस्तुओं का आदान प्रदान करते हो। पंचमढ़ी के शैलाश्रय में एक ऐसे व्यक्ति का चित्रण है जो बहुत से मधुमक्खियों के छत्तों को बहँगी में ले जाते हुए दिखाया गया है , जिसे वह मांस अथवा अन्य वस्तु के बदले में देता होगा। बागोर में प्राप्त ताम्र बाणाग्रों से स्पष्ट है कि वहाँ के लोगों का सम्पक्र ताम्रपाषाणिक लोगों से रहा होगा। लघंनाज में प्राप्त मनके तथा

Scanned with OKEN Scanner

डेण्टैलियम की सीपियाँ (Dentalium Shells) भी उन लोगों के बाह्य सम्पक्र का निर्देश करते हैं।

इस काल में, इस जीवन से परे जीवन के सम्बन्ध में भी विचार बनने लगे थे। मध्यप्रदेश की डोरथी डीप (Dorothy Deep) तथा जम्बूद्वीप शैलाश्रयों (Jambudeep Rock Shelters), गुजरात में लघंनाज, राजस्थान में बागोर, मिर्जापुर के बघहीखोर तथा लेखहिया शैलाश्रयों तथा गंगाघाटी प्रतापगढ से सराय नहर राय, महदहा तथा दमदमा मे बहुत से शवाधान मिले हैं जिन्हें मुख्यतया तीनवर्गों में विभाजित किया जा सकता है :

(1) विस्तीर्ण शवाधान (Extended Burial)

(2) निकुंचित शवाधान (Flexed Burial)

(3) आंशिक शवाधान (Fractional Burial)

विस्तीर्ण शवाधान, लघंनाज के अतिरिक्त लगभग सभी स्थलों से मिले हैं। विस्तीर्ण शवाधानों का दिक्विन्यास पूर्व–पश्चिम अथवा पश्चिम पूर्व दिशा में है। अधिकांशतया शिर पश्चिम दिशा में मिलता है। मृतकों की कब्र में प्रायः लघुपाषाण उपकरण, पशुओं की हड्डियाँ, आभूषण, गुरिया तथा हड्डी एवं श्रृंग के आभूषण हड्डी के उपकरण आदि भी मिले हैं। सम्भवतः ये वस्तुएं इस जीवन से परे जीवन के उपयोग के लिए रखी जाती थीं।

सभी शवाधानों के निर्माण में जो एकरूपता मिलती है, उससे प्रतीत होता है कि इस सम्पूर्ण क्रिया ने धार्मिक अनुष्ठान का स्वरूप धारण कर लिया था। पश्चिम–पूर्व अथवा पूर्व–पश्चिम दिशा में शवाधान निश्चित रूप से सूर्योदय तथा सूर्यास्त से प्रभावित हुआ होगा तथा सूर्य की जीवन दायिनी शक्ति ने भी उन्हें प्रेरित किया होगा। सम्भवतः सूर्योपासना का प्रारम्भ मध्यपाषाण काल से सम्बन्धित किया जा सकता है।

## सौन्दर्यबोध

मध्यपाषाण युगीन लोगों को यथेष्ट **सौन्दर्यबोध** था, जो उनके द्वारा निर्मित आभूषणों, उपकरणों तथा चित्रांकन से स्पष्ट होता है। बागोर, आदमगढ़ तथा भीमबेठका से उपरत्नों की गुरियाँ मिली हैं तथा मृगश्रृंगों के हार एवं कान के कुण्डल महदहा से मिले हैं। मध्यपाषाणयुगीन चित्रित शैलाश्रय बहुत अधिक संख्या में प्राप्त हुए हैं जो इन लोगों के कलात्मकता का परिचय देते हैं। इनके शैलचित्र मूलतः पशुवर्ग से सम्बन्धित हैं जिनमें अधिकांशतया उन पशुओं का चित्रण किया गया है जिन्हें वे भक्षण करते रहे होगें जैसे गैण्डा, भैस–बैल, सुअर, हिरन आदि। पशुओं के अतिरिक्त उनके दैनिक जीवन से सम्बन्धित झाँकी भी शैलचित्रों में मिलती है जैसे आखेट के विविध चित्र, मधुसंग्रह तथा नृत्य करते हुए चित्र आदि। चित्रों को प्रायः पूरकशैली अथवा वाह्य रेखा अथवा रेखाकंन द्वारा दर्शाया गया है। रंगों के लिए प्राकृतिक रंगों का प्रयोग किया जाता था। जो उनकों मिट्‌टी तथा वनस्पतियों से उपलब्ध होते थे। उनमें सम्भवतः वनस्पतियों कें रस, चर्बी और रक्त का भी मिश्रण किया जाता था।

इन शैलचित्रों का कालानुक्रम निर्धारण एक गहन समस्या है। शैलाश्रयों में भी जहाँ कहीं ये चित्र मिलते हैं वहाँ एक ही स्थान पर एक के ऊपर एक कई पीढ़ियों के चित्र एक साथ मिलते हैं जिनमें कुछ दिनों अथवा वर्षों से लेकर सैकड़ों वर्षों का अन्तराल हो सकता है, किन्तु उन्हें तकनीक, रंगों तथा विषयवस्तु के आधार पर विभिन्न कालों में विभाजित कर सकते हैं। मध्यपाषाण काल के अन्तर्गत जिन चित्रों को रखते हैं उनमें भी एक विकासक्रम दृष्टिगोचर होता है। जो क्रमशः

Scanned with OKEN Scanner

चक्रिक रूप से विकसित हुए हैं :

1. अनुकरणात्मक अथवा प्राकृतिक (Immitative or Naturalistic )
2. भावात्मक (Stylistic)
3. प्रतीकात्मक (Symbolic)
4. पुनः अनुकरणात्मक (Back to Immitative or Naturalistic )

प्रथमवर्ग के चित्र आकार में अपेक्षाकृत बड़े हैं तथा पशु स्वाभाविक रूप में दर्शित हैं। द्वितीय वर्ग के चित्रों में पशुओं के स्वाभाविक स्वरूप की गोलाकार रेखायें सीधी रेखाओं में परिवर्तित हो जाती हैं तथा इनकी प्रमुख विशेषतायें मात्र शेष रह जाती हैं। तृतीय वर्ग में चित्र मात्र कुछ चिन्हों वृत्तों, बिन्दुओं आदि में रूपान्तरित हो जाते हैं। अन्तिम वर्ग के चित्र सभी स्थलों पर सबसे ऊपर मिलते हैं। ये प्रायः लालरंग अथवा श्वेत रंग में मिलते हैं। जिन चित्रों को मध्यपाषाण युगीन वर्ग में रखते हैं उनकी तिथि भी वही है जो हम मध्यपाषाण युगीन संस्कृतियों को प्रदान करते हैं।

**लघुपाषाण उपकरण उद्योग** (उपकरणों के सम्बंध में विशेष जानकारी के लिए देखिए वर्मा, आर0के0, 1970, भारतीय प्रागितिहास, भाग प्रथम)

मध्य पाषाणिक उद्योग लघुपाषाण उपकरण उद्योग के नाम से विख्यात हैं। लघु पाषाण उपकरण उच्च पूर्व पाषाणिक से लेकर ताम्र–पाषाणिक संदर्भों में मिलते हैं। ताम्र पाषाणिक संदर्भों में मिलने वाले उपकरण प्रायः लघु ब्लेड उद्योग (Short Blade Industry) के नाम से विख्यात हैं। इनमें दन्तुरकटक ब्लेड (Crested Ridged Blade), दन्तुरित ब्लेड (Serrated Blade) तथा रिबन फ्लेक ब्लेड (Ribbon Flake Blade) भी सम्मिलित हैं। इनमें प्रायः कोई भी (दन्तुरकटक ब्लेड के कुछ प्रारम्भिक प्रकार कभी–कभी मिलते हैं, किन्तु वे आकस्मिक भी हो सकते हैं।) मध्य पाषाणिक सन्दर्भ में नहीं मिलता है।

प्रारम्भ में लघुपाषाण उपकरणों के उद्‌भव तथा विकास के सम्बंध में स्पष्ट ज्ञान नहीं था। जब उच्च पुरापाषाणकालीन उपकरणों की स्थिति सन्दिग्ध थी उस समय विद्वानों (सुब्बाराव, बी, 1958, पार्श्वोद्धरित)की विचारधारा थी कि इनका विकास मध्य पुरा पाषाणकाल के लेवालेवा उद्योग से हुआ होगा। उच्च पुरा पाषाणिक उद्योगों की स्थिति के स्पष्ट हो जाने पर अब यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इसका विकास उच्च पुरापाषाणिक ब्लेड परम्परा से ही हुआ है। बेलनघाटी के साक्ष्यों से इस पर समुचित प्रकाश पड़ा है जिसके सम्बन्ध में पहले भी विचार किया जा चुका है।

लघुपाषाण उपकरणों को साधारणतया दो वर्गों में विभाजित करते हैं :

1. अज्यामितिक लघुपाषाणोपरकण
2. ज्यामितिक लघुपाषाणोपकरण

प्रथम वर्ग में त्रिभुज (Triangle) तथा समलम्ब चतुर्भुज (Trapeze) को छोड़कर सभी उपकरण – समानान्तर बाहु ब्लेड (Parallel Sided Blade), भुथड़े पार्श्व ब्लेड (Blunted Back Blade), शर (Points), अर्धचान्द्रिक (Lunate), स्क्रेपर (Scraper), छिद्रक (Borer), ब्यूरिन (Burin), आदि–आते हैं। दूसरे वर्ग में उपर्युक्त उपकरणों के अतिरिक्त त्रिभुज (Triangle), तथा सम्लम्ब चतुर्भुज (Trapeze), भी हैं। भारत में इनके स्तरित प्रमाण सर्वप्रथम मोरहना पहाड़ तथा बघहीखोर (वर्मा, आर0 के0 1964, पार्श्वोद्धरित; 1965, प्री–हिस्ट्री 1964; आगे भी विस्तृत विवेचना की गई है) के उत्खननों में प्राप्त हुए थे। उसके पश्चात् इसकी पुष्टि लेखहिया के उत्खननों से भी हुई। (शर्मा,

Scanned with OKEN Scanner

जी0आर0, 1965, प्री–हिस्ट्री 1964 में) कालान्तर में बेलन के जमावों से भी इसपर प्रकाश पड़ा। इसका विवरण पहले दिया जाचुका है। उपर्युक्त दोनों स्थानों के उत्खननों से ज्ञात हुआ कि मध्य पाषाणकालीन उद्योगों के विकास में कम से कम चार अवस्थायें हैं :

1. अज्यामितिक प्राक् पॉटरी अवस्था
2. ज्यामितिक प्राक् पॉटरी अवस्था
3. ज्यामितिक, पॉटरी से सम्बन्धित अवस्था
4. अल्पक (Diminutive) ज्यामितिक उद्योग

विभिन्न स्थलों से प्राप्त लघुपाषाणिक उद्योगों को उपर्युक्त चार अवस्थाओं में रखा जा सकता है।

## तिथि क्रम

कुछ समय पूर्व तक हुए अनुसंधानों के आधार पर भारत के मध्यपाषाणिक लघु पाषाण उद्योगों को हम पाँच या छः हजार वर्ष ई0 पू0 से अधिक नहीं ले जा सकते थे। प्रो0 ज्वाएनर ने टेरी (ज्वायनर, एफ0 ई0, अलचिन, बी0 : ए0 इ0 नं0 6, पृ 7.8) उद्योग की तिथि समुद्रीय जल तल के परिवर्तन के आधार पर लगभग 4000 ई0 पू0 निश्चित की थी। लाल ने बीरभानपुर (लाल, बी0 बी0 : ए0 इ0 न0 14, पृ0 38) तथा लेखक (वर्मा आर0 के0 : 1985, तथा प्री–हिस्ट्री—1964, पृ. 170) ने मिर्जापुर (भैसोर) के अज्यामितिक प्राक्मृद्भाण्ड (Non-geometric Pre-Pottery) लघु–पाषण उद्योग की वही तिथि दी थी, जो ज्वाएनर ने टेरी उद्योग को दिया था। लंघनाज से प्राप्त हड्डियों के एक सैम्पुल टी0 एफ0 744 की तिथि 2040 ई0 पूर्व आई हैं। लेखहिया ($C^{14}$ डेट लिस्ट, दिसम्बर 1967, पृ0 2 साइक्लोस्टाइल प्रति ) के प्राचीनतम कंकाल की तिथि 2140 ई0 पू0 आई थी। किन्तु गत कुछेक वर्षो में बहुत सी नवीन तिथियाँ प्राप्त हुई हैं जो भारत के मध्यपाषाण युगीन संस्कृति की प्राचीनता कम से कम 12,000 से 8000 वर्ष ईसा पूर्व तक ले जाती हैं। सम्भावना और अधिक प्राचीन होने की है। तिथियों का विवरण आगे वर्णित है। बेलन घाटी में चतुर्थ ग्रैवल, जो उच्चपुरा पाषाण काल तथा मध्य पाषाण काल का मध्यवर्ती है, से दो भिन्न प्रयोग शालाओं से प्राप्त चार तिथियाँ इस प्रकार हैं:

12,190 ± 390 BC (PRL 603)
9350 ± 130 BC (PRL 602)
8395 ± 110BC (SUA)
8000 ± 115BC (SUA)

इसके अतिरिक्त सोन घाटी–वघोर से भी अनुपुरापाषाण कालीन अथवा एपीपोलियोलिथिक स्तर से एक तिथि प्राप्त है जो 11870 ± 120 है। वेलनघाटी तथा मध्यसोन घाटी में एपीयेलियोथिक को 20000–16000 बी0 पी0 के काल कोष्ठक में रखते हैं। एपीपेलियोलिथिक मध्यपाषाण युगीन लघुपाषाणोंपकरणों का पूर्ववर्ती है। ये तिथियाँ भी मध्यपाषाण काल की प्रस्तावित तिथि की पुष्टि करती है।

Scanned with OKEN Scanner

कुछ समयपूर्व तक **गंगा घाटी** में मात्र सरायनहर राय से एक तिथि ज्ञात थी जो 8395 ई0पू0 थी। अब दमदमा से दो और तिथियाँ प्राप्त हैं। वे इस प्रकार हैं :

8640 ± 65 (GX-20829AMS)

8,865 ± 65 (GX-20827-AMS)

लेखहिया से पहले जो तिथियाँ ज्ञात थी वे 2,410±115 ई0पू0 तथा 1,710±110 ई0पू0 थी। अब वहाँ से दो तिथियाँ प्राप्त हुई हैं जो निम्न हैं:

8,370 ± 75 ई०पू० (GX-20983-AMS) LKH-4

8,000 ± 75 ई0पू0 (GX-20984-AMS ) LKH-13

इसी प्रकार आदमगढ़ से भी एक तिथि उपलब्ध है जो इस प्रकार है: 7,450 ± 130 ई0पू0 (मिश्र,वी0, एन0, 1985)

पैसरा से मध्यपाषाणिक स्तर से एक तिथि 7420 ± 110 ई0पू0 (त्यूकांक्स तथा पाल 1993 : 745–65) प्राप्त है।

कुछ समय पूर्व शीला मिश्रा तथा राजगुरू को मध्यपाषाण युगीन लघुपाषाण उपकरण ऐसे भूतात्विक स्तरों से प्राप्त हुए थे जिनकी तिथि 20,000 व0पू0 से 11,000 व0पू0 के मध्य आँकी गई है।

ये सभी तथ्य मध्य पाषाण काल की प्राचीनता को और पीछे ले जाने का संकेत देती हैं।

Scanned with OKEN Scanner

# 40

# उत्खनित स्थल

आगे के पृष्ठों में केवल उन्हीं स्थलों के सम्बंध में चर्चा की गई है जहाँ पर उत्खनन हुआ है। वे स्थल इस प्रकार हैं:

1. बेलन घाटी: चोपनी माण्डों
2. विंध्य क्षेत्र : मोरहना पहाड़, बघही खोर, लेखहिया आदि
3. उत्तर प्रदेश: गंगाघाटी : सराय नहर राय आदि
4. बगाल : वीरभानपुर
5. तमिलनाडु : टैरी उद्योग
6. गुजरात : लंघनाज
7. मध्य प्रदेश : आदमगढ़, ............
8. राजस्थान : बागोर

## बेलन घाटी के साक्ष्य

बेलन घाटी के अनुभाग से भी लघुपाषाणोपकरण के विकास पर प्रकाश पड़ता है। वहाँ के भू–वैज्ञानिक स्तरों का विस्तृत विवरण पहले दिया जा चुका है। वहाँ पर तृतीय ग्रैवेल के ऊपर 2 से 3 मीटर काली मिट्टी का जमाव है जो इस बात का निर्देश करता है कि जिस समय उसका निर्माण हो रहा था उस समय वहाँ पर घना वानस्पतिक आवरण था तथा जलवायु भी पहले की अपेक्षा अधिक आर्द थी। यह निक्षेप प्रातिनूतन तथा नूतन कल्पों के संधिकाल का निर्देश करता है। इस स्तर ने उच्च पुरापाषाणिक उपकरणों के साथ अज्यामितिक प्रकार के लघुपाषाणोपकरण भी प्राप्त हुए हैं। यह स्तर उच्च पुरापाषाण काल तथा मध्य पाषाण काल की संधि का भी निर्देश करता है।

ऊपर की दो लेयरें लगभग 4 मीटर मोटी हैं। ये वायु निर्मित हैं। इनसे क्रमशः अज्यामितिक तथा ज्यामितिक उपकरण मिलें हैं। तृतीय ग्रैवेल के ऊपर का भू–वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक क्रम निम्न है।[1]

| जलवायु | संरचना | उद्योग | C -14 तिथि |
|---|---|---|---|
| शुष्क | वायु निक्षेपित | पॉटरी से सम्बन्धित ज्यामितिक लघुपाषाणोपकरण | |
| शुष्क | वायु निक्षेपित | पॉटरी से असम्बंधित ज्यामितिक लघुपाषाणोपकरण | |
| किंचित् आर्द्र | खाद मिट्टी (प्रातिनूतन काल की समाप्ति) | अज्यामितिक लघुपाषाणोपकरण तथा उच्च पुरापाषाणिक उद्योग | |
| शुष्क तथा आर्द्रकाल का संधि–स्थल | सिमेण्टेड ग्रैवेल III | उच्च पुरापाषाणिक ब्लेड ब्यूरिन उद्योग | 19715 ± 340 |

1. शर्मा, जी0आर0 1975, सीजनल माइग्रेशंस ऐण्ड मेसोलिथिक लेक कल्चर्स ऑफ दि गंगा वैली, के0सी0 चट्टोपाध्याय मेमोरियल वाल्यूम, पृ0 4 की तालिका पर आधारित।

Scanned with OKEN Scanner

## चोपनी माण्डो (बेलन घाटी)

चोपनी माण्डो नामक मध्यपाषाणिक पुरास्थल बूढ़ी बेलन के बायें तट पर द्वितीय वेदिका पर देवघाट से लगभग तीन किलोमीटर पूर्वोत्तर दिशा मे स्थित है। इलाहाबाद से पूर्व तथा दक्षिण पूर्व दिशा में इसकी दूरी 77 कि0मी0 है। यह पुरास्थल लगभग 15,000 वर्ग मी0 के क्षेत्र में फैला है। इस सम्पूर्ण क्षेत्र का धरातल लघुपाषाण उपकरणों, फलकों आदि से भरा पड़ा था। यह पुरास्थल बेलन नदी के परित्यक्त प्रवाह क्षेत्र के अर्न्तगत है।

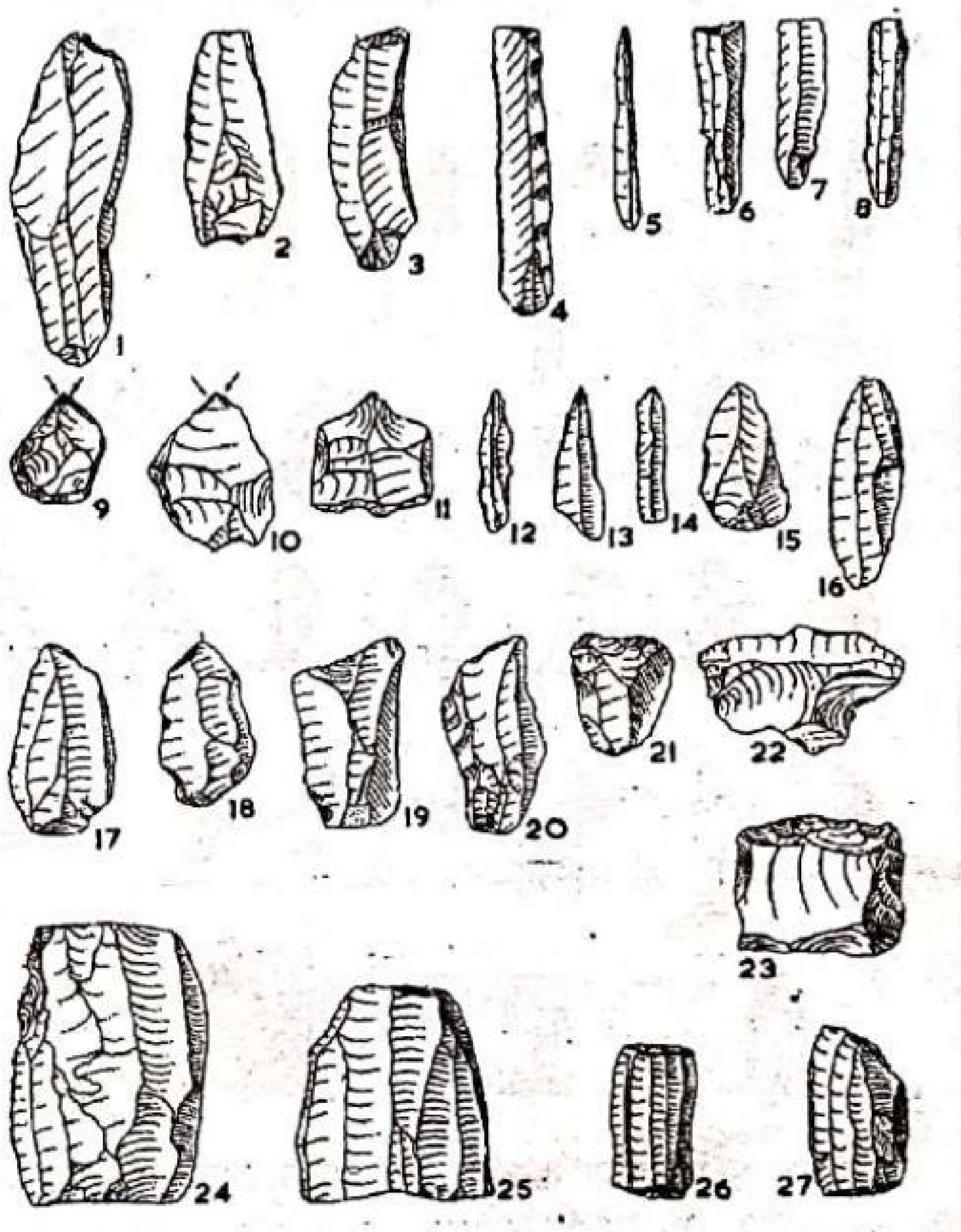

चोपनीमाण्डो अनुपुरापाषाणिक उपकरण चित्र सं. 80

इस पुरास्थल पर सर्वप्रथम 1967 (आई. आर.ए.–रिव्यू. 1966-67 पृ0 38) मे वी0डी0 मिश्र ने जी0 आर0 शर्मा के निर्देशन में उत्खनन किया था जिसके द्वारा इस स्थल का कालानुक्रम निर्धारित हुआ। इस उत्खनन में 1.55 मी0 की अधिकतम गहराई तक उत्खनन हुआ था। कालान्तर में पुनः 1978-82 के बीच बृजबिहारी मिश्र ने जी0 आर0 शर्मा के निर्देशन में क्षैतिज उत्खनन किया। 5 x 5 मीटर की 21 खन्तियों मे उत्खनन किया गया। इनमें से अधिकांश खन्तियों में 30-35 से0मी0 की गहराई तक उत्खनन किया गया किन्तु दो खन्तियों में आधार शिला तक क्रमशः 60 तथा 80 से0मी0 तक खोदा गया।

उत्खनन के फलस्वरूप सम्पूर्ण सांस्कृतिक जमाव को दस लेयरों में विभाजित किया गया है जिन्हें चार सांस्कृतिक कालों के अन्तर्गत रखते हैं :

(I) अनुपुरापाषाण काल (Epi-palaeolithic)

(II) प्रारम्भिक मध्यपाषाण काल 'अ' (Early Mesolithic-'A')

(III) प्रारम्भिक मध्यपाषाण काल 'ब' (Early Mesolithic- 'B')

(IV) (Advanced Mesolithic or Proto-Neolithic)

**(I) अनुपुरापाषाण काल (Epi-palaeolithic Pd.):**

20 से0मी0 मोटाई की लेयर (10) से इस काल खण्ड के सांस्कृतिक स्तर प्राप्त हुए हैं। यह उच्च पुरा पाषाण काल से मध्यपाषाण काल के विकास के परिवर्तन का द्योतन करता है। इस जमाव से उपलब्ध सामग्री में लगभग 20% उपकरण अपेक्षाकृत बड़े, मोटे, तथा चौड़े ब्लेड हैं जो उच्चपुरापाषाणिक ब्लेड परम्परा के अनुरूप हैं। अधिकांश उपकरण रासायनिक रंगाई से युक्त हैं। उनमें अधिकांश ब्लेडों का अनुभाग त्रिकोणात्मक है यद्यपि नालीमत कोरों (Fluted cores) का भी विकास होने लगा था। 80% उपकरण–ब्लेड, भुथड़े पृष्ठ ब्लेड तथा छिद्रक आदि–मध्यपाषाण युगीन

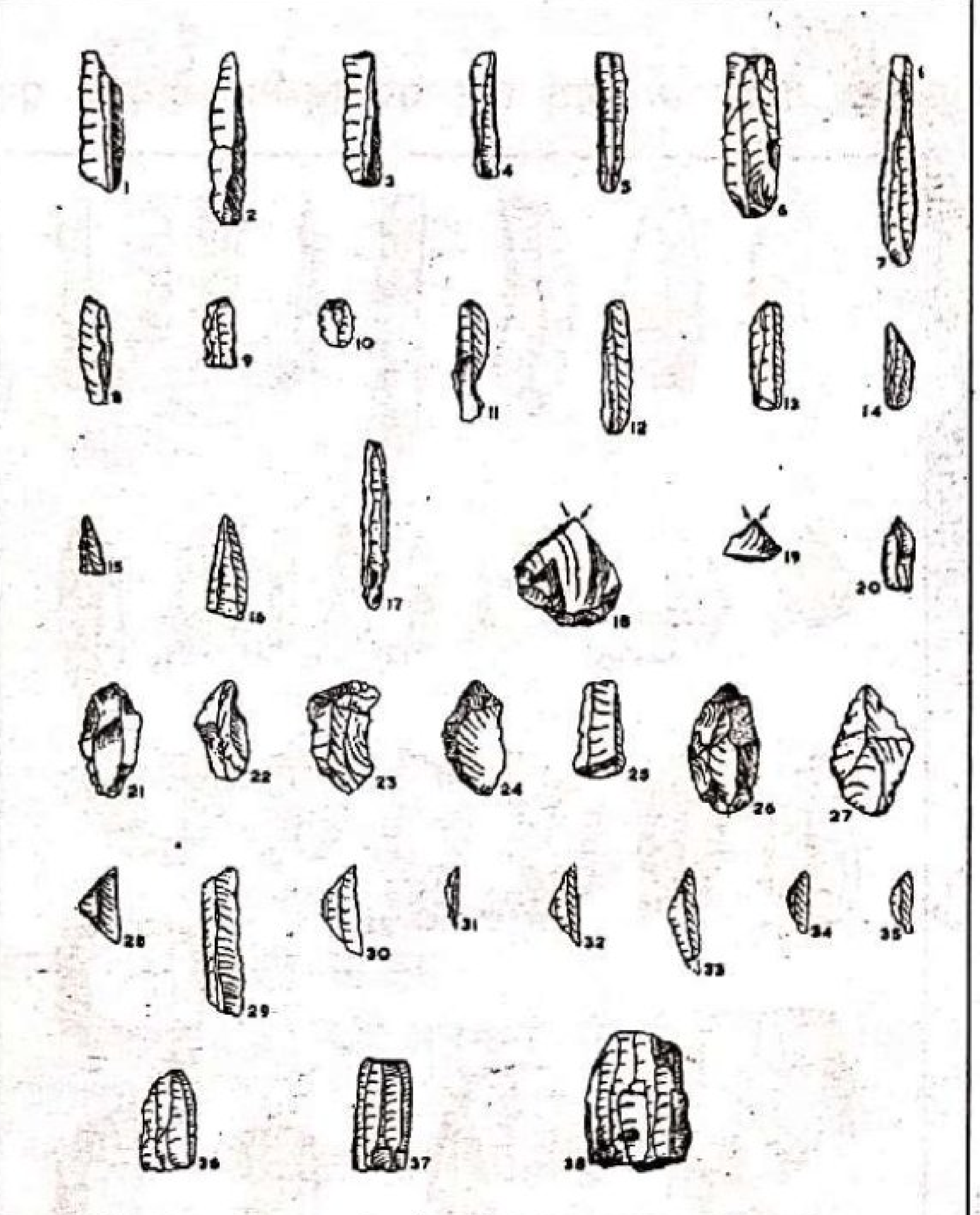
प्रारम्भिक मध्यपाषाण कालीन 'ब' उपकरण चित्र सं0–81

उपकरणों के लगभग अनुरूप हैं। सम्मिलित रूप से न तो ये उच्चपुरा पाषाण काल के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं और न ही मध्यपाषाण युगीन उपकरण समुदाय के अन्तर्गत।

## (IIA) प्रारम्भिक मध्यपाषाण काल

इस वर्ग में लेयर (9) तथा (8) की सामग्री समाहित है। इसमें अज्यामितिक प्रकार के उपकरण हैं जो अधिकांशतया चर्ट पर निर्मित हैं। अधिकांश उपकरण ताजे लगते हैं तथा पूर्व वर्ग से इनपर रासायनिक रंगाई भी कम है। अधिकांश ब्लेड नालीमत कोरों से निकाले गए हैं। इनको निकालने के लिए अप्रत्यक्ष संघात विधि अथवा निपीड प्रविधि का प्रयोग करते थे। उपकरण समुदाय में विविध प्रकार के ब्लेड, खातयुक्त ब्लेड, छिद्रक, शर तक स्क्रेपर आदि की गड़ना करते हैं। इनमें मृद्भाण्ड नहीं थे।

इस काल के दो गोलाकार झोपड़ियों के फर्श मिले हैं जिनका व्यास (Diameter) 3.80 मी0 था तथा जिनके स्तम्भगर्त 0.70 से 1 मी. के अन्तराल पर थे।

## (IIB) प्रारम्भिक मध्यपाषाण काल

इसमें लेयर (7) से (4) तक की सामग्री सम्मिलित है। इसमें सर्वप्रथम ज्यामितिक प्रकार के उपकरण मिलते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ नवीन प्रकार के उपकरण यथा दन्तुरित ब्लेड, ब्लेड , ल्यूनेट, लघु ब्यूरिन, त्रिभुज, समलम्ब चतुर्भुज लेयर (7) में तथा ल्यूनेट आदि लघु ब्यूरिन लेयर (6) में मिले हैं। इस वर्ग में भी मृद्भाण्ड नही मिले हैं।

इस काल के स्तरों से 5 गोलकार झोपड़ियाँ मिली हैं जिनको दो निर्माणात्मक कालो में विभाजित कर सकते हैं। इनमें से तीन झोपड़ियों के स्तम्भगर्त लेयर (7) में तथा दो के लेयर (6) में खोदे गए थे। इनका व्यास लगभग 3 मी0 था तथा स्तम्भगर्त 50 से0मी0 से 1 मी0 की दूरी पर थे। झोपड़ियों के फर्श पर पत्थर बिछे थे तथा इसके स्तम्भ गर्त 40 से 90 से0मी0 की

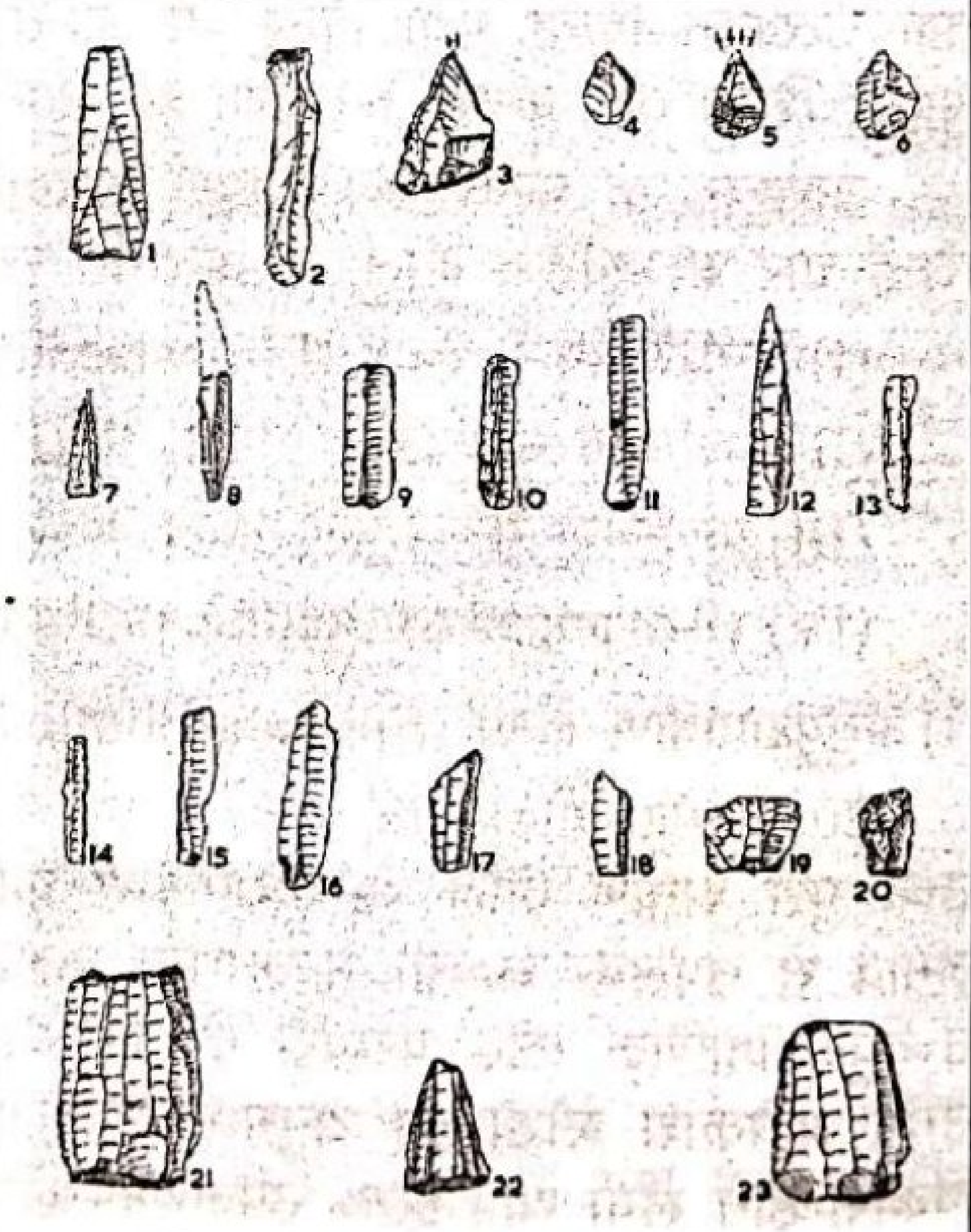
प्रारम्भिक मध्यपाषाण कालीन 'ब' उपकरण
चित्र सं0–82

दूरी पर थे। झोपड़ों के फर्श पर लघुपाषाण उपकरण, हड्डियों के टुकड़े तथा कुछ जले हुए मिट्टी के टुकड़े भी मिले थे।

## (III) विकसित मध्यपाषाण काल अथवा आद्य नवपाषाण काल

यह 40 से0मी0 का जमाव लेयर (3) से (1) तक का है। इस जमाव से प्राप्त उपकरण पूर्ववर्ती उपकरणों की अपेक्षा छोटे हैं। इस वर्ग में सूक्ष्मकणों के चाल्सेडनी प्रकार के पत्थरों का प्रतिशत पहले की अपेक्षा बढ़ जाता है। अधिकांश उपकरण लघु ब्लेडों पर निर्मित हैं। इनके अतिरिक्त गदाशीर्ष, हथौड़े, भंगुर हस्तनिर्मित मृद्भाण्ड तथा ज्यामितिक उपकरण यथा त्रिभुज तथा ट्रांचेट (Tranchet) भी मिलने लगते हैं।

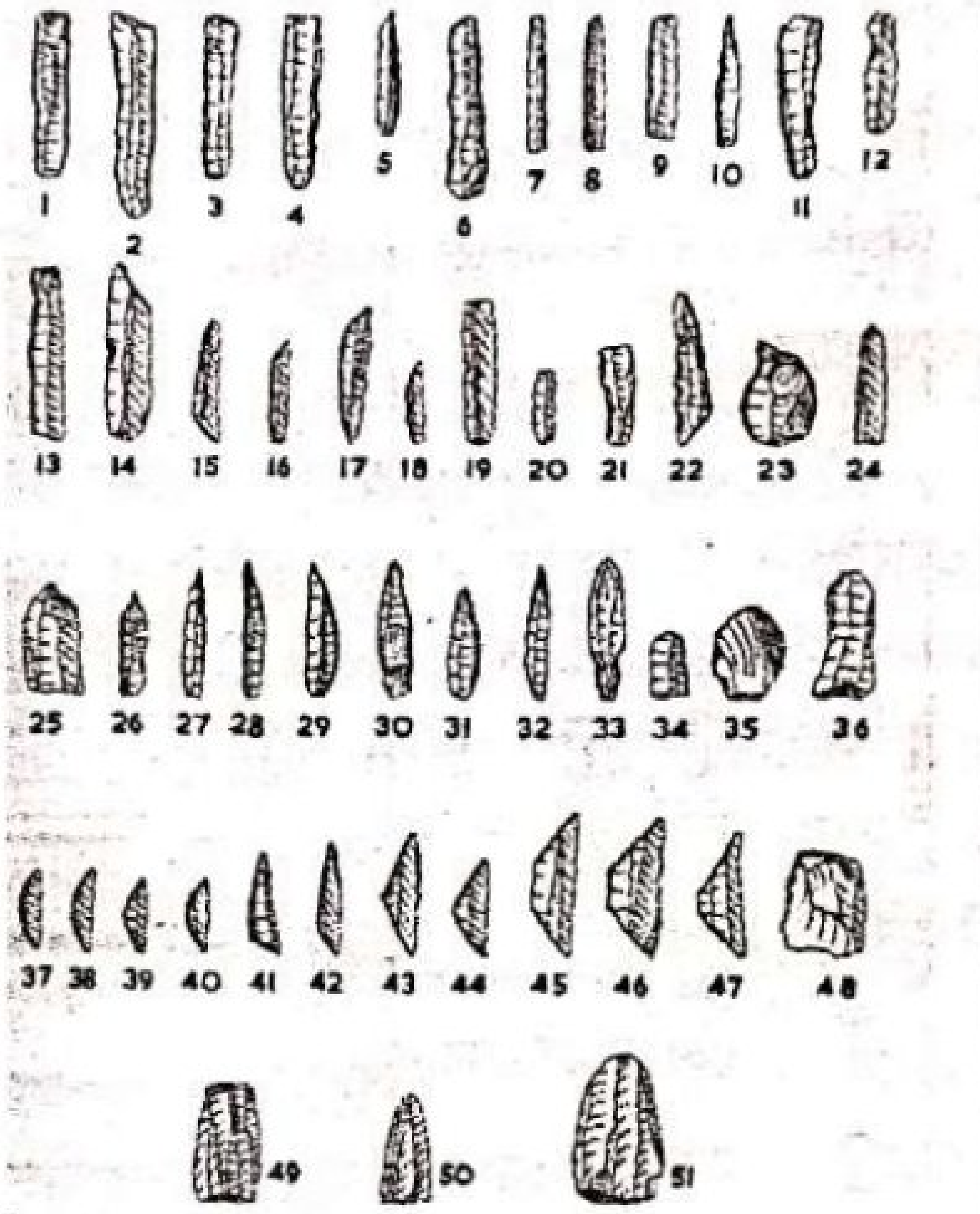

विकसित मध्यपाषाण कालीन अथवा आद्य नवपाषाण कालीन उपकरण चित्र सं0–83

इस काल से 13 गोलाकार/अण्डाकार झोपड़ियाँ तथा चार चूल्हों के प्रमाण मिले हैं। झोपड़ियों के फर्श पर लघुपाषाण उपकरण, निहायी, विविध आकार प्रकार के हथौड़े, सिल–लोढ़े, गदाशीर्ष, जले हुए मिट्टी तथा खपच्ची का छाजन आदि मिले थे। तेरह झोपड़ियों में से 6 गोलाकार तथा 7 अण्डाकार थे।

पूर्ण उत्खनित झोपड़ों का औसत व्यास 3.5 मी0 था तथा अण्डाकार गर्तों की अधिकतम औसत लम्बाई 4.70 मीटर तथा छोटी भुजा की औसत माप 3.30 मीटर थी। कुछ झोपड़ियों के किनारों पर पत्थरों के टुकड़े मिले थे तथा उनकी फर्श पर पत्थरों के टुकड़े तथा लघुपाषाण उपकरण मिले थे। इसके अतिरिक्त निहायी, हथौड़े, गदाशीर्ष, गोफन पत्थर, सिल–लोढ़े और मृद्भाण्डों के टुकड़े भी मिले थे। 7 तथा 11 नम्बर के फर्शों पर दो विशालकाय निहाइयाँ मिली थी। ऐसा प्रतीत होता है कि उनके चारों ओर बैठकर कई लोग एक साथ काम करते थे , जो निहाई के पिटे हुए सतह से स्पष्ट है। एक निहाई पर पड़ा हुआ एक हथौड़ा भी मिला था।

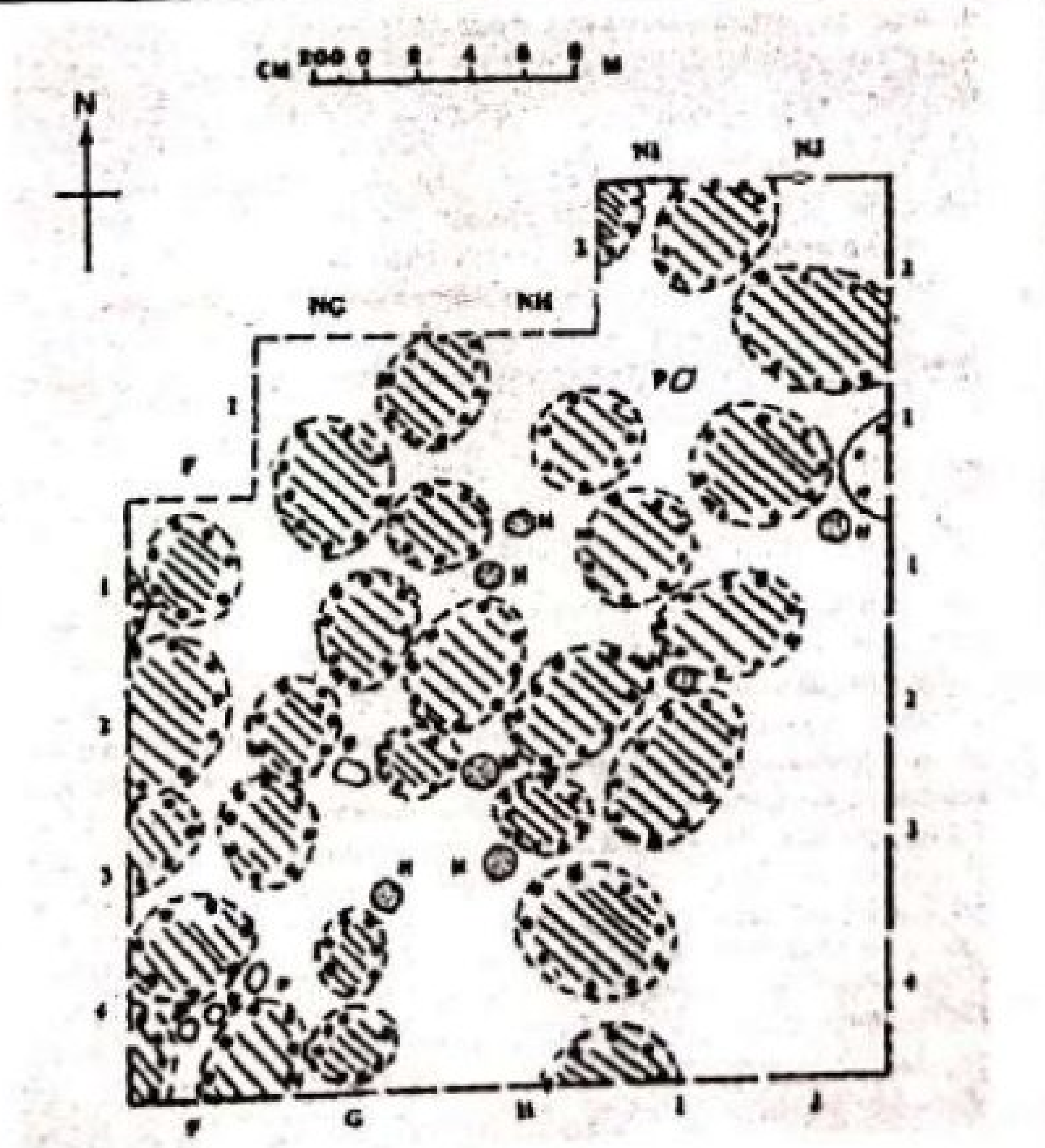

चोपनीमाण्डो गोलाकार/अण्डाकार झोपड़ियाँ तथा चूल्हे चित्र सं0–84

इनके अतिरिक्त चार गोलाकार गर्त चूल्हे भी मिले थे। जिनका व्यास 0.80 से 1 मी0 के लगभग था। ये लगभग 40 से.मी. गहरे थे। इनमें राख युक्त मिट्टी, हड्डी के टुकड़े, कोयले आदि मिले थे। यह उल्लेख्य है कि चूल्हों की संख्या झोपड़ों के अनुपात में कम थी। सम्भवतः कुछ चूल्हों को सामूहिक रूप से प्रयोग में लाते थे।

इनके अतिरिक्त कुछ गोलाकार अथवा अण्डाकार संरचनायें मिली थी जिनका व्यास 70 से 30 से0मी0 के

लगभग था। ये झोपड़ियों के निकट थे। ऐसा प्रतीत होता है कि ये सम्भवतः बांस तथा मिट्टी के बने संग्रह पात्रों (Storage Jar) के आधार थे।

## मृदभाण्ड

विकसित मध्यपाषाण काल अथवा आद्य नवपाषाणिक काल में हस्तनिर्मित मृद्भाण्ड मिलने लगते हैं। ये अत्यन्त भंगुर है। मिट्टी भली–भाँति गुंधी नहीं है और बर्तन भी भली–भाँति पके नहीं हैं। सम्पूर्ण मृदभाण्ड़ों को दो वर्गो मे विभाजित किया गया है :

1. लाल मृद्भाण्ड
2. खाकी अथवा धूसर मृद्भाण्ड

दोनों ही प्रकार के पात्रों पर ठप्पों के निशान मिलते हैं। उत्खनन से प्राप्त अन्य वस्तुओं में जंगली जले चावल तथा बाँस, एक प्रस्तर का बेलनाकार मनका आदि प्रमुख हैं।

मृद्भाण्डों के टुकड़ों में जंगली जले चावल तथा भूसी प्रचुर संख्या में थे।

## तिथि :

पुरातात्विक आधार पर चोपनीमाण्डों की मध्यपाषाण युगीन संस्कृति को उत्खनन कर्ताओं ने 17000 से 7000 ईसा पूर्व के अन्तर्गत रखा है।

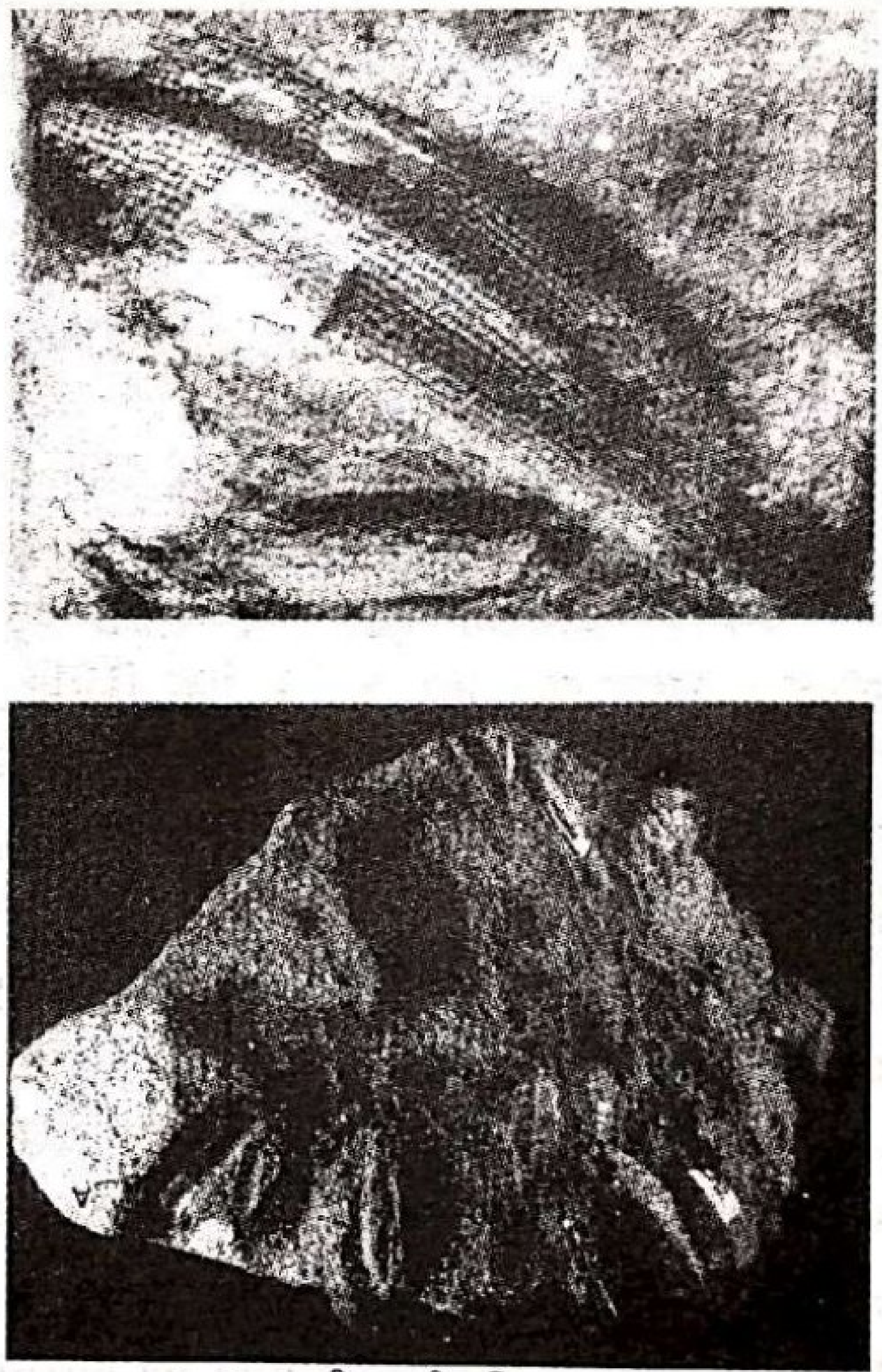

1. धान की फली, चित्र सं0–85
2. गूथी मिट्टी में धान की भूसी

# 41

# विंध्य क्षेत्र (उत्तर प्रदेश)

ग्रेट डेक्कन मार्ग के किनारे हनुमना (मध्य प्रदेश) से लगभग दो मील पहले भैसोर ग्राम के निकट उसके पश्चिम में मोरहना पहाड़ तथा बघहीखोर शिलाश्रयों में तथा मार्ग के पूर्व में लेखहिया शिलाश्रय के अन्दर तथा बाहर 1962–63 तथा 1963–64 में क्रमशः उत्खनन किया गया।

## मोरहना पहाड़

मोरहना पहाड़ शिलाश्रय भैंसोर ग्राम के पश्चिम में सड़क से लगभग पाँच किलो मीटर की दूरी पर स्थित है (वर्मा,राधाकान्त, 1964, स्टोन एज कल्चर्स ऑफ मिर्जापुर, थीसिस, अप्रकाशित पृ0 329–464;.,1965, प्री–हिस्ट्री 1964;मेसोलिथ एज इन मिर्जापुर)। यहाँ पर शिलाश्रय नं0 1 के बाहर खुले में तथा उसके भीतर उत्खनन किया गया था। दोनों ही स्थलों पर एक–एक खनतियाँ डाली गई थीं। बघहीखोर शिलाश्रय मोरहना पहाड़ शिलाश्रयों के पश्चिम में लगभग एक किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। वहाँ पर भी एक शिलाश्रय में उत्खनन किया गया था।

## शिलाश्रय के बहार उत्खनन (मोरहना पहाड़)

प्रथम खनती (10फी0 × 5फी0) मोरहना पहाड़ शिलाश्रय नम्बर 1 के पूर्व में शिलाश्रय से लगभग 10 गज की दूरी पर खुले में डाली गई थी। उत्खनन के फलस्वरूप 3 फीट का जमाव प्रकाश में आया जिसे स्तरीकरण के आधार पर नीचे से ऊपर की ओर छः विभिन्न स्तरों में विभाजित किया गया है। (रेखाचित्र ) जो इस प्रकार हैं :

लेयर 5। : यह निम्नतम जमाव है जो आधारशिला पर आश्रित है। यह विगलित सैण्ड स्टोन से निर्मित है तथा इसकी औसत मोटाई एक इन्च से कम है। इसमें कोई भी पुरातात्विक सामग्री नहीं मिली।

लेयर 5 : ग्रैवेल, बालू, तथा सैण्डस्टोन के घर्षित टुकड़ों से निर्मित ललाई युक्त यह जमाव 9" मोटा है। जमाव की संरचना से प्रतीत होता है कि इसका निक्षेपण अपेक्षाकृत

तीव्र आर्द्रकाल में हुआ था। सर्वप्रथम लघुपाषाणोपकरण इसी जमाव में मिले हैं। ये अज्यामितिक प्रकार के हैं तथा पॉटरी से सम्बन्धित नहीं है। उपकरण अत्यधिक रासायनिक रंगाई से युक्त हैं। उपकरण समुदाय में भूथड़े पार्श्व ब्लेड 17.6%, अर्ध–चान्द्रिक 2.6%, शर 8.8% तथा काफी संख्या में 70.58% गढ़ित अथवा प्रयोग में लाये गये फलक है।

लेयर 4 : यह लेयर 5 के ही समान है अन्तर मात्र इतना है कि ग्रैवेल तथा सैण्ड स्टोन के टुकड़े पहले की अपेक्षा छोटे आकार के हैं। इस निक्षेप से अज्यामितिक तथा ज्यामितिक दोनों ही प्रकार के उपकरण उपलब्ध हुए हैं। ज्यामितिक उपकरणों की संख्या

नगण्य है तथा वे सम्पूर्ण समुदाय में केवल 1% हैं। अन्य उपकरणों में समानान्तर बाहु ब्लेड 52.60%, भुथड़े पार्श्व ब्लेड 15.40% , अर्धचान्द्रिक 20% , शर 1% , त्रिभुज 2% , तथा छिद्रक 3% है। इनके अतिरिक्त कोर पुनुरूज्जावन फलक, तथा कोर भी प्राप्त हुए हैं।

लघुपाषाणोपकरणों के अतिरिक्त इस स्तर से पॉटरी के भी कुछ टुकड़े मिले हैं। पॉटरी अत्यन्त

भंगुर हैं और उसमें गेरू (Ochre) की मात्रा अधिक है।

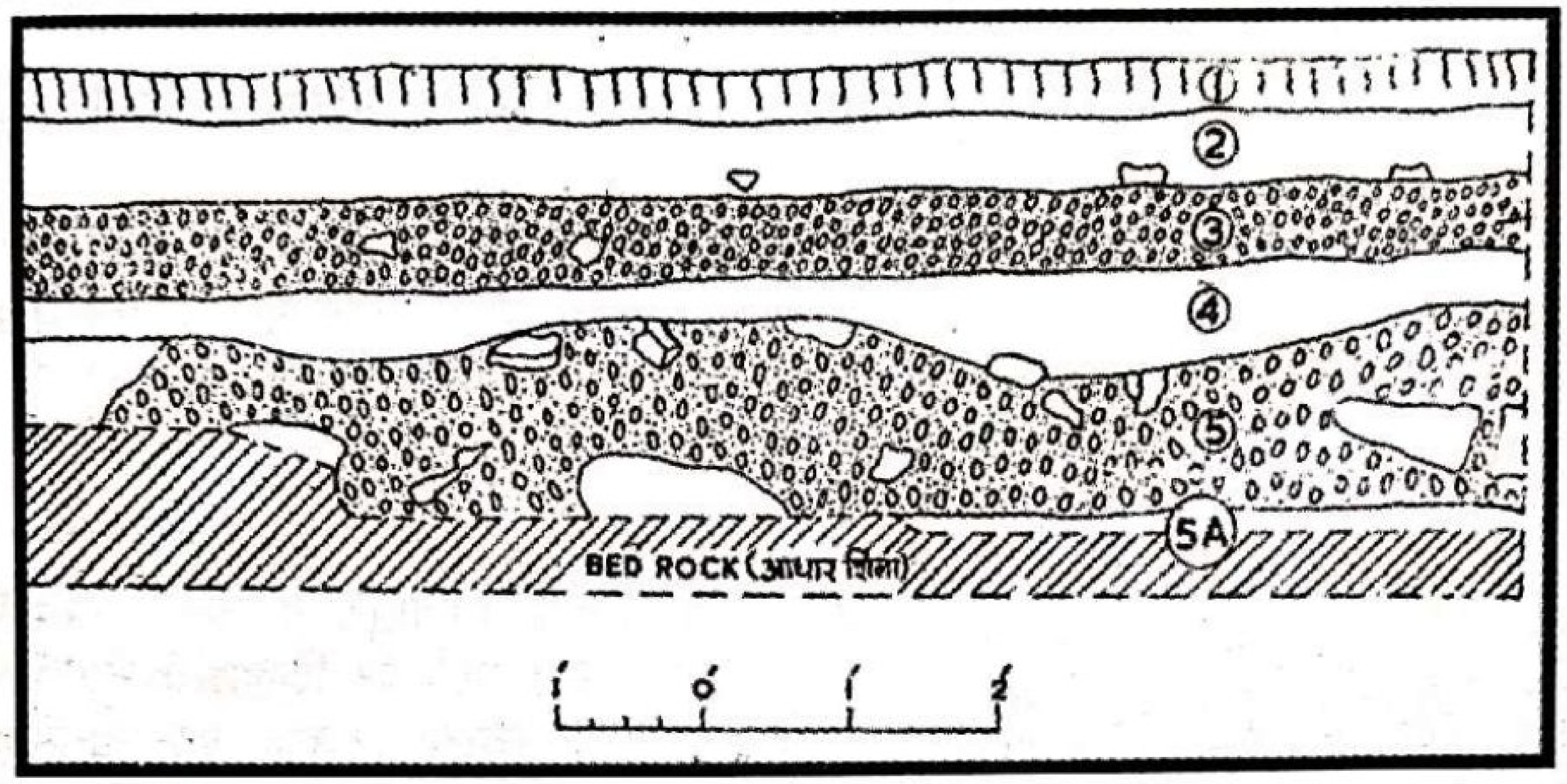


शिलाश्रय के बहार उत्खनन (मोरहना पहाड़) खनती का अनुभाग चित्र सं0–86

लेयर 3 : इसमें ग्रैवेल और महीन हो जाते हैं, सैण्ड स्टोन नहीं मिलते तथा बालू की मात्रा बहुत अधिक हो जाती है। यह भूरापन लिए हुए राखी के रंग का जमाव है। इसकी औसत मोटाई 6.5 इन्च है। इस निक्षेप से सबसे अधिक संख्या में लघुपाषाणोपकरण प्राप्त हुए हैं। उपकरण समुदाय में समानान्तर ब्लेड 29% , भुथड़े पार्श्व ब्लेड 23% , अर्धचान्द्रिक 6% , शर 26% , त्रिभुज 2% , फलक 5% तथा कोर 9% हैं। पॉटरी लेयर 4 की पॉटरी के ही समान हैं।

लेयर 2 : यह महीन बालू का वायु निर्मित जमाव है। इसकी औसत मोटाई सात इन्च है। इसमें ज्यामितिक उपकरणों की संख्या बढ़ जाती है तथा वे सभी उपकरणों के 4% हैं। अन्य उपकरणों में समानान्तर बाहु ब्लेड 22.64% , भूथड़े पार्श्व ब्लेड 20.36%, अर्धचान्द्रिक 8%, शर 40%, पुनुरूज्जावन फलक 2.56% तथा कोर 2.44% है। इस जमाव में पॉटरी भी अपेक्षाकृत अधिक है।

लेयर 1 : यह अत्यन्त महीन वायु निर्मित जमाव है जिसका निक्षेपण अपेक्षाकृत शुष्क अवस्था में हुआ था। यह राखी के रंग का है तथा इसकी औसत मोटाई 5" है।

इस जमाव के नीचे के स्तर से समानान्तर ब्लेड, शर तथा त्रिभुज मिले हैं जो क्रमशः 33%, 50% तथा 17% है। इसमें पॉटरी सम्पूर्ण संकलन की 50% है। सतह के लगभग 1" नीचे चतुर्भुजाकार क्रॉस अनुभाग का एक लोहे का वाणाग्र भी प्राप्त हुआ था।

लेयर 2 तथा 1 के उपकरण इस दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है कि वे अन्य की अपेक्षा अधिक अल्पक हो जाते हैं।

**पॉटरी :**

लेयर (4) तथा उसके ऊपर के जमावों से पॉटरी के टुकड़े मिले थे। ये अत्यन्त भंगुर हैं तथा उनके किनारे घिसे हुए, रंग गेरूआ तथा अनुभाग भूरा है। छूने मात्र से ही ये रंग छोड़ते हैं। लेयर 4 तथा 3 में कोई आकार नहीं है। लेयर 2 में सबसे अधिक टुकड़े मिले हैं, किन्तु पात्रों का आकार मात्र छः टुकड़ों से ही बन सका। सभी जार के टुकड़े प्रतीत होते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

## शिलाश्रय में उत्खनन (मोरहना पहाड़)

मोरहना पहाड के शिलाश्रय नं0 4 में 6 × 4 फीट की एक खनती का उत्खनन 1 फीट 10 इन्च की अधिकतम गहराई तक किया गया था। इस सम्पूर्ण जमाव में चार लेयरें मिली थी जो नीचे से ऊपर इस प्रकार थी :

लेयर 4 : इसकी अधिकतम मोटाई 3'' थी तथा यह ललाई मिश्रित राखी के रंग का था। इसमें बाहर के खनती की लेयर 4 के समान अज्यामितिक तथा ज्यामितिक उपकरण मिले थे। उपकरण समुदाय में समानान्तर ब्लेड तथा भुथड़े पार्श्व ब्लेड 57% , अर्धचान्द्रिक 12.60%, शर 27. 14%, छिद्रक .68% , ब्यूरिन 1.03% , कोर 14.70% , त्रिभुज 5% , तथा समलम्ब चतुर्भुज 3.30% है। ज्यामितिक उपकरण सभी उपकरणों के 8% थे।

मोरहना पहाड के शिलाश्रय नं0 4 चित्र सं0–87

लघुपोषाणोपकरणों के अतिरिक्त मृदभाण्डों के गेरूए–लाल रंग के अधपके, घिसे हुए भूरे अनुभाग के टुकड़े भी मिले थे। मृदभाण्डों के टुकड़े केवल 14 थे तथा लघुपाषाणोपकरण 4,107 थे।

लेयर 3: इसकी औसत मोटाई 1.5 इंच थी तथा यह भुरभुरी जली मिट्टी से निर्मित थी जो लाल–राखी–कालापन लिये हुए थी। इस लेयर से 8,255 लघुपाषाणोपकरण मिले थे। उपकरण समुदाय में ब्लेड–समानान्तर तथा भूथड़े पार्श्व–41.30%, अर्धचान्द्रिक 15.90% , शर 20. 10% , कोर 12.70% , त्रिभुज 7.50% , और समलम्ब चतुर्भुज 2.50% थे।

पॉटरी पहले की लेयर के ही समान थी, किन्तु उनकी संख्या पहले की अपेक्षा अधिक थी।

लेयर 2 : इसकी औसत मोटाई 3 इन्च थी। यह सख्त पीले मिट्टी से निर्मित था जिसमें पॉटरी तथा कंकड़ के टुकड़े मिश्रित थे। उपकरण समुदाय में ब्लेड– समानान्तर बाहु तथा भुथड़े पार्श्व 45.20% , अर्धचान्द्रिक 9.40%, शर 23%, स्क्रेपर 1.19%, ब्यूरिन 2.38% त्रिभुज 14.32%, समलम्ब चतुर्भुज 1.19% तथा कोर 2.38% थे।

पॉटरी में कोई अन्तर नहीं था, किन्तु वे सभी उपकरणों के 10% थे।

लेयर 1: यह हल्के पीले रंग का वायु निर्मित जमाव था। इसकी मोटाई ¼" से 1'' थी। इस लेयर से लघुपाषाणोपरकण नहीं मिले थे। किन्तु इससे बन्द हुये (Sealed) एक 'Pit' से अवश्य प्राप्त हुए थे।पॉटरी पहले की ही भाँति थी। ऊपर की सतह से एक लोहे का वाणाग्र भी मिला था।

लेयर 2 तथा 1 से प्राप्त लघुपाषाणोपकरण विशेषतः ज्यामितिक आकार के थे किन्तु पहले की अपेक्षा अल्पक थे।

मोरहना पहाड़ के दोनों ही स्थलों पर उपकरणों का निर्माण क्वार्ट्ज, क्रिस्टल, चर्ट, चाल्सेडनी, अगेट, कार्नेलियन आदि पत्थरों पर किया गया है। किन्तु चाल्सेडनी तथा उस प्रकार के पत्थरों का उपयोग अधिक हुआ है।

Scanned with OKEN Scanner

## बघही खोर

### बघही खोर शिलाश्रय न0 1

बघही खोर शिलाश्रय, मोरहना पहाड़ के पूर्व में लगभग एक किलो मीटर की दूरी पर स्थित है। यहाँ पर शिलाश्रय नम्बर 1 में 12 x 6 फीट की एक खन्ती 1 फीट 10 इंच की अधिकतम गहराई तक खोदी गई थी, जिसके फलस्वरूप नीचे से ऊपर क्रमशः पाँच जमाव प्रकाश में आये। वे इस प्रकार थे :

**लेयर 4** की औसत मोटाई 3.5 इंच थी। यह पत्थर की चिप्पियों, राख तथा राख मिश्रित मिट्टी से निर्मित थी। इस जमाव से केवल अज्यामितिक प्रकार के लघुपाषाण उपकरण मिले थे, जिसमे ब्लेड–समानान्तर बाहु तथा भूथड़े पार्श्व–26, शर 23. 45%, अर्धचान्द्रिक 27.16%, तथा कोर 23.45% थे।

**लेयर 3** महीन बालुई मिट्टी से निर्मित था। इसकी औसत मोटाई 3 इंच थी तथा रंग गेरूआ मिश्रित पीला था। लेयर 2 से लेयर 3 तथा 4 को काटते हुए कब्र बनाने के लिए एक गड्ढा आधारशिला को काटकर बनाया गया था। इस लेयर से भी केवल अज्यामितिक प्रकार के लघुपाषाण उपकरण मिले थे, जिसमें समानान्तर बाहु ब्लेड 23.30%, भुथड़े पार्श्व ब्लेड 31.71%, अर्धचान्द्रिक 9.75%, शर 10.85%, तथा कोर 28.49% हैं।

इस लेयर से मृद्भाण्ड के टुकड़े भी प्राप्त हुए थे।

**लेयर 2A** की औसत मोटाई एक इंच थी। इसका निर्माण राख मिश्रित मिट्टी तथा पत्थर की चिप्पियों से हुआ था।

**लेयर 2,** लेयर 2A के ही समान थी अन्तर केवल इतना ही था कि यह पहले की अपेक्षा भुरभुरी थी। इस लेयर से ढका हुआ एक मानव–कंकाल मिला था।

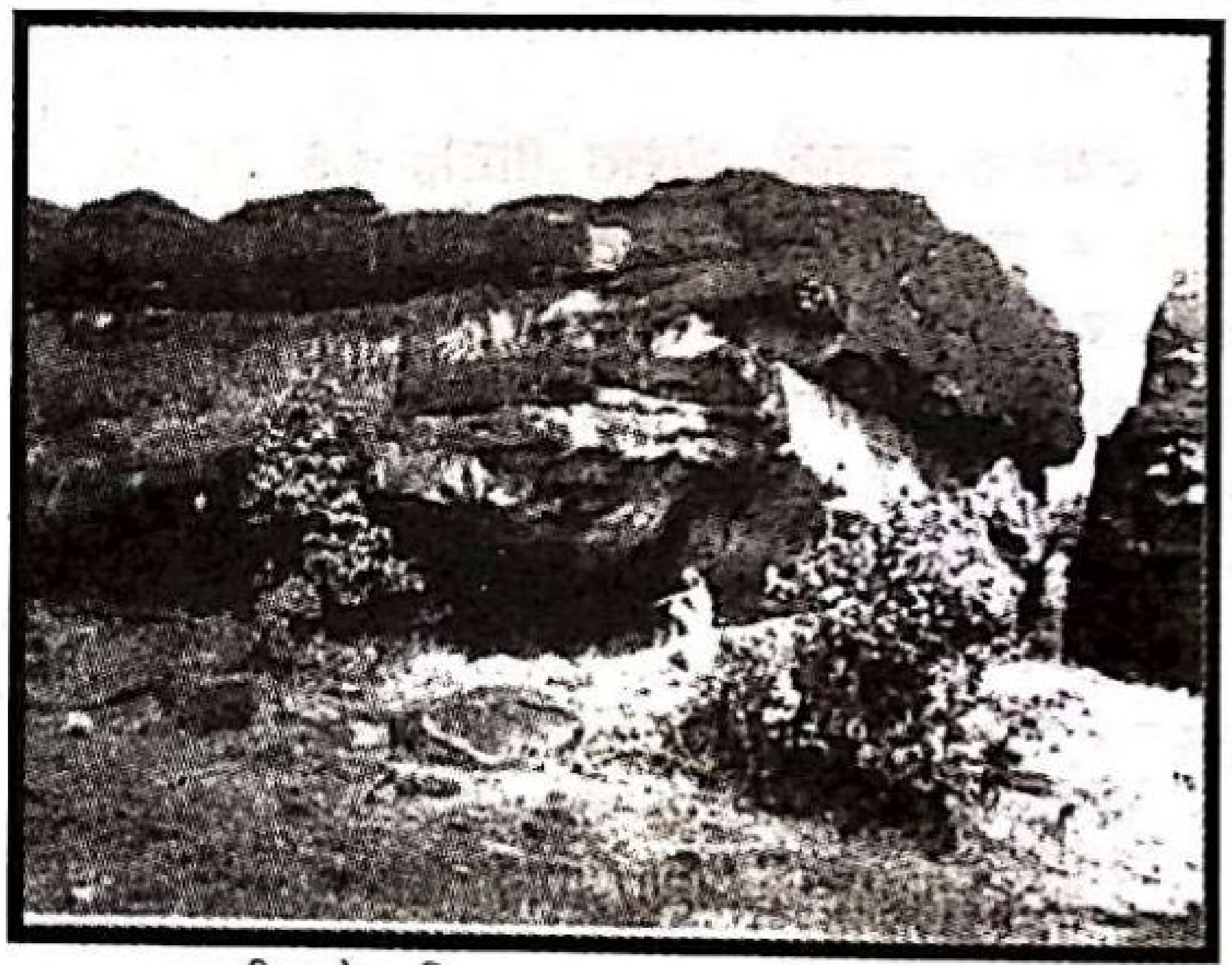

बघही खोर शिलाश्रय न0–1 चित्र सं0–88

लेयर 2A तथा 2 से बहुत अधिक संख्या में लघुपाषाण उपकरण मिले थें। उपकरण समुदाय में ब्लेड–समानान्तर बाहु तथा भुथड़े पार्श्व–54.77%, अर्धचान्द्रिक 14.40%, शर 14.55%, कोर 9.84%, त्रिभुज 3.28% तथा समलम्ब चतुभुर्ज .85% थे।

मृद्भाण्ड पूर्ववत ही थे, किन्तु अब वह सभी उपकरणें का 4% था।

**लेयर 1** की औसत मोटाई 1 इंच थी। यह नियमित सख्त गहरे रंग का जमाव था। इससे प्राप्त उपकरण समुदाय में ब्लेड–समानान्तर बाहु तथा भुथड़े पार्श्व–56.48%, अर्धचान्द्रिक 13.63%, शर 9.74%, त्रिाभुज .97%, समलम्ब चतुभुर्ज .64%, कोर तथा पुनरूज्जावन फलक 15.66% थे।

उपकरणों के निर्माण के लिए मुख्यतया चर्ट तथा उसी प्रकार के पत्थरों का प्रयोग किया गया था।इनके अतिरिक्त चाल्सेडनी, अगेट, कार्नेलियन आदि का भी उपयोग हुआ है।

Scanned with OKEN Scanner

## मृद्भाण्ड

लेयर 4 में मृद्भाण्ड नहीं थे। लेयर 3 से लघुपाषाणोपकरणों के साथ मृद्भाण्ड भी मिले थे जिन्हें अलंकरण के आधार पर दो वर्गों में विभाजित करते हैं :

प्रथम वर्ग के मृद्भाण्ड अलंकृत नहीं हैं तथा द्वितीय वर्ग के मृद्भाण्ड अलंकृत हैं।

लेयर 2, 2A तथा 1 की मृद्भाण्डों में कोई अन्तर नहीं है। लेयर 1 में उपर्युक्त मृद्भाण्ड के अतिरिक्त ऊपर के स्तर से चाक पर बने मृद्भाण्ड भी मिले थे।

ऊपर की सतह को खुरचते समय दो लोहे के वाणाग्र तथा लोहे का एक टुकड़ा भी मिला था।

## विस्तीर्ण मानव शवाधान (Extended Human Burial)

सतह से लगभग 12" पर लेयर 2 के नीचे एक विस्तीर्ण मानव शवाधान प्रकाश में आया था। शवाधान गर्त (Burial Pit) को लेयर 2A से लेयर, 3 तथा 4 में काटा गया था। गर्त को बनाने में आधार शिला को इस प्रकार से काटा गया था कि कंकाल का शिर तथा पैर का भाग अपेक्षाकृत ऊँचाई पर और शरीर नीचे स्तर पर था। कंकाल का शिर पश्चिम में और पैर पूर्व दिशा की ओर था। कंकाल के साथ बहुत अधिक संख्या में लघुपाषाणोपकरण मिले थे जिन्हें समाधि–सामग्री (Grave goods) के रूप में रखा गया था। पूरा कंकाल पत्थर की चिप्पियों से ढका हुआ था।

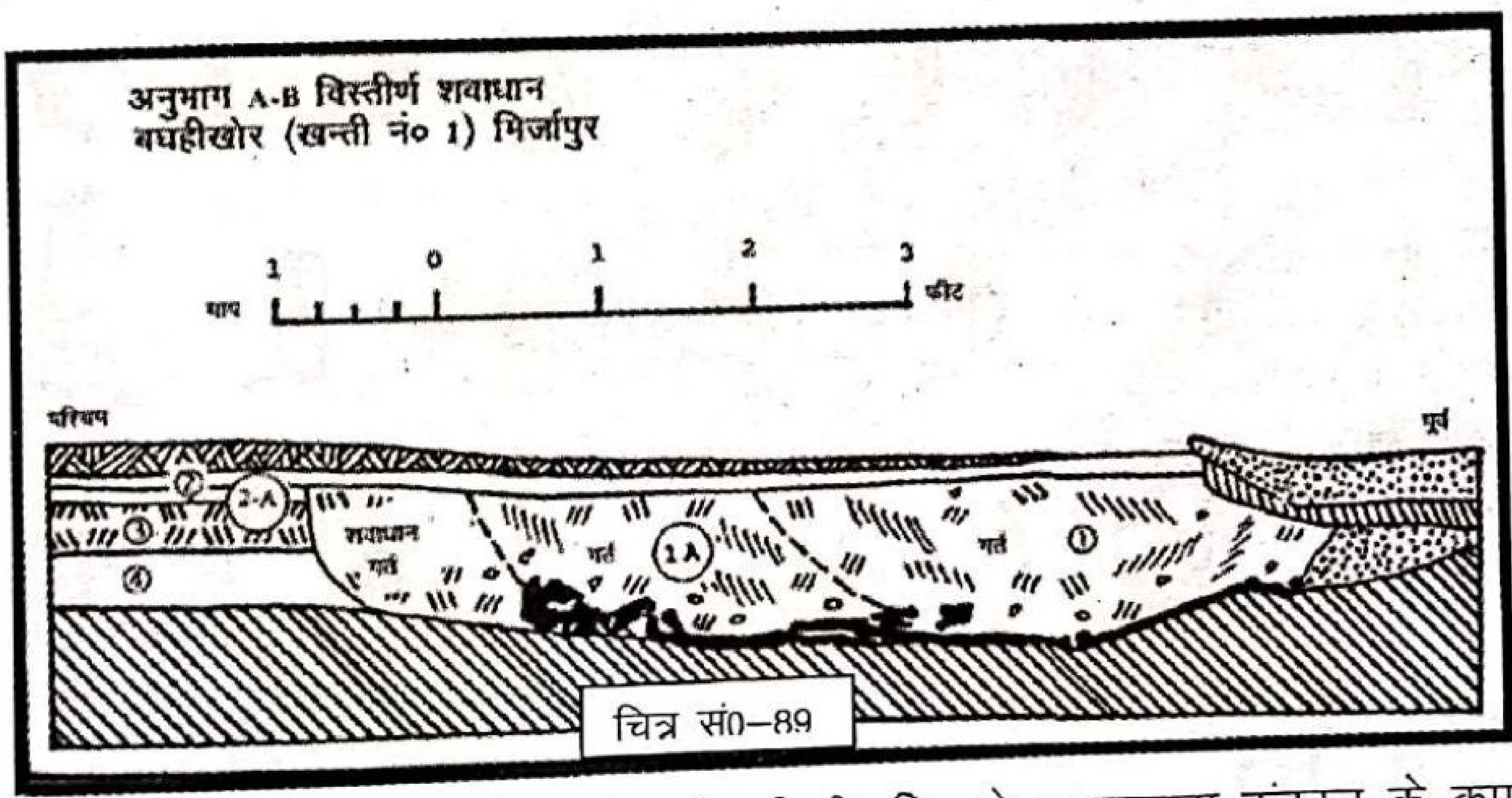


चित्र सं0–89

बाद के दो गर्तों ने शवाधान को क्षति पहुँचाई थी, जिसके फलस्वरूप कंकाल के कपाल तथा श्रोणीय क्षेत्र (Pelvic region) का भाग टूट गया था। पुरातत्व सर्वेक्षण के आर0एन0 गुप्त ने इस कंकाल का अध्ययन किया था। उनकी धारणा है कि यह 20 से 21 वर्ष की एक युवती का कंकाल था, जिसकी सम्भावित लम्बाई 152.68 से0 मी0 थी। इसके नीचे के भाग अधिक पुष्ट थे।

उपर्युक्त उत्खननों से निम्नलिखित तथ्य प्रकाश में आए :

1. प्रथम अवस्था में अज्यामितिक उपकरणों का विकास हुआ जो मृद्भाण्ड से सम्बन्धित नहीं थे। उपकरणों के निर्माण में चर्ट तथा फ्लिण्ट के पत्थरों का प्रयोग बहुलता से हुआ था।
2. दूसरी अवस्था में ज्यामितिक उपकरणों का विकास होता है, किन्तु उनकी संख्या सीमित

है। मृद्भाण्डों का प्रचलन अभी भी नहीं होता।

3. तीसरी अवस्था में हस्तनिर्मित मृद्भाण्ड का प्रयोग होने लगता है।
4. चौथी अवस्था में उपकरणों का आकार पहले से अधिक छोटा हो जाता है।

## लेखहिया

## लेखहिया उत्खनन

लेखहिया शिलाश्रय भैंसोर ग्राम के पूर्व में लगभग तीन किलो मीटर की दूरी पर स्थित है। यहाँ पर अगले वर्ष मोरहना पहाड़ तथा बघहीखोर उत्खननों के परिणामों की पुष्टि के लिए शिलाश्रयों के निकट तथा शिलाश्रय न0 1 तथा 2 का उत्खनन किया गया।

## शिलाश्रय के बाहर का उत्खनन

लेखहिया शिलाश्रय न0 1 के दक्षिण दो खन्तियों का उत्खनन तीन फीट की अधिकतम गहराई तक किया गया। प्रत्येक खन्ती 20 फीट लम्बी तथा 10 फीट चौड़ी थी। उत्खनन के फलस्वरूप जो जमाव प्रकाश में आये उन्हें रंग तथा संरचना के आधार पर नौ लेयरों में विभाजित किया गया है। ये जमाव विगलित आधर शिला के ऊपर थे। आधारशिला का अपने स्थान पर (in-situ) विगलन,

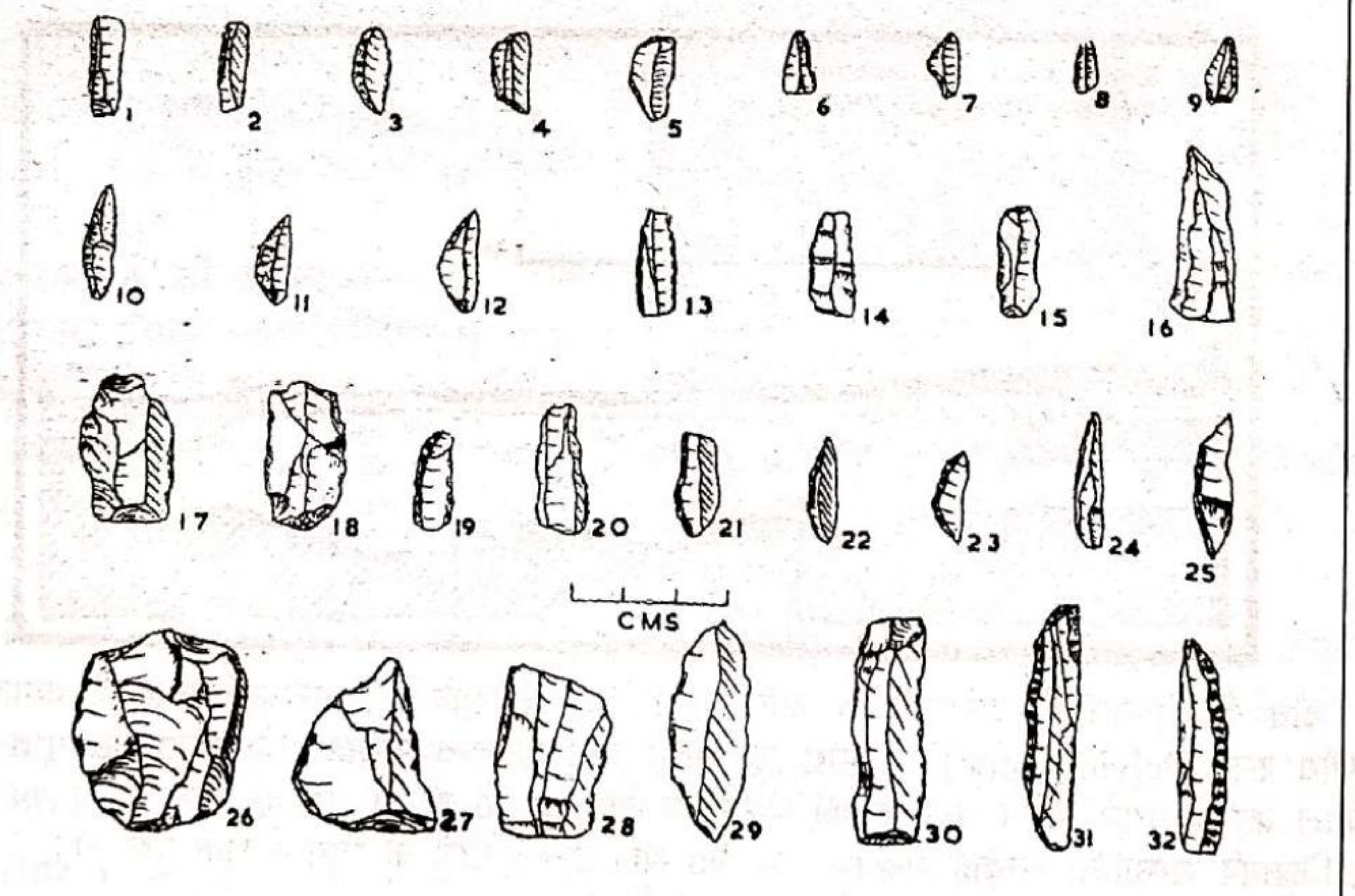


लेखहिया उत्खनन एपीपेलियोलिथिक उपकरण चित्र सं0–90

जमाव में घर्षित प्रस्तर–पिण्डों तथा लैटेराइट के छर्रों का आधिक्य इस बात की ओर निर्देश करता है कि लेयर 9 तथा 8 की संरचना तीव्र जलवायु–गर्म से आर्द्र––के उतार–चढ़ाव के फलस्वरूप हुआ था।

लेयर 7 तथा 6 की संरचना के आधार पर कहा जा सकता है कि जिस समय इनका निर्माण हुआ था उस समय जलवायु पहले की अपेक्षा कम तीव्र थी।

लेयर 5 की संरचना पूर्ववर्ती लेयर 9 से 6 तथा परवर्ती लेयर 4 से 1 के संक्रान्ति काल का निर्देश करता है।

लेयर 4 से लेयर 1 का जमाव बढ़ती हुई शुष्कता के फलस्वरूप हुआ था।

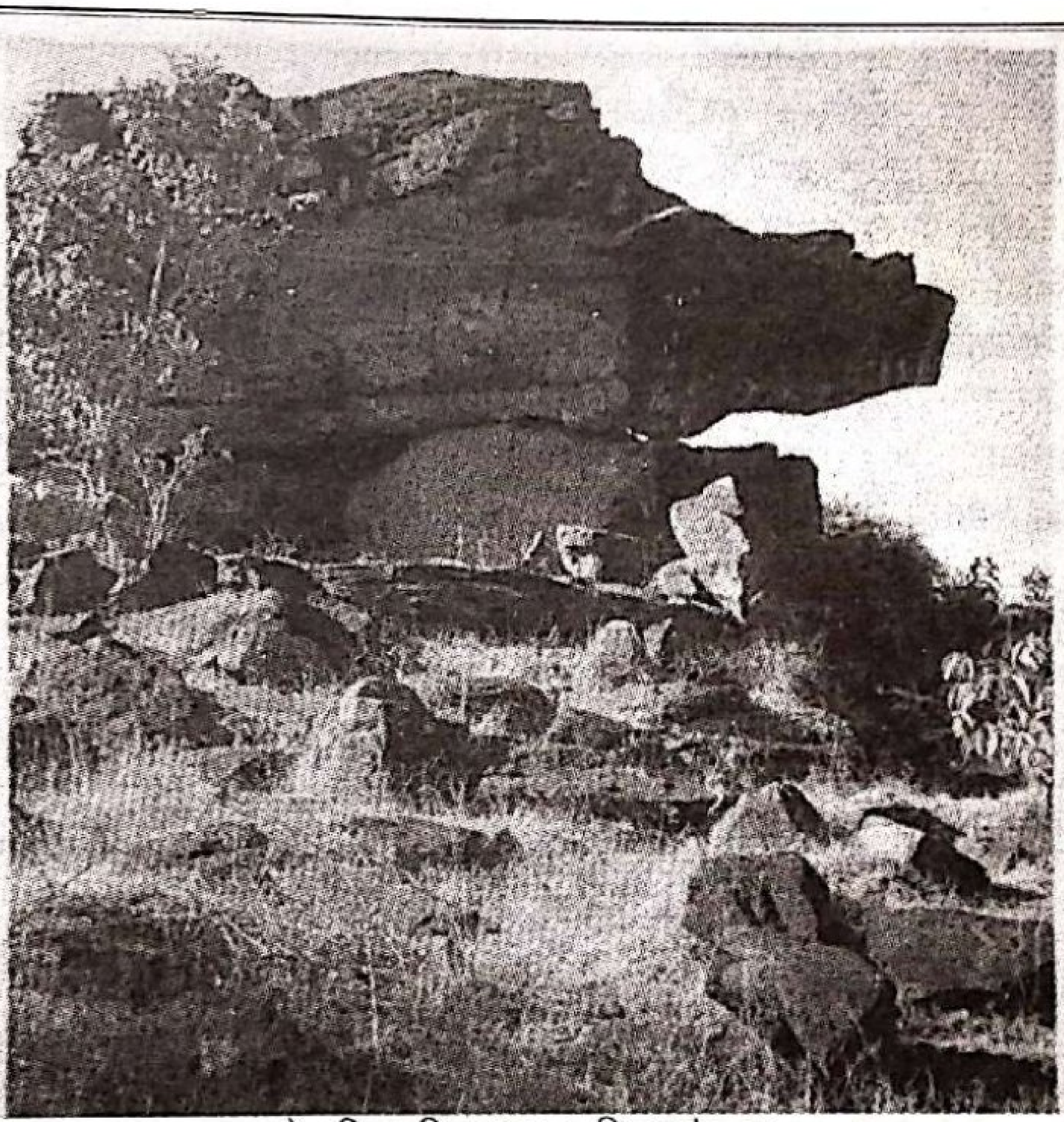

लेखहिया शिलाश्रय 1 चित्र सं0–91

उपर्युक्त विभिन्न जमावों से प्राप्त पुरातात्विक सामग्री मोरहना पहाड़ तथा बघहीखोर की सामग्री के ही समान थी। लेयर 8 तथा 7 से अज्यामितिक प्रकार के उपकरण प्राप्त हुए थे। उपकरण समुदाय में समानान्तर बाहु ब्लेड, भुथड़े ब्लेड, शर, अर्ध चान्द्रिक, स्क्रेपर तथा कोर थे। इनके अतिरिक्त काफी संख्या में अवशिष्ट फलक भी प्राप्त हुए थे।

लेयर 6 तथा 5 में उपर्युक्त उपकरणों के अतिरिक्त त्रिभुज भी मिले थे। समलम्ब चतुर्भुज नहीं मिले और पॉटरी का भी नितान्त अभाव था। इसका तात्पर्य है कि ज्यामितिक आकारों में त्रिभुज का प्रयोग समलम्ब चतुर्भुज के पहले होता है तथा पॉटरी का प्रयोग ज्यामितिक आकारों के प्रयोग के बाद आरम्भ होता है।

लेयर 4 से 1 में ज्यामितिक तथा अज्यामितिक दोनों ही प्रकार के उपकरण मिले थे। लेखहिया की अन्य खन्तियों से भी इसी प्रकार की सामग्री उपलब्ध हुई थी। एक खन्ती (LKH-II-B) में सबसे नीचे की स्तर से अपेक्षाकृत लम्बे तथा चौड़े ब्लेड मिले थे जो उच्च पूर्वपाषाणिक परम्परा के ब्लेडों के सन्निकट हैं।

## लेखहिया शिलाश्रय 1 का उत्खनन

लेखहिया शिलाश्रय 1 में 17 × 8 फीट की एक खन्ती का उत्खनन 1 फीट 5 इंच की अधिकतम गहराई तक किया गया था। इस खन्ती के उत्खनन के फलस्वरूप 17 कंकाल प्रकाश में आए। इनमें से प्रत्येक विस्तीर्ण शवाधान थे। इनके साथ बहुत अधिक संख्या में लघुपाषाणोपकरण प्राप्त हुए थे। स्तरीकरण के आधार पर चौदह कंकालों को आठ काल खण्डों में विभाजित किया गया है :

लेखहिया शवाधान चित्र सं0–92

सभी कंकालों का, कंकाल नं0 II तथा XII को छोड़कर, शिर पश्चिम की ओर तथा पैर पूर्व की ओर था। कंकाल नं0 II का शिर दक्षिण तथा XII का उत्तर की ओर था। कंकालों के अस्थि परीक्षण के उपरांत ही ज्ञात हुआ कि उनमें से दस (10) कंकाल पुरूष के तथा तीन (3) कंकाल स्त्री के थे। यहाँ के कंकालों के अस्थि अवशेषों का अस्थि परीक्षण लूकास (J.R.Luckas) ने किया था। उनकी धारणा है कि चौदह कंकालों के अतिरिक्त और भी कंकाल थे जिनकी आंशिक अस्थियाँ मिली थी। आंशिक अस्थियों के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि यहाँ पर कम से कम 27 मानव शवाधान रहे होगें।

कंकालों के साथ कुछ पशुओं की हाड्डियाँ जैसे हिरन के सींग तथा एक घोघा तथा भैंस की पसली भी मिली हैं। लघुपाषाणोपकरणों के साथ गेरू तथा घिसे हुए लैटेराइट की छर्रियाँ भी मिली थी जिनका उपयोग सम्भवतः रंग बनाने क लिए किया गया होगा।

कंकालों से सम्बन्धित अज्यामितिक तथा ज्यामितिक उपकरणों की स्थिति निम्न थी :

| काल | कंकाल | अज्यामितिक उपकरण | ज्यामितिक उपकरण |
|---|---|---|---|
| I | II | 56% | 44% |
| II | III | 57% | 43% |
| III | IV | 73% | 27% |
| IV | V | 75% | 25% |
| V | V,VIII, IX, XI | 79% | 21% |
| VI | XIII, XV | 90% | 10% |
| VII | XVI | 81% | 18.18% |
| XIII | XVII | 99% | 1% |

लेखहिया से दो कार्बन तिथियाँ उपलब्ध थी जो क्रमशः निम्न हैं :

TF 419—2410±115 ईसा पूर्व

TF 417—1710±910 ईसा पूर्व

इनके अतिरिक्त दो कार्बन तिथियाँ और हाल में उपलब्ध हुई हैं :

GX-20983-AMS—8,370 ± 75

GX-20984-AMS—8,000 ± 75

# गंगा घाटी के मध्य–पाषाणिक पुरास्थल

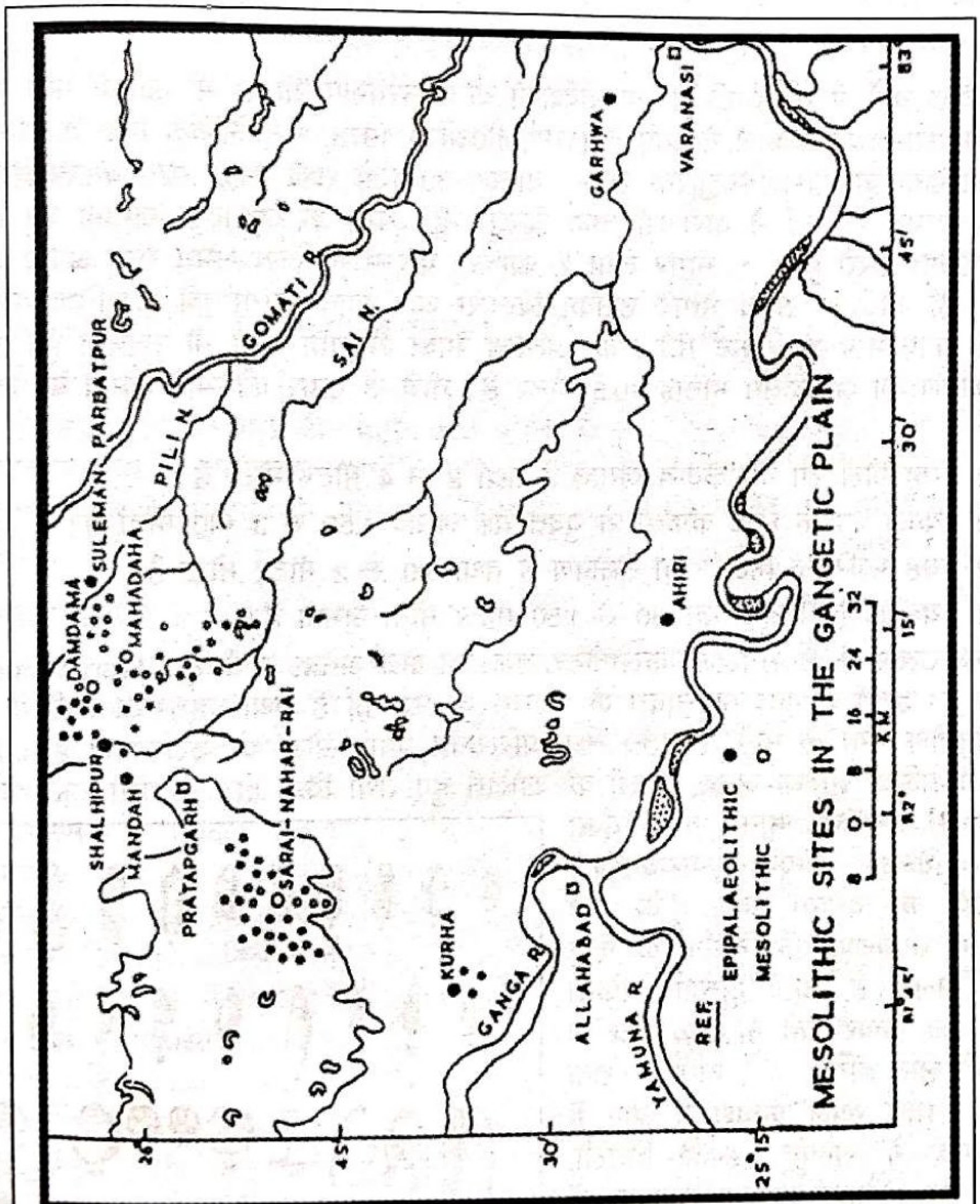

# 42

# गंगा घाटी की मध्य पाषाणिक संस्कृति

## गंगा घाटी

पिछले कुछ वर्षों में गंगाघाटी में हुए सर्वेक्षणों के फलस्वरूप सौ से भी अधिक मध्य पाषाणिक उद्योग एवं आवास–स्थल प्रकाश में आए हैं (शर्मा,जी0आर0 1973, मेसोलिथिक लेक कल्चर्स इन दि गंगा वैली, इण्डिया प्रो0 प्री0 हिस्टारिक सो0––वाल्यू0 39)। ये सभी स्थल गंगा के उत्तरी तट पर पश्चिम में प्रतापगढ़ से, पूर्व में वाराणसी तक विस्तृत है। गंगा के जलोढ़क जमावों को दो स्पष्ट भागों में विभाजित करते हैं – 1. भांगर तथा 2. खादर। प्रारम्भ में जिस समय गंगा अपनी घाटी का निर्माण कर रही थी उस समय भांगर उसका किनारा था। खादर गंगा की आधुनिक वेदिका है। इलाहाबाद में फाफामऊ के निकट भांगर का अत्यन्त स्पष्ट अनुभाग अभी भी सुरक्षित है। (रेखाचित्र ) सम्पूर्ण निक्षेपण की अधिकतम मोटाई 10.5 मीटर है। नीचे से ऊपर की ओर जमाव का क्रम निम्न हैं :

लेयर 4 : यह पीले रंग का कंकड़ जमाव है तथा 2 से 4 मीटर मोटा है।

लेयर 3 : काले रंग के छोटें कंकड़ों से युक्त यह जमाव 1.50 से 3 मी0 मोटा है।

लेयर 2 : यह प्लैस्टिक मिट्टी का निक्षेपण है तथा .90 से 2 मीटर मोटा है।

लेयर 1 : यह बालुई मिट्टी का .30 से 1.50 मीटर मोटा जमाव है।

भांगर के उत्तर में लगभग 55 किलोमीटर तक का क्षेत्र अनेक हॉर्स शू ( Horse shoe) झीलों से भरा हुआ है। इनमें से कुछ अवसादन के फलस्वरूप भर गई हैं तथा बहुत–सी अभी भी वर्तमान है। इनका निर्माण गंगा के मार्ग परिवर्तन तथा परित्यक्त प्रवाह मोड़ों के फलस्वरूप हुआ है। मध्य पाषाणकाल में अधिक सुविधा जनक स्थलों को खोजते हुए तथा विंध्य क्षेत्र से गंगा घाटों में संचरण करते हुए मध्य पाषाणिक मानव ने उपर्युक्त झीलों के किनारे अपने अल्पकालिक आवास–स्थलों को बनाया था। चूँकि इस सम्पूर्ण क्षेत्र में उपकरणों के निर्माण के लिए पत्थर नहीं मिलते हैं, अतः अनुमान किया जता है कि इन पत्थरों को वे विंध्य क्षेत्र से अपने साथ ही लाते होंगें। अभी तक गंगाघाटी में जितने स्थल प्रकाश में आए हैं उनमें प्रतापगढ़ में राजपुर, हड़ही–भिटुली, पतुपुर तथा सराय नहर राय, इलाहाबाद में कूढ़ा, बिछिया, भीखमपुर, महरूडीह, वाराणसी में गढ़वा विशेष उल्लेखनीय हैं। उपर्युक्त स्थल मध्य पाषाणकालीन संस्कृति की प्रथम दो अवस्थाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं :

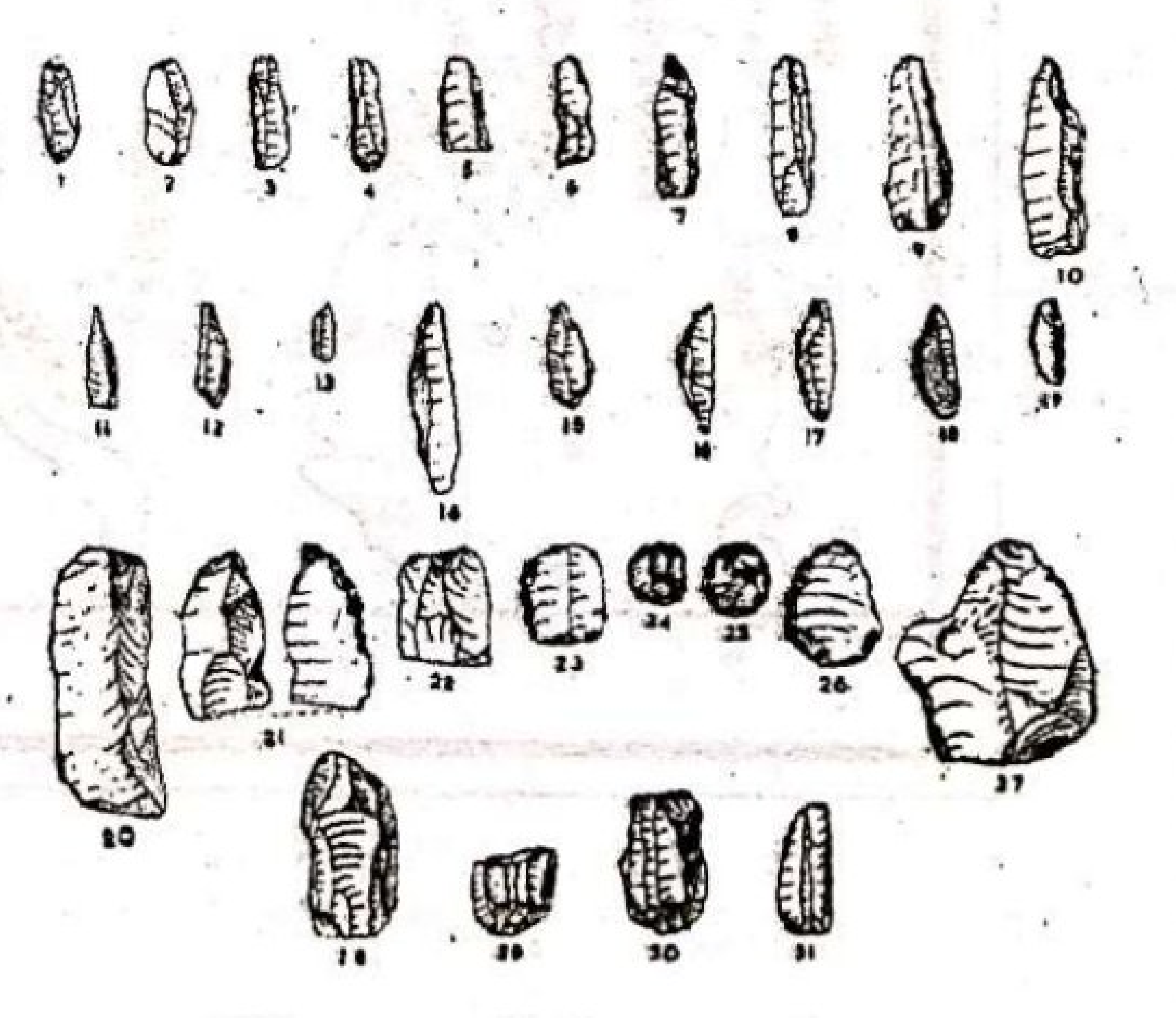

अज्यामितिक प्राक् पॉटरी अवस्था चित्र स0–94

## 1. अज्यामितिक प्राक् पॉटरी अवस्था

इस अवस्था के उपकरण गढ़वा, कूढ़ा, भीखमपुर, महरूडीह, हड़ही–मिटुली तथा पतुपुर से प्राप्त हुई हैं। उपकरण समुदाय में अपेक्षाकृत मोटे, चौडे ब्लेड गढ़ित अथवा अनगढ़ित, बड़े आकार के अर्धचान्द्रिक, स्क्रेपर, भूथड़े पार्श्व ब्लेड, पतले तथा सकरे ब्लेड, शर आदि हैं। अधिकांश उपकरण रासायनिक रंगाई से युक्त तथा चर्ट के बने हैं।

## 2 ज्यामितिक प्राक् पॉटरी अवस्था

इस अवस्था के उपकरण सराह नहर राय तथा बिछिया से उपलब्ध हुए हैं। उपकरण अत्यन्त अल्पक, भली भाँति गढ़ित तथा नियमित आकार के हैं। उपकरण समुदाय में शर, स0–94

कार्नेलियन आदि से बने हैं। यहाँ उल्लेखनीय है कि सरायनहर राय में समलम्ब चतुर्भुज नहीं हैं। यह ज्यामितिक उपकरणों के विकास के प्रथम अवस्था के द्योतक है।

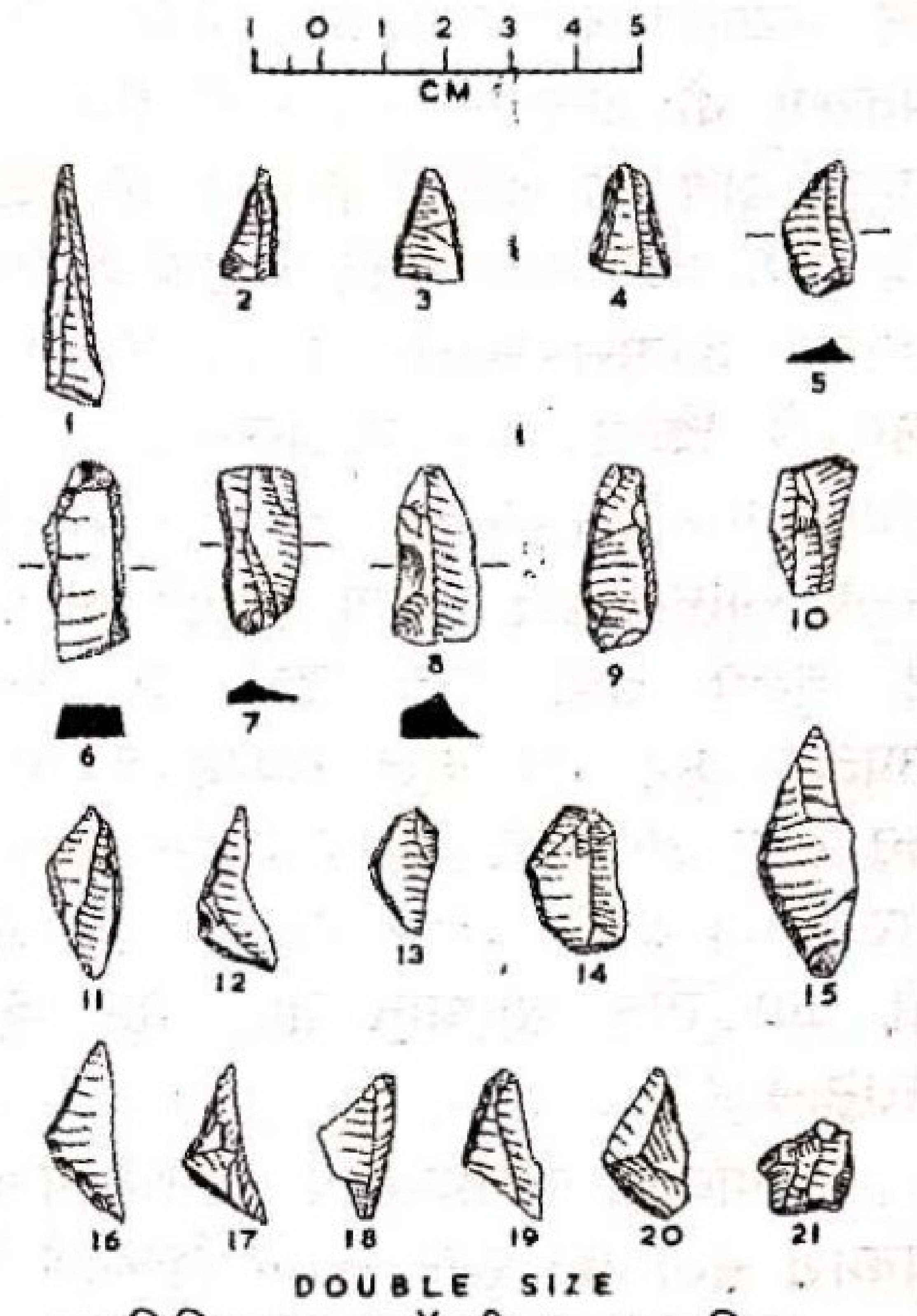

ज्यामितिक प्राक् पॉटरी अवस्था चित्र स0–95

## सराय नहर राय

गंगाघाटी के सभी स्थलों में सराय नहर सबसे महत्वपूर्ण है। यहाँ पर डॉ0 राधाकान्त वर्मा, विद्याधर मिश्र तथा धनेश मण्डल ने उत्खनन किया था।यह प्रतापगढ़ से दक्षिण दिशा में 15 किलोमीटर की दूरी पर मान्धाता के निकट स्थित है। यहाँ पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय के डॉ0 राधाकान्त वर्मा तथा विद्याधर मिश्र ने 1971–72 तथा 72–73 में उत्खनन किया था (शर्मा, जी0आर0 1973, पार्श्वोद्धरित, पृ0 134–146, ; 1975, पार्श्वोद्धरित, पृ0 15–20)।

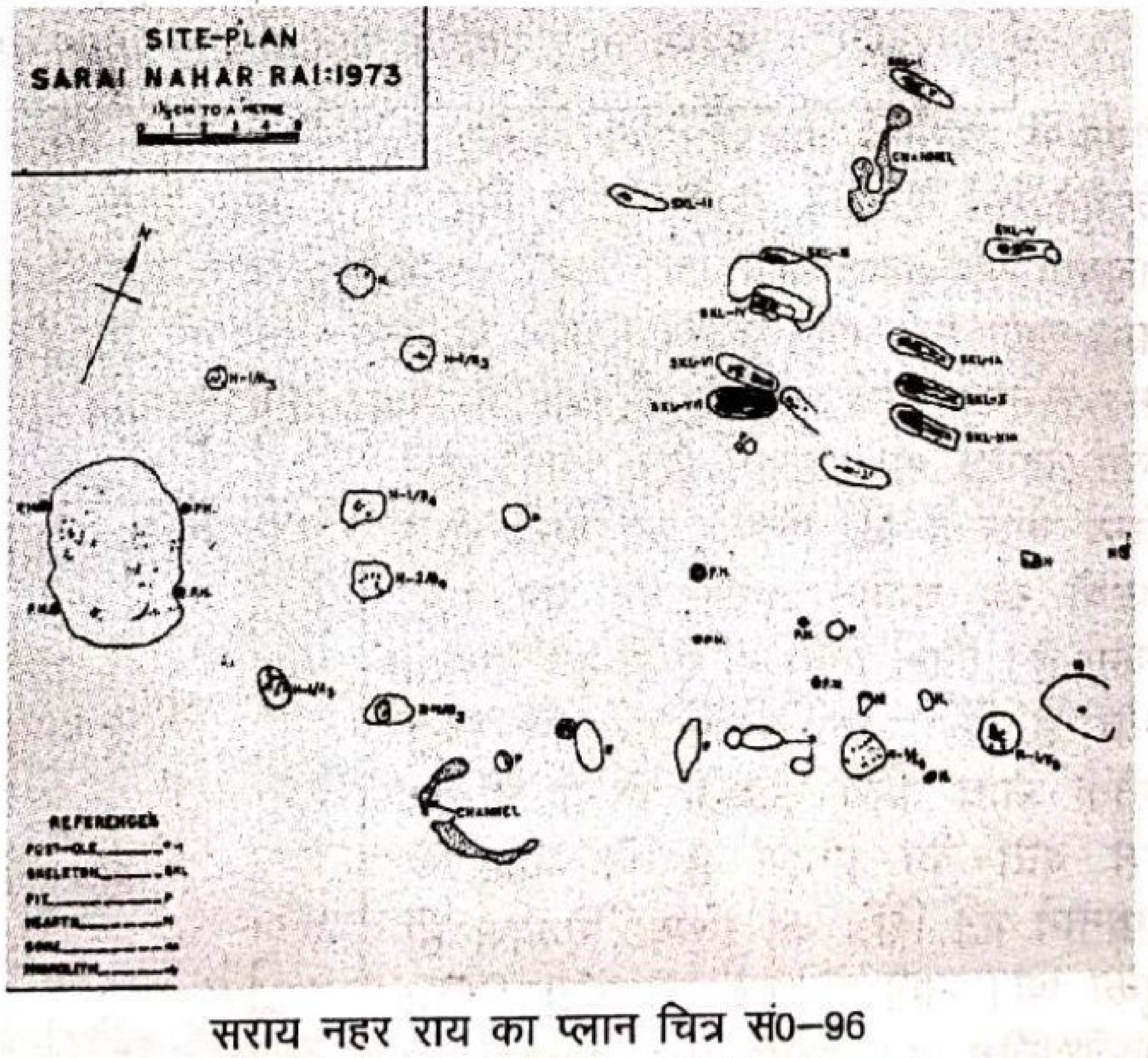

सराय नहर राय का प्लान चित्र सं0–96

सराय नहर राय का मध्य पाषाणिक स्थल 1,800 वर्ग मीटर के क्षेत्र में विस्तृत है। इस सम्पूर्ण क्षेत्र में लघुपाषाणिक उपकरण बिखरे हुए पाये गए थे। इस स्थल

को ज्यामितिक (त्रिभुज) प्राक् पॉटरी अवस्था के अन्तर्गत रखते हैं (चित्र )। सम्पूर्ण क्षेत्र की सफाई के बाद ज्ञात हुआ कि मध्य पाषाणिक मानव ने इस क्षेत्र का उपयोग आवास–स्थल एवं शव–स्थान के रूप में किया था। उल्लेखनीय है कि शव–स्थान इस क्षेत्र के उत्तरी–पूर्वी भाग में ही सीमित था। दक्षिण – पश्चिमी भाग में चूल्हों तथा एक फर्श के प्रमाण उपलब्ध हुए थे। कुल ग्यारह शवाधानों का तथा आठ चूल्हों का उत्खनन किया गया था। यद्यपि स्थल पर अभी भी कम से कम तीन शवाधान तथा चार चूल्हे वर्तमान हैं।

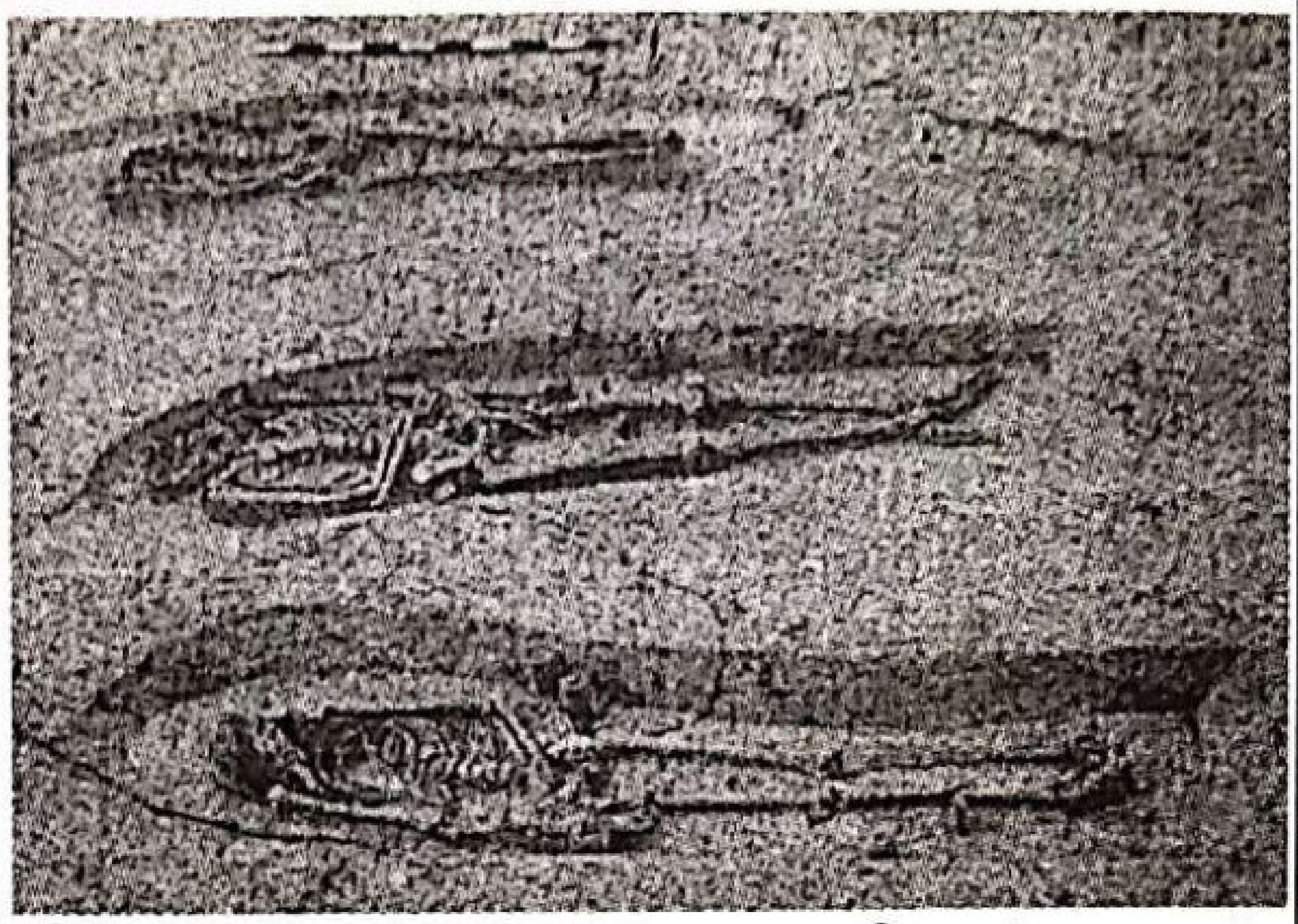

सराय नहर राय के शवाधान प्लान चित्र सं0–97

शवाधानों के उत्खनन से मध्य पाषाणिक मानव प्रकार तथा उसके कर्मकाण्ड एवं मान्यताओं पर प्रकाश पड़ा है। सभी मृतक विस्तीर्ण स्थिति में, छिछले, लम्बायत–अण्डाकार गर्तों में पश्चिम–पूर्व

सराय नहर राय के शवाधान – क्रास अनुभाग चित्र सं. 98

दिशा में दफनाये गये थे (चित्र )। कपाल सभी कब्रों में पश्चिम की ओर था। शवों को कब्र में रखने के पूर्व गर्त में 3–4 से0मी0 मोटी मिट्टी की लेयर गद्दे के रूप में बिछाई जाती थी (रेखाचित्र )। लघुपाषाणोपकरण तथा एक प्रकार के शेल (घोंघा) मृतकों के साथ मिले हैं। इन्हें सम्भवतः उनके साथ रखा गया था। कब्र को भरने के लिए चूल्हे की मिट्टी, राख आदि का भी प्रयोग किया जाता था। लगभग सभी मृतकों को कब्र में रखते समय उनका एक हाथ पेट के ऊपर शरीर के आरपार रखा जाता था। इसमें यह ध्यान देने योग्य बात है कि स्त्रियों का बायाँ तथा पुरूषों का दाहिना हाथ पेट पर रखा मिला है। जिस विधि से कब्रों को बनाया गया है, शवों को रखा गया है तथा उनके साथ अन्य सामग्री मिली है वह इस बात का प्रमाण है कि कब्र में दफनाने की विधि का यथेष्ट विकास हो चुका था। सभी में कब्र नं0 VII विशेष उल्लेखनीय है। इसमें चार कंकाल दो

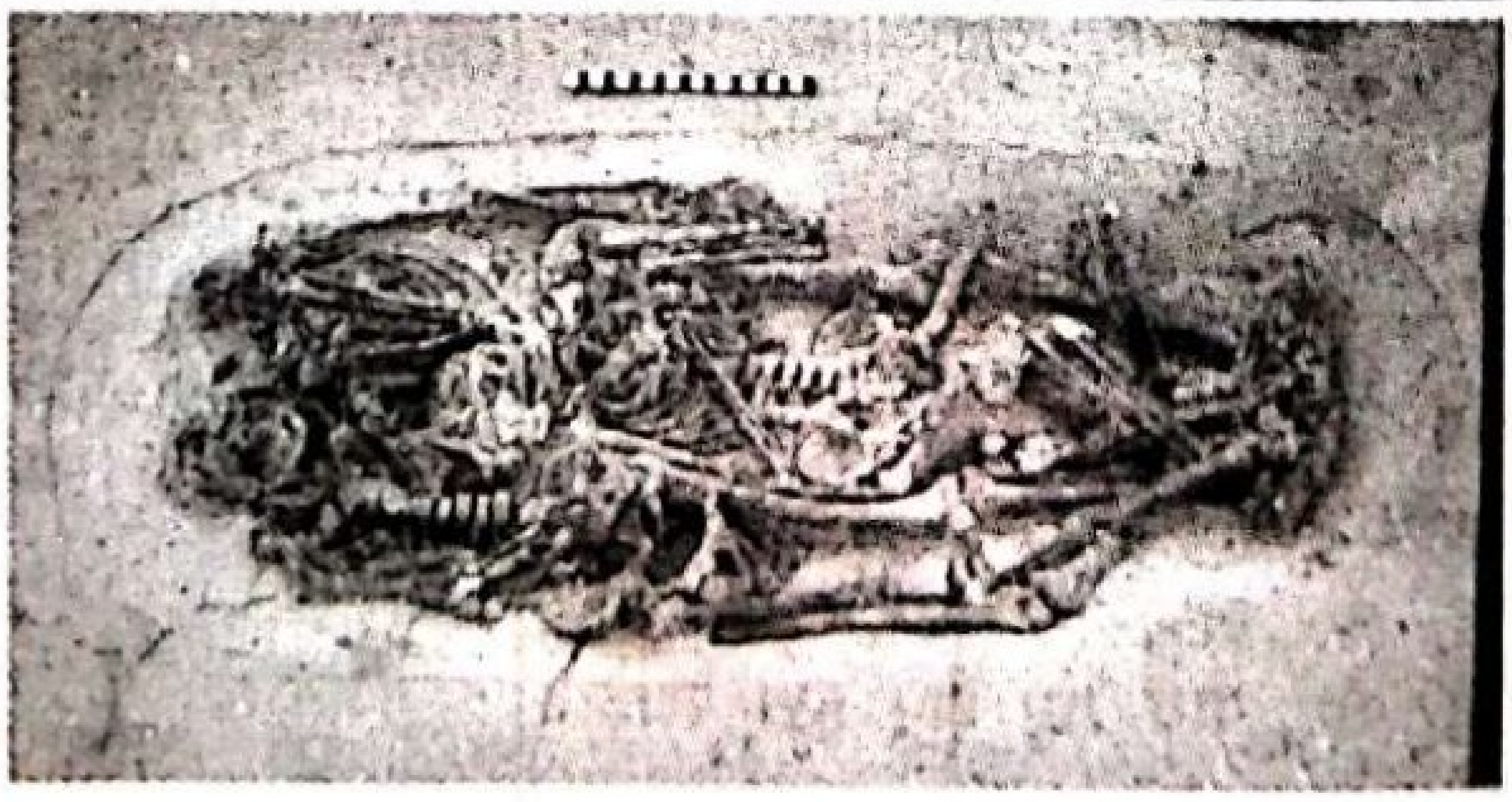

दो स्तरों में चार स्त्री पुरूष सयुक्त कंकाल चित्र सं0–99

स्तरों में रखे हुए मिले हैं। प्रत्येक स्तर में एक स्त्री तथा पुरूष हैं स्त्री दोनों ही अवस्थाओं में बायें ओर है। क्या ये पति–पत्नी थे? अभी कुछ भी कहना कठिन है।

लगभग सभी मृतकों की अवस्था 16 से 30 वर्षों के अन्तर्गत थी। पुरूषों की अनुमानित लम्बाई 1.80 मीटर तथा स्त्रियों की उससे थोड़ा कम थी। उत्खनित शवों में पाँच स्त्रियाँ तथा पाँच पुरूष हैं।

चूल्हों से जानवरों की जली तथा अधजली बहुत सी हड्डियाँ मिली हैं। निश्चय ही उनका उपयोग भोज्य सामग्री के रूप में हुआ होगा। ये लोग गाय, भैंस, भेड़, बकरी, हाथी, कछुआ, मछली आदि से परिचित थे। डॉ0 आलूर जिन्होंने यहाँ के जन्तुवर्ग का अध्ययन किया है उनकी धारणा है कि सभी पशु जंगली थे तथा पशुपालन का प्रारम्भ नहीं हुआ था।

शवाधानों के अतिरिक्त एक सार्वजनिक चूल्हा जो कालान्तर में गोलाकार फर्श से ढक गया था तथा आठ अन्य चूल्हों का भी उत्खनन किया गया था। चूल्हे गोलाकार, अण्डाकार अथवा अनियमित आकारों के हैं। उनका मुँह चौड़ा तथा पेदी अपेक्षाकृत कम चौड़ी है। ऊपर का माप (Dimension) 1.49 मीटर से 0.72 मीटर है तथा पेंदी 1.02 मीटर से 0.45 मीटर है। ये 0.25 मीटर से 0.10 मीटर गहरें हैं। इन्हें खोदने के लिए सींग अथवा कड़ी लकड़ी का प्रयोग किया जाता था। दो चूल्हों को दो बार प्रयोग करने के प्रमाण मिले हैं। सार्वजनिक चूल्हें को भी दो बार प्रयोग में लाने के प्रमाण मिले हैं।

## लघु पाषाण उपकरणों का युद्ध में प्रयोग करने के प्रमाण

यह उल्लेखनीय है कि यहाँ कुछ उपकरणों का उपयोग वाणाग्र के रूप में युद्ध के दौरान किया गया था। X नं0 कंकाल की पसली की हड्डी को बेधता हुआ एक शर in-situ मिला था। इसके अतिरिक्त कुछ और भी उपकरण ऐसी स्थिति में मिले थे जिनसे अनुमान किया जाता है कि वे तीर में लगाकर प्रयोग में लाए गए होगें।

## सामाजिक जीवन

सराय नहर राय के उत्खनन से मध्य पाषाणिक मानव के सामाजिक जीवन पर भी प्रकाश पड़ता है। सम्भवतः ये छोटे–छोटे समुदायों में बंटकर संचरण करते थे अथवा इनके भिन्न वर्ग ही थे। जिस तरह स्त्री और पुरूषों के शव एक विधि से रखे हुए मिले हैं उससे अनुमान किया जाता है कि किसी प्रकार की सामाजिक व्यवस्था का प्रारम्भ होने लगा था। स्त्री तथा पुरुष के युग्मित शवाधानों से भी यही संकेत मिलता है। संचरण करते समय अथवा युद्ध के बीच सामाजिक संगठन नितान्त आवश्यक होता है, अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि उस समय 'अगुआ' की भावना का भी प्रारम्भ हो गया होगा।

## C-14 तिथि

सराय नहर राय से एक कार्बन तिथि 10,345 ± 110 B.P. उपलब्ध है। चूंकि यह तिथि मानव कंकाल के एक हड्डी से प्राप्त हुई है, अतः सम्भव है कि यह थोड़ी अधिक हो।

Scanned with OKEN Scanner

## महदहा (Mahadaha)

यह पुरास्थल पट्टी तहसील मुख्यालय से 5 कि0मी0 उत्तर तथा प्रतापगढ़ से 31 कि0मी0 उत्तरपूर्व में प्राचीन गोखुर झील के पश्चिमी तट पर महदहा गाँव के पूर्व में स्थित है। यह पुरास्थल लगभग 8,000 वर्ग मी0 क्षेत्र में फैला हुआ था, जिसे जौनपुर लघुनहर काटती हुई निकली है। नहर की खुदायी के फलस्वरूप ही यह पुरास्थल सर्वप्रथम प्रकाश में आया था। यहाँ पर 1978 तथा 1979 में प्रो0 शर्मा के निर्देशन में वी0डी0 मिश्र तथा जे0 एन0 पाल ने उत्खनन/ बचाव कार्य किया था।

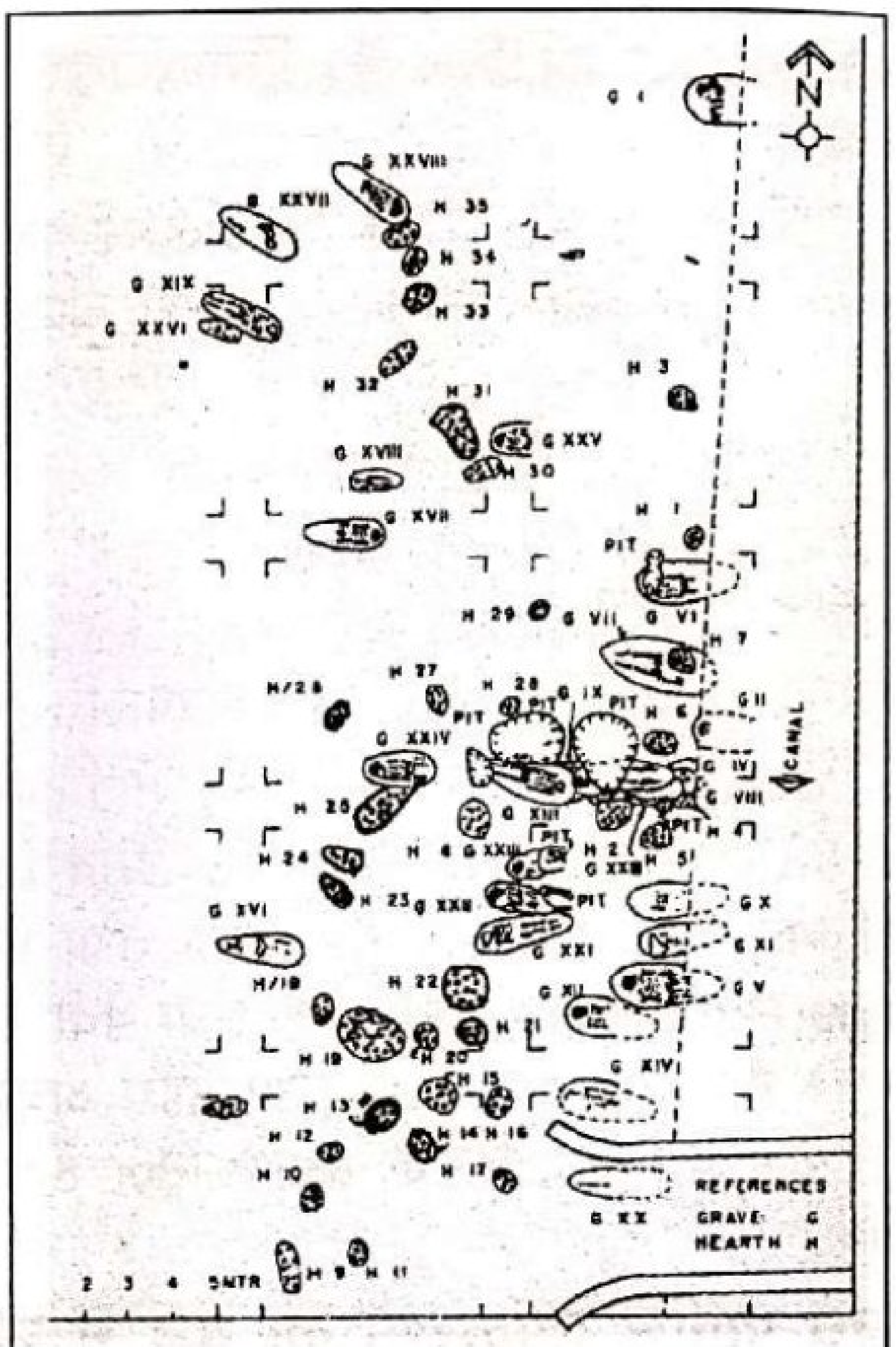

महदहा का प्लान चित्र सं0–100

यहाँ पर चार स्थलों पर उत्खनन किया गया है : प्रथम–स्थल में 216 वर्ग मी0 के क्षेत्रा में क्षैतिज उत्खनन हुआ। यह नहर के पश्चिम में स्थित है। दूसरा स्थल भी नहर के पश्चिम में है। यहाँ पर मात्रा 34$^n$56 वर्गमी0 में उत्खनन किया गया। तीसरा स्थल नहर के पूर्व में प्रथम स्थल के समाने स्थित है। चतुर्थ स्थल पुरानी झील के दक्षिण–पश्चिमी कोने में स्थित है। यहाँ पर अनुक्रम को जानने के लिए उत्खनन किया गया था।

इनमें से प्रथम तीन को क्रमशः (1) कब्रगाह एवं आवास स्थल; (2) बूचड़ स्थल (3) झील क्षेत्रा कहा गया है।

### कब्रगाह एवं आवास–स्थल

आवास–स्थल पुरास्थल के केन्द्र में था तथा बूचड़खान आवास के पूर्व में। आवास–स्थल तथा कब्रगाह सन्निकट मिलते हैं। चूल्हे आवास क्षेत्र में जगह–जगह चिन्हित किए गए हैं।

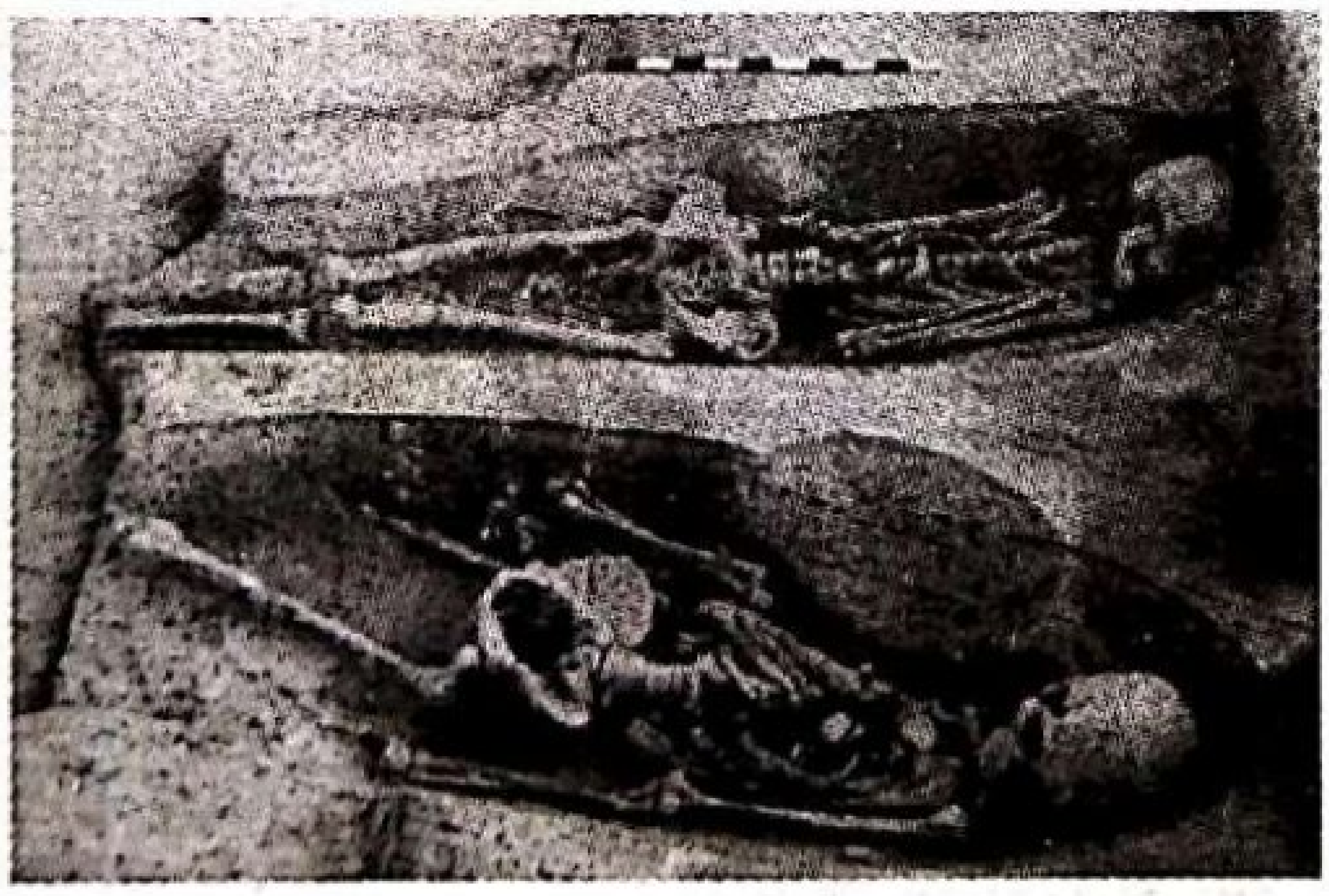
महदहा के दो विस्तीर्ण शवाधान चित्र सं0–102

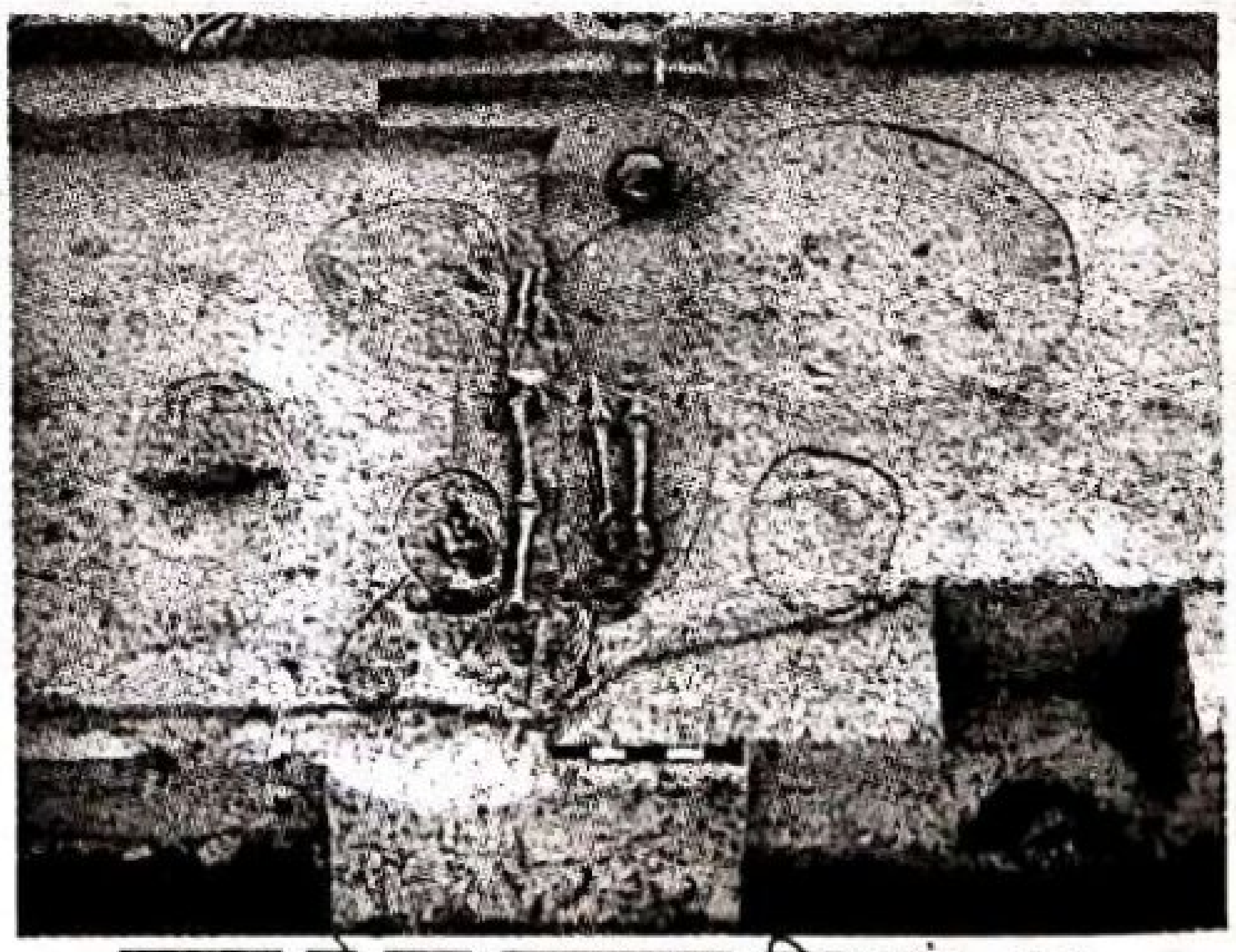
महदहा के चार कालखण्ड चित्र सं0–101

उत्खनन से 60 से0मी0 आवासीय जमाव प्रकाश में आया जिन्हें चार लेयरों में विभाजित किया गया है। चारों लेयरों में जली हुई हड्डियाँ तथा लघुपाषाण उपकरणों के अवशेष मिले हैं। उत्खनित

Scanned with OKEN Scanner

युग्मित शवाधान चित्र सं0–103

कब्रगाहों के अध्यारोपण के आधार पर उन्हें भी चार कालखण्डों में विभाजित किया गया है।

यहाँ के उत्खनन के फलस्वरूप प्रथमकाल खण्ड के तीन शवाधानों में चार कंकाल मिले। जिनमें कब्रगाह सं0 I युग्मित थी। काल खण्ड II में दो कब्रगाह खोदे गए जिनमें तीन कंकाल प्रकाश में आए। इनमें कब्रगाह सं0 V युग्मित थी। कालखण्ड III में नौ कब्रगाह खोदे गए जिनमें दस कंकाल प्रकाश में आए। इनमें कब्रगाह सं0 IV युग्मित थी।

तीस कंकालो में 21 कंकालों का दिक्‌विन्यास पश्चिम–पूर्व; 5 कंकालों का पूर्व–पश्चिम; तथा चार कंकालों का दक्षिण पूर्व से उत्तर–पश्चिम दिशा में था। इनमें 13 कंकाल पुरूषों के दस स्त्रियों के थे। शेष की पहचान नहीं की जा सकी। इनमें तीन कंकाल बच्चों के थे तथा तीन अधेड़ अथवा अधिक उम्र के लोगों के थे।

इनके अतिरिक्त दो कंकाल नहर की खुदायी में भी निकले थे जिनकी गड़ना यहाँ नहीं की गई है। सराय नहर राय की कब्रो के समान यहाँ की कब्रे भी छिछली तथा दीर्घ अण्डाकार थी। दो कबों को छोड़कर सभी में एक एक कंकाल थे।

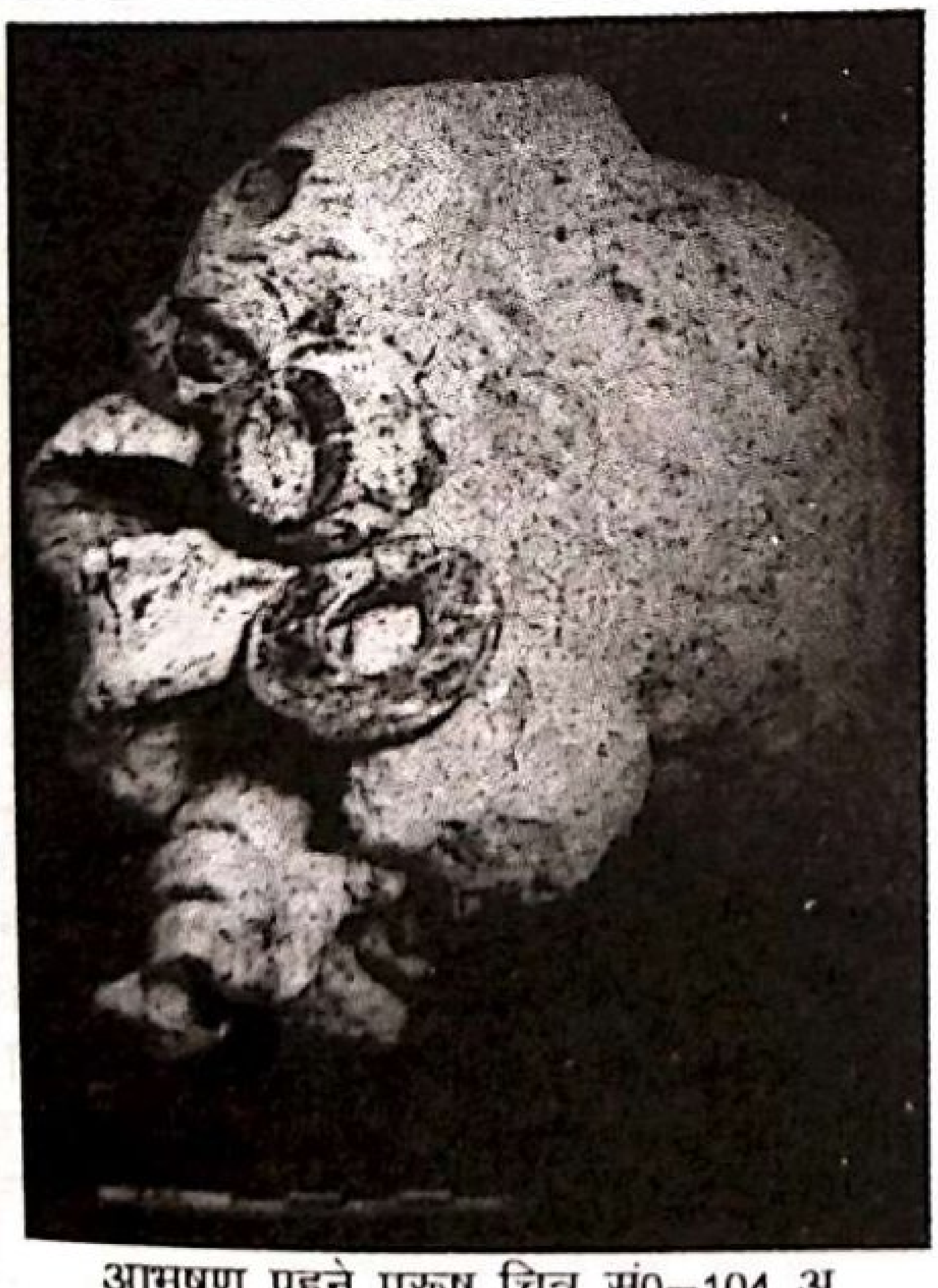
आभूषण पहने पुरूष चित्र सं0–104 अ

आभूषण पहने पुरूष चित्र सं0–104 ब

शवाधान XXIV को छोड़कर सभी में विस्तीर्ण शवाधान था। कंकाल पीठ के बल लेटे थे। उनका शिर बायीं ओर मुड़ा था। अधिकांश में उनके हाथ शरीर के बगल में थे। केवल एक में बाँये हाथ के कुहनी के नीचे का भाग पेट पर था। एक कब्र में कंकाल के दोनों हाँथ सीने पर रखे थे। मृतकों के दफनाने से पूर्व नीचे मिट्टी की एक पर्त रखी जाती थी। कब्रों में मृतकों के साथ पशुओं की जली हड्डियाँ, हड्डी के छल्ले, लघुपाषाण उपकरण तथा गेरू के घिसे टुकड़े आदि भी मिले हैं। कंकालों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि मृत्यु के समय पुरूषों की औसत आयु 18.40 वर्ष, स्त्रियों की 30.60 वर्ष थी।

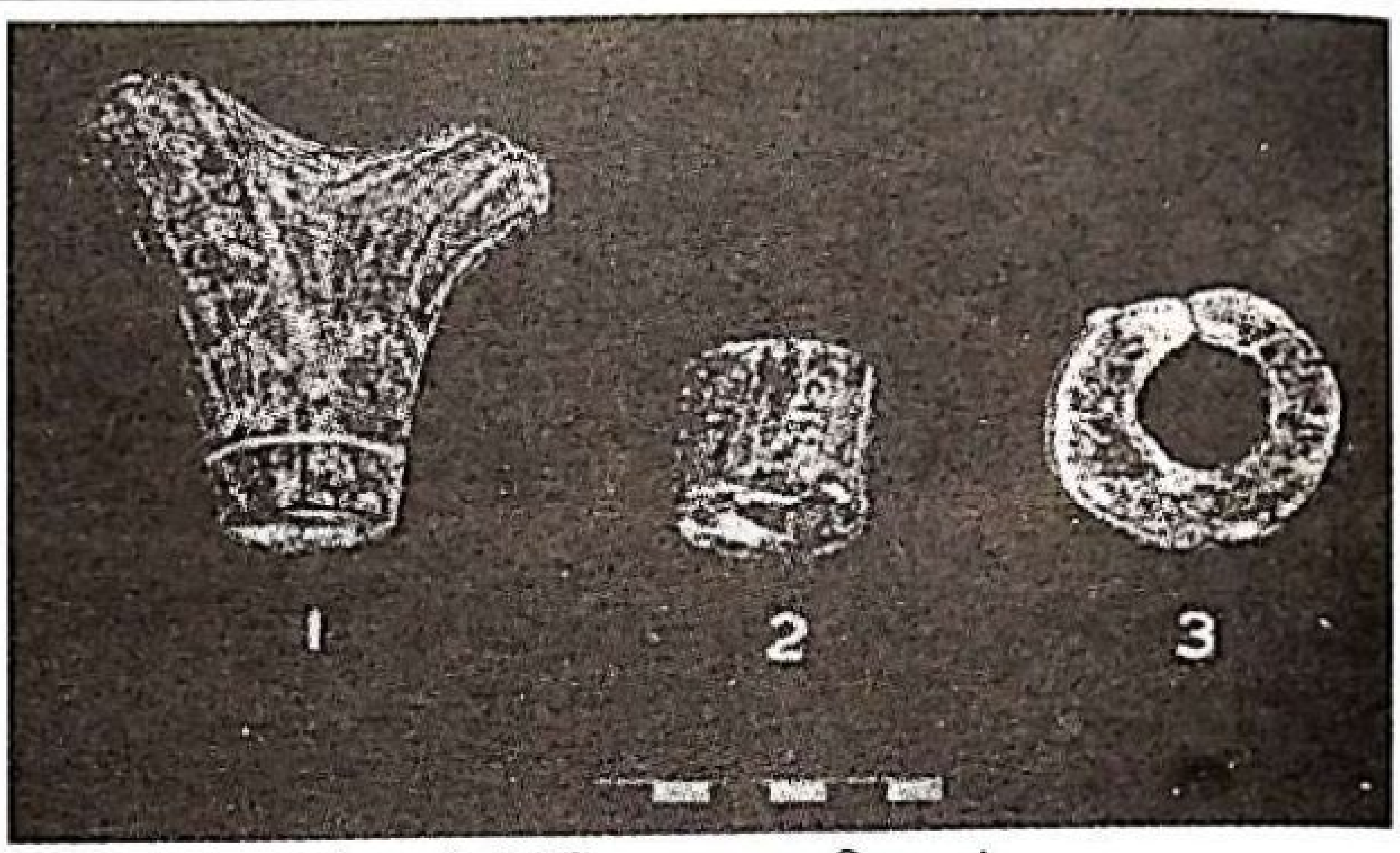

श्रृंग के अर्ध निर्मित आभूषण चित्र सं0 105अ

द्वितीय उपकाल के दोनों शवाधानों में पुरूष आभूषण युक्त थे। शवाधान IX के कंकाल में हिरण श्रृंगों को तराशकर बनाये पाँच छल्लों की माला थी तथा शवाधान V का पुरूष 12 छल्लों की माला गले में पहने था। बायें कान में कुण्डल धारण किए था।

उत्खनन में 35 गर्त चूल्हे भी चिन्हित किए गए थे। इनमे से कुछ में प्लास्टर भी किया गया था। इनमें पशुओं की जली हड्डियाँ भी मिली है। एक चूल्हे में भैसे का पूरा शिर मिला था।

पशुओं की जो हड्डियाँ प्राप्त हुई हैं उनके परीक्षण से स्पष्ट है कि ये लोग साँभर, चीतल, बारहसिंघा, जंगली सुअर, गैण्डा, हाथी आदि पशुओं से परिचित थे जो उनकी भोज्य सामग्री भी थे।

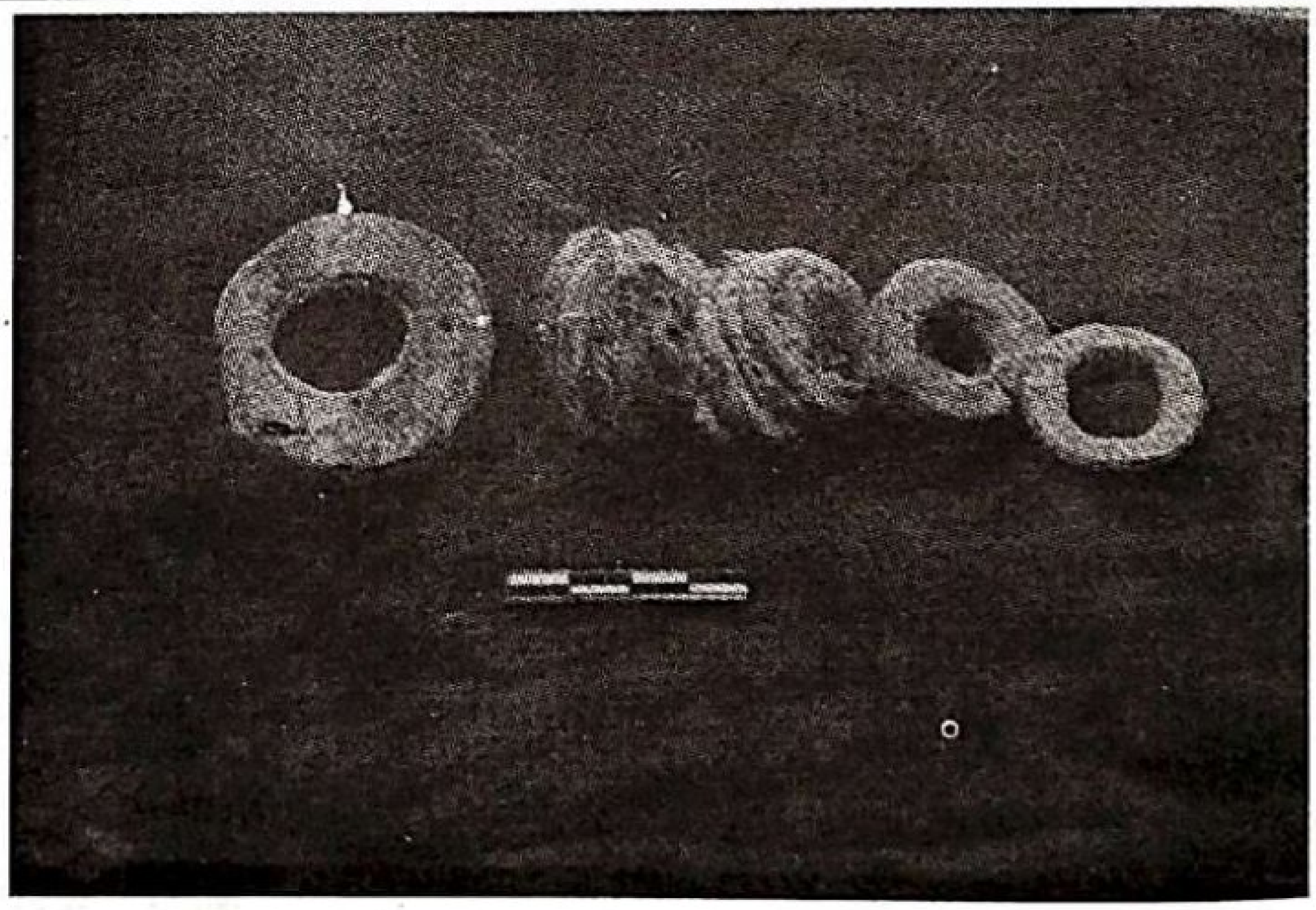
आभूषण बनाने के लिए श्रृगं से निकाले गए छल्ले चित्र सं0–105 ब

ये लोग आभूषणो का उपयोग ही नहीं करते थे अपितु उनका निर्माण भी स्थानीय रूप से करते थे। कुछ अर्ध निर्मित तथा निर्मित श्रृंग छल्ले मिले हैं जिनसे इस पर विशेष प्रकाश पड़ताहै।उत्खनन मे।लघुपाषाणोपकरण भुथड़े, पार्श्व ब्लेड, अर्ध चान्द्रिक, स्क्रेपर, त्रिभुज, खातयुक्त ब्लेड, बेधक , समलम्ब, चतुभुर्ज प्रमुख है प्राप्त हुए थे। इन्हें, चर्ट, चाल्सेडनी, कार्नेलियन, अगेट, क्वार्टज, तथा क्रिस्टल से बनाया गया था। प्रस्तर उपकरणों की अपेक्षा यहाँ पर हड्डी के उपकरण अधिक संख्या में मिले हैं। सम्भवतः पत्थर के अभाव के कारण ये लोग हड्डी का प्रयोग अधिक करने लगे थे। लघुपाषाण उपकरणों के अतिरिक्त यहाँ से सिल लोढ़े भी मिले हैं जिनका उपयोग बीजान्नों को पीसने आदि में किया जाता था।

Scanned with OKEN Scanner

## दमदमा

दमदमा का पुरास्थल महदहा से 5 किमी०ष्उत्तर–पश्चिम में वारीकलाँ गाँव के पास स्थित है। यह पुरास्थल गोलाकर है तथा पीली नदी की सहायक तम्बूरा नाले की दो भुजाओं के संगम पर स्थित है। ये नाले वास्तव में प्राचीन गोखुर झील के ही अवशेष हैं। यह पुरास्थाल 8ए750 वर्ग मी0 क्षेत्रा में फैला हुआ है। उत्खनन के फलस्वरूप यहाँ पर 1ण्5 मी0 का आवासीय जमाव प्रकाश में आया है

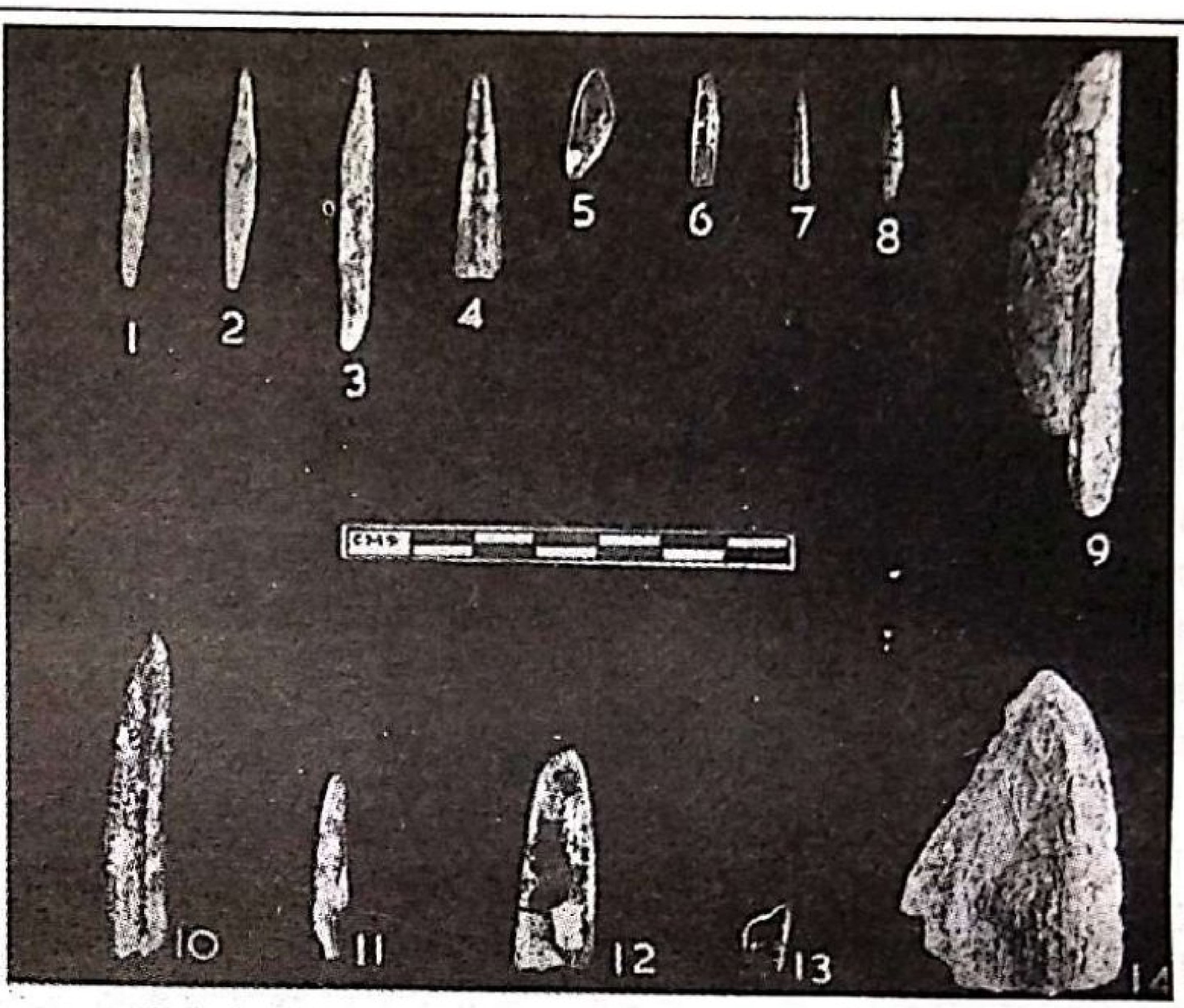

हड्डी के उपकरण चित्र सं0–106

जिसे 10 लेयरों में तथा 9 शवाधान कालों में विभाजित किया गया है। प्रथम काल का शवाधान पीली मिट्टी को काटकर बनाया गया था। एक बार बसने के बाद ये लोग दीर्घ काल तक यहीं रहे क्योंकि सम्पूर्ण आवासीय जमाव अविच्छन्न है। यहाँ पर राधाकान्त वर्मा, वी0डी0मिश्र, जे0 एन पाण्डेय तथा जे0 एन0 पाल के निर्देशन में उत्खनन किया गया था।

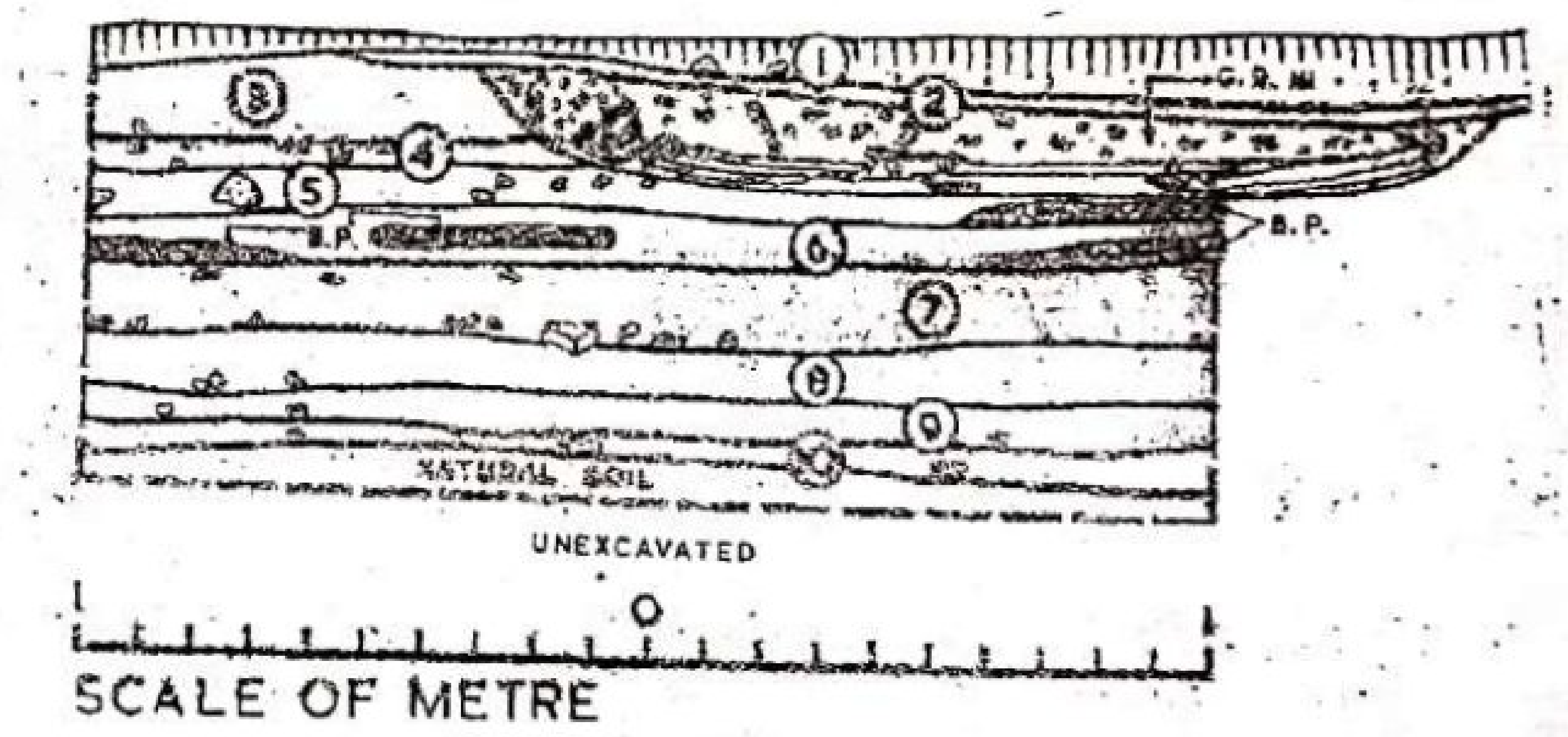

दमदमा का समेकित अनुभाग चित्र सं0–107

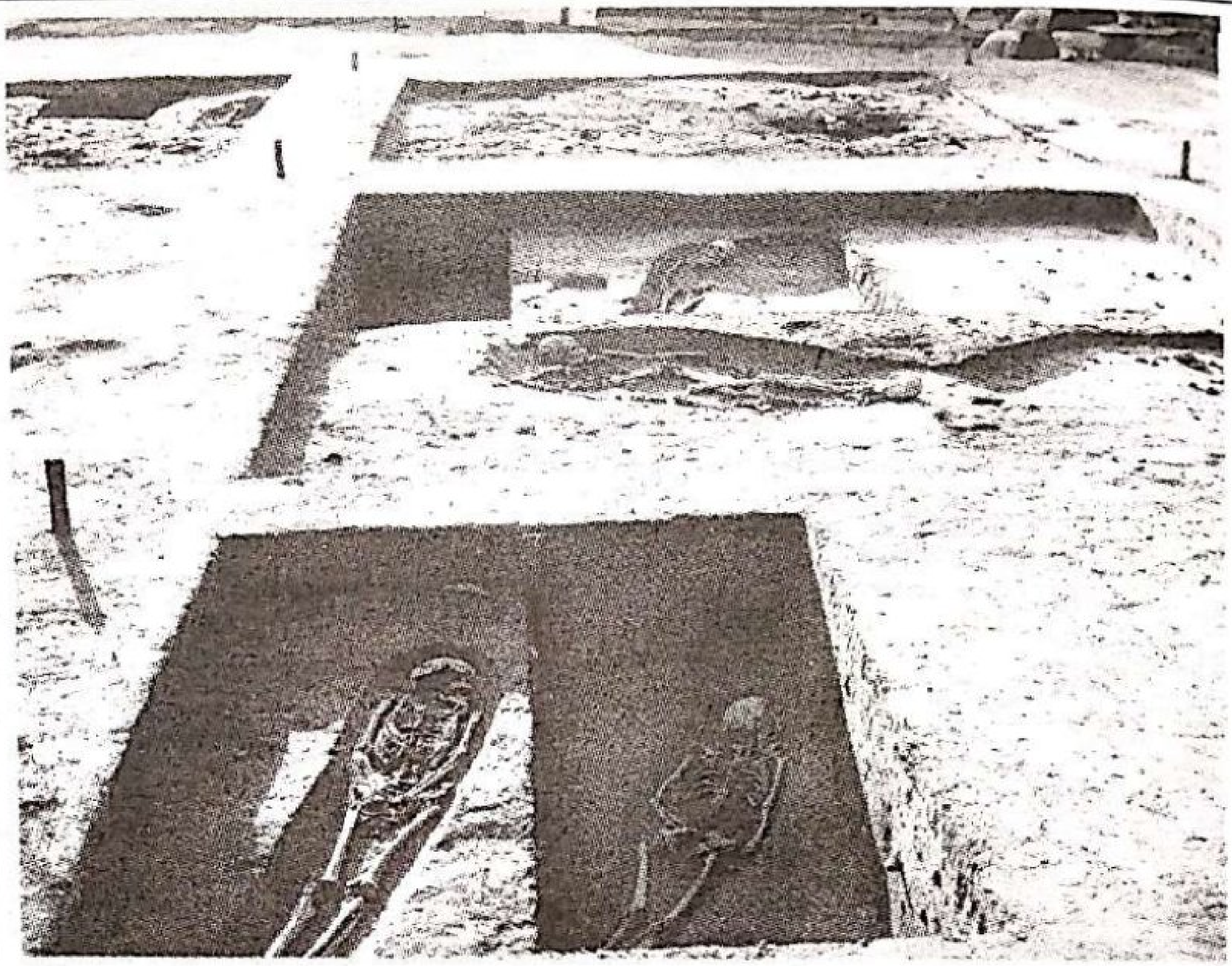
विभिन्नकालों के शवाधानों का विहंगम दृष्य चित्र सं0–108

यहाँ पर पाँच सत्रों में उत्खनन कार्य हुआ है। उत्खनन के लिए तीन स्थल चिन्हित किए गए थे,जो टीले के पूर्ववर्ती, मध्यवर्ती तथा पश्चिमवर्ती क्षेत्रों में अवस्थित थे। इनमें मध्यवर्ती तथा पश्चिमवर्ती क्षेत्राों मे 41 शवाधान अब तक प्रकाश में जा चुके हैं।इनमें शवाधान संख्या VI, XX, XVI, XXX, XXVI युग्मित हैं तथा शवाधान संख्या XVIII में तीन कंकाल मिले थे। इन सभी में 30 कंकालों का दि्कविन्यास पश्चिम–पूर्व , तीन का पूर्व–पश्चिम, चार का दक्षिण–उत्तर से उत्तर–पूर्व दिशा में तथा चार कंकाल उत्तर–पूर्व से दक्षिण–पश्चिम दिशा में तथा एक उत्तर–पश्चिम से दक्षिण–पूर्व दिशा में किया गया था। अधिकांश विस्तीर्ण शवाधान हैं जिनमें कंकाल को पीठ के बल लिटाया गया है। दो कंकाल पेट के बल तथा दो कंकालों को पैर मोड़ कर दफनाया गया था, जैसा कि लंघनाज में मिलता है। यहाँ के उत्खनित कंकालो से अनुमान कर सकते हैं कि ये लोग हृष्ट–पुष्ट थे। पुरूषों की

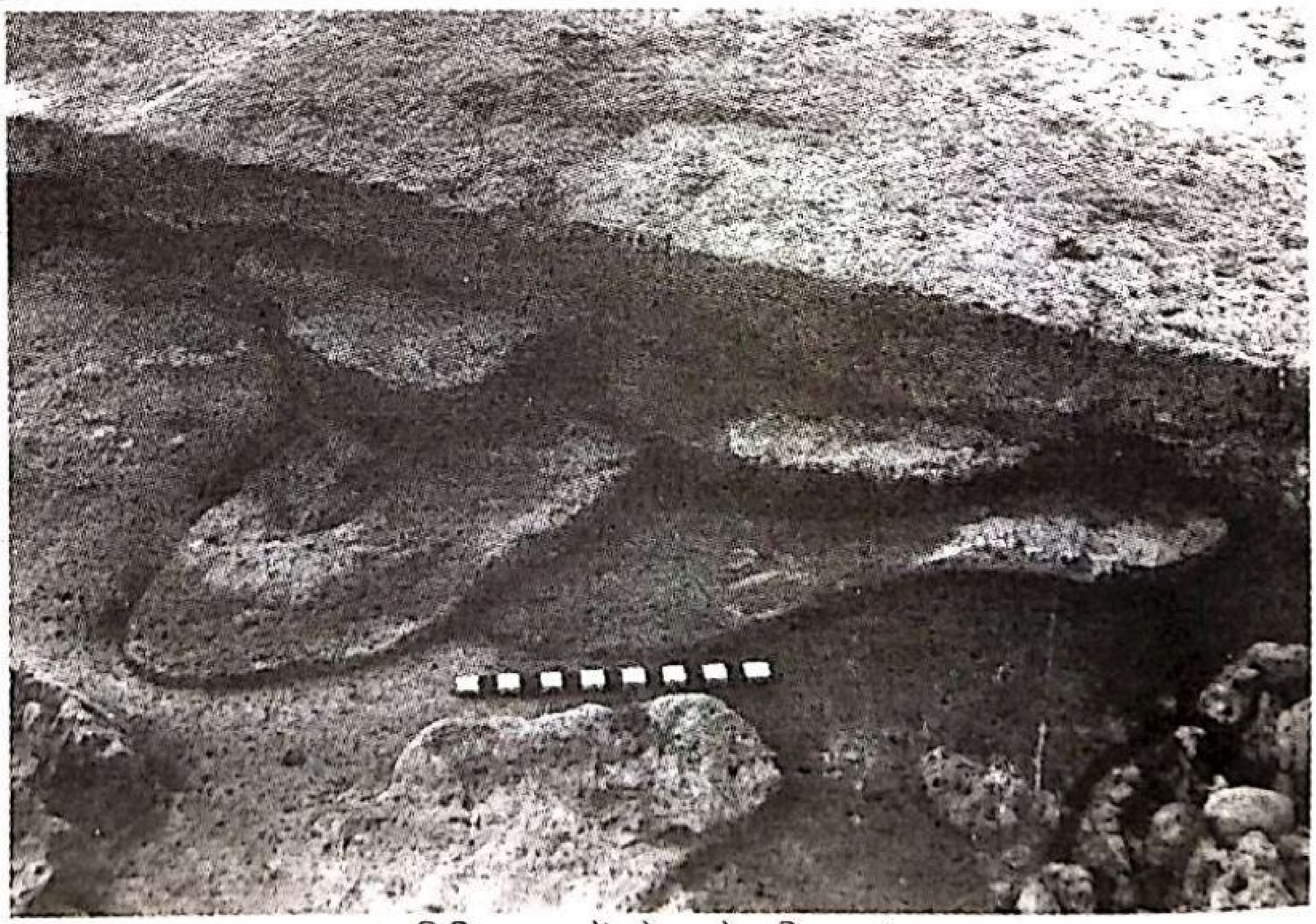
विभ्न्नि कालों के फ्लोर चित्र सं0–109

लम्बाई 173.93 से0मी0 से 192.08 से0मी0 थी। सभी कब्रे छिछली तथा दीर्घ अण्डाकार सी है। युग्म शवाधान अपेक्षाकृत अधिक चौड़े हैं।

कुछ शवाधानों मे लघुपाषाण उपकरण हड्डी के लम्बे शर, हाँथीदाँत का छिद्रित लटकन आदि भी मिले हैं। कुछ कब्रों के धरातल जले से हैं। सम्भव है कि दफनाने के पूर्व किसी प्रकार की अग्निक्रिया भी की जाती हो। सभी कब्रगाह आवासीय क्षेत्रा में ही हैं।

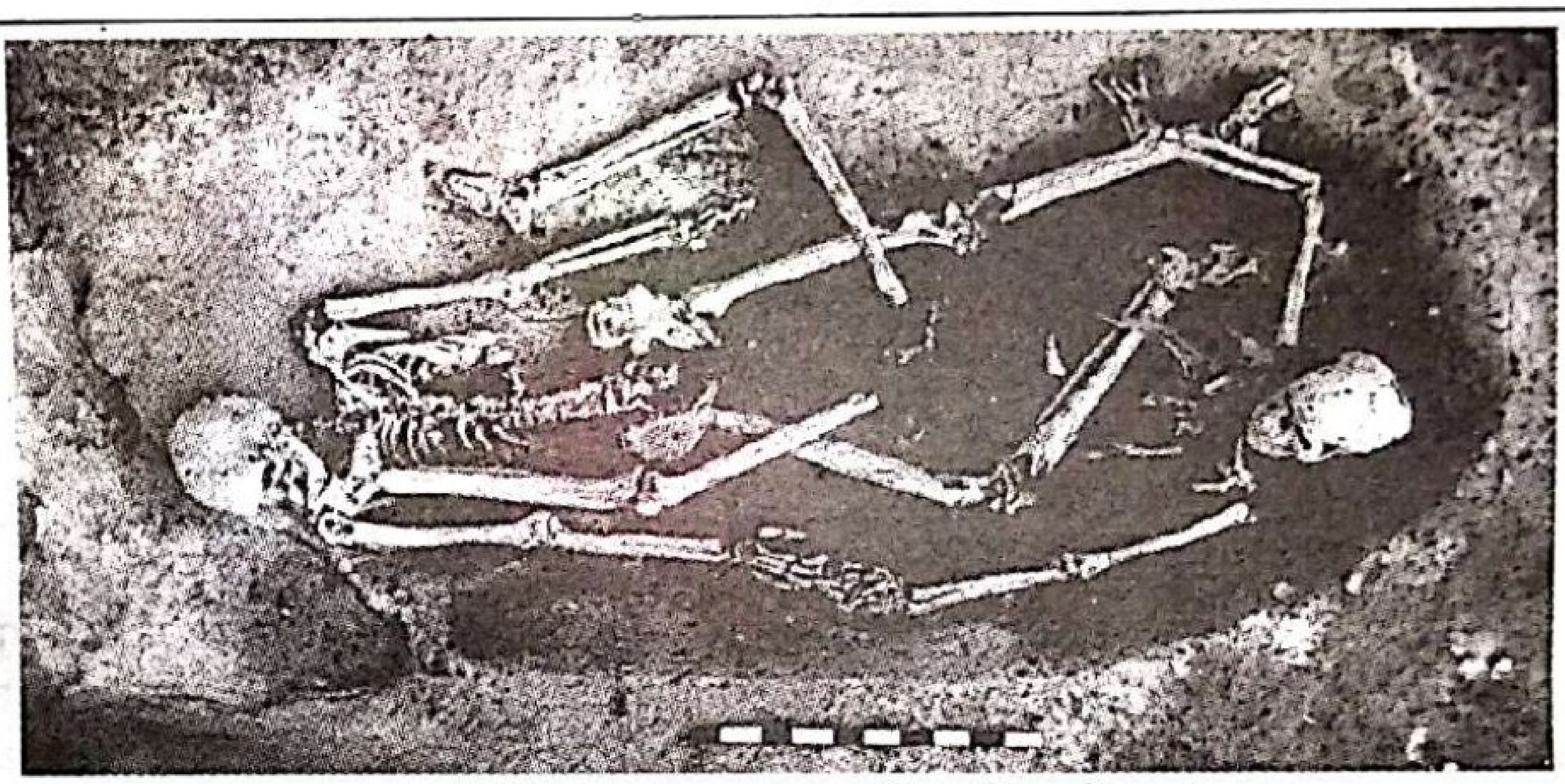

युग्मित शवाधान–उत्तर–पश्चिम दिशा चित्र सं0–110

उत्खनन में सभी स्तरों से लघुपाषाणोपकरण जिनमें विविध प्रकार के ब्लेड, भुथड़े, पार्श्व ब्लेड, त्रिभुज, समलम्ब चतुर्भुज, स्क्रेपर, छिद्रक, अर्धचान्द्रिक आदि सम्मिलित हैं। इनका निर्माण चाल्सेडनी, चर्ट क्वार्ट्ज, अगेट कार्नेलियन, आदि से किया जाता था। प्रस्तर उपकरणों के अतिरिक्त हड्डी के उपकरणों का भी निर्माण ये लोग करते थे। यहाँ से प्राप्त पुरावशेषों में सिल तथा लोढ़े विशेष उल्लेखनीय हैं क्योंकि ये सभी स्तरों से प्राप्त हुए हैं। सम्मिलित रूप से इनकी संख्या अन्य सभी पुरावशेषों से अधिक है। सम्भवतः यहाँ पर इनकी अर्थव्यवस्था में खाद्यानों का महत्व पशुमांस से अधिक था।

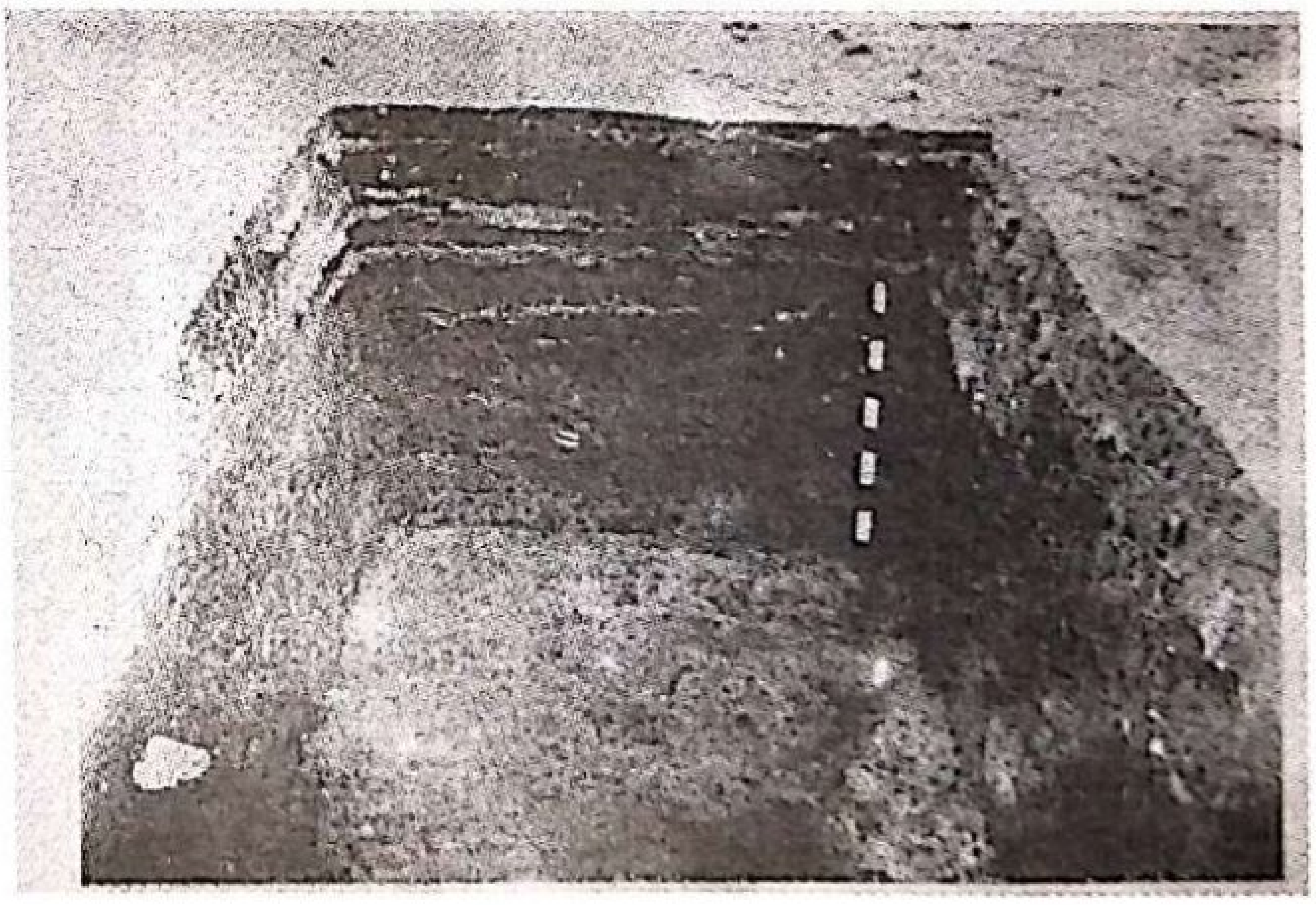

दमदमा का आवासीय जमाव चित्र सं0–110

शवाधानों के अतिरिक्त विभिन्न कालों से सम्बन्धित गर्त अथवा छिछले चूल्हे भी चिन्हित किए गए थे जिनमें जले अथवा अधजले पशुओं की हड्डियाँ मिली

हैं।

यहाँ से दो कार्बन तिथियाँ उपलब्ध हैं जो क्रमशः 8640± 65 तथा 8,365± 65 वर्ष प्राचीन हैं।

## जीवन पद्धति

गंगाघांटी के उत्खननों से मध्यपाषाण युगीन मानव की जीवन पद्धति एवं सामाजिक अवस्था पर विशेष प्रकाश पड़ता है।

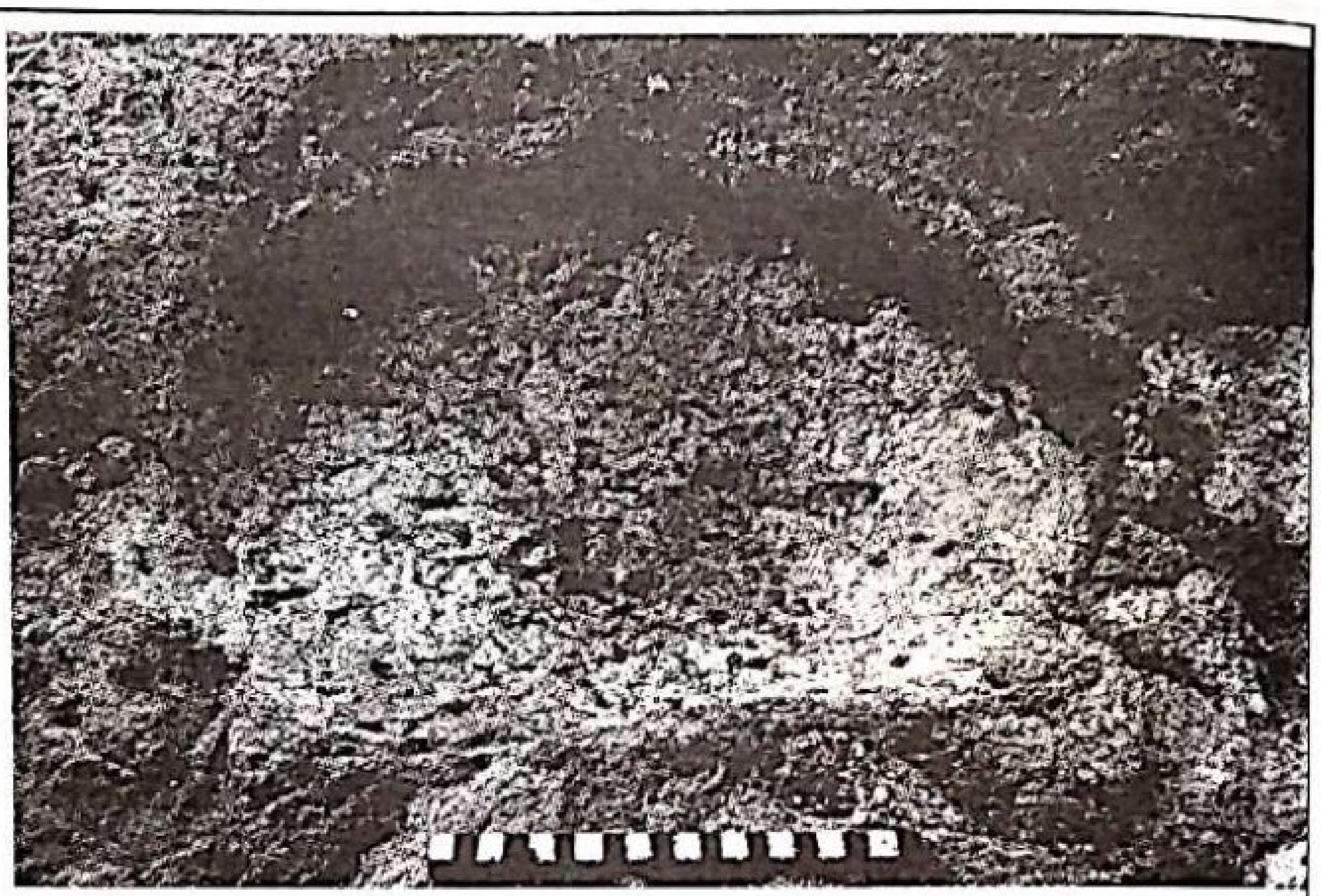

छिछला गर्त चूल्हा चित्र सं. 112

गंगाघाटी के पुरास्थलों की संरचना से स्पष्ट है कि ये अपेक्षाकृत स्थायी जीवन व्यतीत करते थे। स्त्री पुरूष तथा बच्चे एक साथ रहते थे, जैसे कि किसी आधुनिक गाँव में रहते हैं।

सिल लोढ़ों के आधार पर दमदमा तथा महदहा की जनसंख्या का एक अनुमान लगाया गया है। जिसके आधार पर दमदमा में 550 से 650 तथा महदहा में 700 से 1000 लोग रहे होगें। विंध्य के मध्यपाषाण युगीन मानव के समान इनका जीवन मात्र आखेट पर अवलम्बित नहीं था। जिस प्रकार से सिल लोढ़े मिले हैं उनसे स्पष्ट है कि खाद्यानों का महत्व इनके जीवन में विशेष था। इन स्थलों पर कुछ प्लास्टर किए हुए बिना जले गढ्ढे मिले हैं जिनका उपयोग सम्भवः खाद्यानों के संग्रह के लिए किया जाता होगा।

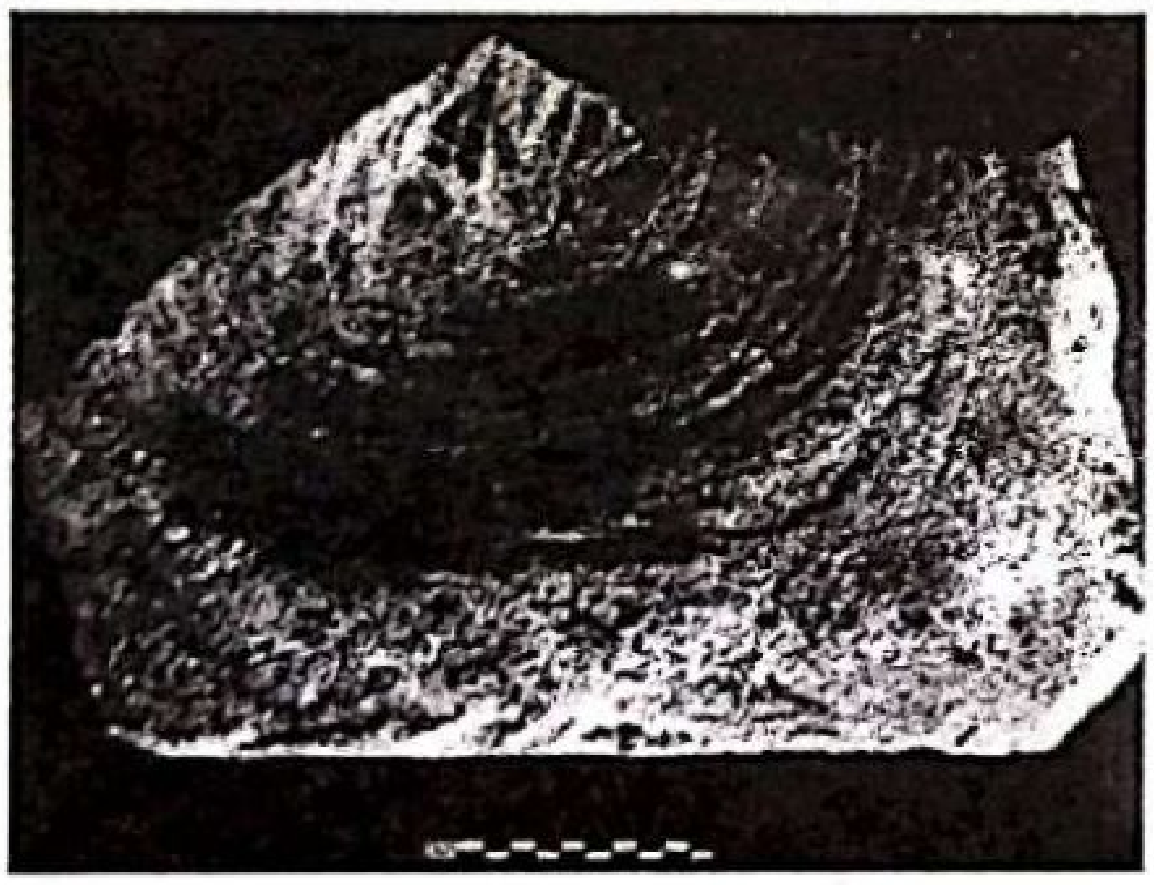

दमदमा सिल चित्र सं0–113

जिस प्रकार से इन लोगों की कब्रों का निर्माण किया गया है तथा मृतकों की अन्तेष्ठि की गई है उससे प्रतीत होता हैं कि इस जीवन से परे जीवन के सम्बन्ध में इनके विचार बन गए थे। जब सामाजिक स्तर पर रीति–रीविजों का प्रचलन

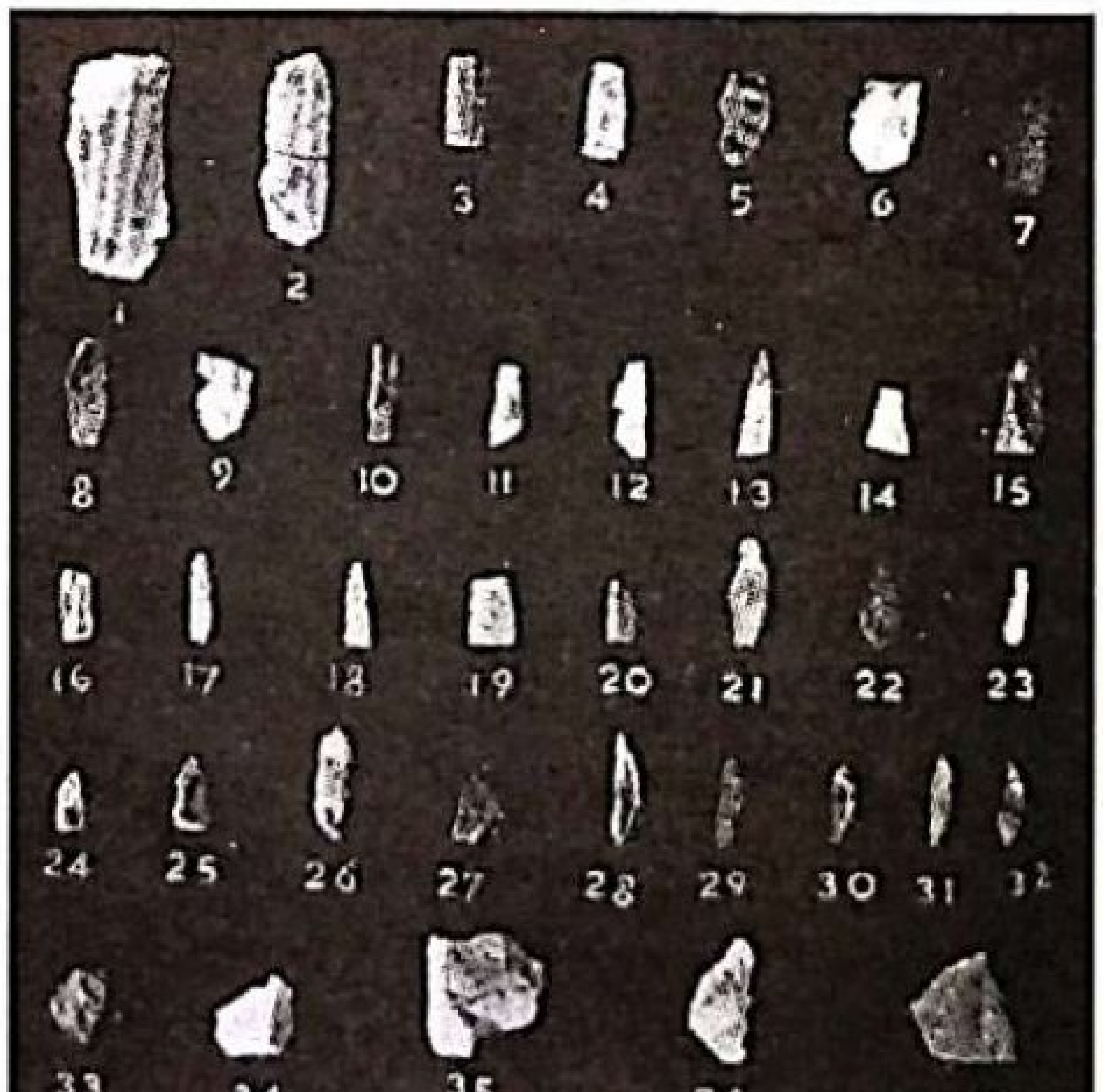

दमदमा के लघुपाषाणोपकरण चित्र सं0–114

सामान्य रूप से होने लगता है, तब वे धार्मिक अनुष्ठानों का स्वरूप धारण कर लेते हैं। मात्र एक युग्मित शवाधान चित्र सं0–111 –उत्तर–पश्चिम दिशा में है अन्य सभी पूर्व–पश्चिम दिश में हैं। दिशा का निर्धारण निश्चित रूप से सूर्य की दिशा से प्रभावित होगा। सम्भवतः सूर्य की उपासना का प्रारम्भ भी इसी से हुआ होगा।

सामाजिक दृष्टि से युग्मित शवाधान भी विशेष महत्वपूर्ण हैं। इनमे प्रायः एक–स्त्री तथा एक पुरूष अगल–बगल अथवा दो युग्म दो स्तरों में अगल–बगल दफनाये मिलते हैं तथा प्रत्येक अवस्था में स्त्री पुरूष के बायें दफनाई गई थी तथा पुरूष कंकाल कब्र में पहले रखा गया था। यह भी निश्चित है कि दोनों कंकाल एक साथ दफनाए गए थे। इनसे यह भी अनुमान किया जाता है कि स्त्री–पुरूष का सम्बन्ध परिवार में बदलने लगा था। इसकी पुष्टि छोटे व्यक्तिगत चूल्हों से भी कर सकते हैं। सराय नहर राय में एक सार्वजनिक चूल्हा भी मिला था।

कब्रों में केवल पुरूष ही आभूषण पहने हुए दफनाये मिले हैं। इससे अनुमान कर सकते हैं कि समाज में किसी प्रकार का वर्गीकरण भी प्रारम्भ हो गया था। यह भी सम्भावना हो सकती है कि विशिष्ट वर्गों का विकास इस समय से ही प्रारम्भ हो गया था।

# 43

## बीरभानपुर – पश्चिमी बंगाल

बीरभानपुर पश्चिमी बंगाल के वर्दवान जिले में दुर्गापुर के निकट दामोदर नदी के किनारे स्थित है। सर्वप्रथम 1954 में, इसे प्रकाश में लाने का श्रेय बी0बी0लाल को है (लाल, बी0बी0 1958, 'वीरभानपुर, ए माइक्रोलिथिक साइट इन दि दामोदर वैली, वेस्ट बंगाल', ए0इन0नं0 14, पृ0 4–48)। 1954 में लाल ने यहाँ पर अत्यन्त सीमित उत्खनन किया था जिससे ज्ञात हुआ कि उपकरण अज्यामितिक प्राक् पॉटरी अवस्था के हैं। 1957 में वहाँ पर पुनः उत्खनन किया गया।

उस क्षेत्र में दामोदर की दो वेदिकायें जिन्हें क्रमशः Tn तथा Tn-1 कहा गया है स्पष्ट दिखाई देती हैं। लाल का अनुमान है कि उत्तर तथा पश्चिम की ओर इनसे और प्राचीन वेदिकायें होगी। नवीनतम वेदिका Tn से कोई भी लघुपाषाणोपकरण नहीं मिले थे। Tn1 पर दो खनतियाँ BBP-2 तथा BBP-1 समुद्र के जलतल से क्रमशः 269 फीट तथा 230 फीट की ऊँचाईयों पर डाली गई थी। BBP-1 (24 × 8 फीट ) को 7 फीट की औसत गहराई तक खोदा गया पुनः उसके मध्य में 5 X 4 फीट को ऊपर की सतह से 12 फीट की गहराई तक खोदा गया। BBP-1 के उत्खनन के फलस्वरूप 5 लेयरें प्रकाश में आई जो नीचे से ऊपर क्रमशः इस प्रकार थीं :

लेयर 5 :यह विगलित मोटे कंकड़ों के सैण्ड स्टोन का जमाव था। इसका रंग सफेद था, किन्तु उसमें कभी–कभी धारियाँ भी दिखाई देती हैं।

लेयर 4: यह चितकबरी गाद मिट्‌टी का 1 से 2 फीट मोटा जमाव था जिसमं बीच–बीच में लाल धब्बे थे।

लेयर 3 : इसका निर्माण लैटेराइटी ग्रैवेल तथा पत्थर के टुकड़ों से हुआ था। इस लेयर के ऊपर की सतह तरंगित थी। यह प्राचीन काल में भूमि सतरह भी थी जिस पर मध्य पाषाणिक मानव रहता था।

लेयर 2 : क्वार्ट्ज तथा गेरू के टुकड़ों से मिश्रित इस जामव की औसत मोटाई 8'' से 1' थी। इसके नीचे से 6'' से 8'' में लघुपाषाणोपकरणों की बहुलता थी, किन्तु इसमें पॉटरी नहीं थी।

लेयर 1 : यह बालुई मिट्‌टी का सबसे ऊपर का जमाव था। उसकी औसत मोटाई 2 फीट थी। मिट्‌टी के रासायनिक परीक्षण से ज्ञात हुआ कि इसका जमाव ईषत् शुष्क (Semi –arid) काल में हुआ था।

BBP-2 : यह खनती BBP-1 के उत्तर में लगभग एक मील की दूरी पर स्थित थी। यह खनती 12 × 7 फीट थी तथा इसके बीच में 2 फीट की बाक देकर इसे दो भागों में विभक्त कर दिया गया था। पूर्वी भाग को कालान्तर में मुख्य खनती के बराबर ही बढ़ा दिया गया था। दोनों खनतियों को सतह से 6 फीट की औसत गहराई तक खोदा गया। बाद में पूर्वी भाग को (6 X 3 फीट) सतह से 12 फीट की गहराई तक खोदा गया, किन्तु वहाँ तक भी आधारशिला नहीं मिली थी।

इस खनती में भी पाँच जमाव प्रकाश में आये जो नीचे से ऊपर की ओर क्रमशः इस प्रकार थे :

लेयर 5 : यह चितकबरी मिट्टी, गाद मिट्टी तथा बालू से निर्मित थी। इसमें लैटेराइट की गोलियाँ भी सम्मिलित थी। इस लेयर के ऊपर के लगभग 2 फीट से कुछ लघुपाषाणोपकरण मिले थे। किन्तु सूक्ष्म परीक्षण से ज्ञात हुआ कि इस स्तर पर लघुपाषाणोपकरण कुछ दरारों से आए थे। यह लेयर मूल रूप से मध्य पाषाणिक उपकरणों की पूर्ववर्ती थी। इसके तरंगित सतह पर मध्य पाषाणिक मानव बसा था।

लेयर 4 : यह गाद मिट्टी का बालुई जमाव है जिसमें लैटेराइट की गोलियाँ भी मिश्रित हैं। यह 9″ से 1′–4″ मोटा है। इसके ऊपर के 4–5″ तक लघुपाषाणोपकरण नहीं मिले थे।

ऊपर की सतह से 4 फीट 5 इन्च नीचे एक गर्त में एक 6″ लम्बा 4 इन्च चौड़ा तथा 2″ मोटा पत्थर का टुकड़ा मिला था जिसके ऊपर एक तरफ छोटे–छोटे गड्ढे थे। लाल का विचार है कि इसे सम्भवतः निहाई के रूप में प्रयोग किया गया होगा।

लेयर 3 : यह मोटे बालू का 5 से 9″ मोटा जमाव था जिसमें लैटेराइट की गोलियाँ मिली हुई थीं।

लेयर 2 तथा 1 : एक ही प्रकार के बालुई मिट्टी से निर्मित था। दोनों में अन्तर उनके रंग के आधार पर किया गया है। सम्मिलित रूप से ये दोनों जमाव 2 फीट मोटे थे।

लेयर 3, 2, तथा 1 में कोई भी लघुपाषाणोपकरण नहीं मिले थे।

उपकरणों का संकलन उत्खनित खनतियों के अतिरिक्त Tn-1 वेदिका से भी किया गया था। जिन स्थलों पर सतह पर का बालुई जमाव बह गया था तथा नीचे की लाल गाद मिट्टी और बालू खुदर गया था, उन स्थलों पर लघुपाषाणोपकरण मिलते थे। इस प्रकार के पांच स्थलों से संकलन किया गया था। बाहर के स्थल जहाँ से संकलन किया गया था वे उद्योग–स्थल प्रतीत होते हैं, क्योंकि वहाँ पर अपशिष्ट फलक तथा कोर काफी अधिक संख्या में प्राप्त हुए थे।

लाल की धारणा हे कि एक झुरमुट (Cluster) में कुछ गड्ढे मिले थे, जो खम्भों के गड्ढs (Post-holes) से प्रतीत होते हैं। किन्तु इनके सम्बंध में निश्चित् रूप से कुछ कहना कठिन है।

## उद्योग

लाल की धारणा है कि वीरभानपुर का लघुपाषाण उद्योग वास्तव में प्राक् पॉटरी अज्यामितिक प्रकार का था। उपकरणों के निर्माण के लिए क्वार्ट्ज का प्रयोग प्रमुखतया किया गया था।

इस प्रकार की भूरी पॉटरी खुले स्थलों मे प्राप्त हुई थी, किन्तु उत्खनन में उनका नितान्त अभाव था। लाल का विचार है कि खुले में प्राप्त पॉटरी लघुपाषाणोपकरणों से सम्बन्धित नहीं है।

लगभग 400 उपकरणों में लाल को केवल एक समलम्ब चतुर्भुज तथा एक त्रिभुज मिला था, किन्तु वे निश्चित नहीं हैं कि वह तथाकथित त्रिभुज वास्तव में त्रिभुज ही हैं। पुनः दोनों ही उपकरण ऊपर की सतह से मिले थे। लगभग 1 मील की दूरी पर एक ज्यामितिक उपकरणों का उद्योग–स्थल था, चूंकि केवल एक ही समलम्ब चतुर्भुज मिला है, अतः यह कहना अनुचित नहीं होगा कि यह उद्योग वास्तव में अज्यामितिक था।

उपकरणों के निर्माण में क्वार्ट्ज, क्रिस्टल, चर्ट, चाल्सेडनी, क्वार्टजाइट, बसाल्ट, फॉसिलवुड का उपयोग किया था। इनमें क्वार्ट्ज की संख्या 88.7% थी। लाल के अनुसार छिद्रक तथा ब्यूरिन के निर्माण के लिए क्वार्ट्ज तथा क्रिस्टल का उपयोग विशेषतः होता था।

उपकरण समुदाय में विविध प्रकार के कोर, फलक, ब्लेड, अर्धचान्द्रिक, शर, छिद्रक, ब्यूरिन,

Scanned with OKEN Scanner

स्क्रेपर, एवं त्रिभुज तथा एक समलम्ब चतुर्भुज है।

## तिथि

लाल के अनुसार वीरभानपुर के लघुपाषाणोपकरणों में 1. ज्यामितिक आकार नहीं है अथवा दुश्प्राप्य है, 2. ये पॉटरी से सम्बन्धित नहीं है और 3. उनमें क्रेस्टेड रिज नहीं है। इसके अतिरिक्त वे भू–वैज्ञानिक स्तरों में प्राप्त हुए हैं तथा प्रारूपात्मक दृष्टि से वे सिंगरौली बेसिन, गिद्दलूर नन्दिकनामा पास के उपकरणों के निकट हैं, जिन्हें 'Early Mesolithic, अथवा Epi-palaeolithic microlithic' आदि कहा गया है। उपर्युक्त आधारों पर लाल की धारणा है कि वीरभानपुर उद्योग को नूतन कल्प के प्रारम्भ में रखा जा सकता है। टेरी उद्योगों के आधार पर वीरभानपुर उद्योग को भी कम से कम 4,000 वर्ष ई0पू0 प्राचीन माना जा सकता है (लाल, बी0बी0, 1958, पार्श्वोद्धरित, पृ0 38,)

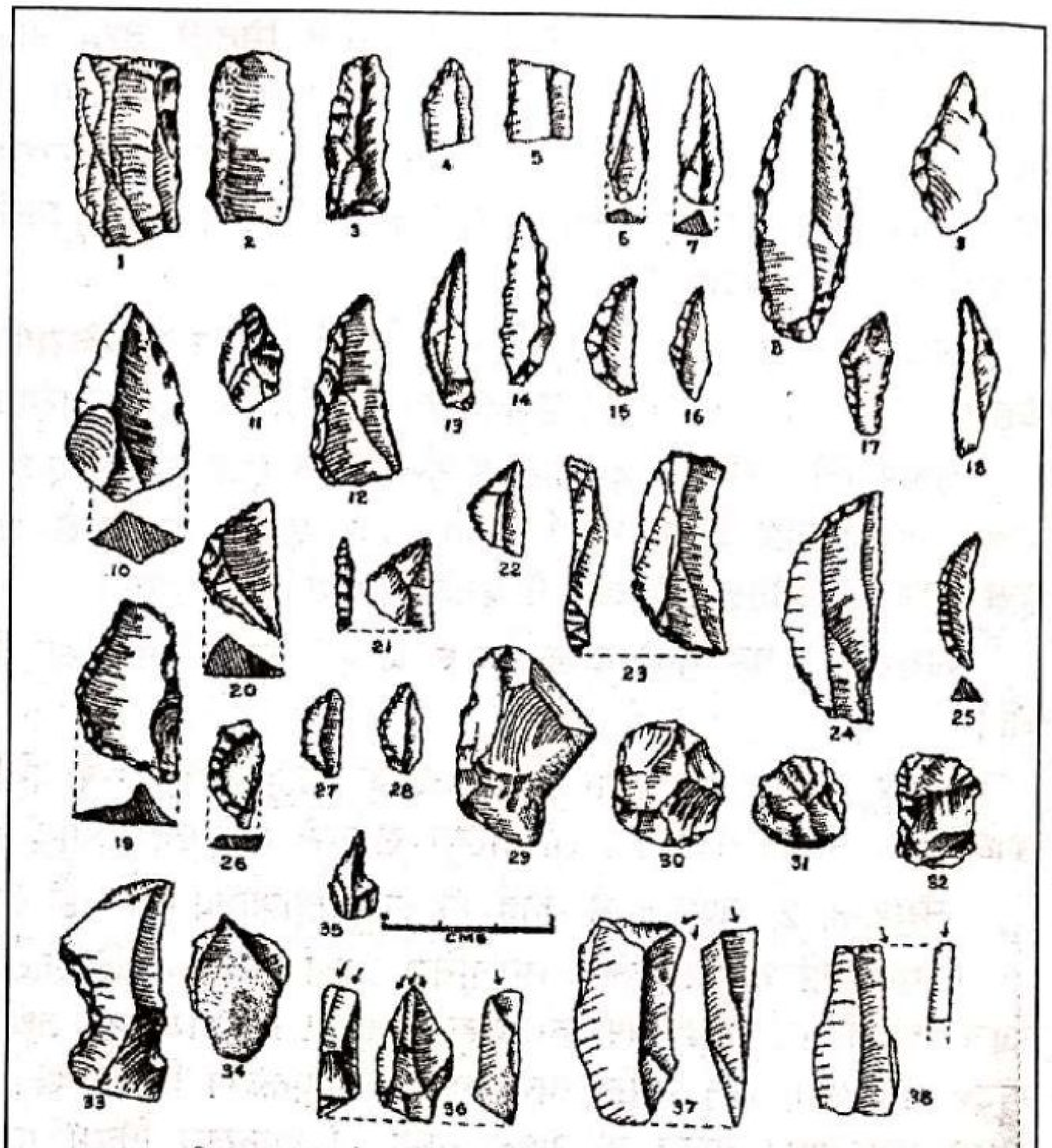

बीरभानपुर के लघुपाषाणोपकरण चित्र सं0–115

# 44

## टेरी पुरास्थल–तमिलनाडु प्रदेश

तमिलनाडु प्रदेश का सबसे प्रमुख मध्य पाषाणिक स्थल तिनेवली में है जो तूतिकोरिन तथा तिरूचेन्दूर में समुद्र तट के निकट ही स्थित है (ज्वाएनर, एफ0ई0 तथा अलचिन बृजेट, 1956 'दि माइक्रोलिथिक साइट्स ऑफ टिनेवली डिस्ट्रिक्ट, मद्रास स्टेट, पृ0 4–20)। वहाँ पर यह उद्योग जमे हुए बालू टीलों से सम्बन्धित है। बालू टीलों को वहाँ पर स्थानीय भाषा में टेरी नाम से अभिहित करते हैं। इसीलिए यहाँ का मध्य पाषाणिक उद्योग टेरी उद्योग के नाम से विख्यात हैं। तूतिकोरिन तथा तिरूचेन्दूर ताम्रपर्णी नदी के दक्षिण में है।

नदी मुख के उत्तर तथा दक्षिण के भागों का निर्माण प्रातिनूतनकाल के अन्त में अथवा नूतनकाल के प्रारम्भ में हुआ था। यहाँ पर ज्वाएनर तथा अलचिन ने ताम्रपर्णी नदी के उत्तर तथा दक्षिण में ग्यारह मध्य पाषाणिक स्थलों का अध्ययन किया। इनमें से कुछ पहले प्रकाश में आ चुके थे।

इस क्षेत्र का महत्व इस दृष्टि से विशेष है कि यहाँ पर ज्वाएनर महोदय ने स्थलों के निर्माण की पृष्ठभूमि एवं समुद्रीय जल–तल तथा जलवायु के परिवर्तनों को समझने का प्रयास किया था। उनके अनुसार जिस समय बालू के टीलों का निर्माण हुआ होगा वह काल वायु–क्रिया का रहा होगा। टीलों के निर्माण उपरान्त दूसरे काल में रासायनिक प्रक्रियाओं के द्वारा टीलों ने 'फॉसिल टीलों' का स्वरूप धारण किया। इस काल के बाद पुनः दूसरा वायु–क्रिया काल आया। यह काल आधुनिक काल के ठीक पहले का है। मध्य पाषाणिक स्थलों का निर्माण प्रथम वायु–क्रिया के काल में हुआ होगा। उस समय समुद्र तल आधुनिक समुद्र–तल से लगभग 20–30 फीट ऊँचा होगा। जिस समय समुद्र का

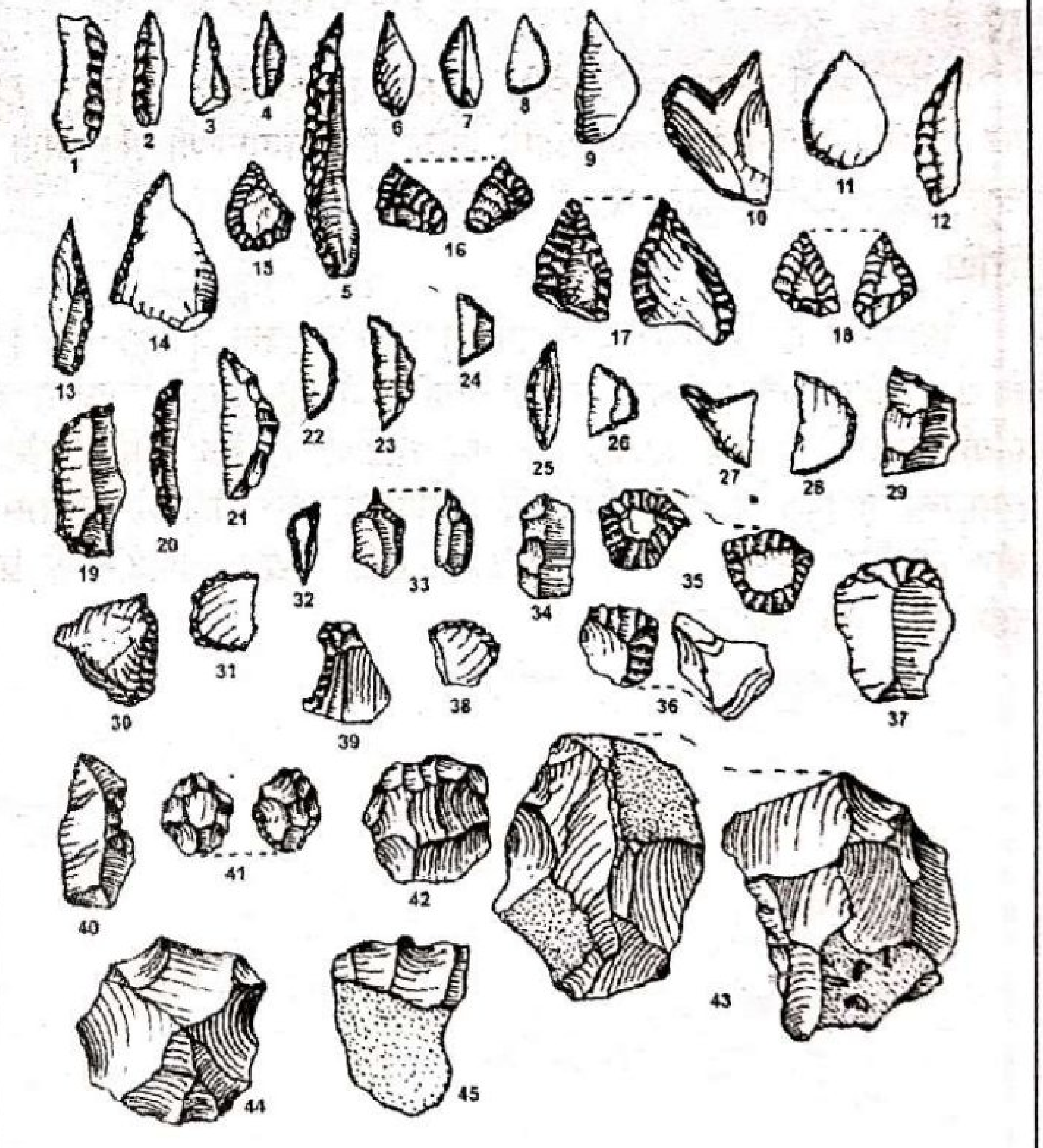


टेरी के लघुपाषाणोपकरण चित्र सं0–116

जलतल ऊँचा था अथवा जिस समय प्रथम वायु–क्रिया प्रारम्भ हुई थी वह काल (वही, पृ0 8) हिमायनों के संदर्भ में किससे सम्बन्धित किया जा सकता है यह एक समस्या का विषय है। ज्वाएनर ने इस सम्बंध में तीन सम्भावनायें व्यक्त की है जिनसे उसका सम्बन्धीकरण किया जा सकता है। वे इस प्रकार हैं :

1.अन्तिम अन्तर्हिमकाल (Last Inter-glacial)

1- अन्तिम हिमकाल का प्रथम लघु अन्तर्हिमकाल (First Interstadial of the last Glaciation)

2. हिमकाल के बाद (Post-glacial) यूरोप के अन्त अतलान्तिक काल (LateAtlantic Times) अथवा 4,000 वर्ष ई0पू0 से।

ज्वाएनर महोदय अन्तिम सम्भावना को ही अधिक सही मानते हैं।

ज्वाएनर तथा अलचिन ने ग्यारह (- मेगनानपुरम, कुत्तमपुली, कुथल कुली, सवायरपुरम, कत्तलन कुलम, कुलत्तूर, पुत्त तरूवाइ, सुरंभुदी, नाजरेथ, मनादु, कयमोलि हैं।) मध्य पाषाणिक स्थलों तथा वहाँ से संकलित उपकरणों का अध्ययन किया था। सभी स्थलों में मेगनानपुरम उद्योग–स्थल अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन प्रतीत होता है, क्योंकि यहाँ पर ब्लेड, शरों तथा ज्यामितिक आकारों के उपकरणों का नितान्त अभाव है। इसके अतिरिक्त यहाँ से एकपक्षीय तथा द्विपक्षीय चक्रिक उपकरण एक चॉपिंगोपकरण, फलक पर निर्मित नतोदर स्क्रेपर तथा साधारण शर उपलब्ध हुए हैं।

अन्य सभी स्थलों से ब्लेड, भुथड़े पार्श्व ब्लेड, नतोदर स्क्रेपर, अर्धचान्द्रिक, विविध प्रकार के शर, त्रिभुज, चॉपिंगोपरकण आदि मिले हैं। उपकरणों में सबसे अधिक संख्या अर्धचान्द्रिकों की है। त्रिभुजाकार केवल कुलुत्तूर से ही मिले हैं

## तिथि

ज्वाएनर के अनुसार टेरी उद्योग कम से कम 4,000 वर्ष ईसा पूर्व की होनी चाहिए। अभी हाल के अनुसंधानों के आलोक में श्रीलंका में लघुपाषाणों पकरणों के उद्भव की तिथि 35,000 बी.पी0 आंकी गई है। मिश्र (2002 a) की धारणा है कि चूंकि टेरी तथा श्रीलंका के उद्योगों में बहुत समानता है अतः टेरी उद्योग की प्राचीनता की श्रीलंका के समान होनी चाहिए। किन्तु इसके लिए और समुचित प्रमाण चाहिए। फिर भी टेरी–उद्योग के अधिक प्राचीन होने की सम्भावना को निर्मूल नहीं कहा जा सकता है।

Scanned with OKEN Scanner

# 45

## लंघनाज– गुजरात

उत्तरी गुजरात का सबसे प्रमुख मध्य पाषाणिक स्थल लंघनाज है (सांकलिया, एच0डी0, 1965, एक्सकवेशन्स ऐट लंघनाज : 1944–63, पार्ट–1, सोफी एरहार्ट तथा कैनेडी, के0ए0आर0 1965, एक्सकवेशन्स ऐट लंघनाज : पार्ट III, दि हयूमन रिमेन्स, पूना)। यह अहमदाबाद के उत्तर में 59 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। 1941–42 में प्रथम गुजरात अभियान के दौरान यह स्थल प्रकाश में आया था। 1941 से 1963 तक वहां पर छः बार उत्खनन हुआ है। सांकलिया के अतिरिक्त इस स्थल पर दिवंगत सुब्बाराव तथा कैनेडी ने भी उत्खनन किया था। विभिन्न उत्खननों से ज्ञात हुआ कि यह आवास–स्थल तथा समाधि–क्षेत्र दोनों ही रूपों में प्रयुक्त हुआ था।

उत्खननों के फलस्वरूप अभी तक चौदह मानव – कंकाल प्रकाश में आये जिन्हें दफनाया गया था। गृह निर्माण आदि के यद्यपि कोई भी प्रमाण नहीं मिले हैं, किन्तु कटी और तोड़ी हुई तथा अधजली बहुत–सी हड्डियाँ प्राप्त हुई हैं जिनसे इनके आवास–स्थल होने के निश्चित प्रमाण मिलते हैं। यद्यपि चूल्हे के प्रमाण तथा राख और कोयला आदि नहीं मिले हैं, किन्तु जली हुई हड्डियों से यह अनुमान किया जाता है कि ये लोग अग्नि से परिचित थे।

लंघनाज में यद्यपि अनेक सत्रों में कार्य हुआ है, किन्तु वहाँ के स्तरीकरण की समस्या का समुचित समाधान नहीं हो सका है। बालुई जमाव होने के कारण विभिन्न कालों के जमावों को अलग करना एक समस्या का विषय था। यहाँ तक कि शवों को दफनाने के लिए शवाधान गर्त की रेखा भी स्पष्ट नहीं हो सकी। विभिन्न उत्खननों से यह स्पष्टतया ज्ञात हुआ कि लघुपाषाणोपकरणों का स्तर 3 और 4 फीट से 5 फीट तक था, यद्यपि वे 8 फीट तक मिले थे। इसी स्तर से ग्यारह कंकाल तथा अधिकांश हड्डियाँ भी उपलब्ध हुई थी। डॉ0 सांकलिया की धारणा है कि यद्यपि ऊपर से नीचे तक सब बालुई जमाव है, किन्तु उसे कम से कम दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। सबसे ऊपर की लेयर का जमाव लगभग 3 फीट मोटा है। इसका रंग गहरा भूरा था। यह धीरे–धीरे नीचे के जमाव से मिल जाती है जिसका रंग अपेक्षाकृत हलका है तथा कंकड़ मिश्रित है। कालान्तर में अधिक सूक्ष्म निरीक्षण के पश्चात ज्ञात हुआ कि वास्तव में दो के स्थान पर इन्हें पाँच लेयरों में विभाजित किया जा

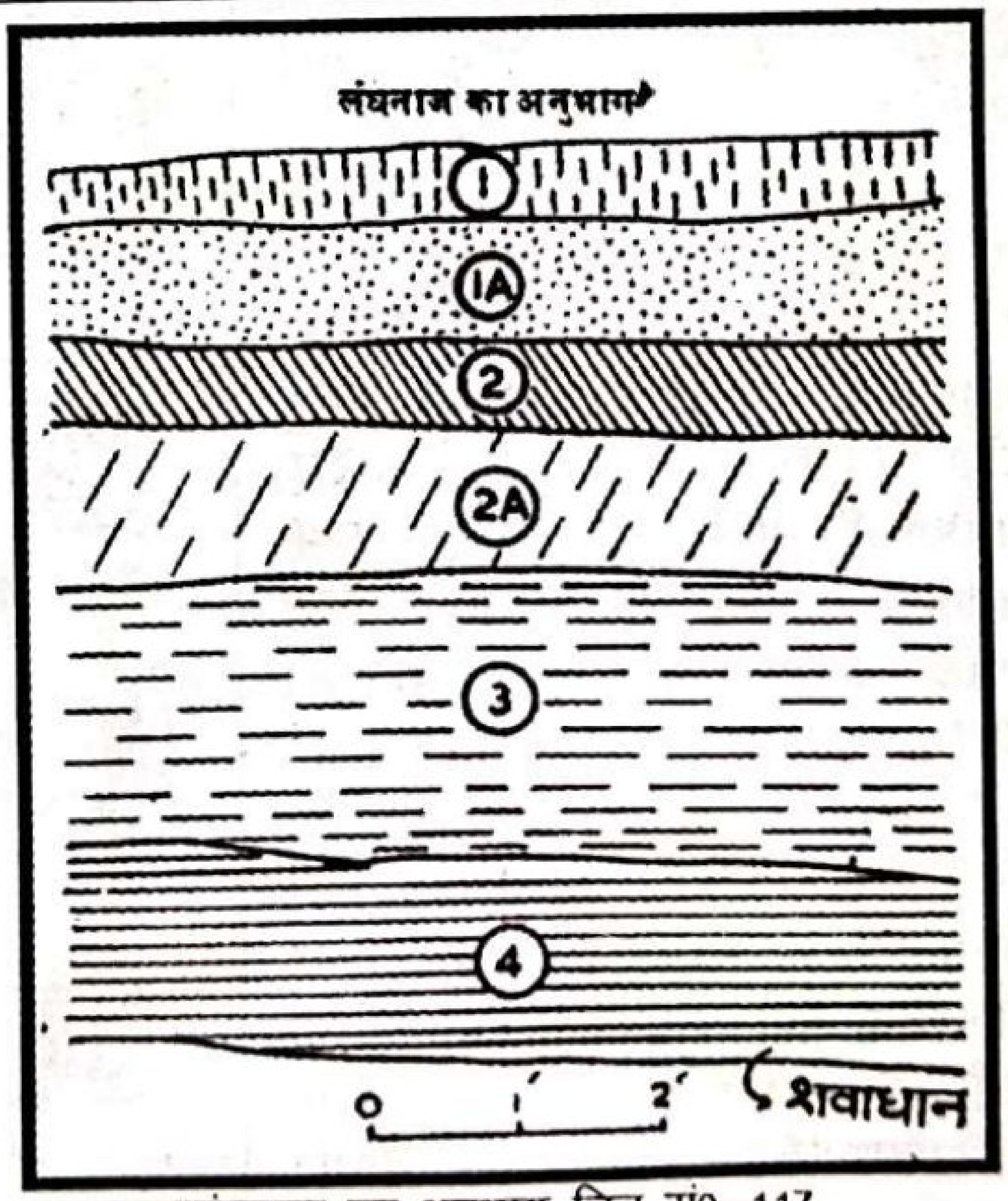


लंघनाज का अनुभाग चित्र सं0–117

सकता है (देखिए रेखाचित्र 20) 1949 में प्रो0 ज्वाएनर ने स्वंय उस अनुभाग का निरीक्षण किया तथा सांकलिया के निष्कर्षों की पुष्टि की। उनके क्षेत्रीय तथा प्रयोगशाला सम्बंधी अनुसंधानों के फलस्वरूप ज्ञात हुआ कि सतह से नीचे 4 फीट का स्तर पुरातन काल में भूमि–सतह (Land Surface) थी, क्योंकि उस स्तर पर मिट्टी में खाद की मात्रा (Humic Content) अधिक थी। इसी आधार पर प्रारम्भ में ज्वाएनर ने गुजरात के जलवायु सम्बंधी परिवर्तनों पर अपने विचार व्यक्त किए थे जिनका उन्होंने पुनः संशोधन किया (सांकलिया, एच0डी0, 1965, पार्श्वोद्धरित, पृ0 14)। 1963 में कैनेडी का स्तरीकरण डॉ0 सांकलिया के पहले के स्तरीकरण के ही अनुरूप था। अधिकांश मानव कंकाल, हड्डियां तथा अन्य सामग्री– प्रस्तर उपकरण एवं पॉटरी 3 से 6 फीट के मध्य स्तर से प्राप्त हुई थी।

ऊपर से प्रथम तीन फीट के जमाव से आधुनिक प्रकार की पॉटरी, एक लौह वाणाग्र कुछ लघुपाषाणोपकरण तथा हड्डियाँ (खोदी हुई) प्राप्त हुई थी। तीन फीट तथा उसके नीचे के संधि–स्तर से लघुपाषाणोपकरण, गदाशीर्ष (Ring Stone), तांबे का चाकू तथा लाल– और काली पॉटरी उपलब्ध हुई थी।

ऊपर से नीचे तक के लघुपाषाणोपकरणों में कोई तकनीकी अन्तर दृष्टिगोचर नहीं हुआ। उपकरणों के निर्माण के लिए चर्ट, चाल्सेडनी, क्वार्ट्ज का प्रयोग होता था, किन्तु कभी–कभी कार्नेलियन और इससे भी सीमित लाइडियानाइट (Lydianite) का प्रयोग होता था। चूँकि ये पत्थर वहाँ पर उपलब्ध नहीं हैं, इसलिए सांकलिया का विचार है कि वे मोदसा के निकट मझम नदी से लाए जाते थे।

उपकरण समुदाय में सबसे अधिक संख्या फलकों (8.90%) की है। उसके बाद समानान्तर बाहुफलक (4.67%), भुथड़े पार्श्व ब्लेड (3.38%) तथा अर्धचान्द्रिक (1.00%) आते हैं। त्रिभुज तथा समलम्ब चतुर्भुज बहुत कम (.0023% तथा .00107% क्रमशः) है। ब्यूरिन भी नगण्य है।

लघुपाषाणोपकरण के साथ घिसे हुए गेरू तथा सैण्डस्टोन के फानाकार (Wedge shaped) टुकड़े मिले हैं। क्या इनका उपयोग अन्नों आदि के पीसने के लिए होता था? यह सम्भावित प्रतीत नहीं होता।

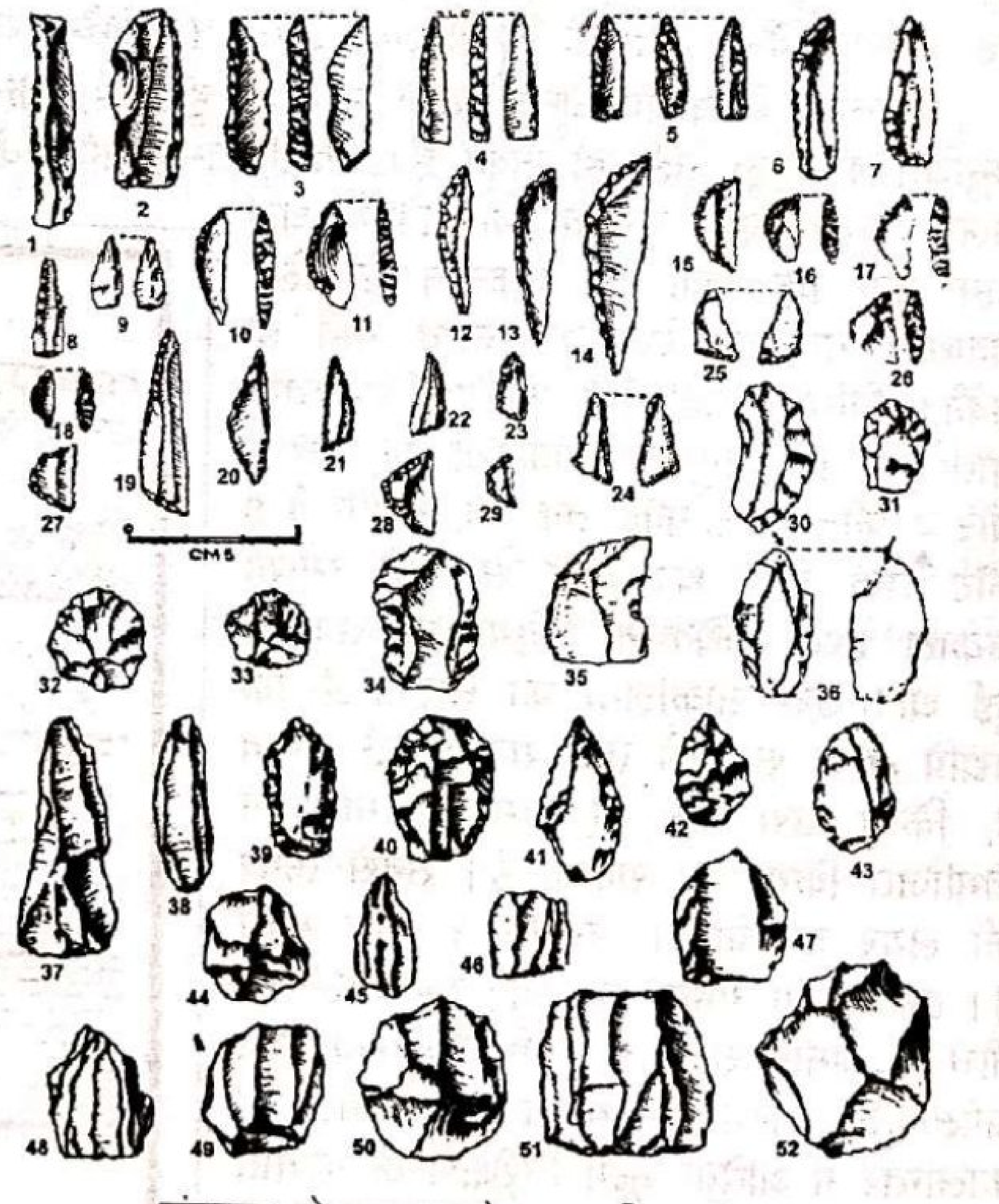

लंघनाज के लघुपाषाणोपकरण चित्र सं0–118

अनुमानतः इनका उपयोग उपकरणों के निर्माण के लिए निहायी के रूप में किया जाता होगा।

दो घृष्ट पाषाण ऐक्स (GroundAxes) भी मिले थे। ये क्लोराइट शिश्ट (Chlorite Schist) के बने थे। इनके अरिक्ति कुछ क्वार्टजाइट के पेबुल मानव–कंकालों से सम्बन्धित पाए गए थे। सम्भवतः कपाल को तोड़ने के बाद ये उसके ऊपर अथवा निकट रखे जाते थे। यह पत्थर भी कहीं से लाया गया था, क्योंकि वहां पर ये उपलब्ध नहीं है।

सांकलिया की धारणा है कि घिसे हुए गेरू के टुकड़ों का उपयोग रंग बनाने के लिए किया जाता था जिसे सम्भवतः जीवित अथवा मृत अवस्था में शरीर में लगाया जाता था। डेण्टेलियम शेल (Dentalium Shell), तथा चिपटे चक्रिक बीड आदि इस बात का निर्देश करते हैं कि लंघनाज–मानव आभरणों– माला, सिर की बंधी आदि– का प्रयोग करने लगा था (सांकलिया, एच0डी0, 1974, पार्श्वोद्धरित, पृ0 254)।

## पॉटरी :

पॉटरी 3 से 5 फीट के स्तर में प्रायः मिलती है। लंघनाज की पॉटरी को चार वर्गों में विभाजित किया गया हैः 1. घुटी लाल पॉटरी (Burnished Red Ware) 2. घुटी काली और लाल पॉटरी (Burnished BlackAnd Red Ware), 3. उत्कर्तित रूक्ष लाल पॉटरी (Incised Coarse Red Ware) 4. रस्टिकेटेड पॉटरी (Rusticated Ware) अधिकांश पॉटरी हस्तनिर्मित है। कुछ पर चाक के निशान भी मिलते हैं।

## पशुओं की हड्डियाँ

उत्खनन के फलस्वरूप पशुओं की बहुत–सी हड्डियां भी प्रकाश में आयी है। इनमें भारतीय गैंडा (Rhinoceros unicornis), हिरण (Hogdeer), बारहसिंहा (Swamp deer), गाय, भैस, काला हिरन (Cattle, Cow, Black buck), सुअर (Susscrofa cristatus), नीलगाय (Bose eaphustargo camelus) आदि हैं।

लंघनाज मानव शवाधान
चित्र सं0–119

## मानव शवाधान

लंघनाज में अभी तक 14 मानव कंकाल विभिन्न उत्खननों के फलस्वरूप प्रकाश में आए हैं। इनमें से तेरह कंकाल निकुंचित शवाधान (Flexed burial) हैं तथा एक विस्तीर्ण शवाधान (Extended burial) है। सम्भवतः मृत्योपरान्त शवों के पैरों को मोड़कर किसी वस्तु से बांध दिया जाता था, अन्यथा उनका यह स्वरूप नहीं होता। प्रारम्भ में सोफी एरहार्ट की धारणा थी कि लघंनाज के लोग नरभक्षी थे, इसीलिए प्रायः सभी कंकालों के शिर का भाग टूटा हुआ मिलता है। कालान्तर में कैनेडी ने सभी कंकालों का सूक्ष्म अध्ययन किया और वे इस निश्कर्ष पर पहुंचे कि कपालों के टूटने का कारण प्राकृतिक हो सकता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि किसी युद्ध अथवा अन्य कारणवश मृत्योपरान्त ये लोग दफनाए गए थे। मृतकों के साथ समाधि सामग्री (Grave goods) नहीं मिली हैं। तृतीय कंकाल को छोड़कर अन्य सभी का सिर पूर्व की ओर तथा पैर पश्चिम की ओर था। तृतीय कंकाल का शिर पश्चिम में तथा पैर पूर्व दिशा में था। सभी के पैर मुड़े थे और वे करवट लेटे पाए गए थे। उनके कंकाल

Scanned with OKEN Scanner

आंशिक रूप में ही मिले हैं। इससे यह भी अनुमान किया जाता है कि सम्भवतः वे दो बार दफनाए गए हों।

लंघनाज़ के पुरूषों (Skl. V) की अधिकतम लम्बाई 174 से0मी0 तथा स्त्रियों की औसत (Skl. XII) लम्बाई 158 से0मी0 है।

यहाँ के लोग मिश्रित प्रजाति वर्ग के प्रतीत होते हैं। उनकी आकृति के आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि उनमें 'Mediterianean तथा Veddid' तत्व विद्यमान है।

कार्बन तिथि : यहाँ से एक कार्बन तिथि TF 744 3875±105 2041बी0सी0 उपलब्ध है।

# 46

## आदमगढ़– मध्य प्रदेश

आदमगढ़ की शिलाश्रयें मध्य प्रदेश में होशंगाबाद के निकट स्थित है (जोशी, आर0 वी0 ऐण्ड खरे, एम0डी0, 1966, 'माइक्रोलिथिक वियरिंग डिपोजिट ऑफ आदमगढ़ राक शेल्टर्स, स्टडीज इन प्रीहिस्ट्री, कलकत्ता)। यहां पर शिलाश्रय में तथा उसके बाहर लघुपाषाणोपकरण बहुत अधिक संख्या में मिलते हैं। पुरापाषाणकालीन उपकरण भी यहाँ से प्राप्त हुए थे। यहाँ पर पुरातत्व सर्वेक्षण के जोशी तथा खरे ने शिलाश्रय तथा उसके बाहर लगभग 18 खनतियों में उत्खनन किया जिसमें ADG-1 तथा ADG -2 वहां की सबसे प्रतिनिधिक खनतियाँ हैं।

शिलाश्रय नं0 12 के निकट ADG-1 खनती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ एक विशाल शिलाश्रय था जिसके ऊपर की छत काफी दूर तक बाहर निकली हुई थी जो कालान्तर में गिर गई थी।

शिलाश्रयों के बाहर जहां उत्खनन किया गया था। वहाँ ऊपर का सतही जमाव 2–3 से0मी0 भूरी भुरभुरी मिट्टी का था। इसमें केवल एक अथवा दो लघुपाषाणोपकरण मिले थे। इसके नीचे 4–5 से0मी0 पत्थर के टुकड़े और पत्थर के चूरे का जमाव था। इसके नीचे 50–150 से0मी0 काली चिपचिपी मिट्टी का निक्षेप था। इसी जमाव से लघुपाषाणोपकरण प्राप्त हुए थे। इस सम्पूर्ण जमाव में स्तरीकरण नहीं किया जा सका। इसके निम्नतम स्तर में कुछ पुरापाषाणकालीन उपकरण भी प्राप्त हुए थै। मध्य पाषाणिक मानव के यहाँ पर आने से पूर्व ही वे वहां पड़े थे।

ADG-2 शिलाश्रय के अन्दर की खनती थी। खनती के मुख के सामने एक टालुस जमाव (Talus deposit) था। एक लम्बी खनती शिलाश्रय के अन्दर से बाहर टालुस तक डाली गई थी। शिलाश्रय के अन्दर 1–5 से0मी0 का सतही जमाव था। शिलाश्रय के बाहर ऊपर के सतही जमाव के नीचे एक गहरा भूरा जमाव था जिसमें लघु पाषाणोपकरण प्राप्त हुए थे। इसके नीचे लाल लैटेराइट मिट्टी का जमाव था जिसमें कुछ पुरापाषाणकालीन उपकरण भी प्राप्त हुए थे। सबसे नीचे लैटेराइटी जमाव था जिसमें कोई भी उपकरण नहीं मिले थें। काली मिट्टी का जमाव किस प्रकार हुआ यह एक समस्या का विषय है, क्योंकि इस क्षेत्र में इस प्रकार की मिट्टी नहीं है, अतः अनुमान किया जाता है कि यह वायु निक्षेपित होगी। इस प्रकार की मिट्टी नर्मदा के सबसे ऊपर की वेदिका पर भी मिलती है।

जोशी (जोशी, आर0 वी0, 1966, पार्श्वोद्धरित, पृ0 92) की धारणा है कि चूंकि जिस लेयर में लघुपाषाणोपकरण मिले हैं वह वायु निक्षेपित हैं, अतः अनुमानतः जिस समय उसका निक्षेपण हो रहा था वह अपेक्षाकृत शुष्क काल होगा। इस प्रकार की शुष्कता के प्रमाण टेरी, लंघनाज तथा बीरभानपुर से भी मिले हैं।

उपकरण समुदाय में सबसे अधिक संख्या कोर, ब्लेड (विविध प्रकार के) शर तथा फलकों की है। स्क्रेपर तथा त्रिभुजों की संख्या बहुत कम है। समलम्ब, चतुर्भुज, छिद्रक आदि नगण्य है। जोशी ने इसे 'शर तथा ब्लेड' उद्योग से नाम से अभिहित किया है। प्रस्तर उपकरणों के अतिरिक्त काफी अधिक संख्या में पशुओं की हड्डियाँ भी मिली हैं। भोलानाथ (नाथ, भोला, 1967, 'एनिमल रिमेंस

Scanned with OKEN Scanner

फ्रॉम आदमगढ़ रॉक शेल्टर' बुलैटिन इण्डियन म्यूजियम, II पृ0 29–37 पेज 267) के अनुसार सभी पशुओं में लगभग 50% पालतू हैं। पालतू पशुओं की सूची इस प्रकार है –

1. Cains Familiaris Linn
2. Bos indicus Linn
3. Bubalus bubalis Linn
4. Capra hircusAegagrus Erxleben
5. Ovis orientails Vignei Blyth race domesticus
6. Sus scrofa cristatus Wanger

जंगली पशुओं में निम्न है :

1. Varanus grisius Daud
2. Hystrix Cristata Linn
3. Equus sp.
4. Cervus duvanceli Cuvier
5. Cervus uvicolor kerr
6. AxisAxis Erxeleben
7. Lepus nigri collis Cuvier

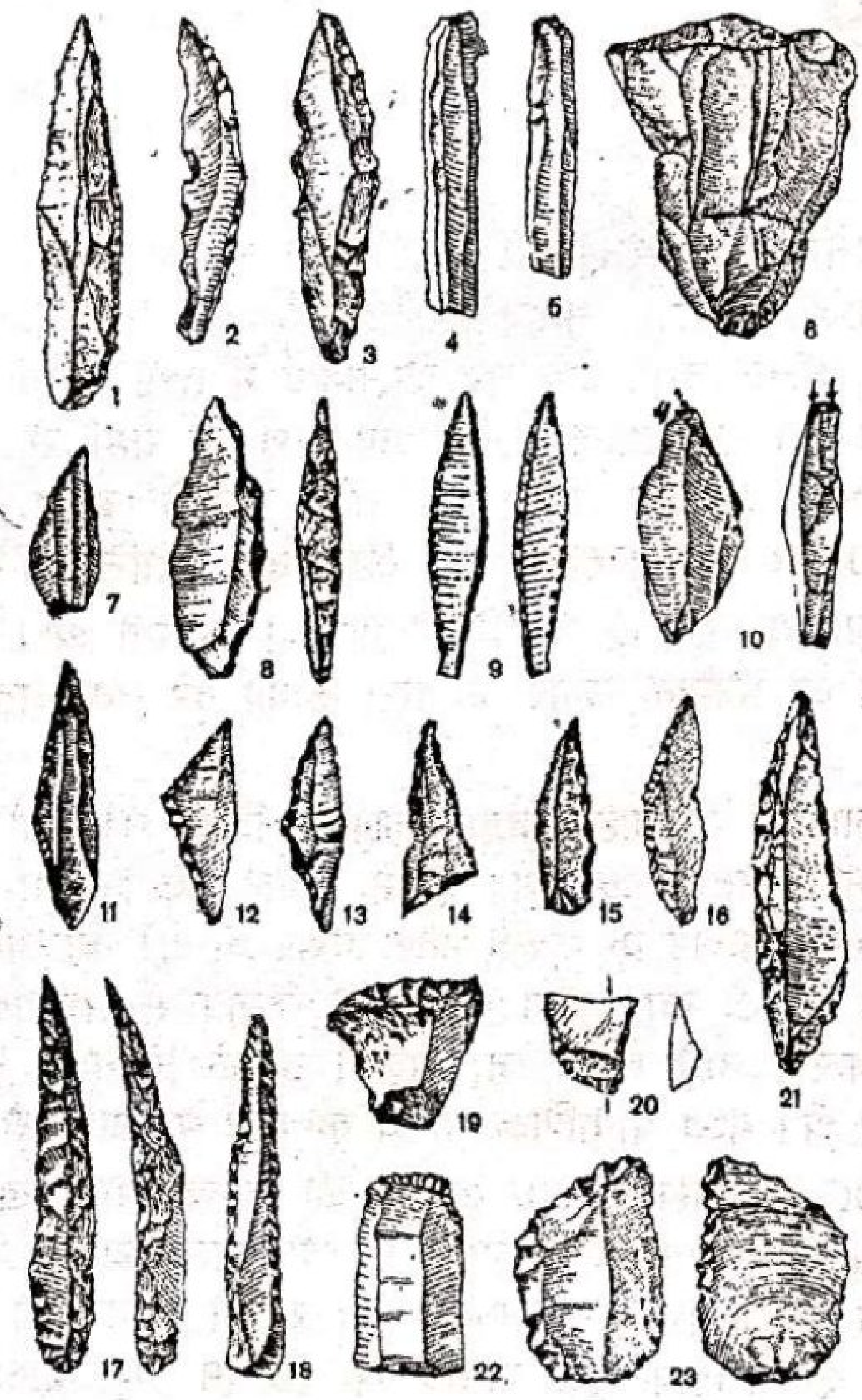

आदमगढ के लघुपाषाणोपकरण चित्र सं0–120

यह उल्लेखनीय है कि मध्य पाषाणिक स्थलों में केवल यहाँ से ही पशुपालन के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। इससे अनुमान किया जाता है कि ये लोग नव पाषाणिक सभ्यता की ओर शीघ्रता से अग्रसर हो रहे थे।

यहाँ से दो कार्बन तिथियाँ एक शेल (Shell) तथा दूसरी जानवरों की जली हड्डी से है। वे क्रमशः इस प्रकार हैं –

TF 120 : 7240 ± 125 ;7450 ± 130) B.P.
TF 116 : 2765 ;2845 ± 105) B.P.
....

# 47

# बगोर–राजस्थान

बागोर राजस्थान के सभी स्थलों में सबसे महत्वपूर्ण है। बागोर मेवाड़ क्षेत्र के भीलदाड़ा जिले में एक प्रसिद्ध गाँव है जो कोठारी के बायें तट पर भीलवाड़ा से 25 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है।

प्रागैतिहासिक स्थल ग्राम से लगभग एक किलोमीटर पूर्व की ओर कोठारी नदी के बायें तट पर एक रेतीले टीले पर स्थित है। इस प्रकार के टीले प्रायः नदियों के किनारे इक्के–दुक्के मिलते हैं। ये पश्चिमी राजस्थान में मिलने वाले रेत के टीलों से नितान्त भिन्न हैं। 1968 से 1970 तक पूना विश्वविद्यालय के वीरेन्द्रनाथ मिश्र ने यहाँ पर उत्खनन किया था।

बागोर का टीला निकटवर्ती भूमि से सात मीटर ऊँचा है, कहीं–कहीं पर ऊँचाई 10 मीटर दी गई है। सांकलिया ने केवल 6 फीट दिया है)। टीले का निर्माण हवा के द्वारा उड़ाकर लायी गई रेत के द्वारा हुआ है। रेत के सम्पूर्ण जमाव में लघुपाषाणोपकरण मिलते हैं जिनसे यह अनुमान किया जाता है कि जिस समय टीले का निर्माण हो रहा था उस समय यहाँ पर मध्य पाषाणिक संस्कृति का प्रसार था।

## सांस्कृतिक क्रम

उत्खनन के आधार पर यहाँ के सम्पूर्ण जमाव (1.50 अथवा 1.75 मीटर) को तीन सांस्कृतिक कालों में विभाजित किया गया है। प्रारम्भ से अन्त तक इस स्थान पर निवास में विच्छेद के कोई प्रमाण नहीं मिलते हैं। मध्य पाषाणिक उद्योग का विकास नवीन सामग्री के प्रयोग के साथ–साथ क्रमशः होता गया।

प्रथम काल (5,000–2800 वर्ष ईसा पूर्व) : इस काल का सम्पूर्ण जमाव 50 से 80 सेमी0 है। इस स्तर से लघुपाषाणोपकरण तथा पशुओं की हड्डियाँ बहुलता से प्राप्त हुई हैं। उपकरणों के आधार पर अनुमान किया जाता है कि लोग आखेटक संग्रहक अर्थ–व्यवस्था में थे। लोग पत्थर के फर्श बनाकर रहते थे। सम्भवतः टट्टर के झोपड़े भी बनाते थे। अपने मृतकों को पूर्व–पश्चिम दिशा में विस्तीर्ण स्थिति में गाड़ते थे। इस काल के उद्योग को प्राक्पॉटरी ज्यामितिक उपकरणों के अन्तर्गत रख सकते हैं।

द्वितीय काल (2800–600 वर्ष ईसा पूर्व) :– इस काल का जमाव 30 से 50 सेमी0 मोटा है। इस काल में सर्वप्रथम ताम्र उपकरण तथा पॉटरी का प्रवेश होता है। यद्यपि लघुपाषाणोपकरणों का प्रयोग अभी भी होता था, किन्तु उनकी संख्या पहले से कम हो जाती है। पॉटरी हस्तनिर्मित है तथा उस पर उत्कीर्णन का अलंकरण मिलता है। मृतक पूर्व–पश्चिम दिशा में ही दफनाये जाते थे। उनके साथ समाधि सामग्री भी रखी जाती थी। सम्भवतः खेती तथा पशुपालन का प्रारम्भ हो गया था।

तृतीय काल (600 ईसा पूर्व 200 ई0)– इस काल का सम्पूर्ण जमाव 35 से 75 से0मी0 तक है, किन्तु यह टीले के मध्य भाग में ही सीमित था। इसमें लघुपाषाणोपकरण तथा पशुओं की हड्डियाँ बहुत कम हो जाती हैं तथा लोहे का प्रयोग होने लगता है। पॉटरी की बहुलता है। इस काल में

Scanned with OKEN Scanner

मृतकों को उत्तर–दक्षिण दिशा में गाड़ा गया है।

## उपकरण उद्योग

उत्खनन में प्राप्त सबसे अधिक सामग्री पाषाणोपकरणों की है। यद्यपि ये सभी कालों में मिले हैं, किन्तु उनकी सर्वाधिक प्रचुरता प्रथम काल में है। उपकरणों के निर्माण में क्वार्ट्ज तथा चर्ट पत्थरों का प्रयोग सबसे अधिक किया गया है।

छोटे ब्लेडों को गढ़कर उपकरण का स्वरूप देते थे। कोर अथवा फलकों पर बने आकार, के स्क्रेपर तथा ब्यूरिन विरले हैं। उपकरण समुदाय में पुनर्गढ़ित ब्लेड तिरछे कटे ब्लेड विविध आकार के त्रिभुज, शर, समानान्तर असम चतुर्भुज (Rhomboid), अर्धचान्द्रिक तथा शर है। इनके अतिरिक्त फलक तथा कोर पर बने स्क्रेपर और ब्यूरिन भी हैं। 'Petit Tranchets' भी काफी संख्या में मिले हैं।

अधिकांशतया सभी उपकरण 15 से 20 मि0मी0 लम्बे हैं। किन्तु कुछ उपकरण की लम्बाई 5–10 मि0मी0 के अन्तर्गत हैं।

## ताम्र उपकरण

द्वितीय काल के स्तर से पाँच ताम्र उपकरण, दो समाधियों से प्राप्त हुए हैं। इनमें एक सुई अथवा तकुआ नुमा है जो 10.5 से0मी0 लम्बा है।

द्वितीय काल के स्तर से पाँच ताम्र उपकरण, दो समाधियों से प्राप्त हुए हैं। इनमें एक सुई अथवा तकुआ नुमा है जो 10.5 से0मी0 लम्बा है। इसके एक सिरे को मोड़कर छेद बनाया गया है। दूसरा उपकरण भाले का फल (Spear head) है जिसके नीचे का भाग टूटा हुआ है। दोनों पक्षों में मध्य कटक है। शेष तीन उपकरण त्रिकोणात्मक शर है। तीनों में आधार के थोड़ा ऊपर दो समानान्तर छेद हैं। इससे मिलते–जुलते शर, हड़प्पा संस्कृति के स्थलों से मिले हैं। युनान के अन्तिम हेल्लाडिक I-III तथा अन्तिम

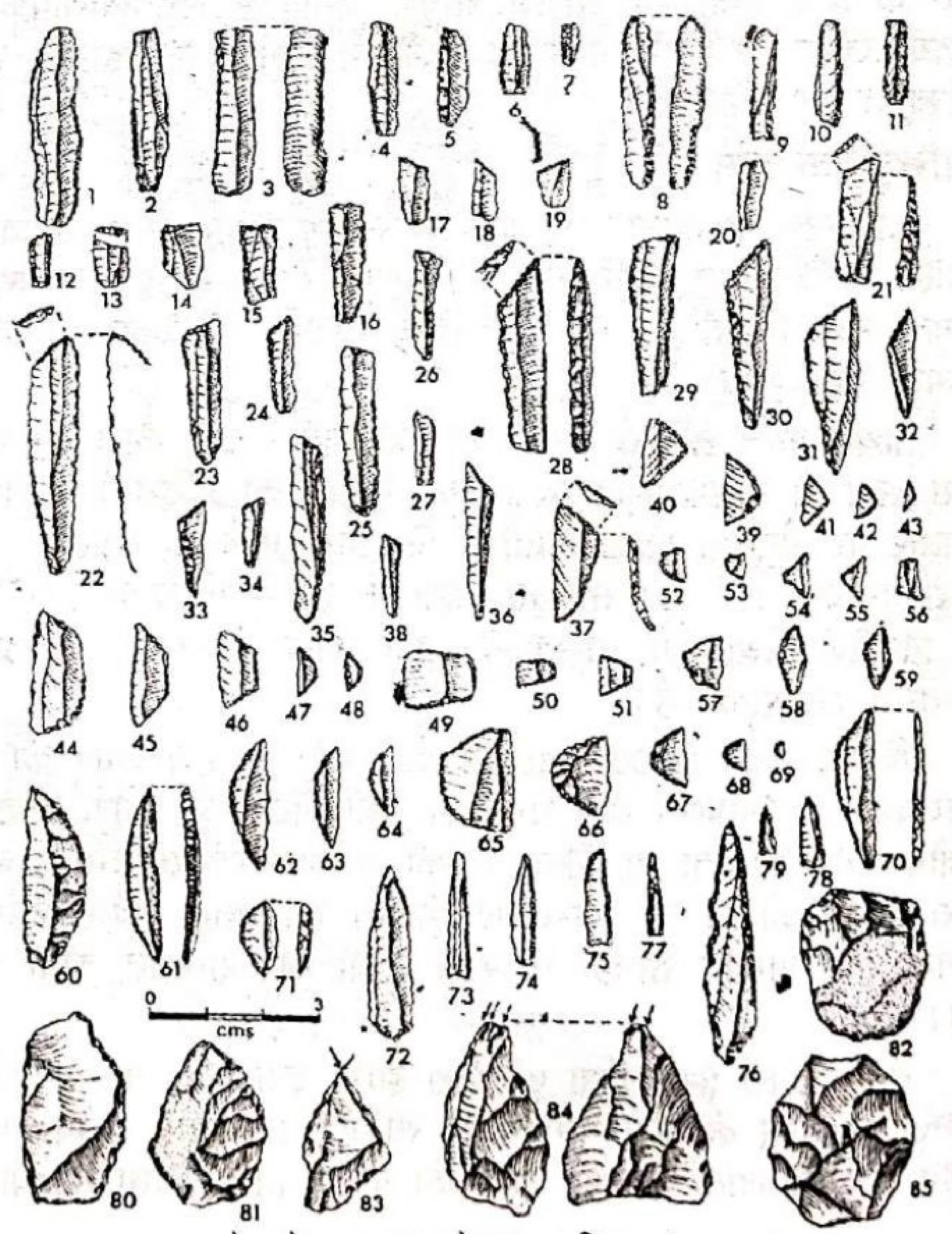

बगोर के लघु पाषाणोपकरण चित्र सं0–121

मिनोअन I-III से भी इस प्रकार के शर उपलब्ध हुए हैं।

### लौह उपकरण :

ये केवल तृतीय काल के जमावों से ही प्राप्त हुए हैं।

### मृद्भाण्ड उद्योग :

इनका उपयोग द्वितीय काल से प्रारम्भ होता है। प्रथम काल के जामव में बहुत छोटे–छोटे मृद्भाण्डों के टुकड़े मिले हैं, किन्तु वे किसी अन्य माध्यम से इस स्तर में पहुँचे होगें (मिश्र, वी0एन0 1971, पार्श्वोद्धरित, पृ0 65)। मृद्भाण्डों का वास्तविक स्तर द्वितीय काल का जमाव है। अधिकतर पात्र हस्तनिर्मित प्रतीत होते हैं।

बागोर के बर्तनों तथा अहार और कायथा के बर्तनों में कुछ साम्य लगता है। तृतीय काल के बर्तन द्वितीय काल के बर्तनों से नितान्त भिन्न है।

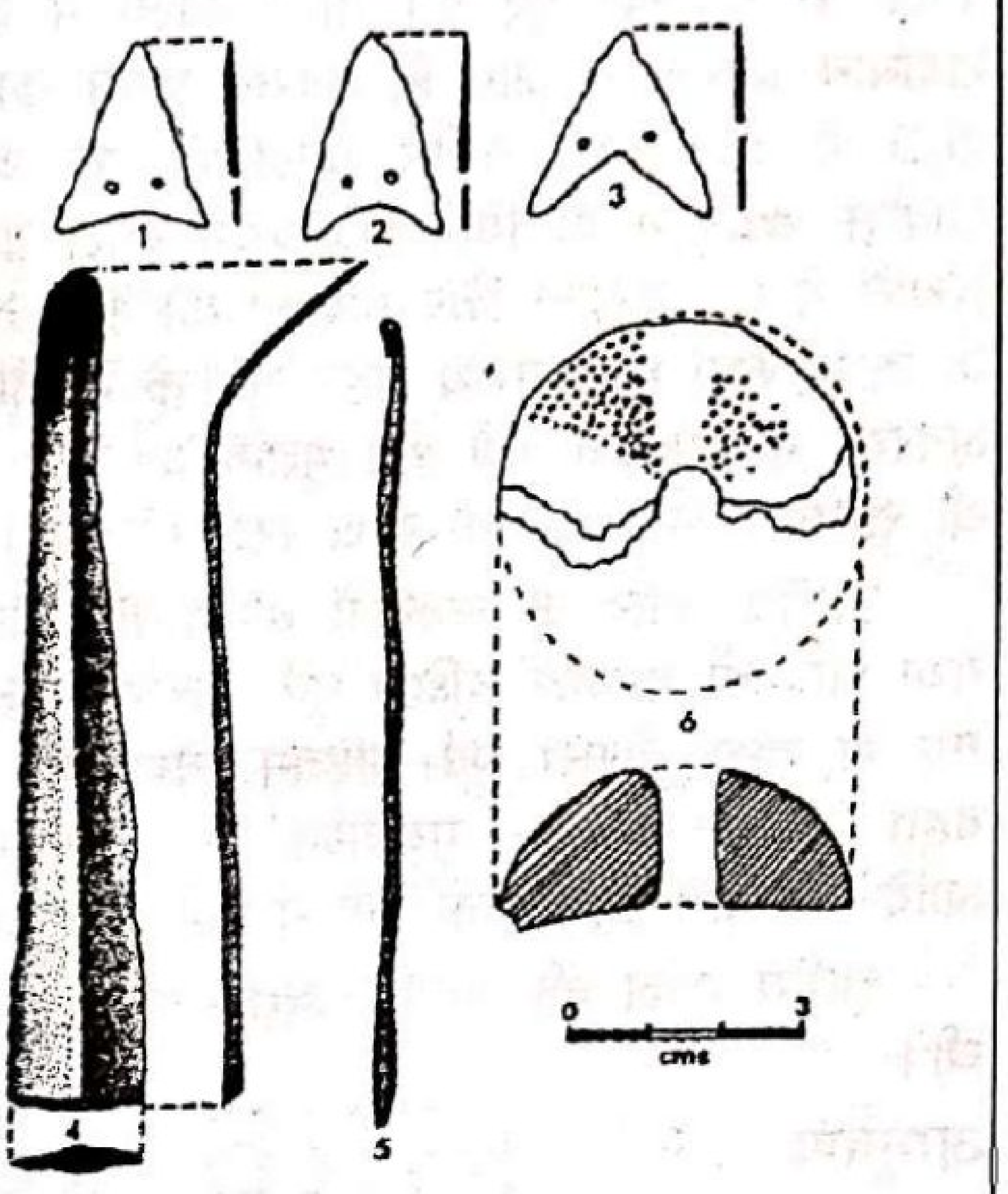


तीन त्रिकोणात्मक शर,मध्य कटक युक्त ब्लेड,तकुआ
चित्र सं0–122

### गृह निर्माण

प्रथम काल के प्रारम्भ में घरों के कोई भी अवशेष नहीं मिले हैं, किन्तु कुछ समय बाद ही पत्थर के बनाये फर्श मिलने प्रारम्भ हो जाते हैं। फर्शों का निर्माण छोटे–बड़े आकार में चिपटे शिला खण्डों एवं गोल पत्थरों को जमाकर किया गया है। फर्शों के ऊपर मनुष्य द्वारा भोजनोपरान्त छोड़ी हुई हड्डियाँ प्रस्तर उपकरण आदि प्रचुर संख्या में मिले हैं। इनके अतिरिक्त 3–5 मीटर के पत्थर के वृत्त भी मिले हैं जो सम्भवतः प्राचीन वृत्ताकार कुटीरों के अवशेष हों।

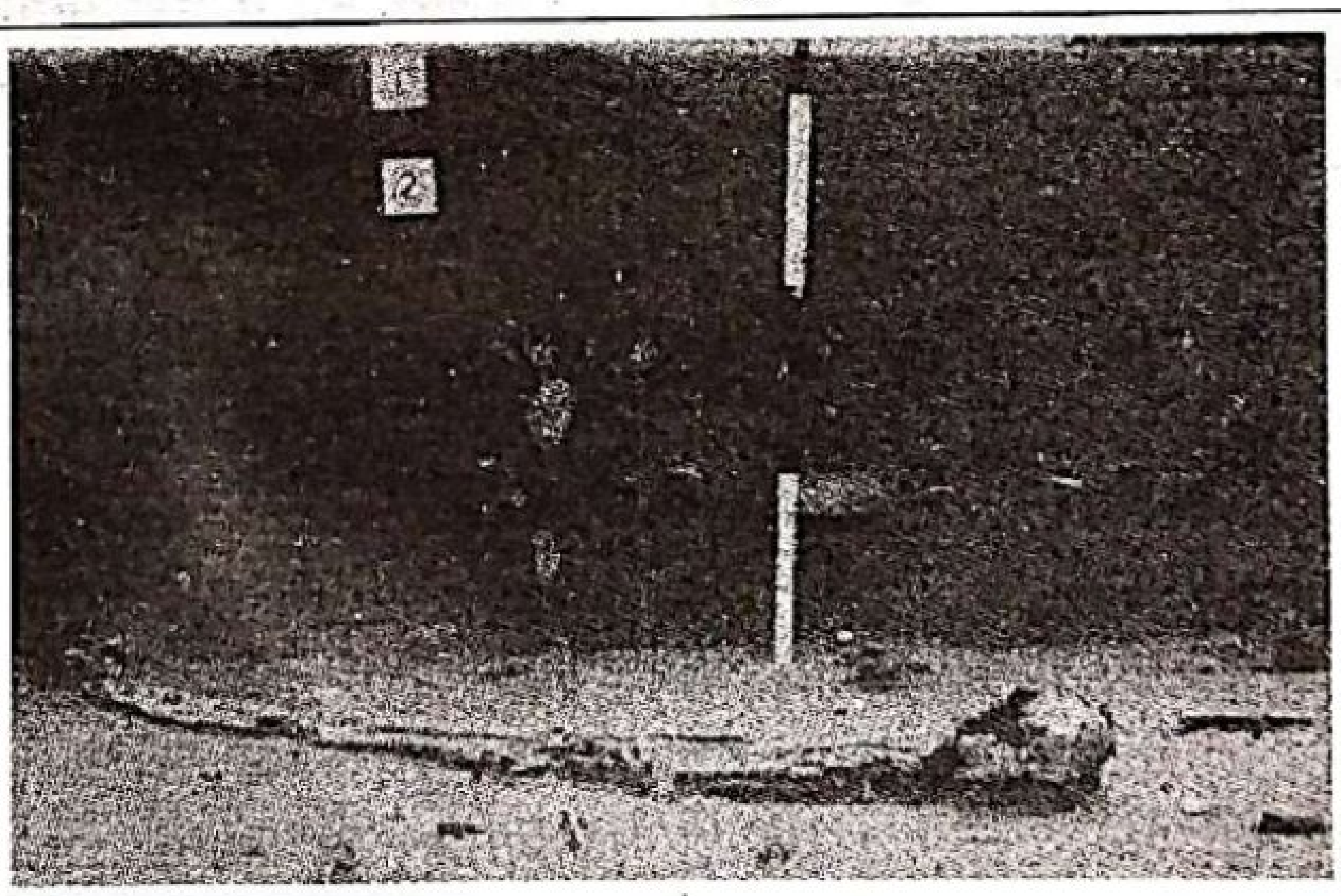


विस्तीर्ण शवाधान कंकाल चित्र सं0–123

तृतीय काल का एक सुरक्षित फर्श मिला है। इस काल में ईट का प्रयोग होने लगा था।

### शव निवर्तन

शव निवर्तन के प्रमाण तीनों

कालों से उपलब्ध हुए हैं। तीनों कालों में कुल मिलाकर पाँच शवाधान प्रकाश में आए हैं, जिसमें प्रथम काल में एक, द्वितीय काल में तीन तथा तृतीय काल में एक था। सभी शवाधान आवास–स्थल में ही मिले थे। प्रथम काल का कंकाल विस्तीर्ण स्थिति में था, उसका शिर पश्चिम की ओर तथा बायाँ हाथ पेट के ऊपर रखा था। सराय नहर राय के कंकाल भी लगभग इसी अवस्था में दफनाये गये थे। मृतक के पास कुछ हड्डियाँ मिली थी सम्भवतः उन्हें शव के साथ रखा गया हो।

द्वितीय काल के कंकालों को उनका पैर मोड़कर लिटाया गया था। दो कंकाल दक्षिण पूर्व–उत्तर पश्चिम दिशा में लेटाए गए थे तथा तीसरा पूर्व–पश्चिम दिशा में। कंकालों के साथ बहुत सी सामग्री – मृद्‌भाण्ड, खाद्य पदार्थ तथा उपकरण आदि– समाधि सामग्री के रूप में रखे गये थे।

तृतीय काल की शवाधि उत्तर–दक्षिण दिशा में लिटाई गई थी।

अगेट तथा कार्नेलियन का हार
चित्र सं0–124

## आभूषण

प्रथम काल में अगेट तथा कार्नेलियन के कुछ बीड मिले थे। द्वितीय काल में इनकी संख्या पहले की अपेक्षा अधिक थी। एक कंकाल के गले में पूरी माला के प्रमाण मिले थे।

## पत्थर की अन्य वस्तुयें

लघुपाषाणोपकरणों के अतिरिक्त प्रस्तर के हथौड़ें, सिल, बट्‌टे एवं पत्थर की गोलियाँ तथा गदाशीर्ष भी मिले थे। इस प्रकार की सामग्री प्रायः नव पाषाणिक अथवा ताम्र पाषाणिक सन्दर्भों में ही अधिकांशतया मिलती है।

## तिथि क्रम

बागोर से पाँच कार्बन तिथियाँ उपलब्ध हैं। वे इस प्रकार है (इनमें प्रथम तिथि 5,568 अर्धजीवन तथा दूसरी कोष्ठकों में 5,730 अर्धजीवन पर आधारित है।) :–

1- TF 786 : 6430 ± 200 (6545 ± 200) = 4595 B.C.
2- TF 1007 : 5620 ± 125 (5785 ± 130) = 3835 B.C.
3- TF 1012 : 5090 ± 85 (5235 ± 90) = 3285 B.C.
4- TF 1009 : 4585 ± 105 (4715 ± 105) = 2765 B.C.
5- TF 1005 }
TF 1006 : } 3945 ± 90 (4060 ± 90) = 2110 B.C.

इनमें से प्रथम तीन तिथियाँ प्रथम काल अथवा मध्य पाषाणिक काल की हैं तथा अन्तिम दो द्वितीय अथवा ताम्रपाषाणिक काल की। मिश्र की धारणा है कि इसके आधार पर यहाँ की मध्य पाषाणिक संस्कृति को 5000 से 2800 वर्ष ईसा पूर्व के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

Scanned with OKEN Scanner

# नवपाषाण काल
# (NEOLITHIC PERIOD)

Scanned with OKEN Scanner

# 48

# नवपाषाण काल

## (Neolithic Period)

पाषाण युग का यह अन्तिम विभाजन है तथा मध्य–पाषाणकालीन संस्कृति (Mesolithic) का अनुवर्ती। मानव–जीवन के विकास के इतिहास में नवपाषाण युग सबसे महत्वपूर्ण एवं क्रांतिकारी काल है। अभी तक मानव अपने जीवन–निर्वाह के लिए प्रकृति की कृपा पर पूर्णरूपेण निर्भर था, किन्तु इस काल में उसने प्राकृतिक तत्वों को अपने नियन्त्राण में करने का सफल प्रयास किया। कृषि तथा पशुपालन के ज्ञान ने मानव–जीवन के जिस विकास चक्र को प्रारम्भ किया वह आज भी गतिवान है। यदि यह कहें कि ये दोनों आविष्कार मानव–जीवन के विकास के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण थे, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इन आविष्कारों के फलस्वरूप मानव वन्यता के जीवन से आगे बढ़ता है। मध्य–पाषाण काल (Mesolithic) में मनुष्य भोजन की तालाश में खानाबदोश के रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान पर विचरण करता रहता था; किन्तु कृषि कर्म के आविष्कार के फलस्वरूप अब वह स्थिर जीवन व्यतीत करने लगा। फलतः स्थायी आवासों (Permanent settlements) का निर्माण हुआ, परिवार एवं कुटुम्बों का विकास तथा ग्रामों का जन्म हुआ। प्रोफेसर चाइल्ड के शब्दों में इस युग में 'आत्म–निर्भर–खाद्योत्पादक अर्थ–व्यवस्था' (A self sufficing food producing economy) का जन्म हुआ। वास्तव में यही मानव के विकास की आधारशिला है।

यह युग केवल आर्थिक दृष्टिकोण से ही नहीं, अपितु उपकरण निर्माण सम्बन्धी विशिष्टताओं के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण है। उपकरण निर्माण–प्रणाली में इस युग में आमूल परिवर्तन हो जाता है। नवीन प्रकार के उपकरणों का आविष्कार होता है। उपकरणों के प्रकार तथा निर्माण प्रणाली में यह परिवर्तन मानव को बदलती हुई स्थितियों से सामंजस्य स्थापित करने के लिए आवश्यक थे। अतः आवश्यकतानुसार नवीन उपकरणों का आविष्कार किया गया।

इस युग की तीसरी विशिष्टता मृदभाण्ड कला का विकास है। इस काल के पूर्व भी अर्थात् मध्यपाषाण काल में बहुत से स्थानों से हस्तनिर्मित मृदभाण्ड मिले हैं, किन्तु उस युग में मृदभाण्ड का उद्योग के रूप में विकास नहीं हुआ था। चाक का आविष्कार औद्योगिक जगत का सबसे क्रांतिकारी एवं महत्वपूर्ण आविष्कार था।

Scanned with OKEN Scanner

## नव पाषाण काल के पुरास्थल

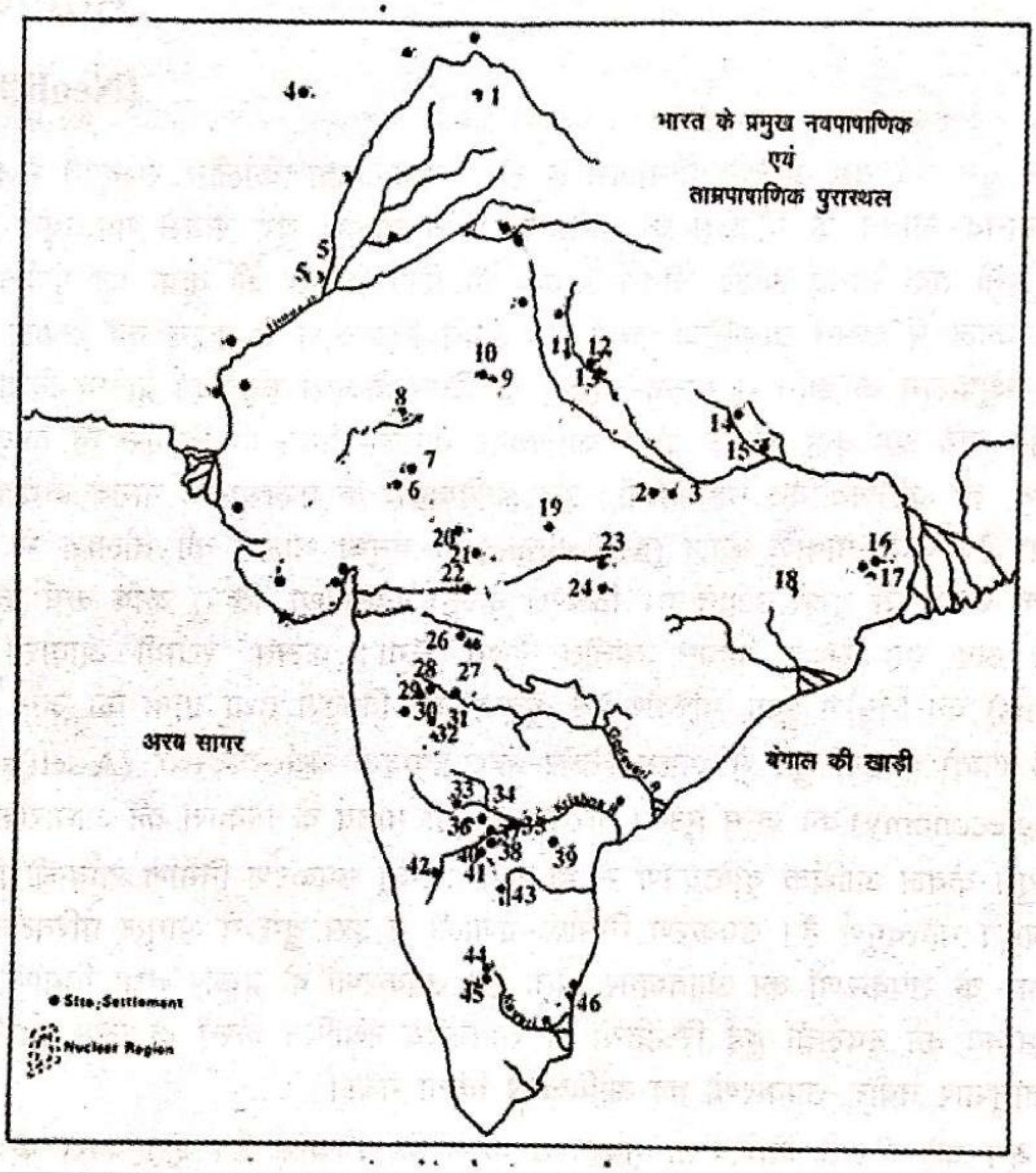


1. बुर्जहोम 2. महगड़ा 3. कोलडिह्वा 4. शालोजान 5. फोर्टमुनरो 6. अहाड़ 7. गिलुण्ड 8. खुर्दी 9. जोधपुर 10. गनेश्वर 11. लालकिला 12. जाखेड़ा 13. अन्तरंजीखेड़ा 14. सोहगौरा 15. चिरांद 16. महिष्दल 17. पाण्डुराजार डिभी 18. बरूडीह 19. एरण 20. नागदा 21. कायथा 22. नवादाटोली 23. त्रिपुरी 24. गुनगेरिया 25. लोथल 26. प्रकाश 27. नेवासा 8. डायमाबाद 29. जौर्वे 30. चन्दोली 31. इनामगाँव 32. सोनेगाँव 33. कोदेकल 34. मास्की 35. उत्नूर 36. पिकलिहल 37. कल्लूर 38. टेक्कलकोटा 39. पटपद 40. संगनकल्लू 41. कुपगुल 42. हल्लूर 43. पलवाय 44. टी नरसीपुर 45. हेमिज 46. मंगलम । चित्र सं0–125

मानव जीवन प्राणाली में परिवर्तन को आकस्मिक घटना नहीं मानना चाहिए। सहस्त्रों वर्षो के क्रमिक ज्ञानार्जन के बाद ही ये परिवर्तन सम्भव हो सके थे। संसार के विभिन्न भागों में भी यह परिवर्तन हुआ। खेद का विषय है कि अभी तक यह स्पष्टतया ज्ञात नहीं है कि यह आर्थिक तकनीकी परिवर्तन कैसे और कहाँ पर सर्वप्रथम हुआ। इस सम्बन्ध में पश्चिमी एशिया के कुछ आवास विशेष उल्लेखनीय हैं, जहाँ पर आखेट सम्बन्धी आर्थिक दशा से कृषि सम्बन्धी आर्थिक दशा का कुछ परिवर्तन देखा जा सकता है। नतूफियन संस्कृति में सर्वप्रथम, आखेटक लोगों को हम फसल का उपयोग करते हुए देखते हैं। केस्पियन–सागर के दक्षिण तट पर बेल्ट (Belt) तथा होतू (Hotu) कन्दराओं में क्रम से मध्य पाषाणकालीन तथा नवपाषाणकालीन अवशेषों के अनेक स्तर (Succession of Mesolithic and Neolithic occupation) मिले हैं, किन्तु दोनों में कोई पारस्परिक विकासात्मक क्रम नहीं मिलता।

भारत के नवपाषाण युग के आविर्भाव तथा विकास के सम्बन्ध में ज्ञान और भी सीमित है। अभी तक कोई भी ऐसा स्थल प्रकाश में नहीं आया है, जिससे ज्ञात हो सके कि कैसे प्रागैतिहासिक मानव ने आखेटक अवस्था से कृषक अवस्था में पदार्पण किया। चोपनी माण्डों के उत्खनन इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। वहाँ पर आखेटक अवस्था से उत्पादक अवस्था में प्रवेश के स्तरित साक्ष्य मिले हैं। इसके अतिरिक्त दक्षिण भारत में भी कुछ स्थलों से इस प्रकार के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। संगनकल्लू में, प्रथम स्तर से, ट्रैप तथा सैण्डस्टोन के विशालकाय रासायनिक रंग युक्त फलकों के साथ रूक्ष लघु–पाषाण उपकरण मिले हैं, जो मृद्भाण्डों से असम्बन्धित हैं। इसके तथा नवपाषाणयुगीन स्तर के बीच के स्तर में सभ्यता के कोई भी अवशेष नहीं मिलते। अतः दोनों में कोई भी विकासात्मक क्रम मानना सम्भव नहीं हैं, किन्तु नवपाषाणयुगीन संस्कृति के स्तर के पहले इस प्रकार के स्तर का मिलना कम महत्वपूर्ण नहीं है। दक्षिणी क्षेत्र के टी नरसीपुर को छोड़कर प्रायः सभी नवपाषाणयुगीन संस्कृति के आवासों से लघु पाषाण उपकरण – ब्लेड, अर्धचान्द्रिक, विषमकोण समलम्ब चतुर्भुज तथा शर आदि – भी प्राप्त हुए हैं किन्तु यह कहना कठिन है कि मध्य–पाषाणयुगीन लघु–पाषाण उपकरणों का नवपाषाण उद्योगों से क्या सम्बन्ध था?

इस दृष्टिकोण से गुजरात की साबरमती घाटी में लघनांज तथा ओडिसा के बूढ़ावलंग घाटी में कुचाई के साक्ष्य विशेष उल्लेखनीय हैं। लघंनाज में प्राप्त लघुपाषाण उपकरणों के साथ प्रायः पीसने के लिए सिल–लोढ़े (Grinding-stone), गदाशीर्ष (Mace-head) तथा मृदभाण्ड भी प्राप्त हुए हैं। इनसे इस बात की कल्पना की जा सकती है कि मध्य पाषाण युग की आखेटात्मक आर्थिक दशा से यहाँ के लोग क्रमशः कृषि उत्पादक आर्थिक दशा (Food producing economy) में पदार्पण कर रहे थे। इसी प्रकार कुचाई में लघु–पाषाण संस्कृति के प्रमाण मिलते हैं। किन्तु फिर भी दोनों में कोई विकासात्मक क्रम नहीं मिलता है। सारांश में, अभी नवपाषाण संस्कृति के आविर्भाव की समस्या को उचित प्रकार से समझने के लिए अधिक अन्वेषण की आवश्यकता है।

साधारणतया भारत के नवपाषाणयुगीन संस्कृति को तीन प्रमुख क्षेत्रों–– उत्तरी, दक्षिणी, तथा पूर्वी– में विभाजित करते हैं। इनके अतिरिक्त मध्य तथा पश्चिमी भारत के दक्षिणी क्षेत्र के लिए चौथा विभाजन भी किया जाता है। किन्तु इस प्रदेश की नवपाषाण युगीन संस्कृति एक मिश्रित संस्कृति है। इसका तथा ताम्र पाषाण युगीन संस्कृति का विभाजन स्पष्ट नहीं है। इन चारों प्रदेशों के सांस्कृतिक स्तर तथा मूल उपादानों में अत्यधिक विषमता है। इसके अतिरिक्त प्राचीनता के दृष्टिकोण से भी इनमें अत्यधिक अन्तर है। इनकी विभिन्नता में एकात्मकता स्थापित करने वाले

Scanned with OKEN Scanner

तथ्य पालिशदार, घिसकर बनाए गए उपकरण तथा कुछ अंशों में आर्थिक प्रणाली मात्र ही हैं।

भारत की नवपाषाणयुगीन संस्कृतियों के तिथि के सम्बन्ध में निश्चयात्मक ढंग से कुछ भी कह सकना सम्भव नहीं है। किन्त प्राप्त $C^{14}$ तिथियों के आधार पर कुछ अनुमान अवश्य किया जा सकता है। दक्षिण भारत में अभी तक प्राप्त तिथियों के आधार पर कोदेकल (Kodekal) की तिथि 2460 ± 105 ई० पू० प्राचीनतम है। यह वहाँ की नवपाषाणयुगीन संस्कृति के निम्नतम स्तर से प्राप्त हुई है। बुर्जहोम की प्राचीनतम तिथि 2375 ± 120 ई० पू० है। उतनूर की तीन तिथियाँ, 2040 ± 115 ई० पू०, 2050 ± 115 ई० पू०, 2300 ± 155 ई० पू० हैं। कोदेकल, बुर्जहोम तथा उतनूर की तिथियों के आधार पर भारत के नवपाषाणयुगीन संस्कृति को लगभग 2600 और 2700 वर्ष ईसा पूर्व तक ले जा सकते हैं। सम्भावना यह है कि वह और अधिक प्राचीन होगी। उत्तरी विंध्य क्षेत्र में कोलडिहवा से कतिपय अति प्राचीन तिथियाँ उपलब्ध हैं जो क्रमशः 6570 ± 210 ई० पू०, 5440 ± 240 ई० पू० तथा 4530±185 ई० पू० हैं। महगड़ा से प्राप्त ऊष्मादीप्ति की तिथि 2265 ई० पू० वहाँ की सभी तिथियों में प्राचीनतम है। यदि कोलडिहवा की तिथि पर ध्यान दें तो नवपाषाणयुग की प्राचीनता पाँचवीं, चौथी सहस्राब्दी ई० पू० तक ले जा सकते हैं। वास्तव में इस क्षेत्र में और अधिक अनुसंधान की आवश्यकता है लहुरा देवा, झूसी और टोकवा से प्राप्त कार्बन तिथियों के आधार पर नवपाषाण संस्कृति की प्राचीनता सातवी सहस्राब्दी ई० पू० तक जारही है, इसके अतिरिक्त मध्य गंगा के मैदान, विंध्य क्षेत्र, पूर्वोत्तर भारत तथा पश्चिमोत्तर भारत में इस संस्कृति के साक्ष्य मिल रहे है। अंतिम सीमा के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता, परन्तु द्वितीय सहस्त्राब्दी ई० पू० के मध्य के पूर्व, ताम्र पाषाणिक संस्कृति के आगमन के पहले तक यह संस्कृति चलती रही। कहीं – कहीं नवपाषाणयुगीन उपकरणों का प्रयोग ऐतिहासिक काल के प्रारम्भ तक होता रहा है।

# उत्तर भारत की नवपाषाणिक संस्कृति

उत्तर भारत में नवपाषाणिक संस्कृति के पुरास्थल कश्मीर घाटी में मिले हैं। प्रातिनूतन काल में सम्पूर्ण कश्मीर घाटी एक विशाल झील थी, जो द्वितीय अन्तर्हिमकाल में भूगर्भीय उथल पुथल के कारण समाप्त हो गई तथा उसका स्थान झेलम नदी ने ले लिया। नौका की आकृति के काश्मीर के पश्चिम में पीरपंजाल तथा उत्तर पूर्व में हिमालय की उपत्यकायें हैं। सोपानों के रूप में जो पाद–पहाणियाँ मिलती हैं, उन्हें करेवा के नाम से अभिहित करते हैं। वास्तव में ये प्रातिनूतन कालीन झील के तलहटी के जमाव हैं, जो विविध प्रकार के वृक्षों के विकास के लिए बहुत उपयोगी थे। इस सम्पूर्ण क्षेत्र में अनेक झीलें थी जो जलचारी जीवों के लिए महत्वपूर्ण थी। इस प्रकार से यह क्षेत्र मानव विकास के लिए पूर्णतया उपयुक्त था। इस सम्पूर्ण क्षेत्र में बहुत अधिक संख्या में नवपाषाणिक स्थल अब तक प्रतिवेदित हो चुके हैं।

## बुर्जहोम

सभी ज्ञात स्थलों में बुर्जहोम तथा गुफकराल अधिक महत्वपूर्ण उत्खनित स्थल हैं। बुर्जहोम श्रीनगर से 24 कि0मी0 उत्तर–पूर्व में स्थित है। इसको प्रकाश में लाने का श्रेय डी टेरा तथा पेटरसन को है जिन्होंने 1935 में यहाँ पर उत्खनन भी किया। 1960-1971 तक भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण के टी0 एन0 खजांची ने उत्खनन किया। खाजांची के उत्खनन से यहाँ के नव पाषाणिक संस्कृति प्रकाश में आई। गुफकराल श्रीनगर से दक्षिण–पूर्व दिशा में 41 किलोमीटर की दूरी पर पुलवाया जिले की त्राल तहसील में स्थित है। यह स्थल यद्यपि 1962–63 में प्रकाश में आ गया था किन्तु इसका उत्खनन 1981 में भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण के ए0के0 शर्मा ने किया।

बुर्जहोम के उत्खनन के फलस्वरूप चार सांस्कृतिक स्तर प्रकाश में आए जो ऊपर से नीचे इस प्रकार थे :

चतुर्थ काल खण्ड : ऐतिहासिक काल

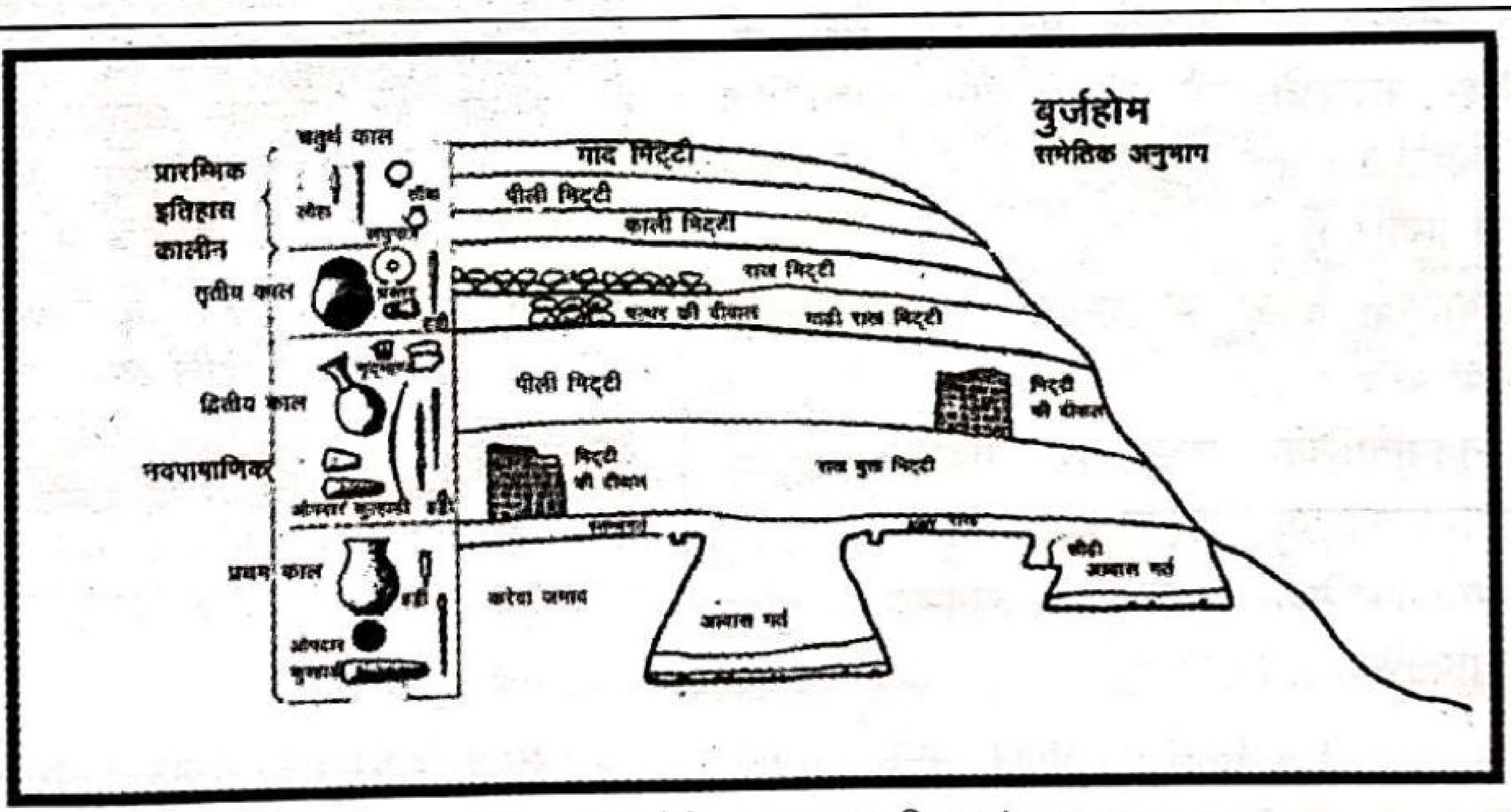


बुर्जहोम का समेकित अनुभाग चित्र सं 126

तृतीय काल खण्ड : वृहत्पाषाणिक काल

द्वितीय काल खण्ड : नवपाषाणिक काल II

प्रथम काल खण्ड : नवपाषाणिक काल I

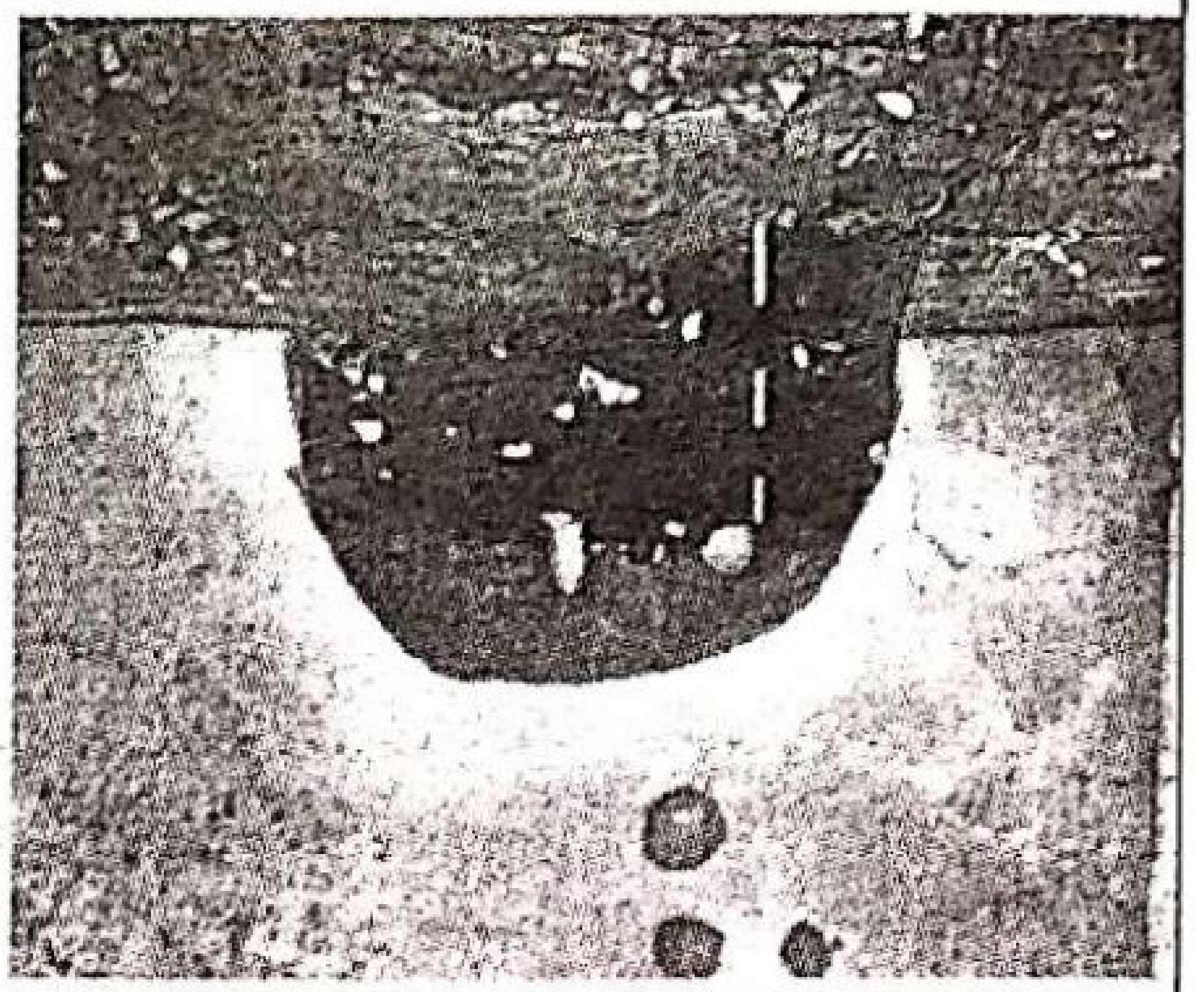

गेलाकार अथवा अण्डाकारगर्त चित्र सं0–127

यहाँ यह उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा कि बुर्जहोम में नवपाषाणिक संस्कृति के दो उपविभाग हैं। यहाँ पर मृदभाण्ड परम्परा का प्रारम्भ कालखण्ड प्रथम से ही हो जाता है। गुफकराल में उत्खनन से ज्ञात हुआ कि नवपाषाणिक काल की प्रथम अवस्था में लोग मृदभाण्डों से परिचित नहीं थे – अर्थात् इस काल में मृदभाण्ड़ का विकास नहीं हुआ था। यह उल्लेख्य है कि सर्वेक्षण के दौरान ऐसे अनेक स्थल मिले थे जहाँ पर मृदभाण्ड़ नहीं थे। इस काल को (Aceramic) मृदभाण्ड़ विहीन काल कहा गया है। गुफक़राल में 3.10 मी0 के जमाव में नीचे से ऊपर की ओर निम्न अनुक्रम प्रकाश में आया: –

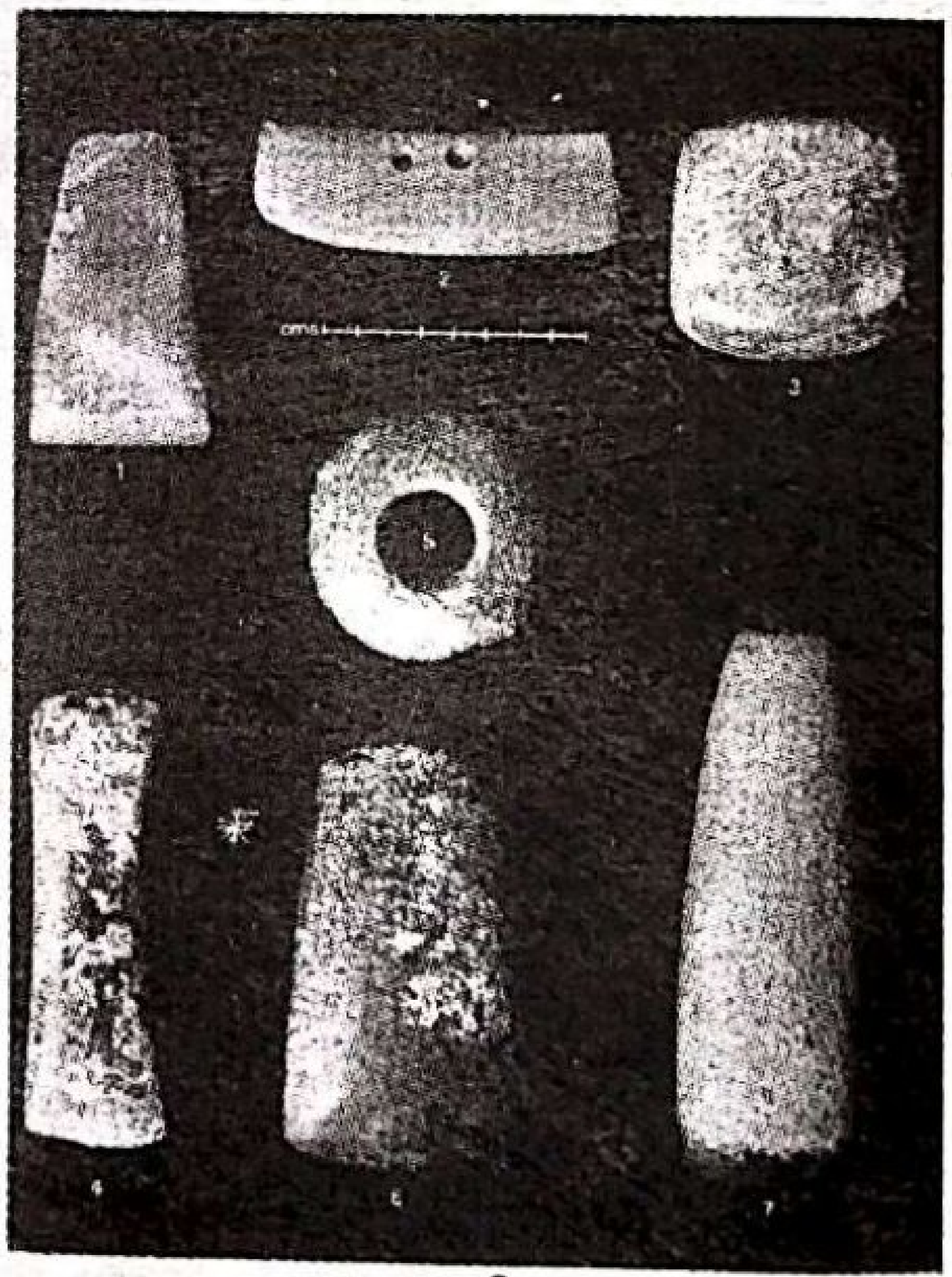

पाषाण उपकरण चित्र सं0–128

1A काल – मृद्भाण्ड विहीन नवपाषाणिक संस्कृति;

1B काल – प्रारम्भिक नव पाषाणिक संस्कृति;

1C काल – उत्तर नव पाषाणिक संस्कृति;

II काल – बृहत्पाषाणिक संस्कृति;

III काल – ऐतिहासिक कालीन संस्कृति।

इस प्रकार से बुर्जहोम तथा गुफकराल के सम्मिलित साक्ष्यों के आधार पर इस क्षेत्र की नवपाषाणिक संस्कृति को निम्न तीन सांस्कृतिक कालों में विभाजित कर सकते हैं जो नीचे से ऊपर क्रमशः इस प्रकार है

नवपाषाणिक काल 'अ' अथवा मृदभाण्ड़ विहीन नवपाषाणिक काल

1. नवपाषाणिक काल 'ब' मृदभाण्ड़ युक्त प्रारम्भिक नवपाषाणिक संस्कृति

2. नवपाषाणिक काल 'स' मृदभाण्ड़ युक्त उत्तर नवपाषाणिक संस्कृति

इस अनुक्रम में बुर्जहोम का काल खण्ड I गुफकराल के I B के साथ तथा बुर्जहोम कालखण्ड II गुफकराल I C के साथ रखा गया है।

Scanned with OKEN Scanner

## नवषाणिक काल

### 'अ' : मृदभाण्ड विहीन नवपाषाणिक काल :

गुफकराल में इस काल खण्ड का जमाव करेवा के ऊपर 35 से0मी0 से 1.10 मी0 है। फर्शों के आधार पर इस काल खण्ड को दो उपकालों में विभाजित किया गया है। प्रथम करेवा के ठीक ऊपर तथा दूसरा 30.35 से0मी0 के आवासीय जमाव के ऊपर। अपने निवास के लिए ये गोलाकार अथवा अण्डाकार गर्तों का निर्माण करते थे। ये ऊपर की ओर सकरे तथा नीचे चौड़े होते थे। इनका (Diameter) व्यास 3.80 मी0 से 1.50 मी0 का होता था। बड़े गर्त 20 से 30 से0मी0 गहरे होते थे। उनके किनारे–किनारे संग्रह करने के लिए संग्रहण गर्त (Storage pits) तथा चूल्हे मिले हैं। इनके अतिरिक्त बहुत से स्तम्भ गर्त मिले हैं जिनपर स्तम्भों के ऊपर छाजन की व्यवस्था की जाती थी। सम्भवतः छाजन के नीचे के भाग पर मिट्टी का प्लास्टर भी किया जाता था जिससे ठण्डी बर्फीली हवाओं को रोका जा सके। गर्तों के फर्श पर लाल गेरू का लेप करने के प्रमाण मिले हैं। द्वितीय उपकाल में इसके प्रमाण नहीं हैं। इसके प्रमाण मिले हैं कि प्रथम उपकाल के कुछ गर्तों को द्वितीय उपकाल में बड़ा किया गया तथा उनका उपयोग भी किया गया। प्रथम उपकाल में चूल्हे आयताकार होते थे, जबकि द्वितीय उपकाल में वे गोलाकार ही मिलते हैं।

इस काल में लोग प्रस्तर एवं हड्डी के उपकरणों का प्रयोग करते थे। प्रस्तर उपकरणों में ओपदार कुल्हाड़ी (Polished Celt), शर (Point), गदाशीर्ष (Ring Stone), सिल – लोढ़ (Quern-mullers) आदि हैं।

हड्डी के उपकरण भी प्रभूत संख्या में मिले हैं। इनको आग में जलाकर सख्त करते थे। इस वर्ग के उपकरणों में शर (Point), बेधक (Piercers) तथा स्क्रेपर (Scraper) प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त एक सुई भी प्राप्त हुई है जो विशेष उल्लेखनीय है। इनमें से अधिकांश ओपदार हैं। इन उपकरणों को बनाने के लिए भेड़, बकरी, हिरण तथा साकिन (Ibex) पशुओं की लम्बी हड्डियों का उपयोग किया गया है।

ऐसा प्रतीत होता है कि ये लोग आभूषणों का भी प्रयोग करने लगे थे। हड्डी तथा स्टीयटाइट के मनके (Bead) भी मिले हैं ।

इस काल में इनकी अर्थव्यवस्था का आधार आखेट के अतिरिक्त पशुपालन तथा कृषि था। उत्खनन में साकिन (Ibex), भालू (Bear), भेड़ (Sheep), बकरी (Goat), मवेशी (Cattle), काश्मीरी हिरण (Kashmiri Stag) , की हड्डियाँ मिली हैं। इनके अतिरिक्त भेड़िये की भी हड्डियाँ मिली हैं। इस काल में केवल भेड़ तथा बकरी ही पालतू बन सके थे। अन्य सभी, अभी जंगली अवस्था में ही थे। ये लोग गेहूँ, जौ तथा मसूर अथवा मूंग की खेती करते थे।

### नवपाषाणिक काल 'ब' : प्रारम्भिक नवपाषाणिक संस्कृति

उपकाल 'अ' तथा 'ब' में कोई भी अन्तराल नहीं हैं। इस काल में सर्वप्रथम हस्तनिर्मित मृदभाण्डों का विकास होता है। तीन प्रकार के मृदभाण्ड इस काल में मिलते हैं।

- i. मोटे रूक्ष धूसर मृद्भाण्ड ( Thick Coarse Grey Ware)
- ii. महीन धूसर मृद्भाण्ड (Fine Grey Ware)
- iii. कंकरीले हल्के लाल मृद्भाण्ड (Gritty Dull Red Ware)

Scanned with OKEN Scanner

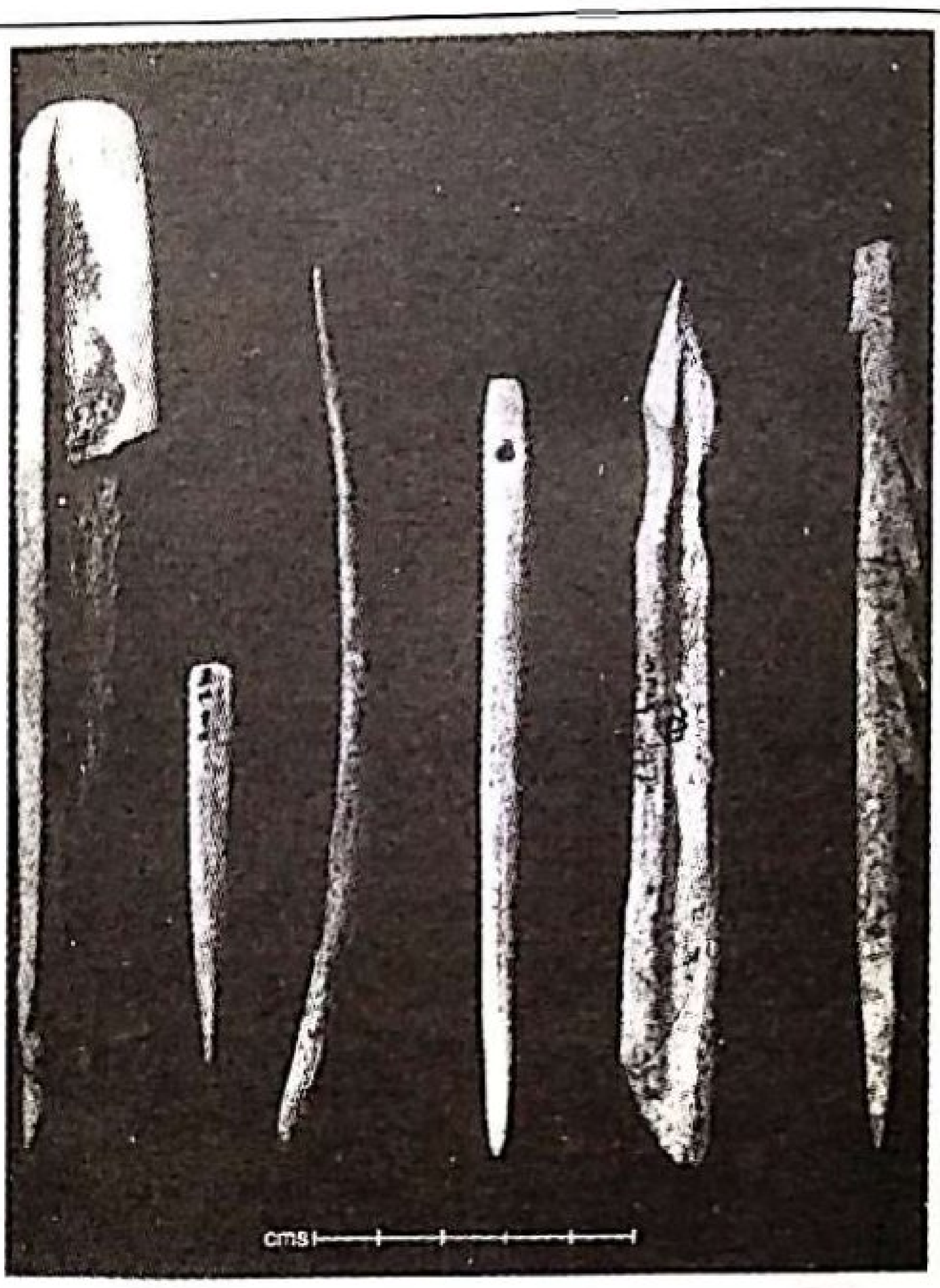

हड्डी के उपकरण चित्र सं0–129

इनमें प्रथम प्रकार के भाण्डों की संख्या सर्वाधिक है। बर्तनों में गोलाकार घड़ा (Globular Jar), कटोरा (Bowl) तथा थाली (Basin) प्रमुख हैं। कटोरा तथा थाली की पेंदी में चटाई की छाप हैं तथा घड़े के गर्दन के पास चुटकी से दबाकर अलंकरण किया गया है। बर्तनों के अन्दर तथा बाहर सरकण्डों के निशान हैं। बर्तन भलीभाँति नहीं पके हैं।

इस काल में भी पूर्ववत् गर्त आवास निर्मित होते थे। गुफकराल में इस काल में 5.7 से0मी0 मोटा फर्श मिट्टी तथा चूने से निर्मित मिला है। पूर्वकाल में बने गर्तों का भी उपयोग किया जाता था। गुफकराल में मिट्टी तथा पत्थर की एक दीवाल प्राप्त हुई है किन्तु उसका उद्देश्य स्पष्ट नहीं हैं। बुर्जहोम के गर्तो मे चबूतरे बने मिले हैं। आयाताकार गर्त भी मिले हैं जो आकार में अपेक्षाकृत बड़े हैं। गर्तों में चूल्हे सिल–लोढ़े एवं मिट्टी के बर्तनों के अवशेष भी मिले हैं।

इस काल में भी पूर्ववत इनकी अर्थव्यवस्था आखेट पर बहुत हद तक निर्भर थी। पूर्ववर्ती काल में मिले पशुवृन्दों का आखेट इस काल में भी होता था। किन्तु पशुपालन की दिशा में और विकास हुआ। भेड़ बकरी (Goat) के अतिरिक्त चौपायों को भी पाल्तू बनाया जाने लगा था। सम्भवतः मुर्गी (Fowl) पालन भी प्रराम्भ हो गया था। कुत्तों की हड्डियाँ बहुत संख्या में मिली हैं। जिससे अनुमान करते हैं कि कुत्तों को भी पालतू बना लिया गया था। यहाँ गेहूँ, जौ, मसूर मूंग तथा मटर की खेती होने लगी थी।

पत्थर तथा हड्डी के उपकरण काफी संख्या में मिले हैं। पत्थर के उपकरणों में कुल्हाड़ी (Axe), छेनी (Chisel), बसुली (AØe) मूसल (Pounder), गदाशीर्ष (Mace head), शर (Point), खोदनी (Pick) तथा सिल आदि मिले हैं। हड्डियों के उपकरण समुदाय में हारपून (Harpoon), सुई (Needle), बेधक (Awl), भाले (Spear), शर (Point) आदि उल्लेखनीय हैं।

## नवपाषाणिक काल खण्ड 'स' : परवर्ती नवपाषाणिक संस्कृति

इस काल खण्ड की संस्कृति पूर्ववर्ती कालखण्ड से विकसित हुई प्रतीत होती है। साथ ही कुछ परिवर्तन भी दृष्टि गोचर होते हैं। इस काल में प्रमुख परिवर्तन आवासों में होता है। गर्त निवास का चलन समाप्त होता है तथा धरातल के ऊपर मकान मिट्टी तथा गारे और ईटों से बनने लगते हैं। फर्श पर चूने का प्लास्टर आवास स्थल में मिलता है।

इस काल की अर्थव्यवस्था मूलतः पूर्ववत् ही थी। कृषि के क्षेत्र में कोई नवीन अन्न शामिल नही होता। गेहूँ , जौ, मसूर, मूंग, मटर की खेती पूर्ववत् होती थी किन्तु पशुपालन के क्षेत्र में थोड़ा विकास होता है। इस काल में पूर्वकाल के पशुओं के अतिरिक्त सुअर भी पाले जाने लगे थे। मछली की हड्डियॉ भी इस काल के जमाव से प्राप्त हुई हैं, निश्चित रूप से ये इनके भोज्य सामग्री का

Scanned with OKEN Scanner

एक अंग थीं। घोड़े (Horse),सेही (Porqupine), चूहे (Rodent), ऊदबिलाव (Beare) की हड्डियाँ भी मिली हैं जिनका शिकार ये भोजन के लिए करते होगें।

प्रस्तर उपकरणों का प्रयोग अभी भी होता था, किन्तु पहले की अपेक्षा ये कम संख्या में मिले हैं। इस काल में जो नवीन उपकरण प्राप्त हुए हैं उनमें दो छिद्रवाले हँसियें या गड़ासे (Double holed harvester), तकुए (Spindle-Whorls), गोफन पत्थर (Sling Balls) तथा पत्थर के उत्कीर्णक या तक्षक (Engraver) विशेष उल्लेखनीय हैं। पत्थर की द्विछिद्र वाली हँसिया पर उकेर कर अलंकरण के प्रमाण मिले हैं।

इस काल खण्ड में हड्डी के सर्वाधिक उपकरण मिले हैं। पहले की अपेक्षा ये अधिक सुगढ़ तथा सुड़ौल थे। अधिकांश ओपदार (Polished) उपकरण थे। उपकरणों की नोंक को आग में जलाकर धारदार बनाते थे — विशेषतः शरों को। इनके अतिरिक्त बेधक (Awls), स्पैटुला (Spatula) तथा हारपून (Harpoon) तथा एक विशेष उल्लेखनीय वस्तु जिनमें चार खाचें बने हुए थे मिले हैं।

अन्य सांस्कृतिक उपादानों में मिट्टी की चूड़ियाँ (Terracotta bangles), कौड़ी (Cowry shell) तथा हलके हरे रंग का जेड (Light green jade) का लटकन (Pendant) ग्रैफिटी अलंकरण के मृदभाण्ड, उभरे हुए अलंकरण के साथ टेराकोटा आदि हैं। गुफकराल में इस कालखण्ड के ऊपर के भाग से ताबें की एक कुण्डलित शीर्ष की बालों में लगाने की पिन (Copper Hair Pin) भी प्राप्त हुई थी। ये सब इन लोगों कं बाह्य सम्पक्र को इंगित करते हैं। इस प्रकार के प्रभूत प्रमाण बुर्जहोम के उत्खनन में भी मिले थे। वहाँ पर अनेक चित्रित (Painted) पात्र प्राप्त हुए थे जो कहीं अन्यत्र से आयातित थे। नवपाषाणिक काल के अन्त में चाक पर बना लाल पात्रपरम्परा का एक बर्तन मिला था जिसमें 950 अगेट एवं कार्नेलियन की गुरियाँ (Beads) रखे थे। यह पात्र कोटडीजी के सराय खोला स्तर के हो सकते हैं।

कलात्मक अभिव्यक्ति के प्रमाण भी इस काल के स्तर से बुर्जहोम में प्राप्त हुए है। दो उत्कीर्णित प्रस्तर खण्ड मिले हैं। एक प्रस्तर खण्ड पर आखेट का दृष्य है। इसमें एक आखेटक पीछे से लम्बे भाले से प्रहार कर रहा है तथा दूसरा आखेटक सामने से तीर से वार कर रहा हैं। यह सम्भवतः सूर्य का चित्रण है। दूसरे प्रस्तर खण्ड पर एक झोपड़ी तथा एक पशु के पीछे का भाग दिखाया गया है। ये दोनों ही शिलाखण्ड एक संरचना से ही मिले थे।

बुर्जहोम के उत्खनन में शवाधान सम्बन्धी महत्वपूर्ण तथ्य प्राप्त हुए हैं। शवाधानों का निर्माण मुख्यतया आवासीय क्षेत्र में ही किया जाता था। शवाधान गर्त अण्डाकार होते थे तथा गर्त के किनारे चूने का प्लास्टर करते थे। शवाधान प्राथमिक (Primary) तथा आंशिक (Secondry/Fractional) दोनों ही प्रकार के होते थे। प्राथमिक शवाधानों से प्रायः विस्तीर्ण शवाधान मिलते हैं। दूसरे में केवल आशिंक रूप से ही हड्डियाँ रखी जाती थी। हड्डियों के ऊपर लाल गेरू का छिड़काव करते थे। एक मानव कंकाल के शिर में सात पूरे तथा चार अधूरे छिद्र मिले हैं। यह सम्भवतः कपाल क्रिया का संकेत करता है।

मानव शवाधानों के अतिरिक्त कुछ पशु–शवाधान भी मिले हैं इनमें से कुछ पूरे तथा कुछ आंशिक भी हैं। कुत्ते, भेड़िये तथा साकिन के शवाधान मुख्यतया मिले हैं। एक शवाधान में पाँच कुत्ते तथा हिरण का सींग प्राप्त हुआ है। कुत्तों के शवाधान उसके मालिक के साथ भी मिले हैं।

इस काल की मृदभाण्ड परम्परा में धूसरपात्र, ओपदार धूसर पात्र, रूक्ष हल्के लाल पात्र, काले ओपदार पात्र, चाक पर बने ओपदार काले पात्र उल्लेख्य हैं। इसके अतिरिक्त लाल कंकरीले पात्र

Scanned with OKEN Scanner

भी प्राप्त हुए हैं। पूर्ववर्ती पात्र समुदाय के अतिरिक्त लम्बे गर्दन वाले घड़े, साधार तश्तरी (Dish-on-stand), जिसके आधार पर त्रिकोणात्मक छिद्रयुक्त अलंकरण था, मिले हैं। कुछ और पात्र भी मिले हैं किन्तु वे आयातित प्रतीत होते हैं, उनका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

यहाँ की नव पाषाणिक संस्कृति को निम्न काल खण्डों में पाशेल तथा रिसमैन के अनुसार रखा जा सकता है :

1. प्रथमकाल खण्ड 'अ' 2800 से 2520 ई0 पू0
2. प्रथमकाल खण्ड 'ब' 2520 से 2000 ई0 पू0
3. प्रथमकाल खण्ड 'स' 2000 से 1500 ई0 पू0

उत्तरी भारत के नवपाषाणिक संस्कृति के उद्भव के सम्बन्ध में विद्वानों में विभेद है। स्टकुल, जिन्होंने स्वात घाटी के सांस्कृतिक अनुक्रम का अध्ययन किया है, के अनुसार घलीगाई (स्वातघाटी, पाकिस्तान) काल की पात्रपरम्परा के कतिपय आकार तथा चित्रण बुर्जहोम I के पात्रों तथा चित्रण के अनुरूप हैं। किन्तु घलीगाई के प्रस्तर उपकरण फलकित हैं तथा बुर्जहोम के ओपदार। स्टकुल को बुर्जहोम II की ओपदार काली पात्रपरम्परा में तथा स्वातघाटी IV में समानता मिलती है। दोनों के ओपदार उपकरणों में भी समानता है। किन्तु स्वातघाटी में धान की खेती के प्रमाण मिलते हैं जब कि बुर्जहोम में नहीं। अलचिन दम्पति ने उल्लेख किया है कि उत्तरी भारत की नवपाषाणिक संस्कृति में कतिपय तत्व एकदम से भारतीय परम्परा से अलग लगते हैं, जैसे हड्डी के उपकरण, आयताकार छिद्रयुक्त पत्थर के चाकू / हँसिया, जेड की गुरियाँ, गर्त निवास, पालतू कुत्तें के साथ शवाधान। ये सभी विशेषतायें उत्तरी चीन की नवपाषाणिक संस्कृति में भी मिलती हैं। कुत्तों के शवाधान मंचूरिया के आंग–आंग–सी (Ang-Ang-Hsi) संस्कृति में मिलते है। किन्तु चीन की तथा बुर्जहोम की पात्र परम्परा में कोई समानता नहीं है।

अलचिन दम्पत्ति की धारणा है कि काश्मीर घाटी की संस्कृति का जन्म एवं विकास स्थानीय आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में हुआ था। जो कुछ भी समानतायें मिलती हैं वे पारस्परिक सम्पक्र के फलस्वरूप हुआ होगा।

विद्वानों का कथन कि उत्तरी भारत की नवपाषाणिक संस्कृति की समानता भारत की अन्य नव पाषाणिक संस्कृतियों से उतनी नही है जितनी कि उत्तरी चीन, रूस तथा जापान से। मूल प्रश्न यह है कि जैसा वातावरण कश्मीर घाटी में था वैसा भारत के अन्य क्षेत्रों में भी था क्या ? यदि नहीं, तो सांस्कृतिक विकास एकदम वैसा ही कैसे होता ? समान वातावरणीय क्षेत्रों में यदि सर्वेक्षण किया जाए तो इस प्रकार के संस्कृति के होने की सम्भवना को नकारा नहीं जा सकता है।

Scanned with OKEN Scanner

# पश्चिमोत्तर भारत की नवपाषाणिक संस्कृति

पाकिस्तान में फ्रांसीसी पुरातात्विक मिशन और पाकिस्तान के पुरातत्व विभाग ने 1974 से 1985 के बीच बोलन दर्रे की तलहटी में बलूचिस्तान में स्थिति मेहरगढ़ का उत्खनन किया, जिससे सातवीं सहस्राब्दी ई0पू0 से लेकर बाद तक की सतत सांस्कृतिक विकास का साक्ष्य मिला। यहां का प्रथम सांस्कृतिक चरण एसेरामिक, मिट्टी के बर्तनों से बिहीन चरण के नाम से जाना जाता है, इस चरण के सात मीटर मोटे जमाव को मुख्यतः नवस्तरों मे विभाजित किया गया है, इसमे शवाधान भी प्राप्त हुए थे , प्रथम के निवासी चार कमरे वाली संरचना का प्रयोग करते थे, सभी स्तरों से संरचनाएं और कई कक्षों में आग जलाने के साक्ष्य मिले है, गोलाकार अग्नि कुण्ड भी प्राप्त हुए है। पाषाण उद्योग में प्रथम चरण से द्वितीय चरण में विकास दिखायी पड़ता है, इसमें विटुमिन से गुथे हुए फ्लिंट के लबु पाषाण उपकरण भी मिले थे। नवस्तरों में प्रत्येक स्तर से समाधियां मिली है, जिनमें भेंट सामग्री भी प्राप्त है। द्वितीय ए काल में लगभग 6 हजार ई0पू0 के आसपास मिट्टी के बर्तन, भारी डंठल के सालन से युक्त पात्र खण्ड सीमित मात्रा में मिले थे, पात्र प्रकारों में प्रायः कटोर व घड़े है। मेहरगढ़ में नव पाषाणिक ग्रामीणों के गोलाकार मकान नहीं मिले है। आठवीं सहस्राब्दी ई0पू0 तक की प्राचीनता वाले मेहरगढ़ के उत्खनन का सबसे बड़ा योगदान है पाकिस्तान के उत्तर पश्चिम क्षेत्र में सबसे बड़ा नवपाषाणिक आवास स्थल।

इसके बाद के दूसरे चरण में इस तरह के विकास का साक्ष्य जागरोस पहाड़ पर भी मिला है जहां विकसित मिट्टी के बर्तन एवं कृषि अर्थव्यवस्था का संक्रमण मिलता है। द्वितीय तथा तृतीय 'ए' काल के मध्य संक्रमण को समझना समस्यापूर्ण है। काल द्वितीय 'बी' में मिट्टी के बर्तन बेहतर हो गये तथा चाक पर बनने लगे। काल तृतीय 'ए' मिट्टी के बर्तन पर सादी ज्यामितीय अलंकरण युक्त है जबकि काल तृतीय 'बी' में बकरी और चिड़ियों के संश्लिष्ट ज्यामितीय चित्र है। यह फ्लिंट, पीसने के पत्थर (सिल), छिद्रयुक्त गोलाकार पत्थर आदि उपकरणों से युक्त है। कृषक अर्थव्यवस्था व पशुपालन जैसा कि प्रारम्भिक नवपाषाण से मिले हैं, यहां से मिले है। इसके उपरान्त 3500 ई0पू0 से 2500 ई0पू0 से सम्बन्धित हड़प्पा संस्कृति का जमाव मिला है।

नव पाषाणिक सांस्कृतिक जमाव के संकेत भारत में सिन्धुघाटी के मुख्य विस्तार क्षेत्र के कई स्थलों के निम्नतम धरातल से प्राप्त हुये हैं, जैसे– कुणाल, भिर्राना, गिरवाद, फरमाना और राखी गढ़ी।

## विंध्य की नवपाषाणिक संस्कृति

मध्यगंगा घाटी के दक्षिणवर्ती पठारी प्रदेश, बेलनघाटी एवं विंध्य की उत्तरवर्ती पाद पहाड़ियों तथा पठार, जिसमें वाराणसी, दक्षिण मिर्जापुर, दक्षिण इलाहाबाद तथा सोन घाटी तथा रींवा का त्यौथर का क्षेत्र सम्मिलित है, नवपाषाणिक मानव के उद्‌भव एवं विकास का स्थल रहा है। समय–समय पर इस क्षेत्र में त्रिकोणात्मक ओपदार कुल्हाड़ियाँ (Celt) जिनका की प्रसार दक्षिण भारत में है धरातल से प्रतिवेदित होते रहे हैं। इनके अतिरिक्त इसी क्षेत्र से गोलाकार समन्तान्त की कुल्हाड़ियाँ भी यदाकदा मिलती थीं। इनकी स्थिति तथा अन्तर्सम्बन्ध को समझने के लिए प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद, विश्वविद्यालय ने प्रोफेसर शर्मा के नेतृत्व में इस क्षेत्र का सघन सर्वेक्षण किया तथा कोलडिहवा, महगड़ा, पंच्योह, इन्दारी, कुनझुन, टोकवा आदि स्थलों पर उत्खनन भी किया जिसके फलस्वरूप इस सम्पूर्ण क्षेत्र की नवपाषाणिक संस्कृति पर यथेष्ट प्रकाश पड़ा है। उपर्युक्त स्थलों में कोलडिहवा तथ महगड़ा इस क्षेत्र का पूर्णतया प्रतिनिधित्व करते हैं।

### कोलडिहवा पुरास्थल

**कोलडिहवा पुरास्थल** ($24^0$ 54'उ०; $82^0$2'पू०) इलाहाबाद से दक्षिण पूर्व दिशा में 85 कि0मी0 की दूरी पर मेजा तहसील में बेलन के बायें तट पर स्थित है। यह पुरास्थल 500 x 200 मीटर (पूर्व – पश्चिम) विस्तृत रहा होगा, किन्तु बेलन नदी तथा उसके सहायक नालों के निरन्तर अपरदन के फलस्वरूप अब यह अनेक छोटे–छोटे टीलों में विभक्त हो गया है। कालानुक्रम को जानने के उद्देश्य से यहां पर अत्यन्त सीमित उत्खनन किया गया था जिसके फलस्वरूप तीन सांस्कृतिक स्तर प्रकाश में आए जो नीचे से ऊपर क्रमशः नवपाषाणिक, ताम्रपाषाणिक तथा लौहयुगीन थे। 45 से0मी0 के नव पाषाणिक जमाव से ज्ञात हुआ कि यहाँ की नवपाषाणिक संस्कृति के लोग हस्त निर्मित मृदभाण्ड, घर्षित उपकरणों, गोलाकार समन्तान्त के छोटी कुल्हाड़ियों, नवपाषाणिक ब्लेड तथा लघु पाषाणोपकरणों का उपयोग करते थे। पात्रपरम्परा मुख्यतया तीन प्रकार की थीः डोरीछाप (Cord Impressed), खुरदुरी (Rusticated), तथा ओपदार (Burnished ware) थी। यहाँ के उत्खनन की महत्वपूर्ण खोज पालतू प्रकार का चावल (Domesticated rice) था जिसका परीक्षण विष्णुमित्रे तथा ते–जु–चांग (Te-Tzu-Chang) ने किया था। धान तथा भूसी के निशान यहाँ से प्राप्त पात्रों में मिले थे। यहाँ से तीन कार्बन तिथियाँ उपलब्ध हैं जो क्रमशः इस प्रकार हैं : 6570± 210 ई0 पू0, 5440±240 ई0 पू0, 4530±185 ई0 पू0। उत्खनन योग्य स्थान के अभाव के कारण यहाँ पर विस्तृत उत्खनन नहीं किया जा सका। अतः निकटवर्ती महगड़ा में विस्तृत उत्खनन किया गया।

Scanned with OKEN Scanner

## महगड़ा

महगड़ा इलाहाबाद की मेजा तहसील में इलाहाबाद से 85 कि0मी0 की दूरी पर, नवीन तथा बूढ़ी बेलन के संगम के पश्चिम में कोलडिहवा के सामने, नई बेलन धारा के बायें तट पर स्थित है। चोपनी माण्डों से यह दक्षिण पश्चिम दिशा में 3 कि0मी0 की दूरी पर है।

महगड़ा पुरास्थल लगभग अण्डाकार है, तथा इसका क्षेत्र विस्तार लगभग 8,000 वर्ग फीट है। इसके दक्षिण–पूर्व में बूढ़ी बेलन तथा दक्षिण पश्चिम में नई धारा है। इसके अतिरिक्त सभी दिशाओं में यह एक प्राकृतिक कटक (Ridge) से सुरक्षित है।

यह पुरास्थल 1975-76 में प्रकाश में आया था। 1976 से 1978 तक यहाँ पर क्षैतिज उत्खनन किया गया। जिससे यहाँ की नवपाषाणिक संस्कृति पर समुचित प्रकाश पड़ा है। यह उल्लेख्य है कि महगड़ा एकाकी सास्कृतिक स्थल (Single Culture Site) है। इसका सास्कृतिक जमाव 2.60 मी0 था।

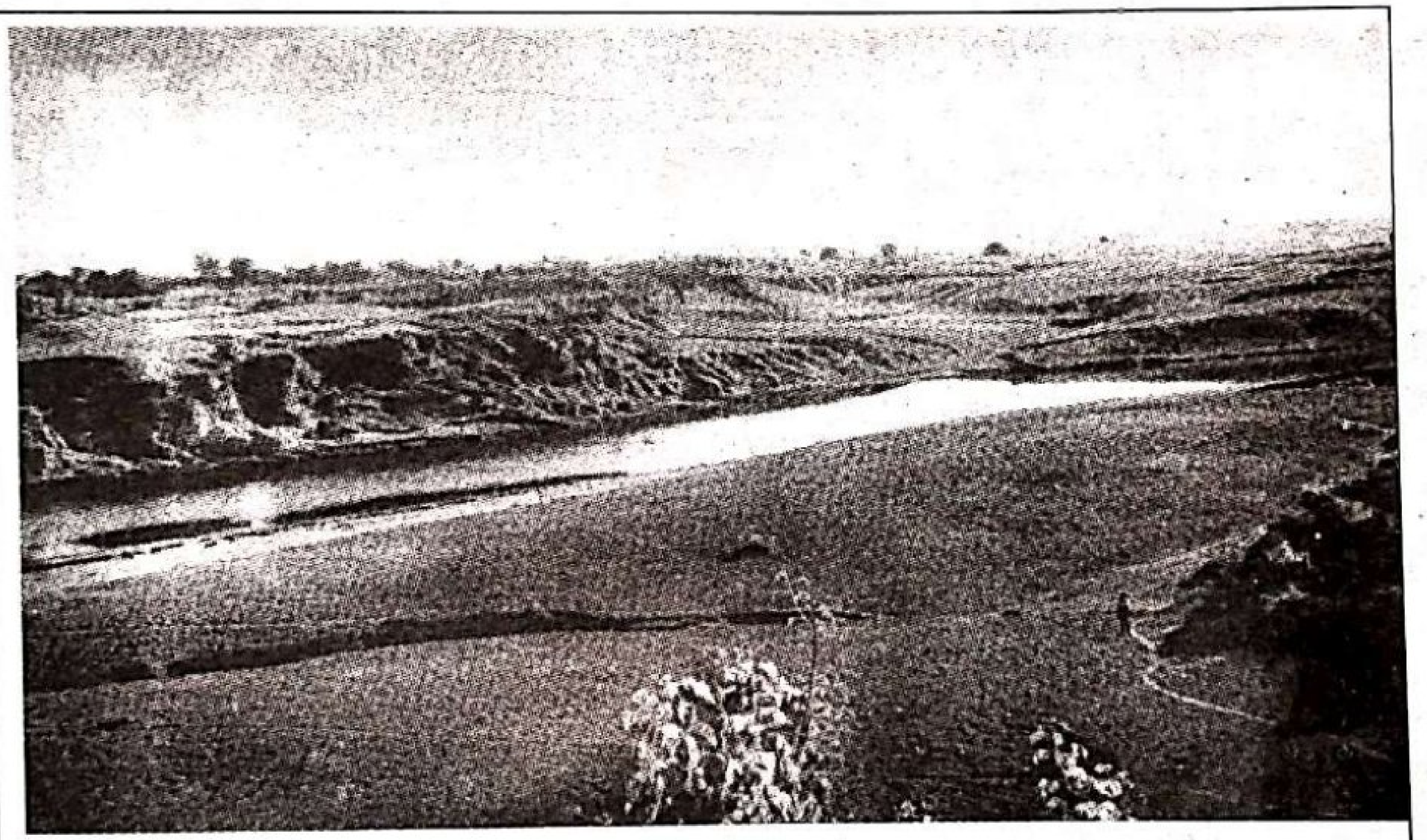

कोलडिहवा, महगड़ा : पुरास्थल विहंगम दृश्य चित्र सं0–130

नवपाषाणिक काल में यहाँ के लोग गोलाकार अथवा अण्डाकार झोपड़ियों में रहते थे। जिनका व्यास 4.30 से 6.40 मी0 होता था।झोपडियों के फर्श के किनारे–किनारे स्तम्भगर्त मिले हैं, जिससे अनुमान किया जाता है कि स्तम्भों के ऊपर सरकण्डों तथा घासफूस से छाजन बनाते थे।

छाजन के नीचे के भाग में भी स्तम्भ गर्त मिले हैं। दीवालें भी टट्टर से बनायी जाती थीं। खपच्ची, सरकण्डे तथा घासफूस लगाकर उसपर मिट्टी से दोनों ओर प्लास्टर करते थे। दो या तीन झोपड़ियों के समूह एक पास मिलते हैं। इनमें से प्रायः एक झोपड़ी रहने के लिए तथा अन्य भोजन बनाने अथवा अन्य कार्यों के लिए प्रयुक्त होती थी। झोपड़ों के फर्श पर मृद्भाण्ड, पशुओं की हड्डियाँ, सिल लोढ़े, लघुपाषाणोपकरण तथा कुल्हाड़ियाँ आदि मिले हैं।

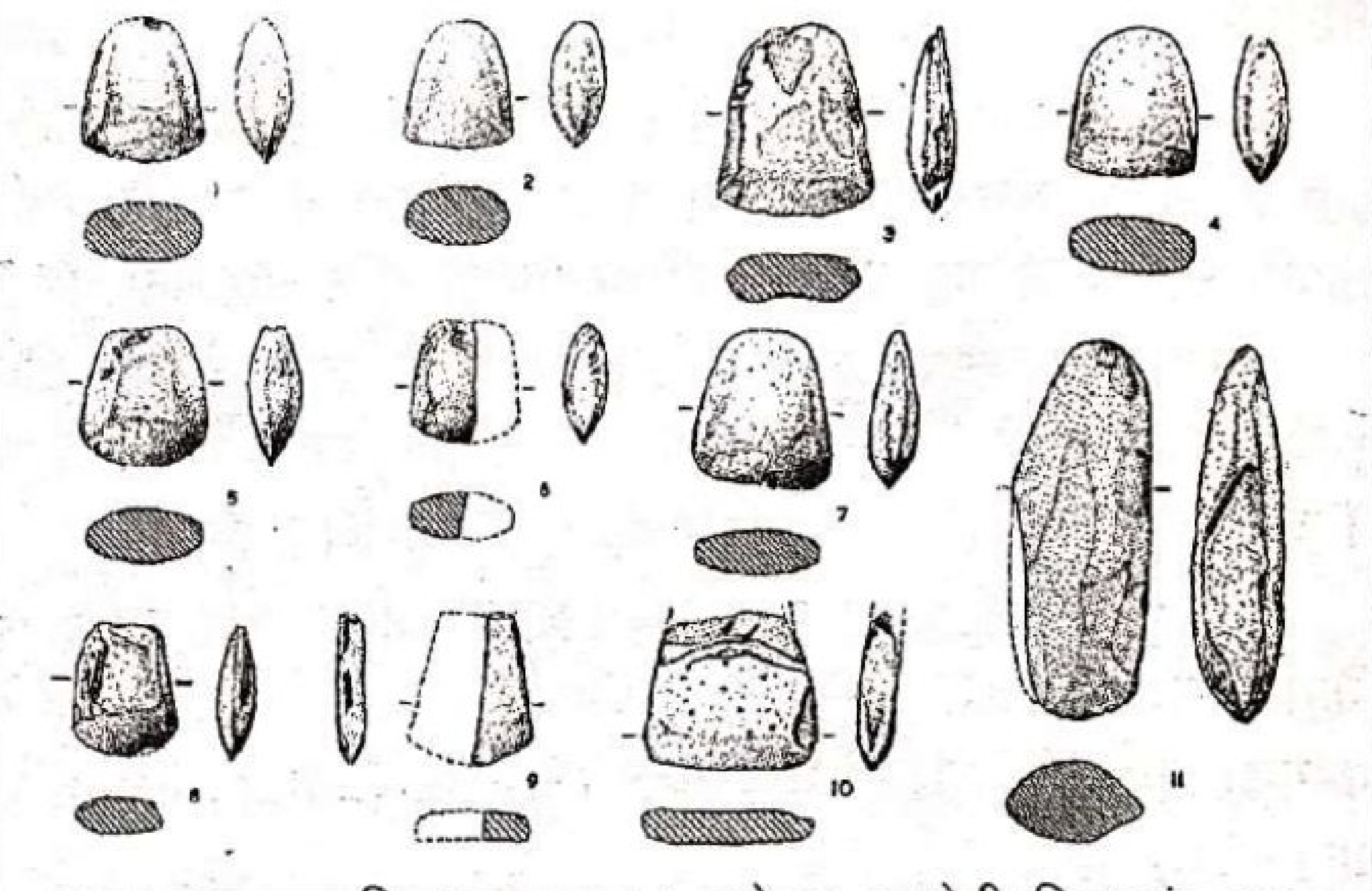

महगड़ा नवपाषाणिक उपकरण 1–8सेल्ट, 9, छेनी चित्र सं0–131

ये अपने उपकरणों के निर्माण के लिए बसाल्ट, ग्रेनाइट तथा क्वार्टजाइट का उपयोग करते थे। इनकी कुल्हाड़ियाँ छोटी, गोलाकार समन्तात की आयताकार अथवा प्रलम्ब अण्डाकार अनुभाग की पूर्णतया ओपदार होती थी। यह उल्लेख्य है कि आवासीय क्षेत्र में कोई उद्योग स्थल नहीं प्राप्त हुआ है। दक्षिण भारत के त्रिकोणात्मक प्रकार की कुल्हाड़ी उत्खनन में प्राप्त नहीं हुई। इनके अतिरिक्त सिल–लोढ़े, हथौड़ा–पत्थर (Hammer) तथा पूर्ण निर्मित उपकरणों यथा समानान्तर द्विबाहुब्लेड (Parallel sided blades), भूथड़े पार्श्वब्लेंड (Blunted back blades), दन्तुरित ब्लेड (Serrated blades), तिरछा पार्श्वान्त ब्लेड (Pen-knife blades), शर (Points), बेधक (Borer), स्क्रेपर (Scraper), त्रिकोण (Triangle), समलम्ब चुतुर्भुज (Trapeze), अर्धचान्द्रिक (Lunate), तथा ट्रांचेट (Tranchet) आदि मिले हैं। इनके अतिरिक्त लघुपाषाणोपकरण जिनमें उपकरणों के अतिरिक्त ब्लेड,

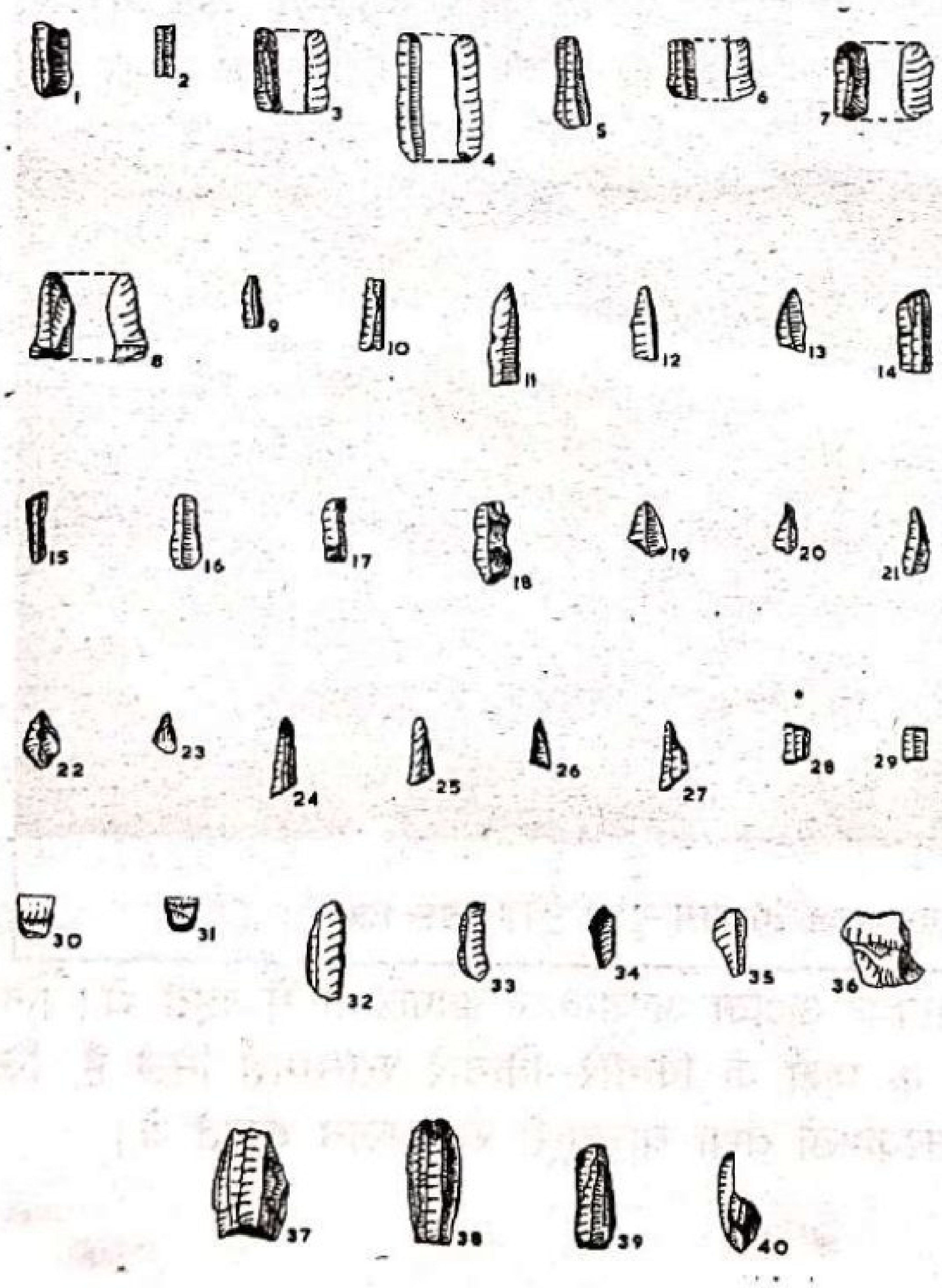

महगड़ा नवपाषाणिक लघुपाषाणोपकरण उपकरण चित्र सं0–132

कोर तथा अनुपयोजित प्रस्तर सामग्री भी प्राप्त हुई है। इनके निर्माण के लिए चाल्सेडनी, चर्ट, अगेट, कार्नेलियन, क्वार्टज तथा क्रिस्टल आदि का उपयोग किया गया था। इनके अतिरिक्त चार एकल–स्कंधित (Single-tanged) हड्डी के शर (Arrow head) मिट्टी के छिद्रयुक्त चकरी, गोलाकार मिट्टी की गुरियाँ, छिद्रयुक्त सीपी की लटकन आदि महगड़ा से मिले हैं।

इनकी अर्थव्यस्था कृषि, पशुपालन तथा आखेट पर आश्रित थी। धान के प्रमाण मृद्भाण्डों के सालन में तथा कार्वनीकृत रूप में मिले हैं। चावल ही इनका प्रमुख भोज्य था। विष्णुमित्रे तथा ते–जू–चांग (Te-Tzu-Chang) ने इनका परीक्षण किया था। इनके अध्ययन के आधार पर यहाँ से प्राप्त धान ओरिजा सतीवा (Oryza Sativa) प्रकार का था। तिथि क्रम के आधार पर इसे चावल के खेती का प्राचीनतम प्रमाण कहा जा सकता है। यह वेवीलाव (Vavilov) की इस धारणा की भी पुष्टि करता है कि भारत चावल की जन्मस्थली हो सकती है।

उत्खनन में बेर (Jijube) की गुठलियाँ भी प्राप्त हुई हैं जिनका उपयोग खाद्य सामग्री के रूप में होता होगा।

खाद्यान्न इनकी अर्थव्यवस्था में अहम् भूमिका का निर्वहन करते थे। इसकी पुष्टि यहाँ से प्राप्त सिल लोढ़े तथा संग्रहोपयोगी पात्रों से किया जा सकता है। बेलन का कछार धान की खेती के लिए बहुत उपयुक्त रहा होगा।

आखेट का महत्व इनकी अर्थव्यवस्था में यथेष्ट था। मवेशियों (Cattle), भेड़, बकरी, घोड़े, हिरन, जंगली सुअर, कछुआ, मछली तथा चिड़ियों की हड्डियाँ समुचित मात्रा में मिली हैं। इन पशुओं की हड्डियों पालतू तथा जंगली दोनों प्रकार के पशु मिश्रित रूप से

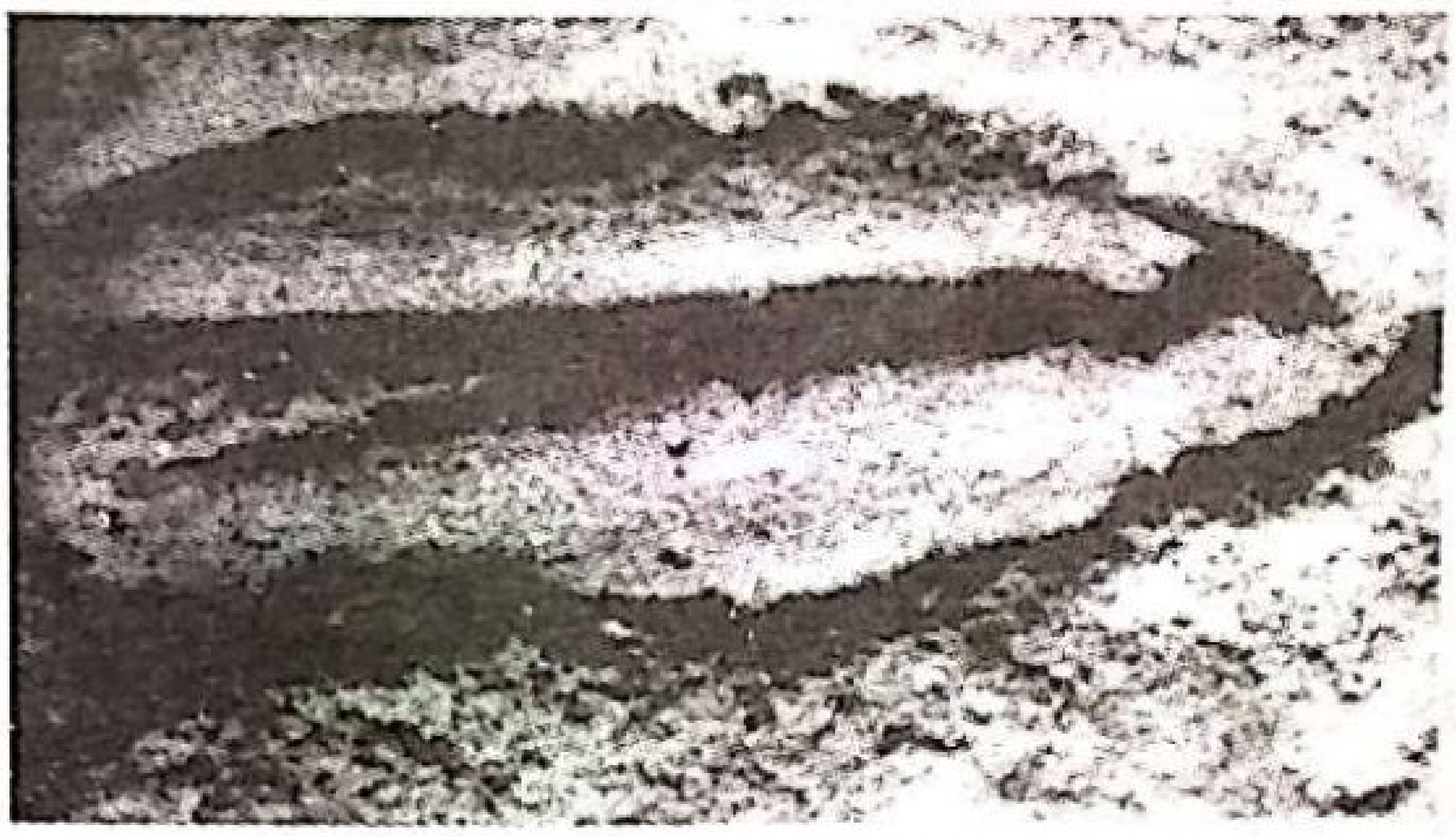

धान की भूसी का माइक्रो फोटो चित्र सं0–133

मिट्टी के सालन में धान की भूसी चित्र सं0–134

खुर का चित्र, चित्र सं. 135

मिलते हैं।

पशुपालन भी इनकी अर्थव्यवस्था का प्रमुख साधन था। ये भेड़, बकरी तथा मवेशियों को पालते थे। इस सम्बन्ध में यहाँ से प्राप्त पशुबाड़ा विशेष उल्लेखनीय है। जिसमें मवेशियों, बकरी/भेड़ के खुर के निशान भी मिले हैं। पशुबाड़ा लगभग आयताकार था। यह 12.5 × 7.5 मीटर (उत्तर–दक्षिण) लम्बा चौड़ा था। बाड़े में 28 विविध आकार के (10 से0मी0 से 15 से0मी0) स्तम्भगर्त, बाड़े के चारों, ओर 1.08 मीटर की औसत दूरी पर मिले हैं। गर्तों की दूरी के आकलन से प्रतीत होता है कि इसमें तीन प्रवेश द्वार थे जो क्रमशः 2.25 मी0, 1.55 मी0 तथा 1.50 मी0 चौड़े थे। प्रवेश द्वार के दोनों तरफ मोटे खम्भे रहे होगें जिनकी औसत मुटाई लगभग 15 से0मी0 थी। बाड़े के ऊपर किसी भी प्रकार का छाजन नहीं था। बाड़े के भीतर की मिट्टी भी अपेक्षाकृत अधिक काली थी। इसमें कोई उपकरण अथवा मृद्भाण्ड के अवशेष नहीं मिले। बाड़े के चारों ओर आवासों के प्रमाण मिले थे।

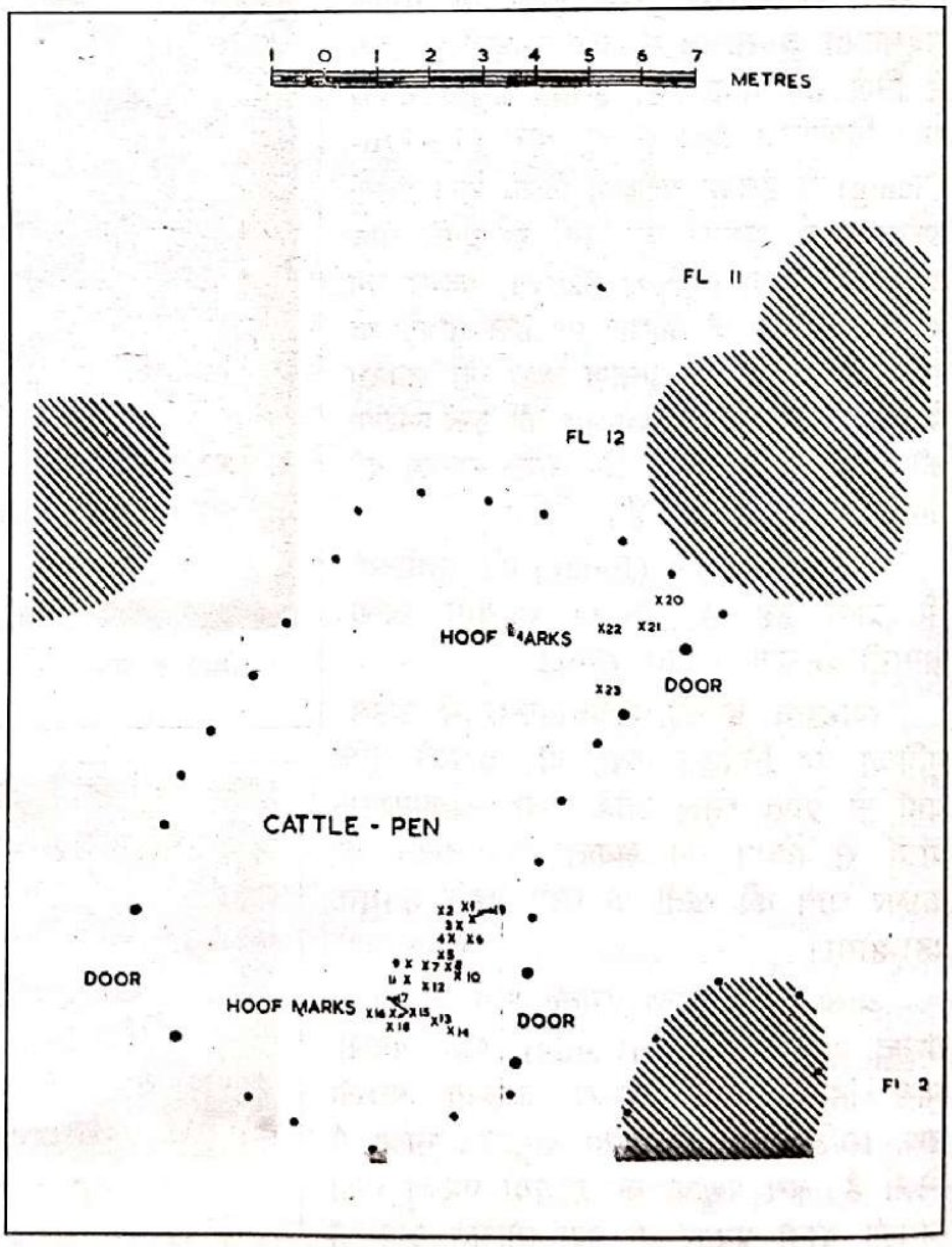


यहां से प्राप्त मृदभाण्डों को चार स्पष्ट वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। 1. रस्सीछाप युक्त पात्रापरम्परा 2. खुरदरी पात्र परम्परा 3. ओपदार लाल पात्र परम्परा तथा 4. ओपदार काली पात्र परम्परा। सभी मृद्भाण्ड हस्तनिर्मित तथा अधपके हैं। बर्तनों में गहरे अथवा छिछले कटोरे, तथा गोलाकार घड़े प्रमुख थे। अन्य प्रकारों में टोंटीदार कटोरे, थाली तथा हाण्डी आदि उल्लेखनीय हैं। बर्तनों पर अलंकरण पट्टी चिपकाकर (Applique bands) का आड़ी बेड़ी रेखाओं तथा उत्कीर्णन करके किया गया है। कोई भी चित्रित पात्र नहीं मिला है।

विंध्य के उत्खनित नवपाषाणिक स्थलों कोलडिहवा, महगड़ा तथा कुनझुन से अनेक तिथियाँ

उपलब्ध हैं। कोलडिहवा से चार उपलब्ध तिथियाँ 6570 ± 210 ई0 पू0 , 4530 ± 185, ई0 पू0.1440 ± 150 ई0 पू0, 1400 ± 100 ई0 पू0 है। इसके अतिरिक्त महगड़ा से ऊष्मादीप्ति तिथियाँ हैं, जो क्रमशः 2265 ई0 पू0 तथा 7616 ई0 पू0 हैं। तिथियों में विसंगति के बावजूद यहाँ की नव पाषाणिक संस्कृति को 3530-3335 से 1565-1265 ई0 पू0 के अन्तर्गत रखा जा सकता है (मिश्र, वी0डी0,पार्श्वोद्धरित,1999 पृष्ठ 245)।

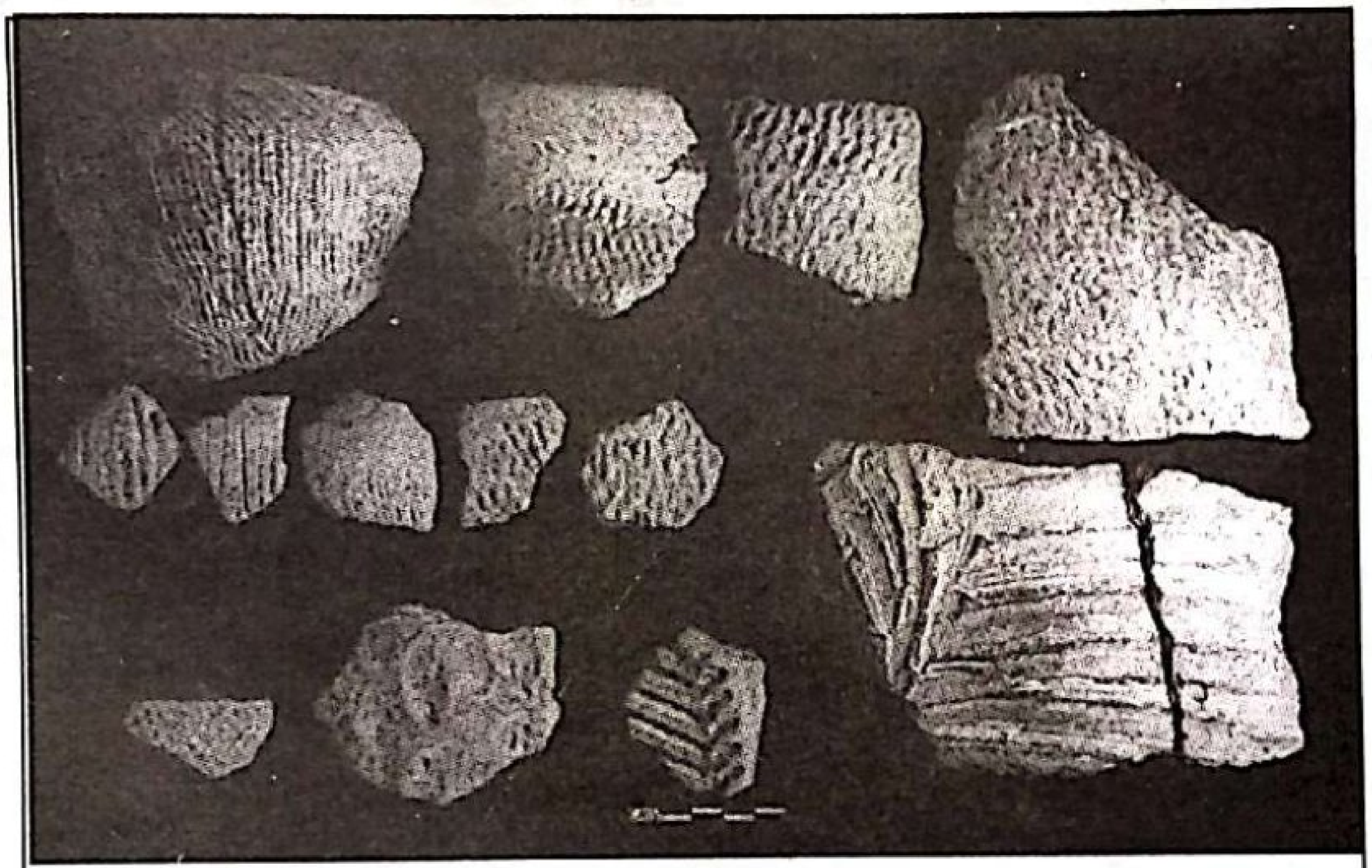

विंध्य के डोरीछाप पात्र चित्र सं. 137

गोलाकार समन्तान्त की लघु पाषाण कुल्हाड़ियाँ बिहार, असम, मेघालय तथा नागालैण्ड में अनेक पुरास्थलों से प्राप्त हुई हैं। असम में ये, डोरीछाप पात्र परम्परा से भी सम्बन्धित हैं। किन्तु दोनों संस्कृतियाँ अपनी समग्रता में भिन्न है। स्कंधित उपकरण जो असम के उपकरण समुदाय का एक अंग है यहाँ पर नहीं मिलते। दक्षिण पूर्व–एशिया में बर्मा में स्पिरिट गुफा (Spirit cave) नाँन–नाक–था (Non-Nak Tha) और पदाह–लिन (Padah Lin) से डोरीछाप मृद्भाण्ड नवपाषाणिक संदर्भ में प्राप्त हुए हैं। इसी प्रकार वियतनाम में होआबिन्ह (Hoabinh) तथा कम्पूचिया में लांगस्पीन (Laang spean) से भी डोरीछाप मृद्भाण्ड प्राप्त हुए हैं। यह उल्लेख्य है कि डोरीछाप में समानता के बावजूद पात्र परम्परा के रंग तथा अलंकरण में भिन्नता है। दोनों की सांस्कृतिक परम्परा में भी अन्तर है अतः केवल मृद्भाण्डों के साम्य पर कोई निष्कर्ष निकालना समीचीन नहीं लगता। उर्पयुक्त स्थलों पर इसकी तिथि छठवीं–पाँचवी सहस्त्राब्दी ई0 पू0 के लगभग आंकी गई हैं।

विद्वानों के समक्ष उत्तरी विंध्य क्षेत्र की संस्कृति के सम्बन्ध में यह एक अहम् प्रश्न है कि इसकी उत्पत्ति पर दक्षिण पूर्वी एशिया तथा पूर्वी भारत का प्रभाव था अथवा इसकी उत्पत्ति स्थानीय थी। दक्षिणपूर्वी एशिया के प्रभाव को स्थापित करने के लिए गोल समन्तान्त कुल्हाड़ी तथा डोरीछाप पात्र परम्परा का साम्य पर्याप्त नहीं हैं। इसके अतिरिक्त अन्य सांस्कृतिक उपादानों में भी साम्य होना आपेक्षित है, जो नहीं है। पुनः दोनों क्षेत्रों के मध्य इस प्रकार के और स्थल मिलने चाहिए तथा काल का विस्तार भी अधिक होना चाहिए।

यह उल्लेख्य है कि इसी क्षेत्र में मध्यपाषाण युगीन स्थल लेखहिया (19 कि0मी0), बघहीखोर (14 कि0मी0) तथा चोपनीमाण्डो के उत्खनन में डोरीछाप पात्र परम्परा के कतिपय ठीकरें प्राप्त हुए हैं। लेखहिया के तृतीय चरण (Geom. Microlithic phase) में मृद्भाण्ड मिलने लगते हैं। यह मुख्यतया लाल तथा हल्के भूरे अथवा खाकी रंगों की हैं। इसपर कुछ अलंकरण उत्कीर्ण है। 63 ठीकरों पर डोरीछाप मृद्भाण्ड के प्रमाण मिले है। इनके अतिरिक्त ओपदार काली पात्र परम्परा तथा खुरदुरी पात्र परम्परा के भी कतिपय ठीकारे लेखहिया में मिले हैं। शर्मा ने इस सम्भावना का उल्लेख किया है कि यह लेखहिया III काल, चोपनीमाण्डों में अन्त तथा महगड़ा के प्रारम्भ का अन्तर्वर्ती हो सकता है। बघहीखोर के प्रथम लेयर से भी डोरीछाप मृदभाण्ड के कुछ प्रमाण मिले हैं। चोपनीमाण्डो के विकसित मध्यपाषाणिक काल (Advance Mesolithic phase) में भी इस प्रकार के पात्र मिले हैं। उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह प्रस्तावित किया जा सकता है कि विंध्य की पात्र परम्परा के विकास का आधार क्षेत्रीय मध्यपाषाण युगीन पात्र परम्परा होगी। लेखहिया से प्राप्त नवीनतम तिथियों के आलोक में यह सम्भावना अनुचित नहीं प्रतीत होती।

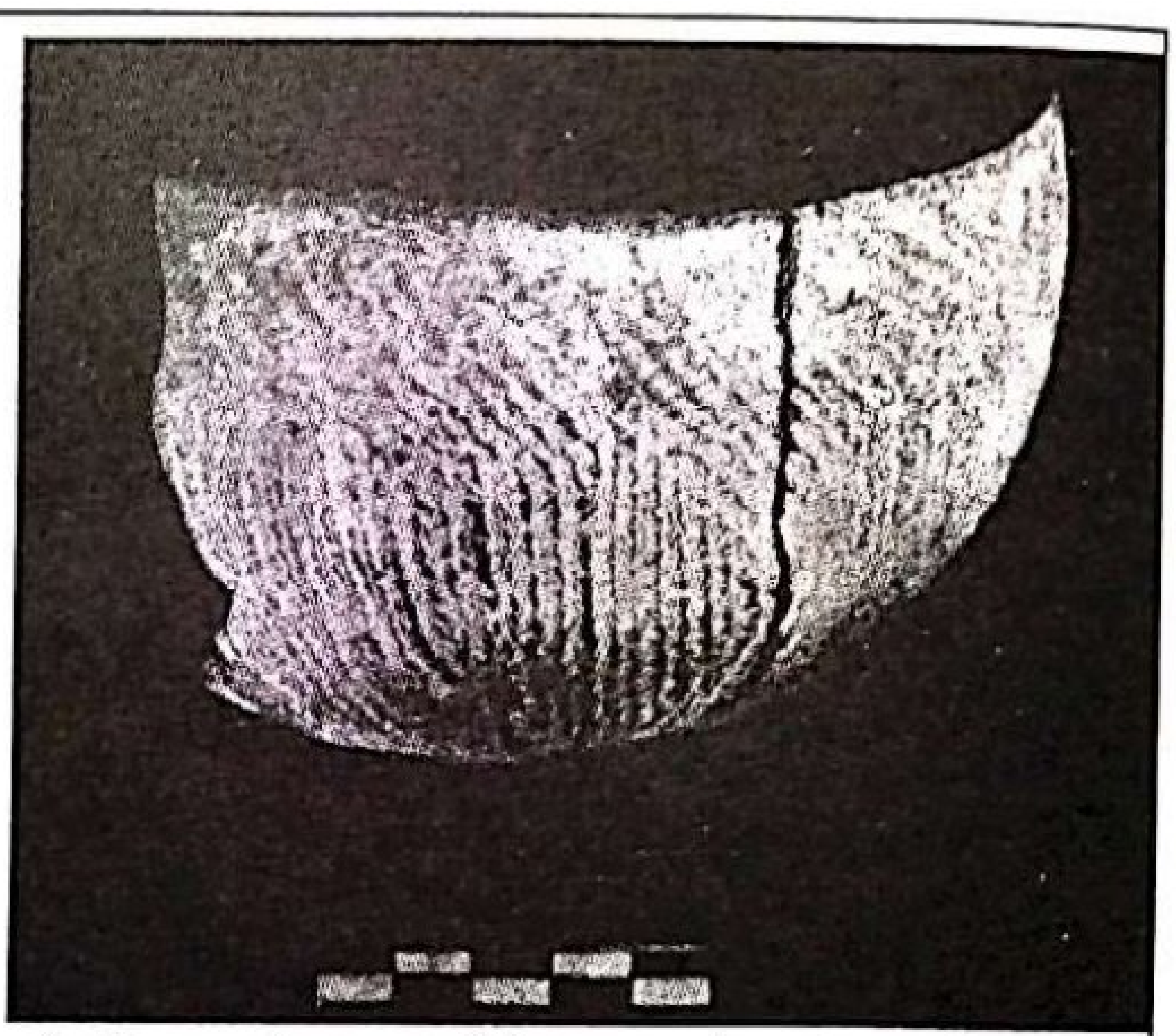

कोलडिहवा से प्राप्त डोरीछाप कटोरा **चित्र सं०-138**

## मध्य–पूर्वी गंगाघाटी की नवपाषाण संस्कृति

इस संस्कृति का प्रसार क्षेत्र दक्षिणी बिहार का क्षेत्र है। इसका मुख्य पुरास्थल सारन जिले में स्थित चिरांद है। 1968 तक यह एक ताम्र पाषणिक पुरास्थल के रूप में जाना जाता था किन्तु कालान्तर में हुए उत्खननों से यहाँ की नवपाषाणिक संस्कृति प्रकाश में आई। 10ग10 तथा 10ग15 मी0 की दो खनतियों में 3.5 मी0 के जमाव में महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हुई। छह सांस्कृतिक कालों में सबसे निम्नवर्ती नव पाषाणिक स्तर था।

उत्खनन में घिसकर पालिश किये गये गोलाकार नव पाषाण उपकरणों (Ground Polished Rounded Neolihthic Celts) की संख्या कम थी किन्तु हड्डियों और मृग श्रृंगों के विभिन्न प्रकार के उपकरण उल्लेखनीय है—सुईयाँ (Needels), शर (Points), छिद्रक (Borers), पिन्स (Pins), पुच्छल एवं छिद्रयुक्त बाणाग्र (TangedAnd SocketedArrow heads), स्क्रेपर और लटकन (Pendant)। इतनी अधिक संख्या में हड्डियों और मृग श्रृंगों के उपकरण अन्यत्र नही मिले थे।

चिरांद के नवपाषाणकालीन लोगों के कलात्मक अभिरूचि को अभिव्यक्त करने वाले उपकरणों में उपरत्नों (Sem-precious Stones) पर बने सुन्दर मनके (Beads) और लटकन (Pendant), टेराकोटा और कछुए की हड्डियो तथा हाथी दातं के गहने चूड़ियाँ, लटकन, नव पाषाणिक सेल्ट के आकार के लटकन आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

चिरांद के हड्डियों के उपकरण चित्र सं0–139

टेराकोटा की बनी वस्तुओं में पशु–पक्षी तथा नाग की मृण्मूर्तियो, कुकुकदार बैलं पहिये आदि का उल्लेख किया जासकता है। एक चिलम के नीचे का भाग जिसमें कालिख लगी थी भी प्राप्त हुआ था। टेराकोटा की चूड़ियों तथा गुरियों का भी प्रचलन था।

घिसकर बनाये हुये प्रस्तर उपकरणों में सेल्ट (Celt) तथा सिल–लोढ़े (Grinding Stones), की गणना की जा सकती है। इन उपकरणों के अतिरिक्त लघु पाषाण उपकरण इस संस्कृति के अभिन्न अंग थे था समानान्तर द्विबाहुब्लेड (Parallel sided blades), भूथड़े पार्श्वब्लेंड (Blunted back blades), दन्तुरित ब्लेड (Serrated blades), तिरछा पार्श्वान्त ब्लेड (Pen-knife blades), शर (Points), बेधक (Borer), स्क्रेपर (Scraper), त्रिकोण (Triangle), अर्धचान्द्रिक (Lunate), आदि मिले हैं। इनके अतिरिक्त कोर तथा अनुपयोजित प्रस्तर सामग्री भी प्राप्त हुई है। इनके निर्माण के लिए चाल्सेडनी, चर्ट, अगेट, कार्नेलियन, क्वार्टज तथा क्रिस्टल आदि का उपयोग किया गया था। यह उल्लेख्य है कि यहाँ से एक भी क्रेस्टेड रिज

(crested ridge ) नहीं मिला है।

सीमित उत्खनन के कारण सम्भवतः घरों की रूप रेखा स्पष्ट नहीं हो पायी। अनुमानतः प्रारम्भिक काल में ये गर्त आवास निर्मित करते थे जिसको ऊपर से छाते भी थे। कालान्तर में संभवतः बांस–बल्ली के आधार पर लगभग वृत्ताकार झोपड़ियाँ बना कर लोग निवास करते थे। बाद के काल का एक गोलाकार लगभग 4 मी0 डायमीटर का फ्लोर तथा अर्धवृत्ताकार झोपड़ी मिली थी जिसमें बहुत से चूल्हे भी थे।

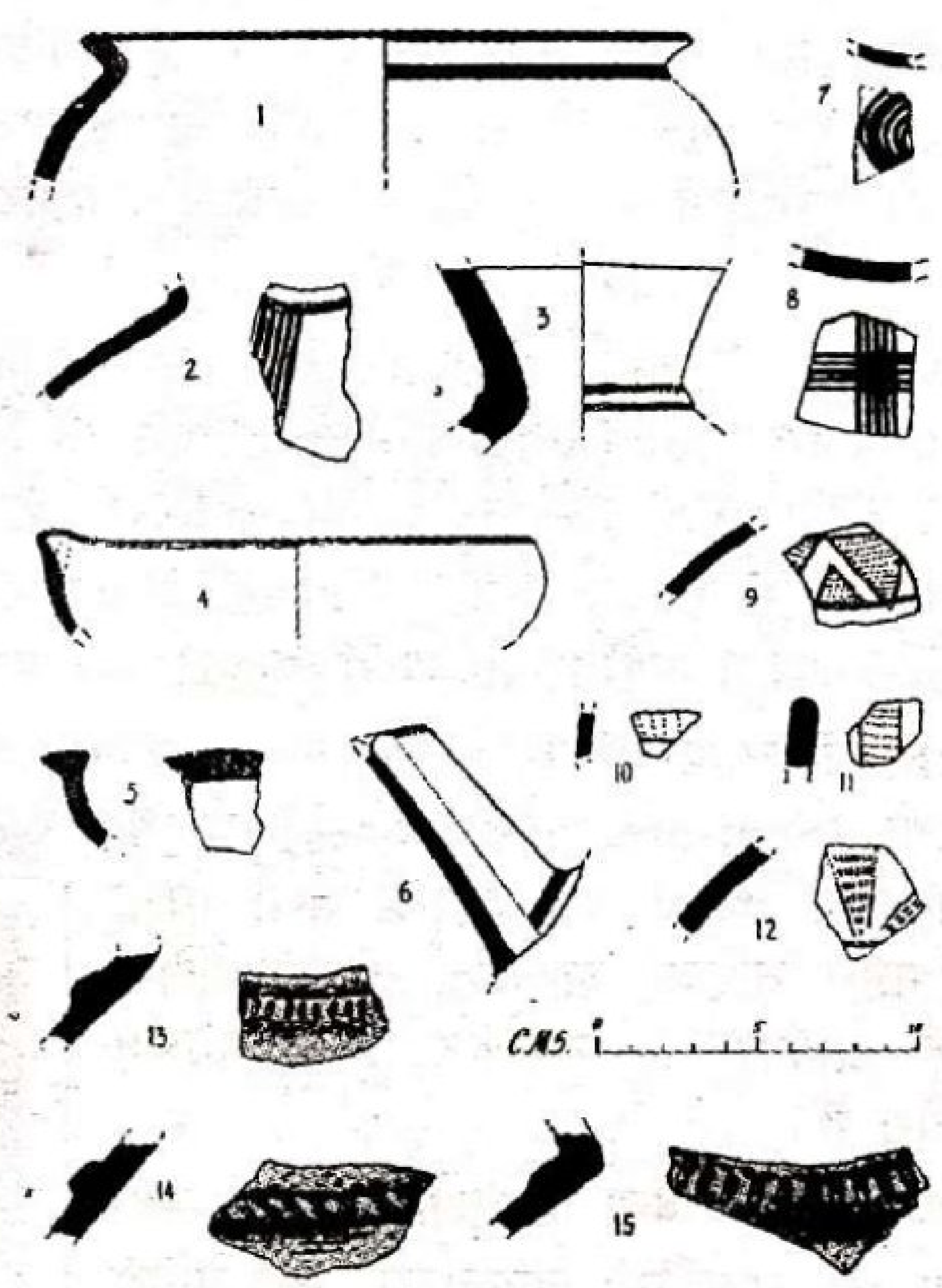

चिराद के साधारण तथा चित्रित पाटरी चित्र सं0–140

यहाँ जली मिट्टी के टुकड़ों में धान की भूसी के प्रमाण मिलते हैं। गेहूँ मूँग,मसूर और जौ से भी ये लोग परिचित थे। लोगों के जीवन की अर्थ व्यवस्था आखेट तथा मछलियों के शिकार पर आधारित थी। नदियों से एकत्रित शेल तथा घोघे का भी सेवन करते थे। उत्खनन में हाथी गैडे भैस हिरन आादि की हड्डियाँ काफी संख्या में मिली हैं।

इस काल की पॉटरी मुख्यतः हस्तनिर्मित लाल, भूरी वर्निश्ड ब्लैक ऐण्ड रेड वेयर की हैं। कुछ धीमी चाक पर भी बनी लगती हैं। एप्लीक, रेखाकंन या लाल गेरू से यहाँ की पॉटरी को अलंकृत (Decorate) भी किया गया है। बर्तनों में चौड़ेमुह तथा पतली गर्दन के पात्र,टोटी दार पात्र, फूटेड कप, बोल विथ स्टैण्ड उल्लेखनीय हैं। बर्तनों को पकाने के पूर्व तभा बाद चित्रित रिने की विधा से परिचित थे।

घिसकर पालिश किये गये गोलाकार नव पाषाण उपकरणों, हड्डी के उपकरणों एवं कतिपय पॉटरी में विध्य क्षेत्र के गोलाकार नव पाषाण उपकरणों तथा पॉटरी में बहुत साम्य है।

प्राप्त C 14 तिथियों के आधार पर इस संस्कृति का प्रारम्भ, द्वितीय सहस्त्राब्दी के प्रारम्भिक चरण में रखा जा सकता है (1900 से 1300ई0 पू0) इसके और अधिक प्राचीनता की सम्भावना को निर्मूल नही कहा जासकता।

# पूर्वी नवपाषाणिक संस्कृति

छोटा नागपुर पठार–उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिले, बिहार, ओडिशा और पश्चिमी बंगाल को इस संस्कृति का क्षेत्र माना गया है। बरूडीह और कुचाई दो उत्खनित स्थल है। कुचाई के आधार पर इस संस्कृति के लक्षणों को आंका गया है, जहाँ से घृष्ट गोली समन्तान्त कुल्हाड़ियाँ (Gound rounded-buttAxes) फलकित कुदाल (Facetted Hoe), छेनी (Chisels) तथा गदाशीर्ष, पाउण्डर और ग्राइण्डिग स्टोन के साथ मोटी बालुकायुक्त पॉटरी और नारंगी–भूरी (Orange-brown) पॉटरी मिली है। यहाँ पर पशु–पालन और कृषि के प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं, लेकिन गदाशीर्ष, ग्राइण्डिग स्टोन और पाउण्डर से अन्न उत्पादन का अभास होता है।

**सुआबेरी (Suaberi) उत्खनन**

2014–16 में भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण द्वारा सुआबेरी (Suaberi) में किए गए उत्खनन से ओडिशा की नव पाषाणिक संस्कृति पर विशेष प्रकाश पड़ा है। सुआबेरी पुरी जिले में दया नदी तथा गंगुआ नाले के मध्य में स्थित है। इसके पूर्व ओडिशा में नव पाषाणिक संस्कृति के अवशेष स्तरित जमावो से नहीं मिले थे।

उत्खनन में नवपाषाणिक तथा ताम्रपाषाणिक संस्कृतियों के जमाव मिले किन्तु दोनों के बीच में एक मीटर की बैरेन लेयर 11 (Barren layer) थी। इससे स्पष्ट है कि नव पाषाणिक संस्कृति के लोगों के स्थल को छोड़ने के लगभग 600 वर्षों के बाद ताम्रपाषाणिक संस्कृतियों के लोग पुनः यहाँ पर बसै। इसकी पुष्टि दोनों स्तरों से उपलब्ध कार्बन 14 तिथियों से होती है। नवपाषाणिक स्तर से 3750 बी0पी0 तथा ताम्रपाषाणिक स्तर से 3215 बी0पी0 की तिथि मिली है।

नवपाषाणिक जमाव के निम्न तम स्तर से लघुपाषाणोपकरण तथा नवपाषाणिक उपकरण प्रभूत संख्या में मिले हैं उनके साथ जंगली जानवरों की जली हड्डियाँ जले हुए अन्नों के अवशेष, हस्त निर्मित रूक्ष, कंकरीली पाटरी भी मिली है। इस समय तक चाक का निर्माण नहीं हुआ था।

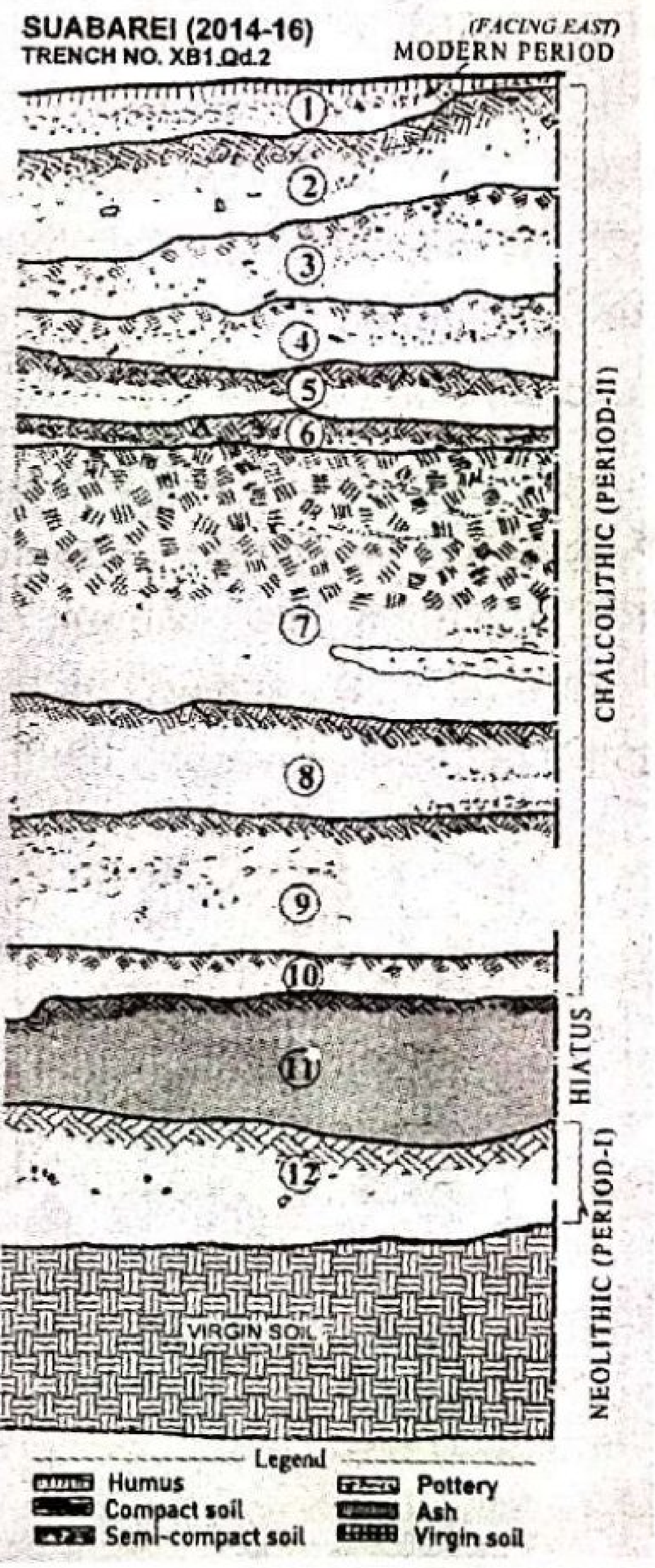


चित्र सं0–141

ताम्रपाषाणिक स्तरों से चित्रित, बहुरंगी चाक पर बनी पाटरी मिली है। ये गोलाकार झोपड़े बनाते थे जो पूर्वोन्मुख होते थे। इनकी फर्श कच्ची ईटों के हैं। स्तम्भ गर्त नहीं मिले हैं। ताम्रपाषाणिक स्तरों से प्रभूत संख्या में जंगली तथा पालतू जरनवरों की जली हड्डियाँ मिली हैं

Scanned with OKEN Scanner

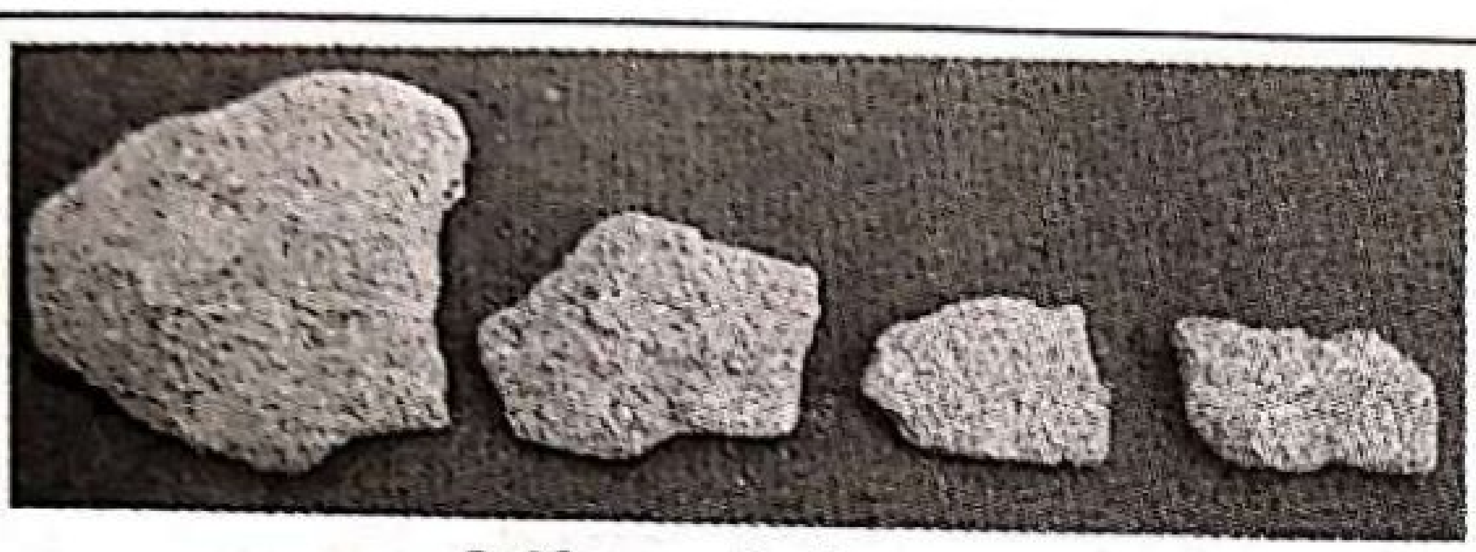

हस्तनिर्मित पाटरी चित्र सं0–142

जले हुए अन्न चित्र सं0–143

जिनपर काटने के निशान हैं। इन स्तरों से प्राप्त उपकरणों में छेनी, (Chisel) बसुले (AØe) उपरत्नों के बीड, टेराकोटा के लटकन, नेट सिंकर्स (Sinkers) ,सिल–लोढे आदि मिले हैं। पाटरी पर जाल के निशान भी मिले हैं। एक कुत्ते का कंकाल तथा दफनाने के बर्तन (Funerary pots) भी मिले हैं।

पुरातत्ववेत्ताओं की धारणा है कि सुआबेरी के प्रारम्भिक स्तर आखेटक संग्रहक अर्थ व्यवस्था से उत्पादक अर्थ व्यवस्था के संक्रान्ति का संकेत करते हैं।

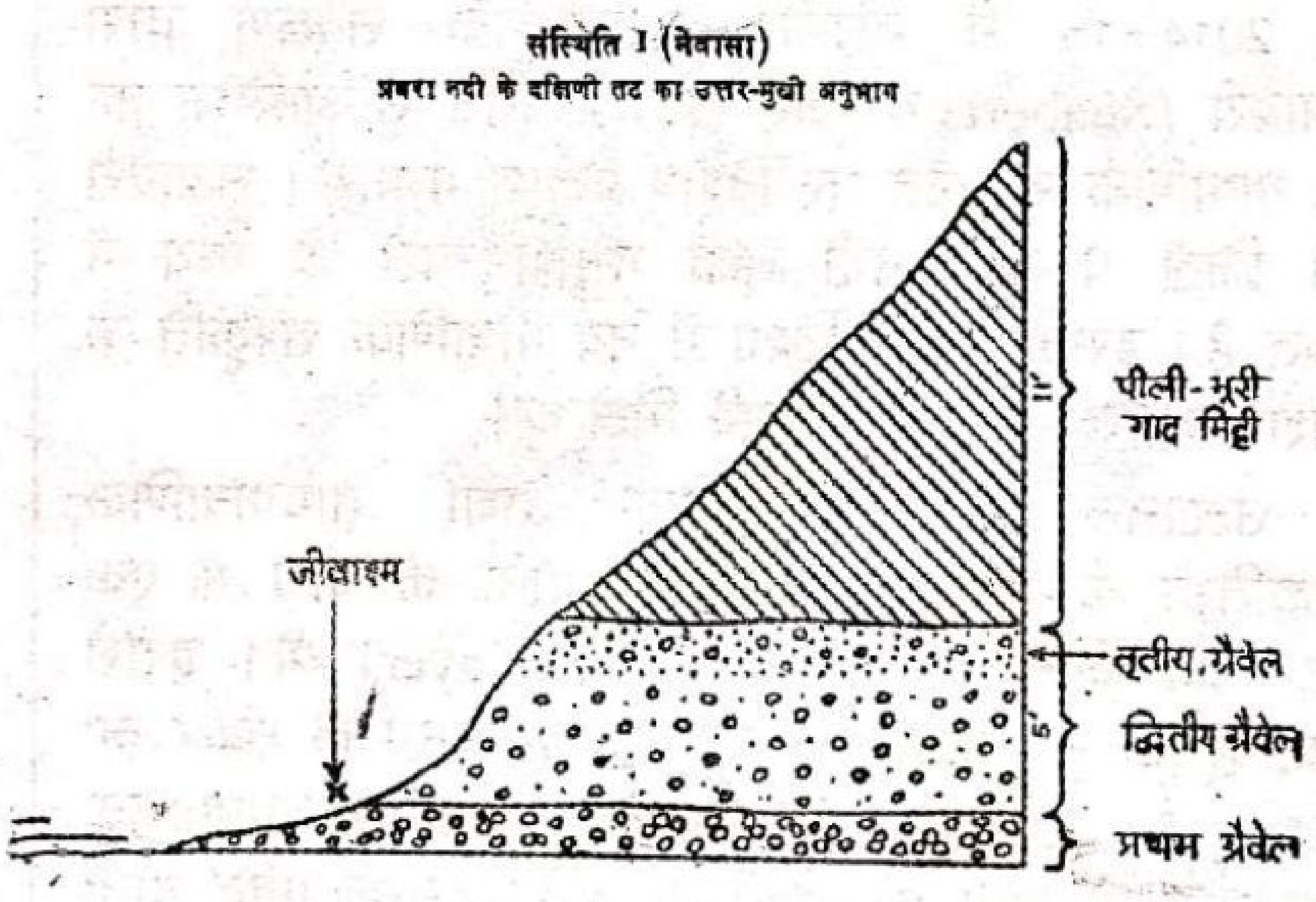


नवपाषणिक सेल्ट चित्र सं0–144

# उत्तर–पूर्व भारत की नवपाषाणिक संस्कृति

भौगोलिक और सांस्कृतिक दृष्टि से वस्तुतः उत्तर पूर्व भारतीय क्षेत्र भारत और दक्षिण पूर्व एशिया और उसके आगे चीन के मध्य एक सेतु की तरह है। उत्तर पूर्व भारत मे अधिकांश प्रतिवेदित प्रागैतिहासिक स्थल खुले में स्थित स्थल हैं। पहाड़ियों के ढाल से परित्यक्त सांस्कृतिक सामग्री लुढ़ककर ढाल के तल में प्रायः आधुनिक जमाव में आ गयी। इसीलिये ये सामग्रियां अधिकांशतः अपने मूल संदर्भ में नहीं मिलती हैं।

सर्वप्रथम 1867 में सर जान लुब्बाक ने ऊपरी आसाम से प्राप्त जेड पर बने नवपाषाण उपकरणों को लन्दन से प्रकाशित 'Athenaeum' में प्रतिवेदित किया। यह उत्तर पूर्व भारत के नव पाषाण उपकरणों की प्रथम रिपोर्ट थी। 1870 में ई0एच0 स्टील ने नागसंग नागाओं के गाँव से जेड पर बने नवपाषाण उपकरण प्रतिवेदित किये। इण्डियन म्यूजियम कलकत्ता में संग्रहीत इस क्षेत्र के नवपाषाण उपकरण चाय बागान के डब्लू0 पेन्नी ने संग्रहीत किये थे, जिनके बारे में कोगिन ब्राउन ने जर्नल आफ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल में 1914 में एक लेख लिखा।

परन्तु इस क्षेत्र की ओर अधिक ध्यान उस समय दिया गया जब ए0एच0 दानी ने अपने शोध प्रबन्ध में 'Neolithic Culture of Assam' नाम से एक अध्याय सम्मिलित किया। यह शोध प्रबन्ध 1960 में पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ (दानी 1960)। ए0एच0 दानी ने आसाम की नवपाषाण संस्कृतियों को छः विभिन्न जोन्स में विभाजित किया: (1) कछार हिल जोन, (2) सादिया फ्रन्टियर जोन, (3) नागा हिल्स जोन, (4) खासी ह्रिल्स जोन (5) गारो हिल्स जोन और (6) ब्रहमपुत्र घाटी जोन। दानी के अनुसार इस क्षेत्र के नवपाषाणिक उपकरणों में फैसेटेड उपकरण और स्कन्धित उपकरण प्रकार मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त फैले कार्यांग की कुल्हाड़ी (Splayed Axe), गोल समन्तात कुल्हाड़ियां (Rounded butt Axe), चौड़े कार्यांग के बसुले स्कंधित कुल्हाड़ियां (Tanged Axe) और फनाकार ब्लेड (wedge-blade), खांचेदार कुल्हाड़ियां (grooved hammerstore) भी उल्लेखनीय है।

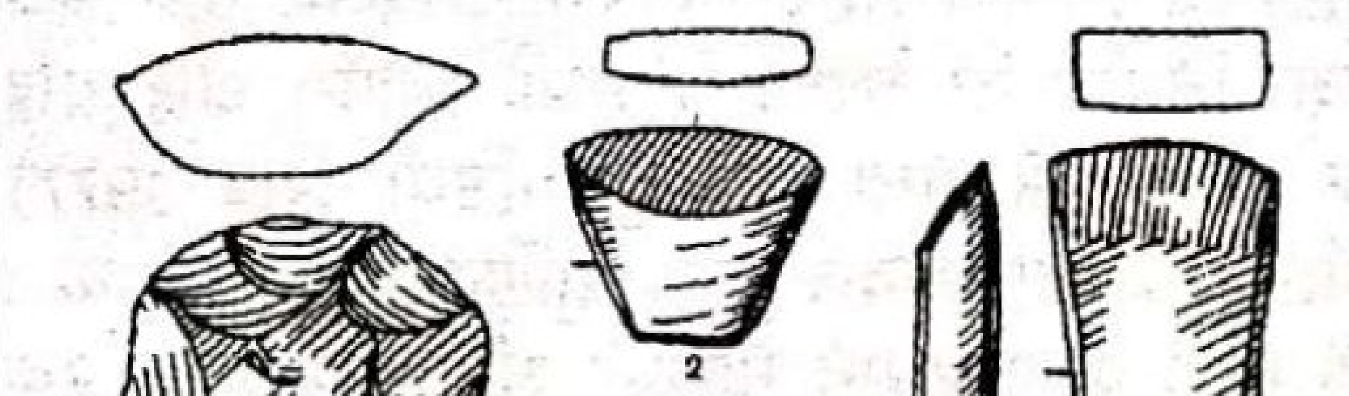

असम क्षेत्र से प्राप्त प्रस्तर कुल्हाड़ियाँ चित्र सं0–145

टी0सी0 शर्मा (1966) ने पिटरिवर्स संग्राहलय के नवपाषाण उपकरणों का वर्गीकरण किया। आसाम के पाषाण उपकरणों का प्ररूपात्मक वर्गीकरण निर्माण की तकनीक के आधार पर चार वर्गों में किया गया: (a) छोटे फलकीकृत उपकरण (Chipped implements) (b) धार पर घर्षित उपकरण

(Edge ground implements), (c) गढ़े हुए ओर खांचे युक्त उपकरण (PeckedAnd grooved implements) और (d) पूर्णतः फलकित उपकरण (Fully ground implements).

टी0सी0 शर्मा द्वारा उत्खनित दाओजाली हेडिंग के उत्खनन से प्राप्त कार्डेड वेयर और घर्षित उपकरण प्रकारों वाली आसाम की नवपाषाण संस्कृति पूर्व- एशियाई नवपाषाणिक काम्पलेक्स से सम्बन्धित है( वोर्मन 1949, दानी 1960)। दाओजाली हेडिंग से प्राप्त सभी पाषाण उपकरण और कार्ड इम्प्रेस्ड पाटरी वियतनाम के वाक्सोनियन (Bacsonian) उद्योग से निकटता से जुड़े है।दाओजी हेडिंग का समुच्चय (Assemblage) इण्डोचाइना के परवर्ती वैक्सीनियन (Late Bacsonian) से सम्बन्धित किया जा सकता है। आकार, स्वरूप और निर्माण प्रविधि में दाओजाली हेडिंग से प्राप्त छोटी कुल्हाड़ियां और स्कन्धित कुल्हाड़ियां अन्नाम के टाम–टोआ से बहुत अधिक साम्य रखती हैं। दूसरे साम्य रखने वाले उपकरणों में (Grinding slabs, polishing stones) पीसने के लिए पटिया, लकड़ी और हड्डी के उपकरणों पर पालिश करने के लिए प्रयुक्त पत्थर (Polishing stones) तथा लोढ़े ओर रबर का उल्लेख किया जा सकता है।

1971 से 1974 के मध्य गौहाटी नगर के समीप नार्थ ईस्ट हिल यूनिवर्सिटी के इतिहास विभाग के एस0एन0 राव ने एक नवपाषाणिक और एक उत्तर नवपाषाणिक (Post- Neolithic) स्थल का उत्खनन किया। उन्होंने भी द्विस्कंधित सेल्ट (Double shouldered celts) और डोरीछाप पाटरी(Cord marked pottery) सरूतरू से प्रतिवेदित किया। सरूतरू में घर्षित प्रस्तर सेल्ट (Ground stone celts) का निर्माण गहरे भूरे रंग के स्लेट और क्रीम से वफ रंग के सैण्ड स्टान पर किया गया है। इनका निर्माण दो चरणों में हुआः चिपिंग और ग्राइंडिंग। पाषाण उपकरण दो प्रकार के हैं: स्कन्धित और गोले समन्तान्त की कुल्हाडियां (राव 1977)। गारो हिल, मेघालय में किये गये सर्वेक्षण से घर्षित और पालिशदार नवपाषाणिक उपकरण के प्रयोग करने वाली संस्कृति का साक्ष्य प्राप्त हुआ। इसी तरह के अध्ययन मणिपुर और अरुणांचल प्रदेश में किये गये (अशरफ 1990)।

अरुणांचल प्रदेश के Parsi Parlo स्थल का उत्खनन 1982–83 में अरुणांचल प्रदेश सरकार के शोध निदेशालय के ए0ए0 अशरफ (1990) ने किया था, जिससे तीन सांस्कृतिक चरणों का पता चलाः चरण I- बिना पात्र वाला नवपाषाण (Aceramic Neolithic), चरण II- पात्रयुक्त नवपाषाण और चरण III- लौह और पाषाण युक्त नवपाषाण। प्रथम चरण में स्क्रैपर और बड़े कटिंग उपकरण, द्वितीय चरण में गढ़े और घर्षित पाषाण उपकरण, फलकित उपकरण (Faceted tools) और हस्तनिर्मित पात्र खण्ड तथा तृतीय चरण में गढ़े और घर्षित पाषाण उपकरण और लौह उपकरण हैं।

मणीपुर में नवपाषाणिक अवशेष चार स्तरीकृत स्थलों से प्राप्त हुए हैं, लेकिन अधिकांश घर्षित और पालिशदार उपकरण कई स्थलों से ऊपरी सतह से एकत्रित किये गये हैं।

1983 में भारतीय भूतात्विक सर्वेक्षण (Geological Survey of India) के बी0 सी0 पोद्दार तथा एन0आर रमेश (B.C. PoddarAnd N. R. Ramesh) ने हाओरा (Haora) और खोवई (Khowai) नदी घाटियों से पाषाण युगीन स्थल प्रतिवेदित किये। त्रिपुरा में Silicified fossil wood industry के निचले स्तरों के लिये 32000 ई0पू0 की कार्बन तिथि मिली है और नवपाषाण उपकरणों से युक्त ऊपरी स्तर की कार्बन–14 तिथि 1500 ई0पू0 है (रमेश तथा राजगोपालन 1999 : 13-30)। नवपाषाण उपकरणों में फलकित घर्षित तथा ओपदार सेल्ट (Chipped, grounded और polished celts), धार घर्षित वस्तुऐं, हथौड़े पत्थर,घिसने के पत्थर, पिक तथा छेनी (Edge groundAdge, hammer stones, grinding stones, pickAxe, chisels) आदि सम्मिलित हैं। इनका निर्माण जीवाश्मित लकड़ी

Scanned with OKEN Scanner

(fossil wood) से किया गया है।

भारत और विदेश के विभिन्न संग्रहालयों में संग्रहीत उत्तर पूर्व भारत की नवपाषाण सामग्रियों का विधिवत अध्ययन टी0सी0 शर्मा ने किया था और उनका दाओजाली हेडिंग के उत्खनन से प्राप्त नवपाषाण सामग्रियों से तुलना की थी। उनका निश्चित मत था कि इस क्षेत्र की नवपाषाणिक स्वरूप के उद्भव में पूर्व परम्परावाली चीनी और दक्षिण पूर्व एशियायी होवाविन्हियन परम्परा का गहरा प्रभाव है। स्पिरिटकेव के उत्खनन कर्ता गोरमन को होआविन्हियन उपकरण नवपाषाणिक पात्रों और घर्षित पाषाण बसुलों के साथ आच्छादित मिले थे। इसी तरह की स्थिति वियतनाम और दूसरे उत्तरी क्षेत्रों में भी थी जहाँ पीटर बेलवुड के अनुसार होवाबिन्हियन एक स्पष्ट सुसंगत नवपाषाण संस्कृत के रूप में विकसित हुई। यहाँ के पहाड़ी क्षेत्र के वर्तमान आदिवासियों द्वारा प्रयुक्त झूम कृषि को टी0सी0 शर्मा नवपाषाणिक परम्परा की निरन्तरता के रूप में देखते हैं। नवपाषाण संस्कृति के स्थल उत्तर पूर्व भारत के लगभग सभी प्रान्तों से प्राप्त हुये हैं। पहाड़ियों और घाटियों में सेल्टों के प्रभूत मात्रा में उपलब्धि से ऐसा प्रतीत होता है कि नवपाषाण काल में इस क्षेत्र में सघन आबादी थी (शर्मा 2013)।

# दक्षिण भारत की नवपाषाणिक संस्कृति

नवपाषाणिक संस्कृति का सबसे गहन अध्ययन दक्षिण भारत में हुआ है। इस संस्कृति का विस्तार उत्तर में भीमा नदी तथा दक्षिण में कावेरी, पश्चिम में हल्लूर तथा पूर्व में नागार्जुन कोण्डा तथा केसरपल्ली तक था। इस क्षेत्र के उत्खनित स्थलों में ब्रम्हगिरि, संगनकल्लू, पिकलिहल, मास्की टेक्कलकोट्टा आदि में स्थानीय अन्तर को छोड़कर सभी एकरूप संस्कृति को उजागर करते हैं। अलचिन तथा पद्दैया ने दक्षिण भारतीय संस्कृति को तीन काल खण्डों में विभाजित किया है।

### काल खण्ड प्रथम

इस काल खण्ड के लोग घर्षित कुल्हाड़ी तथा फलक अथवा ब्लेड परम्परा से सम्बन्धित थे। इन्होनें मवेशी, भेड़ तथा बकरी को पालतू बना लिया था। इनके मृद्भाण्ड मुख्य रूप से हस्त निर्मित, पाण्डु–धूसर (Buff-brown) रंग के थे। इनके अतिरिक्त काली अथवा लाल ओपदार लेप और बैजनी चित्रण से युक्त पात्र परम्परा भी प्रचलित थी। इस काल खण्ड में सिल–लोढ़े भी मिलते हैं। जिससे यह अनुमान किया जा सकता है कि ये अन्नों का संकलन अथवा खेती करते थे। इस काल का प्रतिनिधित्व राख के ढेर (Ash mounds) वाले स्थल उतनूर, कुपगल, कोदेकल तथा पलवाय करते हैं।

### द्वितीय काल खण्ड

इस काल खण्ड में लोगों ने ग्रेनाइट की पहाड़ी के ऊपर अथवा पहाड़ी के किनारे समतल सोपानों अथवा पहाड़ियों के मध्य के पठारों में अपने अवास निर्मित किए थे। गोलाकार झोपड़ियाँ टट्टर आदि से बनाते थे। उनपर पुनः लेप लगाते थे। कुल्हाड़ी तथा ब्लेड उपकरण पूर्ववत् इस काल में भी प्रचिलित थे। अन्तर मात्र इतना है कि वे अब पहले से अधिक सुगढ़ हैं। मृदभाण्ड परम्परा पूर्ववत् प्रचिलित थी। उसमें थोड़ी विविधता मिलने लगती है तथा वह परिमार्जित भी हो जाती है। इस काल का अन्त होते–होते ताबें तथा कांसे का प्रचलन प्रारम्भ हो जाता है। टेक्कलकोटा से सोने के भी प्रमाण मिले हैं। इस काल का प्रतिनिधित्व पिकलीहल, ब्रम्हगिरि, संगनकल्लू, टेक्कलकोट्टा I हल्लूर I हल्लूर IIA तथा टी नरसीपुर (T.Narsipur) करते हैं।

### तृतीय काल खण्ड

इस काल खण्ड में तांबे तथा कांसे के उपकरणों की संख्या बढ़ जाती है किन्तु प्रस्तर कुल्हाड़ी तथा ब्लेड उपकरण लौह युग के प्रारम्भ तक मिलते हैं। हल्लूर से ताबें की एक कटिया। (Fish-hook) प्राप्त हुई हैं। इसके अतिरिक्त अन्य उपकरणों में छेनी, सपाट कुल्हाड़ियाँ (FlatAxe) **आदि हैं**। हल्लूर से इस काल से ताबें अथवा कांसे के ऐनटेना तथा तलवार और चन्दोली से कटार मिले हैं।

पद्दैया की धारणा है कि वेल्लरी, रायचूर तथा शोरापुर दोआब का पर्वतीय क्षेत्र इस संस्कृति का मूल केन्द्र था। 1900 ई0 पू0 के लगभग से इसका प्रसार पश्चिम, दक्षिण तथा पूर्व की ओर होने लगा, फलतः इसके पाँच भिन्न विकसित स्वरूप मिलते हैं।

इसका प्रथम स्वरूप उतनूर (I से IV तक), पिकलीहल (निम्न नवपाषाणिक), कोदेकल (लेयर 4 से 6) ब्रम्हगिरि IA. से मिला है। इस काल में कृष्णलोहित पात्र, धातु की वस्तुयें तथा चाक पर निर्मित काले चित्रित पात्रों का प्रयोग प्रारम्भ होता हैं।

Scanned with OKEN Scanner

द्वितीय स्वरूप का प्रतिनिधित्व ऊपरीकृष्णा घाटी के तीस पुरास्थल करते हैं। ओपदार कुल्हाड़ियों, ब्लेड उपकरणों तथा धूसर पात्र परम्परा कायथा का स्मरण दिलाते हैं। इसके अतिरिक्त काले,श्वेत अथवा लाल भूरे रंग में चित्रित लाल अथवा भूरी पात्र परम्परा सावलदा पात्र परम्परा का स्मरण दिलाते हैं।

तृतीय स्वरूप इस संस्कृति के दक्षिण प्रसार का निर्देश करती हैं। इस सांस्कृतिक स्वरूप का प्रतिनिधित्व हल्लूर , टी नरसीपुर तथा हेमिगे के उत्खनित स्थल करते हैं।

चतुर्थ स्वरूप अनन्तपुर जिले के निकटवर्ती स्थलों से प्रतिवेदित हुए हैं। इसमें से पलावाय तथा नागार्जुनकोण्ड उत्खनित स्थल हैं। इसमें प्रस्तर कुल्हाड़ी तथा ब्लेड प्रचुर संख्या में मिलते हैं।

पाँचवा स्वरूप कर्नूल के पूर्वी भाग तथा कुडप्पा जनपद के निकटवर्ती क्षेत्र से मिलता है। इसकी प्रमुख पात्र परम्परा ब्लैक–आन–रेड अथवा तथाकथित पटपद पात्र परम्परा हैं।

उपयुक्रत विषमताओं के होने के बावजूद दक्षिण भारतीय नवपाषाणिक संस्कृति में एक आन्तरिक समरूपता है। तीनों कालखण्डों के जीवन में विशेष अन्तर नहीं था।

टेक्कलकोटा, संगनकल्लू तथा हल्लूर से गोलाकार झोपड़ियों के प्रमाण मिले हैं। फर्श को चूना/ मिट्टी/ गोबर से पोता जाता था। इस प्रकार की झोपड़ियाँ उस क्षेत्र में आज भी बनायी जाती हैं। कुछ स्थलों पर झोपड़ों की बाह्य रेखा पर केवल पत्थर रखकर कुछ रद्दे की दीवाले मिली हैं। घरों में अथवा निकट बाहर, चूल्हे ग्रेनाइट पत्थर को रखकर बनाये हुए मिलते हैं। उनके साथ ही प्रायः सिल लोढे तथा संग्रह–पात्र (Storage Jar) भी सभी घरों में मिले हैं।

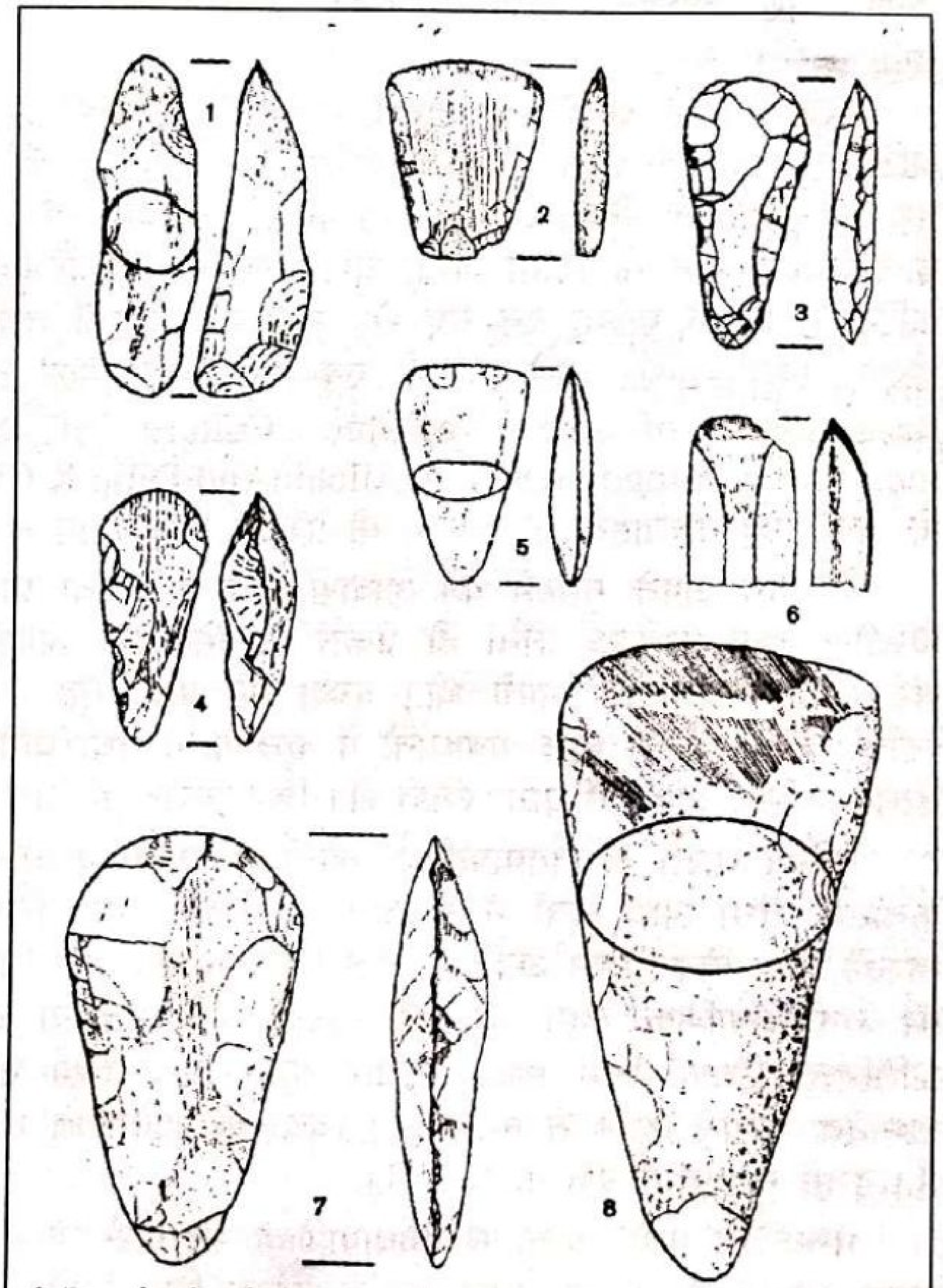

कर्नाटक बेल्लरी से प्राप्त घर्षितप्रस्तर उपकरण चित्र सं0–146

उपकरणों में फलकित तथा घर्षित उपकरणों के साथ ब्लेड भी सम्मिलित हैं। उपकरणों का निर्माण डोलोराइट, बालुकाश्म तथा ग्रेनाइट आदि पत्थरों से किया जाता था। ब्लेडों के अच्छे उपकरण बाद के दो कालखण्डों में अधिक हैं। कुल्हाड़ी में सबसे प्रचलित प्रकार नुकीले समन्तात तथा अण्डाकार अनुप्रस्थ काट (Cross-section) के हैं। इनके अतिरिक्त बंसुले ($Ad_3$ e), छेनी

(Chisel), फन्नी (पच्चर –Wedge), स्क्रेपर आदि हैं। उपकरणों का निर्माण आवास पर ही करते थे।

उपकरणों में सबसे अधिक संख्या ब्लेड उपकरणों की ही है। उनमें मुख्यतया भूथड़े पृष्ठब्लेड, शर, अर्धचांद्रिक, समलम्ब चतुर्भुज बेधक आदि है। इन्हीं से हंसिया आदि बनाते रहे होगें।

इनकी अर्थव्यवस्था का मूलाधार पुशपालन था किन्तु इसके अतिरिक्त यें कृषि भी करते थे। चना, रागी (टेक्कलकोटा I तथा हल्लूर II), चना (Green gram), बाजरा (Great millet), तथा फली (Legumes) की खेती करते थे। खेती योग्य भूमि बनाने के जिए पहाड़ी पर सोपानों का निर्माण करते थे।

पशुपालन के सम्बन्ध में काफी जानकारी उपलब्ध है। सभी स्थलों पर डीलदार मवेशियों की अस्थियाँ प्रारम्भिक काल में सबसे अधिक मिली है। इनके बाद बकरी तथा भेड़ आते हैं। शैलचित्रों तथा मृण्मूर्तियों में डीलदार पशुओं के लम्बे घुमावदार सींग मिलते हैं। मवेशियों के मांस का उपयोग भोजन के रूप में भी किया जाता था। भैसे की हड्डियाँ कम मिली हैं। यह निश्चित रूप से कहना कठिन है कि वे पालतू बन गए थे। मुर्गों की हड्डियाँ तथा मृण्भूर्तियाँ मिलती हैं। इनके अतिरिक्त हिरण, कछुए, हाँथी, घोड़े की भी एक–एक हड्डी मिली हैं। आलूर (K.Paddyya, 1979, Faunal Background of the Neolithic Culture of South IndiaA source book of IndianArchaeologoy eds. F.R.AllchinAnd Dilip K.Chakrabarti) Vol.1 p.350) की धारणा है कि कुछ पशु भारवाहक के रूप में भी प्रयुक्त किये जाते थे।

ये लोग अपने मृतकों को आवास क्षेत्र में अथवा प्रायः आवास में ही दफनाते थे। शवाधान विस्तीर्ण तथा आंशिक दोनों ही प्रकार के मिले हैं। आंशिक शवाधानों में मात्र कुछ अस्थियाँ ही संग्रह करके दफनाई जाती थी। बच्चों को प्रायः मुँह से मुँह लगाकर बर्तनों में क्षैतिज रूप से रखकर दफनाते थे। कुछ शवाधानों में कुछ बर्तन तथा घर्षित कुल्हाड़ी भी रखी मिली हैं। मृतकों को उत्तर–दक्षिण दिशा में प्रायः रखते थे। शिर उत्तर की ओर होता था।

दक्षिण भारत के नवपाषाणिक लोगों ने अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति विविध प्रकार से की है। कर्नाटक तथा आंध्र क्षेत्रों में ग्रेनाइट की शिला, शैल चित्रों के लिए बहुत अनुकूल थी। कुपगल, मास्की तथा पिकलीहल आदि में शैल चित्र बहुतायत से मिले हैं जिन्हें उनकी विषय वस्तु के आधार पर नव पाषाणिक कहा गया है। इसमें अधिकांशतया लम्बे सींगवाले, डीलदार पशु हैं। इनके अतिरिक्त हिरण, सिहं हाथी, सवार–युक्त हाथी तथा मानवाकृतियाँ भी हैं। घोड़े के भी चित्रण सम्भवतः अग्रिम काल से मिलते हैं। चित्रों के अतिरिक्त छेनी से खरोंचकर भी आकृतियाँ बनाई गई हैं। इनमें मुख्यतया बैल के चित्र हैं।

मनके भी बड़ी संख्या में नवपाषाणिक स्तरों से मिले हैं। प्रथम काल खण्ड से केवल सीप के मनके मिलते हैं। किन्तु कालान्तर में इसके लिए विविध प्रकार के पत्थरों आदि का उपयोग होने लगा। कालखण्ड द्वितीय से स्टीयटाइट, अगेट, कार्नेलियन, टेराकोटा, सोने तथा तांबे के मनके भी मिले हैं। तांबे के गहने जैसे चूड़ी पिन आदि ब्रम्हमगिरि / टेक्क्लकोट्टा तथा सोने के लटकन और मनके टी नरसीपुर से (T. Narsipur) मिले हैं।

## मृद्भाण्ड

नवपाषाणिक काल खण्ड प्रथम से केवल हस्तनिर्मित मृद्भाण्ड मिले हैं। कालखण्ड द्वितीय से हल्के धूसर (Pale grey), धूसर–भूरे (Grey-brown) तथा पाण्डु (Buff) रंगों के बर्तन मिले है।

Scanned with OKEN Scanner

उनको नियमित रूप से पकाया नहीं गया है। बर्तनों में विविध आकार के कटोरे, होठदार छिछली तश्तरियाँ (Lipped shallow basins), हैण्डिल युक्त टोटीदार कटोरे, घड़े साधार तश्तरियाँ, तथा छिद्रयुक्त बर्तन आदि सम्मिलित हैं। बर्तनों को अलंकृत करने के लिए चित्रण, छेदन तथा पट्टी चिपकाने की विधि का प्रयोग किया जाता था। लाल अथवा पाण्डु (Buff) सतह पर बैजनी रंग से चित्र बनाते थे। चित्रण के लिए लहरदार रेखा तथा किरणित त्रिभुज का प्रयोग करते थे। द्वितीय काल खण्ड में सादी धूसर तथा भूरी (Unburnished greyAnd brown ware) पात्र- परम्परा समाप्त हो जाती है। ओपदार धूसर पात्र परम्परा भी कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त हल्के लाल तथा काले पर लाल (ब्लैक–आन रेड ) पात्र परम्परा मिलने लगती है। बर्तनों का निर्माण करने के लिए कंकरीली मिटटी का प्रयोग किया गया है। हल्के लाल रंग के पात्रों पर कभी–कभी काले अथवा नील लोहित (Voilet) रंगों से चित्रण मिलता है। ब्लैक–आन–रेड पात्रों पर भी प्रायः सफेद से चित्रण मिलता है। अपने अन्तिम काल में यह संस्कृति जोर्वे संस्कृति के सम्पक्र में आई, इसीलिए इसमें जोर्वे प्रकार के पात्र मिलने लगते हैं।

दक्षिण भारतीय नवपाषाणिक संस्कृति के तिथि निर्धारण के लिए अनेक कार्बन तिथियाँ हल्लूर, कोदेकल, पायमपल्ली, पालवय, संगनकल्लू, टी नरसीपुर, टेक्कलकोटा, टेरदल तथा उतनूर से प्राप्त हैं। उनके आधार पर इस संस्कृति को 2500 ई0 पू0 से 1000 ई0 पू0 के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

# संक्षिप्त ग्रन्थ–सूची


| | | |
|---|---|---|
| अग्रवाल, डी0पी0 | 1974 | प्रीहिस्टॉरिक क्रोनोलॉजी ऐण्ड रेडियो कार्बन डेटिंग इन इण्डिया |
| अनसारी, जेड0डी0, | 1970 | 'पेबुल टूल्स फ्रॉम नित्तूर (मैसूर स्टेट), इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, थर्ड सिरीज इन इण्डियन आर्क्यालजी,प्रोफेसर एच0डी0 सांकलिया फेलिसिटेशन वाल्यूम |
| अनसारी, जेड0डी0 ऐण्ड पप्पू, आर0एस0, | 1970–72' | स्टोन एज इनकच्छ' *बु0डे0रि0इ0 वाल्यूम 31–2* |
| अलचिन, बृजेट, | 1959 | 'दि इण्डियन स्टोन एजः सम न्यू साइट्स इन सेन्ट्रल, ऐण्ड सदर्न इण्डिया ऐण्ड देयर इम्पलीकेशन्स', *बु0, वु0 इन्स0 आफ आर्क्यालजी* |
| अशरफ,ए0ए0 | 1990 | प्रीहिस्टारिक अरूनाचल प्रदेश,ईटानगर, अरूनाचल प्रदेश। |
| अहमद, एन0 | 1966 | स्टोन एज कल्चर्स ऑफ दि अपर सोन वैली,थीसिस पूना |
| इजाक, एन0, | 1970 | स्टोन एज कल्चर्स ऑफ कर्नूल, थीसिस, डेकन कालेज, पूना लाइब्रेरी |
| कॉक बर्न, जे0 | 1888 | ऑन पेलियोलिथिक इम्पलीमेण्ट्स फ्रॉम दि ड्रिफ्ट ग्रैवेल्स ऑफ दि सिंगरौली बैसिन, साउथ मिर्जापुर', *ज0एन्थ्रो0इ0 वाल्यूम* XVII |
| | 1893 | 'ऑन फ्लिण्ट इम्पलीमेण्ट्स ऑफ साउथ मिर्जापुर', *ज0ए0सो0व0*, वाल्यूम LXII , भाग III (ऐन्थ्रोपॉलजी) |
| कामियाडे, एल0ए0 बक्रिटएम0सी0, | 1939 | 'फ्रेश लाइट ऑन स्टोन एजेज इन साउथ ईस्ट इण्डिया', *ऐंटिक्वेरी* वाल्यूम 4, 1930 |
| कार्बिनस, गुडरून, | 1970 | 'दि आशूलियन वक्रशॉप ऐट चिरकी ऑन दि प्रवरा रीवर, महाराष्ट्र', *इण्डियन ऐंटिक्वेरी* |
| | 1983 | दी प्रवरा रीवर सिस्टम वाल्यू0 2 दी एक्सकवेशन आफ दी आशूलियाँ साइट चिरकी ऑन दि प्रवरा, इण्डिया ट्यूबिनजेन। |
| | 1994 | प्रीहिस्टॉरिक साइट इन वेस्टर्न नेपाल *मैन ऐण्ड इनवायर्नमेण्ट* 19: 73–89. |
| केनायर,जे0,एम0, जे,डी,क्लाक्र पाल,जे0, शर्मा,जी0आर0 | 1983 | ऐन अपरपेलियोलिथिक साइट इन इण्डिया,*ऐंटिक्विटी* LVII 1983 पे088 |
| कैनेडी,के0ए0आर, | 1986 | मेसोलिथिक ह्यूमन रिमेन्स फ्राम दी गंगा प्लेन सराय नहर |

| | | |
|---|---|---|
| एन0सी0 लोवेल ऐण्ड सी0वी0बरो | | इथिका कार्नेल यूनीवर्सिटी। |
| कृष्णस्वामी, वी0डी0, | 1938 | 'चेन्जेज ऑफ प्रीहिस्टॉरिक मैन नियर मद्रास', *जर्नल ऑफ मद्रास जाग्रे0 ए, सो0* XIII |
| खत्री, ए0पी0, | 1957 | स्टोन एज कल्चर्स ऑफ मालवा, थीसिस, डेकन कालेज, पूना |
| | 1966 | 'ओरिजिन ऐण्ड इवोल्यूशन ऑफ हैण्डैक्स कल्चर इन दि नर्मदा वैली (सेन्ट्रल इण्डिया)' स्टडीज इनप्रीहिस्ट्री, सम्पादक सेन ऐण्ड घोष |
| घोष, ए0के0, | 1961 | 'ए नियोलिथिक साइट इन माण्डला डिस्ट्रिक्ट' *इ0ऐ0,* XIV (3) |
| | 1964 | स्टडीज ऑन दि पेलियोलिथिक कल्चर ऑफ सिंहभूम, थीसिस, कलकत्ता विश्वविद्यालय |
| | 1970 | पेलियोलिथिक इण्डस्ट्रीज ऑफ ईस्टर्न इण्डिया इनदि लाइट ऑफ रिसेण्ट डेस्कवरीज, ***Academia Institut d' Archeologie SAV PRAGUE*** द्वारा प्रकाशित |
| जोशी, आर0वी0, | 1953 | प्लायस्टोसीन स्टडीज इन दि माल प्रभा बेसिन प्रीहिस्ट्री ऐण्ड जियोक्रोनॉलजी,पूना |
| ज्वाएनर, एफ0ई0, | 1950 | स्टोन एज प्लायस्टोसीन क्रोनॉलजी इन गुजरात, पूना |
| | 1952 | 'दि माइक्रोलिथिक इण्डस्ट्रीज ऑफ लंघनाज, गुजरात', *मैन* LII |
| तिवारी एम0पी0 ऐण्ड एच0वाई0 भाई | 1997 | क्वाटर्नरी स्ट्रैटीग्रैफी आफ दी नर्मदा वैली स्पेशल पब्लीकेशन *आफ जी0 एस0 आइ0* 46,33–63 |
| ज्वाएनर, एफ0ई0ऐण्ड अलचिन, बी0, | 1956 | 'दि माइक्रोलिथिक साइट्स ऑफ तिनेवेली, डिस्ट्रिक्ट्स,मद्रास स्टेट' *ऐन्शिएन्ट इण्डिया,* नं012 |
| दानी,ए0,एच | 1960 | प्रीहिस्ट्री ऐण्ड प्रोटोहिस्ट्री ऑफ ईस्टर्न इण्डिया के0एल0 मुखोपाध्या |
| दलीप चक्रबर्ती ऐण्ड एम.लाल ( ई0डी0 ) | 2014 | प्रीहिस्टारिक रूट्स इन हिस्ट्री आफ एन्सिएण्ट इण्डिया विवेकानन्द इण्टरनैशनल फाउण्डेशन न्यू डेल्ही |
| टॉड, के0आर0यू0, | 1939 | 'पेलियोलिथिक इण्डस्ट्रीज ऑफ बाम्बे', *ज0रा0ऐ0इन्स0* वाल्यूम LIXIX |
| डी टेरा, एच0, | 1939 | 'दि क्वाटर्नरी टैरेस सिस्टम ऑफ सदर्न एशिया ऐण्ड दि एज ऑफ मैन', *ज्याग्रेफिकल रिव्यू* |

| | | |
|---|---|---|
| | | *(अमेरिकन ज्याग्रेफिकल सोसायटी, नं04, जनवरी)* |
| डी टेरा, एच0 ऐण्ड पैटरसन, टी0टी0 | 1939 | स्टडीज ऑफ आइस एज इन इण्डिया ऐण्ड एसोशिएटेड ह्यूमन कल्चर्स (वांशिगटन) |
| डेन्नेल आर0 डब्लू0 | 1984 | दी इम्पार्टेन्स आफ दी पोटवार प्लेटू, पाकिस्तान स्टडीस आफ अर्ली मैन इन साउथ एशियन आर्क्यालजी (अलचिन, बी0, एडि0 ) पी0पी0 10–19 कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटी प्रेस। |
| डेन्नेल आर0 डब्लू0, एच0एम0रेण्डेल | 1988 | अर्लीटूलमेकिंग इन एशिया : टू मिलियन इयर ओल्ड आर्टिफैक्टस इन पाकिस्तान, *ऐन्टीक्युटी* 62: 98–106 |
| | | 1988बी लेटप्लायोसीन आर्टिफैक्टस फ्राम नार्दर्न पाकिस्तान *करेण्ट ऐन्थ्रो0* 29:495–498। |
| रेण्डेल एच0एम आर0डब्लू0 डेन्नेल ऐण्ड एच0ए0 हलीम | 1989 | प्लायस्टोसीन ऐण्ड पेलियोलिथिक इनवेस्टिगेशन इन दी सोअन वैली,नादर्न पाकिस्तान, आक्सफोर्ड:ऐण्ड इण्टरनेशनल सिरीज 544 |
| डैनियल, जी0ई0 | 1950 | ए हण्डरेड इयर्स ऑफ आर्क्यालजी |
| | 1964 | आइडिया ऑफ प्रीहिस्ट्री नून, वी0 वी0 'ए क्लैसीफिकेशन ऑफ फिलण्ट ब्यूरिन ऐण्ड ग्रेवर्स', *ज0ऑफ दि ऐन्थ्रो0 इन्स0* वाल्यूम 64 |
| पद्दैय्या, के0 | 1968 | प्री ऐण्ड प्रोटोहिस्टॉरिक इन्वेस्टिगेशन्स इन शोरापुर दोआब, थीसिस, डेकन कालेज, पूना |
| | 1970 | दि ब्लेड टूल इण्डस्ट्रीज ऑफ शोरापुर दोआब', *इण्डियन ऐन्टीक्वेरी 1970* |
| | 2002 | रीसेण्ट स्टडीज इन इण्डियन आक्रयालजी, मुन्शीराम मनोहर लाल दिल्ली |
| | 2014 | हुण्सगी इन प्रीहिस्टारिक रूट्स (ई0डी0)दलीप चक्रबर्ती ऐण्ड एम.लाल |
| | 2014 | इसमपुर इन प्रीहिस्टारिक रूट्स (ई0डी0)दलीप चक्रबर्ती ऐण्ड एम.लाल |
| | 2014 | ज्वालापुरम इन प्रीहिस्टारिक रूट्स (ई0डी0)दलीप चक्रबर्ती ऐण्ड एम.लाल |
| पप्पू, आर0एस0, | 1974 | प्लायस्टोसीन स्टडीज इन दि अपर कृष्णा बेसिन, थीसिस, डेकन कालेज, पूना |
| पाल, जे0एन0 | 1984 | एपीपेलियोलिथिक साइट प्रतापगढ डिस्ट्रिक्ट उत्तर |

| | | |
|---|---|---|
| | | प्रदेश, *मैन ऐण्ड इनवायरनमेण्ट* VIII: 37-38 |
| | 1994 | मेसोलिथिक सेटिलमेण्ट्स इन दी गंगा प्लेन: *मैन ऐण्ड इनवायरनमेण्ट वा0 न0* XIX |
| | 1995 | मेसोलिथिक ह्यूमन बेरियल इन दी गंगा प्लेन नार्थ इण्डिया *मैन ऐण्ड इनवायरनमेण्ट वा0 न0* XX |
| | 2002 | दी मिडिल-पेलियोलिथिक कल्चर आफ साउथ एशिया इन सेत्तार,एस0;रवी कोरी सेत्तार 2002. |
| फूट, आर0 बी0 | 1866 | 'ऑन दि अकरेंस ऑफ स्टोन इम्पलीमेण्ट्स इनवेरियस पार्ट्स ऑफ मद्रास ऐण्ड नार्थ अर्काट डिस्ट्रिक्ट्स *मद्रास, ज0 ऑफ लिट0 ऐण्ड साइंस, III सिरीज, पार्ट 2* |
| | 1901 | कैटलॉग ऑफ दि प्रीहिस्टॉरिक ऐण्टीक्विटीज इन दि कलेक्शन ऑफ दि गवर्नमेण्ट म्यूजियम(मद्रास) |
| | 1914 | दि फूट कलेक्शन ऑफ इण्डियन प्रीस्टिॉरिक ऐण्ड प्रोटोहिस्टॉरिक ऐण्टिक्विटीज, कैटलॉग रेजाने, गवर्नमेण्ट म्यूजियम, मद्रास |
| | 1916 | दि फूट कलेक्शन ऑफ इण्डियन प्रीहिस्टॉरिक ऐण्ड प्रोटोहिस्टॉरिक ऐण्टीक्यूटीज, नोट्स ऑन देयर एजेज ऐण्ड डिस्ट्रीब्यूशन, गवर्नमेण्ट म्यूजियम,मद्रास |
| बैनर्जी, के0डी0, | 1957 | मिडिल पेलियोलिथिक इण्डटस्ट्रीज ऑफ दि डेकन,थीसिस डेकन कालेज, पूना |
| बोस,एन.के.ऐण्ड सेनधरणी, | 1948 | एक्सकवेशन इन मयूरभन्ज, कलकत्ता यूनिवर्सिटी |
| बोस, एन0के0,सेन,डी0 तथा रे, जी0 | 1958 | 'जियोलॉजिकल, ऐण्ड कल्चरल एवीडेंस ऑफ दि सी0, स्टोन एज इन मयूरभन्ज', *मैन इन इण्डिया,* मार्च 1958, वाल्यूम 38, नं01 |
| बोस, निर्मलकुमार, गुप्त परिल, अरविन्द | 1960 | 'पेलियोलिथ फ्रॉम मुंगेर डिट्रिक्ट बिहार', *मैन इन इण्डिया,* 40 |
| बर्किट, एम0सी0 ऐण्ड कामियाडे, एल0ए0, | 1930 | 'फ्रेश लाइट ऑन दि स्टोन एज इन साउथ इण्डिया', *ऐण्टीक्विटी,* वाल्यूम IV |
| बक्रिट, एम0सी0, कामियाडे, एल0 ए0 ऐण्ड रिचर्ड्स एफ0 जे0, | 1931 | 'क्लाइमेटिक चेन्जेज इन साउथ ईस्ट इण्डिया ड्यूरिंग अर्ली प्लायस्टोसीन टाईम्स', *जियोलॉजिकल मैंगजीन,* LXIX , मई |
| मिथेन,एस | 1996 | प्रीहिस्ट्री आफ माइण्ड, थेम्स ऐण्ड हडसन |
| मिश्र,शीला | 1994 | दी साउथएशियन लोअर पेलियोलिथिक: |

*मैन ऐण्ड इनवायरनमेण्ट वा0 न0* XIX (1-2).

मिश्र,शीला एट आल — 1995 — अर्लियस्ट आशूलियन इनडस्ट्री फ्राम पेनिनसुलर इण्डिया *वाल्यूम 36 करेण्ट ऐन्थ्रोपोलाजी*

मिश्र, वी0एन0, — 1961 — दि स्टोन एज कल्चर्स ऑफ राजपूताना, थीसिस अप्रकाशित, पूना विश्वविद्यालय

1963 — 'पेलियोलिथिक कल्चर्स ऑफ वेस्टर्न राजपूताना' *बुलेटिन डेकनकालेज रिसर्च इन्स्टीट्यूट, वाल्यूम 21*

1967 — प्री ऐण्ड प्रोटोहिस्ट्री ऑफ बेराच बेसिन, साउथ राजस्थान, डेकन कालेज, पूना

1971 — 'माइक्रोलिथिक साइट्स इन राजस्थान', *ई0 ए0 वाल्यूम नं0 23*

1974 — 'दि आशूलियन इण्डस्ट्री ऑफरॉक–शेल्टर F-23 ऐट भीमबैठका, सेन्ट्रल इण्डिया : ए प्रिलिमिनरी एनालिसिस', *साइक्लोस्टाइल कॉपी,* सेमिनार, इण्डियन प्रीहिस्ट्री 1974, पूना तथा *पुरातत्व नं0 8*

मिश्र, वी0 डी0, — 1977 — सम ऐसपेक्ट्स ऑफ इण्डियन आर्क्यालजी, इलाहाबाद

मूर्ति, एम0एल0के0, — 1966 — स्टोन एज कल्चर्स ऑफ चित्तूर, थीसिस डेकन कालेज लाइब्रेरी, पूना

1968 — 'ब्लेड ऐण्ड ब्यूरिन इण्डस्ट्रीज नियर रेनीगुण्टा', *प्रो0 प्रीहिस्टारिक सो0 सी0, लन्दन*

1970 — 'ब्लेड ऐण्ड ब्यूरिन ऐण्ड स्टोन एज इण्डस्ट्रीज एराउण्ड रेनीगुण्टा, चित्तूर डिस्ट्रिक्ट', *इण्डियन ऐण्टिक्वेरी,* IV

1970 — 'ए लेट प्लायस्टोसीन साइट इन सदर्न इण्डिया', *प्रो0 ऑफ अमे0 फिल0 सोसायटी, वाल्यूम 118*

मोवियस, एच0ए0एल0 — 'पेबुल टूल टर्मिनॉलजी इन इण्डिया ऐण्ड पाकिस्तान, *मैन इन इण्डिया,* वाल्यूम 37

1938 — 'दि लोअर पेलियोलिथिक कल्चर्स ऑफ सदर्न ऐण्ड ईस्टर्न एशिया', *ट्रान्जैक्शन ऑव दि अमेरिकन फिलसाफिकल सोसायटी वाल्यूम 30, पार्ट I* फिलाडेल्फिया

1944 — अर्ली मैन ऐण्ड प्लायस्टोसीन स्ट्रैटीग्रैफी इन सदर्न ऐण्ड ईस्टर्न एशिया (कैम्ब्रिज मेसाचुसेट्स)

मोहपात्र, जी0 सी0, — 1960 — दी स्टोन एज कल्चर्स ऑफ उड़ीसा, डेकन


Scanned with OKEN Scanner

| | | |
|---|---|---|
| | | कालेज, पोस्ट ग्रेजुएट रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना |
| मोहपात्र, जी0 सी0, भाटिया, एस0वी0 तथा साहू, वी0 के0 | 1963 | 'दि डिस्कवरी ऑफ ए स्टोन एज साइट इन दि इण्डियन डिजर्ट', *रिसर्च बुलेटिन (एन0ए0), पंजाब यूनिवर्सिटी, वाल्यूम 14* पार्ट |
| मलिक, एस0 सी0, | 1959 | स्टोन एज इण्डस्ट्रीज ऑफ दि बाम्बे ऐण्ड सतारा डिस्ट्रिक्ट, बड़ौदा |
| रवी कोरीसेत्तार बी0जनार्धन | 2014 | ज्वालापुरम इन प्रीहिस्टारिक रूट्स(ई0डी0) दलीप चक्रबर्ती ऐण्ड एम.लाल |
| राजगुरू, एस0 एन0, | 1969 | स्टडीज इन दि लेट प्लायस्टोसीन ऑफ दि मूलामूठा वैली, पूना |
| राव, एस0 एन0, | 1966 | दि स्टोन एज कल्चर्स ऑफ नालगोण्डा डिस्ट्रिक्ट (आन्ध्र प्रदेश), पूना |
| रेड्डी, के0 टी0, | 1968 | प्रीहिस्टॉरिक कल्चर्स ऑफ कुडुप्पा डिस्ट्रिक्ट,पूना |
| लाल, बी0 बी0, | 1956 | पेलियोलिथ्स फ्रॉम दि व्यास ऐण्ड बान गंगा वैलीज, पंजाब *ए0 इ0 नं0* 12 |
| लाल, बी0 बी0, ऐण्ड नौटियाल, के0 बी0, | 1974 | 'लोअर ऐण्ड मिडिल पेलियोलिथिक इण्डस्ट्रीज ग्वालियर, *साइक्लोस्टाइल कॉपी,* सेमिनार, इन्डियन प्रीहिस्ट्री 1974, पूना |
| वर्मा, आर0 के0, | 1964 | स्टोन एज कल्चर्स ऑफ मिर्जापुर, थीसिस इलाहाबाद विश्वविद्यालय |
| | 1969 | 'प्रॉब्लेम ऑफ टर्मिनॉलजी इन प्रीहिस्ट्री इन दि लाइट ऑफ न्यू एवीडेंस' प्रोसीडिंग इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, वाराणसी |
| | 1970 | भारतीय प्रागितिहास, भाग प्रथम |
| | 1974 | अपर पेलियोलिथिक इन्डस्ट्री ऑफ दि बेलन वैली, सेमिनार, प्रीहिस्ट्री 1974, डेकन कालेज, पूना |
| | 1977 | भारतीय प्रागैतिहासिक संस्कृतियाँ परमज्योति प्रकाशन, इलाहाबाद। |
| | 1985 | यूनीक कपुल बेरियल्स आफ दी गंगा वैली : फेसेट्स आफ इण्डियन सिविलाइजेशन (ई0डी0) जे0पी0जोशी पे0 29–34. |
| | 1985 | मेसोलिथिक कल्चर्स ऑफ इण्डिया, *पुरातत्व,* न013–14 |
| | 1985 | ए प्रिलिमिनरी रिपोर्ट आफ दी एक्सकवेशन ऐट |

दमदमा मैन एण्ड इनवायरमेण्ट (1982-85)
1986 दी मेसोलिथिक एज इन मिर्जापुर, परमज्योति प्रकाशन, इलाहाबाद।
1989 प्री ऐग्रिकल्चरल सोसायटी आफ दी गंगा वैली, ओल्ड प्राबलम्स ऐण्ड न्यू पर्सपेक्टिव्स इन दी आक्रयालजी आफ साउथ एशिया (ईडी0) केनायर, विसकानसिन आर्क्यो0रिपो0 वाल्यूम 2
1999 इमरजेंस आफ कल्चर इन दी विंध्य–गंगा रीजन विथ स्पेशल रिफरेंस टू ओल्ड स्टोन एज इन दी डॉन आफ इण्यिन सिवलाईजेशन अप टू 600 बी0सी0(ई0डी0) जी0 सी0 पाण्डेय 2000
2001 भारतीय प्रागितिहास भाग 2 परमज्योति प्रकाशन, इलाहाबाद।
2002 मेसोलिथिक टेकनोलाजी इन मेसोलिथिक इण्डिया(ई0डी0) मिश्र वी0डी0 ऐण्ड पाल जे0एन0 इलाहाबाद विश्वविद्यालय।
2011 चेन्जिग पैटर्न आफ लोअर पेलियोलिथिक इन साउथएशिया।ऐण्ड रीसेण्ट रिसर्चेज इन बेलन वैली ( यू0पी0 ) ऐण्ड मिड सोन वैली (एम0पी0) *पुरातत्व* 41: 49-70.

वर्मा,आर0के0 ऐण्ड जे0एन0पाल 1997 दी अपर पेलियोलिथिक कल्चर आफ दी विन्धयन रीजन इन इण्डियन प्री हिस्ट्री
1980 (ई0डी0) मिश्र वी0डी0 ऐण्ड पाल जे0एन0 इलाहाबाद विश्वविद्यालय।

वर्मा,आर0के0, वी0डी0मिश्र जे0एन0 पाल 2014 मध्य प्रदेश ऐण्ड ऐडज्वाइनिग उत्तर प्रदेश ऐण्ड पेलियोलिथिक कल्चर्स आफ दी बेलन ऐण्ड सोन वैली इन प्रीहिस्टारिक रूट्स(ई0डी0) दलीप चक्रबर्ती ऐण्ड एम.लाल

शर्मा , जी0 आर0, 1965 इन प्रीहिस्ट्री, 1964 पूना में
1973 'मेसालिथिक लेक कल्चर्स इन दि गंगा वैली', इण्डिया *प्रो0 प्रीहिस्ट0 सो0 लन्दन, वाल्यूम 39*
1975 'सीजनल माइग्रेशंस ऐण्ड मेसोलिथिक लेक कल्चर्स ऑफ दि गंगा वैली', के0सी0च0मे0 वाल्यूम, इलाहाबाद

शर्मा, जी0आर0 ऐण्ड 1982 पेलियोइनवायरनमेण्ट्स ऐण्ड प्रीहिस्ट्री इन दी

Scanned with OKEN Scanner

| | | |
|---|---|---|
| क्लाक्र जे0डी0 | | सोन वैली, यूनीवर्सिटी इलाहाबाद। |
| शर्मा, टी0 सी0 | 1966 | प्रीहिस्टारिक आर्क्यालजी आफ ईस्टर्न इण्डिया लन्दन युनीवर्सिटी लाइब्रेरी |
| शर्मा, टी0 सी0 ऐण्ड शर्मा, एच0 सी0 | 1974 | स्टोन एज कल्चर्स ऑफ दि गारो हिल्स : मेघालय', *साक्लोस्टाइल प्रति, सेमिनार, इण्डियन प्रीहिस्ट्री 1974, पूना* |
| शर्मा,सुकन्या | 2013 | द नियोलिथिक आफ नार्थ ईस्ट इन्डिय I इन के0एन दीक्षित इ0डी0 नियोलिथिक चालकोलिकथक कल्चर्स आफ इण्डिया |
| शान्ती पप्पू ऐण्ड कुमार अखिलेश | 2014 | अत्तिरमपक्कम प्रीहिस्टारिक रूट्स (ई0डी0)दलीप चक्रबर्ती ऐण्ड एम.लाल |
| साकलिया, एच0 डी0, | 1956 | 'एनीमल फॉसिल्स ऐण्ड पेलियोलिथिक इण्डस्ट्रीज फ्रॉम दि प्रवरा बेसिन ऐट नेवासा, डिस्ट्रिक्ट अहमदनगर', *ए0 इ0 नं0* 12 |
| | 1971 | 'न्यू एवीडेन्स फॉर अर्ली मैन इन कश्मीर' *करेंट ऐन्थ्रोपॉलजी, वाल्यूम नं0 4–5* |
| | 1974 | प्रीहिस्ट्री ऐण्ड प्रोटोहिस्ट्री ऑफ इण्डिया ऐण्ड पाकिस्तान, पूना |
| सांकलिया, एच0 डी0, | 1960 | फ्रॉम हिस्ट्री टू प्रीहिस्ट्री ऐट नेवासा : 1954:46 देव, एस0 वी0 आदि, |
| साली, एस0 ए0, | 1970 | 'क्वाटर्नरी स्ट्रैटीग्रैफी इन दि कान बेसिन', *जे0ए0सी0 बाम्बे,* वाल्यूम 39 |
| | 1974 | 'अपर पेलियोलिथिक रिसर्च सिन्स इण्डिपेण्डेन्स', *बु0 ऑफ डेकन कालेज, रि0 इ0* वाल्यूम XXXIV नं0 1–4 |
| | 1989 | दी अपर पेलियोलिथिक ऐण्ड मेसोलिथिक कल्चर्स आफ महाराष्ट्र, पुनः डेकन कालेज। |
| सिंह, आर0 | 1965 | पेलियोलिथिक इण्डस्ट्रीज ऑफ नार्दर्न बुन्देलखण्ड,थीसिस, पूना |
| सुपेकर, एस0 जी0 | 1968 | प्लायस्टोसीन स्ट्रैटीग्रैफी ऐण्ड प्रीहिस्टॉरिक आर्क्यालजीः आर्क्यालजी ऑफ दि सेन्ट्रल नर्मदा बेसिन, थीसिस, डेकन कालेज, पूना विश्वविद्यालय लाइब्रेरी |
| | 1974 | ए रि अप्रेजल ऑफ प्लायस्टोसीन स्ट्रैटीग्रैफी ऐण्ड प्रीहिस्ट्री ऑफ दि सेन्ट्रलन नर्मदा वैली, |


Scanned with OKEN Scanner

| | | |
|---|---|---|
| | | *साइक्लोस्टाइल कॉपी*, इण्डियन प्रीहिस्ट्री सेमिनार 1974, पूना |
| सुब्बाराव, वी, | 1948 | स्टोन एज कल्चर्स ऑफ बेल्लारी, पूना |
| | 1958 | पर्सनैलिटी ऑफ इण्डिया, बड़ौदा |
| सेन, डी0, | 1942 | 'ऐ प्रिलिमिनरी नोट ऑन दि टाइपॉलजी ऑफ दि पेलियोलिथिक साइट्स इन मयूरभंज, प्रोसीडिंग ऑफ दि इण्डियन साइंस कांग्रेस (बड़ौदा) पार्ट III, एक्सट्रैक्ट्स |
| | 1955 | 'नलगढ़ पेलियोलिथिक कल्चर' *मैन इन इण्डिया, वाल्यूम 35* |
| सेन, डी0 तथा घोष, ए0 के0, | 1960 | 'ऑन दि अकरेन्स ऑफ पेलियोलिथस' *मैन इन इण्डिया,* वाल्यूम 40, 3 सेप्टेम्बर |
| | 1963 | 'लिथिक कल्चर काम्पलेक्स इन दि प्लायस्टोसीन सीक्वेंस ऑफ दि नर्मदा वैली', *रिविष्टा दि साइंस प्रीहिस्टार्स, वाल्यूम XVIII* |
| सेन, डी0, घोष,ए0के0 चैटर्जी, एम0, | 1963 | पेलियोलिथिक इण्डस्ट्री आफ बांकुड़ा वेस्ट बंगाल', *मैन इन इण्डिया, नं0 7* |
| | 1952 | 'स्टोन एज इण्डस्ट्रीज नियर गिद्दलूर, डिस्ट्रिक्ट कर्नूल, *ए0 इ0, नं0 8* |
| | 1958 | 'स्टडीज इन दि स्टोन एज ऑफ नागार्जुनकोण्ड ऐण्ड इट्स नेबरहुड', *ए0 इ0, नं0 14* |
| | 1961 | 'क्वाटर्नरी पेबुल कोर ऐण्ड फ्लेक कल्चर्स ऑफ इण्डिया–ऐन अपरेजलऑफ दि डाटा, *ऐ0इ0, नं0 18* |
| सेत्तार,एस0;रवी कोरी सेत्तार | 2002 | इण्डियन आर्क्यालजी इन रिट्रासपेक्ट, आई0सी0एच0आर0 मनोहर |
| सोनकिया ए0ऐण्ड एस0 बिस्वास | 1998 | ऐण्टिक्युटी आफ दी नर्मदा होमोएरेक्टस,दी अर्ली मैन आफ इण्डिया *करेण्ट साइंस* 77(4) 391–393 |
| स्मिथ, वी0 ए0, | 1906 | 'पिग्मी फिलन्ट्स', *इण्डियन ऐन्टिक्वेरी, वाल्यूम* XXXV |
| हन्टर, जी0आर0, | 1936 | फाइनल रिपोर्ट ऑव दि एक्सकवेशन इन दि महादेव हिल्स नं0 2 |